

लब्धिसार-क्षपणासार

शिविर (भाग-१)

-: वक्ता एवं लेखिका :-

डॉ. श्रीमती उज्ज्वला दि. शहा

एम.बी.बी.एस., डी.सी.एच., डी.जी.पी.

-: संपादक :-

पं. दिनेशभाई शहा

एम.ए., एल.एल.बी.

-: प्रकाशक एवं प्राप्तिस्थान :-

वीतरागवाणी प्रकाशक

१५७/९, निर्मला निवास, सायन (पूर्व), मुंबई - ४०००२२.

मोबाइल : ९७५७३ ९३६३७

Website : <http://www.jainsiddhant.org>

Mobile Application : JainSiddhant

लब्धिसार-क्षपणासार शिबिर (भाग-१)

प्रथम संस्करण

महावीर जयंती - १० अप्रैल २०२५

१००० प्रत

हमारे प्रकाशन

१) जैनतत्त्व परिचय	- मराठी, हिन्दी, गुजराती, इंग्लिश	२५/-
२) जिनागम का कारण-कार्य रहस्य	- मराठी, हिन्दी, गुजराती, इंग्लिश	२५/-
३) करणानुयोग परिचय	- मराठी, हिन्दी, गुजराती	२५/-
४) पंचलब्धि	- मराठी, हिन्दी, गुजराती	२५/-
५) भक्तामर स्तोत्र प्रवचन	- मराठी	१५/-
६) स्वानुभव	- मराठी	६/-
७) परमात्मा कसे बनाल !	- मराठी	६/-
८) सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका जीवकाण्ड एवं अर्थसंदष्टि	- हिन्दी	१५०/-
९) सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका कर्मकाण्ड एवं अर्थसंदष्टि	- हिन्दी	१५०/-
१०) सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका लब्धिसार-क्षपणासार एवं अर्थसंदष्टि	- हिन्दी	१००/-
११) सर्वज्ञप्रणीत जैन भूगोल	- हिन्दी, गुजराती	५०/-
१२) सर्वज्ञकथित जैन सिद्धान्त (भाग १ और २)	- हिन्दी	२५०/-
१३) पंच परावर्तन	- हिन्दी	१५०/-
१४) गोम्मटसार कर्मकाण्ड शिबिर (भाग १ और २)	- हिन्दी	३५०/-
१५) गुणस्थान शिबिर	- हिन्दी	२००/-
१६) लब्धिसार-क्षपणासार शिबिर (भाग १ और २)	- हिन्दी	४००/-
१७) पंचलब्धि शिबिर	- हिन्दी	२००/-

मूल्य रु. ४००/- (भाग १ और २)

‘ उज्ज्वल ’ टीम - समय समर्पण

निशा शेठ, अहमदाबाद	स्क्राइबर, प्रूफ रीडर, प्रबंधक	मीनू जैन, कोलकाता	स्क्राइबर
राजीव जैन, दिल्ली	स्क्राइबर, प्रूफ रीडर	हेतल शाह, नैरोबी	स्क्राइबर
सुषमा चाणेकर, नासिक	निर्देशक, प्रूफ रीडर	तेजल शाह, मुंबई	स्क्राइबर
पिनांग शाह, कोयम्बतूर	स्क्राइबर	वीरेन्द्र पाटनी, हैदराबाद	स्क्राइबर
हार्दिक वधानी, मुंबई	स्क्राइबर	महेन्द्रकुमार मालू, भोपाल	स्क्राइबर
हर्षिता वधानी, मुंबई	स्क्राइबर	निमेष देसाई, मुंबई	स्क्राइबर
प्रवीण अंबेकर, चिखली	स्क्राइबर		
डॉ. कल्पना शाह, मुंबई	स्क्राइबर		

- दातारों की नामावलि -

४००००० आश्वी और अर्हम् निमेष देसाई, मुंबई	११००० शिलारानी रमेशचंद्र जैन, बड़ौदा
१००००० निशा जिनेश शेठ, अहमदाबाद	१०००० शोभना नवीनभाई शाह, दुबई
५०००० प्रवीण रहाटे, ऑस्ट्रेलिया	१०००० लताबेन मारु, मुंबई
४८००० तिलकमती चंद्रप्रकाश गंगवाल, इंदौर	५१०० मीनाक्षी शहा, म्हस्रूल
३१४०० एना एवं अंकित जैन जालोरी, बेंगलोर	५०१० शांताबाई वर्धमान, उमरगा
३१००० नरेन्द्रकुमार जैन, फरीदाबाद	५००० आशा गाला, मुंबई
२५००० अशोक जैन, भोपाल	५००० शशी जैन, दिल्ली
२५००० अतिथी राजेश चुडगर, दुबई	५००० सत्पाल जैन, भोपाल
२५००० लक्ष्मी शशांक शहा, मुंबई	५००० अरुणा राजकुमार येनिगुरे
२५००० रुमा रूपचंद शहा, मंदा मेहता	४६०० प्रतिभा अष्टीकर ग्रुप, मुंबई
१३००० अंजना जैन, झांसी	४००० गोविंदभाई शाह, नीमच
११००० राजीव एवं अलका जैन, बेंगलोर	२००१ मोहिनी एवं प्रवीण अंबेकर, चिखली
११००० विधान, कृशिता, एकांकिका जैन भोपाल	१००० एम. डी. कोकिले, बेलगांव
११००० सुशीला एवं जयंती गाला, मुंबई	

मेरी बात

ये पुस्तकें हैं शिबिरों में हमने किये हुये व्याख्यानो का अक्षररूप संकलन। सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका लब्धिसार-क्षपणासार आद्योपांत ग्रंथ पर देवलाली में दो शिबिर हुये थे। पहला शिबिर २५/०६/२०११ से ३०/०६/२०११ तक और दूसरा शिबिर हुआ था १२/०५/२०१२ से १७/०५/२०१२ तक। पंचलब्धि विषय पर दो बार शिबिर हुये थे। यह पुस्तक बनी है वह शिबिर हुआ था २६/१०/२०१८ से ३०/१२/२०१८ तक।

सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका जीवकाण्ड, कर्मकाण्ड, लब्धिसार-क्षपणासार ग्रंथ लिखकर पं. टोडरमलजी ने हम पर अनंत उपकार किये हैं। प्रथम बार हम दोनों ने - मैं और मेरे पति दिनेशजी ने - इन ढूंढारी भाषा में लिखित ग्रंथों का आद्योपांत स्वाध्याय किया। उसके पश्चात् ढूंढारी भाषा के ग्रंथों को मैंने घर पर ही सामूहिक स्वाध्याय में सिखाया। कुछ काल के बाद इन सबका मैंने हिन्दी में अनुवाद करके हम दोनों ने इन्हें प्रकाशित किया। तब भी प्रत्येक के १८-१८ बार प्रूफ रीडिंग करते समय हमारा अध्ययन होता ही गया। पश्चात् इन्हीं हिंदी ग्रंथों से घर पर २५-३० लोगों के साथ सामूहिक स्वाध्याय कराया। उसके पश्चात् इन्हीं ग्रंथों के आधार से अनेक बार देवलाली में शिबिर लिये। अन्यत्र भी अनेक जगह लिये, उसकी बात छोड़ो। अब इन शिबिरों का अक्षरशः पुस्तक बनाने का अत्यंत कठिन काम चल रहा है। उनकी प्रूफरीडिंग के दौरान बारंबार सूक्ष्म अध्ययन हुआ, पुनः पुनः स्वाध्याय हुआ।

लब्धिसार-क्षपणासार जैसे सूक्ष्म और गहन विषय पर इस बहाने बारंबार दोहन, मंथन, चिंतन चला यह बहुत बड़ी उपलब्धि है। वह मुझे प्राप्त हुयी है। जिस विषय में प्रवेश होना भी अत्यंत कठिन है उसको अधिकाधिक सरल करके प्रस्तुत करते हुये मुझे प्रसन्नता हो रही है।

मुझे शुरुआत के दिन याद आते हैं जब हमने करणानुयोग पढ़ना प्रारंभ किया था। इ.स. १९९२ में जयपुर शिबिर में हम दोनों ब्र. यशपालजी जैन की गुणस्थान कक्षा में बैठे थे, परीक्षा भी दी थी। उसी शिबिर के दौरान हमने सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका जीवकाण्ड, कर्मकाण्ड, लब्धिसार-क्षपणासार की पुस्तकें, जो ढूंढारी भाषा में थी, वहां से लायी थी। हमेशा जैसे हर ग्रंथ की हम दो-दो प्रतियां लाते हैं एक मेरे लिये और एक मेरे पति दिनेशजी के लिये। इ.स. १९९२ के १ अगस्त से ही हम दोनों ने व्यावसायिक निवृत्ति ली थी। दोनों का मिलकर रोजाना साढ़े आठ घंटे स्वाध्याय चलता था। बड़े-बड़े ग्रंथ ८-१५ दिन में आद्योपांत पढ़ते थे। द्रव्यानुयोग के सभी ग्रंथ बारंबार पढ़ चुके थे।

अब सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका का स्वाध्याय करने की सोच ली। जीवकाण्ड पढ़ना प्रारंभ किया। शुरुआत के गुणस्थान, जीवसमास आदि प्रकरण पढ़े। पर्याप्ति के प्रकरण में संख्यामान विषय है। उसमें सबसे छोटे में छोटे असंख्यात का प्रमाण जिसे जघन्य परितासंख्यात कहते हैं उसका वर्णन है। वहां तक हम पहुंच गये। वहां अनवस्था, शलाका, प्रतिशलाका, महाशलाका कुण्डों की बात आयी। दिमाग चक्कर खाने लगा। बढ़ते हुये अनवस्था कुण्डों को समझते-समझते हमारी दुरवस्था होने लगी। दिनेशजी ने बता दिया, अब बस भी करो ! हम द्रव्यानुयोग का ही स्वाध्याय करेंगे। क्या पढ़ रही हो तुम्हारी समझ में भी आ रहा है ? यह सब पढ़ने से फायदा भी क्या है ?

वैसे तो हर बात पर हम दोनों विचार विनिमय करके ही कोई भी निर्णय लेते हैं। मैंने इन्हें बहुत मनाया, कहा मैं जितना भी समझती हूं आपको समझाऊंगी। दिनेशजी भी मेरे आग्रह को मान देते हुये करणानुयोग पढ़ने के लिये राजी हो गये। जीवकाण्ड पढ़ा, कर्मकाण्ड पढ़ा। जब लब्धिसार पढ़ना शुरू किया तो मेरी भी हालत ऐसी हुयी जैसे पथर पर सिर मार रहे हैं। शब्द पढ़ तो लेते थे मगर भावभासन तो दूर रहो, उनका अर्थ भी भासित नहीं होता था। रोना आता था। स्वयं ही पढ़ना और समझना था। कोई मार्गदर्शक, कोई शिक्षक भी नहीं था जिनसे हम समझ सके। एक तो भाषा ढूंढारी और विषय गहन। एक ही बात थी- विषय समझने की और ग्रंथ पूरा पढ़ने की जिज्ञासा और ज़िद !

इ.स. १९९२ से ही दिनेशजी सामूहिक स्वाध्याय लेते थे। लोगों के आग्रह के कारण मैंने भी जीवकाण्ड पढ़ाना प्रारंभ किया। तब तो सारे ग्रंथ ढूंढारी भाषा में ही थे। क्रम से तीनों ही ग्रंथ, उनके संदृष्टि अधिकार पढ़ाये। पढ़ाते समय अर्थ अधिक ख्याल में आता गया। तब से रोज सुबह डेढ़ घंटे में करणानुयोग और शाम को दो घंटे दिनेशजी द्रव्यानुयोग के अनेक ग्रंथों पर सामूहिक स्वाध्याय करने लगे। इ.स. २००३ से मैंने धवला ग्रंथ सिखाना प्रारंभ किया। धवला, जयधवला और महाधवला (महाबंध) का सामूहिक स्वाध्याय इ.स. २०१४ तक पहली बार समाप्त हुआ। इसी दौरान सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका के तीनों ग्रंथों का अर्थसंदृष्टि सहित मैंने आधुनिक हिंदी में अनुवाद किया। मेरे द्वारा लिखित और दिनेशजी द्वारा अनुवादित अन्य अनेक ग्रंथों के समान इनको भी हम दोनों ने प्रकाशित किया।

मुझे याद है इ.स. २००४ से हम हर साल ३-३ महीने अमेरिका में प्रवचनार्थ जाते थे। वहां भी प्रतिदिन दोनों मिलकर ६-६ घंटे सामूहिक स्वाध्याय लेते थे। उस दौरान मैंने इन ग्रंथों के अनुवाद का भी काम किया था।

मेरा यह सौभाग्य रहा कि इन सभी ग्रंथों को हिंदी में से भी मैंने आद्योपांत पढ़ाया। तब तो अर्थ और सरल होता गया। जब मैंने 'पंचलब्धि' पुस्तक लिखी तब लब्धिसार का और गहराई से चिंतन हुआ। पंचलब्धि विषय मैंने जयपुर शिबिरों में, देवलाली शिबिरों में तथा अन्य अनेक जगह सिखाया। करणानुयोग पुस्तक पर तो देश-विदेश में अनेक शहरों में व्याख्यान दिये। पू. श्री कानजीस्वामी स्मारक ट्रस्ट, देवलालीवालों के तो हमारे पर बड़े उपकार हैं कि वहां हमारे अनोखे शिबिर चलते गये। मैं या दिनेशजी एक ही वक्ता, एक ही विषय पर प्रतिदिन ६-६ घंटे इसतरह ५ दिन का शिबिर लेते थे। हर साल हमारे दो या तीन शिबिर तो होते ही थे। इ.स. २००५ में प्रथम शिबिर जैन भूगोल विषय पर हुआ था। तब से ३०-३२ शिबिर तो वहां हो चुके। जीवकाण्ड पर दो शिबिर, कर्मकाण्ड पर चार-पांच शिबिर, लब्धिसार-क्षपणासार पर दो शिबिर, उसके बाद उनमें से अलग-अलग विषयों पर अलग-अलग शिबिर लिये। दिनेशजी ने भी गुणस्थान, लघु जैन सिद्धान्त प्रवेशिका विषय पर ५-६ बार शिबिर लिये। प्रतिदिन घर पर रोज साढ़े तीन घंटों का सामूहिक स्वाध्याय तो चलता ही था।

इन शिबिरों की हम जो व्हिडिओ रेकॉर्डिंग करते थे, उनकी हम डीव्हीडी बनाते थे। किशन शाह ने उन्हें यू ट्यूब पर डालना प्रारंभ किया। हमारे घर पर रोज के स्वाध्याय की ऑडिओ रिकॉर्डिंग होती थी। वह सारा www.JainSiddhant.org नामक वेबसाइट बनाकर उस पर अपलोड कराया। अहमदाबाद की निशा शेठ, जिनेश शेठ हमारे परिचय में आये। उन्होंने हमारी सभी सीडी, डीव्हीडी मंगाकर उनका अध्ययन किया। कालांतर से हमारे वेबसाइट का कारोबार निशा ने ही सम्हाला है। अब उन्होंने ही Mobile App बनाकर और सुविधा उपलब्ध करायी है।

प्रथम बार जैन भूगोल शिबिर के प्रवचनों का अक्षरशः संकलन पुस्तकरूप से प्रकाशित हो चुका था। इ.स. २०२० में दिनेशजी की छोटी बहन स्वातीजी की कल्पना के अनुसार पंचपरावर्तन पर देवलाली में हुये ३४ घंटों के व्हिडीओ प्रवचनों का अक्षरशः पुस्तक निर्माण का कार्य अमेरिका में शुरू हुआ। इनको स्क़ाइब करके google input पर इंग्लिश में टाइप करके हिंदी में रूपांतरित करने का अत्यंत जटिल और मेहनत का काम शुरू हुआ। निशा भी उस टीम में शामिल थी। उसने स्वयं ने और उसके मार्गदर्शन में हमारी स्क़ाइब टीम ने पंचपरावर्तन का काम तो पूर्ण किया ही, साथ-साथ 'जैन सिद्धान्त' नामक लघु जैन सिद्धान्त प्रवेशिका पर दो बार हुये दिनेशजी के ६० प्रवचनों को अक्षरशः पुस्तकरूप से बनाया - वर्ड टू वर्ड जिसको कहते हैं। पंचपरावर्तन की करीबन ७५० पृष्ठ की १ और जैन सिद्धान्त की ११०० पृष्ठों

की मिलकर २ इसतरह बड़ी साइझ की तीन पुस्तकें २०२२ में प्रकाशित करके उसकी १००० प्रति हमने बिना मूल्य अपने खर्चे से वितरित कर दी। लोगों ने इन्हें खूब सराहा।

अब निशा ने तो बीड़ा उठाया है कि मैं सभी शिबिरों की पुस्तकें बनाऊंगी। उसके मार्गदर्शन में हमारी स्क्राइब टीम ने कर्मकाण्ड शिबिर १ और २ तथा गुणस्थान शिबिर ऐसी तीन पुस्तकें बनायीं। उन्हें फरवरी २०२४ में प्रकाशित करके हमने उसीतरह निःशुल्क वितरित कर दी। अब लब्धिसार-क्षपणासार पर दो शिबिरों का और पंचलब्धि पर हुये एक शिबिर का पुस्तक का कार्य पूर्ण हुआ है। उनके पीछे हमारे स्क्राइब टीम की दिनरात की मेहनत है। स्क्राइबिंग और प्रूफरीडिंग का काम होने पर निशा स्वयं उस पर मेहनत करके हमें तीन-तीन प्रूफ देती है। हर प्रूफ की हम दोनों तीन-तीन बार प्रूफरीडिंग करते हैं। प्रत्यक्ष बोलकर और चार्ट पर सिखाना अलग है। पढ़नेवालों को ठीक से समझ में आये इसलिये बीच में अनेक शब्द, वाक्य डाले हैं, नये चार्ट्स जोड़े हैं। उनका करेक्शन का काम स्वयं निशा ही सम्हालती है। इसमें केवल स्क्राइबर्स का, निशा का, हम दोनों का परिश्रम ही नहीं है, यह हमारे लिये स्वाध्याय है, विषय का अत्यंत सूक्ष्मता से अध्ययन है, बारंबार चिंतन है।

जब हम दोनों और निशा पुस्तक निर्माण के अंतिम चरण पर काम करते हैं तब तक तो हमारी स्क्राइब टीम आगे के विषयों पर बहुत सारा काम कर चुकी होती है। अब 'जीवकाण्ड' के दो शिबिर तथा 'सम्यग्दर्शन' शिबिर का कार्य पूर्णता की ओर है। इतना ही नहीं, 'जैन सिद्धान्त' पुस्तक के दोनों भागों का गुजराती अनुवाद हो चुका है। कच्छ के माधापुर निवासी रोहिणी कोटक ने पहला भाग तो अनुवादित किया ही है, उनकी प्रेरणा से कृपाबहन, हेमालीबहन और उनकी मां भावनाबहन भी गुजराती अनुवाद में जुट गयी हैं। पंचपरावर्तन का भी उनका अनुवाद का काम शुरू हो चुका है। और तो और नैरोबी की हेतल और कोयम्बतूर का पिनांग, मुंबई के मीना, प्रवीणा, मनीषा, नेहा आदि अनेकों द्वारा गुजराती स्क्राइब और प्रूफरीडिंग भी तेजी से चल रहा है। 'गुणस्थान शिबिर' का भी गुजराती अनुवाद प्रारंभ हो चुका है।

दातारों से लेकर वाचकों तक का यह हमारा स्वाध्याय परिवार है। हम सब जिनवाणी मां से उपकृत हुये हैं। हमारा शेष जीवन जिनवाणी मां की सेवा में व्यतीत हो इसी भावना से साथ विराम लेती हूं। वन्दे जिनवरम्।

— डॉ. उज्ज्वला दि. शहा

प्रकाशकीय

लब्धिसार-क्षपणासार शिबिर १ और २ तथा पंचलब्धि शिबिर नामक और ३ पुस्तकें इस साल प्रकाशित करते हुये हम अत्यंत गौरवान्वित हो रहे हैं। हमारे आज तक के प्रकाशन का प्रवास याद आता है तो आश्चर्य लगता है। अब तक हमारे यहां से १७ टायटल्स प्रकाशित हो चुके हैं। उनमें दो टायटल्स ४-४ भाषाओं में, तीन टायटल्स ३-३ भाषाओं में और जैन भूगोल दो भाषाओं में प्रकाशित हुये हैं। इसतरह २८ पुस्तकें और उनमें से भी किन्हीं के १०-१०, १२-१२ संस्करण अनेक भाषाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के शब्द तब कान में गूंजते हैं 'कोण करे ?'

मुझे चौभंगी याद आती है- कोई भी कार्य होता है तब हमारी इच्छा का उसके साथ क्या संबंध होता है ? मेरी इच्छा हुयी और कार्य हुआ या नहीं हुआ ये दो शक्यतायें हैं। वैसे मेरी इच्छा नहीं थी फिर भी कार्य हुआ या नहीं हुआ ये अन्य दो शक्यतायें हैं। इसतरह ये चार शक्यतायें होती हैं, उसे चौभंगी कहते हैं। उसमें से इस तीसरे भंग का मुझे बारंबार अनुभव हो रहा है।

इ.स. २०१८ में हम दोनों ने नक्की किया था अब आगे पुस्तकें प्रकाशित करना, वितरित करना बंद करेंगे। मराठी के छह टायटल्स की हजारों पुस्तकें जो हमारे पास बाकी थी उन्हें महाराष्ट्र के गांव-गांव में अपनी ओर से निःशुल्क भेज दी। हिन्दी पुस्तकें सब १०००-१००० छपवाकर, दिल्ली के DTDCवाले श्री अमितजी जैन के पास भेज दी थी। उन्होंने अपने स्वयं के खर्च से वे पुस्तकें भारतभर में कुरियर द्वारा निःशुल्क वितरित कर दी थी। उस वक्त सारी पुस्तकें दो कंटेनर भरके दिल्ली रवाना करने की पूरी जिम्मेदारी हमेशा की तरह श्री संजय पाटील ने खूब निभायी। जब-जब नया प्रकाशन तैयार होता है, प्रिंटर के पास जाने के लिये श्री संजय पाटील बड़े उत्साह से अपनी कार और दो-चार टेम्पो लेकर उपस्थित रहते ही हैं। पुस्तकें भेजकर निर्भर हुये ऐसे हमें लगने लगा तभी करोना संक्रमण के काल में गजपंथ सिद्धक्षेत्र के सुमेरचंदजी बेलोकर ने अपने स्वखर्च से सभी मराठी पुस्तकें १०००-१००० की संख्या में छपवायी।

हमे लगा अभी पुस्तकें छपाने और भेजने के काम से हम निवृत्त हुये। तब अचानक हमारे देवलाली में हुये प्रवचनों के व्हिडीओज् यूट्यूब पर सुनकर स्क्राइब करके वर्ड टू वर्ड पुस्तकें बनाने की बात कार्यान्वित हुयी। पंचपरावर्तन और जैन सिद्धांत के दो भाग - ये तीन बड़ी साइझ की पुस्तकें प्रकाशित हुयी। ३-४ महीनों के

अंदर देश-विदेश में निःशुल्क भेजकर हमने निश्चित होना चाहा। परंतु जिसके निर्देशन में हमारी स्क्राइब टीम तैयार हुयी है उस निशा शेठ ने बीड़ा उठाया कि मैं सभी शिबिरों की पुस्तकें बनाऊंगी। फिर हम आगामी पुस्तकों के प्रूफरीडिंग में जुट गये।

फरवरी २०२४ में गुणस्थान शिबिर की एक पुस्तक और कर्मकाण्ड शिबिर की दो पुस्तकें तैयार होकर आ गयी। इतने ग्रंथ रखे कहां ? अनेक जगह कोशिश करने पर भी कोई फायदा नहीं हुआ। मेरे दिवंगत मित्र ने मेरी मदद की। वही मधूसूदन जोशी जिसने 'जैनतत्त्व परिचय' और 'कारण-कार्य रहस्य' पुस्तकों का इंग्लिश अनुवाद किया है। वे पति-पत्नी अब नहीं रहे, परंतु उनकी बेटी आरती जो अमेरिका में स्थायी है, उसने अपने पिताजी का घर बड़ी खुशी से हमारे हजारों ग्रंथ रखने के लिये उपलब्ध कराया। अन्य भी अनेक विषयों की सेंकड़ों पुस्तकें अनेक सालों से हम जयंतीभाई और सुशीला गाला के घर पर रख रहे हैं।

बात रही पुस्तकें भेजने की। हमने पौकिंग की व्यवस्था तो समझाली मगर रोज पुस्तकों के ३०-३०, ४०-४० बंडल्स पोस्टऑफिस में भेजकर पोस्ट करवाने की जिम्मेदारी लक्ष्मी और शशांक शहा ने उठायी। अनेक दिनों तक ड्रायव्हर और कार भेजकर पंचपरावर्तन और जैन सिद्धान्त पुस्तकों की पोस्टिंग की पूरी व्यवस्था उन्होंने समझाली। कर्मकाण्ड और गुणस्थान पुस्तकों की पोस्टिंग की व्यवस्था कुंथुकुमार और उनके पिताजी शांतिलाल मेहता ने समझाली है। अभी लब्धिसार-क्षपणासार और पंचलब्धि की वितरण व्यवस्था हमारे सण्डे स्वाध्याय ग्रुप ने समझाले की ठान ली है।

आप कोई भी अच्छा काम कर रहे हैं, तो आपको अच्छे सहकारी साथी भी सहज मिल जाते हैं। प्रथम में प्रथम हमारे दातार एवं हमारे वाचक इन दोनों ने हमें दिल खोलकर, नहीं-नहीं पाकिट खोलकर सहकार किया है। उनकी जितनी तारीफ की जाये कम ही है। लोग तो बिना मांगे, कुछ लोग तो मना करने पर भी धनराशि भेजते रहते हैं। अब किस-किसका नाम लें ?

इन सबके पीछे मूल आधारस्तंभ हैं हमारे स्क्राइबर्स। हम दोनों के - मेरे और डॉ. उज्ज्वला के देवलाली में जो शिबिर हुये हैं उनका अक्षररूप से स्क्राइब करने का अत्यंत जटिल और मेहनत का काम निशा शेठ के निर्देशन में हमारी स्क्राइब टीम कर रही है। प्रतिदिन कई-कई घंटे अत्यंत सावधानी से काम करना पड़ता है। हम भी प्रतिदिन ६-६ घंटे प्रूफरीडिंग करते रहते हैं। इन सबके प्रिंटआउट निकालकर हम तक पहुंचाने का काम कुंथु मेहता कर रहे हैं तो करेक्टेड हजारों पृष्ठों की फोटो-

पीडीएफ बनाकर निशा शेठ के पास वापस भेजने का काम नेहा गोगरी ने सम्हाला है।

हो सकता है जिन्होंने हमें सहकार दिया है - उपकार किया है उनमें से किसीका नाम लेना हम भूल गये हो, तो क्षयोपशम ज्ञानी समझकर हमें माफ करें परंतु नित्य उपकार कर रहे हो उसे तो चालू ही रखे।

ये सारे और अन्य भी अनेक लोग इस कार्य में जुट गये हैं। इसका एक ही कारण है - जिनवाणी के प्रति समर्पित भाव ! जिनवाणी मां ने हमें समझाया है 'होता स्वयं जगत परिणाम, तू पर का करता क्या काम ? '

— पं. दिनेशभाई शहा

इ. स. २०२४ के दसलक्षण पर्व में पं. दिनेशभाई एवं डॉ. उज्ज्वलाबहन प्रवचनार्थ गजपंथ सिद्धक्षेत्र पर आये थे। मैं और मेरी पत्नी मुक्ता वहां गये थे। वैसे मैं इन दोनों के प्रत्येक शिबिर अटेंड करता हूं। वहां श्री वसंतभाई दोशी ने समाज को श्री कुंदकुंद कहान दिगम्बर जैन तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट की गतिविधिओं से अवगत कराया और इस ट्रस्ट के स्वर्णजयंती सभा-अधिवेशन जो मुंबई में होनेवाला था उसके लिये आमंत्रित किया। यह ट्रस्ट अखिल भारतीय तीर्थक्षेत्रों की सुरक्षा में तो कार्यरत रहता ही है, जिनवाणी की सुरक्षा एवं प्रचार में अग्रसर है। विद्वान बनानेवाले महाविद्यालय तथा विद्यालयों की आर्थिक सहायता भी करता है।

समस्त मुमुक्षु समाज के आध्यात्मिक उन्नयन एवं विकास हेतु जिन महानुभावों ने विशिष्ट कार्य एवं सेवायें प्रदान की हैं ऐसे महानुभावों को विशेष आयोजनों के अवसर पर ट्रस्ट द्वारा सम्मानित किया गया है। सम्मेद शिखरजी में हुये ट्रस्ट के अधिवेशन में इन महानुभावों के फोटो सहित पोस्टर लगे थे। उनके नाम हैं - पं. फूलचंदजी सिद्धांतशास्त्री बनारस, बाबू युगलकिशोरजी युगल कोटा, डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल जयपुर, कविवर पं. राजमलजी पवैया भोपाल, श्री अनन्तराय ए शेठ मुंबई, श्री निमेशभाई शांतिलाल शाह मुंबई, श्री हितेनभाई ए. शेठ मुंबई, श्री अक्षयभाई दोशी मुंबई और अब डॉ. उज्ज्वलाबेन शहा मुंबई तथा पं. दिनेशभाई शहा मुंबई।

जिनागम प्रचार प्रसार में अमूल्य योगदान के लिये ट्रस्ट ने दोनों विद्वानों का गौरव करके उन्हें जो अभिनन्दन पत्र प्रदान किया है, उसमें मेरी बहुत-बहुत अनुमोदना है। जिनवाणी प्रति आपका समर्पण अद्वितीय है।

- रमेश भंडारी, बेंगलोर

श्री कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट, मुंबई द्वारा प्रदान

अभिनंदन पत्र

(स्वर्ण जयंती महोत्सव - २९ सितंबर, २०२४)

हमारे सामने विशेषरूप से विराजमान हो रहे हैं आदरणीय श्री दिनेशभाई शहा और श्रीमती डॉ. उज्ज्वला शहा। हम बहुत गौरवान्वित हैं, बहुत प्रसन्न हैं और अभिभूत हैं कि आज ऐसे सरस्वती पुत्रों का सम्मान करने का सारी समाज को अवसर मिल रहा है। इन्होंने क्या कार्य किया है यह बताने की जरूरत नहीं है, सारी समाज जानती है। बस इतना कहना चाहूंगा कि जब हमने सोनगढ़ में प्रवेश किया तो मुमुक्षु समाज के ऊपर यह आरोप लगता था कि ये लोग सिर्फ समयसार की ग्यारहवीं गाथा पढ़ते हैं, मोक्षमार्गप्रकाशक का व्यवहाराभासी पढ़ते हैं, बाकी और कुछ नहीं पढ़ते हैं। ये लोग करणानुयोग का अभ्यास नहीं करते हैं, चरणानुयोग का अभ्यास नहीं करते।

लेकिन मैं इस अवसर पर याद करना चाहूंगा आदरणीय स्वर्गीय श्री यशपालजी अन्नाजी को। अन्नाजी जिन्होंने गोमटसार की गुणस्थानों की क्लास जयपुर की शिबिरों में लेना आरंभ किया। उसके बाद यह काम संभाला आदरणीय श्री दिनेशभाई शहा ने और बहनजी उज्ज्वला शहा ने। धवलाजी जैसे सूक्ष्म विषय हम तो जिसका अवग्रह भी नहीं कर पाते; ईहा, अवाय और धारणा की तो बात बहुत दूर रही। ऐसे सैंकड़ों श्रोता और अभ्यासी इन्होंने तैयार किये। इस उम्र में भी इतनी मेहनत करके और इतना श्रम लेकर के, अपना स्वयं का भी खर्चा उसमें करके अनेक पुस्तकें निकाली, संपादन किया, घर-घर तक पहुंचाया, जन-जन में पहुंचाया और जगह-जगह उसका शिबिर लगाते हैं।

हमारे देवलाली में भी उनके साल में दो शिबिर निश्चित हैं। मुमुक्षु समाज इस विषय से भी परिचित हो रही है यह सारा श्रेय आदरणीय दिनेशभाई शहा और उज्ज्वलाबहन को है। उनका जितना अभिनंदन किया जाये उतना कम है।

लोक में एक कहावत है कि हर पुरुष की सफलता के पीछे उसकी पत्नी का हाथ होता है। लेकिन यहां थोड़ा उलटा हो गया कि उज्ज्वलाबहन के कार्य के पीछे दिनेशभाई का हाथ है। इसके लिये भी दिनेशभाई बहुत-बहुत बधाई के पात्र हैं। इस

विधा को उन्होंने...

सबसे बड़ी बात यह है पहले भी करणानुयोग का खूब अभ्यास होता था लेकिन उसमें आत्मा की बात नहीं आती थी। मुझे कर्म का यह करना है, वह करना है यह बात आती थी। उन्होंने गुरुदेव के तत्त्वज्ञान को, वस्तु की स्वतंत्रता को, अध्यात्म को करणानुयोग में डालकर वह ऐसी शिक्षा देते हैं जिसके लिये इनका जितना अभिनंदन किया जाये उतना कम है। बहुत बहुत धन्यवाद।

— पं. अभयकुमारजी शास्त्री, देवलाली

हमारे दिनेशभाई और उज्ज्वलाबेन शहा का परिचय, आपकी रचनाओं के बारे में पं. अभयजी ने बहुत विस्तार से बताने का प्रयास किया है। कैसे अध्यात्म के साथ में करणानुयोग का सुमेल होवे उस बात को उन्होंने बहुत ही अच्छे ढंग से प्रस्तुत किया है। बहन डॉ. उज्ज्वलाजी, मुझे याद है बहुत पहले, अभी यशपालजी का नाम लिया - वहां जयपुर में यशपालजी की कक्षा में दिनेशभाई, उज्ज्वलाबहन और मैं साथ-साथ बैठते थे। यशपालजी की कक्षा में बैठे और आज उनसे कई गुणा सूक्ष्म चिंतन आपका बना है। इतनी सूक्ष्म चर्चायें करणानुयोग की - षट्खण्डागम की, गोम्मटसारजी, लब्धिसार की, जीवकाण्ड की, कर्मकाण्ड की और उनकी इतनी टीकायें और उनका इतना विस्तार ! एक-एक समय के परिणामों का इतना अच्छा खुलासा और इतनी अच्छी रचनायें आज समाज के सामने उपलब्ध हैं। कुन्दकुन्द कहान ट्रस्ट इस मंच से उनका स्वागत और अभिनंदन करते हुये गौरव अनुभव करता है। पूरे मुमुक्षु समाज की तरफ से आपका यह अभिनंदन हम यहां कर रहे हैं।

मैं अपने अध्यक्ष महोदय से निवेदन करना चाहूंगा कि आदरणीय दिनेशभाई और डॉ. उज्ज्वलाजी के लिये इस ट्रस्ट द्वारा जो अभिनंदन पत्र तैयार किया गया है - उसके लिये ट्रस्टी श्री वीनूभाई शाह आवे और यहां इसका वांचन करें।

— श्री महीपालजी ज्ञायक, बांसवाड़ा

मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमो गणी ।
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो, जैनधर्मोऽस्तु मंगलम् ॥

अध्यात्म रसिक, श्रुतसेवी, समर्पित शासन प्रभावक

पण्डित श्री दिनेशभाई शहा

एवं

श्रीमती डॉ. उज्ज्वलाजी शहा

के करकमलों में सादर समर्पित

अभिनन्दन-पत्र

स्नेही साधर्मी साधक,

आध्यात्मिक सत्पुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के सातिशय प्रभावनायोग में उनके द्वारा प्रतिपादित अध्यात्म रहस्यों की सौरभ से सुरभित होकर, व्यवसाय से निवृत्त होकर आपने जीवन के ५० वर्ष आध्यात्मिक गतिविधियों के माध्यम से शासन प्रभावना में समर्पित किये हैं । एतार्थ आप अभिनन्दनीय हैं ।

पण्डित श्री दिनेशभाई शहा – आपने स्वयं जैन सिद्धान्त प्रवेशिका जैसे प्रारम्भिक ग्रन्थ को रोचक शैली में समझाकर सैंकड़ों भव्यजीवों को तत्त्वरुचि में निमित्त बनकर शासन प्रभावना में अपूर्व योगदान किया है; आपका यह समर्पण अनुकरणीय है ।

आपकी धर्मपत्नी **डॉ. उज्ज्वलाजी** को साहित्य साधना एवं प्रभावना में महत्वपूर्ण सहयोग करके आप उत्तम उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं ।

डॉ. उज्ज्वलाजी को मानो सरस्वती का वरदान है । अध्यात्मप्रेमियों को दुरुह लगने वाले करणानुयोग के अनेक विषयों को आधुनिक तकनीक के माध्यम से सरल एवं रोचक शैली में पढ़ाकर एवं अनेक पुस्तकों की रचना करके आपने जिनागम की अपूर्व सेवा की है जो निश्चित ही निकट भविष्य में कैवल्य के रूप में प्रस्फुटित होगी; अतः आपकी साधना प्रसंशनीय है ।

आयु के आठ दशक पार करके भी आप नौजवानों को भी शर्मिन्दा करने वाली ऊर्जा एवं शिविरो में छ छ घंटे करके श्रमपूर्वक जिनागम सेवा में समर्पित हैं; एतदर्थ आप दोनों सम्पूर्ण दिगम्बर जैन समाज के आदर्श हैं ।

आपके प्रत्येक विषय पर हजारों कैसेट, सीडी डीवीडी, पेन ड्राइव घर-घर सुने जाते हैं। एवं आपके द्वारा इसी तरह धर्मप्रभावना होती रहे ऐसी शुभेच्छा रखते हैं। हमारा ट्रस्ट आपका अभिनन्दन कर गौरवान्वित है।

श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु समाज की ओर से

श्री कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट, मुम्बई

मुम्बई,

वसंतलाल एम. दोशी

महीपाल जैन ज्ञायक

दिनांक: २९ सितम्बर, २०२४

अध्यक्ष

महामंत्री

- विषय सूची -

१. कर्मबंध-प्रकार.....	१
२. स्थिति, अनुभाग रचना.....	२६
३. उदय, सत्त्व, उदीरणा.....	४९
४. अपकर्षण, उत्कर्षण, संक्रमण आदि.....	७४
५. भूमिका - स्थितिकांडकघात, अपकृष्टि विधान.....	९७
६. भूमिका - कांडकघात संबंधी संज्ञायें.....	११९
७. प्रथमोपशम सम्यक्त्व की पात्रता.....	१४०
८. क्षयोपशमलब्धि, विशुद्धिलब्धि.....	१६२
९. देशना और देशनालब्धि.....	१८४
१०. प्रायोग्यलब्धि - स्थितिकांडकघात, अनुभागकांडकघात.....	२०६
११. प्रायोग्यलब्धि - स्थितिबंधापसरण, प्रकृतिबंधापसरण.....	२२८
१२. प्रायोग्यलब्धि - प्रकृतिबंधापसरण, बंध, उदय.....	२५०
१३. प्रायोग्यलब्धि - उदय और सत्त्व.....	२७२
१४. करणलब्धि.....	२९३
१५. गुणश्रेणी रचना.....	३१५
१६. अपूर्वकरण.....	३३५
१७. अनिवृत्तिकरण - अंतरकरण.....	३५६
१८. उपशमकरण, प्रथमोपशम सम्यक्त्व.....	३७७
१९. प्रथमोपशम सम्यक्त्व - गुणसंक्रमण.....	३९८
२०. सासादन; उपशम सम्यक्त्व के पश्चात्.....	४१९
२१. अंतरपूरन.....	४४१
२२. सम्यक्त्व के भेद - प्रश्नोत्तर.....	४६१
२३. अनंतानुबंधी की विसंयोजना.....	४८३
२४. दर्शनमोहनीय की क्षपणा.....	५०३
२५. गुणित कर्मांशिक, क्षपित कर्मांशिक, कृतकृत्यवेदक.....	५२३
२६. दर्शनमोहनीय की क्षपणा - पुनरावलोकन.....	५४२
२७. सम्यक् प्रकृति का अंतिम कांडकघात.....	५६३
२८. क्षायिक सम्यक्त्व-अल्पबहुत्व; चारित्रलब्धि.....	५८३
२९. देशसंयत के स्थान.....	६०३

१. कर्मबंध-प्रकार

ॐ नमः सिद्धेभ्यः, ॐ नमः सिद्धेभ्यः, ॐ नमः सिद्धेभ्यः।

॥ ॐ शुद्धात्मने नमः ॥

॥ मंगलाचरण ॥

सम्यकदर्शनचरनगुन पाय कुकर्म खिपाय।
 केवलज्ञान उपाय प्रभु भये भजौं शिवराय ॥ १ ॥
 जिनवानी के ज्ञान तैं होत तत्त्व श्रद्धान।
 चरण धारि केवल लहै पावै पद निरवान ॥ २ ॥
 नेमिचन्द्र आल्हादकर माधवचन्द्र प्रधान।
 नमौ जास उज्जास तैं जाने निजगुन थान ॥ ३ ॥
 लब्धिसार कौं पाय कै करि कै क्षपणासार।
 हो है प्रवचनसार सों समयसार अविकार ॥ ४ ॥
 सिद्धे जिणिंदचंदे आयरिय उवज्झाय साहुगणे।
 वंदिय सम्महंसण-चरित्तलद्धिं परूवेमो ॥ १ ॥

आचार्य श्री नेमिचन्द्र सिद्धांतचक्रवर्ती ने इस लब्धिसार ग्रंथ की रचना की है। उसके आधार से बहुत सारी संस्कृत, कन्नड़ आदि टीकायें भी हुयी हैं और उन टीकाओं के आधार से पं. टोडरमलजी ने द्रुढ़ारी भाषा में भाषाटीका ग्रंथ लिखा है जिसका नाम है सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका लब्धिसार-क्षपणासार। उसके पहले उन्होंने जीवकाण्ड, कर्मकाण्ड के ऊपर भी सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका जीवकाण्ड, सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका कर्मकाण्ड और उनकी अपनी-अपनी अर्थसंदष्टि यानी उनके गणित के प्रकरण बहुत विस्तार से लिखे हैं। अपने यहां उन दोनों ही ग्रंथों पर दो-दो शिबिर हो गये हैं। लब्धिसार का यह प्रथम शिबिर है यहां पर। कोई नये लोग भी आये हैं। उन्होंने पहले कुछ नहीं पढ़ा है फिर भी उन्हें ऐसा डर या शंका बिलकुल नहीं रखनी है मन में कि मैं कुछ नहीं समझूंगा।

पहली बार जब हमने सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका लब्धिसार-क्षपणासार ढूंढारी भाषा में पढ़ा था, हमने दोनों ने पढ़ा था घर में। पूरी पुस्तक पढ़ी तब भी उसमें से एक लाइन भी नहीं समझी थी। तो किसीको कुछ ख्याल में नहीं आया, ज्ञान में नहीं आया तो घबराने की कोई जरूरत नहीं है। बार-बार हम पढ़ते हैं, उन शब्दों से हम परिचित हो जाते हैं तो उनका अर्थ भी सहीरूप से ख्याल में आने लगता है। यह कोई बहुत कठिन बात नहीं है। आजकल के लोग सब पढ़े लिखे हैं, कॉम्प्यूटर जाननेवाले लोग हैं, उनके लिये कुछ डिफिकल्ट नहीं है। हम शुरू से कर्म के बारे में जो कुछ पारिभाषिक शब्द आते हैं उनको समझते हुये आगे बढ़ेंगे।

हम सब जीव हैं, प्रत्येक जीव अनादि से ही कर्मों के साथ बंधा हुआ है। ऐसा नहीं है कि पहले जीव प्युअर था, शुद्ध था और बाद में उसके साथ कर्म आकर मिले हों। जीव अनादि से कर्म बंधन के साथ ही पाया जाता है। हां, इसमें से वह शुद्ध होकर कर्मों से रहित अवस्था यानी मुक्त दशा प्राप्त करता है। परंतु अनादि से, अनादि का अर्थ जिसकी कोई शुरुआत नहीं है - नो बिगिनिंग। अनादिकाल पहले तो हुआ होगा न ? यह सवाल ही नहीं हो सकता क्योंकि अनादि से जब कहते हैं; अनादि का ही अर्थ जिसकी कोई आदि नहीं है वह अनादि है। अनादि से ही जीव और कर्म बंधी हुयी अवस्था में पाये जाते हैं। बंधी हुयी अवस्था है तो उन कर्मों का उदय भी होगा; अब यह बंध क्या है ? उदय क्या है ? सत्ता क्या है ? उसको भी देखेंगे हम।

यह जीव में जो बंध पड़ा है, कर्म पड़े हैं उनका अपना-अपना उदय भी होता है यानी कि वे कर्म छोड़कर चले भी जाते हैं। जैसे बंधते हैं वैसे छूटकर चले भी जाते हैं। जब उनका छूटकर चले जाने का टाइम आता है उसको कहेंगे कर्मों का उदय हुआ। जब बंधे पड़े हैं तब जीव का कर्मों के साथ कोई भी निमित्त-नैमित्तिक संबंध नहीं बनता है यानी उनका फल नहीं मिलता। यहां करणानुयोग में हम उसका फल यह हुआ, कर्म के कारण यह हुआ, जीव ने कर्म को बांधा, उपशमाया ऐसी बात जरूर करेंगे। कथन तो हम यहां निमित्त से कर रहे हैं परंतु यह बात ख्याल में रखना - बारंबार स्वयं याद करना कि जीव अपनी अवस्था को स्वयं करता है। कर्म पुद्गल है। वह भी अपनी अवस्थारूप स्वयं परिणमित होता है। ना जीव कर्म को परिणमाता है, ना कर्म जीव को

परिणमाता है। दो भिन्न-भिन्न द्रव्य हैं, स्वतंत्र द्रव्य हैं। उनका आपस में कोई भी कर्ता-कर्म संबंध है ही नहीं।

फिर भी करणानुयोग के जो सारे ग्रंथ हैं वहां निमित्त की भाषा में समझाया जाता है। जहां कार्य होता है वहां निमित्त भी होता है, पाया जाता है, उसकी उपस्थिति होती है। निमित्त कार्य में कोई पार्ट नहीं लेता, उसमें कोई भाग नहीं लेता फिर भी उसकी उपस्थिति होती है तो उसको बताया जाता है। परंतु कर्म के कारण हम रखड़े हैं, कर्म ने हमको बहुत दुःख दिया है ऐसे आम तौर पर सभी जगह बोलते हैं न ! कर्म को कभी देखा तो है ही नहीं, सुन रखा है। सुन रखा है कि कर्म होते हैं और बहुत कुछ तकलीफ देते हैं। हमें तकलीफ होती है उसका कोई कारण नजर नहीं आता तो हम कर्म पर थोप देते हैं। अन्यमति कहते हैं, ईश्वर ने किया हुआ है, वह हमारी परीक्षा देख रहा है और हम क्या करते हैं ? *श्रोता: कर्म*। हम कर्म पर डाल देते हैं कि कर्म हमको दुःखी कर रहा है। कर्मों को कितनी अक्ल है कि दूसरे को दुःखी करे ? वह तो जड़ है। ख्याल में आयी बात ?

यहां करणानुयोग का मैंने इसलिये नाम लिया है कि जो चार अनुयोग हैं; मालूम है चार अनुयोग कौनसे होते हैं बेटा ? चार अनुयोग के नाम मालूम हैं ? हां बोलो ! बैठकर-बैठकर, यहां कोई स्कूल की क्लास नहीं है। *श्रोता: प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग*। हां देखिये, तीर्थकरों की दिव्यध्वनि में चारों ही अनुयोगों का कथन आता है। प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग। द्रव्यानुयोग में सिद्धांत बताये जाते हैं कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ नहीं करता, प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र है। हम द्रव्यानुयोग के तो बहुत अभ्यासी हैं ही हैं। प्रथमानुयोग में तीर्थकर आदि महापुरुषों की कथायें होती हैं। उसमें पुण्य-पाप के फलों का वर्णन होता है। इस संसार में कहो या इस लौकिक जीवन में कोई सुख नहीं है - इसको त्यागकर मुनि अवस्था धारण करके जीव मोक्ष कैसे जाता है उसका वर्णन आता है। चरणानुयोग में मुख्यतः आचरण की बात आती है। आचरण की मुख्यता है फिर भी उसके पीछे का कारण है वह करणानुयोग के द्वारा ख्याल में आता है। क्योंकि कहां कितने जीव रहते हैं ? कौनसी जातिवाले जीव रहते हैं ? कितनी संख्या में रहते हैं ? जहां अनंत जीव

रहते हैं उनकी हत्या हमसे नहीं हो इसलिये सावधानीपूर्वक आचरण किया जाता है वे सारी बातें चरणानुयोग में बताते हैं।

चारों ही अनुयोगों में मूल उपदेश सम्यग्दर्शन का ही है। अब यहां करणानुयोग में भी मूल उपदेश सम्यग्दर्शन का ही है। यहां बातें तो करण की यानी; करण के बहुत अर्थ होते हैं। कोई अर्थ मालूम है आपको ? करण शब्द के अर्थ ? श्रोता: साधन/साधन और ? श्रोता: परिणाम/परिणाम, एक अर्थ है इन्द्रिय और ? श्रोता: भाव/भाव यानी परिणाम हो गया न। श्रोता: अंतःकरण/अंतःकरण यानी मन। श्रोता: गणित/गणित के जो सूत्र हैं उनको भी करण कहते हैं और करण यानी वह सुननेवाला कर्ण, वह नहीं। तो यह करणानुयोग की भाषा निमित्त की भाषा होती है। चारों ही अनुयोगों के द्वारा हमें वीतरागता प्राप्त करनी है। यहां भी लब्धिसार ग्रंथ में सबसे पहले लब्धि यानी प्राप्ति की बात की है।

हम कहते हैं न कि क्या लाभ हुआ ? हम कौनसा एज्युकेशन लेंगे तो बड़ा लाभ होगा ? कौनसा धंधा करेंगे, व्यापार करेंगे तो उसमें अधिक लाभ होगा ? यहां हम लाभ की सोचते हैं तो लौकिक में सारा लाभ पैसे में ही गिना जाता है। वास्तविक सच्चा लाभ क्या है ? जीव को सुख की प्राप्ति हो वही उसका लाभ है। यह सुख की प्राप्ति जीव की ही अपनी अवस्था में होती है, उसका नाम है मोक्ष अवस्था और वह प्राप्ति होने का मार्ग क्या है ? तो कहते हैं सम्यग्दर्शन और सम्यक् चारित्र अर्थात् दर्शनलब्धि और चारित्रलब्धि। सम्यग्ज्ञान तो उसके साथ-साथ है ही है। परंतु दर्शनलब्धि कहते हैं और चारित्रलब्धि कहते हैं तो इन लब्धियों का इस पुस्तक में, इस ग्रंथ में वर्णन है कि सच्चा लाभ क्या है ? सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होना और उसके आगे चलकर सम्यक् चारित्र की यानी अंतरंग में स्थिरता बढ़ना यही प्राप्ति है, यही लाभ है और इसी के द्वारा मोक्ष की प्राप्ति होनेवाली है। हर एक जीव को करने लायक एकमात्र यही कार्य है। क्योंकि हम तो बहुत सारे कार्य करने के पीछे व्यस्त रहते हैं। परंतु करने जैसा एकमात्र यही कार्य है। यही एक कार्य है जो हम कर सकते हैं और करना ही चाहिये।

अब यहां हम कुछ बातें पढ़ेंगे कर्म के बारे में। एक बात हमने देखी कि जीव

अनादि से ही कर्म के साथ बंधा हुआ है जैसे स्वर्णपाषाण होता है। सोना जो खदान में मिलता है, वह मिट्टी के साथ मिला हुआ होता है वह पाषाण के रूप में मिलता है और उस पर प्रोसेस करके फिर उसमें से शुद्ध सोना भिन्न किया जाता है। ऐसे ही यहां पर जो जीव हैं और कर्म हैं वे अनादि से बंधी हुयी अवस्था में पाये जाते हैं। इसको करनेवाला कोई अन्य तो है ही नहीं। परंतु जिनेन्द्र भगवान का जो उपदेश हमें मिलता है, डायरेक्ट तीर्थकरों से, आचार्यों से या अन्य ज्ञानियों से; उसके द्वारा उन तत्त्वों पर हम विचार करते हैं तो हमें स्वयं अपना अनुभव होता है। सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है और आगे चलकर आत्मा में स्थिरता बढ़ती है - चारित्र की प्राप्ति होती है और मोक्ष की प्राप्ति होती है।

यहां कर्मों में क्या-क्या अवस्थाएँ बनती हैं और जीव के परिणामों में क्या-क्या होता है ? इन सबका वर्णन यहां चलेगा। हम सिद्धक्षेत्रों की वंदना तो करते हैं। यहां तो सब लोग कहीं न कहीं सिद्धक्षेत्र में जाकर ही आये हैं। शिखरजी गये होंगे, यहां पर गजपंथा गये होंगे; क्यों जाते हैं वहां पर ? *श्रोता: वहां याद आती है...* वहां जाकर याद आती है कि यहां से इतने जीव सिद्ध हुये हैं। वहां से सिद्ध हुये परंतु केवल वहां माथा टेकने से थोड़े ही कुछ होगा ? हम यहां यही बातें देखने जा रहे हैं कि किस प्रकार से सिद्ध होते हैं। उन्हें सम्यग्दर्शन हुआ तो उनमें क्या हुआ ? जीव में क्या हुआ ? कर्मों में क्या हुआ ? जब हम कहेंगे कि कर्म का नाश करते हैं तो किस पद्धति से करते हैं, कितने कर्म हैं इसका हमें कोई अंदाजा नहीं है। फिर भी हम कहते रहते हैं कि नहीं-नहीं बाबा, हमें कर्म का नाश करना चाहिये। पहले में पहले यह नक्की करो कि वास्तव में हम कर्मों को छू भी नहीं सकते, उनका नाश करने की बात तो दूर रही। हम अपने में रहते हैं तो कर्म का नाश अपने आप होता है। परंतु वह किस विधि से होता है ? वह सब हम बिलकुल विस्तार से यहां सीखेंगे और वह बहुत इंटरेस्टिंग सब्जेक्ट है। क्योंकि जीव में और कर्मों में क्या-क्या बातें होती हैं हमें तो कुछ पता ही नहीं है। यह जीव दुनिया की तो खबरें बहुत रखता है परंतु अपने से बेखबर है, हां !

पहले में पहले यह कर्म जो है उसमें एक अवस्था बतायी जाती है कि बंध होता है। तो कर्म का बंध होता है यानी क्या होता है ? यह कर्म जो है वह किससे बना है ?

कोई कहेंगे ? श्रोता: कार्माणवर्गणा से। हां, कार्माणवर्गणा से। कार्माणवर्गणा यह पुद्गल परमाणुओं की एक वर्गणा का नाम है। यानी अनंतानंत पुद्गल परमाणुओं का समूह है उसको हम कार्माणवर्गणा कहते हैं। यह कार्माणवर्गणा जीव ग्रहण करता है। तो क्यों ग्रहण करता है ? सिद्ध भगवान तो कुछ ग्रहण नहीं करते हैं और हम-आप ही क्यों ग्रहण कर रहे हैं ? श्रोता: राग-द्वेष करते हैं। हां ! राग-द्वेष करते हैं, तो हम ही क्यों करते हैं ? वे क्यों नहीं करते ? श्रोता: वीतरागी हैं। हा ! वे वीतराग हैं। परंतु वे क्यों वीतराग हैं ? हमें अभी निमित्तरूप से बात करनी है - हमारे पुराने कर्मों का मोहनीय का उदय होता है और हम रागरूप परिणमते हैं तो हमें नया बंध भी होता है, राग-द्वेष भी होते हैं। सिद्धों के कोई कर्म बाकी नहीं हैं। उनके कर्म का उदय आने का सवाल नहीं है और वहां नया मिथ्यात्व, मोह-राग-द्वेष वगैरह कुछ होने का भी सवाल नहीं है। वे अनंत-अनंत-अनंतकाल तक ऐसे ही शुद्धरूप से परिणमित होंगे, अनंत सुखरूप से कायम रहेंगे।

हमें भी वह अवस्था प्राप्त करनी है। परंतु वह किस विधि से होगी ? उसको हम देखेंगे। अभी हमने देखा कर्म का बंध होता है यानी क्या होता है ? जीव के मोह-रागद्वेषरूप परिणाम होते हैं और उनके निमित्त से सहजरूप से; जहां जीव विद्यमान है, उसी क्षेत्र में अनंतानंत कार्माणवर्गणायें खचाखच पड़ी हैं; उनमें से कुछ कर्मरूप परिणमित होती हैं। कौनसी होंगी ? जो होनेयोग्य हैं, वे ही होंगी। उसका हिसाब हमने कर्मकाण्ड में देखा था। अभी हम इतना ही कहेंगे कि जीव के प्रदेशों में जैसे उस जीव के शरीर के परमाणु स्थित हैं, वैसे कर्म भी कहां रहते हैं ? तो जीव के इन्हीं प्रदेशों में रहते हैं। वहां की कार्माणवर्गणायें कर्मरूप परिणमित होती हैं तो उसको हम कहेंगे बंध होता है। क्या कहा ? कार्माणवर्गणा कर्मरूप परिणमित होती हैं। क्यों होती हैं ? अभी हम उसमें निमित्त कहेंगे कि जीव के मोह-रागद्वेष के निमित्त से कार्माणवर्गणा कर्मरूप होती हैं उसको हम बंध कहेंगे।

बंध होने के बाद क्या होता है ? वे कर्म जीव के साथ सत्ता में पड़े रहते हैं - उसको कहेंगे सत्त्व। बंधने के बाद कर्म परमाणु जीव के साथ सत्ता में पड़े रहते हैं। कब तक पड़े रहेंगे ? यह विषय हम आगे बतायेंगे। तो उसको कहेंगे सत्त्व या सत्ता।

सत्ता कहो या सत्त्व कहो एक ही बात है। यानी बंधने के बाद कर्म का सत्त्व पड़ा रहेगा। हम क्या सोचते हैं ? थोड़ा पाप बंधा, थोड़ा पुण्य बंधा तो वे एक दूसरे में कॅन्सल हो जायेंगे - परंतु ऐसा नहीं होता है। जो पाप भी बंधा है, पुण्य भी बंधा है वह सब संचित होता चला जाता है। वह कैसे-कैसे उदय में आता है, उसका सायन्स हम बाद में देखेंगे। यह कर्म बंधा, फिर वह सत्ता में पड़ा है। जब बंधता है तो निश्चित समय तक वह जीव के साथ में पड़ा रहता है उसको कहेंगे कर्म की स्थिति; कितनी स्थिति बांधी। जब बंध हुआ तो कितने समय तक वह कर्म पड़ा रहेगा ? वह अधिक से अधिक कितने समय तक पड़ा रहेगा उसको हम कहेंगे कर्म की स्थिति। इतना स्थितिबंध हुआ यानी उतने काल तक वह कर्म जीव के साथ सत्ता में पड़ा रहेगा। परंतु एक लॉट जो अनंत कर्म परमाणुओं का बांधा है वह एक साथ में कभी भी उदय में नहीं आता। वह किसरूप से उदय में आता है ? उसकी बात करेंगे अभी। जैसे विषय आता है वैसे हम उसकी बात करेंगे।

कर्म जीव के साथ सत्ता में पड़ा रहता है, बाद में उदय में आकर वह कर्म भी अकर्मरूप होता है। पुद्गल की जो अन्य अवस्थायें हैं उनरूप परिणमित होता है तब हम उसको कहेंगे उसका उदय हुआ। हमने देखा कर्म का बंध होता है, फिर वह सत्ता में पड़ा रहता है और जब उसका काल पूरा होता है, स्थिति पूरी होती है तो वह अकर्मरूप होता है और उसी समय उसका फल मिलता है। यानी उस जीव के साथ उसका निमित्तपना बनता है इसको हम कहेंगे उदय। हमने अभी तीन शब्द सुने - बंध, सत्ता और उदय।

कर्मबंध

१) प्रकृतिबंध	}	योग के कारण (योग = आत्मप्रदेशों का कंपन)
२) प्रदेशबंध		
३) स्थितिबंध	}	कषाय के कारण (कषाय = मिथ्यात्व, राग-द्वेष)
४) अनुभागबंध		

अब हम बंध के चार प्रकार देखते हैं, यहां बोर्ड पर लिखे हैं। कर्म का जो बंध

होता है उसमें क्या-क्या लिखा है देखो वहां ? प्रकृतिबंध। आप रिपीट करना मेरे पीछे। क्योंकि ये नये नाम हैं न अपने लिये। प्रकृतिबंध। श्रोता: प्रकृतिबंध। प्रदेशबंध। श्रोता: प्रदेशबंध। स्थितिबंध। श्रोता: स्थितिबंध। और अनुभागबंध। श्रोता: अनुभागबंध। बंध तो एक ही समय में हुआ है। उसका चार पद्धति से अलग-अलग अपेक्षाओं से यह वर्णन चल रहा है।

प्रकृतिबंध का अर्थ होता है जितने अनंत कर्म परमाणु बंधे हैं वे आठ प्रकृतिरूप से विभाजित हो जाते हैं। प्रकृति यानी स्वभाव। हर एक कर्म का, हर एक प्रकृति का अपना-अपना स्वभाव है। मालूम है आठ कर्म कौन-कौनसे हैं ? हां, बोलो-बोलो ! श्रोता: ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, अंतराय, वेदनीय, आयु, नाम, गोत्र। हां, देखो-देखो, हम उसको दो भागों में विभाजित करेंगे। एक घातिकर्म और एक अघातिकर्म। घातिकर्मों में हैं ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अंतराय और अघातिकर्मों में वेदनीय, आयु, नाम, गोत्र। फिर से - ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अंतराय ये घातिकर्म हुये और अघातिकर्म कौनसे हैं ? श्रोता: वेदनीय, आयु, नाम, गोत्र। वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र।

इनको घाति क्यों कहते हैं ? श्रोता: स्वभाव का घात करते हैं। स्वभाव का घात करते हैं तो स्वभाव नष्ट हो जायेगा ? श्रोता: नहीं। श्रोता: यह तो अपने स्वभाव का घात करता है। देखो, स्वभाव का घात हो जायेगा क्या ? उसको हम स्वभाव ही नहीं कहेंगे। पहले हम नक्की करेंगे कि स्वभाव किसको कहते हैं। स्वभाव किसको कहना ? जो अनादि से होता है। स्वभाव तो अनादिअनंत रहता है। किसी भी द्रव्य का अपना स्वभाव है वह अनादि से है, अनंतकाल तक रहता है। स्वयंसिद्ध है, स्वयंभू नहीं कहा। स्वयंभू का अर्थ है कभी तो उत्पन्न हुआ। स्वभाव उत्पन्न नहीं हुआ, वह है ही। बस है, है, है। तीन बार कहते थे न गुरुदेवश्री ? छे, छे, छे। स्वभाव कैसा होता है ? एकसदृश परिणाम होता है। स्वभाव में कभी घट-बढ़ नहीं होती है। वह अनादिअनंत होता है, स्वयंसिद्ध होता है, एकसदृश होता है और लिमिटलेस होता है - अपरिमित होता है। उसमें कोई मर्यादा नहीं, अमर्यादित होता है। स्वभाव में कोई मर्यादा नहीं होती। श्रोता: सदृश यानी क्या ? सदृश यानी एक सरीखा, एकसा। जैसे पर्याय में कम ज्यादा होता है

वैसे स्वभाव में नहीं होता। तो स्वभाव का घात होता ही नहीं है, एक बात।

तो किसका घात होता है ? द्रव्य का घात होता है ? गुणों का घात होता है ? कि पर्याय का घात होता है ? *श्रोता: द्रव्य का नहीं हो सकता।* द्रव्य का नहीं हो सकता। तो ? *श्रोता: पर्याय का होगा।* पर्याय का होगा ? तो पर्याय बिना का द्रव्य है ? *श्रोता: प्रगट नहीं है।* हां, जैसा स्वभाव है वैसा पर्याय में प्रगट नहीं होना। यह जीव के अपने कारण से होता है और वहां आरोप किस पर आता है ? कर्म पर। क्योंकि जीव जब अपनी स्वयं की योग्यता से स्वयं हीन ज्ञानरूप से परिणमता है, तब वहां कर्म मौजूद है। तो हम उस पर आरोप करते हैं कि कर्म के कारण जीव के ज्ञान की हीनता हुयी। यह सारा आरोपित यानी निमित्त का कथन है और उसको निमित्तरूप से समझना है। हम बोलेंगे, कोई बात नहीं, कथन निमित्त से होता है परंतु हमें अभिप्राय में लेना है कि निमित्त से कार्य नहीं होता है। ज्ञान में, अभिप्राय में बराबर उसका स्वीकार करना है।

अभी हमने देखा है कि प्रकृतिबंध का अर्थ क्या है ? कि जो अनंत परमाणु बंधे उनमें से आठ कर्मरूप उनका विभाजन हो जाता है। ज्ञानावरणादि जो हमने अभी नाम देखे हैं, इन आठ कर्मरूप से उनका विभाजन हो जाता है इसको कहेंगे प्रकृतिबंध। हर समय में सात कर्मों का बंध तो होता ही होता है और आयुकर्म का बंध कभी-कभी होता है। *श्रोता: एक टाइम।* एक टाइम नहीं, आयु एक बार ही नहीं, आठ बार भी बंध सकती है। परंतु उसके नियम अलग हैं। उसकी बात बाद में करेंगे। यह प्रकृतिबंध हुआ।

प्रदेशबंध किसको कहेंगे ? कितने नंबर ऑफ परमाणु बंधेंगे ? कितनी संख्या में परमाणु बंधते हैं ? उसको कहेंगे प्रदेशबंध। प्रदेश का अर्थ आत्मप्रदेशों के साथ बंधना ऐसा नहीं है। प्रदेश परमाणु को कहते हैं। एक समय में कितने परमाणु बंधते हैं उसको हम कहेंगे एक समयप्रबद्ध। प्रबद्ध - बंधा हुआ। कितने बंधते हैं ? अनंत बंधते हैं। उसका नाम क्या है ? समयप्रबद्ध। समयप्रबद्ध भी हीनाधिक होते हैं। अनंतों में भी जघन्य से उत्कृष्ट भेद होते हैं। ये क्यों बंधते हैं और कितने बंधते हैं उसको भी हम देखेंगे। तो कहते हैं अनंतानंत बंधते हैं। कितने अनंत मालूम है ? देखो, हमने अभी

देखा न कार्माणवर्गणा बंधती हैं। एक समय में अनंत कार्माणवर्गणा बंधती हैं और एक-एक वर्गणा में अनंत परमाणु होते हैं। फिर से, एक समय में अनंत कार्माणवर्गणा का बंध होता है यानी वे कर्मरूप होती हैं। वे कितनी अनंत हैं ? आप बहन कह रही हैं कि सिद्धराशि के अनंतवें भाग और जो अभव्य जीवों की संख्या है उससे अनंतगुणा ऐसा जो पटिक्कुलर अनंत है उतने अनंत परमाणुओं की एक कार्माणवर्गणा होती है और उतनी ही अनंत कार्माणवर्गणा एक समय में जीव बांधता है। हर समय में इतनी, ऐसा ही चल रहा है। कब से ? *श्रोता: अनादि से।* अनादि से चल रहा है और उनमें से जिनकी-जिनकी स्थिति पूरी हुयी है उतने एक समयप्रबद्ध प्रमाण परमाणु निकल भी जाते हैं। यानी बंध कितने का हो रहा है ? एक समयप्रबद्ध का और निकल कितना रहा है ? एक समयप्रबद्ध और स्टॉक में कितना रहता है ? *श्रोता: डेढ़ गुणहानि गुणित।* डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध यानी उसका अर्थ है असंख्यात समयप्रबद्ध जितने। उसका प्रमाण बहुत बड़ा है। अब डेढ़ गुणहानि कहेंगे तो किसीको कुछ समझेगा नहीं, आपको तो मालूम है। यानी अनेक समयप्रबद्ध प्रमाण परमाणु स्टॉक में पड़े रहते हैं।

जैसे हमने उदाहरण देखा था न पहले ? एक बड़ी टंकी है उसमें ऊपर से पांच नलों से पानी अंदर आ रहा है और उतने ही साइड के नल नीचे लगे हैं और उनमें से पानी बाहर जा रहा है। यह टंकी पूरी भरी है तो कब खाली होगी ? पानी जितना आ रहा है, उतना ही जा रहा है। टंकी वैसे के वैसे भरी है। हां, पानी नया-नया आता रहेगा और पुराने में से कुछ चला जायेगा। परंतु वह तो हमेशा ही उतना भरा हुआ रहेगा। हमारी भी यही स्थिति अनादि से हो रही है - कभी एकेन्द्रिय में गये, कभी देव हुये, कभी नारकी हुये, कभी तिर्यच, कभी मनुष्य भी हुये, द्रव्यलिंगी मुनि भी हुये। फिर भी क्या हुआ ? *श्रोता: वही का वही।* वही का वही। अनंत परमाणु यानी एक समयप्रबद्ध ग्रहण किया और उतने ही छोड़े। कभी पुण्य बांधा, कभी पाप बांधा परंतु बंध तो होता ही रहा। उसमें हमें फायदा कुछ नहीं हुआ क्योंकि जब तक मिथ्यात्व है, तब तक कोई भी प्रकृति बंधने से नहीं रुकी है। कभी पुण्य बांधा, कभी पाप बांधा इतना ही फर्क है और ऐसा कोई पुण्य बांधनेवाला कायम के लिये पुण्य बांधता ही नहीं है। अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्त में पाप-पुण्य, संक्लेश-विशुद्धि के परिणाम चेंज होते ही रहते हैं। बिलकुल

एक अंतर्मुहूर्त से अधिक वे रहते ही नहीं हैं। इससे जीव का कुछ भी फायदा नहीं हुआ। हम भी जो सोचते हैं कि कुछ पुण्य करेंगे तो हम जल्दी मोक्ष जायेंगे तो ऐसा बिलकुल नहीं है। इसलिये पुण्य छोड़ने का उपदेश नहीं है। बराबर सुन लेना - यह अभिप्राय में लेने की बात है।

अब हमने देखा प्रकृतिबंध और प्रदेशबंध। प्रदेशबंध में हम देखेंगे कि कितने नंबर ऑफ़ परमाणु बंधते हैं। तो हमें-आपको प्रदेशबंध ज्यादा है कि अरिहंत भगवान को ज्यादा है ? *श्रोता: अरिहंत भगवान को ज्यादा है।* अरिहंत को, क्यों ? *श्रोता: आस्रव ज्यादा है।* आस्रव ज्यादा है ! अरे उनको तो एकमात्र योग है बस और हमें-आपको कितना आस्रव है ? देखो, बंध के कारण क्या हैं ? मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग। यह जो योग है न, उससे प्रकृतिबंध और प्रदेशबंध होता है और कषाय में ये चारों को ले लेना - मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद और कषाय को मिलकर कषाय कहा है। कषाय अंत में जाता है इसलिये सबको कषाय में गर्भित किया है। इन पांचों को हम दो में डिक्लाइड करेंगे - एक कषाय और एक योग। योग के कारण प्रकृतिबंध और प्रदेशबंध होता है और इन चारों के कारण यानी कषाय के कारण; कषाय यानी अकेला कषाय मत समझना, नहीं तो मिथ्यात्व से बंध ही नहीं होता मानना पड़ेगा - ऐसा नहीं है। मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद और कषाय के कारण क्या होता है ? स्थितिबंध और अनुभागबंध होता है। यह बिलकुल यहां लिखा भी है कि प्रकृतिबंध और प्रदेशबंध योग के कारण होता है और स्थितिबंध और अनुभागबंध कषाय के कारण होता है।

अब योग किसको कहना और कषाय किसको कहना उसकी भी बात देखेंगे। पहले स्थितिबंध को देखते हैं। जब एक समय में इतने अनंत परमाणु जीव ग्रहण करता है तब उनकी; हमारी भाषा में उनकी रचना होती है। रचना होती है यानी कर्म के परमाणु जीव के पैर से लेकर सिर तक ऐसे कुछ उनकी लाइन या रेखायें या निषेक नहीं बनते हैं। वह कथन करने की पद्धति है कि किसीकी स्थिति कम बंधी है, किसीकी अधिक बंधी है। अनंत परमाणुओं में असंख्यात व्हेरिएशन्स होते हैं। हम देखते हैं कि बंध होता है तो क्या होता है ? मैं आपको पाटी पर-स्लेट पर बताऊंगी कि यह यहां इस समय बंध हुआ। तो यहां से लेकर कुछ काल तक तो कुछ निषेक ही नहीं

हैं; निषेक का अर्थ होता है परमाणुओं का एक लॉट; जिनकी स्थिति समान है ऐसे परमाणुओं के गठे को, समूह को हम निषेक कहेंगे और उसको ऐसा आड़ा बतायेंगे। यह एक निषेक हुआ। बंध समय से लेकर यहां पहले निषेक तक, इसको कहेंगे आबाधाकाल। आबाधाकाल में कोई निषेक नहीं बने हैं यानी इतने काल तक यहां कोई निषेक रचना नहीं है। वहां कोई उदय का सवाल नहीं है।

मान लेते हैं किसीने ७० कोड़ाकोड़ी सागर का मिथ्यात्व का बंध किया। सेव्हन झिरो, सत्तर हां, वह गुजरातीवाला नहीं, सेव्हन झिरोवाला। इसके बाद यह पहला निषेक, दूसरा निषेक, तीसरा निषेक, चौथा निषेक इसतरह से ये ७० कोड़ाकोड़ी सागर तक यह निषेक रचना हुयी एक समय में। अनंत परमाणुओं का ग्रहण हुआ। यहां इसको आबाधाकाल कहते हैं और उसके ऊपर है यह उदयकाल है। इसमें से एक-एक निषेक एक-एक समय में उदय में आता जायेगा। कब तक उदय होता रहेगा ? अंतिम निषेक जब खिरेगा तब वह सत्ता में से नष्ट हुआ। कौन ? वह पर्टिक्युलर समयप्रबद्ध। यह जब तक चल रहा है तब तक उसके हर समय नया- नया तो आ ही रहा है और हां, यहां बंध हुआ...

श्रोता: निषेक मतलब क्या ? निषेक का अर्थ होता है समान स्थितिवाले परमाणुओं का एक लॉट। जो कर्म परमाणु बंधे हैं तो इतने सारे बंधे हैं। प्रत्येक निषेक में अनंत परमाणु हैं। यह आबाधाकाल मान लेते हैं यहां ७ हजार वर्ष की आबाधा है। ७ हजार वर्ष और एक समय से लेकर निषेक रचना है। *श्रोता: आबाधाकाल किसे कहते हैं ?* जिस काल में उस समयप्रबद्ध के बंधे हुये एक भी परमाणु की वहां कोई निषेक रचना नहीं हुयी है उसको आबाधाकाल कहते हैं। *श्रोता: मिट्टी के ढेर के समान ?* नहीं, नहीं, नहीं मिट्टी के ढेर के समान वह नहीं है। वह तो सत्ता में पड़े हुये परमाणुओं के लिये कहते हैं। *श्रोता: आबाधाकाल में सत्ता है ?* आबाधाकाल में यहां उस पर्टिक्युलर समयप्रबद्ध के एक भी निषेक की यहां रचना नहीं हुयी है। आबाधाकाल में पूर्व सत्ता के निषेक पड़े हैं। यह नया बंध हुआ उसकी बात चल रही है। अभी जो नया बंधा है उसकी मैं बात कर रही हूं। यहां जो पूर्व सत्ता में जो पड़े रहेंगे वे हैं, बहुत सारे पड़े हैं वहां पर। सत्ता में ऑलरेडि थे और ये अभी इस समय नये बंधे

हैं। नये बंधनेवाले समयप्रबद्ध की हम बात करते हैं। एक समयप्रबद्ध में जितने अनंत परमाणु जीव ने ग्रहण किये उनके हम ऐसे निषेक बनाकर एक ग्राफ बतायेंगे।

श्रोता: आपने जो टेपरिंग किया उसका कोई लॉजिक है ? आपका कहना है हमने ऐसा यह टेपरिंग क्यों दिखाया ? इसका कोई लॉजिक है क्या ? हां, बिलकुल इसका लॉजिक है। नीचे का जो निषेक है - पहला निषेक, उसमें मॅक्झिमम परमाणु हैं। फिर दूसरे निषेक में थोड़े कम हैं, ऊपर थोड़े और कम हैं। यह जो थोड़ा कम यानी जो फिक्स डिफरन्स है इसका भी नाम है। इसको चय कहते हैं, विशेष भी कहते हैं। चय च य, तो एक-एक चय से यानी एक-एक फिक्स डिफरन्स से कम होते-होते ऊपर तक परमाणु कम होते चले जाते हैं। *श्रोता: यह नियम है ?* यह नियम है। जब बंधेगा तो इसी पद्धति से कि जो मिनिमम स्थिति है उसमें मॅक्झिमम परमाणु हैं। *श्रोता: निषेक रचना उसी समय में तैयार हो जाती है ?* उसी समय में तैयार हो जाती है। जिस समय में बंधा है उसी समय में यह निषेक रचना हुयी। जिस समय में बंधा, उस समयप्रबद्ध की यह निषेक रचना है। सत्तावाली निषेक रचना हम अलग दिखायेंगे। सत्ता में भी निषेक हमेशा रहेंगे और ये जो नये बंधनेवाले हैं वे सत्ता में पुराने निषेकों के साथ जाकर मिलेंगे। निषेक का अर्थ क्या है ? परमाणुओं का समूह। जिनकी-जिनकी स्थिति समान है ऐसे परमाणुओं के ग्रुप को हम निषेक कहेंगे।

श्रोता: आबाधाकाल में निषेक हैं ? आबाधाकाल में यहां उस समय में बंधा हुआ निषेक नहीं है, परंतु पूर्व सत्ता के निषेक हैं क्योंकि यहां उदय चल रहा है न ? उदय कौनसा चल रहा है ? जो पूर्व में बंधे हुये थे उनका उदय चल रहा है। परंतु इस समय में बंधे हुये के यहां कोई निषेक नहीं बने। बंध के बाद उसमें क्या-क्या उथल-पुथल होती है वह तो हम बाद में देखेंगे। अभी हम केवल कुछ टर्मिनॉलॉजि-पारिभाषिक शब्द देख रहे हैं यहां पर। *श्रोता: बंध के समय तुरंत कभी उदय में नहीं आता ?* कभी नहीं आता। क्योंकि अभी तो बंधा है। हां, आवली के बाद उसकी उदीरणा वगैरह होती है वह प्रकरण हम आगे बतायेंगे आपको। *श्रोता: निषेक कब बनते हैं ?* उसी समय जब बंध हुआ। अब यह निषेक बनना यह जो कथन है वह भी कैसा है ? जैसे हम न्यूज पेपर में देखते हैं न स्टॉक मार्केट में शेअर्स के भाव ऊपर गये, नीचे आये।

डिक्लैरेशन हुआ - पैसे की व्हॅल्यू कम हुयी तो क्या रुपयों के नोट तिजोरी में ऊपर से नीचे आते हैं ? क्या होता है ? हम भाव ऊपर नीचे दिखाते हैं। ऐसे ही कौनसे पहले समय में उदय में आनेवाले हैं उनको हम यहां दिखाते हैं।

ऐसे सत्ता में पड़े हुये कर्म कोई ऐसे लाइन से जिसको कहेंगे न थप्पी - ऐसी कुछ नहीं लगी है वहां पर। कुछ नहीं है। बिलकुल युनिफॉर्मली पूरे आत्मप्रदेशों में सारे ही कर्म पड़े हैं। अभी जो हम निषेकरूप से यहां बता रहे हैं - ये अनंत परमाणु हैं। कोई यहां हैं, कोई यहां हैं, कोई यहां हैं - सर्वत्र पड़े हैं। उनकी स्थिति समान है तो उनको हम यहां एक निषेक में दिखायेंगे। जिनकी-जिनकी स्थिति एक समय अधिक है उनको यहां दूसरे निषेक में दिखायेंगे, और एक समय अधिक स्थितिवाले यहां तीसरे निषेक में बतायेंगे। यह ग्राफिकल रिप्रेजेंटेशन है। *श्रोता: चय का प्रमाण भी इसमें अनंत ही होता होगा न ?* इसमें चय का प्रमाण जो है न ? अभी उसका गणित है पूरा। वह कितना होता है ? क्या होता है ? उसका प्रमाण कैसे निकालना ? एक-एक परमाणु का हिसाब है। कितने बंधते हैं ? किसरूप से उसकी रचना होती है ? इतने विस्तार से हम नहीं जायेंगे, नहीं तो घबराकर सब भाग जायेंगे। परंतु इसका सायन्स है और आप जैसे लोगों को तो पढ़ने जैसा है। इंजिनिअर हैं न आप !

श्रोता: निषेक कम क्यों होते हैं ? ऊपर-ऊपर के निषेकों में परमाणु कम क्यों ? ऐसा ही स्वभाव है। देखो, धवला आदि शास्त्रों में हमेशा ऐसे प्रश्न आचार्य स्वयं उठाते हैं। ऐसा क्यों ? कहते हैं ऐसा ही स्वभाव है। विशिष्ट विशुद्धि से विशिष्ट प्रकृति पर ही असर क्यों होता है ? अन्य प्रकृतियों पर क्यों नहीं होता है ? पहले मिथ्यात्व क्यों चला जाता है ? पहले संज्वलन क्यों नहीं जाता ? तो ऐसा ही स्वभाव है। प्रत्येक प्रकृति का अपना-अपना वैसा ही स्वभाव है और वैसा ही होता है। बस हम जान सकते हैं। उसमें कोई यह करूं कि यह करूं ऐसा कोई सवाल ही नहीं है। बस ऐसा ही होता है। *श्रोता: स्वभाव में 'क्यों' ऐसा प्रश्न नहीं होता।* हां।

यहां हम देख रहे थे कि स्थितिबंध में अंतिम निषेक की जो स्थिति है उतना स्थितिबंध हुआ ऐसा हम कहेंगे। देखो, यह अंतिम निषेक यहां पड़ा है और कितनी

स्थिति बांधी ? तो हम बंध समय से लेकर यहां अंतिम निषेक तक इतनी स्थिति बांधी ऐसा कहेंगे। परंतु हर परमाणु की अलग-अलग स्थिति बंधती है। कितने ही परमाणुओं की तो सात हजार वर्ष और एक समय स्थिति बंधी। कोई दो समय अधिक, कोई तीन समय अधिक, कोई ७ कोड़ाकोड़ी सागर तो कोई ऊपर ६५ कोड़ाकोड़ी सागर तो कोई ७० कोड़ाकोड़ी सागर। यानी एक ही परिणाम है और निमित्त से ही कार्य होता तो सभी परमाणुओं में समान स्थिति बंधनी चाहिये थी। यहां अन्य-अन्य परमाणुओं में अन्य-अन्य स्थिति बंधती है। यह परमाणु की अपनी योग्यता से बंधती है।

करणानुयोग में हमें लगता है कि यहां निमित्त से ही सब कुछ हो रहा है। उलटा करणानुयोग में निमित्त से कुछ होता ही नहीं यह बात बारंबार सामने आयेगी। कितने परमाणु कहां रहते हैं ? उनमें भी क्या-क्या बातें होती हैं ? किसतरह से वे उदय में आते हैं ? यह सायंटिफिक है पूरा। ऐसा ही अगर चलता रहा कि हर समय बंध होता ही रहता है, कुछ काल के लिये पड़ा रहता है और फिर उदय तो चलता ही है। यह तो व्हिशियस सायकल है। यह हमारा आज एक दिन का नहीं है। अनादि से अनंतानंत भव पार करके हम आज यहां आये हैं। यही बात होती रही है। तो इसमें से छुटकारा होगा कि नहीं होगा ? तो कहते हैं आज तक कितने जीव सिद्ध हुये ? बोलो अमृतभाई। *श्रोता: अनंत।* अनंत ! तो अनंत जीवों ने जो कार्य किया है वह हो सकता है न ? हो सकता है इतना ही नहीं, अरिहंतों ने सिद्ध अवस्था प्राप्त करने के पहले यह मार्ग हमें बताया और बताकर मोक्ष चले गये।

तीर्थकर तो अभी भी बता रहे हैं। इस विश्व में से तीर्थकरों का तथा तेरहवें गुणस्थानवालों का कभी अभाव नहीं होता है। आपको मालूम है ऐसे कौनसे गुणस्थान हैं जो हमेशा रहते हैं ? वे हमेशा रहेंगे इस विश्व में ? पहला रहेगा, दूसरा, तीसरा हमेशा नहीं रहेगा; चौथा, पांचवां, छठा, सातवां और तेरहवां, ये गुणस्थान तो हमेशा ही रहेंगे। यानी मिथ्यादृष्टि भी हमेशा रहेंगे। हमें दूसरों की चिंता नहीं करनी। लोगों के प्रश्न ऐसे आते हैं मधुबहन कि सब जीव मोक्ष प्राप्त करेंगे तो यहां कौन रहेगा संसार में ? हमें चिंता किसकी है ? संसार का क्या होगा ! चिंता करने की जरूरत नहीं है। हमेशा ही मिथ्यादृष्टि जीव भी रहेंगे। हमें ऐसा लगता है न कि इतना सरल मार्ग है, सुंदर है। हमें

समझानेवाले इतने ज्ञानी जीव मिले हैं तो सब जीव क्यों नहीं समझते ? बारंबार हमें ये विकल्प आते हैं। तो कहते हैं ऐसा ही है। सब कैसे समझेंगे ? सब थोड़े ही मोक्ष जानेवाले हैं ? जिनका जब मोक्ष का समय आयेगा तब वे जायेंगे।

अभी हम देख रहे थे यह जो स्थितिबंध होता है हर एक परमाणु में अलग-अलग होता है। अब यहीं पर एक बात मैं बता दूँ, आपने शायद सुना भी होगा। एक बात आती है शक्तिस्थिति और व्यक्तिस्थिति की। शक्तिस्थिति यानी अभी इतने परमाणु बंधे हैं। हर एक परमाणु में अलग-अलग स्थिति पड़ी है। यहां पहले निषेक के परमाणुओं में सात हजार वर्ष और एक समय और यहां अंतिम निषेक के परमाणुओं में ७० कोड़ाकोड़ी सागर। परंतु ये सभी कर्म परमाणु बंधे हैं उनमें शक्तिस्थिति कितनी है ? तो कहते हैं ७० कोड़ाकोड़ी सागर की। *श्रोता: सबमें ? ७० कोड़ाकोड़ी सागर सबमें ?* सबमें, हां। उन कर्मों में इतनी क्यों ? आगे चलकर हम अपकर्षण, उत्कर्षण की बातें देखेंगे। कोई परमाणु नीचे से ऊपर जाते हैं, कोई परमाणु ऊपर से नीचे आते हैं तो अपनी-अपनी शक्तिस्थिति तक ऊपर चले जायेंगे। उसको क्रॉस नहीं करेंगे। अपकर्षण होना यानी स्थिति घटना और उत्कर्षण होना यानी स्थिति बढ़ना। ये परमाणु यहां से ऊपर कहीं चले जाते हैं यानी उनकी स्थिति बढ़ती है। बढ़ती है तो अनादि से कोई ऐसा परमाणु होगा न कि बढ़ते-बढ़ते-बढ़ते आज तक पड़ा होगा ? तो कहते हैं कि ऐसा नहीं होता। अपनी शक्तिस्थिति को वे क्रॉस नहीं करेंगे। उसको वे लांघ नहीं सकते। वहां तक जाने की ही उनकी मर्यादा है। आगे चलकर यह बात भी आयेगी।

हम देखते हैं न, एकेन्द्रिय जीव मिथ्यात्व का अधिक से अधिक कितना स्थितिबंध करेगा ? बोलो कुसुमबेन ? *श्रोता: एक सागर।* एक सागर और संज्ञी पंचेन्द्रिय अधिक से अधिक कितना करेगा ? ७० कोड़ाकोड़ी सागर। अच्छा है न एकेन्द्रिय को ? एक ही सागर का बंध होता है ! तो एकेन्द्रिय में रहना अच्छा है न ? *श्रोता: नहीं।* परंतु वही एकेन्द्रिय जीव जब पंचेन्द्रिय में आयेगा तो बंधे हुये परमाणुओं का उत्कर्षण होगा और बंध समय से ७० कोड़ाकोड़ी सागर तक वे परमाणु ऊपर चले जा सकते हैं। ये बातें आयेगी आगे। बहुत सारी बातें ऐसी हैं कि हमें पता ही नहीं है।

श्रोता: जो कर्म परमाणु एकेन्द्रिय पर्याय में उसने बांधे थे मिथ्यात्व में वे अभी सत्ता में होंगे ? देखो, क्षपणा होती है न, अभी तो यह बात आगे आयेगी। क्षपणासार में बातें आयेगी सब क्षपणा की। कोई भी जीव क्षपणा करता है तो उसकी सत्ता में पड़े हुये कर्म परमाणु कितने हैं ? कभी बांधे थे ? ऐसा हो सकता है किसी देव पर्याय में बंधे हुये नहीं हों। कोई नरक में बंधे हुये नहीं हों ऐसा भी हो सकता है। मनुष्य में बंधे हुये तो हैं क्योंकि उसी भव में मोक्ष जानेवाला है। परंतु तिर्यचों में, एकेन्द्रिय के असंख्यात भवों में जो कर्म परमाणु बांधे हैं वे अभी उसकी सत्ता में हैं जब वह क्षपणा कर रहा है नौवें गुणस्थान में। फिर से - जब कोई भी जीव क्षपणा करता है। क्षपणा करता है यानी कर्मों का क्षय होता है। क्षपकश्रेणी चढ़ता है तो उसकी सत्ता में एकेन्द्रिय के अलग-अलग असंख्यात पर्यायों में बंधे हुये कर्म परमाणु पड़े हैं। नियम से पड़े हैं। किसीने तो बहुत पहले बांधे हैं न। क्योंकि त्रस में आया है तो दो हजार सागर त्रस की स्थिति है। तो दो हजार सागर से त्रस में है और अंत में वह क्षपणा कर रहा है। फिर भी उसकी सत्ता में एकेन्द्रिय के असंख्यात भवों में बांधे हुये परमाणु पड़े हैं। त्रस की उत्कृष्ट स्थिति तो दो हजार सागर ही है और उत्कर्षण होकर तो ऊपर ७० कोड़ाकोड़ी सागर तक जा सकते हैं। ये कितनी ही बातें हमें अभी पता नहीं हैं परंतु हम पता करेंगे !

श्रोता: सबकी शक्तिस्थिति अलग-अलग है ? अलग-अलग, हर कर्म की अपनी अलग है। श्रोता: एक बार फिर से समझाइये। फिर से समझो, अभी मान लो कोई तीर्थंकर का जीव है। महावीर भगवान का जीव है। लगातार दस भवों से तो वे सम्यग्दृष्टि थे। अभी जब उन्होंने क्षपणा प्रारंभ की यानी क्षपकश्रेणी मांडी और एक-एक कर्म का क्षय करने लगे तो वे कर्म कब के बांधे थे ? यानी पहले के दस भवों के तो थे ही थे। उसके भी पहले यहां जितने बांधे होंगे; जब से एकेन्द्रिय में से आये होंगे तब से तो थे ही थे। परंतु अलग-अलग कितनी एकेन्द्रिय पर्याय थी ? एकेन्द्रियों की अलग-अलग असंख्यात पर्यायों में जो कर्म परमाणु बांधे थे उनकी जाकर तभी क्षपणा की उन्होंने। श्रोता: मारीचि से पहले की ? हां, मारीचि तो कुछ नहीं, एक कोड़ाकोड़ी सागर पहले का है वह तो। मारीचि तो कितना एक कोड़ाकोड़ी सागर पहले हुआ। श्रोता: एकेन्द्रिय में गया है न बहुत बार ? हां, वह तो होता है। बीच-बीच में बहुत बार

एकेन्द्रिय में भी जाता है जीव और ऐसा भी नहीं की सम्यग्दृष्टि हुये जीव को मिथ्यात्व में जाकर एकेन्द्रिय पर्याय नहीं होगी, ऐसा नहीं है।

श्रोता: आपने नरक-स्वर्ग का क्यों मायनस किया ? नरक और स्वर्ग का मायनस इसलिये किया कि असंख्यात काल एकेन्द्रियों में रहकर भी जो जीव आता है, वह बिना नरक में और स्वर्ग में गये क्षपणा कर सकता है। जरूरी नहीं कि उसको बीच में देव का भव हो जाये और नरक का भव हो जाये। परंतु उसके तिर्यच और मनुष्य के भवों के कर्म परमाणु हैं ही हैं वहां पर। लंबे काल तक एकेन्द्रिय में जाकर आया है असंख्यात पुद्गलपरावर्तन में। फिर वहां से छूटकर आया है। त्रस में आ गया है और वहां पर तिर्यच के भव और मनुष्य के भव करके मोक्ष जा सकता है। जरूरी नहीं कि वह देव का और नरक का भव करे ही करे। इसलिये मैंने उसको ऑप्शन में रखा। ऑप्शन में रखा है- वह हो सकता है या नहीं भी हो सकता। अभी आगे बढ़ेंगे। हम तो बिलकुल प्रायमरी चीज़ ही देख रहे हैं। बीच-बीच में आपको थोड़ा मसाला भी दे दे न !

अब स्थितिबंध की बात हमने देखी है कि स्थितिबंध क्यों होता है ? वह अनुभाग के साथ देखेंगे हम। अनुभागबंध का अर्थ क्या है ? अनुभागबंध का अर्थ है जितने कर्म परमाणु बंधे हैं उनकी अपनी-अपनी फल देने की शक्ति - उसकी इन्टेन्सिटी कितनी है ? हमारे राग-द्वेष भी हीनाधिक होते रहते हैं - कभी बहुत तीव्र क्रोध आता है, कभी बहुत मंद क्रोध आता है। उसके अनुसार जो कर्म परमाणु बंधते हैं उनमें भी फल देने की शक्ति हीनाधिक होती है। जो बहुत अधिक अनुभागवाले हैं। कौनसे ? अशुभ। अब अशुभ का अधिक तीव्र अनुभाग है तो हम कहेंगे खोटा फल मिला और शुभ में बहुत अनुभाग है तो ? संयोगरूप से हम कहेंगे अच्छा फल मिला। यह अच्छा और बुरा किसमें होता है ? पुद्गल में कि जीव में ? *श्रोता:* मान्यता में। मान्यता में। मुझे बताओ इस विश्व में अच्छे पुद्गल कितने हैं और बुरे पुद्गल कितने हैं ? पुद्गल तो पुद्गल हैं परंतु हमने उसमें अच्छे और बुरे मानकर भेद किया है और फिर संयोगों में यह अच्छा है और यह बुरा है मानते हैं। अभी स्वाध्याय करना है परंतु जरा संयोग सुधर जाये तो हम स्वाध्याय करेंगे। जिनको स्वाध्याय की रुचि नहीं है उनसे ऐसा ही सुनने को मिलता है। वे पहले संयोग सुधारने के पीछे लगते हैं।

जब हम प्रथमोपशम की बात करेंगे तब तत्त्वविचार के काल में कर्मों में सहजरूप से कैसे-कैसे क्या-क्या होता है; अनुभागों में क्या-क्या चेंजेस हो जाते हैं - वे बातें ख्याल में आयेगी। तत्त्वविचार करने से वे संयोग तो आप चाहते हैं वैसे बदल नहीं जायेंगे। क्योंकि संयोग तो अपने हाथ की बात है ही नहीं। परद्रव्य का परिणमन तो हम कर ही नहीं सकते हैं, फिर भी उसके पीछे लगे रहते हैं। ये बातें तो सहजरूप से हो जाती हैं। हमारी संयोगों में इष्टता-अनिष्टता छूटने लगती है।

हमने चार प्रकार के बंध देखे, कौनसे चार प्रकार के ? श्रोता: प्रकृतिबंध, प्रदेशबंध, स्थितिबंध और अनुभागबंध। हां, प्रकृतिबंध, प्रदेशबंध, स्थितिबंध और अनुभागबंध और उनके कारण भी देखे। प्रकृतिबंध और प्रदेशबंध योग के कारण होता है और स्थितिबंध और अनुभागबंध कषाय के कारण होता है। अब इसका अर्थ भी देखते हैं। पहले कषाय की बात करते हैं। जहां कषाय ज्यादा जिसको हम कहेंगे तीव्र कषाय वहां स्थिति ज्यादा। स्थिति अधिक क्यों बंधती है ? तीव्र कषाय के कारण, जिसको हम संक्लेश परिणाम कहेंगे। इसके लिये तीन प्रकृतियों का अपवाद है। बोलेंगे कविताबेन, कौनसी तीन प्रकृतियां ? तीन आयु - देवायु, मनुष्यायु, तिर्यचायु। जितनी कषाय की मंदता उतनी आयु लंबी बंधती है। बंधनेवाली आयु की बात चल रही है। क्या कहा ? कषाय जितने मंद हैं यानी जितनी विशुद्धि ज्यादा है उतनी तीन आयुओं की स्थिति लंबी बंधती है। नरकायु हो या तीर्थकर प्रकृति सहित अन्य सभी ११७ प्रकृतियां हो - उनकी जहां कषाय ज्यादा है वहां स्थिति लंबी बंधती है। स्थिति लंबी बंधना कुछ अच्छी बात नहीं है क्योंकि उतने काल तक जीव संसार में रखड़ेगा। स्थिति कम कब बंधेगी ? जहां परिणाम विशुद्ध होंगे, मंद परिणाम होंगे वहां स्थिति कम बंधती है। कौनसी ? शुभ प्रकृतियों में भी और अशुभ प्रकृतियों में भी। अभी तो हमने कर्मों के भेद देखे नहीं हैं, परंतु कर्म प्रकृतियों में भी कितनी ही शुभ प्रकृतियां हैं और कितनी ही अशुभ यानी अप्रशस्त प्रकृतियां हैं। स्थिति लंबी किसमें बंधती है ? दोनों में बंधती है। किससे ? तीव्र कषाय से। जहां कषाय मंद हो वहां स्थिति कम बंधती है। कौनसी प्रकृतियों में ? जो यथायोग्य बंध रही हैं - अशुभ हो या शुभ हो। उनकी स्थिति कम कब बंधेगी ? जहां विशुद्धि ज्यादा होगी यानी जहां कषाय की मंदता होगी।

यह हमने स्थिति की बात देखी। अब अनुभाग में उलट-पुलट है। जब अनुभाग की बात करेंगे तो प्रशस्त प्रकृतियों का अनुभाग और अप्रशस्त प्रकृतियों का अनुभाग ऐसे हमें दो भाग करने पड़ेंगे। कषाय की मंदता में तो प्रशस्त प्रकृतियों में अनुभाग ज्यादा पड़ेगा, अधिक अनुभाग होगा। क्या कहा ? प्रशस्त यानी शुभ प्रकृतियों का अधिक फल मिलेगा। किससे ? कषाय की मंदता से और कषाय जहां तीव्र है वहां अशुभ प्रकृतियों में अधिक अनुभाग पड़ेगा। अभी अनुभागों के भी हम नाम देखने जा रहे हैं। हमने देखा कि स्थिति अधिक क्यों बंधती है ? तीव्र कषाय से। उसमें उन तीन आयु का अपवाद है। स्थिति कम क्यों बंधती है ? मंद कषाय से। अनुभाग के लिये दो पद्धति से विचार करना है। प्रशस्त प्रकृतियों का अनुभाग अधिक - मंद कषाय से और अप्रशस्त प्रकृतियों का अनुभाग अधिक - तीव्र कषाय से। यह बात ख्याल में आयी ?

अब हम योग क्या है उसको देखेंगे। हमने अभी-अभी यहां पढ़ा है कि योग के कारण प्रदेशबंध और प्रकृतिबंध होता है। योग क्या है कोई बतायेगा ? हां, वहां लिखा है न, आत्मप्रदेशों का कंपन है उसको हम योग कहते हैं। यह आत्मप्रदेशों का कंपन क्यों होता है ? *श्रोता: मन, वचन, काय से।* मन, वचन, काय तो तीनों पुद्गल हैं। *श्रोता: उनके निमित्त से।* हां, उनके निमित्त से। परंतु जैसे कषाय में निमित्त किसको कहा ? पुराने कर्मों के उदय को हमने निमित्त कहा - दर्शनमोहनीय, चारित्रमोहनीय को। वैसे योग क्यों होता है ? बोलो निलेशभाई ? *श्रोता: शरीर नामकर्म के उदय से।* बहुत अच्छा, नामकर्म के उदय से; उसमें कार्माणशरीर नामकर्म है, औदारिकशरीर, वैक्रियिकशरीर नामकर्म वगैरह हैं सब। अब यहां कर्म की बात है तो हम कहेंगे कार्माणशरीर नामकर्म का उदय चलता है तो उसके निमित्त से आत्मा में कर्मों को ग्रहण करने की शक्ति उत्पन्न होती है। जैसे मॅग्नेट में मॅग्नेटिक पॉवर है न ? मॅग्नेट लोहे को खींचता है। वैसे आत्मा में कर्मों को ग्रहण करने की शक्ति उत्पन्न होती है। ग्रहण यानी कहीं बाहर से कर्म नहीं आते। जहां आत्मा के प्रदेश हैं वहीं के परमाणु कर्मरूप होते हैं। उसीको कहेंगे कर्मों को ग्रहण करने की शक्ति।

श्रोता: भावयोग यानी ? भावयोग यानी शक्ति और द्रव्ययोग यानी आत्मप्रदेशों का कंपन। द्रव्ययोग और भावयोग दोनों आत्मा में ही घटित करने हैं। उसके निमित्त से

मनोवर्गणा या शरीर की वर्गणायें वगैरह ग्रहण होती हैं तो हम कहेंगे मन, वचन, काय के अवलंबन से। परंतु शरीर की जो कुछ हालचाल है वह योग नहीं है। अरिहंत भगवान ऐसे स्थिर हैं समवसरण में, तो उनके योग है कि नहीं है ? श्रोता: है/ है, कितना है ? श्रोता: काययोग। श्रोता: मनोयोग उपचार से। हां, मनोयोग उपचार से है, तो वचनयोग और काययोग ज्यादा है कि कम है ? श्रोता: बहुत ज्यादा है। बहुत ज्यादा है, क्यों ? श्रोता: कर्म का उदय है। तो कर्म का उदय हमें भी है न ? उन्हें क्यों ज्यादा है ? निलेशभाई क्या कहते हैं ? हमें ज्यादा है या उनको ज्यादा है ? यह क्यों सबने ऐसा सुनकर रखा है मुझे पता नहीं है। क्योंकि कहीं तो किसीके प्रवचन में आया है। परंतु ऐसा नहीं है, क्योंकि योग की जो हीनाधिकता होती है वह सबमें होती है। हम भी संज्ञी पंचेन्द्रिय हैं। वे भी संज्ञी पंचेन्द्रिय हैं। संज्ञी पंचेन्द्रिय के योग्य योग की हीनाधिकता उनके भी होती है, हमारे भी होती है। कभी ज्यादा, कभी कम उनमें भी होती है। उनमें भी समयप्रबद्ध हीनाधिक ग्रहण किया जाता है सातावेदनीय का, जैसे हमारे में भी। हां, परंतु द्वीन्द्रिय की अपेक्षा से उनका योग ज्यादा है।

मोक्षमार्गप्रकाशक में वाक्य है न, अरिहंत भगवान स्थिर बैठे हैं और कोई द्वीन्द्रिय चल रहा है तो किसका योग ज्यादा है ? तो वहां दोनों की तुलना में कहा था कि अरिहंत भगवान का योग ज्यादा है। परंतु अरिहंत भगवान में सर्वथा योग ज्यादा है ऐसा बिलकुल नहीं है। मॅक्झिमम योग भी एक समय, दो समय से अधिक नहीं टिक सकता। वह तो चेंज होता रहता है। ऐसा गलत कथन कहीं सुनने को मिलता है आजकल, बहुत जगह मैंने सुना है।

यहां हम क्या देखते हैं ? योग क्या है ? आत्मप्रदेशों का कंपन। उसमें क्या होता है ? कर्म का ग्रहण होता है यानी कार्माणवर्गणा कर्मरूप होती हैं। कर्मरूप होती हैं तो आठ प्रकृतिरूप होती हैं और उसमें विशिष्ट नंबर ऑफ़ परमाणु ग्रहण किये जाते हैं। जहां योग ज्यादा वहां परमाणु अधिक ग्रहण किये जाते हैं। परमाणु अधिक लिये या कम लिये उस पर उसका जीव के साथ कोई निमित्त नहीं बनता। उसका निमित्त बनता है अनुभाग से। कितने परमाणु उदय में आते हैं ? कम आते हैं या ज्यादा आते हैं, कम बंधे या अधिक बंधे उससे जीव का कुछ लेना-देना नहीं है। क्योंकि उसको जो

फल मिलेगा वह अनुभाग के उदय में मिलता है।

अभी हम ज्ञानावरण की बात करेंगे। ज्ञानावरण का तीव्र उदय है यानी उसके तीव्र अनुभाग का उदय चल रहा है तो जीव एकेन्द्रिय में पड़ा है। उसके ज्ञानावरण का अनुभाग ज्यादा है तो उसका ज्ञान मंद चल रहा है और हम आप संज्ञी पंचेन्द्रिय हैं। हमारा ज्ञानावरण का अनुभाग थोड़ा कम है तो हमारा ज्ञान का उघाड़ ज्यादा है। है न, यही बात है न ? तो यहां अनुभाग में हमारे कितने परमाणु उदय में आते हैं उससे कुछ लेना-देना नहीं है। किस अनुभागरूप से उदय चलता है ? उसका फल मिलता है। *श्रोता: रस ?* हां, रस कहो, अनुभाग कहो एक ही बात है। अनुभाग के लिये रस ऐसा भी शब्द आता है शास्त्र में।

अभी हमने चार प्रकार के बंध देखे, प्रकृतिबंध, प्रदेशबंध, स्थितिबंध और अनुभागबंध। बंध तो हुआ एक ही समय में और उसका चार प्रकार से हम वर्णन कर रहे हैं। जितनी संख्या में परमाणु बंधे हैं वह तो हुआ प्रदेशबंध और उन परमाणुओं का जो डिस्ट्रिब्यूशन हुआ, जिन प्रकृतियों में विभाजन हुआ उसको कहेंगे प्रकृतिबंध। उसमें जितनी स्थिति बंधी है उसको कहेंगे स्थितिबंध और जितना अनुभाग बंधा है उसको कहेंगे अनुभागबंध। यह बात ख्याल में आयी बंध के बारे में ?

अब हम आगे और देखते हैं। ये जो प्रकृतियां बंधती हैं उनमें मूलप्रकृति और उत्तरप्रकृति कहते हैं। मूलप्रकृति तो हमने आठ देखी। कौनसी आठ, कौन बतायेगा ? हां रीताबहन ? बोलो-बोलो। कौन बताना चाहता है ? हां, बोलो। *श्रोता: ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, अंतराय, वेदनीय, नाम, आयु, गोत्र।* हां, देखो ये नाम यहां बोर्ड पर लिखे हैं उनको अभी देखेंगे। उनको कहेंगे मूलप्रकृति यानी ये कर्मों के मेन डिव्हिजन्स हैं। हम उसके और सबडिव्हिजन्स करेंगे तो उनको कहेंगे उत्तरप्रकृतियां। क्या कहा ? उत्तरप्रकृतियां। उत्तरप्रकृति का अर्थ है कर्मों के हम और भेद करेंगे। ज्ञानावरण एक मूलप्रकृति हुयी, उसकी मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, मनःपर्ययज्ञानावरण और केवलज्ञानावरण ये पांच उत्तरप्रकृतियां हैं; आवरण की बात है। ज्ञान के भेद नहीं चल रहे हैं, ज्ञानावरण के भेद हैं। तो ये पांच क्या

कहलायेंगी ? उत्तरप्रकृतियां। देखो, यहां बोर्ड पर लिखा है न ?

प्रकृति - मूलप्रकृति/उत्तरप्रकृति			
घातिकर्म		अघातिकर्म	
ज्ञानावरण	५	वेदनीय	२
दर्शनावरण	९	आयु	४
मोहनीय	२८	नाम	९३
अंतराय	५	गोत्र	२
	४७		१०१

घातिकर्म और अघातिकर्म, मुख्य दो भेद हुये कर्मों के। घातिकर्म में ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अंतराय; अघाति में वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र। अब ज्ञानावरण के आगे लिखे हैं ५। अभी मैंने जो पांच नाम बताये हैं। दर्शनावरण के कितने बताये ? श्रोता: नौ। नौ, कौन-कौनसे हैं नौ ? चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण, केवलदर्शनावरण और पांच प्रकार की निद्रा हैं- स्त्यानगृद्धि, निद्रा-निद्रा, प्रचला-प्रचला, निद्रा, प्रचला। देखो, दर्शन चार ही हैं और आवरण कितने हैं ? नौ हैं, है न ? ये निद्रा संबंधी जो पांच प्रकृतियां हैं वे भी दर्शनावरण की हैं यानी इस दर्शनावरण के उदय में निद्रा आती है।

इस आवरण को अच्छा समझा कि बुरा समझा हमने ? केवलज्ञानी के आवरण का नाश हो जाता है तो निद्रा नाम का दोष चला जाता है। हमारा यदि निद्रा नाम का दोष चला जाये तो हम डॉक्टर के पास भागते हैं। भूख नाम का दोष चला जाये तो डॉक्टर के पास चले जाते हैं। यानी हमने दोषों को अच्छा माना है। क्यों ? हम कहते तो हैं अरहंत भगवान अठारह दोषों से रहित हैं परंतु क्या हम निद्रा और भूख को दोष मानते हैं ? श्रोता: उसमें जीवन मानते हैं। हां, वही हमारा स्वरूप मानते हैं, है न ! ज्ञान की हीनता हो जाये, दर्शन की हीनता हो जाये तो हम मानते हैं कि चलो अच्छा है !

अच्छी नींद आ गयी आज। नींद नहीं आती इसलिये तत्त्वों का चिंतन करने के लिये अधिक टाइम मिलता है ऐसा कभी नहीं सोचते। ये ज्ञानावरण की पांच और दर्शनावरण की नौ हो गयी।

मोहनीय के लिये यहां अट्टाइस लिखे हैं। मोहनीय के दो भेद हैं - दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय। दर्शनमोहनीय के तीन भेद हैं, कौन-कौनसे हैं ? *श्रोता: मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति।* मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति। ये नये लोग हैं न, कभी नाम सुने नहीं होंगे, है न ? चारित्रमोहनीय है उसके पच्चीस भेद होते हैं। अब उसमें चार मुख्य भेद हैं अनंतानुबंधी क्रोध-मान-माया-लोभ, अप्रत्याख्यानावरण क्रोध- मान- माया-लोभ, प्रत्याख्यानावरण क्रोध-मान-माया-लोभ और संज्वलन क्रोध-मान-माया-लोभ और नौ नोकषाय हैं। नोकषाय उनको कहेंगे - हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेद। ये हैं मोहनीय की अट्टाइस।

अंतराय की पांच ? *श्रोता: दानांतराय, भोगांतराय, उपभोगांतराय, लाभांतराय और वीर्यांतराय।* दानांतराय, लाभांतराय, भोगांतराय, उपभोगांतराय और वीर्यांतराय। ये पांच अंतराय के भेद हो गये। देखो, ये जो सभी हैं न, ये ४७ हैं। तो मुझे कहो इन ४७ में प्रशस्त प्रकृतियां कितनी हैं ? एक है कि दो हैं ? एक भी नहीं, सभी अप्रशस्त ही हैं। अभी तक हम प्रशस्त, अप्रशस्त का जो भेद कर रहे थे न ? वह अघातिकर्मों में आ जायेगा। वेदनीय में दो हैं - एक सातावेदनीय और एक असातावेदनीय। साता जिसको हम प्रशस्त यानी शुभ प्रकृति कहेंगे और असाता को अप्रशस्त। चार आयु में तीन आयु तो प्रशस्त होती हैं- देवायु, तिर्यचायु और मनुष्यायु; एक नरकायु अप्रशस्त है। नामकर्म की ९३ हैं, उसमें हम इतना ही कहेंगे, शुभनामकर्म और अशुभनामकर्म। गोत्र में उच्चगोत्र और नीचगोत्र।

देखो, ये शुभ और अशुभ अघातिकर्म के भेद हैं। अभी-अभी हमने देखा था कि हर समय जीव सात कर्म बांध ही रहा है, आयु कभी-कभी बांधता है। अभी हम स्वाध्याय कर रहे हैं तो ये घातिकर्म बंध रहे हैं कि नहीं बंध रहे हैं ? *श्रोता: बंध रहे हैं।*

ये प्रशस्त हैं कि अप्रशस्त ? श्रोता: अप्रशस्त। यानी शुभभाव करो या अशुभभाव करो ये घातिकर्म तो बंध ही रहे हैं। तो फिर फायदा क्या ? अघातिकर्म में से कुछ प्रशस्त बंधेगी, घातिकर्म में भी अनुभाग कम बंधेगा। परंतु जब तक मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी का बंध चल रहा है तब तक बंध में से छुटकारा नहीं है। मोक्षमार्ग शुरू नहीं होगा।

अघातिकर्म में कितना ही सातावेदनीय बांधा, पुण्य किया न केवल ? बिना तत्त्वविचार के, मात्र कोई व्रतादि ग्रहण किये, कोई पुण्य किये, यात्रा आदि किये, दान दिया। क्या मिलेगा ? संयोग मिलेगा। किसको मिलेगा ? पुद्गल को। पैसा दें हम, उपवास करें हम और फल मिले पुद्गल को। व्यापार करें आप और बैंक में पैसा दूसरे के खाते में जमा करे ऐसा करते हैं क्या ? वहां तो बहुत सयाने हैं। यह पुण्य और पाप का फल मिलेगा तो संयोगों में मिलेगा। जीव को उससे कुछ लाभ नुकसान नहीं है। उसका दुःख तो वैसे ही चल रहा है। क्योंकि संयोग से कभी भी सुख हुआ नहीं और दुःख भी हुआ नहीं है। जीव ने मानकर रखा है कि इनके कारण मैं सुखी या दुःखी हूं।

घातिकर्म की ४७ और अघातिकर्म की १०१ ऐसी विस्तार में देखेंगे तो १४८ प्रकृतियां होती हैं। परंतु इनमें नामकर्म की जो हैं न, ५ शरीर, ५ बंधन और ५ संघात इन १५ को हम ५ शरीर नामकर्म में गर्भित करते हैं तो दस कम गिनेंगे और वर्णादि की २० हैं उनको वर्ण, रस, गंध, स्पर्श इन ४ में गर्भित करेंगे तो १६ कम गिनेंगे। इसतरह १४८ में से २६ कम करके १२२ होती हैं। बंध में हम १२० का हिसाब लगाते हैं। वैसे १२२ होती हैं परंतु एक बात ख्याल में रखना- सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति जो हैं वे बंधती नहीं हैं। हां, सत्ता में पड़ी रहती हैं, उदय में आती हैं तो कहां से आती हैं ? मिथ्यात्व में से वे तैयार होती हैं। वे कब होगी ? कैसे होगी ? उसका अपना विषय चलेगा आगे। अभी तो अपना समय हो गया है।

बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

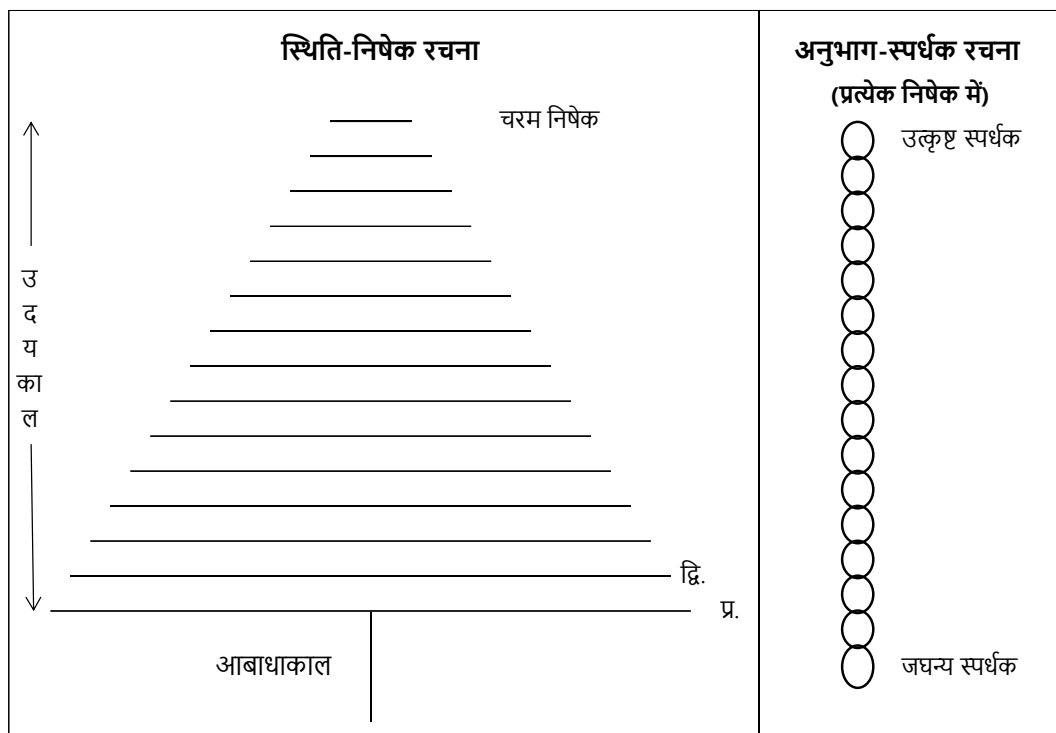
२. स्थिति, अनुभाग रचना

आचार्य श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती ने इस लब्धिसार ग्रंथ की रचना की है और उसीके आधार से पं. टोडरमलजी ने सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका लब्धिसार-क्षपणासार भाषाटीका ढूंढ़ारी भाषा में लिखी है और आपके हाथ में जो पुस्तक है वह इसका हिंदी अनुवाद है। इस हिंदी अनुवाद को हम पृष्ठ और गाथाओं के आधार से देखेंगे। उसके पहले भूमिका में लिखे हुये कर्म संबंधी कुछ पारिभाषिक शब्द हैं - टर्मिनॉलॉजि है उसको हम देखेंगे। सुबह हमने चार प्रकार के बंध देखे थे, प्रकृतिबंध, प्रदेशबंध, स्थितिबंध और अनुभागबंध। अभी उसके बारे में यहां कुछ प्रश्नोत्तरी चली कि निषेक रचना होती है यानी प्रत्येक कर्म परमाणु में अपनी-अपनी स्थिति बंधती है। वह कितनी स्थिति बंधी है ऐसा पूछेंगे तो जो अंतिम निषेक है उसकी जो स्थिति है उतनी स्थिति बंधी है ऐसा कहेंगे।

अब आपके सामने यहां बोर्ड पर चार्ट है, आपके हाथ में भी है। ये चार्ट्स होते हैं उनमें जहां काल की अपेक्षा कथन होता है वहां हमेशा नीचे से ऊपर बताया जाता है। करणानुयोग के बहुत सारे चार्ट्स नीचे से ऊपर पढ़ते हैं। यहां नीचे बंध का समय है; जब कर्म बंधता है तो कितने परमाणु आते हैं ? एक समयप्रबद्ध परमाणु - अनंत परमाणु बंधते हैं। उस समय स्थिति बंधी है ऐसा जब कहते हैं, कितनी स्थिति बंधी ? यह अंतिम निषेक, चरम यानी अंतिम। अंतिम निषेक वर्तमान समय से कितना ऊपर है ? हम मिथ्यात्व के बारे में कहते हैं ७० कोड़ाकोड़ी सागर। ज्ञानावरण की अधिक से अधिक स्थिति बंधेगी तो ३० कोड़ाकोड़ी सागर। अंतिम निषेक की जो स्थिति है, वर्तमान समय से लेकर वह कितने समय ऊपर है, कितने समय बाद वह निषेक उदय में आयेगा, उसको कहेंगे उस समय कर्म की उतनी स्थिति बंधी।

तीन नंबर के चार्ट में आप देख सकते हैं- नीचे जो लाइन है यह है आबाधाकाल। आबाधाकाल का अर्थ क्या है कि यहां सात हजार वर्ष तक की स्थितिवाला एक भी निषेक नहीं है। इसका अर्थ क्या है ? आबाधाकाल का अर्थ है कि कोई एक समयवाला, दो समयवाला, तीन समयवाला ऐसे कोई निषेक वहां नहीं होंगे।

पहले मैं पहला निषेक कहाँ बना ? सात हजार वर्ष के ऊपर। अभी यह जो सात हजार वर्ष मैं कह रही हूँ, जब मिथ्यात्व की उत्कृष्ट स्थिति ७० कोड़ाकोड़ी सागर बंधेगी तभी यह आबाधाकाल सात हजार वर्ष का होगा। ज्ञानावरण की उत्कृष्ट स्थिति ३० कोड़ाकोड़ी सागर बंधती है तो आबाधाकाल तीन हजार वर्ष होगा। यानी जितने कोड़ाकोड़ी सागर स्थिति बंधती है उतने सौ वर्ष का आबाधाकाल होता है। ७० कोड़ाकोड़ी सागर स्थिति बंधी तो सत्तर सौ यानी सात हजार वर्ष का आबाधाकाल हुआ, ख्याल में आयी यह बात ?



अंतःकोड़ाकोड़ी सागर स्थिति जिसको बंधती है, कोड़ाकोड़ी सागर से कम तब उसकी आबाधा एक अंतर्मुहूर्त बनती है। हां, फिर से- अंतर्मुहूर्त के भी बहुत भेद हैं। जैसे अंतःकोड़ाकोड़ी सागर के भेद बहुत होंगे वैसे अंतर्मुहूर्त के भेद बहुत हैं। अंतर्मुहूर्त यानी हम कहेंगे लेस दें मुहूर्त यानी मुहूर्त से कम। कोड़ाकोड़ी यानी करोड़

गुना करोड़ को कोड़ाकोड़ी कहते हैं। कोड़ाकोड़ी सागर से कम और करोड़ सागर से अधिक को कहेंगे अंतःकोड़ाकोड़ी सागर।

सागर का प्रमाण मालूम है आप लोगों को कि नहीं ? सागर क्या है मालूम है ?
श्रोता: दो हजार सागर ? दो हजार वर्ष ? नहीं, नहीं ! देखो, देखो ! एक योजन चौड़ा और एक योजन गहरा गड्ढा करते हैं। कहां ? अपनी बुद्धि में। उत्तम भोगभूमि के सात दिन तक के नये जन्मे हुये मेंढे के बाल के अग्रभाग जिसे रोमखण्ड कहेंगे, उनसे उस गड्ढे को ठसाठस भरते हैं। हर सौ साल के बाद एक-एक रोमखण्ड निकालेंगे और जब वह गड्ढा खाली हो जायेगा तो कहेंगे कि एक व्यवहारपल्य हुआ। अब ऐसे एक-एक रोमखण्ड के असंख्यात करोड़ वर्षों के समय जितने भाग करो तो उतने समय और उतने रोमखण्ड एक उद्धारपल्य में होते हैं। असंख्यात वर्षों के समयों से उद्धारपल्य के समयों को गुणा करो तो होता है एक अद्भापल्य। दस कोड़ाकोड़ी अद्भापल्यों का एक अद्भासागर होता है। दस कोड़ाकोड़ी का अर्थ होता है दस करोड़ गुणा एक करोड़। दस कोड़ाकोड़ी पल्यों का एक सागर होता है।

यह हम कर्मों की स्थिति देख रहे हैं। जब हम मिथ्यात्व का ७० कोड़ाकोड़ी सागर स्थितिबंध हुआ कहते हैं; तब जीव एक समय में इतना तीव्र मिथ्यात्व करे तो उस समय बंधे हुये कर्म परमाणु इतने काल तक जीव की सत्ता में रहेंगे और उसका उदयकाल भी इतने लंबे काल तक हर समय चलता रहेगा। केवल इतने का ही नहीं, हर समय जो निषेक बंधते हैं वे सत्ता के निषेकों में जुड़ते चले जाते हैं। यानी निषेक जो एक समय में बंधा है, वह इतना बड़ा है। ऐसे हर समय में बंधे हुये इसमें अँड होते हैं, वे निषेक बहुत बड़े-बड़े हो जाते हैं। जब वे ही उदय में आयेंगे तब उदयरूप निषेक समयप्रबद्ध प्रमाण अनंतानंत परमाणुओं का होता है, उनका उदय चलता है एक बात।

आबाधाकाल का अर्थ है कि अभी-अभी बंधे हुये में इतनी स्थितिवाले कोई भी निषेक नहीं हैं यानी किसी भी परमाणु में एक समय, दो समय या सात हजार वर्ष प्रमाण स्थिति नहीं पड़ी है तो कमसे कम स्थितिवाले परमाणु कौनसे हैं ? सात हजार वर्ष और एक समय। सात हजार वर्ष और दो समय, सात हजार वर्ष और तीन समय

ऐसा करते करते ७० कोड़ाकोड़ी सागर वर्षों के जितने समय होते हैं, वहां तक हर समय में एक-एक निषेक की रचना हुयी है और हर निषेक में भी अनंत परमाणु पड़े हैं। यानी एक समय में कितने अनंत कर्म परमाणु जीव ग्रहण करता है ! एक समय की बात है और एक समय में बंधे हुये एक समय में उदय में नहीं आते हैं। वे अलग अलग समयों में उदय में आते रहते हैं। यानी अन्य भी पूर्व में बंधे हुये या बाद में बंधनेवाले इसके साथ जुड़ जायेंगे और उनका यथा समय उदय चलेगा।

दूसरा एक प्रश्न स्थिति संबंधी - शक्तिस्थिति संबंधी है। है न ! यह शक्तिस्थिति और व्यक्तिस्थिति क्या है ? एक समय में बंधे हुये परमाणु की कितनी स्थिति बंधी ? हम कहेंगे ७० कोड़ाकोड़ी सागर बंधी। परंतु उसमें अंतिम निषेक की यह व्यक्तिस्थिति है और उसकी उतनी ही शक्तिस्थिति भी है। परंतु यहां जो पहला निषेक है सात हजार वर्ष और एक समयवाला, उसकी व्यक्तिस्थिति; व्यक्त कहो या व्यक्ति कहो; व्यक्तिस्थिति कितनी है ? सात हजार वर्ष और एक समय है परंतु उसकी शक्तिस्थिति कितनी है ? ७० कोड़ाकोड़ी सागर। उस कर्म की जितनी शक्तिस्थिति है वहां तक वह ऊपर चढ़ सकता है। बंधने के समय से लेकर ७० कोड़ाकोड़ी सागर तक वह सत्ता में पड़ा रह सकता है। अभी भले ही वह नीचे है परंतु हो सकता है कि वह नये बंधनेवाले के साथ ऊपर चला जाये। जब हम उत्कर्षण की चर्चा करेंगे तब उसका हम और खुलासा करेंगे।

अपनी शक्तिस्थिति जितनी है, बंधने के समय से उसमें से जितनी स्थिति बाकी है, वहां तक वे परमाणु उत्कर्षण होकर यानी उनकी स्थिति बढ़कर, ऊपर जा सकते हैं। यानी वर्तमान परिणामों से नया कर्म तो बंधता ही बंधता है, पुराने कर्मों में बहुत सारी उथल-पुथल होती है। उनमें अपकर्षण यानी स्थिति या अनुभाग का घटना, स्थिति या अनुभाग का बढ़ना, संक्रमण यानी अन्यरूप होना आदि-आदि बहुत सारी बातें बनती हैं। उन सबकी चर्चा करके जो अपना मूल विषय है, उसे हम शुरू करनेवाले हैं। तो यह शक्तिस्थिति और व्यक्तिस्थिति की बात हुयी।

श्रोता: यदि किसी एकेन्द्रिय जीव, असंज्ञी जीव ने मिथ्यात्व का एक सागर का

बंध किया है, उसके बाद वह संज्ञी पंचेन्द्रिय बन गया तो क्या वहां उसके कर्मों की स्थिति बढ़ सकती है ? बढ़ती है। जो कोई एकेन्द्रिय जीव, असंज्ञी नहीं कहेंगे; एकेन्द्रिय जीव मिथ्यात्व का अधिक से अधिक एक सागर का बंध कर सकता है, उसने एकेन्द्रिय में एक सागर का बंध किया और वही जीव संज्ञी पंचेन्द्रिय बन गया तो वहां उस कर्म की शक्तिस्थिति कितनी है ? तो कहेंगे ७० कोड़ाकोड़ी सागर। भले ही बांधा था एक सागर का, फिर भी उसमें इतनी शक्ति है कि वह ७० कोड़ाकोड़ी सागर तक जा सकता है। क्योंकि इसने जो नया बांधा है वह पंचेन्द्रिय के योग्य बांधा है और वहां पंचेन्द्रिय में उसने इतनी अधिक स्थिति बांधी तो बंधनेवाले के साथ इतनी स्थिति तक ऊपर जा सकता है। हम उत्कर्षण का स्वरूप देखेंगे तब आपको और क्लिअर होगा।

श्रोता: संज्ञी में से जब एकेन्द्रिय में जाता है तब क्या अपकर्षण होता है ? आपका प्रश्न ऐसा है कि संज्ञी में से मरकर कोई जीव जब एकेन्द्रिय में जाता है तो क्या अपकर्षण होता है ? क्योंकि अपकर्षण का स्वरूप हमें मालूम नहीं है। जब अपकर्षण की चर्चा करेंगे तब इसकी बात करेंगे। उसका स्थितिबंध घटेगा परंतु जो सत्ता में पड़े हैं उन सबकी स्थिति एक समय में एक साथ नहीं घटेगी। कोई संज्ञी पंचेन्द्रिय है, ७० कोड़ाकोड़ी का बंध किसी देव ने किया और नेक्स्ट समय में मरकर एकेन्द्रिय हुआ। अब वहां का बंध एक सागर के अनुपात में होगा, परंतु इतनी स्थिति लेकर गया है, वह घटने के लिये बहुत काफ़ी समय लगेगा। असंख्यात वर्ष बीत जायेंगे तब एकेन्द्रिय के स्थितिबंध जैसी सत्त्व की स्थिति होगी।

यह सब हम आगे देखेंगे। यह जो स्थिति है वह सत्त्व की है या बंध की है ? दो शब्द आयेंगे इसके आगे- स्थितिबंध और स्थितिसत्त्व। स्थितिबंध यानी जो नया बंध होता है उसमें जितनी स्थिति पड़ी है उसको हम कहेंगे स्थितिबंध और यह जो बंधा है उसके साथ ऑलरेडि सत्ता की जितनी स्थिति है उसको कहेंगे स्थितिसत्त्व। किसीकी सत्ता में अभी सत्तर कहो या पैसठ कोड़ाकोड़ी सागर का स्थितिसत्त्व पड़ा है और ऐसा जीव एकेन्द्रिय में चला जाये। वहां उसने एक सागर की स्थिति बांधी है तो वहां उसका स्थितिबंध तो एक सागर जितना हुआ। परंतु स्थितिसत्त्व तो पैसठ कोड़ाकोड़ी सागर का पड़ा है सत्ता में। जो ऑलरेडि पूर्व में बंधा है वह है स्थितिसत्त्व। स्थिति की बात कर

रहे हैं हम, अनुभाग की नहीं। सत्ता में जो कर्म पड़ा है उसकी जो स्थिति है उसे स्थितिसत्त्व कहेंगे। स्थितिसत्त्व यानी सत्ता की स्थिति और जो कर्म नया बंधता है उसकी जो स्थिति है उसको कहेंगे स्थितिबंध। नया बंध कितना होता है ? यदि एकेन्द्रिय से कोई पंचेन्द्रिय में आये तो नया बंध स्थितिसत्त्व से भी अधिक हो सकता है। यानी स्थितिसत्त्व से स्थितिबंध अधिक भी हो सकता है और कोई ऐसा है कि स्थितिसत्त्व बहुत अधिक है और वह एकेन्द्रिय आदि में जाये या अन्य कुछ उसकी विशुद्धि बढ़ जाये तो उसने कम स्थिति बांधी तो स्थितिबंध स्थितिसत्त्व से कम भी हो सकता है। यह कैसे होगा ? संक्लेश या विशुद्धि होती है उसके अनुसार यह होता है।

अब हम धीरे-धीरे चलेंगे क्योंकि एक-एक शब्द हमें मालूम हो रहे हैं, हम थोड़ा-थोड़ा आगे बढ़ेंगे। हमने यहां स्थिति की निषेक रचना देखी है, हम देखते हैं शास्त्र में- ज्ञानावरण की उत्कृष्ट स्थिति कितनी है ? ज्ञानावरण है, दर्शनावरण है, अंतराय है और वेदनीय कर्म - इनकी कोई जीव अधिक से अधिक उत्कृष्ट स्थिति बांधेगा तो ३० कोड़ाकोड़ी सागर की बांध सकता है और मोहनीय की ? मोहनीय में दर्शनमोहनीय में मिथ्यात्व की उत्कृष्ट स्थिति कितनी बंधती है ? अधिक से अधिक ७० कोड़ाकोड़ी सागर। हर एक को नहीं बंधती और ऐसा हो सकता है कि चारों गतियों में एक भी जीव को कितने ही काल तक यह ७० कोड़ाकोड़ी सागरवाला बंध न हो। अब कितना हो सकता है, उसका काल वगैरह उसकी चर्चा ग्रंथों में बहुत है, अभी तो हम केवल इतना देखेंगे कि उत्कृष्ट स्थिति कितनी बंध सकती है।

आयु में चार अलग-अलग प्रकार की आयु है। कौनसी चार आयु है मंजू ? हां ! मनुष्यायु, तिर्यचायु, देवायु और नरकायु। नरकायु और देवायु की उत्कृष्ट स्थिति किसीको बंधेगी तो कितनी होती है ? हां ! ३३ सागर आयु की उत्कृष्ट स्थिति है। मनुष्यायु और तिर्यचायु अधिक से अधिक कितनी बंधती है ? *श्रोता: तीन पल्य*। हां ! तीन पल्य जो भोगभूमि की आयु है। परंतु यह भी है कि भोगभूमि की आयु तो केवल मनुष्य और तिर्यच बांधेंगे। कर्मभूमि के मिथ्यादृष्टि मनुष्य और तिर्यच भोगभूमि की तीन पल्यवाली आयु बांध सकते हैं, परंतु देव और नारकी मरकर भोगभूमि में नहीं जाते हैं। वे अधिक से अधिक आयु बांधेंगे तो करोड़ पूर्व की आयु बांध सकते हैं और इतनी

बांधेंगे ही ऐसा नहीं है, छोटी भी बांध सकते हैं - अंतर्मुहूर्त की भी बांध सकते हैं। कोई देव या नारकी छोटी में छोटी एक अंतर्मुहूर्त की भी आयु बांध सकते हैं।

स्थिति अधिक से अधिक कितनी बंधती है, कम से कम कितनी बंधती है इसके अलग-अलग प्रमाण हैं। आपने तत्त्वार्थसूत्र में देखा है न ! प्रत्येक कर्म की कम से कम स्थिति कितनी बंधती है ? याद है जयश्रीबेन ? *श्रोता: अंतर्मुहूर्त बंधती है।* हां, अंतर्मुहूर्त बंधती है। जो क्षपकश्रेणी में दसवें गुणस्थान में पहुंचता है तो वहां ज्ञानावरण की, दर्शनावरण की, अंतराय की कितनी बंधेगी ? अंतर्मुहूर्त की। यशस्कीर्ति की ८ मुहूर्त बंधेगी, उच्चगोत्र की ८ मुहूर्त बंधेगी, वेदनीय की १२ मुहूर्त बंधेगी। मिथ्यात्व की कितनी बंधेगी ? *श्रोता: नहीं बंधेगी। वहां मिथ्यात्व है ही नहीं।* वहां नहीं बंधेगी, पर जहां कहीं बंधेगी मिथ्यात्व की ? हां बोलो ! अंतःकोड़ाकोड़ी सागर संज्ञी पंचेन्द्रिय को और एकेन्द्रिय को ? एक सागर में पल्य का असंख्यातवां भाग कम। यह कौनसा कर्म कौनसे जीवों में मिनिमम बंधता है, मैक्सिमम बंधता है उसके सारे नियम हैं। हमें तो केवल यहां स्थितिबंध क्या है इतना ही समझना है। हमारे ग्रंथों में तो इतना माल भरा है कि महाबंध में केवल स्थितिबंध के उपर पांचसौ-पांचसौ पेजेसवाली दो पुस्तकें हैं।

स्थिति के बारे में कोई प्रश्न नहीं है न अभी ? यह बंध के समय की बात है, बंधने के समय के बाद कर्मों में व्हेरिएशन्स होंगे। इन कर्मों में कब क्या और कैसी बातें बनेंगी, उदय कब शुरू होगा, वह बात तो अलग है। उसकी चर्चा हम बाद में करेंगे। यह बंधने के समय की बात चल रही है। हम आयु में भी देख लेते हैं। सात कर्मों में तो ऐसा ही है कि जितनी स्थिति बंधती है उसके प्रपोर्शन में आबाधा होती है। अभी देखा न ! स्थिति ७० कोड़ाकोड़ी सागर है तो सात हजार वर्ष की आबाधा होगी। परंतु अभी हमने आयु की अलग-अलग स्थिति गिनी। जैसे किसीने ३३ सागर की आयु बांधी; सर्वार्थसिद्धि की आयु मनुष्य - मुनिराज बांध सकते हैं। नरक की ३३ सागर की आयु तो मनुष्य, तिर्यच दोनों ही बांध सकते हैं तो उसकी आबाधा कितनी होगी ? सात कर्मों की आबाधा तो स्थितिबंध में से ही कट हो जाती है। आयु बिना अन्य सात कर्मों में आबाधा जो है वह जितनी स्थिति बंधी है उसीमें से कट हो जाती है और निषेक रचना ? पूर्ण स्थिति में से आबाधा को मायनस करो उतनी होती है। उसको कहते हैं

उदयकाल; जितना उदयकाल है उसके प्रत्येक समय में एक-एक निषेक पड़ा है।

आयुकर्म में क्या होता है ? मान लेते हैं यहां पर आयु बंधी। आयु कब बंधती है ? पूर्व भव में बंधती है। हम जो यहां मनुष्यायु भोग रहे हैं - जो आयु अभी वर्तमान में चल रही है, जिसका उदय चल रहा है, उसको कहेंगे हम यह आयु भोग रहे हैं - इसको कहेंगे भुज्यमान आयु। यह भुज्यमान आयु कब बंधी थी ? पूर्व भव में। इस भव में आगामी एक ही भव की आयु बंधती है, सात-आठ भवों की आयु नहीं बांध सकते। जैसे सात-आठ पीढ़ी के लिये कमाकर रखते हैं वैसे सात-आठ भवों के लिये आयु नहीं बांधी जाती। तो आयु यहां बंधी, अभी अपनी इतनी भुज्यमान आयु बाकी है और उसके ऊपर यह बंधी हुयी आयु है। यानी आबाधाकाल कहां बीत जाता है ? वर्तमान जो आयु भोग रहे हैं उसमें। अभी हमने इस भव में - यह मनुष्यायु है, हमने देवायु बांधी। कब बांधी ? मनुष्यायु के त्रिभाग का जो नियम होता है - त्रिभाग में बंधती है। भुज्यमान आयु का टू थर्ड बीत जाये - दो तिहाई बीत जाये और एक तिहाई यानी वन थर्ड - त्रिभाग बाकी रहे, तब आगामी आयु का अर्लिएस्ट बंध हो सकता है। कोई इक्यासी वर्ष की आयुवाला है, लेकर आया है, हमें पता नहीं हम कितनी आयु लेकर आये हैं; तो उसका एक्झैक्ट टू थर्ड बीत जाता है, तब एक अंतर्मुहूर्त तक आयुबंध का अवसर आता है। उस समय उसने आयु बांधी। अभी उसके सत्ताईस साल बाकी हैं यानी उसकी नयी बंधी हुयी आयु की आबाधा कितनी हुयी ? सत्ताईस साल। फिर इस सत्ताईस साल की आबाधा के साथ - हो सकता है उसने अंतर्मुहूर्त की आयु बांधी है या ३३ सागर की बांधी है - उसके लिये आबाधा उतनी ही है। यानी आयु में आबाधा का प्रपोर्शन स्थिति के अनुसार नहीं होता, शेष भुज्यमान आयु जितना आबाधा का प्रमाण होता है। यह एक बात है। दूसरी भी एक बात है।

एक बार आयु का बंध हुआ तो उसकी आबाधा नक्की हो गयी और जिसने आगामी भव की आयु बांधी है उसका अभी आबाधाकाल में मरण नहीं होगा। मरण नहीं होगा यानी वह कदलीघात से जो मर सकते हैं न, अकालमृत्यु जो कहते हैं, वह जिसने आयु बांधी हो उसके नहीं होता। क्योंकि उसकी आयु की आबाधा अभी नक्की हो गयी है। हम देखते हैं कितने वृद्ध हैं, बहुत बीमार हैं, सालों से बेड पर हैं, इतनी

बीमारी चलती है। परंतु उनकी लाइफ चलती रहती है क्योंकि आगामी आयु का बंध हो गया है। कदलीघात यानी ? मान लेते हैं कोई सौ साल की आयु लेकर आया है और हम देखते हैं पच्चीस साल का युवान है और कुछ बातें हो जाती हैं और वह बीच में ही मर जाता है। यह कोई जरूरी नहीं है कि जो ऑक्सिडेंट में मरनेवाला वह कदलीघात से मरेगा, हो सकता है कि वह उतनी ही आयु लेकर आया है। यह भी संभव है कि लंबी आयु बांधकर आया था परंतु बहुत जल्दी ही उसका कदलीघात से मरण हुआ।

अभी वह क्या प्रोसेस होता है वह अलग बात है, उसको शास्त्रीय शब्द में कहेंगे कदलीघात से मरण हुआ; आयु के सारे निषेक जो ऊपर तक बने थे वे सारे के सारे निषेक घात होकर नीचे आ जाते हैं और वहां पर जाकर आयु का बंध होता है और फिर वह जीव मर जाता है। अब उसका कारण क्या है, कैसे होता है उसको अभी हम छोड़ देंगे। इतनी बात ख्याल में रखना है कि आयु की जितनी स्थिति बंधती है, वह पूरी की पूरी स्थिति वह आयु का उदयकाल है। यानी हमने सौ साल की आयु बांधी तो सौ साल तक हमारा आगामी जीवन चलेगा। आबाधा उसमें नहीं गिनी जायेगी। अन्य कर्मों में आबाधा को छोड़कर शेष उदयकाल है और आयुकर्म में आबाधा तो पूर्वभव में चली जाती है और आगामी भव संबंधी जितने निषेक बांधे - जितनी स्थिति बांधी उतना आयुकर्म का उदयकाल होता है।

श्रोता: पहले तिहाई में जो आयु बंधी है, दूसरे तिहाई में जो आयु बांधेगा उसमें कुछ चेंज हो सकता है क्या ? हां उसी आयु संबंधी स्थिति बढ़ भी सकती है। जितनी बढ़ी है उसको वहां पर गिनेंगे। जितनी बढ़कर बांधी है उसको हम गिनेंगे या घटकर बांधी है तो पूर्व में जितनी अधिक बांधी थी उसको हम गिनेंगे। यह हो सकता है। परंतु पहले मनुष्यायु बांधी हो और बाद में देवायु या कोई अन्य आयु बांधे ऐसा कभी नहीं होता। ऐसे आठ बार आयुबंध के अवसर आ सकते हैं। यह जरूरी नहीं है कि आठों ही बार आयु का बंध कोई करे। कोई एक बार भी करे, कोई दो बार भी करे और आठों ही बार न होवे तो मरण के एक अंतर्मुहूर्त पहले तो आयु बंधती ही बंधती है। यानी आयु नहीं बंधी और बीच में लटक रहा है, अभी कहां जाना ? क्या करना ? ऐसा कुछ नहीं है। सारा ऑटोमैटिक प्रोसेस है। हर समय हम जो परिणाम करते हैं तो सभी

कर्म अपने आप बंधते रहते हैं और उनका फल भी मिलता है। बंधते समय तो कुछ नहीं लगता है, इन्द्रियों के भोग भोगने में और ये सारे कषाय करने में अच्छा लगता है। परंतु जब उसका फल भोगने का समय आता है, तब क्या होता है ? दुःख होता है।

अभी हम अनुभाग की रचना देखेंगे। कर्मों में अनुभाग की रचना होती है यानी क्या होता है ? हमने देखा था जहां तीव्र कषाय है वहां अप्रशस्त कर्मों का अनुभाग अधिक बंधता है। अप्रशस्त कर्म कौनसे देखे थे ? हां ! घातिकर्मों में देखा था। घातिकर्म की ४७ प्रकृतियां तो अप्रशस्त हैं ही और अघातिकर्मों में भी दो ग्रुप बनाये थे - प्रशस्त और अप्रशस्त। ये जो-जो अप्रशस्त कर्म हैं घाति के भी और अघाति के भी उनमें तीव्र कषाय से अधिक अनुभाग बंधता है, मंद कषाय से कम अनुभाग बंधता है। यह बात ख्याल में आयी ? अब अनुभाग रचना होती है तो कैसे होती है ? इसके लिये जरा विस्तार से समझना जरूरी है। आप १३ नंबर का पृष्ठ निकालना। यहां एक उदाहरण दिया है और उसके आधार से यह मूल बात समझायी है।

हमने देखा था कि यहां तो प्रत्येक कर्म परमाणु में अपना-अपना अलग-अलग अनुभाग बंधेगा। जैसे एक ही समय में बंधे हुये परमाणुओं में अलग-अलग स्थिति बंधती है। यहां देखी न हमने ? एक ही समय में इतने अनंत परमाणु बंधे हैं - किसीकी स्थिति इतनी, किसीकी इतनी, इतने असंख्यात व्हेरिएशन्स हुये स्थिति में। इसको हम व्यक्तिस्थिति कहते हैं। ऐसे ही एक ही समय में अनंत कर्म परमाणु बंधे हुये हैं, स्थिति में तो असंख्यात ही व्हेरिएशन्स होते हैं क्योंकि ७० कोड़ाकोड़ी सागर के समय कितने हैं ? तो असंख्यात हैं, अनंत नहीं। उसीप्रकार कम से कम स्थिति भी अंतर्मुहूर्त प्रमाण बंधती है, संख्यात समय की नहीं। इसलिये स्थिति में व्हेरिएशन्स यानी कितने अलग-अलग प्रकार होंगे ? असंख्यात। स्थिति के असंख्यात भेद हो सकते हैं। परंतु एक समय में जो अनंत परमाणु बंधे हैं उसमें अनुभाग के अलग-अलग स्थान-व्हेरिएशन्स कितने हो सकते हैं ? अनंत हो सकते हैं। अनंत- अभी वे कैसे होते हैं ? उसको हम बहुत स्थूलरूप से देखेंगे। यहां चार्ट में लिखा है, अनुभाग रचना में स्पर्धक होते हैं। यह वर्ग, वर्गणा, स्पर्धक क्या होते हैं ? उसकी बात हम यहां देखेंगे। अभी आपने पढ़ा होगा न - समयसार की पचास से पचपन गाथा में, क्या पढ़ा ? श्रोता: उनतीस बोल। हां !

उनतीस बोल हैं न - मैं वर्ग नहीं, मैं वर्गणा नहीं, मैं स्पर्धक नहीं, मैं अनुभागस्थान नहीं। वह क्या होता है ? किसको पता ? हम वह नहीं है न ? बस ! पृष्ठ १३ निकालना, ऊपर जहां पेज पर लब्धिसार भूमिका लिखा है - नीचे से दूसरा जो बीचवाला पॅरेग्राफ है न !

शक्ति के अविभाग अंश का नाम अविभागप्रतिच्छेद है। अ + विभाग यानी जिसका दूसरा विभाग नहीं होता। वैसे प्रतिच्छेद यानी शक्ति का छोटे में छोटा अंश। किसी भी पर्याय की शक्ति नापनी है; यहां हम कर्मों की शक्ति नाप रहे हैं। अब पर्यायों की शक्ति नापनी है तो ज्ञान के अविभागप्रतिच्छेद कहेंगे, दर्शन के अविभागप्रतिच्छेद कहेंगे, लब्धि के अविभागप्रतिच्छेद कहेंगे। यहां हम कर्मों के अविभागप्रतिच्छेद देख रहे हैं। प्रत्येक कर्म परमाणु में अपनी-अपनी जो फलदान शक्ति है, उस शक्ति का यूनिट क्या है ? एकक क्या है ? किसमें नापेंगे हम ? जैसे कपड़ा नापना है तो मीटर में नापेंगे और दूध ? लीटर में या किलो में ? आप के वहां डझन का हिसाब नहीं चलता, किलो का चलता है न ? केला-वेला किलो में मिलता है न ? *श्रोता: डझन का हिसाब होता है।* जयपुर वगैरह में तो किलो का चलता है। हां !

यहां कर्म की शक्ति किसमें नापेंगे ? यह शक्ति किसमें नापना है तो कहेंगे अविभागप्रतिच्छेदों में। ये शक्ति के अंश कहलाते हैं। अब ऐसी शक्ति के अंश प्रत्येक कर्म परमाणु में हैं। कर्म परमाणु उसीको कहते हैं कि विशिष्ट प्रकृति के वे परमाणु हैं और उनमें फल देने की विशिष्ट शक्ति है। कितनी शक्ति है ? कम है कि अधिक है ? वह शक्ति भी अनंतों में होती है यानी कर्म में उसकी शक्ति के अनंत अविभागप्रतिच्छेद होते हैं, पर समझने के लिये हम उदाहरण के तौर पर छोटी संख्या लेकर उसको समझाएंगे। शक्ति के अविभागप्रतिच्छेद हैं यानी प्रत्येक कर्म परमाणु में अपनी-अपनी विशिष्ट शक्ति है। जैसा हमने देखा प्रत्येक कर्म परमाणु में अपनी विशिष्ट स्थिति है; अलग-अलग स्थिति प्रत्येक में बंधी है। ऐसे ही उसमें अनुभागबंध होता है, वह तो जितने अनंत परमाणु बंधे, प्रत्येक परमाणु में अलग-अलग अनुभाग की शक्ति होती है, फल देने की शक्ति होती है। एक कर्म परमाणु को एक वर्ग कहते हैं। क्या कहेंगे उसको ? वर्ग। वर्ग क्यों कहते हैं ? क्योंकि उसमें शक्तियों का समूह है। देखो आगे – **उनके समूह से युक्त एक परमाणु का नाम वर्ग है।** यानी प्रत्येक कर्म

परमाणु को हम वर्ग कहेंगे। उसकी अपनी-अपनी शक्ति अलग-अलग है।

समान अविभागप्रतिच्छेदों से युक्त जो वर्ग, उनके समूह का नाम वर्गणा है। जैसे हमने यहां क्या देखा था ? जिनकी-जिनकी स्थिति समान है उन परमाणुओं के समूह को हमने निषेक कहा था। ऐसे यहां पर जिनकी-जिनकी शक्ति समान है, उन परमाणुओं के ग्रुप को हम क्या कहेंगे ? वर्गणा। यहां तक बात ख्याल में आयी ? जिनमें मिनिमम शक्ति है ऐसे परमाणुओं के समूह को कहेंगे प्रथम वर्गणा। उससे एक अविभागप्रतिच्छेद ज्यादा है ऐसे परमाणुओं के समूह को कहेंगे दूसरी वर्गणा, और एक अविभागप्रतिच्छेद ज्यादा है तो तीसरी वर्गणा। इसतरह से उसमें वर्गणा होंगी। कहां तक ? एक-एक अविभागप्रतिच्छेद से बढ़ती हुयी अनंत वर्गणा होती हैं। उसके बाद क्या होता है ? उसको हम उदाहरण के द्वारा समझेंगे। हम मान लेते हैं कि जो कोई जघन्य वर्गणा है। वर्गणा का अर्थ क्या है ? ग्रुप ऑफ़ परमाणु। इसमें अनेक परमाणु हैं, यह निषेक नहीं हैं। ये वर्गणा हैं क्योंकि निषेक को हमने आड़ी लाइन में बताया था और एक-एक निषेक में अनंत परमाणु हैं। उनमें कुछ परमाणु ऐसे हैं जिनमें शक्ति कम है, कुछ ऐसे हैं कि शक्ति अधिक है। प्रत्येक निषेक में शक्तियों के अनंत व्हेरिएशन्स हैं। ऐसा नहीं है कि नीचे के निषेकों में अनुभाग कम है और ऊपर ज्यादा। ऐसा बिलकुल नहीं है, ऐसा हम भी समझते थे पहले, ऐसा नहीं है। तो क्या है ?

हर एक निषेक में अनंत परमाणु हैं। उनमें से कुछ परमाणु कम अनुभागवाले, कुछ और अधिक अनुभागवाले, कुछ और अधिक अनुभागवाले, कुछ और अधिक, कुछ एकदम ज्यादा उत्कृष्ट अनुभागवाले होते हैं। अब हम इसको इसतरह से बतायेंगे। निषेक की अपेक्षा ये आड़े फैले हुये हैं। अनुभाग की रचना हम अलग से देख रहे हैं। जैसे स्कूल में भी अल्फाबेटिकल नंबर अलग लगाते हैं, हाइट की अपेक्षा अलग नंबर लगाते हैं, मार्क्स की अपेक्षा अलग नंबर लगायेंगे, यहां हम अनुभाग की अपेक्षा बता रहे हैं। जिनमें-जिनमें मिनिमम अनुभाग है, हम उनमें अविभागप्रतिच्छेद १०० मानते हैं, तो १०० अविभागप्रतिच्छेदवाले जितने-जितने परमाणु हैं; होते तो अनंत हैं; उनके ग्रुप को हम कहेंगे पहली वर्गणा। जिनमें-जिनमें १०१ है उनके ग्रुप को हम कहेंगे दूसरी वर्गणा। १०२ वाले की तीसरी वर्गणा। हम चले जायेंगे १२० तक। उसके

बाद क्या होता है ? यहां १०० से शुरू किया था न ? १२० के ऊपर बीच में गॅप छोड़कर डायरेक्ट २०० वाले लेंगे हम। यह २०० वाली जो वर्गणा है वह १०० वाली से डबल हो गयी; पहले से डबल हो गयी। १०० से १२० वाली वर्गणाओं के समूह को हम पहला स्पर्धक कहेंगे। उसके बाद २०० से २०१, २०२, २०३... २२० तक चले जायेंगे। वह क्या होगा ? दूसरा स्पर्धक। तीसरे स्पर्धक में ३०० से शुरू हो जायेंगे। यानी १०० से तीनगुणा - ३०१, ३०२ इसतरह से वह तीसरा स्पर्धक। ऐसे एक समय में बंधे हुये में अनंत स्पर्धक होते हैं और हर निषेक में इतने अनंत स्पर्धक होंगे, एक ही निषेक में नहीं।

श्रोता: एक ही परमाणु निषेक के रूप में और अनुभाग के रूप में कार्य करता है क्या कि अलग अलग-अलग दोनों ? दोनों का कार्य अट अ टाइम चलता है। एक ही निषेक में प्रत्येक परमाणु में तो कोई एक स्थिति पड़ी है और कोई विशिष्ट अनुभाग पड़ा है। एक परमाणु में अपना-अपना अलग-अलग अनुभाग है। यानी स्थिति की अपेक्षा परमाणुओं को हम अलग-अलग निषेकों में बतायेंगे और एक ही निषेक में अनुभाग की अपेक्षा उनकी रचना अलग-अलग होगी। *श्रोता: और यह भी जिनवाणी में आता है स्थिति की अपेक्षा और अनुभाग की अपेक्षा उसको अलग-अलग नाम देंगे।* स्थिति की अपेक्षा निषेक और अनुभाग की अपेक्षा उसको स्पर्धक कहेंगे। परंतु यहां जो अनंत स्पर्धक हैं वे प्रत्येक निषेक में पड़े हैं। एक-एक निषेक में अनंत स्पर्धक पड़े हैं। ऐसा नहीं है कि नीचे का स्पर्धक है तो जल्दी उदय में आयेगा। ऐसे जघन्य स्पर्धक भी सर्व निषेकों में पड़े हैं और उत्कृष्ट स्पर्धक भी सर्व निषेकों में पड़े हैं। यानी सभी निषेकों में जघन्य से उत्कृष्ट तक स्पर्धक पड़े हैं।

स्पर्धक किसको कहा था ? वर्गणाओं के समूह को। एक-एक वर्गणा में अनंत वर्ग होते हैं और एक-एक स्पर्धक में अनंत वर्गणा होती हैं। प्रथम स्पर्धक की प्रथम वर्गणा से दूसरे स्पर्धक की प्रथम वर्गणा में दोगुणा अविभागप्रतिच्छेदवाले वर्ग होते हैं। तीसरे स्पर्धक की प्रथम वर्गणा में तीनगुणा, चौथे की प्रथम वर्गणा में चारगुणा होते हैं। अनंतवां स्पर्धक है तो उसकी प्रथम वर्गणा के वर्गों में अविभागप्रतिच्छेद अनंतगुणा होते हैं। इसतरह से यहां वर्ग, वर्गणा स्पर्धकों की बातें समझायी जाती हैं। प्रत्येक कर्म में अपनी-अपनी फलदान शक्ति है। जब बंध होता है तब उसको हम ऐसा बतायेंगे।

बंधने के बाद उसका अनुभाग घटना-बढ़ना वगैरह जो बातें चलती हैं तो वह घटने-बढ़ने का जब विषय आयेगा तब उसे समझायेंगे। यह बात ख्याल में आयी यहां पर ? अनुभाग की अपेक्षा अनंत व्हेरिएशन्स हैं, व्हेरिएशन्स को ही स्थान कहेंगे। स्थिति की अपेक्षा अलग-अलग असंख्यात व्हेरिएशन्स हैं क्योंकि वे सागरों में होते हैं और सागरों के समय तो असंख्यात होते हैं; अनंत नहीं होते।

अब हम यहां पढ़ेंगे, इसका अर्थ भी आपको ख्याल में आयेगा। देखो, **शक्ति के अविभाग अंश का नाम अविभागप्रतिच्छेद है। उनके समूह से युक्त एक परमाणु का नाम वर्ग है। समान अविभागप्रतिच्छेदों से युक्त जो वर्ग उनके समूह का नाम वर्गणा है** यानी सबमें समान अविभागप्रतिच्छेद हैं। **वहां सबसे अल्प अनुभाग युक्त परमाणु का नाम जघन्य वर्ग है। जघन्य वर्गों के समूह को हम जघन्य वर्गणा या पहली वर्गणा कहेंगे, नीचे की। जघन्य वर्ग से एक अधिक अविभागप्रतिच्छेद से युक्त जो वर्ग, उनके समूह का नाम द्वितीय वर्गणा है।** अभी हमने देखा न ! १०० वाली एक वर्गणा। १०० वाली एक वर्गणा का अर्थ यह है कि उस वर्गणा का प्रत्येक परमाणु १००- १०० अविभागप्रतिच्छेदवाला है। फिर १०१ वाली वर्गणा में हर एक वर्ग १०१ वाला है। उसको कहेंगे दूसरी वर्गणा। इसी क्रम से एक-एक अविभागप्रतिच्छेद से अधिक यानी बढ़ते हुये वर्गों के समूहरूप वर्गणा जहां तक होती हैं। हमने उदाहरण के तौर पर १००, १०१, १०२ ऐसे १२० तक बताये थे आपको। *श्रोता: सिद्धान्त में ?* सिद्धान्त में अनंत होती हैं।

श्रोता: जघन्य होगी उसमें भी अनंत अविभागप्रतिच्छेद हैं ? जघन्य वर्गणा के प्रत्येक वर्ग में अनंत अविभागप्रतिच्छेद हैं और एक स्पर्धक में वर्गणा भी अनंत होती हैं। अभी अनंत में भी व्हेरिएशन्स जो हैं वे कैसे समझायेंगे ? इसलिये उसको हम उदाहरण के तौर पर बतायेंगे। यह १०० वाला उदाहरण कहीं ग्रंथों में, आगम में नहीं है यह मैंने अपनी ओर से बता दिया था। देखो, आपके सामने चार्ट है न अनुभाग संबंधी ? अविभागप्रतिच्छेद किसको कहा ? शक्ति के सबसे सूक्ष्म अंश को। यहां हम कर्म की बात कर रहे हैं तो कर्म के फलदान की शक्ति लेंगे। यहां वर्ग किसको कह रहे हैं ? कर्म परमाणु को। अन्य-अन्य जगह वर्ग का अर्थ भी अलग-अलग है; जैसे योग का

प्रकरण पढ़ेंगे तो आत्मप्रदेशों में योग होता है, वह हीनाधिक होता है। तब आत्मप्रदेशों को वर्ग कहेंगे और फिर योग में वर्ग, वर्गणा, स्पर्धक की बात करेंगे। यहां हम कर्मों की बात कर रहे हैं इसलिये ब्रैकेट में कर्म परमाणु लिखा है। वर्ग का अर्थ हर जगह कर्म परमाणु ऐसा नहीं होता। जो विषय चल रहा है उसकी बात है। तो यह अविभागप्रतिच्छेदों का समूह वर्ग है। वर्गणा किसको कहते हैं ? समान अविभागप्रतिच्छेदों से युक्त वर्गों के समूह को। यह भाषा ख्याल में आ रही है न ?

श्रोता: यह असमान भी होते हैं क्या ? असमान हो तो दूसरे स्पर्धक में जायेंगे, दूसरी वर्गणा में जायेंगे। जो समान हैं उनका हम ग्रुप बनायेंगे, असमान तो हैं ही। अनंत असमानता है, अनंत व्हेरिएशन्स हैं। जिनमें-जिनमें समानता है उनका हम ग्रुप बनायेंगे। *श्रोता: यह स्कंध हैं क्या ?* स्कंध नहीं हैं। वर्गणा अलग होती है, स्कंध अलग होते हैं। जब हम सिद्धान्त प्रवेशिका सीखते हैं, तो वर्गणा को हमने स्कंध भी कहा था। वर्गणा अलग बात है, स्कंध अलग बात है। वर्गणा शब्द अनेक जगह आता है। वर्गों के समूह को वर्गणा कहते हैं। अभी हमने योग के प्रकरण में आत्मप्रदेशों की बात की थी; आत्मा के जितने असंख्यात प्रदेश हैं उनमें से जिन-जिन प्रदेशों में समान योग होगा उनको वर्गणा कहेंगे। उसमें भी सभी प्रदेशों में एक समान योग नहीं होता, हीनाधिक होता है। इसलिये वर्गणा इज ईक्वल टू स्कंध यह बात घटित नहीं होती, वह बात अलग है। यहां इतना ही लेना है समान अविभागप्रतिच्छेदों से युक्त जो वर्ग हैं, उनके समूह को हम वर्गणा कहेंगे।

स्पर्धक किसको कहना ? जो जघन्य वर्गणा के वर्गों में अनुभाग है उसमें एक अविभागप्रतिच्छेद ज्यादा होगा तो दूसरी वर्गणा, और एक अधिक होगा तो तीसरी, और एक अधिक होगा तो चौथी, इसतरह से वर्गणा तो अनंत होती हैं। उसके बाद पहली वर्गणा के प्रत्येक परमाणु में जो अविभागप्रतिच्छेद थे उससे जब दोगुणा हो जायेंगे वहां से दूसरा स्पर्धक शुरू हो जायेगा। *श्रोता: इसका अनंत में ही मल्टिप्लिकेशन होता है ?* अनंत में ही होता है। अनंत को दोगुणा, अनंत को तीनगुणा, अनंत को अनंतगुणा करेंगे इसतरह से बात होगी। यथार्थ में जो इसके गणित हैं न, वे बाद में अर्थसंदष्टि में दिये हैं। यह तो हम उदाहरण के तौर पर सिम्पल जो गणित है,

उसको छोटी-छोटी संख्या लेकर समझा रहे हैं। यथार्थ में जो उनकी संख्या होती है उसको अलग से समझाया है।

यह पं. टोडरमलजी की विशेषता है ! इसको कहते हैं अंकसंदृष्टि। यानी हमें जो मालूम है ऐसी छोटी-छोटी संख्या लेकर विषय को समझाया जाता है तो हमें थोड़ी-थोड़ी आयडिया आयेगी; क्या कैसे बढ़ता है, क्या होता है, कितना होता है। तो उसको कहेंगे अंकसंदृष्टि। जो अनंतों में - यथार्थ में उसका सारा गणित करके समझायेंगे उसको कहेंगे अर्थसंदृष्टि और उसको भी सिम्बॉल्स बनाकर समझाया जाता है तो बहुत सरल हो जाता है। इतने बड़े-बड़े गणित भी सेकंडों में करके बताते हैं। इतना सारा ज्ञान का भंडार हमारे पास उपलब्ध है ग्रंथों में, पर हमें फुरसत कहां है पढ़ने की ? है न ! यह अर्थसंदृष्टि भी बहुत पढ़ने लायक है। जीवकाण्ड की अर्थसंदृष्टि अलग है, कर्मकाण्ड की अलग बनायी है और यह लब्धिसार-क्षपणासार की अलग बनायी है। हमारे करणानुयोग के जितने आगम ग्रंथ हैं उनमें वे संदृष्टियां तो बनायी हैं, कहीं भी उसका एक्स्प्लनेशन नहीं है।

पं. टोडरमलजी की विशेषता है कि उन्होंने जो संस्कृत ग्रंथ पढ़े थे वे कन्नड लिपि में थे। हम देवनागरी लिपि में पढ़ते हैं न। यह मराठी, हिंदी, संस्कृत जो लिखा जाता है जो स्क्रिप्ट है - लिपि है वह देवनागरी है। वह तो पढ़ सकते हैं हम, पर कोई कन्नड लिपि होगी, भले ही हिंदी में लिखा होगा हम कैसे समझेंगे ? उनके सामने तो ऐसे संस्कृत ग्रंथ थे जो कन्नड लिपि में लिखे हुये थे; संस्कृत ग्रंथ - भाषा संस्कृत और लिपि कन्नड। उसका सारा अर्थ समझा, उन्होंने स्वयं बहुत अभ्यास किया और संदृष्टियों के अर्थ उन्होंने एक-एक संदृष्टि लिखकर उसका अर्थ घटित किया। फिर वे संदृष्टियों के गणित कैसे करना उसको समझाया और फिर उसको प्रस्तुत किया। बहुत अधिक मेहनत की है उन्होंने। उनकी यही भावना थी कि सामान्य जन-जन इस विषय को समझे।

करणानुयोग के अभ्यास के लिये तो उन्होंने बहुत प्रेरणा दी है इस पीठिका में; अभी इस लब्धिसार के हिंदी अनुवाद में पीठिका नहीं ली है, सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका

जीवकाण्ड और कर्मकाण्ड में वह पीठिका उन्होंने ली है, मूल लब्धिसार में भी ली थी। वह पीठिका बिलकुल पठनीय है। यानी उन्होंने लोगों को इसको पढ़ने के बारे में प्रेरित किया और इसके बारे में जो कोई मिथ्या मान्यतायें हैं न ? इसको पढ़कर क्या करना है ? क्या इसके बिना सम्यग्दर्शन नहीं होता है ? ऐसी-ऐसी बातें होती हैं उनका समाधान किया है। *श्रोता: आचार्य का है ना यह ?* हां, उनको टाइमपास नहीं हो रहा था इसलिये लिखकर गये ? क्या है ? ऐसा लगता है कि यह भूगोल जानने से क्या ? हमको तो आत्मा में जाना है। अभी कहां बैठे हो ? जानने का स्वभाव है तो सब कुछ सही जानने का स्वभाव है आत्मा का कि गलत जानने का कि नहीं जानने का स्वभाव है ? जानना स्वभाव है तो सब कुछ जानने का और सही जानने का स्वभाव है। तो इसको जानने से हमें सही नॉलेज, सही जानकारी मिलती है और अपना स्वरूप और अधिक क्लियर हो जाता है, स्पष्ट हो जाता है। जीव और कर्म का, जीव और पुद्गल का भेदज्ञान होने में बिलकुल सरल हो जाता है। जैसे हाथ में रखे हुये आंवले के समान जो कहते हैं न, इसतरह से स्पष्ट हो जाता है।

ऐसा कभी मन में भी नहीं लाना कि इसको समझकर क्या करेंगे ? बहुत बोझा लगता है। बाकी कुछ बोझा नहीं लगता, जब करणानुयोग की बात आती है तभी बोझा लगता है। *श्रोता: अनभ्यास है !* अनभ्यास नहीं यह पहले ही ब्लॉक लगाकर रखा है। कहते हैं हम नहीं समझना चाहते, यह बहुत कठिन बात है। इसलिये तो पं. टोडरमलजी ने गणित को अलग निकाला और उसका संदृष्टि अधिकार अलग से बनाया और बाकी वस्तु वहां रखी है जो मूल विषयवस्तु है। उन्होंने वहां लिखा भी है- सौ बातों में से एक या दो बातें भी समझ में आयेगी तो आपका कल्याण हो जायेगा। अभी हम आगे बढ़ेंगे।

स्पर्धक क्या होता है ? अनंत वर्गणाओं के समूह को हम स्पर्धक कहेंगे। यानी एक-एक अविभागप्रतिच्छेद से बढ़ती हुयी अनंत वर्गणाओं के समूह को हम स्पर्धक कहेंगे। दूसरा स्पर्धक कहां से शुरू होगा ? पहले हमने संदृष्टि में - गणित में क्या देखा था ? १००, १०१, १०२, १०३.... १२० वाली वर्गणा तक। फिर बीच में गैप है १२१, १२२ वाली वर्गणा मैंने आपको नहीं बतायी थी। डायरेक्ट २०० वाली बतायी थी। यह १०० से

लेकर १२० वाली वर्गणा तक है वह क्या होगा ? पहला स्पर्धक। यह १०० मैंने आपको समझाने के लिये कहा, वह तो अनंतों में होता है और वह अनंत भी अनंत तक बढ़ता चला जाता है। फिर जब २०० हो जायेंगे, जिस वर्गणा में अविभागप्रतिच्छेद दो गुणा हो जायेंगे वहां से दूसरा स्पर्धक। *श्रोता: १२० से २०० के बीच का ?* गॅप है। *श्रोता: वहां क्या हैं ?* वहां कोई वर्गणायें नहीं हैं। डायरेक्ट दूसरा स्पर्धक चालू हो जायेगा। इसतरह से हमने तो यहां केवल स्पर्धक बतायें हैं। पहले जो चार्ट बताया था न ! आपके पास जो तीन नंबर का चार्ट है - अनुभाग रचना में जघन्य स्पर्धक यानी पहला स्पर्धक यानी उसमें अनंत वर्गणा। फिर दूसरे स्पर्धक में अनंत वर्गणा, फिर तीसरे स्पर्धक में अनंत वर्गणा... इसतरह से चलेगी बात। अब यहां पुस्तक में पढ़ते हैं, देखो !

श्रोता: आपने कहा १२० के बाद यह भी पॉसिबिलिटी है कि नहीं भी हो सकती है उस जाति की वर्गणा ? नहीं होती, होती ही नहीं वहां पर। *श्रोता: जिसमें वह शून्य वर्गणा होती हैं ?* नहीं ! वह बात अलग है शून्य वर्गणा आदि बातें अलग हैं यह कर्म परमाणुओं की वर्गणा अलग बात है। यह कार्माणवर्गणा इटसेल्फ वर्गणा का एक अलग प्रकार है। *श्रोता: उस जैसा एक एक्झॅम्पल दीजिये।* हां ! एक्झॅम्पल में जैसे शून्यवर्गणा में वहां वर्गणायें नहीं थी, वैसे यहां पर एक स्पर्धक की अनंत वर्गणाओं के ऊपर भी गॅप होता है। वहां कोई उस जाति की वर्गणा पायी नहीं जाती। परंतु अभी हमने जैसा निषेक में देखा था न ! देखो आपके तीन नंबर का चार्ट - नीचे के निषेक बड़े थे और ऊपर कम होते चले जाते हैं। एक-एक स्पर्धक में जितनी वर्गणा हैं, सब वर्गणाओं को हम एक के ऊपर एक लाइन में लिखेंगे। वर्गणाओं की कतार-लाइन में प्रथम वर्गणा जो कम से कम अनुभागवाली है उसमें प्रदेश यानी परमाणु ज्यादा हैं, दूसरी वर्गणा में थोड़े कम हैं। तीसरी वर्गणा में और थोड़े कम हैं। अविभागप्रतिच्छेद एक-एक से बढ़ता है और परमाणुओं की संख्या घटती चली जाती है। यानी सभी वर्गणाओं को हम एक के ऊपर एक रखेंगे, कंटिन्युएशन में। पहले स्पर्धक में और दूसरे स्पर्धक में अनुभाग में गॅप है, परंतु सभी स्पर्धकों की सभी वर्गणाओं को हम एक के ऊपर एक रखेंगे तो जैसे निषेक में रचना देखी न हमने, वैसे वहां वर्गणाओं में भी दिखायी देगी। इसका उपयोग आगे चलकर होगा। अभी यह कोई मायने नहीं रखता

परंतु यह इसलिये समझाना है क्योंकि आगे के दो शब्द और समझाना है आपको।

एक है गुणहानि। स्पर्धक तो हमने देख लिया, वर्गणाओं के समूह को स्पर्धक कहते हैं। अब यह जो प्रति वर्गणा, जो थोड़े-थोड़े परमाणु घटते चले जायेंगे तो जहां पहली वर्गणा से परमाणुओं की संख्या आधी हो जायेगी; मान लेते हैं पहली वर्गणा में एक लाख परमाणु हैं और घटते-घटते वे जिस वर्गणा में पचास हजार हो गये वहां तक के जितने स्पर्धक हैं या वर्गणायें कहो, उन सबको मिलकर कहेंगे गुणहानि - गुणित प्रमाण में हानि। आधे हो गये न ! आधे ही को कहेंगे दो गुणहानि, उसीका दूसरा नाम है द्विगुणहानि। द्विगुणहानि का अर्थ क्या है ? दोगुणा हानि यानी आधा। चारगुणा हानि यानी वन फ़ोर्थ। हां ! यानी एक चौथाई। तो इसको कहेंगे दो गुणहानि... इसका नाम ही है गुणहानि, इसको कहेंगे गुणहानि। अभी इतना ही शब्द समझना। इसका अभी हमें कोई प्रयोजन नहीं है।

गुणहानि में कितने स्पर्धक होते हैं ? अनंत स्पर्धक होते हैं। एक स्पर्धक में अनंत वर्गणा ऐसे अनंत स्पर्धक जाकर परमाणुओं की संख्या आधी हो जायेगी उसको कहेंगे एक गुणहानि और ऐसी गुणहानियां भी अनंत होती हैं। यानी एक समय में जीव कितने परमाणु बांधता होगा इसकी थोड़ी आयडिया आ जायेगी और उसमें कितने सारे व्हेरिएशन्स होते हैं और उनका अलग-अलग उदय होता है। कभी तीव्र अनुभागवाले उदय में आयेंगे तो कभी मंद आयेंगे क्योंकि जो उदयरूप निषेक है उसमें सभी अनुभागवाले परमाणु पड़े हैं। क्या कहा ? सभी अनुभागवाले वहां पड़े हैं, परंतु जीव कैसा भाव करेगा ? अभी तक सोचते थे - क्या करें ! जैसा कर्म का उदय आयेगा जीव को वैसा करना पड़ता है - ऐसा नहीं है। क्योंकि निमित्त उसीको कहते हैं जब उपादान से कार्य होता है, तब वहां जो प्रेझेंट है। वहां तो सभी प्रेझेंट थे। सभी प्रेझेंट थे तो हम निमित्त किसको कहेंगे ? जिस रूप से जीव परिणाम है, जितने रागद्वेष उसने जिस डिग्री में किये हैं उसका उदय कहलायेगा। हमने देखा है, निमित्त से कार्य नहीं होता। ऐसा नहीं है किसीको मंद उदय चल रहा है, किसीको तीव्र उदय चल रहा है - ऐसा नहीं है। जीव जिस मंद या तीव्र परिणामरूप से परिणामन करता है उस जाति का वहां उदय कहलायेगा। उस निषेक में तो सभी परमाणु पड़े थे। इतने सारे स्पर्धक

पड़े थे मंद से तीव्र तक। वे उसरूप से परिणमित होकर एक समय में उदय में आते हैं तो हम कहेंगे उसरूप हो गये, उसका उदय चला।

जब तत्त्वविचार चलता है तब अशुभ प्रकृतियों का अनुभाग अत्यंत मंद - अनंतगुणा मंद-मंद-मंद होकर उदय में आता रहता है। यानी जीव के लिये सारा कुछ फेवरेबल ही होता है। अप्रशस्त कर्मों का अनुभाग प्रतिसमय अनंतवें भाग प्रमाण होकर उदय में आता रहता है; एक समय की बात नहीं, दूसरे समय में उसका अनंतवां भाग, तीसरे समय में उसका भी अनंतवां भाग... यह ज्ञानावरण में भी होगा, मिथ्यात्व में भी होगा, सभी में होगा। तो उसके कषाय भी मंद होते चले जायेंगे, उसका मिथ्यात्व भी गलता चला जायेगा। किस कारण से ? मात्र तत्त्वविचार के कारण होगा। लोग पूछते हैं, अन्य शुभभाव से नहीं होगा ? अन्य शुभभाव ऐसे मायने नहीं रखते जितना तत्त्वविचार से होता है।

हमने देखा न तत्त्वविचारवाले को ही सम्यक्त्व होने का अधिकार है। बाक़ी कितने भी व्रत करें। पं. टोडरमलजी का यह कथन तो प्रसिद्ध है। *श्रोता: तत्त्वविचार की महिमा*। हां, देखो तत्त्वविचार की महिमा ! आपने पढ़ा है बहुत बार। *श्रोता: तत्त्वविचार में कौनसा अनुयोग लेना ?* आप कहते हैं तत्त्वविचार में कौनसा अनुयोग लेना ? चारों ही अनुयोग लेना है। क्योंकि चारों ही अनुयोगों से वीतरागता की प्राप्ति होती है। वह कैसे निकालना, यह ट्रिक अपने पास है। चारों ही अनुयोग हमें भेदज्ञान करने में कार्यकारी हैं। हां ! वहां द्रव्यानुयोग के सिद्धान्त तो मालूम होने ही चाहिये और उनका सही ज्ञान भी होना चाहिये। तत्त्वविचार भी सही होना चाहिये।

श्रोता: निषेक की तो अपर लिमिट है काल के साथ ७० कोड़ाकोड़ी की, क्या अनुभाग के साथ भी होती होगी ? हां ! आपका प्रश्न है कि निषेकों की अपर लिमिट बतायी है जिसको हम उत्कृष्ट स्थितिबंध कहते हैं वैसे ही अनुभागों की भी कोई अपर लिमिट होगी कि नहीं ? हां होती है। स्पर्धक भी अनंत होते हैं उनमें से उत्कृष्ट अनुभागवाले स्पर्धक को कहेंगे हम अपर लिमिट। *श्रोता: उधर तो टाइम फॅक्टर है, यहां क्या ?* यहां टाइम फॅक्टर नहीं, यहां तो शक्ति फॅक्टर है। *श्रोता: हां ! शक्ति*

फॅक्टर/कहां तक होगा ? पहले निषेक से लेकर ऊपर के निषेक तक। यहां जघन्य से लेकर उत्कृष्ट तक शक्ति फॅक्टर बताये हैं। हमने पहले स्थिति रचना देखी है न, उसमें सभी निषेकों में - अंतिम जो निषेक है उत्कृष्ट स्थितिवाला उसमें भी, जघन्य अनुभाग से लेकर उत्कृष्ट अनुभाग तक के सभी स्पर्धक पड़े हैं।

देखो, पुस्तक में देखना पृष्ठ १३, नीचे के पॅरेग्राफ में तीसरी लाइन। **जघन्य वर्ग से दोगुणा अविभागप्रतिच्छेद से युक्त वर्गों के समूहरूप द्वितीय स्पर्धक की प्रथम वर्गणा होती है।** ख्याल में आयी यह बात, क्या कहा ? अब थोड़ा पुस्तक में ध्यान देना - जघन्य वर्ग से दोगुणा, हमने १०० देखा था जघन्य वर्ग, उससे दोगुणा २०० हो जायेगा। तो दोगुणा अविभागप्रतिच्छेद से युक्त वर्गों के समूह यानी जिनमें-जिनमें २००, २००, २००, २०० अविभागप्रतिच्छेद हैं, उन सभी वर्गों के समूह को हम क्या कहेंगे ? द्वितीय स्पर्धक की प्रथम वर्गणा कहेंगे। एक-एक स्पर्धक में ऐसी अनंत वर्गणायेँ होती हैं। द्वितीय स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के ऊपर एक-एक अविभागप्रतिच्छेद से अधिक क्रमवाले जो वर्ग हैं उनके समूहरूप वर्गणा जहां तक होती हैं; जहां तक होती हैं क्यों कहा ? वे कंटिन्युअस २०० से ३०० तक नहीं है, बीच में गॅप है, तो जहां तक होती है - २२० तक मानेंगे - **उन वर्गणाओं के समूहरूप द्वितीय स्पर्धक होता है।**

प्रथम स्पर्धक हमने देखा, फिर द्वितीय स्पर्धक। इसीतरह तृतीय स्पर्धक की प्रथम वर्गणा में कितने अविभागप्रतिच्छेदवाले होंगे ? तृतीय स्पर्धक की प्रथम वर्गणा में तीनगुणा, चतुर्थ स्पर्धक की प्रथम वर्गणा में चारगुणा। इसतरह से स्पर्धक भी अनंत होते हैं। चतुर्थ आदि स्पर्धकों की प्रथम वर्गणा के वर्ग में जघन्य स्पर्धक से चारगुणा आदि अविभागप्रतिच्छेद होते हैं। उसकी जो टर्मिनॉलॉजि है उसको हम यहां नहीं देखेंगे। जितना टोटल नंबर ऑफ द्रव्य है, जितने टोटल परमाणु हैं उनको यहां द्रव्य कहते हैं और फिर स्पर्धक की बात हमने देखी उसमें भी गुणहानियां वगैरह होती हैं। जब विषय आयेगा तब उसकी हम चर्चा करेंगे। यानी उसमें भी ऐसे गणित की जो टर्मिनॉलॉजि है उसको बताने के लिये यहां छह अलग-अलग संज्ञायें बतायी हैं - वर्ग, वर्गणा, स्पर्धक, गुणहानि, नानागुणहानि और स्थान। उसका विषय आयेगा तब उसको हम देखेंगे। हमने वर्ग, वर्गणा, स्पर्धक देखे हैं; गुणहानि को मैंने समझाया न, गुणहानि

क्या होती है ? जिस वर्गणा में जाकर परमाणु आधे होते हैं, वहां तक के स्पर्धकों को हम गुणहानि कहेंगे। एक गुणहानि हुयी, फिर उसका भी आधा हुआ, उसका भी आधा हुआ, तो जितनी नंबर ऑफ गुणहानियां होंगी उसको कहेंगे हम नानागुणहानि। अभी तो इतना ही हमें इसमें पढ़ना है।

आपके हाथ में जो पांच नंबर का चार्ट है उसको निकालना। अनुभाग के स्थान हम यहां देखेंगे। हमने दो प्रकार के कर्म देखे थे घातिकर्म और अघातिकर्म। एक-एक कर्म में, प्रत्येक कर्म में अनंत-अनंत स्पर्धक पाये जाते हैं। ये जो अनंत स्पर्धक हैं उनको यहां नाम देकर समझाया है। अनंत स्पर्धकों के मात्र चार-चार विभाग किये हैं और उनको नाम देकर समझाया है। यानी मंद अनुभागवाले, उससे तीव्र, उससे बहुत तीव्र और उससे बहुत तीव्र। चार ही नाम देकर यहां समझाया है। हम नीचे से ऊपर पढ़ेंगे, मंद से तीव्रता की ओर। नीचे नाम क्या लिखा है ? पहले घातिकर्म में- लता, फिर दारु, फिर अस्थि और लास्ट में शैल।

हम देखते हैं, अभी ज्ञानावरण पर लगाते हैं। ज्ञानावरण कर्म में कैसे-कैसे स्पर्धक हैं ? तो कहते हैं मंद से तीव्र तक चार प्रकार के स्पर्धक हैं। इनके जो डिटेल हैं न देशघाति स्पर्धक, सर्वघाति स्पर्धक, उनकी चर्चा हम बाद में करेंगे। अभी हम सामान्यरूप से इनके चार-चार नाम देखेंगे। यहां तीन अलग-अलग ग्रुप्स बनाये हैं। एक घातिकर्मों के लिये नाम दिये। अघातिकर्मों में दो ग्रुप बनाये हैं- प्रशस्त प्रकृतियों के और अप्रशस्त प्रकृतियों के। घातिकर्म के जो हैं; घातिकर्म में मोहनीय भी है, ज्ञानावरण भी है, दर्शनावरण भी है, अंतराय भी है। सबके लिये ये नाम लागू होंगे। अत्यंत मंद अनुभागवाले हैं उनको लताभागवाले स्पर्धक कहेंगे। फिर दारुभागवाले - दारु यानी मद्यवाली वह दारु नहीं, सूखी लकड़ी को दारु कहते हैं। तीसरा है अस्थिभागवाले और चौथा है शैलभागवाले। इसमें जैसे कठिनता अधिक-अधिक है उसीप्रकार घातिकर्मों में जहां अनुभाग अधिक-अधिक तीव्र है उसको कहेंगे वे ऊपर के शैलवाले स्पर्धक हैं। जैसे अत्यंत तीव्र मिथ्यादृष्टि है उसके मिथ्यात्व प्रकृति को कैसा कहेंगे हम ? उसके शैलभागवाले स्पर्धकों का उदय चल रहा है। सत्ता में भले सभी पड़े हैं। हम किसका नाम लेंगे ? जो उदयरूप चल रहा है उसका। जब हम मिथ्यादृष्टि

कहेंगे या बहुत तीव्र मिथ्यादृष्टि ऐसा कहेंगे तो किस अपेक्षा से ? अभी उसका अनुभाग का उदय कैसा चल रहा है उसकी अपेक्षा कहेंगे। बंध होना अलग बात है और उदय होना अलग बात है। अभी उसमें भी अनुभाग का घटना-बढ़ना कैसे होता है उसकी बात भी आती है - उसे बाद में देखेंगे। यहां हम देख रहे हैं घातिकर्मों में लताभागवाले, दारुभागवाले, अस्थिभागवाले और शैलभागवाले स्पर्धक हैं।

अभी अघातिकर्म में देखते हैं - इसमें दो ग्रुप हैं - प्रशस्त और अप्रशस्त। प्रशस्त यानी जिसको हम पुण्य प्रकृतियां कहते हैं। पुण्य प्रकृति में मंद अनुभाग यानी उसका फल भी अल्प मिलेगा। उसका नाम है गुड़, उससे ज्यादा अनुभागवाले खाण्ड, फिर शर्करा और अमृत। अघातिकर्मों के अप्रशस्त में स्पर्धकों के क्या नाम हैं ? नीम-नीम कहो या निंब कहो एक ही बात है, कांजीर, विष और हलाहल। ये सारे कड़वाहट की अपेक्षा अधिक-अधिक हैं ऐसे ही अप्रशस्त कर्मों का जो फल मिलता है, अनुभाग अधिक तीव्र-तीव्र जो है उसकी अपेक्षा ये नाम दिये हैं। हर एकभाग में अनंत-अनंत स्पर्धक पाये जाते हैं। *श्रोता: कांजीर से क्या लेना ?* कांजीर यानी जो कड़वा होता है न, चिरायता बोलते हैं। क्या कहते हैं ? हां ! हिंदी में चिरायता कहते हैं और गुजराती में कडवुं करियातुं और मराठी में ? काडेचिराईत ! यह कड़वा होता है उसका काढ़ा बनाकर वह पानी पीते हैं न ? इतना ही समझना कड़वी चीज़ है कोई, हां ! नीम से ज्यादा कड़वी है, उससे कड़वा विष है उससे कड़वा हलाहल है। *श्रोता: चखकर देखा क्या ?* किसीने चखा परंतु बताने के लिये जिंदा नहीं रहा।

ऐसे हमने अलग-अलग उसके नाम देखें। किसके ? स्पर्धकों के। कौनसे देखे नाम ? बोलो मंजुबेन ? अप्रशस्तों में - अघाति के अप्रशस्त- *श्रोता: निंब, कांजीर, विष और हलाहल;* और पुण्य प्रकृतियों में ? *श्रोता: गुड़, खाण्ड, शर्करा, अमृत।* घाति में ? *श्रोता: लता, दारु, अस्थि, शैल।* बहुत अच्छा। अब इसमें जो सर्वघाति, देशघाति स्पर्धक होते हैं, उसकी चर्चा थोड़ी देर के बाद करेंगे। अभी तो यहीं रुकते हैं।

बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

३. उदय, सत्त्व, उदीरणा

आचार्य श्री नेमिचन्द्र सिद्धांतचक्रवर्ती ने लब्धिसार ग्रंथ की रचना की है। उसीके आधार से पं. टोडरमलजी ने सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका लब्धिसार-क्षपणासार भाषाटीका ढूंढारी भाषा में लिखी है, उसका हिंदी अनुवाद हम देख रहे हैं।

देखो, ये स्पर्धक अनंत होते हैं; प्रत्येक कर्म में अपने-अपने अनंत-अनंत स्पर्धक होते हैं। हर एक प्रकृति के - यानी ज्ञानावरण के अपने अलग, उनमें भी जितनी प्रकृतियां हैं, उत्तरप्रकृतियां हैं, उनमें हर एक में जघन्य अनुभाग से लेकर उत्कृष्ट अनुभाग तक अपने-अपने अलग-अलग स्पर्धक होंगे। यह उत्कृष्ट अनुभाग जो बंधता है, जहां कषाय तीव्र है, वहां अशुभ प्रकृतियों में मॅक्झिमम अनुभाग बंधेगा। यह जरूरी नहीं कि हर बार उत्कृष्ट में उत्कृष्ट अनुभाग बंधेगा ही बंधेगा। जैसे बहुत तीव्र संक्लेश करेगा, हमारी भाषा में खोटे परिणाम करेगा तो अशुभ कर्मों में तीव्र अनुभाग को बांधेगा। यह जरूरी नहीं कि हर बार ऐसे परिणाम होते रहे। परिणाम भी उलट-पुलट होते हैं; कभी शुभ परिणाम, कभी अशुभ परिणाम होते रहते हैं वैसे अनुभाग भी हीनाधिक बंधता रहता है। परंतु बंधने के बाद तो सत्ता में पड़ा रहता है।

एक समय में भले हीनाधिक अनुभाग बांधा है परंतु उसका उदय कैसे होगा ? क्योंकि उदय में तो अलग-अलग समयों में बंधे हुये परमाणुओं का उदय चलता है। उसमें अनुभाग भी हीनाधिक होता है तो सहजरूप से वैसा उसका फल मिलता है। उसमें भी हमने देखा था जीव के जैसे परिणाम हैं वैसे उसका विशेषतः घातिकर्मों में अनुभाग चेंज होकर भी उदय में आता है। अघातिकर्मों में तो क्या है ? वह तो पुद्गल में ही उसका अधिकतर फल मिलता है, जैसे नामकर्म की प्रकृतियों में जैसे उसका उदय होगा वैसा उसका फल मिलता है। अब हम आगे बात करेंगे।

ये जो हमने चार-चार नाम देखे हैं, हम १४ पृष्ठ पर सेकंड पॅरेग्राफ देखते हैं। देखो, **इन प्रथमादि स्पर्धकों की रचना** यानी प्रथम, द्वितीय, तृतीयादि जो अनंत स्पर्धक होते हैं, उनकी रचना **एक के ऊपर एक करते हैं।** हमने अभी चार नंबर के चार्ट में देखा था स्पर्धक नीचे से ऊपर तक बताये हैं, एक के ऊपर एक स्पर्धक बताये

हैं। अनुभाग को बताने के लिये यह रचना दिखायी जाती है। ऐसे कर्मों में कोई गोल-गोल या निषेक रचना या ऐसा कुछ नहीं होता है। हमें वह समझने में आसान होता है इसलिये उसको बताया जाता है। **इसलिये प्रथमादि स्पर्धकों को नीचे के स्पर्धक कहते हैं।** क्या कहा ? प्रथमादि यानी क्या ? मंद अनुभागवाले और ऊपर के यानी अधिक अनुभागवाले। प्रथमादि स्पर्धकों को क्या कहेंगे ? नीचे के स्पर्धक कहेंगे और जो तीव्र अनुभागवाले उनको कहेंगे ऊपर के स्पर्धक। नीचे के, ऊपर के स्पर्धक का अर्थ समझ में आया ? क्योंकि हम प्रथम को नीचे रखते हैं और अंतिम को ऊपर रखते हैं। नीचे के यानी मंद अनुभागवाले, ऊपर के यानी तीव्र अनुभागवाले यानी नीचे से ऊपर अनुभाग का क्रम बढ़ते चला जायेगा। यहां वही बात लिखी है जो हमने पहले पढ़ी थी।

वहां प्रथमादि सर्व स्पर्धकों के चार विभाग करेंगे तो घातिकर्मों के तो लता, दारु, अस्थि और शैल समान; यह उनको दृष्टांत द्वारा या उनको नाम देकर समझाया है, रूपक किया है उसका। **अप्रशस्त अघातिकर्मों के निंब, कांजीर, विष और हलाहल समान और प्रशस्त अघातिकर्मों के गुड़, खाण्ड, शर्करा और अमृत समान, चार भाग जानना।** अनंतों के हमने केवल चार भाग कर दिये हैं, समझाने के लिये। घातिकर्मों में लताभाग के सभी स्पर्धक और दारुभाग के कुछ स्पर्धक देशघाति हैं। अभी इसका हम अर्थ देखते हैं। जो घातिकर्म हैं, उनमें दो प्रकार की प्रकृतियां होती हैं - सर्वघाति प्रकृति और देशघाति प्रकृति। देखो, यहां ख्याल में रखना है - जो प्रकृतियां हैं न, हमने हर एक कर्म की अलग-अलग प्रकृतियां देखी थी। ज्ञानावरण की पांच देखी थी, दर्शनावरण की नौ देखी थी, मोहनीय की अट्ठाईस देखी थी, अंतराय की पांच देखी थी। मूल में ये प्रकृतियां ही कुछ ऐसी हैं कि सर्वघाति हैं, कुछ ऐसी हैं कि देशघाति हैं। किसमें देशघाति, सर्वघाति लगा रहे हैं ? प्रकृतियों में। स्पर्धकों में तो हम बाद में लगायेंगे।

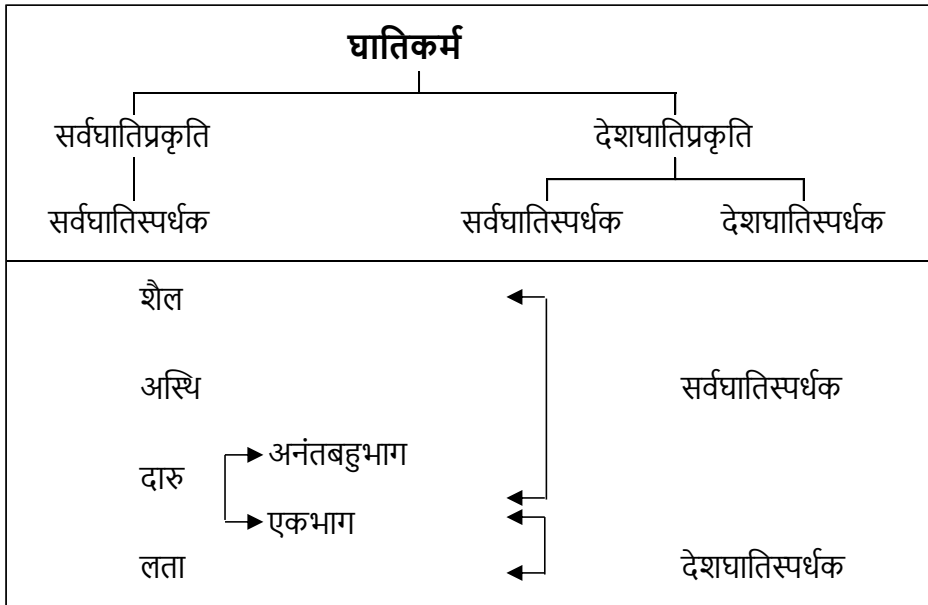
ये प्रकृतियां कुछ सर्वघाति हैं उसका अर्थ क्या है ? उन प्रकृतियों का उदय हो तो अपने प्रतिपक्षी का पूरा घात करती हैं। किसका घात करेंगे ? अपने प्रतिपक्षी का। केवलज्ञानावरण यह प्रकृति सर्वघाति प्रकृति है। तो क्या होता है ? केवलज्ञान अभी

पर्याय में प्रगट नहीं है। वह कर्म के कारण अटका है, ऐसा नहीं है। जीव की योग्यता नहीं है। परंतु निमित्त से हम आरोपित कथन करके क्या कहेंगे ? यह पूरा घात करता है। यानी केवलज्ञान नहीं होने देता। यह उपचार का कथन है- नहीं तो हम कर्म के आधीन सब मान लेते हैं। ऐसा है ही नहीं। हम क्या कहेंगे ? केवलज्ञानावरण यह सर्वघाति प्रकृति है, उसका उदय होते हुये केवलज्ञान प्रगट नहीं होगा। तो क्या केवलज्ञानावरण मतिज्ञान को रोक सकता है ? केवलज्ञानावरण का उदय तो सबको चल रहा है, हमारे किसीके भी केवलज्ञान अभी नहीं है। परंतु हमारा मतिज्ञान, श्रुतज्ञान तो चल रहा है। कितने ही जीवों को अवधिज्ञान है। कितने ही मुनियों को मनःपर्ययज्ञान भी है। यानी केवलज्ञानावरण अपने प्रतिपक्ष का घात करता है। अन्य जो ज्ञान के भेद हैं उसमें उसका कुछ नहीं चलता। यह कैसी प्रकृति है ? वह सर्वघाति है। परंतु मतिज्ञानावरण प्रकृति कैसी है ? देशघाति है। उसका उदय भी होवे और मतिज्ञान भी चलता रहे ये बातें होती हैं। मतिज्ञानावरणादि चारों जो प्रकृतियां हैं; प्रकृति की बात चल रही है - वे कैसी प्रकृतियां हैं ? देशघाति प्रकृतियां हैं। देशघाति का अर्थ क्या है ? पूरा घात नहीं करती हैं।

अब हम यहां देखते हैं घातिकर्मों में प्रकृतियां ही दो प्रकार की होती हैं- सर्वघाति प्रकृति और देशघाति प्रकृति। अभी हमने ज्ञानावरण में देखा। ज्ञानावरण में मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण और मनःपर्ययज्ञानावरण देशघाति प्रकृतियां हैं और केवलज्ञानावरण सर्वघाति प्रकृति है। अब दर्शनावरण में देखते हैं। दर्शनावरण में कौन-कौनसी देशघाति हैं और कौनसी सर्वघाति हैं ? केवलदर्शनावरण सर्वघाति है। और कोई ? पांचों प्रकार की निद्रायें, वे कैसी हैं ? सर्वघाति हैं। किसका घात करती हैं ? दर्शन का ? *श्रोता: जाग्रत अवस्था का।* जाग्रत अवस्था का। क्योंकि निद्रा का प्रतिपक्षी कौन है ? जाग्रत अवस्था। जाग्रत अवस्था नहीं है, निद्रा है तो जाग्रत अवस्था का पूरा घात करती है। उनको हम कहेंगे सर्वघाति प्रकृतियां। चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण और अवधिदर्शनावरण कैसी हैं ? तो देशघाति प्रकृति हैं। उनका उदय भी चलता रहे और हमारा यह दर्शन का कार्य भी चलता रहे ऐसी बातें होती हैं।

मोहनीय में मिथ्यात्व सर्वघाति है, पूरा घात करती है। किसका ? सम्यक्त्व का।

सम्यक्त्व नहीं होने देती। अनंतानुबंधी सर्वघाति है। फिर अप्रत्याख्यानवरण- सर्वघाति है। अपने-अपने प्रतिपक्ष का घात करती है। प्रत्याख्यानवरण सर्वघाति है। परंतु संज्वलन-प्रकृति देशघाति है। मैं प्रकृति शब्द बारंबार कह रही हूं। स्पर्धकों के बारे में उसका अलग नियम बतायेंगे हम। प्रकृति और स्पर्धक बात ख्याल में आती है न ? प्रकृति तो उस कर्म को कहते हैं और हर एक प्रकृति में अपने-अपने स्पर्धक होते हैं। उसकी चर्चा अब हम करेंगे। मेरा प्रश्न है, वेदनीय में कौनसी सर्वघाति है और कौनसी देशघाति है ? सातावेदनीय सर्वघाति है कि देशघाति है ? *श्रोता: देशघाति।* किसका घात करती है ? *श्रोता: वह अघाति है।* वह अघाति है। अघातिकर्मों में देशघाति, सर्वघाति नहीं हैं। वह तो घात ही नहीं करती है न ! उसका नाम ही अघाति है। यह तो मैंने आपको ऐसे ही पूछ लिया। क्योंकि हमें लगता है न सातावेदनीय देशघाति होगी और असातावेदनीय सर्वघाति है, ऐसा नहीं है। अभी हम सर्वघाति, देशघाति की ही चर्चा करेंगे। अघाति की तो बात ही नहीं है यहां पर।



यह आपके सामने जो चार्ट लगा है उसमें सर्वघाति प्रकृति के लिये उसके नीचे क्या लिखा है ? उसके स्पर्धक कैसे होते हैं ? सर्वघाति होते हैं। यहां लिखा है देखो।

सर्वघाति प्रकृतियों के सभी स्पर्धक सर्वघाति होते हैं, सभी स्पर्धक। हमने अभी कौनसी देखी ? कोई भी एक सर्वघाति प्रकृति बताओ। केवलज्ञानावरण; तो केवलज्ञानावरण प्रकृति में जितने सारे स्पर्धक हैं, वे कैसे हैं ? तो सर्वघाति स्पर्धक हैं। अब मतिज्ञानावरण आदि देशघाति प्रकृतियां हैं उनमें जो स्पर्धक होते हैं वे सर्वघाति भी होते हैं और देशघाति भी होते हैं। ऐसा नहीं कि देशघाति के स्पर्धक देशघाति और सर्वघाति के सर्वघाति - ऐसा नहीं है। क्या डिफरन्स है ? सर्वघाति प्रकृति के सभी स्पर्धक सर्वघाति ही हैं। उसका कैसा भी अनुभाग का उदय हो वह पूरा ही घात करता है। देशघाति में दोनों टाइप हैं, सर्वघाति स्पर्धक भी हैं और देशघाति स्पर्धक भी हैं। इसका विचार करेंगे पहले।

जैसे हमने मतिज्ञानावरण प्रकृति देखी, प्रकृति की बात है; वह देशघाति प्रकृति है। हमें उसका उदय भी है और हमारा मतिज्ञान भी चल रहा है। परंतु जब वह प्रकृति बंधी थी तो उसमें सर्वघाति स्पर्धक भी बंधे थे और देशघाति स्पर्धक भी बंधे थे और सत्ता में भी सर्वघाति, देशघाति स्पर्धक पड़े हैं। उसके सर्वघाति स्पर्धकों का उदय हो जाये तो क्या होगा ? जीव जड़ हो जायेगा। सर्वघाति का उदय हो जाये तो ज्ञान पूरा नष्ट हो जायेगा। क्यों ? पूरा घात करेगा यानी मतिज्ञान भी नहीं होने देगा। परंतु ऐसा किसी भी जीव को नहीं होता है। सूक्ष्म निगोद जो मिनिमम ज्ञानवाला जीव है, उसके भी ज्ञान का कुछ न कुछ उघाड़ तो है ही है। इसका अर्थ क्या है ? मतिज्ञानावरण का जब उदय होता है तो सत्ता में उसके जो सर्वघाति स्पर्धक पड़े हैं उनरूप से उसका उदय नहीं होता। उदय किसरूप से होगा ? देशघातिरूप से। उसके देशघाति स्पर्धकों का उदय चलता है। *श्रोता: शक्तिरूप रहते हैं सर्वघाति स्पर्धक ?* शक्तिरूप नहीं, उदय में आते हुये देशघातिरूप टर्न होकर उदय में आते हैं। हम क्षयोपशम की परिभाषा आगे चलकर देखेंगे उसमें हम इसको और क्लियर करेंगे।

यहां क्या कहते हैं ? जैसे अवधिज्ञानावरण भी देशघाति प्रकृति है। आपको अवधिज्ञान है भाई ? नहीं है, अच्छा है।। होगा तो भी बताना नहीं, नहीं तो लाइन लगेगी अभी। यह अवधिज्ञानावरण देशघाति प्रकृति है और आप कहते हैं अभी हमको अवधिज्ञान नहीं है। तो आपको उसके कौनसे स्पर्धकों का उदय चल रहा है ? सर्वघाति

स्पर्धकों का, है न। अवधिज्ञान नहीं हो तो अपनी योग्यता से नहीं है। यह उपादान को तो मूल में रखना ही रखना, परंतु हम निमित्त की भाषा में बोलेंगे अभी। तो उदय किसका चल रहा है ? सर्वघाति स्पर्धकों का। हमें मनःपर्ययज्ञानावरण का कौनसा उदय चल रहा है ? सर्वघाति स्पर्धकों का और जिन मुनियों को मनःपर्ययज्ञान है उनके मनःपर्ययज्ञानावरण के देशघाति स्पर्धकों का उदय चल रहा है यानी वह पूरा घात नहीं होने देते। मनःपर्ययज्ञान भी चले और मनःपर्ययज्ञानावरण का उदय भी चले ये बातें होती हैं। इतनी बात ख्याल में आयी ?

अभी हमने घातिकर्म के स्पर्धकों के जो चार-चार भेद किये थे उनमें कौनसे सर्वघाति हैं और कौनसे देशघाति हैं ? ऐसे तो हर एक में अनंत होते हैं, तो उसका यहां हिसाब लगायेंगे। ये शैलवाले अति तीव्र अनुभागवाले हैं, अस्थिवाले तीव्र अनुभागवाले हैं और यह दारु नाम के जो हैं न, उनमें दो विभाग करना। एक अनंतवां भाग, उसको एकभाग कहा है और उस एकभाग को छोड़कर जो बहुभाग है उसको अनंत बहुभाग कहेंगे। जैसे हम एक लाख को १०० से भाग देंगे। एक लाख को १०० से भाग दिया तो एकभाग की व्हॅल्यू १००० आयी और बाकी निन्यानवे भाग की व्हॅल्यू ९९००० आयी। ऐसे दारुभागवाले अनंत स्पर्धकों को अनंत का भाग देकर, एकभाग प्रमाण जो स्पर्धक हैं, स्पर्धक की बात है, वे देशघाति हैं और ये ऊपर के जो बहुभाग हैं वे कैसे हैं ? सर्वघाति हैं। ये नीचे के देशघाति हैं। देखो यहां अँरो दिखाया है, यह पूरा ब्रॅकेट - शैल से लेकर दारु के अनंत बहुभाग तक सर्वघाति स्पर्धक हैं। क्या कहा ? दारु के अनंत बहुभागवाले, अस्थिवाले और शैलवाले ये सारे कैसे हैं ? सर्वघाति स्पर्धक हैं। दारु का एकभाग और लतावाले ये देशघाति स्पर्धक हैं। इन नामों से हम उनको कहेंगे।

यहां नाम लिये हैं; कहीं-कहीं लतावाले को एकस्थानिक कहेंगे, दारुवाले को द्विस्थानिक कहेंगे, अस्थिवाले को त्रिस्थानिक कहेंगे, शैलवाले को चतुःस्थानिक कहेंगे। अलग-अलग जगह उनके अलग-अलग नाम आते हैं। परंतु वह कहने से कुछ इसका स्वरूप बदल नहीं जाता या तो उसको नाम से पहचानो या उसको एकस्थानिक, द्विस्थानिक, त्रिस्थानिक, चतुःस्थानिक कहो तो भी वही बात आती है। यह देशघाति, सर्वघाति समझ में आये कि नहीं आये ? क्योंकि स्पर्धक में और प्रकृति में अंतर है।

कितनी ही प्रकृतियां देशघाति हैं; उनमें सर्वघाति स्पर्धक भी हैं, देशघाति स्पर्धक भी हैं। सर्वघाति स्पर्धक देशघातिरूप हो-होकर उदय में आते हैं। उदय के समय में एक समय में वे टर्न होकर उदय में आते हैं। सत्ता में तो सर्वघातिरूपसे पड़े हैं, और वे टर्न होकर उदय में आते हैं उसीको कहेंगे उसका क्षयोपशम चलता है। हम कहते हैं न, हमारा ज्ञान का क्षयोपशम है। उसका अर्थ क्या है ? हमारी ये जो ज्ञानावरण की देशघाति प्रकृतियां हैं उनके देशघाति स्पर्धकों का उदय चल रहा है और सर्वघाति स्पर्धकों का उदय नहीं हो रहा है।

क्षयोपशम की परिभाषा याद है किसीको ? हां, बोलो नीलेशभाई। *श्रोता: वर्तमानकालीन सर्वघाति स्पर्धकों का उदयाभावी क्षय, भविष्यकालीन उन्हीं स्पर्धकों का सदवस्थारूप उपशम, वर्तमानकाल में देशघातिरूप से उदय है।* हां, देखो उन्होंने क्या बोला ? किसीको पता नहीं चला। हम देखेंगे। अभी तक हमने एक समय में बंधे हुये की बात देखी थी। अब सत्ता में जो कर्म के निषेक पड़े हैं उनकी बात हम देखेंगे। यह सत्तावाले निषेकों को हम बताते हैं और उसमें भी स्पर्धकों को लेना है। निषेकों में जो स्पर्धक हैं उनकी बात करेंगे हम। ये कर्म ऐसे सत्ता में पड़े हैं, यह उदयरूप निषेक है और उसमें भी अनुभाग तीव्र से मंद तक बहुत सारे अलग-अलग हैं। यह देखा था न हमने - हर निषेक में तीव्र से मंद तक सभी अनुभाग पड़े हैं यानी उनमें देशघाति स्पर्धक भी हैं और सर्वघाति स्पर्धक भी हैं। दूसरे निषेक से अंतिम निषेक तक तो पड़े हैं देशघाति और सर्वघाति स्पर्धक। उदय में आते समय क्या होता है ? उनका क्षयोपशम चलता है; अभी मतिज्ञान पर घटित करते हैं।

हमारा मतिज्ञान हर समय चल रहा है। मतिज्ञान चलता है तो उसमें क्या होता है ? मतिज्ञानावरण के सर्वघाति स्पर्धक अंतिम निषेक से यहां दूसरे निषेक तक सर्वघातिरूप से पड़े रहते हैं। अब यहां उदय में आते-आते क्या होता है ? देशघातिरूप होकर उदय में आते हैं। इन्होंने क्या कहा था ? वर्तमानकालीन सर्वघाति स्पर्धकों का उदयाभावी क्षय। क्योंकि यहां नीचे तक आये हैं वे उदय में तो आयेंगे ही आयेंगे, ऐसे ही नष्ट नहीं हो जायेंगे। ऐसे ऊपर ही रुक नहीं जायेंगे, वे तो उदय में आयेंगे ही आयेंगे और उदय में आकर खिर भी जायेंगे। परमाणु तो निकलनेवाले हैं

परंतु वे सर्वघातिरूप से उदय में नहीं आयेंगे। वे एक ही समय में देशघातिरूप से टर्न होकर उदय में आते हैं तो उसको कहेंगे वर्तमानकालीन, यह नीचे का वर्तमान समय है। वर्तमानकालीन सर्वघाति स्पर्धकों का उदयाभावी क्षय यानी; उदय का अभाव है परंतु फिर भी जा रहे हैं, क्षय हो रहा है - उदयाभावी क्षय। अपने अनुभागरूप से उदय नहीं हो रहा है, देशघातिरूप से उदय हो रहा है। कोई भी बंधा हुआ परमाणु उदय में आये बिना जायेगा ही नहीं। या तो अपनेरूप से उदय में आयेगा या पररूप से उदय में आयेगा। खिरेगा तो उसका उदय होकर ही खिरेगा।

अब यहां क्या कहा ? वर्तमानकालीन सर्वघाति स्पर्धकों का उदयाभावी क्षय। अब भविष्यकाल में तो सारे सर्वघाति स्पर्धक पड़े हैं सब जगह। सर्वघाति भी हैं, देशघाति भी हैं। तो भविष्यकालीन उन्हीं स्पर्धकों का, उन्हीं यानी उन्हीं सर्वघाति स्पर्धकों का सदवस्थारूप उपशम। यानी वे सत्ता में हैं, अभी उदय में नहीं आ रहे हैं उसीको उपशम कहा है और तीसरी अवस्था क्या है ? देशघाति स्पर्धकों का उदय यानी ये देशघातिरूप से उदय में आ रहे हैं। ऐसी जब अवस्था होती है तब उसको कहेंगे यह कर्मों का क्षयोपशम हो रहा है। जैसे ज्ञानावरण है- मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण इनमें क्या होता है ? क्षयोपशम होता है। हमारा आपका मति-श्रुतज्ञान चल रहा है। उनमें तो ऐसी अवस्था होती ही होती है। जिनको अवधिज्ञान चल रहा है, जिसके अवधिज्ञान है उसके अवधिज्ञानावरण में भी ऐसा है - देशघाति स्पर्धकों का उदय है, वर्तमानकालीन सर्वघाति स्पर्धकों का उदयाभावी क्षय है और वैसे सर्वघाति स्पर्धक भविष्य में पड़े हैं। हमें आपको अवधिज्ञान नहीं है तो अवधिज्ञानावरण के सर्वघाति स्पर्धकों का उदय चल रहा है तो अवधिज्ञान नहीं है। यह अनुभाग की बात हमने देखी है, उसके सर्वघाति और देशघाति स्पर्धक यहां बताये हैं।

श्रोता: अभी हमने जो क्षयोपशम की परिभाषा बतायी, अभी जिस मुनिराज को मनःपर्ययज्ञान का उपयोग नहीं है, लेकिन उनको उस प्रकार की ऋद्धि प्रगट हुयी है, तो उस समय उस काल में कर्म का कौनसा, क्या चल रहा है ? उसका भी क्षयोपशम चल रहा है क्योंकि ज्ञान की पर्याय केवल उपयोगरूप नहीं है। तत्त्वार्थसूत्र में लब्ध्युपयोगौ भावेन्द्रियम् कहा है। भावेन्द्रिय यानी क्षयोपशम ज्ञान को भावेन्द्रिय कहते

हैं वह लब्धि और उपयोग मिलकर ज्ञान की पर्याय है। हम कहते हैं न, एक साथ एक जीव को अधिक से अधिक कितने ज्ञान होते हैं ? चार ज्ञान होते हैं। उसका अर्थ क्या है ? उसकी प्रगट पर्याय में मनःपर्ययज्ञान है परंतु उपयोगरूप नहीं है। वहां मनःपर्ययज्ञानावरण के देशघाति स्पर्धकों का उदय चल रहा है। उपयोगरूप नहीं है तब भी चल रहा है, नहीं तो उसको हम मनःपर्ययज्ञान नहीं कहेंगे। हां, अच्छा प्रश्न है क्योंकि तब भी उसका सर्वघाति स्पर्धकों का उदय नहीं है, देशघाति स्पर्धकों का उदय है। परंतु उसमें उपयोग नहीं, उनका अन्यत्र उपयोग है। अँट अ टाइम सभी कर्मों का - मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, मनःपर्ययज्ञानावरण सबमें क्षयोपशम चल रहा है न ? हर एक कर्म की अपनी-अपनी निषेक रचना, अपनी-अपनी स्पर्धक रचना अलग है और उनमें ये बातें हो रही हैं। ख्याल में आती है यह बात ?

चारों ज्ञानावरण में अपना-अपना क्षयोपशम चल रहा है। उनको मनःपर्ययज्ञानी कहेंगे हम। उपयोगरूप नहीं है उस समय भी उसका मनःपर्ययज्ञान चल रहा है और उस समय भी उसके सर्वघाति स्पर्धकों का उदय नहीं है। *श्रोता: उपयोगात्मक नहीं है।* हां, उपयोगात्मक नहीं है। क्योंकि तभी तो हम कहते हैं न एक साथ चार ज्ञान, चार ज्ञान तो उपयोगरूप होते ही नहीं हैं। अँट अ टाइम कोई एक ही ज्ञान उपयोगरूप होगा। परंतु चार ज्ञान एक ही समय की पर्याय में विद्यमान हैं। अभी हम आपको भी कितनी भाषायें अवगत हैं ? हिंदी है, गुजराती है, मराठी है, सब जानते हो। संस्कृत, इंग्लिश, हां और यहां उपयोग किसमें चल रहा है ? तो बाकी सब चली गई ? क्या हो गया ? नहीं, वे चल रही हैं, उसी ज्ञान की पर्याय में चल रही हैं। वर्तमान ज्ञान की पर्याय में सभी मौजूद हैं लब्धिरूप में, उपयोगरूप में नहीं हैं।

अभी हमने बंध देखा, उसमें भी स्थितिबंध देखा, अनुभागबंध देखा। यह अनुभाग बंधने के बाद सत्ता में पड़ा रहता है। आठों ही प्रकृतियों की सत्ता है उसको सत्त्व कहेंगे; उसको हम कहेंगे प्रकृतिसत्त्व। हर एक में ऐसे चार-चार विभाग करेंगे जैसे बंध में हमने चार भेद किये। प्रकृतिबंध, प्रदेशबंध, स्थितिबंध, अनुभागबंध। जो बंधने के बाद सत्ता में पड़े रहते हैं तो अपनी अलग-अलग प्रकृतिरूप से पड़े हैं; तो उसको हम कहेंगे प्रकृतियों का सत्त्व।

प्रदेशसत्त्व, कितने नंबर ऑफ परमाणु सत्ता में हैं ? उसको कहेंगे प्रदेशसत्त्व। सत्ता में कितनी स्थिति है ? हमने सुबह देखा था स्थितिसत्त्व जिसको कहेंगे। सत्ता में अभी कितनी स्थिति विद्यमान है ? उसको कहेंगे स्थितिसत्त्व और सत्ता में जो मॅक्झिमम अनुभाग है उसको कहेंगे अनुभागसत्त्व। ऐसे मॅक्झिमम से मिनिमम अनुभागवाले सभी स्पर्धक पड़े हैं परंतु जो मॅक्झिमम - उत्कृष्ट है उसको हम कहेंगे यह सत्तावाला अनुभाग है। यह सत्तावाली स्थिति है। क्योंकि सत्ता में तो वर्तमान समय से लेकर जो वहां उत्कृष्ट स्थिति पड़ी है वहां तक की सभी स्थिति है। परंतु सत्ता की स्थिति किसको कहेंगे ? जो अपरमोस्ट, जो ऊपर का निषेक है; वर्तमान समय से जितनी उसकी स्थिति है उसको हम कहेंगे सत्ता की स्थिति इतनी है। जब हम कहेंगे सत्त्व जो है - स्थिति जो है वह घटती चली जाती है। आगे चलकर हम देखेंगे सम्यक्त्व के प्रकरण में कि स्थिति घटती जाती है तो यह स्थिति घटती है उसका अर्थ क्या है ? सत्ता में जितने निषेक पड़े हैं उनमें से वह स्थिति कम हो जाती है। वह कैसे होती है ? किस विधि से होती है ? वह तो विषय अलग है।

अभी हम केवल यहां टर्मिनॉलॉजी देख रहे हैं। अभी तक हमने बंध के बारे में देखा। अभी सत्त्व के बारे में भी ये चार बातें होती हैं कि प्रकृतियों की सत्ता जैसे हम, आप की सत्ता में तीर्थकर प्रकृति की सत्ता है कि नहीं है ? *श्रोता: है।* तो कब जाकर तीर्थकर होनेवाले हो ? भरतक्षेत्र में पंचमकाल में तो तीर्थकर प्रकृति कोई नहीं बांधता। वहां विदेहक्षेत्र में तो चौथा ही काल चलता है हमेशा। भोगभूमि में भी कोई तीर्थकर प्रकृति बांधनेवाला वहां नहीं है। हां नरक में हैं, स्वर्गों में हैं। कितने जीव बांध रहे हैं वर्तमान में ? असंख्यात जीव। तीसरी नरक तक प्रत्येक नरक में असंख्यात जीव तीर्थकर प्रकृति का बंध कर रहे हैं और सौधर्म से लेकर सर्वार्थसिद्धि तक के प्रत्येक स्वर्ग में। अभी सर्वार्थसिद्धि में देव ही संख्यात हैं। बाकी सर्वत्र असंख्यात जीव तीर्थकर प्रकृति का बंध करनेवाले हैं, अभी कर रहे हैं जो नियम से आकर यहां तीर्थकर होनेवाले हैं। उनका कब नंबर लगेगा ? क्योंकि वहां की इतनी लंबी सागरों की आयु है तो एक-एक करके वे यहां मनुष्यों में आयेंगे। मनुष्य तो संख्यात ही होते हैं। तो संख्यात ही जीवों का नंबर लगेगा और अंट अ टाइम कितने तीर्थकर हो सकते हैं ?

एक सौ सत्तर, वह भी मॅक्झिमम। तो कितने थोड़े जीवों का नंबर लगेगा।

श्रोता: विद्याधर भी ? वह सब मिलकर, विद्याधर भी मनुष्य हैं कि नहीं हैं ? मनुष्य हैं। तो टोटल मनुष्य कितने हैं जो पर्याप्त हैं ? संख्यात हैं। विद्याधर होकर मोक्ष चले जावे परंतु वहां कोई तीर्थकर तो नहीं हैं। प्रकृति बांध सकते हैं; प्रकृति बांधने में कोई हर्जा नहीं है, प्रकृति बांधने की बात अलग है। विद्याधर की श्रेणियों में भी वहां चौथा काल चलता है। अभी यहां हम आगे बढ़ेंगे क्योंकि हम तीर्थकर प्रकृति बांधना चाहते हैं न ! क्यों चाहते हैं ? अपना कल्याण करने के लिये कि जगत का कल्याण करने के लिये ? क्योंकि हमने सुना है परोपकाराय सतां विभूतयः। हम परोपकार करना चाहते हैं ! नहीं, बड़प्पन दिखाना चाहते हैं क्योंकि तीर्थकर बड़े हैं न। सब उनके हाथ जोड़ते हैं तो हम तीर्थकर होंगे तो कितना अच्छा होगा ऐसा लगता है। जो कोई भी बंध करना चाहता है उसको बंध अच्छा लगता है, उसको मोक्ष अच्छा नहीं लगता यह उसकी बंधतत्त्व संबंधी भूल है। उसको तो सम्यग्दर्शन भी नहीं होगा और सम्यग्दृष्टि के ही तीर्थकर प्रकृति का बंध होता है, मिथ्यादृष्टि के नहीं होता। यह बिलकुल नक्की है, यह उसका फॉर्म्युला है।

अब सत्त्व में भी हमने चार प्रकार देखे। प्रकृति का सत्त्व, प्रदेश यानी परमाणु कितने हैं सत्ता में ? उसको प्रदेशसत्त्व कहेंगे। स्थिति मॅक्झिमम कितनी पड़ी है सत्तावाले कर्मों की ? उसको कहेंगे स्थितिसत्त्व और अनुभाग कितना पड़ा है ? उसको कहेंगे अनुभागसत्त्व। सत्त्व के भी ये चार भेद हो गये। अब जो सत्ता में पड़े हैं, जिनकी-जिनकी स्थिति पूरी हुयी; हमने देखा था न, निषेक रचना होती है। ऑलरेडि सत्ता में भी कर्म पड़े हैं। वर्तमान समय में जो निषेक उदयरूप है; उदयरूप का अर्थ क्या है ? अभी उस कर्म का जीव के साथ कॉन्ट्रैक्ट पूरा हुआ है। अब वह छोड़कर चला जानेवाला है और छोड़कर जाता है तो भाड़ा देकर जायेगा; जीव को गिफ्ट देकर जायेगा, उस समय उसका फल मिलेगा। इसलिये आपने जो पूछा था न मिट्टी के ढेर के समान है। कब ? जब सत्ता में पड़ा है तब। भले एक समय ऊपर भी पड़ा है उसका जीव को कुछ फल नहीं मिलता। तो वह है या नहीं है के बराबर है। सत्ता में पड़े हुये कर्मों का उस समय जीव को कुछ फल नहीं है। जब वे उदय में आयेंगे और उदय में

कितने परमाणु उदय में आते हैं उससे कोई लेना-देना नहीं है। किस अनुभागरूप से उदय में आते हैं उसका वैसा फल जीव को मिलेगा। ख्याल में आती है इतनी बात ?

हमने देखा कर्म का बंध होता है, फिर वह सत्ता में पड़ा रहता है और उसके बाद उसका उदय आता है यानी जो परमाणु कर्मरूप बने थे वे अकर्मरूप हो जाते हैं। उस पुद्गल की अन्य कुछ अवस्था पलट जाती है, कार्माणवर्गणा हो जायेगी, छूटे परमाणु होंगे या अन्य वर्गणा में चेंज हो जायेंगे। कुछ भी हो सकता है उसका। उसका क्या होता है, वह अपना विषय नहीं है। यह उदय की बात है। उदय में भी प्रकृतियों का उदय - कौनसी प्रकृतियों का उदय चलता है उसको कहेंगे प्रकृति उदय। कितने प्रदेशों का उदय होता है ? उसको कहेंगे प्रदेशउदय। स्थिति - एक वर्तमान समय की स्थिति का ही उदय होता है अंत अ टाइम, सभी स्थितियों का तो उदय नहीं होता। तो उसको कहेंगे स्थिति का उदय यानी वर्तमान निषेक का उदय और किसरूप से अनुभाग का उदय होता है ? उसको कहेंगे अनुभाग का उदय। वह मंद-तीव्र यथायोग्य जैसा जिसका उदय होता है। तो इसमें भी हमने देखा था कि उदयरूप जो अनुभाग है उसीका जीव को फल मिलता है।

सत्ता में पड़े-पड़े भी कर्मों की अवस्थाओं में बहुत सारे चेंजेस हो जाते हैं। कर्मों की जो अलग-अलग अवस्थायें हैं उनके हम यहां नाम देखेंगे। देखो, आपके पास जो चार्ट है उसमें आप ७ नंबर का चार्ट निकालना। उसका नाम ही है दस करण। यानी ये कर्मों की दस अलग-अलग अवस्थायें हैं। करण शब्द का एक अर्थ यह भी है न, अवस्थायें। यहां कर्मों की अवस्था संबंधी बात है। ऐसे तो बहुत सारी अवस्थायें होती हैं, यहां मूलभूत दस अवस्थाओं की चर्चा है। ऐसे बहुत सारे अलग-अलग करण भी बतायें हैं। जब उसका विषय आयेगा, प्रथमोपशम सम्यक्त्व का, क्षायिक सम्यक्त्व का या दर्शनमोहनीय या चारित्रमोहनीय की क्षपणा का, तब वहां उसकी चर्चा करेंगे।

ये बेसिक दस अवस्थायें हैं उसको हम पढ़ेंगे यहां पर। मैं पढ़ूंगी, मैं दो-दो के नाम लूंगी, आपको रिपीट करना है। बंध, सत्ता, श्रोता:बंध, सत्ता/उदय, उदीरणा, श्रोता: उदय, उदीरणा/उत्कर्षण, अपकर्षण, श्रोता: उत्कर्षण, अपकर्षण/संक्रमण, उपशम,

श्रोता: संक्रमण, उपशम। निधत्ति और निकाचना। श्रोता: निधत्ति और निकाचना। उसको निकाचित भी कहते हैं या निकाचना भी कहते हैं, एक ही बात है। अभी-अभी हमने बंध और सत्ता की बात देखी। जीव के मोह-राग-द्वेष के निमित्त से कार्माणवर्गणा कर्मरूप हो जाती है और कितने ही काल तक जीव के प्रदेशों में बंधी हुयी अवस्था में पड़ी रहती है। उसको कर्म का जीव के साथ बंध हुआ ऐसा हम कहेंगे। क्योंकि एक भव छोड़कर जीव दूसरे भव में चला जाता है तो भी उससे बंधे हुये जो कर्म हैं वे उसके साथ चले जाते हैं। हम करणानुयोग में ऐसा ही कहेंगे। द्रव्यानुयोग में हम कहेंगे कर्म के परमाणु अपनी योग्यता से जा रहे हैं, जीव अपनी योग्यता से जा रहा है। जीव यहां से क्या-क्या लेकर जाता है ? *श्रोता: तेजस और कार्माणशरीर।* हां ! और अपने घरबार का क्या होगा ? घरबार, बाल-बच्चे, बैंक बॅलन्स, गहने-कपड़े सब छोड़कर जाना है। जो छोड़कर जाना है उसके लिये भी इतना पाप करता है।

थोड़ा इमॅजिन करो, यह सब ले जाने की कोई सुविधा होती, व्यवस्था होती तो क्या करता ? बाल-बच्चों के लिये कितना छोड़ता ? जरा भी नहीं छोड़ता। सब कुछ इकट्ठा करके ले जाता साथ में और अभी क्या बता रहा है ? क्या करें ! बाल-बच्चों के लिये कमा रहा हूं। उसको अच्छा नाम देने की कोशिश करता है। परंतु वह कुछ साथ में तो ले जाना नहीं है। जो कुछ ले जायेगा अपना कर्म ले जायेगा। निमित्तरूप से हम क्या कहेंगे ? तेजसशरीर और कार्माणशरीर साथ में जाता है और वह कर्म जिन परिणामों से बंधे हैं उनकी योग्यता से वैसे उसको फल मिलते रहते हैं। यह कभी पुण्य-कभी पाप करता रहता है और ऐसा अनादि से उसका चल रहा है। कभी मनुष्य हुआ, कभी देव हुआ, कभी नारकी हुआ, कभी एकेन्द्रिय में गया, कहीं पर अन्य तिर्यच हुआ फिर भी यह चक्र तो उसका चलता ही रहता है। इसमें से उसने छूटने का मार्ग अभी तक नहीं पाया है और वह छूटने का मार्ग एक मात्र जैन दर्शन में है।

हम इतने भाग्यशाली हैं कि इस निकृष्ट पंचमकाल में हमें उत्कृष्ट मार्ग मिला है। वह मार्ग भी गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के निमित्त से हमें मिला है उन्होंने तो इसको बिलकुल इतना सीधा करके हमारे हाथ में दे दिया है। मुंह में डाला, अभी निगलने की बात बाकी है। है न ? सब कुछ इतना सरल करके उन्होंने समझाया है। यहां भी हम

इस शास्त्र के आधार से उसीका चिंतन-मनन करेंगे। भेदज्ञान करने के लिये यह बहुत कार्यकारी है। जब हम कर्मों की बात इतनी विस्तार से देखते हैं तब यह ख्याल में आता है कि मैं तो स्वतंत्र द्रव्य हूं। कर्म की अवस्था उसमें उसके अपने कारण होती है। हां, उसके साथ निमित्त-नैमित्तिक संबंध है परंतु वह बताने के लिये है, ज्ञान का विषय है।

अभी हमने देखा बंध, फिर सत्ता और तीसरी अवस्था है उदय जिसकी स्थिति पूरी होती है। हमने देखा जो स्थिति बंधती है और एक-एक निषेक क्रम से गल जाता है, निकल जाता है और ऊपर के निषेक क्रम से नीचे-नीचे आयेंगे। हम यहां पर निषेकों की भाषा बोलेंगे। यहां कर्म कुछ ऊपर-नीचे नहीं हो रहे हैं। जिनकी स्थिति पूरी होती है वे गल जाते हैं। तो हम कहेंगे वह एक-एक निषेक नीचे आता है और नीचे से वर्तमान का एक निषेक उदयरूप होकर खिर जाता है। खिरना यानी वह अकर्मरूप होना। फिर ऊपर जो दूसरे नंबर पर निषेक था वह पहले नंबर पर आयेगा, फिर उसका उदय चलेगा। फिर तीसरे निषेक का उदय होगा। चौथे निषेक का उदय होगा। बाय दॅट टाइम नये कर्मों का बंध भी होता रहता है और वह सत्तावाले कर्मों में अँड होता जाता है, सत्तावाले निषेकों में आ मिलता है और उदय भी चलता रहता है। यह बात हुयी उदय की। हमने बंध, सत्ता और उदय ये तीन बातें देखीं। देखो, इसमें तो जीव भिन्न ही है, जीव तो अरूपी है और फिर भी यहां इतने सारे अनंतानंत कर्म परमाणु उसके पूरे आत्मप्रदेशों में फैले हुये हैं और उसीमें नये-नये का बंध होता है। सत्ता में पड़े रहते हैं फिर उदय में आते रहते हैं। यह कर्म और जीव का संबंध अनादि से ऐसा का ऐसा बना रहता है।

अब हम कर्मों की आगे की अवस्था देखते हैं, उसका नाम है उदीरणा। अभी हमने जो निषेक देखे थे निषेक रचना - सत्ता में जो निषेक पड़े हैं; तो हर निषेक में अनंतानंत परमाणु हैं। उसमें से थोड़े परमाणु अपना निषेक छोड़कर उसकी स्थिति घटती है, हम कहेंगे नीचे के निषेकों में आ मिलते हैं। यह कहने की पद्धति है। यानी उसकी अधिक स्थिति थी वह कम हो गयी तो उसको हम क्या नाम देंगे ? उसको अपकर्षण कहेंगे। परंतु जो उदयावली में आ मिलते हैं उनकी उदीरणा हुयी कहते हैं।

अब उदयावली किसको कहना ? उसकी भी बात देखेंगे। उदय के समय से लेकर एक आवली प्रमाण काल तक जितने निषेक हैं उसको हम कहेंगे उदयावली। तो आवली में समय कितने होते हैं ? *श्रोता: असंख्यात।* असंख्यात। कितने असंख्यात नीलेश ? *श्रोता: जघन्य युक्तासंख्यात।* जघन्य युक्तासंख्यात। यह जघन्य युक्तासंख्यात क्या है ? उसे देखते हैं।

मिनिमम असंख्यात का नाम है जघन्य परीतासंख्यात। अभी उसका हम विस्तार नहीं देखेंगे परंतु वह मिनिमम असंख्यात है, छोटे में छोटा असंख्यात है। वह जो जघन्य परीतासंख्यात संख्या है, उसको जघन्य परीतासंख्यात बार लिखो। जैसे हम दूसरा उदाहरण देकर समझाते हैं। आपके पास चार संख्या है और उस चार संख्या को आपको एक-एक में विरलन करना है यानी उसको एक-एक में बिखेर देना है। एक-एक में बिखेर देने से उसको कैसे लिखेंगे हम ? एक-एक-एक-एक। तो इसको कहेंगे यह विरलन किया हमने - १ १ १ १। चार संख्या को हमने बिखेर दिया और हर एक के माथे पर ४ ४ ४ ४ लिखा। बाद में क्या करना ? उनको आपस में गुणा करना। चार संख्या को चार बार लिखकर आपस में गुणा करना। तो कितनी राशि होगी ? २५६ होगी। ऐसे हमें क्या करना है ? पहले जघन्य परीतासंख्यात बार एक-एक-एक-एक लिखना और हर एक के माथे पर जघन्य परीतासंख्यात लिखना और उनको आपस में गुणा करना। फिर से, जघन्य परीतासंख्यात, जघन्य परीतासंख्यात ऐसे कितनी बार लिखना ? जघन्य परीतासंख्यात बार लिखना। बाद में क्या करना ? उनको आपस में गुणा करना। तो जो संख्या आयेगी उसको कहते हैं जघन्य युक्तासंख्यात।

इतने समय एक आवली में होते हैं और ऐसी संख्यात हजार कोड़ाकोड़ी आवली, कितनी ? *श्रोता: संख्यात हजार कोड़ाकोड़ी आवली।* संख्यात हजार कोड़ाकोड़ी आवली एक सेकंड में होती हैं। यहां केवलज्ञानी के ज्ञान में एक-एक समय का ज्ञान है और एक-एक समय में क्या बातें होती हैं उसका सारा वर्णन भी उनकी वाणी में यानी आगम में आ जाता है। तो एक समय कितना सूक्ष्म है ! हम जो समय-समय की बात करते हैं वह आगम के द्वारा करते हैं। यह आगम सर्वज्ञ की वाणी के अनुसार लिखा गया है और उस आगम के द्वारा हम जानते हैं। हम सही जान रहे हैं

परंतु कैसा जान रहे हैं ? आगम के द्वारा जान रहे हैं, उसमें भी यह समय-समय की बातें करते हैं।

यह उदयावली का अर्थ क्या देखा हमने ? वर्तमान समय से १, २, ३, ४ ऐसे जघन्य युक्तासंख्यात प्रमाण जो समय हैं - उतने निषेक हैं उसको हम कहेंगे उदयावली। हमने देखा, सत्ता में निषेक कितने हैं ? अनेक कोड़ाकोड़ी सागरों के पड़े हैं। सभी निषेकों में से थोड़े-थोड़े परमाणु नीचे आते रहते हैं, हर समय आते रहते हैं। यह कोई जीव के पुरुषार्थ से आते हैं ऐसा नहीं है। यह तो अभी हमने देखा था आबाधा और उसके ऊपर निषेक रचना हुयी। एक समय में बंधे हुये समयप्रबद्ध में विशिष्ट आबाधा पड़ी है और उसके ऊपर निषेक रचना हुयी है अंतिम स्थिति तक। बंध के बाद एक आवली बीत जाती है तो सभी निषेकों में से थोड़े-थोड़े परमाणु नीचे आते हैं और नीचे के निषेकों में दिये जाते हैं। उदीरणा का अर्थ होता है उदयावली में जुड़ जाना। उदयावली के ऊपर के निषेकों के परमाणु उदयावली के निषेकों में आकर मिल जाते हैं और जल्दी उदय में आते हैं उसको कहेंगे उदीरणा। जैसे यहां लंबी लाइन लगी थी न, पुस्तकें लेने के लिये। तो क्या हुआ ? हमारे कोई पहचानवाले आगे खड़े थे तो हम उनके साथ हो गये। तो क्या हुआ ? हमने लाइन छोड़ी और आगे आ गये, उदीरणा हुयी। ऊपर के निषेकों में अधिक स्थितिवाले परमाणु जो थे, वे अपकर्षण होकर उदयावली में आ गये और एक आवली काल में उदय में आने योग्य हो गये तो उसको क्या कहेंगे ? उदीरणा। यह कर्मों की जो अवस्था होती है उसको कहेंगे उदीरणा। वह पूरा का पूरा निषेक नीचे नहीं आता, थोड़े से परमाणु नीचे उदयावली में आते हैं, इसका नाम है उदीरणा।

मैंने अभी क्या बात कही ? बंध हुआ है। एक आवली तक उस बंधे हुये परमाणु में कुछ चेंजेस नहीं होते, कुछ नहीं होता। परंतु एक आवली बीत जाने पर नियम से हर एक कर्म में उदीरणा शुरू होती ही है। वह ७० कोड़ाकोड़ीवाला होगा तो भी। यानी एक आवली काल बाद उदीरणा होकर उसका उदय शुरू होता ही होता है। यह नियम है हर कर्म में। *श्रोता: आबाधाकाल छोड़कर ?* आबाधाकाल में भी सत्ता की निषेक रचना है क्योंकि वहां सत्तावाले परमाणु हैं। सत्ता के निषेक वहां पड़े हैं। आबाधा

तो अभी बंधे हुये की है, परंतु वहां ऑलरेडि सत्ता के पहलेवाले निषेक तो पड़े हैं। बंध के बाद आवली तक तो ऐसा का ऐसा रहा। बाद में क्या हुआ ? उदयावली के ऊपर के निषेकों में से अपकर्षण होकर सत्तावाले अन्य निषेकों में और उदयावलीवाले निषेक में भी परमाणु आ गये और उनका उदय भी चालू हो गया। यानी कोई भी कर्म बंधने के बाद; अभी आयुकर्म को छोड़ दो; सात कर्मों के बारे में बता रहे हैं कि एक आवली में उसका उदीरणा के द्वारा उदय होता ही होता है और यह कोई जीव के पुरुषार्थ से या आत्मध्यान करने से नहीं होता है। वह चलता ही रहता है। कर्मों की सहज ही ऐसी पद्धति है। पहले उदय की अपेक्षा आबाधा कही थी। अब उदीरणा की अपेक्षा आबाधा कहेंगे तो आवली काल कहेंगे। इसलिये उसकी यहां अवस्था अलग से बतायी है। उदीरणा होती रहती है।

निषेकों में ऐसे कुछ परमाणु होते हैं कि वे वहीं पर पड़े रहते हैं। निषेकों के सभी परमाणु नीचे-ऊपर नहीं करते। कुछ तो अपनी जगह छोड़ते ही नहीं और कुछ नीचे-ऊपर उथल-पुथल करते ही रहते हैं। उसकी बात आयेगी। अभी तो हमें दस अवस्थायें देखनी हैं। उदीरणा की बात समझ में आयी ? अधिक स्थितिवाले परमाणु थे, उनकी स्थिति इतनी घटी कि बस आवली मात्र रह गयी। अब आवली में उदय में आनेवाले परमाणु के साथ उनका भी उदय होगा इसको कहेंगे उदीरणा। आयुकर्म में बंधने के बाद अभी भुज्यमान आयु चल रही है तब तक तो बध्यमान आयु का उदय या उदीरणा नहीं हो सकती। परंतु जब हमारी आयु का उदय शुरू हो जाता है यानी विग्रहगति के पहले ही समय से नयी आयु की शुरुआत होती है न ? कोई देव में गया है तो विग्रहगति से उसकी देवायु चालू हो गयी। तब उसी समय से उसकी उदीरणा भी चालू हो गयी। उदीरणा का अर्थ ऊपर के कुछ परमाणु नीचे आकर उदय में आते हैं। उसका कोई महत्व नहीं है। उससे कोई आयु बढ़ती है या कुछ वह स्ट्रॉंग होती है ऐसा कुछ नहीं है। बस कर्मों में ऐसी सहज बातें बनती हैं कि उसकी उदीरणा होती रहती है। यह बात ख्याल में आयी यहां तक ?

श्रोता: यह उदीरणा आबाधाकाल से लेते हैं ? आबाधाकाल से निरपेक्ष यानी बंधावली के एक आवली बाद उदीरणा होती ही है और आबाधा हमने कही थी वह

उदय की अपेक्षा कही थी। यानी पहला निषेक आबाधा के बाद वहां पर बना है। वह पूरा निषेक नीचे आने में ७००० वर्ष लगेंगे, परंतु सभी निषेकों के कुछ परमाणु उदीरणा होकर जल्दी उदय में आ सकते हैं। आ सकते हैं यानी आते ही हैं। सभी निषेकों में से निकलेंगे। ऐसा नहीं कि एक ही निषेक में से निकला है। सत्ता के जितने निषेक हैं उन सभी निषेकों में से थोड़े-थोड़े परमाणु हर समय में नीचे आते रहते हैं। *श्रोता: आयु में नहीं?* बध्यमान आयु में नहीं। आयु का जब उदय शुरू हो जायेगा तब पहले समय से ही लेकर उसकी उदीरणा चालू हो जायेगी। एक अंतिम आवली छोड़ दो क्योंकि उसमें उदीरणा होने के लिये आवली के ऊपर निषेक ही नहीं हैं। आयु में आवली प्रमाण काल बाकी है तब उदीरणा रुक जाती है, तब तक उदीरणा चलती रहती है। उदीरणा हुयी इसलिये उसमें कुछ फल अधिक मिला, कम मिला ऐसा कुछ नहीं है। परमाणु कब कौनसे उदय में आते हैं उसके ऊपर उसका नाम है।

श्रोता: कदलीघात में आयु की उदीरणा होती है ? कदलीघात में उदीरणा होती है ऐसा कथन योग्य नहीं है। उदीरणा तो हर समय होती है; हमारी भी चल रही है। कदलीघात में क्या होता है ? ऊपर के अनेक निषेकों का घात होता है - पूरे निषेक एक ही समय में नष्ट हो जाते हैं और उन निषेकों के परमाणु नीचे के निषेकों में आ मिलते हैं। कदलीघात यानी अकालमृत्यु जिसको कहते हैं। मान लेते हैं कोई १०० साल की आयु लेकर यहां जन्मा है। एक-एक समय में एक-एक निषेक पड़ा है। अभी १०० साल के उसके निषेक पड़े हैं। १०० साल के जितने समय उतने निषेक हैं। अब वह जीव पच्चीसवें साल का हो गया। तो अभी क्या होता है ? किसी अपघात या अन्य किसी कारण से १० मिनट के निषेकों के ऊपर के सभी निषेकों के जो परमाणु हैं वे सारे इन १० मिनट के निषेकों में आ मिलेंगे। यानी ये ऊपर के सारे निषेक नष्ट होकर नीचे आ गये तो यह घात हुआ। निषेकों का घात हुआ और घात होकर कहां चले गये ? नीचे के निषेकों में आ मिले। अभी भी १० मिनट की आयु बाकी है। अभी तक आयु का बंध नहीं हुआ था। अभी जाकर बंध होगा क्योंकि आयुबंध का नियम क्या है ? टू थर्ड से ज्यादा आयु बीत जानी चाहिये। १०० साल में से २५ साल ही बीत गये थे, यहां आयु का बंध नहीं हो सकता था। कदलीघात होकर आयु इतनी घट गयी। अभी जो

भोगी हुयी आयु है वह दो तिहाई से ज्यादा है। अभी इसका आयु का बंध होगा एक अंतर्मुहूर्त में और १० मिनिट में उसका मरण हो जायेगा। यह उसकी बात है, इसको कहेंगे अकालमृत्यु या कदलीघात से मरण होना।

सामान्य से आयु की उदीरणा तो हर समय हमारी-आपकी सबकी चल रही है। कदलीघात में उदीरणा से मृत्यु हुयी यह कथन गलत है। *श्रोता: कदलीघात का कारण क्या है ?* ऐसे ही परिणामों से आयु बंधी है कि ऐसे ही कदलीघात होकर मरण आनेवाला है। परंतु कदलीघात हुआ इसलिये अभी वर्तमान में उसका परिणाम खोटा है ऐसा नहीं है। कदलीघात से मरनेवाले के भी समाधिमरण वहां भी हो सकता है। कदलीघात से जहां मरण होता है; जैसे देव कोई मुनिराज को पटक देते हैं; या अन्य किसी कारण से भले उनकी आयु लंबी बांधकर आये थे, अभी तो शॉर्ट हो गयी है। परंतु उस समय के परिणाम, हां, वहां भी समाधिमरण हो सकता है। यानी हम तो दूसरों को देखकर अरे ऑक्सिडेंट से मरा, बेचारा। ऐसा जरूरी नहीं कि वह ऑक्सिडेंट से मरा इसलिये वह नरक में गया।

श्रोता: ऑक्सिडेंट से मरनेवालों का कदलीघात होता है ? सबका कदलीघात होता है ऐसा नहीं। देखो कोई २५ वर्ष की आयु बांधकर आया। हमने देखा कोई मिनिमम अंतर्मुहूर्त की आयु बांधकर भी मां के गर्भ में आता है। गर्भज है यानी वह पर्याप्त जीव है, फिर भी अंतर्मुहूर्त की आयु बांधकर आया होगा तो अंतर्मुहूर्त में मरेगा। अभी पता ही नहीं यहां गर्भ ठहरा है या नहीं ठहरा है, मर गया। वह तो उसकी पूरी आयु ही उतनी बांधकर आया था। यानी हर जीव जो छोटी आयु में मरता है वह जरूरी नहीं कि वह कदलीघात से मरा है। हो सकता है वह उतनी ही आयु लेकर आया है। यह हम आप तो नहीं कह सकते हैं। यह तो केवलज्ञानी जानेंगे।

श्रोता: कौनसे कर्म के कारण कदलीघात होता है ? वह जीव के परिणामों में ऐसी बातें होती हैं कि उस समय वैसी आयु बांधी है तो वैसे उसका मरण हुआ है। यह परिणाम हमारे हाथ में नहीं हैं। यानी हम ऐसा नहीं सोच सकते हैं कि अभी कैसे परिणामों में आयु बांधनी चाहिये ? बोलो, मैं आपको ट्रिक बताती हूं। कौनसी आयु

बांधना चाहते हो ? मुझे आप जरा अंदाजा दे दो। मैं आपको बता दूंगी क्या करना है।
श्रोता: देव की या महाविदेह के मनुष्य की। जिसके एक भी भव की चाह है उसके अभिप्राय में अनंत भवों की चाह पड़ी है। आयु जो बंधनी है वह बंधनी है। चारों ही गतियों में सम्यग्दर्शन हो जाता है। *श्रोता: अन्य गतियों में परेशानी है।* परेशानी की बात नहीं है। देखो हम तो तत्त्व का विचार करें, परिणाम अपने हाथ की बात नहीं है। इन शुभाशुभ परिणामों से भी हमें भेदज्ञान करना है। हम राग के स्वामी बनकर बैठे हैं। कौनसा राग करना और कौनसा परिणाम करना या नहीं करना, यह जो प्रश्न है यही मूल में अभिप्राय की भूल है। यही मिथ्यात्व है।

शरीर से भिन्नता की बात तो सभी अन्यमति भी करते हैं। परंतु राग से भिन्नता की जो बात है, वह जिनागम का मर्म है - राग के हम स्वामी हैं ही नहीं। यथायोग्य परिणाम आने हैं वे आते हैं। उनसे हम भिन्न हैं इसको महत्व देना है। उससे भेदज्ञान करना है। यहां भी कर्मों की बातें पढ़ने से कोई घबराने की जरूरत नहीं है। कर्मों की अवस्थायें कर्मों में होती हैं, अपने से कुछ लेना-देना नहीं है। इतना सब पढ़ने के बाद हम यही कहेंगे कर्म भिन्न है और तू भिन्न है बस इतना ही जानो। तो इतना क्यों बताया ? क्योंकि सीधे बताते तो नहीं मानते न। तो इतना डिफिकल्ट करके बताया !

हमने देखा बंध, सत्ता, उदय और उदीरणा। उदीरणा भी उसीकी होती है जिसका उदय होता है। क्या कहा ? उदीरणा यानी क्या ? उदयावली में आ मिलना। तो प्रत्येक कर्म जो बंधा है उसका उदय नहीं हो रहा है। जैसे हमारा पंचेन्द्रिय जाति का उदय हो रहा है, पंचेन्द्रिय जातिकर्म है। हमारे मनुष्यगति का उदय हो रहा है तो उसीकी उदीरणा होगी। अन्य जो जातिकर्म हैं उनका उदय या उदीरणा नहीं है। अन्य जो तिर्यचगति है उसके भी परमाणु सत्ता में हैं। हमारी सत्ता में जो तिर्यचगति के परमाणु हैं, नरकगति के परमाणु हैं, देवगति के परमाणु हैं वे एक समय में मनुष्यगतिरूप होकर उदय में आ रहे हैं जिसको कहेंगे थिउक्क संक्रमण। एक-एक समय में मनुष्यगतिरूप होकर वे उदय में आते हैं।

तो उदीरणा किसकी होगी ? जिसका उदय है उसीकी उदीरणा होगी। जैसे

तीर्थकर प्रकृति बंध रही है, सत्ता में पड़ी है। सागरों तक पड़ी रहती है न ! अभी कोई तीर्थकर प्रकृति बांधनेवाला ३३ सागर का देव हुआ। वहां भी बंध चल रहा है, सत्ता में भी है तो उसकी उदीरणा होगी कि नहीं होगी ? उसका उदय कब होगा ? जब तीर्थकर होगा तब। केवलज्ञान होने पर उदय होगा। उदीरणा भी तभी होगी। उसके पहले उसका अपकर्षण होगा और पर प्रकृतिरूप होकर उदय में भी आयेगा परंतु उसको उदीरणा नहीं कहेंगे। वह अपकर्षण क्या होता है ? उसको देखेंगे अभी हम। जब तीर्थकर प्रकृति का उदय तेरहवें गुणस्थान में होता है, तब उसका उदय-उदीरणा कहेंगे, तब तक नहीं कहेंगे। तो जिसका उदय होता है उसीकी उदीरणा होती है। आयु में क्या देखा है ? हमारा अभी मनुष्यायु का उदय चल रहा है। तो इसकी तो उदीरणा चल रही है। परंतु हमने अगर देवायु बांधी है तो उसकी उदीरणा कब होगी ? जब उसका उदय चालू हो जायेगा तब उसकी उदीरणा होगी। तब तक उसमें कुछ चेंजेस नहीं होंगे।

अब आगे। आगे दो नाम हैं उत्कर्षण और अपकर्षण। उत्कर्षण यानी स्थिति या अनुभाग का बढ़ना और अपकर्षण यानी घटना, अप यानी कम होना। उत्कर्षण यानी ऊपर चढ़ना, ऊपर बढ़ना। अभी उत्कर्षण और अपकर्षण कैसे होता है ? उसको भी हम देखते हैं। उत्कर्षण के लिये एक नियम है कि वहां नया बंध होना चाहिये। क्या कहा ? नया बंध। यानी नये बंधने के साथ ही उत्कर्षण हो सकता है। ऐसे ही सत्ता में कर्म पड़े हैं और अपने आप उनकी स्थिति अनुभाग बढ़ जाये ऐसा कभी नहीं होगा। वर्तमान समय में जो बंध हो रहा है वह अधिक स्थितिवाला हो। देखो ये सत्ता में पड़े हुये निषेक हैं और अभी यह नया बंध है, यह उसकी आबाधा है। यह नया बंध स्थितिसत्त्व से ज्यादा हुआ या कम भी हुआ तो यहां के - नीचे के निषेकों के परमाणु ऊपर के निषेकों में जाते हैं यानी उनकी स्थिति बढ़ती है। उदयावली के परमाणु छोड़ देना। उदयावली में जो ऑलरेडि एंटर हुये हैं उनका उत्कर्षण नहीं हो सकता। उनका अपकर्षण, उदीरणा आदि कुछ नहीं होता।

उदयावली यानी उदय के सन्मुख एक आवली काल में आ गये, अभी उनमें कुछ नहीं होगा। उत्कर्षण, अपकर्षण, संक्रमण कुछ नहीं होगा। परंतु उसके ऊपर के

जो निषेक हैं; उन निषेकों के कुछ परमाणु नये बंध के साथ ऊपर चले जाते हैं, ऊपर सर्वत्र दिये जायेंगे। अभी वे किसमें नहीं जाते; किसमें दिये जाते हैं उसका अलग नियम है। तो उसको कहेंगे उत्कर्षण। इसमें से कुछ ही परमाणु ऊपर चले गये, पूरा निषेक नहीं गया है। पूरे निषेक में अनंतानंत परमाणु हैं। उनमें से सब परमाणु अपनी जगह नहीं छोड़ते, उनमें से कुछ परमाणु ऊपर चले जाते हैं। उसके लिये कंडिशन क्या है ? नया बंध होना आवश्यक है। उसको कहेंगे उत्कर्षण। यहां हमने केवल स्थिति का उत्कर्षण बताया। अनुभाग का उत्कर्षण- हर निषेक में सभी अनुभाग हैं। किसी परमाणु में मंद अनुभाग था, वह तीव्र अनुभागवाला होना उसको कहेंगे अनुभाग का उत्कर्षण। अनुभाग के उत्कर्षण में जरूरी नहीं कि वह स्थिति की अपेक्षा ऊपर चला जाये। अपने निषेक में रहते हुये अनुभाग का बढ़ना उसको उत्कर्षण कहेंगे। अनुभाग का घटना उसको अपकर्षण कहेंगे। हां, यहां ऊपर चढ़ते-चढ़ते स्थिति का उत्कर्षण हो रहा है, तब अनुभाग में कुछ अलग भी हो सकता है।

श्रोता: ऊपर जाते हैं ? हां, उन निषेकों के साथ। स्थिति की अपेक्षा और अनुभाग की अपेक्षा वे दो बातें अलग-अलग सोचना। स्थिति बढ़ गयी इसलिये अनुभाग बढ़ा ऐसा बिलकुल नहीं है और स्थिति घटी इसलिये अनुभाग घटा ऐसा भी नहीं है। यह बात ख्याल में रखना। हर निषेक में सभी अनुभागवाले स्पर्धक हैं। अपने-अपने निषेक में रहते हुये भी अनुभाग का बढ़ना-घटना हो सकता है। तो इसको हम क्या कहेंगे ? उत्कर्षण और अपकर्षण। *श्रोता:* स्थिति के साथ अनुभाग भी बढ़ सकता है ? बढ़ सकता है। अभी उसमें वर्तमान के परिणाम कैसे हैं ? उसके अनुसार होता है। हां, क्योंकि अभी वर्तमान में तीव्र कषाय चल रहे हैं, संक्लेश परिणाम चल रहे हैं। तो पूर्व में बंधे हुये मंद अनुभागवाले अप्रशस्त कर्म भी तीव्र अनुभागवाले हो जाते हैं।

हम उदाहरण देते हैं न कि किसीने मंदिर बनवाया। कुछ अच्छा काम किया है और बाद में क्या सोचता है ? अरे-अरे ! मैंने उसमें बेकार पैसे बर्बाद किये। अभी मैं कहीं अन्यत्र पैसे लगाता, घर बांधता तो मेरा आज कितने करोड़ों का फ़ायदा हो जाता। यानी शुभ परिणाम में एक कार्य तो हो गया उसका। तब तो उसके परिणाम अच्छे थे। परंतु यह कार्य किया उसीके बारे में क्या कहता है ? अरे ! मैंने बेकार का

वह कार्य किया। तो अभी उसका क्या हो रहा है ? वर्तमान में अशुभ कर्म तो बंधे ही बंधे, पूर्व में बंधे हुये भी पापरूप हो गये। पूर्वबद्ध पाप कर्मों का अनुभाग भी बढ़ जाता है। ऐसी बातें होती रहती हैं।

जो वर्तमान समय का परिणाम है उससे नया बंध तो होता ही होता है, पुराने कर्मों में उत्कर्षण, अपकर्षण, उदीरणा, ये सारी बातें होती रहती हैं। ऐसी एक दो अवस्था नहीं, ऐसी अँट अ टाइम सभी अवस्थाएँ चलती रहती हैं। परंतु समझाने में क्रम होता है इसलिये यहां एक-एक प्रोसेस, एक-एक अवस्था बतायी जाती है। तो हमने अभी देखा उत्कर्षण-अपकर्षण। *श्रोता: उत्कर्षण-अपकर्षण एक ही परमाणु में एक साथ हो सकता है ?* एक ही परमाणु में उत्कर्षण और अपकर्षण एक साथ नहीं होता। एक समय में अपकर्षण हुआ तो दूसरे समय में उसीका उत्कर्षण हो सकता है। *श्रोता: किसी समय के विशिष्ट परिणाम से किन्हीं प्रकृतियों का उत्कर्षण-अपकर्षण ?* पूरी प्रकृति में नहीं होता। किन्हीं परमाणुओं में होता है।

श्रोता: किसीमें अपकर्षण किसीमें उत्कर्षण होता है किसी विशिष्ट परिणाम के निमित्त से ? विशिष्ट परिणाम के निमित्त से या सामान्य से भी। अभी बंध चल रहा है और सत्ता के कुछ परमाणु नीचे आते-आते उदयावली के ऊपर हैं। उनमें से कुछ परमाणु ऊपर चले जाते हैं, उनकी स्थिति बढ़ती है। परंतु उसमें कंडिशन क्या थी ? अपनी शक्तिस्थिति की लिमिट है न, वहां तक जायेंगे। पूरे ऊपर तक नहीं पहुंचेंगे। बंधने के बाद कितना समय बीत गया है ? अभी नीचे-नीचे आया है। मान लेते हैं उसकी ७० कोड़ाकोड़ी सागर की स्थिति बांधी थी और नीचे आते-आते आवली के ऊपर ही बहुत कम स्थिति बाकी है। अभी उनका उत्कर्षण नहीं हो सकता। परंतु उस सत्ता के निषेक में अलग-अलग समयों में बंधे हुये बहुत सारे परमाणु हैं। कुछ परमाणु ऊपर चले जायेंगे। जिनकी शक्तिस्थिति अभी बाकी है ऊपर जाने की - उतने तो ऊपर जा सकते हैं। यहां तक बात ख्याल में आयी ?

हमने बंध, सत्ता, उदय, उदीरणा, उत्कर्षण और अपकर्षण देखा। ये बातें ख्याल में आयी ? आगे लिखते हैं संक्रमण। अभी हम मुख्यतः प्रकृति संक्रमण की बात

करते हैं। अन्य प्रकृतिरूप होना इसको कहेंगे संक्रमण। संक्रमण का क्या अर्थ है ? अन्य प्रकृतिरूप होना। तो क्या ज्ञानावरण की प्रकृतियां दर्शनावरणरूप हो जायेगी ? नहीं। अपनी जाति की प्रकृति में संक्रमण होता है। ज्ञानावरण की जो मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण आदि पांचों प्रकृतियां आपस में ही संक्रमित होती रहती हैं। उनका आपस में संक्रमण होगा परंतु ज्ञानावरण की प्रकृति मोहनीयरूप हो जाये ऐसा नहीं कभी बनेगा। ख्याल में आयी बात ? जैसे दर्शनमोहनीय है - मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक् प्रकृति - उनका आपस में संक्रमण चलेगा। अब कहां पर होता है ? कैसे होता है ? वह जब अपना विषय आयेगा तब बात चलेगी। जो चारित्रमोहनीय है अनंतानुबंधी आदि - क्रोध, मान, माया, लोभ। ये सोलह हैं न ? अनंतानुबंधी की ४, अप्रत्याख्यानावरण की ४, प्रत्याख्यानावरण की ४ और संज्वलन की ४, इन सोलह का भी आपस में संक्रमण होता रहता है। उसमें कंडिशन क्या है ? जिनमें संक्रमण होता है उनका नया बंध वहां पर भी होना चाहिये। जैसे उत्कर्षण के लिये हमने एक कंडिशन बतायी। क्या ? वहां बंध होना चाहिये। वैसे ही संक्रमण जिन प्रकृतियों में होता है उनका बंध होना चाहिये।

जिन प्रकृतियों में संक्रमण होता है, जो अक्सेप्ट करती हैं उनको कहते हैं प्रतिग्रहवाली प्रकृति। जैसे अनंतानुबंधी है वह अप्रत्याख्यानावरणरूप संक्रमित हो गयी तो वहां अप्रत्याख्यानावरण का बंध होना चाहिये तभी उसमें संक्रमित होगी। जिसका बंध होता है उसमें संक्रमित होती है। उस पर्टिक्युलर समय में जिसका बंध हो रहा है उन सजातीय प्रकृतियों में उसका संक्रमण हो सकता है। अब वह भी पूरी की पूरी प्रकृति संक्रमित नहीं होती, थोड़ी होती है। थोड़े परमाणु संक्रमित होते हैं। वह कितनी मात्रा में होते हैं ? उसके लिये उसका प्रमाण कैसे निकालना ? उसके गणित या उसका प्रमाण वह अलग विषय है। हम तो यहां केवल संक्रमण होता है इतनी बात यहां देखेंगे। वह कितना होता है ? क्या होता है ? उसके नाम अलग-अलग हैं - पांच प्रकार के संक्रमण हैं। यह अभी अपना विषय नहीं है।

अभी हमने क्या देखा ? एक प्रकृति सजातीय यानी अपनी जाति की अन्य प्रकृतिरूप हो जाती है उसको कहेंगे संक्रमण होना। *श्रोता: मोहनीय के दर्शनमोहनीय*

और चारित्रमोहनीय दोनों भिन्न-भिन्न हैं? हां भिन्न हैं। दर्शनमोहनीय का चारित्रमोहनीय में संक्रमण नहीं होता। चारित्रमोहनीय का आपस में संक्रमण हो सकता है। हां, परंतु दर्शनमोहनीय कभी चारित्रमोहनीयरूप नहीं होंगे। दूसरी बात आयु का संक्रमण नहीं होता, चार आयु का आपस में संक्रमण नहीं होता। गति नामकर्म का हो सकता है, आयु का नहीं होगा। गति तो नामकर्म का भेद है और आयु कर्म अलग कर्म है। मनुष्यायु बांधी है और वह संक्रमित होकर अभी उसके नरकायु, देवायु हो जाये ऐसा नहीं होता। नोकषायों का आपस में भी संक्रमण होता है। नोकषाय कषायरूप भी संक्रमित होते हैं। चारित्रमोहनीय की २५ का आपस में संक्रमण हो सकता है, वहां वे बंधनेवाली होनी चाहिये। अँट अ टाइम सोलह का तो बंध हो सकता है, मिथ्यादृष्टि को सोलह का बंध होता है; परंतु प्रतिपक्ष प्रकृतियों में से यानी तीन वेद में से एक वेद बंधेगा और दो युगल में से एक युगल बंधेगा; भय, जुगुप्सा तो ध्रुवबंधी हैं, हमेशा बंधती रहेगी। तो जो बंधनेवाली हैं उनमें अन्य प्रकृतियां संक्रमित हो सकती हैं।

जब सम्यक्त्व होता है तब दर्शनमोहनीय के मिथ्यात्व का सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृतिरूप और जब मिथ्यात्व में चला जाता है तब उलटा संक्रमण होता है यानी सम्यक् प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्व की उद्वेलना होकर वे मिथ्यात्वरूप होती रहती हैं। सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति में वह बंध का नियम नहीं है। क्योंकि वे बंधनेवाली प्रकृतियां नहीं हैं, सम्यक्त्व होने पर वे मिथ्यात्व का अनुभाग घटकर तैयार होती हैं। दर्शनमोहनीय की उन दो प्रकृतियों को छोड़कर, बाकी में यह बंध का नियम लगता है क्योंकि वे बंधनेवाली तो हैं नहीं। संक्रमण जो है बंधनेवाली प्रकृति में ही होता है। नहीं बंधनेवाली का जो संक्रमण होता है उसकी बात अलग है। वह क्षपणा वगैरह में जो बंधती हैं और जो संक्रमित होती हैं उनकी चर्चा जब क्षपणा का प्रकरण आयेगा तब हम करेंगे। अभी यहीं रुकते हैं।

बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

४. अपकर्षण, उत्कर्षण, संक्रमण आदि

आचार्य श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती ने इस लब्धिसार ग्रंथ की रचना की है। उसीके आधार से पं. टोडरमलजी ने सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका लब्धिसार-क्षपणासार भाषाटीका ढूंढ़ारी भाषा में लिखी है। आपके हाथ में इसका हिंदी अनुवाद है और अभी हम लब्धिसार की भूमिका संबंधी कुछ प्रकरण देख रहे हैं।

कर्मों की क्या-क्या अवस्थाएँ होती हैं, इसका अपना सामान्य कथन चल रहा है। जिसको हम कहते हैं न, पारिभाषिक शब्द उनका अर्थ देखते हैं क्योंकि आगे इन्हीं शब्दों का इस्तेमाल होगा। वहाँ फिर दुबारा भी उसकी चर्चा करेंगे हम। परंतु एक बार उन शब्दों का अर्थ पता है, तो आगे चलकर जब-जब ये शब्द आयेंगे तो उसका सही अर्थ भासित हो जायेगा। हमने देखा है कि कर्मों की दस अवस्थाएँ होती हैं। कौनसी दस अवस्थाएँ होती हैं ? श्रोताः बंध, सत्ता, उदय, उदीरणा, उत्कर्षण, अपकर्षण, संक्रमण, उपशम, निधत्ति और निकाचित। बंध, सत्ता, उदय, उदीरणा, उत्कर्षण, अपकर्षण, संक्रमण, उपशम, निधत्ति और निकाचित ये जो दस अलग-अलग अवस्थाएँ हैं उनकी अपनी यहाँ बात चल रही थी। हमने बंध, उदय और सत्ता की बात देखी थी, उदीरणा की भी बात देखी थी, उत्कर्षण, अपकर्षण को भी हमने देखा था।

हम पुस्तक के आधार से भी जरा देख लेते हैं, वैसे बीच में सत्त्व की और उदय की भी बहुत सारी बातें उन्होंने समझायी हैं। हम उदीरणा किसको कहते हैं उसको देखेंगे। १८ पृष्ठ पर तीसरा पैराग्राफ— **पुनश्च अपक्वपाचन**, अपक्वपाचन का अर्थ क्या होता है ? अपक्वपाचन का अर्थ जो अभी स्थिति पूरी नहीं हुयी। पकना यानी क्या है ? स्थिति पूरी होना तो जिसकी स्थिति पूरी नहीं हुयी है तो उसको कहेंगे हम अपक्व। फिर भी उसकी स्थिति घटाकर जल्दी उदय में आने योग्य करने को कहेंगे अपक्वपाचन। यह अपक्वपाचन का प्रयोग करते हैं कि नहीं करते हैं आप ? कब करते हैं ? आम के सीझन में - नहीं पके हुये को पकाते हैं। यह अपक्वपाचन यानी क्या है ? अधिक यानी लंबे काल के बाद उदय आने योग्य जो परमाणु हैं उनको जल्दी उदय आने योग्य कर देते हैं उसको कहेंगे अपक्वपाचन। देखो, अपक्वपाचन **अर्थात् जो पक्व नहीं हुआ**

अर्थात् जो उदय को प्राप्त नहीं हुआ, ऐसे कर्म का पाचन करना अर्थात् पकाना, उदयकाल में प्राप्त करना - ऐसा है लक्षण जिसका उसे उदीरणा कहते हैं। उदयकाल यानी उदयावली के अंदर उसको निक्षेपण करना कहो या उसकी स्थिति घटाकर एक आवली में उदय आने योग्य करना उसको कहेंगे उदीरणा।

उसीको आगे समझाते हैं- **वर्तमान समय से लेकर आवली मात्र काल में उदय आने योग्य जो निषेक** एक-एक समय में एक-एक निषेक पड़ा है, तो आवली में जितने समय हैं उतने निषेकों का जो समूह है उन सभी निषेकों को क्या कहेंगे ? **उनका नाम उदयावली है।** काल के द्वारा इन निषेकों की संख्या को बता रहे हैं। जो परमाणु उदयावली में प्रवेश करते हैं उनका तो उदय होगा ही होगा। अभी वे उदयावली के ऊपर नहीं जा सकते वापस, उनका उत्कर्षण, अपकर्षण कुछ नहीं होगा। **उसके ऊपरवर्ती निषेकों को** यानी उसके ऊपर के निषेक; वर्तमान से एक आवली छोड़कर उसके ऊपर सत्ता में जितने सारे निषेक हैं उनको कहेंगे ऊपरवर्ती निषेक; **उदयावलीबाह्य निषेक कहते हैं।** कहीं-कहीं उपरितन शब्द भी आता है। उपरितन कहो, ऊपरवर्ती कहो एक ही अर्थ है। अधःस्तन यानी नीचे के, उपरितन यानी ऊपर के। परंतु वहां किसी विशिष्ट चीज़ के नीचे या ऊपर की बात करनी है तो वे दो शब्द आयेंगे- अधःस्तन और उपरितन। अब यहां उदयावली के ऊपर के हैं इसलिये उनको कहेंगे ऊपरवर्ती निषेक।

उदयावली के बाह्य स्थित निषेकों के परमाणुओं को यानी जो उदयावली के ऊपर के निषेक हैं, उनमें से कुछ परमाणु **उदयावली के निषेकों में मिलाना** - पूरा निषेक नीचे नहीं आता है, उसके कुछ परमाणु वहां अपनी जगह छोड़कर अपनी स्थिति घटाकर उदयावली के निषेकों जैसी उनकी स्थिति बन जाती है तो उसको कहना उदयावली में आकर मिलते हैं। जिसका उदय है उसीकी उदीरणा हो सकती है। **इसतरह बहुत काल पश्चात् उदय में आने योग्य जो अपक्व परमाणु,** कर्म परमाणु **उनको उदयावली के निषेकों के साथ उदययोग्य करना।** यह करना, लाना यह सब निमित्त का कथन है। ऐसा ही निमित्त का कथन हम करेंगे। कथन तो इसी पद्धति से करणानुयोग में किया जाता है परंतु यह सही समझना हमारा कर्तव्य है। हमें

कर्मों को उपशमाना चाहिये कि क्षय करना चाहिये ? बोलो आप क्या करना चाहते हैं ? कुछ कर नहीं सकते यह पहले नक्की करना है। कर्मों में जो यथायोग्य अवस्था बनेगी उपशम की हो या क्षय की हो वह उसकी स्वयं की योग्यता से बनेगी और जीव का उस समय जैसा परिणाम होता है उसका यहां वर्णन किया जायेगा। तो **उसे पाचन कहते हैं** यानी पकाना यानी जल्दी उदय में आये ऐसा करना। **ऐसा कार्य जिस समय होता है उस समय में उदीरणा नाम पाता है।** उदयावली के ऊपर के जो हैं वे सारे सत्ता में पड़े हैं, जिनकी उदीरणा नहीं हुयी वे अपनी-अपनी जगह में कायम हैं।

अब उदीरणा के बारे में किसीने दोपहर में प्रश्न पूछा था कि वेदनीय कर्म की उदीरणा छठे गुणस्थान तक ही होती है, ऊपर नहीं होती। साता हो या असाता हो उसकी उदीरणा छठे गुणस्थान तक होती है। इतना ही नहीं आयु कर्म की उदीरणा भी छठे गुणस्थान तक होती है, ऊपर उसकी उदीरणा नहीं होती। ऐसे कुछ नियम हैं। कारण क्या ? उस प्रकृति का वैसा स्वभाव है।

हमने देखा है यह आहारसंज्ञा जो है; संज्ञा मालूम है ? आहारसंज्ञा - भोजन करने की जो इच्छा है वह कौनसे गुणस्थान तक होती है ? छठे गुणस्थान तक। क्यों ? ऊपर क्यों नहीं होती ? क्योंकि असातावेदनीय की उदीरणा छठे तक ही है और आहारसंज्ञा का जो कार्य है वह असाता की उदीरणा में होता है। असाता की उदीरणा सातवें या ऊपर के गुणस्थान में होती ही नहीं तो खाने की इच्छा या जिसको हम वासना कहते हैं - आहारसंज्ञा होती ही नहीं। आहार लेने-भोजन करने की इच्छा और प्रवृत्ति जो सातवें, आठवेंवाले को नहीं होगी तो केवली को होगी कि नहीं होगी ? जो कवलाहार मानते हैं उनके लिये वहां पर यह करणानुयोग के आधार से भी हम सिद्ध करते हैं कि केवली आहार लेते हैं कि नहीं लेते। करणानुयोग में इतने सारे सिद्धान्त हैं, बहुत सारे नियम ऐसे हैं कि उनके आधार से समाज में जो कोई भ्रमणायें चलती हैं, उन सबका निराकरण हो सकता है। हम बिलकुल डंके की चोट पर कह सकते हैं कि ऐसा ही होना चाहिये। यदि हमें वे नियम मालूम होंगे तो ही हम कह सकेंगे।

इन दो कर्मों की उदीरणा छठे गुणस्थान तक होती है। जिनका उदय है ऐसे

अन्य कर्म की उदीरणा तो तेरहवें तक होती है। उसके आगे उदीरणा भी नहीं होती। बाकी कौनसे कर्म की उदीरणा कहां तक होती है, वह विषय अलग है। हम तो यहां तक ही समझेंगे कि वेदनीय और आयु की उदीरणा छठे गुणस्थान तक होती है। बाकी कर्मों की उदीरणा आगे भी चलती रहती है। अब आगे देखेंगे- हमने यह पढ़ा है, फिर भी रिक्विजन करके हम आगे बढ़ेंगे। **स्थिति-अनुभाग का बढ़ना उसका नाम है उत्कर्षण।** यानी स्थिति के साथ अनुभाग बढ़ेगा ही ऐसा नहीं है क्योंकि अनुभाग का बढ़ना प्रशस्त में भी हो सकता है या अप्रशस्त में भी हो सकता है। जहां संक्लेश ज्यादा है वहां अप्रशस्त का अनुभाग बढ़ेगा। जहां विशुद्धि ज्यादा है वहां प्रशस्त का अनुभाग बढ़ेगा। बात ख्याल में आयी ?

वहां अल्पकाल में उदय आने योग्य जो नीचे के निषेक, नीचे के यानी उदयावली के ऊपर हैं परंतु नीचे के साइड में हैं, ऊपर के साइड में नहीं। तो नीचे के निषेकों में से कुछ परमाणु **उनके परमाणु बहुत काल में उदय आने योग्य ऐसे ऊपर के निषेकों में मिलते हैं।** उसको हमने क्या कहा था ? उत्कर्षण। उसके लिये एक आवश्यक कंडिशन है - नवीन बंध होना आवश्यक है। उसी समय बंधनेवाले में उनका उत्कर्षण होता है। वह भी सजातीय में होता है, यह भी देखा था। **इस प्रकार अल्प स्थिति का बहुत स्थिति होने का नाम स्थितिउत्कर्षण है।** यह स्थिति में उत्कर्षण हुआ। **अल्प अनुभाग युक्त** यानी कम अनुभाग युक्त **नीचे के स्पर्धक** अभी नीचे में यानी वह स्थिति की अपेक्षा नीचे मत सोचना, मंदता की अपेक्षा उसको हम नीचे के कहेंगे। हमने देखा था न लता, दारु, अस्थि और शैल। लतावाले मतलब नीचे के और शैलवाले यानी ऊपर के। यथायोग्य जो नीचे के स्पर्धक हैं कम अनुभागवाले परमाणु हैं, उनका अनुभाग बढ़कर ऊपर के अनुभाग जैसा होना यानी अधिक होना उसको कहेंगे अनुभागउत्कर्षण। इसतरह स्थिति और अनुभाग के घटने का नाम है अपकर्षण यानी घटना। उत्कर्षण के लिये नये बंध की कंडिशन है वैसी कंडिशन अपकर्षण में नहीं है।

यह सामान्य से अपकर्षण और उदीरणा के बारे में हमने कहा। उदीरणा तो उदयरूप प्रकृतियों में होती है। परंतु अपकर्षण तो बाकी अन्य प्रकृतियों में भी होता

रहता है। यानी ऊपर के निषेकों के थोड़े-थोड़े परमाणु नीचे आते रहते हैं। अब श्रेणियों में यानी ऊपर के गुणस्थानों में जो अधिक अपकर्षण होता है वह बात अलग है। जहां वह गुणश्रेणी आदि होती है, वह क्या होती है ? जब उसका प्रकरण आयेगा, तब उसकी चर्चा करेंगे। अभी हम यहां सामान्य से टर्मिनॉलॉजि जो है, पारिभाषिक शब्द हैं उनका अर्थ देख रहे हैं। यह स्थिति का बढ़ना उसको कहेंगे स्थितिउत्कर्षण और अनुभाग के बढ़ने को कहेंगे अनुभागउत्कर्षण और स्थिति के घटने को कहेंगे स्थिति का अपकर्षण और अनुभाग घटेगा उसको कहेंगे अनुभाग का अपकर्षण।

अब यहां १९ पेज पर कुछ भागहारों की बात है। उसको हम थोड़ा देखेंगे और आगे बढ़ेंगे। उत्कर्षण कितने परमाणुओं का होता है ? क्योंकि परमाणु तो अनंत पड़े हैं सत्ता में। हमने देखा कि प्रत्येक निषेक में इतने-इतने परमाणु हैं। तो कितने परमाणु अपनी जगह रहते हैं और कितने नीचे आते हैं ? अपकर्षण कितने परमाणुओं का होता है ? तो उसका प्रमाण निकालने के लिये एक विशिष्ट संख्या होती है, उसका नाम है अपकर्षण भागहार। उत्कर्षण भी कितने परमाणुओं का होता है ? तो जो टोटल नंबर ऑफ परमाणु हैं उनको उत्कर्षण भागहार से भाग देंगे। वे दोनों ही भागहार यानी भाजक सेम है। उसका भाग देकर एकभाग प्रमाण जितनी संख्या आती है, उतने परमाणुओं का अपकर्षण या उत्कर्षण होता रहता है। बस अभी इतना ही काफी है।

संक्रमण में भी हमने देखा था, संक्रमण कितने परमाणुओं का होता है ? संक्रमण के लिये पांच अलग-अलग भागहारों की बात आती है। यानी कितने परमाणुओं का संक्रमण होगा ? कभी-कभी थोड़े परमाणुओं का होता है, कभी बहुत परमाणुओं का होता है। कभी प्रति समय असंख्यातगुणा, असंख्यातगुणा क्रम से परमाणु संक्रमित होते रहते हैं। तो उसकी अपेक्षा से यहां पांच अलग-अलग नाम आते हैं, उनके नाम हम यहां पुस्तक में देखेंगे। देखो, १९ पृष्ठ पर नीचे से दूसरा पॅरेग्राफ। **संक्रमण होने में पांच प्रकार के भागहार पाये जाते हैं।** भागहार यानी जिस संख्या से भाग देते हैं उसको हम भागहार कहते हैं- भागहार यानी भाग देनेवाला। हार मालूम है ? जाननहार; जाननहार किसको कहते हैं ? जाननेवाले को। तारणहार; कौन है तारणहार अपना ? हम स्वयं हैं। तो ऐसे भागहार; जिस संख्या से भाग देते हैं उस

संख्या को कहेंगे भागहार यानी भाजक। यह भागहार की व्हॅल्यू अलग-अलग है, उनके नाम अलग-अलग दिये हैं।

यहां से पढ़ेंगे- एक नाम है **उद्वेलन**। उस भागहार को कहेंगे उद्वेलन भागहार, संक्रमण को कहेंगे उद्वेलन संक्रमण। यानी जब उद्वेलन भागहार नामक संख्या से भाग देकर उतने परमाणु संक्रमित होते हैं, उसको कहेंगे यह उद्वेलन संक्रमण है। **विध्यात** भागहार- यह ऐसा भागहार है या ऐसा संक्रमण है कि इस विशिष्ट भागहार से भाग देकर उतने नंबर ऑफ परमाणु अन्य प्रकृतिरूप संक्रमित होते हैं; उसको कहेंगे विध्यातसंक्रमण और उस संख्या को कहेंगे विध्यात भागहार। एक है **अधःप्रवृत्तसंक्रमण**। अब वह कौनसी प्रकृति में, कौनसे गुणस्थान में कहां होता है, उसके डिटेल् में हम नहीं जायेंगे, वह अभी हमारा विषय नहीं है। उसे आगे चलकर पढ़ेंगे। ऐसे शब्द आगे आनेवाले हैं, उनका केवल यहां हम परिचय करेंगे। एक है अधःप्रवृत्तसंक्रमण और उस भागहार का नाम है अधःप्रवृत्त भागहार। इस भागहार से भाग देकर परमाणुओं की जितनी संख्या आती है उतने परमाणु संक्रमित होते हैं।

गुणसंक्रमण यानी गुणित प्रमाण में संक्रमण। इसका जो भागहार है शुरू में उतना ही है। एक समय में जितने संक्रमित हुये दूसरे समय में उससे असंख्यातगुणा संक्रमित होते हैं; तीसरे समय में उससे भी असंख्यातगुणा; चौथे समय में उससे भी असंख्यातगुणा ऐसे अंतर्मुहूर्त काल तक चलेगा। प्रतिसमय असंख्यातगुणा-असंख्यातगुणा-असंख्यातगुणा संक्रमण होता है उसको कहेंगे गुणसंक्रमण। यह कहां होता है, कौनसी प्रकृति में होता है, जब हम आगे विषय चलायेंगे अपना - प्रथमोपशम या क्षायिक सम्यक्त्व का - तब उसकी चर्चा करेंगे। एक है **सर्वसंक्रमण**। सर्वसंक्रमण का उदाहरण मैं बताऊं- मान लेते हैं कि लाख परमाणु बचे हैं और लाख के लाख संक्रमित होने हैं। तो कौनसी संख्या से भाग देंगे तो लाख परमाणु संक्रमित होंगे। *श्रोताः लाख से* / लाख को लाख से भाग देंगे तो एक परमाणु आ जायेगा। एक से भाग देंगे तो लाख आयेंगे। सर्वसंक्रमण भागहार की व्हॅल्यू कितनी ? तो एक। जितने परमाणु हैं उतने के उतने परमाणु एक ही समय में संक्रमित हो जायेंगे। जब लास्ट समय आता है न संक्रमण का या नष्ट होने का, तब एक से भाग देंगे तो सारे के सारे परमाणु जितने

सत्ता में हैं वे अन्य प्रकृतिरूप हो जायेंगे। तो उसको कहेंगे सर्वसंक्रमण। उसको संक्रमण कहो या भागहार कहो, इसके ये ५ प्रकार हैं।

इसमें से एक नाम है उद्वेलन। उद्वेलन का अर्थ होता है उलटा संक्रमण। ऐसी कितनी ही प्रकृतियां पहले तैयार होती हैं, बांधी जाती हैं और बाद में उलटेरूप से संक्रमित हो जाती हैं। जैसे जब पहली बार सम्यक्त्व होता है तब मिथ्यात्व में से सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति तैयार होती हैं। वे दो प्रकृतियां बंधती तो नहीं, बंधनेवाली प्रकृति तो मिथ्यात्व है। जब प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त होता है तब मिथ्यात्व में से अनुभाग घटकर सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति ये दो प्रकृतियां तैयार होती हैं। सम्यग्दृष्टि जीव की सत्ता में तीन प्रकृतियां हो गयी दर्शनमोहनीय की। जब वही जीव मिथ्यात्व में आता है तो क्या होता है ? मिथ्यात्व का नया बंध चालू हो जाता है। तीनों की सत्ता उसने अंतःकोड़ाकोड़ी सागर जितनी कर दी थी, अब वह मिथ्यात्व में आया। मिथ्यात्व का बंध चालू हो गया और अन्य दो की सत्ता उतनी की उतनी ही रहेगी। अब क्या होगा ? ये दोनों ही प्रकृतियां मिथ्यात्वरूप से संक्रमित होगी - उलटा संक्रमण चालू हो जायेगा और कुछ काल में वे नष्ट हो जायेगी। उसको कहेंगे उद्वेलन। ऐसे बहुत सारी प्रकृतियों की उद्वेलना होती है। कहां गये अश्विनभाई ? कौनसी-कौनसी उद्वेलन प्रकृतियां हैं ? *श्रोता: तेरह।* हां, तेरह हैं - आहारकशरीर, आहारकअंगोपांग। कौन बता रहे हैं यहां पर ? *श्रोता: सम्यक् प्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व।* फिर वैक्रियिकषटक। उसका अर्थ होता है नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकअंगोपांग; फिर मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्र। ये १३ प्रकृतियां उद्वेलना योग्य होती हैं।

हमने देखा था कि सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति की उद्वेलना कब होती है ? जब सम्यग्दृष्टि जीव मिथ्यात्व में आता है तब उद्वेलना शुरू होती है और उसकी उद्वेलना पूरी होने में असंख्यात वर्ष लगते हैं। तब तक इन तीनों की सत्ता बनी रहती है उस जीव को हम सादि मिथ्यादृष्टि कहते हैं और वह फिर दुबारा वेदक सम्यक्त्व भी प्राप्त कर सकता है। आगे उसकी चर्चा चलेगी। अन्य भी जो आहारकद्विक; किसीने आहारकशरीर, आहारकअंगोपांग प्रकृतियां बांधी। कब बंधती हैं ? सातवें, आठवें

गुणस्थान में बंधती हैं। उनकी उद्वेलना कैसी होगी ? वह जीव जब मिथ्यात्व में चला जाता है तो ये बंधी हुयी आहारकशरीर संबंधी शुभ प्रकृतियां नष्ट होती चली जाती हैं। वे भी कुछ काल में नष्ट होती हैं, उनकी उद्वेलना होती है।

अभी हमने जो गिनायी हैं न १३ प्रकृतियां, ये उद्वेलना के योग्य प्रकृतियां हैं। यथायोग्य जिसको कहते हैं कि मिथ्यात्व में चला जाये तो आहारकद्विक तथा सम्यक् प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्व की उद्वेलना होती है या जो देवगति संबंधी, नरकगति संबंधी वैक्रियिकषटक की उद्वेलना एकेन्द्रिय में जाने पर होती है और मनुष्यगतिद्विक और उच्चगोत्र की उद्वेलना अग्निकायिक, वायुकायिक के होती है। इसतरह बंधी हुयी प्रकृतियों में भी नष्ट होने की ऐसी बातें चलती रहती हैं। *श्रोता: उपशमश्रेणी में... ?* उपशमश्रेणी में उद्वेलना नहीं होती है। नीचे आते समय उसका अलग प्रोसेस है सारा। उपशमश्रेणी में नीचे आते समय क्या-क्या होता है ? वह पूरी श्रेणी चढ़ते समय या उतरते समय क्या होता है, वह हम बाद में देखेंगे। वहां उद्वेलना नहीं होती है, उद्वेलना मिथ्यात्व में होगी। कुछ प्रकृतियों की उद्वेलना एकेन्द्रिय में होगी, जो देवगति-नरकगति संबंधी हैं, कुछ प्रकृतियों की उद्वेलना अग्निकायिक-वायुकायिकों में होगी जो मनुष्यगति संबंधी हैं। बाकी ऊपर के गुणस्थानों में वहां उद्वेलना नहीं होती है। उद्वेलना यानी जो पहले बंधी थी अभी उसका उलटा संक्रमण चल रहा है।

श्रोता: मनुष्यगति का कब होता है ? जो अग्निकायिक और वायुकायिक हैं वे मनुष्यगतिद्विक और उच्चगोत्र की उद्वेलना करते हैं। वे मनुष्यगति बांध ही नहीं सकते। निगोद जीव बांध सकते हैं। निगोद जीव मनुष्य में आ सकते हैं, मनुष्यायु भी बांधेंगे, मनुष्यगति भी बांधेंगे। अरे ! निगोद से मनुष्य में आकर उसी भव में जीव मोक्ष भी जा सकता है, दुबारा सुनो- कोई जीव निगोद में से आकर, बादर निगोद में से आकर डायरेक्ट मनुष्य होता है। डायरेक्ट मनुष्य होकर उसी भव में मोक्ष जाने के लिये वह निगोद की पर्याय में उसने मनुष्यगति बांधी, मनुष्यायु बांधी, वज्रवृषभनाराचसंहनन बांधकर आया है, अन्य भी प्रकृतियां बांधी हैं उसने। तो वह निगोद के जीव ने भी इतना शुभभाव किया कि नहीं ? वह ऐसी प्रकृतियां बांधकर यहां आया है और उसी भव में मोक्ष जानेवाला है। वह कौनसे भाव करता होगा ? भगवान के आसपासवाले जीव

जल्दी मोक्ष जाते होंगे कि सिद्धशिला से आये हुये जीव जल्दी मोक्ष जाते होंगे ? क्या है क्या ? ये संक्लेश-विशुद्धि के परिणाम सहजरूप से होते हैं और जैसा जिस जीव के पर्यायों का क्रम है, वैसे ही सहजरूप से उसके भाव भी होते हैं और कर्म भी बंधते हैं। हमें उसमें कुछ करना ही नहीं है और हम करना चाहते हैं। हां ! कर ही नहीं सकते।

श्रोता: इंद्रगोप की बात आती है न ? इंद्रगोप जो मरकर भरत के पुत्र हुये थे, मालूम है न ? भरत के ९२३ पुत्र ऐसे थे जो बादर निगोद से निकले थे और बीच में एक द्वीन्द्रिय की पर्याय की थी, इंद्रगोप की और मनुष्य होकर वे मोक्ष चले गये थे। तो बहुतों का प्रश्न है कि निगोद से मरकर सीधा मनुष्य में कैसे आयेगा ? यह नियम नहीं है कि निगोद से मनुष्य में जन्म लेने के लिये बीच में कोई भव करना पड़ता है। ऐसा बिलकुल नहीं है। *श्रोता: बीच में त्रस पर्याय जरूरी है ?* नहीं। मनुष्य में डायरेक्ट आ सकता है, वह मनुष्यपर्याय त्रस ही है। यह बहुतों ने सुना है और हमें सुनाते भी है इसलिये यह बताने की जरूरत पड़ी है। सूक्ष्म से निकला हुआ मोक्ष नहीं जाता, बादर एकेन्द्रिय से निकलकर मोक्ष जा सकता है। इतना पुरुषार्थ उस जीव का हो सकता है। *श्रोता: भरतचक्रवर्ती के पुत्रों ने इंद्रगोप की एक त्रस पर्याय धारण करी न ?* उन्होंने की इसलिये सबको करना पड़ता है, ऐसा नहीं है। नियम नहीं है ऐसा, बिलकुल नहीं है।

अपनी उद्वेलना की बात चल रही थी। अलग-अलग टाइप के जो संक्रमण भागहार हैं, उनके कारण पांच प्रकार के संक्रमण कहे जाते हैं। जब हम सम्यक्त्व की बात करेंगे, तो कहां, कौनसा संक्रमण होता है, उसकी बात फिर आगे आयेगी। फिर दुबारा इसको हम याद करेंगे, दुबारा एक्स्प्लेनेशन भी करेंगे। एक बार सुनने से तो बात कुछ याद रहनेवाली नहीं है। उसको उस समय फिर दुबारा याद करेंगे। अभी सुना है इतना तो याद आयेगा कि नहीं ? अब उन्होंने किसको, कौनसे संक्रमण होते हैं उसकी बहुत सारी चर्चा की है। अधःप्रवृत्तसंक्रमण कौनसी प्रकृतियों का होता है, विधातसंक्रमण कौनसी प्रकृतियों का होता है, कब होता है... हमने कर्मकाण्ड में विस्तार से संक्रमण का स्वरूप भी देखा था। वह विषय यहां पूर्व के शिबिरों में हुआ था अपना। अब संक्रमण के बाद आगे का उपशम देखते हैं।

देखो, यह उपशम के बारे में भी बहुत कन्फ्यूजन चलता है। एक औपशमिक सम्यक्त्व होता है और एक औपशमिक चारित्र होता है। वह उपशमभाव अलग है और दस करण में जो उपशम कहा है वह अलग है। यहां उपशम का अर्थ है उदयावली में प्राप्त नहीं होता है, वह उदय में नहीं दिया जाता है उसको कहेंगे उपशम। सत्ता में पड़े रहना, उदय में नहीं आना यही उपशम है। *श्रोता: उसको उपशांत भी बोलते हैं।* उपशांत भी कहते हैं, उसको उपशांतकरण भी कहेंगे। क्या कहा यहां पर ? बंधने के बाद, बंधने के समय से लेकर जब तक उदय में नहीं आता तो सत्ता में पड़ा है। उदय में नहीं आने को ही उपशम कहेंगे और ऐसा उपशम हर कर्म में चल रहा है। जब तक उदय में नहीं आयेंगे तो हम क्या कहेंगे उसको ? उपशम, ऐसा ही है। हमने जो देखा था, निषेकों के कुछ परमाणु अपनी जगह छोड़कर नीचे आते हैं। उनका अपकर्षण होता है, कुछ परमाणुओं का उत्कर्षण होता है। एक तो अपकर्षण होकर नीचे आते हैं, कुछ तो उदयावली में जाते हैं और कुछ तो ऊपर दिये जाते हैं। ऐसे जो परमाणु हैं कि जो उदयावली में नहीं आते, उदयावली के ऊपर-ऊपर भले ही अपकर्षण हो जाये, परंतु उदयावली में आकर उदयरूप नहीं हो सकते उसको हम कहेंगे उनका उपशम है। वे उदय में नहीं आते, तब तक उनका उपशम कहा जायेगा।

देखो, पृष्ठ २० पर अंतिम पैरेग्राफ- **विवक्षित प्रकृति के** यानी किसी पार्टिक्युलर कर्म की कुछ प्रकृति की बात है। **उदयावली के बाह्य निषेकों के परमाणु** उदयावली किसको कहा ? उदय के समय से लेकर एक आवली प्रमाण जो निषेक हैं, उनको उदयावली कहते हैं। उसके ऊपर के निषेकों में से परमाणु: **उदयावली में प्राप्त करने योग्य न हो** यानी वे नीचे आकर उदीरणा होकर उदयावली में नहीं मिल सकते, **उसको उपशांत द्रव्य कहते हैं।** यानी वे उदय आने योग्य नहीं हैं। अपनी जगह छोड़कर उनका उदयावली के ऊपर भले अपकर्षण हो परंतु वे उदयावली में नहीं आयेंगे। उसको क्या कहेंगे ? उपशांत या उपशम किया ऐसा कहेंगे। **यहां उपशम विधान से मोह का उपशम करते हैं, उसका ग्रहण नहीं करना;** क्या कहा ? हम औपशमिक सम्यक्त्व जिसको कहते हैं वहां दर्शनमोहनीय के जो निषेक कंटिन्युएशन में थे - लगातार थे, उसमें बीच में गॅप की जाती है, अंतर किया जाता है और गॅप के

ऊपर के परमाणु उपशमित किये जाते हैं। वे अपनी जगह छोड़ नहीं सकते, ऐसे किये जाते हैं और तब जाकर उपशम सम्यक्त्व होता है उसको कहेंगे औपशमिक सम्यक्त्व।

उपशमश्रेणी में चारित्रमोहनीय के कर्मों में भी ऐसे ही अंतर किया जाता है और ऊपर के परमाणु उपशमित किये जाते हैं। अंतर्मुहूर्त के लिये वहीं पर दबे रहते हैं, उनको कहेंगे औपशमिक चारित्र। वह उपशमभाव अलग है। पांच भावों में उसके नाम हैं न ! कौनसा सूत्र है जयश्रीबेन ? तत्त्वार्थसूत्र दूसरा अध्याय, सूत्र पहला – ‘औपशमिकक्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वतत्त्वमौदयिकपारिणामिकौ च।’ औपशमिक भाव कितने हैं ? दो हैं। कौनसे दो भाव हैं ? औपशमिक सम्यक्त्व और औपशमिक चारित्र। वे अलग हैं, वे यह नहीं है, यह बात बताना चाहते हैं। यहां जो उपशम बता रहे हैं, उपशांतकरण भी जिसको कहते हैं; वह किसमें है ? सभी कर्मों में है। जिसका उदय नहीं हो सकता यानी निषेक नीचे नहीं आ सकते, उसकी बात यहां चल रही है। निषेक अपनी जगह होंगे और कुछ परमाणु अपकर्षित होते रहते हैं परंतु उदयावली में नहीं आयेंगे, उसकी बात है। उसका उदय नहीं हो रहा है, यह नहीं कह रहे हैं। जो अपने-अपने क्रम से एक-एक निषेक नीचे आता है, वह तो उदय में आता है। परंतु जो निषेक नीचे तक नहीं पहुंचे हैं, उनके कुछ परमाणु ऊपर अपनी जगह छोड़कर उदयावली में नहीं दे सकते उसको कहेंगे उपशम। ऐसा ज्ञानावरणादि सभी कर्मों में चलता है। क्योंकि वे ऊपर पड़े हैं, अभी उदयावली में नहीं आये हैं।

श्रोता: अपकर्षण होना जरूरी है ? अपकर्षण होता रहता है। अपकर्षण हो वह जरूरी नहीं, वह बात तो आगे आयेगी। देखो, कहते हैं कि **यहां उपशम विधान से मोह का उपशम करते हैं, उसका ग्रहण नहीं करना; क्योंकि उपशमभाव मोह ही का है।** क्या कहा ? मोह ही का है यानी दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय में ही यह उपशमभाव होता है। पांच भावों में जो उपशमभाव है वह अलग है और यह उपशमकरण है वह अलग बात है। उपशांतकरण सर्व प्रकृतियों के पाया जाता है क्योंकि बंधने के बाद वह उदय में नहीं आये, तो हम क्या कहेंगे ? उपशांत है, सत्ता में पड़े हैं। अपनी जगह कभी-कभी नहीं भी छोड़ते हैं।

अभी उपशांत आदि तीन करण; अंतिम तीन करणों के नाम क्या हैं ? उपशम, निधत्ति और निकाचित या निकाचना। उपशमकरण यानी प्रकृतियों का उपशम होना - उदय में नहीं आना यानी अपनी जगह छोड़कर जल्दी उदय में नहीं आना एक बात। निधत्ति और निकाचित की भी बात करेंगे- किसको कहना ? यह बात कहां तक हो सकती है ? आठवें गुणस्थान तक। यह निधत्ति और निकाचना क्या है ? क्योंकि सबके उसका डर-हौवा बैठा है। क्यों भाई ? क्योंकि हमने किसी प्रकृति को, किसी कर्म को ही निधत्ति और निकाचित मान लिया है यह हमारी बहुत बड़ी भूल है। कोई कर्म निकाचित या निधत्ति नहीं होता है। यह जो निषेक रचना हुयी है, तो निषेकों में कितने ही परमाणु अपनी जगह छोड़ते ही नहीं हैं; कुछ परमाणुओं का अपकर्षण होता है, उत्कर्षण होता है, संक्रमण होता है, ऐसे होते रहता है। पर कुछ परमाणु तो अपनी निषेक की जगह छोड़ेंगे ही नहीं। क्रम से वे निषेक नीचे आयेंगे; तो वे परमाणु क्रम से नीचे आयेंगे, परंतु उसके पहले वे अपनी जगह नहीं छोड़ते।

देखो, पृष्ठ २१ पर, तीसरी लाइन - **विवक्षित प्रकृति के जो परमाणु संक्रमण होने और उदयावली में प्राप्त होने के योग्य न हो वह निधत्तिकरण द्रव्य है।** उन परमाणुओं को निधत्ति कहा है, उस कर्म को निधत्ति नहीं कहते। हमको डर है न, हमने सुना है कि निधत्ति कर्म बांधोगे तो क्या होगा आपका ? हम डर जाते हैं। हमको निधत्ति कर्म नहीं बांधना है। प्रत्येक जो कर्म है उसमें कुछ परमाणु निधत्तिरूप से पड़े रहते हैं। यह किसी कर्म का नाम निधत्ति नहीं है। वह कर्म की कुछ परमाणुओं की अवस्था है। एक-एक निषेक में अनंत परमाणु हैं। उनमें से कुछ परमाणु अपनी जगह छोड़कर उनकी स्थिति-अनुभाग, घटना-बढ़ना वगैरह चलता है और कुछ परमाणुओं की उतनी ही स्थिति-अनुभाग रहता है तो हम उसको निधत्ति कहेंगे। उनका संक्रमण भी नहीं होता है और उदयावली में भी नहीं आते हैं, तो उसको कहेंगे निधत्ति।

निकाचित किसको कहना ? निकाचना किसको कहेंगे ? देखो, आगे लिखा है - **विवक्षित प्रकृति के जो परमाणु** कहा है - विवक्षित पूरे प्रकृति को निकाचित या निधत्ति नाम नहीं दिया है। उसमें से कुछ परमाणु **संक्रमण होने** यानी न उनका संक्रमण होता है, उदयावली में भी नहीं प्राप्त होते तो **उदयावली में प्राप्त होने और**

उत्कर्षण, अपकर्षण होने योग्य न हो। तो क्या होता होगा ? अरे अपनी जगह कायम रहते हैं। जिस निषेक में जैसे बंधे हैं वैसे वे रहते हैं। ना उनका संक्रमण होता है, ना अपकर्षण होता है, ना उत्कर्षण होता है। पड़े रहते हैं अपनी जगह पर, **उनको हम कहेंगे निकाचना।** निकाचित कहो या निकाचना कहो एक ही है।

श्रोता: दोनो में मेन डिफरन्स क्या है ? ८ नंबर का चार्ट देखना। यहां उपशम लिखा है। उपशम में क्या है ? उदीरणा यानी उदयावली में प्राप्त होने योग्य नहीं होना। निधत्ति में - संक्रमण और उदीरणा होने योग्य नहीं होना यानी उसमें यह उपशमपना तो है ही है, इन ऑडिशन संक्रमण भी नहीं होता; यह और डबल हो गया इसमें। निकाचित में संक्रमण भी नहीं होता, उदीरणा भी नहीं होती, इतना ही नहीं उत्कर्षण, अपकर्षण भी नहीं होता। उपशम में मात्र उदयावली में नहीं आता था। निधत्ति में उदयावली में भी नहीं आता और संक्रमण भी नहीं होता और निकाचित में संक्रमण भी नहीं, उदीरणा भी नहीं और उत्कर्षण, अपकर्षण भी नहीं होता। तो क्या होता है ? निषेक में वे परमाणु अपनी जगह पर वहीं रहते हैं। ऊपर, नीचे या पर प्रकृतिरूप होना आदि कुछ बातें उनमें नहीं होती उन्हें कहते हैं निधत्ति और निकाचित। किसी कर्म का नाम निधत्ति, निकाचित है ही नहीं। आपके आयु के परमाणु अपनी जगह नहीं छोड़ेंगे, जितनी स्थिति बांधी उतनी रहेगी तो अच्छा की बुरा ?

श्रोता: इन कर्मों का स्थितिबंध नहीं होता होगा ? है न; स्थिति तो है, निषेक रचना हुयी है। वे परमाणु अपनी स्थिति छोड़कर नीचे नहीं आ रहे हैं। जितनी स्थिति बांधी, जिस निषेक में हैं उसी निषेक में पड़े रहते हैं। *श्रोता: जब स्थिति पूरी होगी तब उदय में तो आयेंगे न ?* उदय में जरूर आयेंगे क्योंकि क्रम से नीचे-नीचे आयेंगे, परंतु अपनी जगह छोड़कर नहीं। दूसरे निषेकों में नहीं जा मिलेंगे, इतनी बात है। यह जो तीन करण हैं, कौनसे ? उपशमकरण, निधत्तिकरण और निकाचितकरण। जो परमाणु में निकाचितपना, निधत्तिपना है, वह कहां तक होता है ? आठवें गुणस्थान तक होता है या हम कहेंगे अपूर्वकरण परिणाम तक होता है।

यहां लिखा है देखो, पृष्ठ २१, पहली ही लाइन में लिखा है कि **उपशांत, निधत्ति**

और निकाचित आठवें गुणस्थान तक ही कहे हैं और उपशमभाव ग्यारहवें गुणस्थान तक पाया जाता है। उपशमभाव यानी चारित्रमोहनीय का जो औपशमिक चारित्र है, वह ग्यारहवें गुणस्थान तक है और यह उपशमकरण जो है; नौवें गुणस्थान में क्या होता है ? यह उपशमपना नष्ट होता है यानी वह द्रव्य उदयावली में आकर मिलता है। निधत्तिपना नष्ट होता है यानी उसका संक्रमण भी चालू हो जाता है और उदयावली में भी आकर मिलता है। निकाचितपना भी नष्ट होता है। कर्म को नष्ट करने का यही एक तरीका है कि उसको अधिक से अधिक मात्रा में उदयावली में देकर निर्जरा करें या पर प्रकृतिरूप करके नष्ट करें। पहले यह बात नहीं होती थी, अब होने लगी तो उसमें से उपशमपना नष्ट हुआ यानी वह अपनी जगह छोड़कर नीचे आने लगे। उसके बिना स्थितिकांडकघात वगैरह बातें बनेगी नहीं। वह तो देखेंगे, वे बातें क्या होती हैं।

निकाचितपना, निधत्तिपना नष्ट हुआ यानी संक्रमण भी चालू हुआ। यानी अपनी निषेकों की जगह छोड़कर वे चले गये, वे पूरे निषेक भी नीचे आयेंगे, कैसे आयेंगे वह हम देखेंगे। निकाचितपना नष्ट होता है न, अभी उसमें अपकर्षण, उत्कर्षण, संक्रमण, उदीरणा यह सब होने लगा। उपशम नष्ट हुआ यानी वह उदयावली में भी आयेगा, संक्रमण भी होगा, उत्कर्षण, अपकर्षण भी होगा। अपने निषेक में जो फिक्स बैठे थे, अभी उसकी वह कंडिशन छूट जायेगी उसको कहते हैं उसका यह करण वहां तक ही है, आगे वे करण नहीं रहते। आठवें गुणस्थान के आगे ये तीन करण नहीं रहते।

देखो, यहां लिखा है २१ पेज पर, तीसरा पॅरेग्राफ- **इसतरह इन तीन करणों का स्वरूप कहा। यहां ऐसा नियम जानना कि उपशांतादिरूप द्रव्य है,** आदि में तीनों को लेना - उपशांत, निधत्ति और निकाचनारूप जो द्रव्य है; जो द्रव्य है यानी परमाणु हैं; पूरे निषेक को या पूरी प्रकृति को निधत्ति, निकाचित नहीं कहा, कुछ परमाणुओं को कहा। यह जो द्रव्य यानी परमाणु जो हैं, **वह उपशांतादिरूप ही रहता है।** यानी उसीरूप से ही रहता है। **पहले उपशांतादिरूप था, पश्चात् उदीरणा आदिरूप होता है, तो कुछ दोष नहीं है।** क्योंकि पहले उपशम में उदयावली में नहीं आता था, बाद में ऊपर के गुणस्थानों में गया; आठवें के ऊपर; तो उसकी उदीरणा होने लगी। उपशमकरण आठवें तक है, उसके आगे वह नहीं है। इसलिये कहते हैं कि

उसकी उदीरणा अभी चालू हो गयी।

श्रोता: दोष क्यों नहीं ? दोष नहीं है। क्योंकि कर्म की वह अवस्था परमनन्त नहीं है। पहले वह उपशांतरूप था या निधित्तिरूप था, निकाचितरूप था; वह कायम उसरूप थोड़े ही रहेगा ? उसमें भी अपकर्षणादि हो जायेंगे। उदीरणारूप से वह उदयावली में दिया जायेगा और नष्ट हो जायेगा। यानी कर्मों को नष्ट करने का, या क्षय करने का यह तरीका है। उसके पहले नहीं होता था अब होने लगेगा। *श्रोता: कर्म में कुछ दोष नहीं* अरे ! दोष तो अपने में ही है सारा। कर्म पर क्या दोष डाले ? दोष अपना है और वह स्वीकार करने से नष्ट होगा। हमने सारा भार कर्मों पर ही डाला है। कोई लोग डराते भी हैं - निकाचित, निधित्ति कर्म बंधेगा तो क्या होगा ? तो कुछ नहीं होगा। हर समय बंध ही तो रहा है। हर कर्म में निधित्ति, निकाचित परमाणु कुछ न कुछ हैं ही, जो अपनी जगह नहीं छोड़ रहे हैं।

देखो, ये आगे के वाक्य बहुत अच्छे हैं। **अब यहां दर्शन-चारित्रलब्धि द्वारा मोक्ष का साधन करते हैं।** इस लब्धिसार ग्रंथ में दर्शनलब्धि यानी सम्यग्दर्शन की बात करेंगे - औपशमिक, वेदक और क्षायिक की और चारित्रलब्धि में भी देशचारित्र, सकलचारित्र आदि की बात करेंगे। फिर श्रेणियों की बात करेंगे - उपशमश्रेणी, क्षपकश्रेणी की। इसके द्वारा मोक्ष का साधन करते हैं। **मोक्ष की प्राप्ति संवर-निर्जरा से होती है**, यह उसका उपाय है। **संवर-निर्जरा हैं वे बंध-सत्त्व की हानी से होते हैं।** क्या कहा ? संवर कैसे होता है ? बंध की हानी होती है। बंध की हानी यानी बंध का रुकना। पहले बंध होता था, हम कहते हैं न आस्रव-बंध हो रहा था; अभी वह नहीं हो रहा उतनी मात्रा में संवर हुआ।

जैसे पहले मिथ्यात्व, अनंतानुबंधी का आस्रव-बंध हो रहा था। सम्यग्दृष्टि हुआ तो उन प्रकृतियों का आस्रव-बंध रुक गया है, तो उतना संवर हुआ। हम कहते हैं न सम्यग्दृष्टि हुआ, ४१ प्रकृतियां नहीं बंध रही हैं तो उनका संवर हुआ; अभी पूरा सबका नहीं हुआ; उतना ही संवर हुआ। बंध की हानी होना, बंध घटते जाना उसको यहां संवर कहेंगे। सत्त्व की हानी होना, जो पहले ऑलरेडि बंधे हैं और सत्ता में पड़े हैं, उनकी

हानी होना यानी वे नष्ट हो जाना, उनका अधिक मात्रा में खिरना उसको हम निर्जरा कहेंगे। बंध और सत्त्व की हानी संवर और निर्जरा से होती है और उसीसे मोक्ष की प्राप्ति होती है। इसलिये दर्शन-चारित्र को लब्धि कहा - दर्शन की प्राप्ति होना सम्यग्दर्शन की लब्धि और चारित्र में अधिक दृढ़ता होना - देशचारित्र, सकलचारित्र होना इसको कहेंगे चारित्रलब्धि। **दर्शन-चारित्रलब्धि में बंध और सत्त्व की हानी कैसे होती है, उसका सामान्य स्वरूप यहां कहते हैं, विशेष आगे कहेंगे।** यह भूमिका है न, भूमिका में सामान्य स्वरूप बताया है और आगे एक-एक प्रकरण अलग-अलग लिया है। उसमें विशेष स्वरूप बतायेंगे। यहां सामान्य से थोड़ी आयडिया मिलेगी। उसमें से कुछ विशेष शब्द आते हैं, उनसे यहां अपना परिचय हो जायेगा। फिर आगे विस्तार से और भी समझेंगे। यहां केवल लब्धिसार की भूमिका है।

यहां चार प्रकार के बंध मिटने का क्रम कहते हैं। ये चार प्रकार के बंध कौनसे हैं ? बोलो नवीनभाई। *श्रोता: प्रकृतिबंध, प्रदेशबंध, स्थितिबंध और अनुभागबंध।* प्रकृतिबंध, प्रदेशबंध, स्थितिबंध और अनुभागबंध। ये चार प्रकार के बंध मिटने का क्रम बतायेंगे। **दर्शन-चारित्रलब्धि के निमित्त से,** कर्म की अवस्था कर्म में उसके स्वयं के कारण से होती है। परंतु यहां पर निमित्तरूप से जीव के परिणाम; कौनसे परिणाम ? सम्यग्दर्शन और सम्यक् चारित्ररूप जो लब्धि हैं उनकी यहां पर बात है। उनके निमित्त से **पहले मिथ्यात्व, नरकगति आदि अतिअप्रशस्त प्रकृतियों के** यानी इन प्रकृतियों का बंध नहीं होगा। पहले होता था, वह मिटता चला जायेगा। **पश्चात् ज्ञानावरणादि अप्रशस्त प्रकृतियों के,** पहले क्या कहा ? अतिअप्रशस्त, फिर कहा अप्रशस्त और प्रशस्त प्रकृतियों के बंध का अभाव होता है। अब प्रशस्त प्रकृतियों का भी बंध मिटाना पड़ेगा। नहीं तो बंध होता रहेगा तो मोक्ष कैसे होगा ? पहले अतिअप्रशस्त प्रकृतियों का बंध रुकता है, फिर अप्रशस्त प्रकृतियों का बंध रुकता है और फिर प्रशस्त प्रकृतियों का भी बंध रुकता है।

अभी कौनसे गुणस्थान में कौनसी प्रकृतियों का बंध रुकता है, इसका सारा नियम है, इसको कहेंगे बंधव्युच्छित्ति। आपको याद हो गयी कि नहीं हो गयी ? नहीं हुयी अभी ? हर एक गुणस्थान की बंधव्युच्छित्ति हमारे रोज के स्वाध्यायियों को याद हो

गयी है। क्यों प्रेरणाबेन, याद है न ? हमारे सारे स्वाध्यायी बैठे हैं यहां पर, हम कोई भूल-चूक करेंगे तो वहां से टोक देंगे हमको। तो बंधव्युच्छित्ति समझने से अपने को बहुत सारी क्लेरिटी आ जाती है, स्पष्टता होती है। पूरा मोक्षमार्ग अपनी आंखों के सामने आ जाता है कि कौनसे गुणस्थान में कौनसा बंध हो सकता है। अकेले बंध की व्युच्छित्ति नहीं, उदय की भी व्युच्छित्ति। हां, अश्विनभाई, मिथ्यात्व गुणस्थान की बंधव्युच्छित्ति बतायेंगे ? श्रोता: मिथ्यात्व, नपुंसकवेद, हुंडकसंस्थान, असंप्राप्तासृपाटिका संहनन, एकेन्द्रिय, स्थावर, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी और नरकायु। ये १६ प्रकृतियां जो पहले ही गुणस्थान में बंधती हैं, आगे के गुणस्थानों में नहीं बंधती हैं उसको कहेंगे कि इनकी पहले गुणस्थान में बंधव्युच्छित्ति हुयी है।

दूसरे गुणस्थान की बंधव्युच्छित्ति, क्यों जयश्रीबेन, याद है ? दूसरे गुणस्थान की बंधव्युच्छित्ति ? २५ हैं, कौन कहेंगे ? कविताबेन, बताना चाहती है ? श्रोता: अनंतानुबंधी ४, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय... उलटा-पुलटा हो रहा है सब। श्रोता: ४ संस्थान, तिर्यगगति, तिर्यगगत्यानुपूर्वी, तिर्यचायु, उद्योत, नीचगोत्र, अप्रशस्त विहायोगति, स्त्रीवेद, ४ संहनन, स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला। २५ हो गयी ? फिर से दुबारा गिनते हैं- अनंतानुबंधी क्रोध-मान-माया-लोभ, स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, फिर न्यग्रोधपरिमंडल, स्वाति, कुब्जक, वामन ये संस्थान, वज्रनाराच, नाराच, अर्धनाराच, कीलित ये संहनन, तिर्यगगति, तिर्यगगत्यानुपूर्वी, तिर्यचायु, उद्योत, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, स्त्रीवेद, नीचगोत्र और अप्रशस्त विहायोगति। इनका बंध दूसरे गुणस्थान तक है यानी पहले और दूसरे गुणस्थानवाले को है, ऊपर नहीं है। पहलेवाली १६ और ये २५ इनका बंध चौथे गुणस्थानवाले को नहीं होगा। मनुष्य और तिर्यचों के लिये और ६ का बंध नहीं होगा। मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, मनुष्यायु, औदारिकशरीर, औदारिकअंगोपांग और वज्रवृषभनाराचसंहनन इनका बंध दूसरे गुणस्थान के ऊपर मनुष्यों के लिये नहीं होगा, तिर्यचों के लिये भी नहीं होगा। तो जो सम्यग्दृष्टि मनुष्य हैं, उनको ४१ और ६ ऐसे ४७ प्रकृतियों का बंध रुकेगा। इतना तो उनको संवर हुआ।

ऐसे ही अभी हमने जो प्रकृतियां बांधी हैं पूर्व में, हम तो कहते हैं कि हम तो

बहुत पापी थे, हम कुछ नहीं समझते थे, हमने इतना बंध किया, उसका क्या होगा ? कोई डरने की बात नहीं है। बंधा हुआ कर्म भले ही सत्ता में पड़ा है, उसका उदय भी नहीं होगा, पड़ा रहेगा। अन्य प्रकृतिरूप होकर उदय में आयेगा या बाद में वह नष्ट हो जायेगा। जैसे दस-दस भव तक महावीर भगवान का जीव सम्यग्दृष्टि था। तो उनकी सत्ता में एकेन्द्रियजाति, तिर्यचगति, नरकगति के बंधे हुये परमाणु सब पड़े थे कि नहीं ? कब तक पड़े थे ? हां, उनका उदय नहीं हो रहा था। उनका उदय दस भव तक नहीं चला और नौवें गुणस्थान में जाकर उन्होंने उन प्रकृतियों को नष्ट किया। तो हमने पूर्व में कोई पाप किया है, कोई प्रकृतियां बांधी हैं, तो उसकी चिंता करने की जरूरत नहीं है। उनका उदय भी नहीं होगा। विशिष्ट गुणस्थान में कुछ खास प्रकृतियों का उदय भी रुकता चला जाता है। वे प्रकृतियां भले ही सत्ता में पड़ी हैं, परंतु उनका अनुरूप से उदय नहीं होगा। यह सारा जीव के लिये फेवरेबल है। कहीं पर भी कोई रुकावट नहीं आती कि क्या करें, हमने इतना पाप किया है, तो अभी हमारा मोक्ष भी और दूर हो जायेगा, ऐसा कुछ भी नहीं है।

श्रोता: आप तो पाप करने के लिये प्रेरित कर रहे हैं। हम कैसे प्रेरित करेंगे ? हमारे प्रेरित करने की क्या जरूरत है ? प्रेरित किये बिना कर ही रहे हैं न इतना ! और किसीके प्रेरित करने से पाप और पुण्य होता तो हम तो मोक्ष के लिये ही प्रेरित कर देते। क्यों ? जो कुछ होता है वह जीव की अपनी योग्यता से होता है। उपदेश की भाषा में कहेंगे कि इसे हटाकर मोक्षमार्ग में लगाते हैं। जैसे पं. टोडरमलजी ने लिखा है न, पुरुषार्थ का हम उपदेश देते हैं। परंतु जो होने योग्य होता है, उसीका पुरुषार्थ होता है, जिसकी होनी है। तो उपदेश क्यों देते हैं ? उपदेश की भाषा ऐसी ही होती है। ऊपर उठने का उपदेश देते हैं। जो जहां है वहां से नीचे गिरने का उपदेश नहीं होता है। जो जहां है वह छोड़कर पाप में जाओ, ऐसा कोई नहीं कहेगा। पापी जीव को कहेंगे कि अरे ! मंदिर में चल, रोज स्वाध्याय कर। इतना पुण्य जो कर रहा है - वहां तक जो आया है, स्वाध्याय कर रहा है, तो उसे कहेंगे कि स्वाध्याय से क्या होगा ? आत्मा की अनुभूति होगी तभी कल्याण होगा, अकेले शास्त्र से कुछ नहीं होगा। तो उसको उसकी प्रेरणा देंगे। जो सम्यग्दृष्टि है, तो कहते हैं सम्यग्दर्शन से क्या होता है ? असंख्यात बार

सम्यग्दर्शन से गिरता है, फिर प्राप्त करता है उससे क्या होगा ? आत्मा की स्थिरता कर, मुनिदीक्षा ले। ऐसे ऊपर उठने का उपदेश दिया जाता है। ख्याल में आया ?

देखो, यहां क्या लिखा है ? चार प्रकार के बंध मिटने का क्रम कहते हैं। उन्होंने वहां बताया कि विशिष्ट प्रकृतियों के बंध का अभाव होता चला जाता है। **वहां प्रकृतिबंध क्रम से घटता है, उसे प्रकृतिबंधापसरण कहते हैं।** अपसरण होना यानी घटना। विशिष्ट प्रकृतियों का बंध घटते चला जाता है उसको कहेंगे प्रकृतिबंधापसरण। प्रथमोपशम सम्यक्त्व होता है, उसके पूर्व में पांच लब्धि होती हैं। आपने सुनी होगी- क्षयोपशमलब्धि, विशुद्धिलब्धि, देशनालब्धि, प्रायोग्यलब्धि और करणलब्धि। उसका विषय अभी आगे आनेवाला है। उसमें प्रायोग्यलब्धि में ही कितनी ही प्रकृतियों का बंध रुकते चला जाता है। यह तो अभव्यों के भी होता है। यहां तक आकर भव्य भी करणलब्धि में प्रवेश नहीं करता तो वापस लौटकर जाता है। कुछ काल के लिये इन प्रकृतियों का बंध रुका था; मिथ्यात्व का बंध नहीं रुका था, अन्य कुछ अप्रशस्त प्रकृतियों का बंध रुकता है और जिसकी करणलब्धि नहीं होती - भव्य हो या अभव्य - उसको सम्यक्त्व नहीं होगा। उसका अपना लौकिक जीवन चलता रहेगा।

अब आगे देखते हैं, यह तो प्रकृति का बंध घटा। अब प्रदेशों का यानी परमाणु का - नंबर ऑफ परमाणु बंधते हैं तो उसका कैसे घटा ? **प्रदेशबंध योगों के अनुसार होता है इसलिये योगों की चंचलता हीन होने पर प्रदेशबंध हीन होता है। योग का सर्वथा नाश होने पर प्रदेशबंध का सर्वथा अभाव होता है।** यह कब होगा ? चौदहवें गुणस्थान में जहां अयोगकेवली होते हैं, वहां योग का अभाव होता है। उसमें भी ऐसा है न, प्रकृतिबंध जो है; कितनी प्रकृतियां बंधती हैं ? मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय, योग बंध के हेतु हैं तो जब सभी हैं तब यह मिथ्यात्वादि सहितवाला योग है, तो सभी प्रकृतियां बंधेंगी। अभी हमने जो ४१ गिनायी थी न, वे भी बंधेंगी। मिथ्यात्व चला गया है तो अविरति, प्रमाद और कषाय के सहितवाला योग है, तो उतनी प्रकृतियों को बांधेगा। अकेले प्रदेशों की बात नहीं, उतनी प्रकृतियों को बांधेगा।

अविरति चली गयी है, मुनिराज हुये है; प्रमाद, कषाय और योग है; यह योग

प्रमाद, कषाय सहित है तो इतनी प्रकृतियां बंधेगी। अभी प्रमाद भी चला गया है। अकेला कषाय रह गया है। *श्रोता: वह भी संज्वलन*। हां, वह भी संज्वलन का है, वह भी मंद-मंद है। तो उस सहितवाला योग है, तो उतनी प्रकृतियों का बंध होगा। कषाय भी चला गया। अकेला योग रहा। जैसे ११वें, १२वें, १३वें गुणस्थान में एक सातावेदनीय बंधेगी, वह भी एक समयवाली। उसमें ना स्थिति बंधेगी, ना अनुभाग बंधेगा क्योंकि स्थिति और अनुभाग कषाय से बंधता है और इनके कोई कषाय नहीं हैं। इसतरह से बंध तो घटता चला जाता है। पूरे मोक्षमार्ग का स्वरूप अपने सामने क्लिअर हो जाता है। कौनसे गुणस्थान में कितना बंधता है, कितना उदय में आता है, क्या नहीं बंधेगा, सत्ता में रहेगा और सत्ता में रह-रहकर उसका नाश हो जायेगा यानी हमें कोई डरने की आवश्यकता ही नहीं है। बिलकुल नहीं है।

आगे बढ़ते हैं देखो, **स्थितिबंध कषाय के अनुसार होता है। इसलिये मिथ्यात्व, कषाय आदि हीन होने पर स्थितिबंध घटता है।** बंध की बात है, जहां कषाय की मंदता होती है, वहां नया होनेवाला बंध भी कम स्थितिवाला बंधता है। **वहां स्थितिबंध का क्रम से घटना स्थितिबंधापसरण है।** क्या कहा ? पहले हमने प्रकृतिबंधापसरण कहा - प्रकृतियों का बंधना घटा था, नंबर ऑफ प्रकृतियां। यहां स्थितिबंध में जो स्थितिबंध पहले होता था उससे हीन होगा। फिर कुछ काल के बाद उससे भी कम होगा, उससे भी कम होगा इसको कहेंगे स्थितिबंधापसरण। नयी बंधनेवाली स्थिति जो है वह कम बंधेगी।

पहले जितना स्थितिबंध होता था, उससे विवक्षित काल में जितना स्थितिबंध घटा, उतने प्रमाणवाला वहां स्थितिबंधापसरण जानना; हम हजार वर्ष का मान लेते हैं, हजार वर्ष का स्थितिबंध हो रहा था और अभी उसने ९०० वर्ष का बांधा, तो घट कितनी हुयी ? १०० वर्ष की। तो उतना अपसरण हुआ। अभी नया बंध कितने का होगा ? तो ९०० वर्ष का होगा। **घटने के पश्चात् जितना अवशेष रहा, उतना वहां स्थितिबंध जानना। स्थितिबंधापसरण होने पर जितने काल तक समान स्थितिबंध होता है;** यह जो स्थितिबंधापसरण आदि कब होते हैं ? सम्यक्त्व प्राप्त करने के पहले प्रायोग्यलब्धि में। वहां पर एक बार घटा, फिर एक अंतर्मुहूर्त तक

उतना स्टेडी बंध होगा। जैसे १००० का ९०० किया फिर अंतर्मुहूर्त तक उतना ९००, ९००, ९०० हर समय बंध होगा; फिर घटेगा। मान लेते हैं ८०० हुआ। फिर ८००, ८००, ८०० अंतर्मुहूर्त तक बंधेगा; फिर घटेगा; फिर वह स्टेडी रहेगा। ऐसे एक बार घटता है, फिर स्टेडी रहता है; फिर घटता है, फिर एक-एक अंतर्मुहूर्त तक स्टेडी रहता है; तो **उसे स्थितिबंधापसरण काल कहते हैं।** उतना का उतना स्थितिबंध होने का काल। यह ऐसी टर्मिनॉलॉजि आगे भी आयेगी।

ऐसे ही अनुभाग में भी होता है। जहां विशुद्धि बढ़ती है, कषायों की मंदता बढ़ती चली जाती है; वहां अनुभाग भी घटता है। अनुभाग में भी कटौती हो जायेगी। वहां किसके अनुभाग में कटौती होगी ? अभी वहां शुभ कर्मों में तो अनुभाग बढ़ेगा और अशुभ कर्मों में घटेगा। अनुभाग की बात आती है, तो दोनों के लिये अलग-अलग कथन होगा। यहां जीव की विशुद्धि अनंतगुणा, अनंतगुणा बढ़ती है तो अप्रशस्त कर्मों का अनुभाग अनंतगुणा, अनंतगुणा घटता है यानी अप्रशस्त का अनुभाग अनंतवें भागप्रमाण होता है। घाति में भी और अघाति के अप्रशस्त में भी; अप्रशस्त है न ? सभी अप्रशस्त में लगाना। परंतु पुण्य प्रकृतियों में अनुभाग बढ़ता चला जाता है। सहजरूप से ऐसा है। जो पुण्य कर्म सत्ता में पड़ा है, उसका अनुभाग भी बढ़ता है और नया बंध भी वैसा ही होता है। अप्रशस्त का जितना कोई बंध होता होगा वह तो अनुभाग भी कम बंधता है। जैसे ज्ञानावरणादि कर्म तो दसवें गुणस्थान तक बंधते हैं। जब सम्यक्त्व होता है या ऊपर-ऊपर के गुणस्थान में जाता है, तो ज्ञानावरण का बंध तो हो रहा है न ? हां, अत्यंत मंद-मंद-मंद अनुभाग का बंध होता है और जो सत्ता में ऑलरेडि पड़ा है, उसका क्या होता है ? उसका भी अनुभाग घटते चला जाता है। वह कौनसे प्रोसेस से घटता है, वह सब बतायेंगे।

अभी हमने इतना ही देखा है कि जहां विशुद्धि बढ़ती है यानी कषाय मंद होते हैं, वहां अनुभागबंध अप्रशस्त कर्मों में घटता चला जाता है और प्रशस्त कर्मों में बढ़ता चला जाता है - बंध की बात है। अनुभाग का जो सत्त्व है उसका भी अप्रशस्त कर्मों में घटना होता है और ऑलरेडि जो सत्ता में पूर्व में कम पुण्य बांधा था, वह भी बढ़कर अधिक अनुभागवाला हो जाता है। तो उसका फल भी वैसा अधिक मिलता है।

श्रोता: यह सब सम्यक्त्व के बाद होगा न ? सम्यक्त्व के बाद। मिथ्यात्व अवस्था में ऐसी कोई बातें नहीं होती। मिथ्यात्व अवस्था में थोड़ा बढ़ा, थोड़ा कम हुआ तो मिथ्यात्व तो है ही है वहां पर। मिथ्यात्व के रहते हुये कितना भी मिथ्यात्व के योग्य उच्च परिणाम हो जाये; जैसे हम द्रव्यलिंगी मुनि कहते हैं, ग्रैवेयक भी चला जाये तो भी क्या होगा ? ३१ सागर की आयु वहां भोगेगा। अगर मिथ्यात्व में ही रहा तो फिर वही चक्र चलता रहता है। जन्म मरण तो उसका हटा नहीं, कुछ नहीं होगा उसके। यह बात आती है न, आपने सुनी भी है – ‘मुनिव्रत धार अनंत बार, ग्रैवेयक उपजायौ। पै निज आतम-ज्ञान बिना, सुख लेश न पायौ॥’ तो ३१ सागर सुख भोगा कि नहीं भोगा ? *श्रोता:* सुखाभास है। हां, सुखाभास है। संयोग से सुख मिलता ही नहीं। जब तक मिथ्यात्व है, तब तो सुख का अंश भी नहीं है वहां पर।

हमने बंध का नाश देखा। प्रकृतिबंधापसरण, स्थितिबंधापसरण देखा। अनुभागबंध का घटना देखा। बंध की हानी देखी। अब यहां सत्त्व की हानी की बात बतायेंगे। हम भूमिका के रूप में देख रहे हैं यहां पर। एक-एक विषय को विस्तार से हम देखेंगे बाद में। पृष्ठ २२ पर अंतिम लाइन, **अब सत्त्वनाश का क्रम कहते हैं।** सत्त्वनाश का अर्थ है, सत्ता में से उस प्रकृति का पूरा नाश हो जाना। एक बार सत्ता में से नाश हो जायेगी, फिर वह नहीं बंधेगी। **दर्शन-चारित्रलब्धि के निमित्त से** इसीको लब्धि कहा है। बार-बार दर्शन और चारित्र को ही लब्धि कहते हैं। इस लब्धि के निमित्त से **पहले मिथ्यात्वादि अतिअप्रशस्त प्रकृतियों का** यानी ? हम देखते हैं जो कोई क्षपकश्रेणी चढ़नेवाला है, अन्य कर्मों की क्षपणा करनेवाला है तो वह सबसे पहले में पहले क्षायिक सम्यग्दृष्टि होना चाहिये। तो सबसे पहले मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी का क्षय करेगा। यहां लिखा है न, मिथ्यात्वादि अतिअप्रशस्त प्रकृतियों का, यहां क्षय करेगा वह। जो क्षायिक सम्यग्दृष्टि है, वही क्षपकश्रेणी चढ़ेगा। **पश्चात् ज्ञानावरणादि अप्रशस्त प्रकृतियों का** वह सत्त्वनाश कब हो जायेगा ? वह तो बारहवें गुणस्थान तक उदय है, उसके अंत में उसका सत्त्वनाश होगा। **और प्रशस्त प्रकृतियों का सत्त्वनाश होता है।** अभी कौनसे गुणस्थान में, कौनसी प्रकृतियों का नाश होता है, वह क्रम से बतायेंगे।

वह सत्त्वनाश स्वमुख उदय से और परमुख उदय से दो प्रकार का है। यह

बहुत महत्व की बात है। क्या बात है ? स्वमुख यानी जो संज्वलन क्रोध के परमाणु हैं वे संज्वलन क्रोधरूप से उदय आते-आते फिर क्या होता है ? वे संज्वलन मानरूप होकर नष्ट हो जाते हैं। मान के परमाणु मायारूप होते हैं और माया के लोभरूप होते हैं और लोभ के अपने स्वमुख से उदय में आकर नष्ट हो जाते हैं। यानी क्रोध, मान, माया परमुख से नष्ट हो जाते हैं और लोभ स्वमुख से चला जाता है। उदय की बात है - कौनसे कर्म उदयरूप होकर नष्ट हो जाते हैं उसकी बात है। जैसे मिथ्यात्व कर्म है, वह सारा सम्यग्मिथ्यात्वरूप टर्न हो जायेगा जब उसकी क्षपणा होगी, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक् प्रकृतिरूप हो जायेगा और सम्यक् प्रकृति अपनेरूप से उदय में आकर स्वमुख से नष्ट हो जायेगी।

अन्य भी जो कुछ नामकर्म की प्रकृतियां हैं - अभी एकेन्द्रिय जाति आदि का तो उदय नहीं होगा, वह पंचेन्द्रिय जातिरूप से उदय में आती रहेगी। पंचेन्द्रिय जाति तो अंत में चौदहवें गुणस्थान तक उदयरूप रहेगी। पर ऐसी कुछ प्रकृतियां हैं कि जो अपनेरूप से उदय में आकर नष्ट होगी और अन्य प्रकृतियां हैं जिनका उदय नहीं होगा, वे परमुख से उदय होकर नष्ट हो जायेगी। वहां जो प्रकृति अपनेरूप ही रहकर अपने स्थितिसत्त्व के; यह स्थितिसत्त्व की बात है, बंध की नहीं; सत्ता में जो पड़ा हुआ है, अंतिम निषेक का उदय होने पर अभाव को प्राप्त होती है। वह एक-एक निषेक खिरते-खिरते जब अंतिम निषेक उदय में आवे और नष्ट हो जाये तब जो नष्ट होती है, उसका स्वमुख उदय से सत्त्वनाश कहते हैं। जैसे संज्वलन लोभ का उपशमश्रेणी में तो उपशम है, उसका क्षय नहीं है। क्षपक सूक्ष्मसाम्पराय यानी क्षपक के दसवें गुणस्थान के अंतिम समय में वह अपनेरूप ही उदय होकर नाश को प्राप्त होता है। जो प्रकृति संक्रमित होकर अन्यरूप से होकर नष्ट होती है उसको कहेंगे परमुख से उदय होकर नष्ट होना। अभी हम यहां रुकते हैं। बाकी की चर्चा थोड़ी देर में करेंगे।

बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

५. भूमिका - स्थितिकांडकघात, अपकृष्टि विधान

आचार्य श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती ने इस लब्धिसार ग्रंथ की रचना की है। उसीके आधार से पं. टोडरमलजी ने सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका लब्धिसार-क्षपणासार भाषाटीका ढूंढारी भाषा में लिखी है। उसका हिंदी अनुवाद हम देख रहे हैं। प्रश्न है ? अच्छा ! बहुतों का प्रश्न है कि स्वमुख परमुख समझ में नहीं आया, उसको भी देखेंगे। देखो हम पुस्तक के आधार से फिर दुबारा देखते हैं, २३ नंबर का पृष्ठ निकालना।

जब हमने देखा था किसी कर्म का क्षय हो जाता है क्योंकि यहां सत्त्व के नाश की बात चल रही है। केवल स्वमुख से उदय आना बात अलग है और उदय आकर नष्ट होना अलग बात है। परमुख से उदय में आना अलग बात है क्योंकि हमने देखा है जब जीव सम्यक्त्व प्राप्त करता है तो उसकी सत्ता में मिथ्यात्व प्रकृति पड़ी है, उसका उदय कैसे चलता है ? उसकी स्थिति पूरी हुयी तो उसको उदय में आना ही है, तो वह सम्यक् प्रकृतिरूप टर्न होते-होते उदय में आती रहती है। यह परमुख से उदय कहलाता है। यह तो सामान्य से चलता ही रहता है। जैसे सम्यक्त्व प्राप्त हुआ; अनंतानुबंधी का बंध तो नहीं होगा परंतु वह सत्ता में तो पड़ी है। वह किसरूप से उदय में आयेगी ? अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण, संज्वलनरूप होकर उदय में आयेगी। क्योंकि बारह कषायों का वहां उदय और बंध भी चल रहा है तो एक-एक समय में उनरूप होते हुये उदय में आयेगी। एक-एक समयवाला निषेक, सभी नहीं। यह केवल परमुख उदय और स्वमुख उदय क्या है उसकी बात है।

यहां अपनी बात हो रही थी कि कर्मों की सत्ता नष्ट होने का तरीका क्या है ? सत्ता में से सभी कर्म खिरते-खिरते-खिरते जो कम हो गये हैं वे किसरूप से नष्ट होते हैं ? जब किसी प्रकृति का क्षय होता है; जैसे संज्वलन क्रोध-मान-माया-लोभ सत्ता में पड़े हैं; जब जीव क्षपकश्रेणी चढ़ता है तो उनमें क्या होता है ? सबसे पहले क्या होता है ? संज्वलन क्रोध के परमाणु संज्वलन मानरूप से परिणमित हो जाते हैं; फिर मान के मायारूप, माया के लोभरूप। यानी शुरुआत में तो क्रोध का भी उदय था; पर क्रोध का उदय मिट जाता है और बचे हुये क्रोध के सारे परमाणु मानरूप होते हैं; फिर एक

अंतर्मुहूर्त के बाद मान का भी उदय रुक जाता है और मान के सारे परमाणु मायारूप होते हैं; फिर माया का भी उदय रुक जाता है और वे लोभरूप होते हैं। लोभ का उदय तो दसवें के अंत तक चलता है और मोहनीय के सारे परमाणु - क्रोध-मान-माया के परमाणु सभी लोभरूप हो गये हैं, वे लोभरूप से उदय में आकर नष्ट होते हैं। हां, उदय में आनेवाले परमाणुओं की संख्या भी बहुत बढ़ते-बढ़ते चली जाती है। क्योंकि क्रोधादि का जितना द्रव्य सत्ता में पड़ा हुआ था वह मानादिरूप होते-होते-होते अंत में मोहनीय का सारा द्रव्य लोभरूप हो गया। अब वह अपनेरूप से - लोभरूप से नष्ट हो जायेगा, इसको कहेंगे पररूप से - परमुख से नष्ट होना। नष्ट होने की बात चल रही है। उदय भी कोई परमुख से होता है कोई स्वमुख से होता है उसकी बात मैंने पहले बतायी है। देखो यहां से फिर पढ़ते हैं, २३ पृष्ठ पर चौथी लाइन।

जो प्रकृति अपनेरूप ही रहकर अपने स्थितिसत्त्व के अंत निषेक का उदय होने पर... स्थितिसत्त्व यानी सत्ता में उसका एक-एक निषेक गलते-गलते उसरूप से; जैसे लोभ का एक-एक निषेक गलते जायेगा, अंतिम समय में लोभ का उदय होकर ही उसका पूरा सत्त्व नष्ट हो जायेगा, हम कहेंगे उसका क्षय हो गया। अपनेरूप से ही उदय में आकर नष्ट हो जाता है उसको कहेंगे स्वमुख उदय से सत्त्वनाश होना। यहां संज्वलन लोभ का उदाहरण दिया है। मिथ्यात्व की बात भी हमने देखी थी। जब मिथ्यात्व का क्षय होता है यानी क्षायिक सम्यग्दर्शन होता है तो क्या होता है ? मिथ्यात्व के परमाणु सम्यग्मिथ्यात्वरूप होते जाते हैं और सम्यग्मिथ्यात्व के सम्यक् प्रकृतिरूप। दोनों ही प्रकृतियां नष्ट होकर मात्र सम्यक् प्रकृति रह जाती है और वह भी एक अंतर्मुहूर्त में अपनेरूप से उदय में आकर सारे निषेक खिरकर नष्ट हो जाते हैं। यह सम्यक् प्रकृति का नाश स्वमुख से हुआ और अन्य दो का उदय ही नहीं है; वे तो परमुख से ही उदय में आती हैं और उनका सत्त्वनाश भी परमुख से होता है।

आगे का पॅरेग्राफ - **जो प्रकृति संक्रमण के वश से संक्रमण होना यानी अन्य प्रकृतिरूप हो जाना। अन्य प्रकृतिरूप परिणमित होकर अपने अभाव को प्राप्त होती है** यानी उसका नाश होता है। संक्रमित होकर नाश होना - पूरे क्षपकश्रेणी में यही प्रोसेस चलता है, बहुतांशी सारी प्रकृतियां जो हैं, वे अन्य प्रकृतिरूप से होकर नष्ट

हो जाती हैं। हम तो कहते हैं कि इस प्रकृति का नाश हुआ उस प्रकृति का नाश हुआ। पहले में पहले अन्य जो वेद हैं वे पुरुषवेदरूप से होकर नष्ट हो जाते हैं। पुरुषवेद और छह नोकषाय हैं वे संज्वलन क्रोधरूप होकर नष्ट होते हैं। संज्वलन क्रोध है वह मानरूप; संज्वलन मान है वह मायारूप; संज्वलन माया है वह लोभरूप होकर सारे नष्ट होते हैं। यही प्रोसेस है क्षय होने का यानी वे प्रकृतियां संक्रमण से पररूप होकर नष्ट होती हैं। लोभ प्रकृति अपनेरूप से - स्वरूप से उदय में आकर नष्ट होती है।

यहां देखते हैं, दूसरा पॅरेग्राफ- **जो प्रकृति संक्रमण के वश से अन्य प्रकृतिरूप परिणमित होकर अपने अभाव को प्राप्त होती है** यानी उसका सत्ता में से नाश होता है **उसका परमुख उदय से सत्त्वनाश कहते हैं।** सत्ता में से नष्ट होने की बात चल रही है। जैसे अनंतानुबंधी की विसंयोजना होने पर; विसंयोजना क्या होती है ? अनंतानुबंधी सत्ता में से नाश होने को विसंयोजना कहते हैं। *श्रोता: वह क्रम से होता है ?* अनंतानुबंधी का अन्य कषायरूप संक्रमण क्रम से नहीं होता है, वह एकसाथ अप्रत्याख्यानावरणादि तीनोंरूप से होता है। देखो, क्या कहना है ? अनंतानुबंधी सत्ता में है; जब तक मिथ्यात्व में है तब तक उसका नया बंध भी हो रहा है तब तक तो नाश होने का सवाल नहीं। जब सम्यक्त्व प्राप्त करता है, अब वह चारों गति का कोई भी जीव हो सकता है, सातवें नरक का नारकी भी; सम्यग्दृष्टि है और उसकी विशुद्धि बढ़ती है तो वहां पर भी तीन करण परिणाम होते हैं और वहां अनंतानुबंधी सत्ता में से नष्ट हो जाती है। क्या हो जाता है ? एक अंतर्मुहूर्त में अनंतानुबंधी के सभी के सभी परमाणु अन्य कषाय और नोकषायरूप होकर नष्ट हो जाते हैं।

आपने जो अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण, संज्वलन में संक्रमण की बात की, वह चौथे गुणस्थानवाले के होगी। हमने संक्रमण का नियम क्या देखा था ? बंधनेवाली प्रकृतियों में संक्रमित होते हैं। चौथे गुणस्थानवाले के अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण, संज्वलन प्रकृतियां बंधती हैं उनमें अनंतानुबंधी संक्रमित हो जायेगी। पांचवें गुणस्थानवाले के केवल प्रत्याख्यानावरण और संज्वलन प्रकृतियां ही बंधती है तो वहां अनंतानुबंधी का उनरूप होकर नाश होगा। छठे-सातवें गुणस्थानवाला विसंयोजना करेगा तो वह अनंतानुबंधी का केवल संज्वलन क्रोध-मान-माया-लोभ में

संक्रमण करेगा। इसतरह से जहां जो बंधती हैं, उनरूप होकर नष्ट होना उसको कहेंगे अनंतानुबंधी की विसंयोजना होना। जब क्षायिक सम्यक्त्व होता है उसके पहले विसंयोजना होती ही है। ऐसे सामान्य से विसंयोजना होकर फिर छूट भी जा सकती है। किसीकी विसंयोजना हुयी और वह मिथ्यात्व में चला जाये, तो फिर अनंतानुबंधी का नया बंध चालू हो जाता है और फिर उलटा संक्रमण होता है और अनंतानुबंधी में भी कुछ परमाणु वापस आ जाते हैं; उसको कहेंगे संयोजना हुयी, संयुक्त हुये। ऐसी बहुत सारी बातें होती रहती हैं। क्षायिक करनेवाला पहले विसंयोजना करेगा बाद में मिथ्यात्व की क्षपणा करेगा, तो वह विसंयोजना अभी परमनन्त होगी, बाद में अनंतानुबंधी फिर से तैयार नहीं होगी।

यह उदाहरण दे रहे हैं, यहां पर अनंतानुबंधी की विसंयोजना होने का क्रम से जो प्रोसेस है, वह आगे क्षायिक सम्यक्त्व के प्रकरण में आनेवाला है। अभी तो परमुख से नाश होने का अर्थ बता रहे हैं। **जैसे अनंतानुबंधी का विसंयोजन होने पर अनंतानुबंधी कषाय, कषाय यानी कर्म, अन्य कषायरूप परिणमित होकर नाश को प्राप्त होती है। ऐसे ही यथासंभव अन्यत्र जानना** यानी जिसकी क्षपणा है, वह प्रकृति अन्यरूप होकर नष्ट होती है। *श्रोता: क्या सभी कर्मों की विसंयोजना होती है ?* अनंतानुबंधी के पररूप होकर नाश होने को विसंयोजना कहते हैं। यह विसंयोजना मात्र अनंतानुबंधी में ही होती है, अन्य किसी कर्म में नहीं होती। यह शब्द उसके लिये स्पेशल आता है, संक्रमण तो एकदम सामान्य शब्द है। अब पुनश्च **सत्ता के एक-एक निषेक के परमाणु** हमने देखा न जो उदयरूप एक निषेक है वह उदय में आता है, उसके परमाणु खिर जाते हैं। **एक-एक समय में उदयरूप होकर निर्जरित होते हैं** यानी **खिरते हैं**। क्या कहा ? एक समय में कितनी निर्जरा होती है ? एक जो सत्तावाला निषेक; सत्तावाला निषेक कहते हैं, बंधनेवाला निषेक अलग था। बंधने के बाद वे सत्तावाले निषेकों में आ मिलते हैं।

जो सत्तावाला प्रथम निषेक है, उसमें कितने परमाणु होते हैं ? एक समयप्रबद्ध में जितने होते हैं, उतने अनंत परमाणु, क्या कहा ? एक समय में एक समयप्रबद्ध बंधता है तो उसकी निषेक रचना होती है। पहला निषेक, दूसरा निषेक, तीसरा निषेक

- एक समय में बंधे हुये की बात है। अब अलग-अलग समयों में बंधे हुये एक साथ उदय में आते हैं। अभी हमारा वर्तमान जो उदयरूप निषेक है, उसमें कभी-कभी के बंधे हुये कर्म हैं ? कितने तो बहुत पूर्व के बंधे हैं, हर एक समय में बंधे हुये का कोई न कोई निषेक वहां विद्यमान है। उसकी टोटल कितनी होती है ? उसकी भी टोटल समयप्रबद्ध जितनी होती है। एक समय में बंधता है समयप्रबद्ध; उसका डिस्ट्रिब्यूशन होता है बहुत लंबे काल तक; और जो अलग-अलग समयों में बंधे हैं, उनका इकट्ठा होकर वर्तमान समय में जो सत्तावाला निषेक उदयरूप होता है वह भी करीबन उतना ही होता है -समयप्रबद्ध जितना। हमने देखा न, पानी से भरे हुये एक हौज में ऊपर से पांच नलों से पानी आता है और नीचे से पांच नलों से पानी चला जाता है। वैसे एक समयप्रबद्ध बंधता है और एक समयप्रबद्ध उदय में आता है। परंतु उदय में आता है वह अलग-अलग समयों में बंधा है। जैसे हम बैंक में डिपॉजिट रखते हैं, कोई एफडी दस साल पहले रखी थी, कोई पांच साल पहले। सबकी मॅच्युरिटी आज है तो सबकी ऑग्रिगेट रकम हमें आज मिलेगी। वैसे ही अलग-अलग समयों में बंधे हुये परमाणुओं का, कोई न कोई निषेक हर समय में उदयरूप है। जिनकी-जिनकी स्थिति पूरी हुयी है, उन सबका मिलकर अभी वर्तमान में फल मिलेगा।

यहां पूछा है देखो, पृष्ठ १७, नीचे से दूसरी लाइन। उदयरूप निषेक के परमाणु अलग-अलग समयों में बंधे हैं, हर एक परमाणु में अलग-अलग अनुभाग है। यह प्रश्न उसके ऊपर है- **उस समय में उदय आने योग्य परमाणुओं में, किन्हीं परमाणुओं में अल्प अनुभाग है और किन्हीं में बहुत है। उन सबका एक समय में कैसे उदय होता है ? जैसे कोई वस्तु अल्प शीतलता करने का कारण है और कोई बहुत शीतलता करने का कारण है। जिसे शीतल वस्तु हम कहते हैं न ? शीतल वस्तुयें कौनसी हैं ? श्रोता: इलाइची।** इलाइची और ? **श्रोता: केला।** केला। शीतलता करनेवाली अनेक वस्तुयें होती हैं। पृष्ठ १८ पर उसका समाधान- **जैसे कोई वस्तु अल्प शीतलता करने का कारण है, कोई बहुत शीतलता करने का कारण है। उन सबकी एक गोली बनाकर;** अभी आयुर्वेदिक कोई दवाइयां होती हैं जो शीतलता करनेवाली हैं। उनका मिक्चर किया, एक गोली बनायी। **एक काल में खायी, वहां सबकी शीतलता**

मिलकर जैसी शीतलता होनी हो वैसी भक्षण करनेवाले के शीतलता होती है। यह तो दृष्टांत दिया, उसी तरह किन्हीं परमाणुओं में अल्प अनुभाग है, किन्हीं में बहुत अनुभाग है उन सबका एक निषेक हुआ। उसका एक काल में उदय आया। वहां सबका अनुभाग मिलकर जैसा अनुभाग होना हो वैसा उदयवाले निषेक का अनुभाग उदय होता है। यह तो समझाने के लिये बताया। अभी श्रेणी में कहो या दर्शन-चारित्र के निमित्त से - उसमें भी क्या-क्या बातें होती हैं ? जब उसका विषय आयेगा तब उसकी चर्चा करेंगे।

अब अपना जो विषय यहां चल रहा है कि एक समय में एक समयप्रबद्ध प्रमाण परमाणु खिर जाते हैं, उदय में आकर निकल जाते हैं और उतने का ही बंध होता है। अभी इसी बात की चर्चा करेंगे। पृष्ठ २३ पर नीचे से तीसरा पैरेग्राफ- **दर्शन-चारित्र की लब्धि के निमित्त से** यह बार-बार दर्शन-चारित्र की लब्धि के निमित्त से कर्मों में क्या होता है उसकी बात यहां बता रहे हैं। **ऊपर के निषेक के परमाणु नीचे के निषेकरूप होकर परिणमते हैं।** इसका अर्थ क्या है ? उनकी स्थिति घट जाती है। नीचे यानी उदय आने के सन्मुख; नीचेवाले जल्दी उदय में आयेंगे, ऊपरवाले बाद में उदय में आनेवाले हैं। उनकी स्थिति घटती है एक बात; **वहां एक-एक समय में साधिक समयप्रबद्ध की** जब सम्यग्दर्शन होता है और ऊपर के गुणस्थानों में जाता है तो क्या होता है ? अपकर्षण होकर नीचे आनेवाले परमाणुओं की संख्या बढ़ती है। यह सहजरूप से होता है- यहां वीतरागता बढ़ रही है, जीव की विशुद्धि बढ़ रही है तो अपकर्षित होकर नीचे आनेवाले परमाणुओं की संख्या बढ़ती है। पहले तो एक समयप्रबद्ध उदय में आता था, अभी बड़ा साधिक समयप्रबद्ध उदय में आने लगा।

या अनेक समयप्रबद्धों की निर्जरा होती है, एक समय में। श्रेणी में हम देखेंगे आठवें-नौवें गुणस्थान में, वहां तो कहेंगे एक समय में असंख्यात समयप्रबद्धों की निर्जरा होती है। हमेशा क्या होता है ? एक समय में एक निषेक खिरेगा। एक समयप्रबद्ध प्रमाण परमाणु निकल जायेंगे और उतने ही यहां बंध रहे हैं यानी सत्ता में तो उतने के उतने ही रहेंगे। अब श्रेणी में क्या हो रहा है ? एक समयप्रबद्ध बंध तो रहा है; परमाणु की संख्या उतनी बंध रही है भले ही प्रकृतियां कम बंध रही हैं परंतु

परमाणु तो बंध रहे हैं और खिर कितने रहे हैं ? असंख्यात समयप्रबद्ध।

इसलिये छहढाला में क्या लिखा है ? हां बोलो ! *श्रोता: कोटि जन्म तप तपे...* हां, कोटि जन्म तप तपे... तो जितने कर्म झर जायेंगे, खिर जायेंगे। क्यों ? एक-एक समय में एक-एक समयप्रबद्ध खिरता है। अज्ञानी जीव करोड़ों भवों तक; करोड़ों भवों के कितने समय हुये ? *श्रोता: असंख्यात।* हां - असंख्यात समय हुये। एक-एक समय में एक-एक समयप्रबद्ध खिरा तो करोड़ों भवों में उसके असंख्यात समयप्रबद्ध खिरे और उसने उतने ही बांधे भी। अज्ञानी जीव करोड़ों भवों तक तपे तो भी, कंटिन्युअस तो नहीं होता है क्योंकि अज्ञानी है तो अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्त में संक्लेश-विशुद्ध होता ही रहेगा। फिर भी हम मान लेते हैं कि वह करे, तो भी उसकी जितनी निर्जरा हो जायेगी उतनी ज्ञानी की एक क्षण में होती है। ज्ञानी असंख्यात समयप्रबद्धों की निर्जरा करता है और ऐसी निर्जरा मिथ्यात्व अवस्था में हो ही नहीं सकती।

कितना भी संयम, उसको संयम कहते भी नहीं हैं, द्रव्ययम कहते हैं। मिथ्यात्व अवस्था में मुनि योग्य आचरण करे, सारे व्रत अंगीकार करे तो भी उसको संयम नाम नहीं मिलता क्योंकि वह सम्यग्दर्शन सहित नहीं है। उसने केवल बाह्य आचरण स्वीकार किये हैं तो उसको द्रव्ययम, ऐसा शब्द धवला में आता है। यम यानी नियम तो अंगीकार किये, परंतु उसने केवल शारीरिक आचरण अंगीकार किये हैं; भले ही उसके शुभभाव होंगे वहां पर, परंतु वे मिथ्यात्व सहितवाले हैं। उस जीव को राग में और आचरण में अपनत्व है, यह मैं कर रहा हूं इससे मैं मोक्षमार्गी हूं - ऐसी उसकी मान्यता पड़ी है। अभी मान्यता में उसकी भूल निकली नहीं है वह मिथ्यादृष्टि है, तो कहेंगे उसका वह संयम भी नहीं है।

यही कहते हैं **एक-एक समय में साधिक समयप्रबद्ध की या अनेक समयप्रबद्धों की निर्जरा होती है और बंध समय-समय प्रति एक-एक समयप्रबद्ध का ही होता है।** यानी एक समयप्रबद्ध बंधता है और असंख्यात समयप्रबद्ध खिर जाते हैं - क्रम से अधिक-अधिक निकल चले जाते हैं। यहां पर ज्ञानी की बात चल रही है अथवा किसी काल में किसी प्रकृति का बंध नहीं है, केवल निर्जरा ही होती है।

अनेक प्रकृतियों का बंध रुकता चला जाता है और मात्र उनकी निर्जरा चलती रहती है। **इसतरह सर्व कर्म परमाणुओं का नाश होने पर प्रदेश सत्त्व का सर्वथा नाश होता है।** सत्त्व का नाश किस प्रकार से होता है ? पहले हमने प्रकृति सत्त्व का नाश देखा। एब प्रदेश सत्त्व का नाश देख रहे हैं यानी असंख्यातगुणा प्रमाण में कर्म के प्रदेश यानी परमाणु निकलते चले जाते हैं। अप्रशस्त कर्मों का अनुभाग घटते चला जायेगा। जब उसका उदय होता है अप्रशस्त का अनुभाग अत्यंत हीन होकर उदय में आयेगा और प्रशस्त का अनुभाग अत्यंत बढ़कर उदय में आयेगा।

आगे देखते हैं, **जो स्थितिसत्त्व पाया जाता है स्थितिसत्त्व कहा अभी बंध नहीं कह रहे हैं, स्थितिसत्त्व यानी सत्ता में जो स्थिति है; उससे एक-एक समय व्यतीत होने पर एक-एक समय ही घटता है।** हमने देखा न नीचे से एक समय का निषेक उदयरूप हो जायेगा। अभी जो निषेक सत्ता में पड़े हैं उनसे अगर बंध कम होगा, अभी सम्यग्दृष्टि हैं तो उसका जो स्थितिबंध है, वह सत्तावाली स्थिति से कम होता है। तो उसकी सत्ता कितनी घटेगी ? एक समय में एक निषेक खिरता है, इस क्रम से एक-एक समय से स्थिति घटेगी। यदि मिथ्यादृष्टि है तो कभी सत्ता से अधिक बंध भी करेगा तो उसकी सत्ता की स्थिति कम होने का कोई सवाल नहीं है। यहां दर्शन और चारित्रलब्धि से और कुछ विशेषता होती है। यह स्थिति का घटना मात्र एक-एक समय का नहीं होता है, और अधिक मात्रा में होता है उसकी बात यहां देख रहे हैं।

देखो, नीचे से दूसरा पॅरेग्राफ- **जो स्थितिसत्त्व पाया जाता है उससे एक-एक समय व्यतीत होने पर तो एक-एक समय घटता ही है, परंतु दर्शन-चारित्रलब्धि के निमित्त से इसमें कुछ विशेषता होती है। क्या होता है ? स्थितिकांडक विधान से यह क्या होता है उसको हम देखेंगे और दूसरा क्या है ? अपकृष्टि विधान से स्थितिसत्त्व का घटना होता है।** यानी जो स्थितिसत्त्व है वह कैसे घटेगा ? सम्यग्दर्शन हुआ तो भी अंतःकोड़ाकोड़ी सागर जितनी स्थिति है वह भी बहुत है। वह भी घटते-घटते कैसे घटेगी ? उसका मार्ग क्या है ? एक तो स्थितिकांडकघात होते हैं- अनेक निषेक एक छोटे अंतर्मुहूर्त में नष्ट हो जाते हैं; उसका सारा का सारा द्रव्य - सभी परमाणु नीचे के निषेकों में आ मिलते हैं उसको क्या कहेंगे हम ? स्थितिकांडकघात।

वहां स्थिति बहुत सारी घटती है यानी एक अंतर्मुहूर्त में पल्य के असंख्यातवें भाग जितनी या कहीं-कहीं अधिक भी घटती है। उसको कहेंगे स्थितिकांडकघात। कांडकरूप से उसका घात होना, उसके साथ-साथ अपकर्षण यानी ऊपर के सभी निषेकों से द्रव्य का नीचे आना और वहां गुणश्रेणी आदि की रचना होना, यह हम देखेंगे। उसको कहेंगे अपकृष्टि विधान। एक होता है अपकर्षण और एक होता है स्थितिकांडकघात। स्थितिकांडकघात में सब परमाणु नीचे आते हैं और ऊपर की स्थितियों का यानी निषेकों का नाश होता है। यही बात यहां बतायी है।

हम पढ़ेंगे नीचे का पैरेग्राफ। *श्रोता: अपकृष्टि विधान।* हां, अपकृष्टि विधान भी बतायेंगे और स्थितिकांडकघात विधान भी बतायेंगे। देखो, स्थितिकांडकघात की बात है। **अधिक प्रमाण युक्त स्थितिसत्त्व था, उसके समय-समय में उदय आने योग्य बहुत ही निषेक थे।** यानी एक-एक समय में, एक-एक निषेक- पहला, दूसरा, तीसरा, चौथा ऐसे स्थिति में बहुत सारे निषेक हैं, क्रम से पड़े हैं। वर्तमान समय का एक निषेक उदयरूप है उसके ऊपर, उसके ऊपर, उसके ऊपर बहुत सारे निषेक हैं। उनमें से उदयावली के ऊपर के निषेकों में से जो अपकर्षण होता था वह थोड़े परमाणुओं का होता था; निषेक अपनी जगह पर कायम रहते थे, उसको अपकर्षण कहते थे। यहां स्थितिकांडकघात हो रहा है; **ऊपर के कितने ही निषेक** उनके सभी के सभी परमाणु वहां से नीचे आयेंगे। एक समय में थोड़े आयेंगे, दूसरे समय में थोड़े, तीसरे समय में थोड़े इसप्रकार एक छोटेसे अंतर्मुहूर्त में उतने सभी निषेकों का नाश होकर - घात होकर उन निषेकों के सारे परमाणु नीचे के निषेकों में आ मिलेंगे। वे परमाणु सत्ता छोड़कर जाते नहीं, नीचे के निषेकों में आ मिलेंगे। नीचे के निषेक बड़े-बड़े होंगे। हां, वे उदय में आयेंगे तो अधिक परमाणु खिरेंगे। यही प्रोसेस है पूरे मोक्षमार्ग का। **कितने ही निषेकों का नाश करके स्थितिसत्त्व घटाना इसको कहेंगे स्थितिकांडकघात।**

वहां उन नाश करने योग्य निषेकों के सर्व परमाणुओं को अपकर्षण में हमने थोड़े परमाणु देखे थे। यहां जब निषेकों का नाश करते हैं तो उनके सभी परमाणु नीचे आते हैं। यह नाश किसका होगा ? नीचे के नहीं; टॉपमोस्ट जो निषेक हैं, सबसे ऊपर के जो निषेक हैं उनका नाश होगा। **नाश करने के पश्चात् जो अवशेष स्थिति**

रहेगी उसके आवली मात्र ऊपर के निषेकों को छोड़कर वह आवली मात्र निषेक क्यों छोड़ना ? कहीं से भी अपकर्षण होता है तो जिस निषेक के परमाणु नीचे आते हैं, उसके नीचे के एक आवली मात्र निषेकों में वे नहीं मिलते हैं। आवली को लांघकर नीचे के निषेकों में मिलते हैं। जिनमें नहीं दिया जाता उसको कहेंगे अतिस्थापना और जिनमें दिया जायेगा उसको कहेंगे निक्षेप। फिर से दुबारा, यह सत्ता के निषेक हैं, क्रम से ऐसे पड़े हैं सत्ता में तो उसमें अभी हम क्या देख रहे हैं ? किसी भी निषेक के परमाणु नीचे आते हैं। मान लेते हैं तीन समय को हम आवली कहेंगे। तो इस निषेक के परमाणु उसके नीचे के तीन निषेकों को छोड़कर नीचे सर्वत्र जायेंगे। नीचे के निषेकों में सभी चले जायेंगे। अपने नीचे की एक आवली छोड़कर उसको लांघकर उसके नीचे के सभी निषेकों में आ मिलेंगे। जिसमें नहीं दिया जाता उसको कहेंगे अतिस्थापना। जब यह अतिस्थापना आवली प्रमाण होती है तो उसको कहेंगे अतिस्थापनावली।

श्रोता: आवली नीचे में होती है कि ऊपर में भी ? आवली जहां कहीं भी होगी, वह उदयावली यह अतिस्थापनावली। बंध होने के बाद एक आवली तक उस कर्म परमाणु में कुछ भी नहीं होता है उसको कहेंगे बंधावली। अब यह आवली तो प्रमाण है - माप है। वह कहां की बात है उसको उसका नाम देंगे। यहां सबसे टॉपमोस्ट निषेक के परमाणु नीचे आ रहे हैं। कहां दिये जायेंगे ? उसके नीचे के आवली प्रमाण निषेकों को छोड़कर, उसके नीचे सर्वत्र दिये जायेंगे। *श्रोता:* नीचे की आवली छोड़ना मतलब ? मान लो, १०० नंबर का निषेक है, उसमें से कुछ परमाणुओं का अपकर्षण होकर वे परमाणु ९६वें निषेक से लेकर १ले निषेक तक सभी निषेकों में दिये जायेंगे। ९९ नंबर के निषेक में से अपकर्षण होकर ९५वें निषेक से लेकर १ले निषेक तक सर्वत्र दिये जायेंगे। यानी ९८वें निषेक के परमाणु ९७वें में नहीं मिलेंगे, ९६वें में नहीं मिलेंगे, ९५वें में नहीं मिलेंगे। अपने नीचे आवली प्रमाण निषेकों में नहीं मिलेंगे, नीचे सर्वत्र दिये जायेंगे। अभी ऊपर से सेकंड निषेक है, उसके परमाणु नीचे उसकी अपनी आवली छोड़कर उसके नीचे जायेंगे। ऊपर से थर्ड निषेक, उसके परमाणु भी उसके नीचे की आवली छोड़कर उसके नीचे चले जायेंगे। हमने यहां तीन निषेकों को आवली कहा। यहां १००वें में से नीचे गये, ९९वें में से नीचे गये, ९८वें में से नीचे गये; उनमें ऊपर से

कहीं से नहीं आये। उनमें से केवल व्यय हुआ, आय नहीं हुयी वहां। इसको आय और व्यय कहते हैं। हां, इनमें से नीचे तो गये पर ऊपर से इनमें आकर नहीं मिले। तो ऊपर के आवली मात्र निषेकों में द्रव्य ऊपर कहीं से आया नहीं है, उसको कहेंगे अतिस्थापनावली। *श्रोता: तीन आवली को ?* नहीं, एक आवली को। आवली में तीन निषेक हैं यह तो हमने आपको समझाने के लिये बताये।

श्रोता: असंख्यात समय। आवली में तो असंख्यात समय होते हैं। *श्रोता: यह आवली खाली हो जाती है ?* खाली नहीं हुयी, उसमें अन्य ऊपर से कहीं से द्रव्य नहीं आया। उसमें से नीचे तो गया, उसमें कहीं से आया नहीं। *श्रोता: पूरे के पूरे निषेक खाली नहीं हुये ?* अभी खाली नहीं हुये, उसकी बात अभी नहीं हो रही है। पूरे के पूरे निषेक खाली होते हैं उसको स्थितिकांडकघात कहते हैं, पर उसके लिये भी एक अंतर्मुहूर्त काल लगता है। देखो मान लेते हैं इतना बड़ा कांडक है। एक समय में इतने परमाणु नीचे आये, दूसरे समय में इतने परमाणु नीचे आये, तीसरे समय में, ऐसे करते-करते एक अंतर्मुहूर्त में सभी परमाणु नीचे आये और इन निषेकों का अभाव हुआ तो हम कहेंगे स्थितिकांडकघात हुआ। यह कार्य एक ही समय में नहीं होता; एक समय में कुछ परमाणु नीचे आये उसको कहेंगे पहली फालि। फालि यानी लॉट। पहला लॉट जो नीचे आया उसको हम कहेंगे प्रथम फालि; फिर दूसरा लॉट आया वह द्वितीय फालि या दूसरी फालि कहो; फिर तीसरी फालि, चौथी फालि और जो लास्ट में आयेगी वह अंतिम फालि। जब तक लास्ट फालि नीचे नहीं आती है तब तक वहां निषेक बने हैं। तब तक उन निषेकों का घात नहीं हुआ है, स्थितिसत्त्व भी उतना का उतना है।

जब अंतिम लॉट नीचे आयेगा तब हम कहेंगे इस कांडक का घात हुआ – स्थितिकांडकघात हुआ; इतनी स्थिति एक अंतर्मुहूर्त में घट गयी। कितनी होती है वह ? उसमें पल्य के संख्यातवें भाग प्रमाण निषेक नीचे आते हैं। कभी-कभी तो सागर प्रमाण निषेक नीचे आते हैं। इतनी स्थिति एक छोटे अंतर्मुहूर्त में कट हो जाती है, घट जाती है। ये सारे परमाणु नीचे के निषेकों में आ मिलते हैं। नीचे इनकी संख्या बढ़ जायेगी। *श्रोता: यह लंबा हो जायेगा।* नीचे के निषेक लंबे हो जायेंगे और वे जब उदय में आयेंगे तो अधिक परमाणु खिरेंगे। हां, यानी नीचे तो आते हैं और अधिक खिरते भी हैं।

श्रोता: आवली वह समय का फॅक्टर है ? आवली समयों का प्रमाण है; एक समय में एक निषेक है इसलिये आवली है वह निषेकों की संख्या को बताने का माप है।

श्रोता: ऊपर से नहीं आते इस आवली में ? आवली में नहीं दिये जाते हैं उसको यहां अतिस्थापना कहते हैं। श्रोता: अतिस्थापना का अर्थ ? अतिस्थापना का अर्थ है कि उन निषेकों में द्रव्य नहीं दिया जाता है। श्रोता: लेकिन समय का उसमें कुछ लेना-देना नहीं ? समय यानी उतने समयों के निषेक हैं। एक समय में एक निषेक और यहां आवली प्रमाण निषेक हैं। वे कितने हैं ? दस हैं कि बारह हैं कि पंद्रह हैं ? उसका प्रमाण कितना है ? आवली में जितने समय हैं उतने निषेकों में नहीं दिया जाता और बाकी के निषेकों में दिया जाता है। जहां से उसका अपकर्षण हुआ, नीचे आये हैं; उसके नीचे के एक आवली प्रमाण निषेकों में नीचे आनेवाला द्रव्य नहीं दिया जाता। बाकी नीचे तो कितने ही सागरों के निषेक हैं, उन सब निषेकों में, प्रत्येक निषेक में द्रव्य दिया जाता है।

देखो यहां से फिर दुबारा यह वाक्य पढ़ते हैं। यहां स्थितिकांडकघात की बात हो रही है, ऊपर के कांडक का पूरा नाश होनेवाला है। **वहां उन नाश करने योग्य निषेकों के सर्व परमाणुओं को नाश करने के पश्चात्, जो अवशेष स्थिति रहेगी, उसके आवली मात्र ऊपर के निषेक छोड़कर अन्य सर्व निषेकों में मिलाते हैं।** आगे जब स्थितिकांडकघात की बात होगी वहां और ज्यादा विस्तार से बात आयेगी, वहां निक्षेप और अतिस्थापना सारा समझाया है। यहां क्या बताया ? जब अपकर्षण होता है या उत्कर्षण भी होता है तो जहां से उत्कर्षण हुआ या जहां से अपकर्षण हुआ, उसके इमीजिएट नेक्स्ट निषेकों में द्रव्य नहीं दिया जायेगा। जितने निषेकों में नहीं दिया जायेगा उसको अतिस्थापना कहते हैं और जहां दिया जायेगा उसको हम निक्षेप कहेंगे। निक्षेप करना यानी डालना, जिन निषेकों में डाला जायेगा उनको कहेंगे निक्षेप; जिनमें नहीं दिया जायेगा उनको कहेंगे अतिस्थापना। इतनी बात है।

वहां उन सर्व परमाणुओं में से कितने ही परमाणुओं को पहले समय में मिलाते हैं। हमने देखा न, उस कांडक का नाश होनेवाला है, एक समय में पूरे का

नाश नहीं होता। तो पहला लॉट नीचे आया, **कितने ही दूसरे समय में मिलाते हैं इसतरह अंतर्मुहूर्त काल तक परमाणुओं को नीचे के निषेकों में प्राप्त कराते हैं।** जब अंतिम समय में सारे के सारे परमाणु नीचे आ गये तब उतने निषेकों का अभाव हुआ, उसको कहेंगे कांडकघात हुआ। यह कौनसा कांडक है ? स्थिति का कांडक है। जितनी स्थिति है उतने निषेकों में से ऊपर के कांडक प्रमाण निषेक अभी नहीं रहेंगे, उनके परमाणु नीचे के निषेकों में आकर मिलेंगे उसको कहेंगे स्थितिकांडकघात। अब ऐसे ही अनुभागकांडकघात अशुभ कर्मों में होता है। अशुभ कर्मों में जो अधिक अनुभाग था, उनका अनुभाग घटकर वे परमाणु कम अनुभागवाले बन जाते हैं। वह भी एक समय में थोड़े परमाणु, दूसरे समय में थोड़े, जो हमने स्पर्धक देखे हैं न ? ऊपर के कुछ स्पर्धक हैं, उनका पूरा नाश होकर नीचे के स्पर्धक जैसे उनका अनुभाग बन जाता है उसको कहेंगे अनुभागकांडकघात। उसकी चर्चा फिर दुबारा कभी करेंगे।

श्रोता: दोनों एक साथ होते हैं ? कौनसे ? श्रोता: स्थितिकांडकघात और अनुभागकांडकघात ? हां, एक साथ होते हैं, परंतु हजारों अनुभागकांडकघात होते हैं तब जाकर एक बार स्थितिकांडकघात होता है। एक अनुभागकांडकघात होने के लिये भी अंतर्मुहूर्त लगता है और हजारों का अर्थ होता है संख्यात कोड़ाकोड़ी बार। इतने अनुभागकांडकघात होते हैं, हर एक के लिये अंतर्मुहूर्त लगता है, तब जाकर एक बार स्थितिकांडकघात होता है। एक स्थितिकांडकघात के लिये एक अंतर्मुहूर्त ऐसे हजारों-हजारों यानी कोड़ाकोड़ी बार स्थितिकांडकघात होते रहते हैं। यह सारा प्रोसेस एक अंतर्मुहूर्त में होता है। तो अंतर्मुहूर्त के भेद कितने होंगे ? *श्रोता: असंख्यात।* उसके असंख्यात भेद हैं। हम तो उसको मिनटों में और सेकंडों में गिनना चाहते हैं ! ऐसा मत करना। यथायोग्य अंतर्मुहूर्त है, ख्याल में आया ! ये अंतर्मुहूर्त बहुत छोटे-छोटे होते हैं।

श्रोता: ये कांडकघात कौनसे गुणस्थान में होते हैं ? नौवें गुणस्थान में ऐसे कांडकघात होते हैं। नौवें गुणस्थान का काल अंतर्मुहूर्त है और उसमें ऐसे हजारों-हजारों स्थितिकांडकघात होते रहते हैं। वहां कहते हैं हजारों परंतु उसको हम गिनेंगे तो ऐसे स्थितिकांडकघात अनेक कोड़ाकोड़ी बार होते हैं और उसमें एक-एक के काल में हजारों-हजारों अनुभागकांडकघात होते हैं। हमें अंतर्मुहूर्त का पता ही नहीं है

न और हम क्या कहते हैं ? जो अंतर्मुहूर्त तक - अड़तालीस मिनट तक आत्मा में स्थिर होगा उसको केवलज्ञान हो जायेगा। ऐसा नहीं है, पूरी श्रेणी चढ़कर केवलज्ञान प्राप्त होने के लिये छोटा अंतर्मुहूर्त लगता है और जितने ऊपर के गुणस्थान में चले जाओ उसके अंतर्मुहूर्त और छोटे-छोटे होते हैं। सातवें से आठवां छोटा, आठवें से नौवां, नौवें से दसवां। हां, तो बारहवें से तेरहवें का काल छोटा होगा कि बड़ा होगा ? बारहवें से तेरहवें का काल छोटा होगा न ? अरे वह तो कितना भी हो सकता है, जितनी आयु शेष है उतना। तेरहवें में रहने का काल कितना है ? कोई आठवें साल में केवलज्ञान प्राप्त करेगा और आयु एक करोड़ पूर्व की होगी तो चौदहवें गुणस्थान का एक अंतिम अंतर्मुहूर्त छोड़ो और पहले आठ साल छोड़ो - बाकी पूरा काल वे तेरहवें गुणस्थान में रहेंगे। उसका अधिक से अधिक काल इतना हो सकता है और कम से कम अंतर्मुहूर्त भी हो सकता है। बस केवलज्ञान प्राप्त किया और अंतर्मुहूर्त में मोक्ष चले गये ऐसा भी हो सकता है। तेरहवें गुणस्थान का काल व्हेरिबल है।

श्रोता: ऊपर के निषेक समाप्त होने पर उनका अनुभाग भी समाप्त होता है ? नहीं-नहीं, ऐसा नहीं है। वह निषेक और अनुभाग की चर्चा हम फिर करेंगे। अब अपकृष्टि विधान क्या है उसको देखेंगे। हमने देखा है, एक होता है स्थितिकांडकघात, देखा है न अभी ? हमने निषेकों के सभी परमाणु नष्ट होकर; नष्ट होते हैं यानी परमाणु नष्ट नहीं होते हैं, उनकी ऊपर की स्थिति कम होकर वे नीचे के निषेकों में आते हैं तो वहां कह देते हैं कि निषेकों का घात हुआ। निषेकों का घात हुआ यानी कर्म परमाणु नष्ट नहीं हो गये हैं; वहां जो निषेक रचना बनी थी, अब उतनी स्थितिवाले कोई परमाणु नहीं रहे, वे कम स्थितिवाले हो गये तो हम कहेंगे कि निषेकों का घात हुआ। अब अपकृष्टि विधान क्या है उसको देखेंगे। जैसे हमने पहले अलग-अलग भागहार देखे थे न ? अपकर्षण कितने परमाणुओं का होता है ? उसके लिये अपकर्षण भागहार नाम का एक भागहार है। सभी परमाणुओं को उस संख्या से भाग देंगे तो एकभाग का जितना प्रमाण आयेगा उसको कहेंगे अपकृष्ट द्रव्य यानी अपकर्षित होनेवाला द्रव्य।

देखो हम पढ़ेंगे पेज नंबर २५ पर - **विवक्षित कर्म प्रकृति के सर्व निषेकों संबंधी सर्व परमाणुओं को** यानी सत्ता में जितना द्रव्य है, उस पूरे द्रव्य की संख्या को

यानी परमाणुओं की संख्या को, **अपकर्षण भागहार का भाग देकर एकभाग मात्र परमाणु ग्रहण किये उसका नाम अपकृष्ट द्रव्य है।** अपकृष्टि विधान में और स्थितिकांडकघात में क्या होता है ? चार्ट में कांडकघात बताया है, ११ नंबर के चार्ट में यह बात है। वह चार्ट तो स्थितिकांडकघात संबंधी है परंतु वहां जो नाम लिखे हैं उनके आधार से हम अपकृष्टि विधान को समझा रहे हैं। स्थितिकांडकघात की बात तो हो चुकी है अपनी, अभी हम क्या देख रहे हैं ? जो द्रव्य अपकर्षित किया जाता है, वह कहां से निकलता है ? सभी निषेकों में से अपकर्षण होता है।

देखो, पहले स्थितिकांडकघात की बात हमने देखी थी। अब अपकर्षण में सत्ता में जितना द्रव्य पड़ा है, सत्ता में जितने निषेक हैं, उन सबमें से थोड़ा-थोड़ा द्रव्य निकाला जायेगा। कितना हुआ ? हम देखते हैं इतना हुआ, इतना द्रव्य सबमें से निकाला, अलग निकाला। इन परमाणुओं की स्थिति घट जायेगी उसको कहेंगे अपकर्षित द्रव्य या अपकृष्ट द्रव्य। अब इसका रिडिस्ट्रिब्यूशन होगा, फिर उन्हीं निषेकों में दिया जायेगा। यह जो सभी निषेकों में से द्रव्य निकाला वह सभी निषेकों में फिर दिया जायेगा। फिर भी किस पद्धति से दिया जायेगा ? कुछ तो नीचे उदयावली में दिया जायेगा। अब दर्शन-चारित्र के निमित्त से यहां उदयावली के ऊपर असंख्यातगुणा क्रम से दिया जाता है उसको गुणश्रेणी कहेंगे। उसमें दिया जायेगा और ऊपर के जो बाकी निषेक हैं उनमें भी दिया जायेगा। तीन जगह दिया जायेगा; अभी इनके नाम अलग-अलग हैं - नीचे के एक आवली प्रमाण निषेकों को उदयावली कहेंगे; उसके ऊपर अंतर्मुहूर्त प्रमाण यहां गुणश्रेणी होती है, वह गुणश्रेणी की बात जब आयेगी तब चर्चा करेंगे। बाकी उसके ऊपर जो निषेक हैं उसको उपरितन स्थिति कहते हैं उसमें भी वह द्रव्य दिया जायेगा। कहां कितना दिया जाता है, किस प्रपोर्शन में दिया जाता है, कितने परमाणु कहां जाते हैं उसका गणित है उसको हमें अभी नहीं पढ़ना है।

हमने देखा न, ऊपर के निषेकों के परमाणु नीचे आते हैं। सत्ता के ऊपर के कुछ निषेकों का नाश करके नीचे आना उसको कहेंगे स्थितिकांडकघात और ऊपर के निषेकों के कुछ परमाणु नीचे आना उसको कहेंगे अपकर्षण या अपकृष्टि विधान। ये दोनों ही साथ-साथ चलते हैं, दोनों ही चल रहे हैं। जिस समय स्थितिकांडकघात हो

रहा है उस समय अपकर्षण भी हो रहा है और दोनों का द्रव्य उदयावली में, गुणश्रेणी में और ऊपर सर्वत्र दिया जा रहा है। उन दोनों में डिफरन्स क्या है वह बात पृष्ठ २७ पर बता रहे हैं, सेकंड पैरेग्राफ – **कांडक विधान से तो** यानी जो स्थितिकांडकघात होता है उससे तो **स्थितिसत्त्व मूल से ही घटता है**, अनेक सागरों का स्थितिसत्त्व था उसमें मान लेते हैं अभी पल्य प्रमाण का एक कांडक हुआ। तो पल्य जितनी स्थिति एक साथ एक अंतर्मुहूर्त में घट गयी तो कहते हैं वहां स्थितिसत्त्व का घात हो गया क्योंकि उतने निषेकों का पूरा घात होकर उनके परमाणु नीचे आ गये। **क्योंकि वहां ऊपर के कितने ही निषेकों का नाश करके स्थिति घटाते हैं।** यह बात ख्याल में आयी न ? स्थितिकांडकघात में ऊपर के कितने ही निषेकों का पूरा घात होता है।

परंतु अपकृष्टि विधान से अपकृष्टि यानी अपकर्षण; अपकर्षण यानी स्थिति को घटाना, पूरे के पूरे निषेक तो नीचे नहीं आते, कुछ परमाणु नीचे आते हैं। **अपकृष्टि विधान से ऊपर के निषेकों के कुछ परमाणुओं की ही स्थिति घटाते हैं, मूल से निषेकों का नाश नहीं होता।** ये निषेक जिस पोझिशन पर हैं वहीं पर बने रहते हैं, उनमें से बहुत सारे परमाणु नीचे आते रहते हैं। इसलिये मूल से स्थितिसत्त्व का घटना नहीं होता, यह बात है।

अब आगे का विषय अलग है कि स्थिति घटते-घटते जब एक आवली प्रमाण बाकी रहेगी, लास्ट आवली; अभी सत्ता में से नाश होने का - क्षय होने का समय आ गया है, तो लास्ट एक आवली प्रमाण निषेक बाकी हैं, अभी ऊपर के बाकी सब निषेक नीचे आकर खिर गये हैं उसको कहेंगे उच्छिष्टावली। उच्छिष्टावली, उच्छिष्ट कहते हैं न ? झूठन रखते हैं न उसको क्या कहते हैं ? मराठी में तो उष्ट कहते हैं। थाली में बचता है न उसको क्या कहते हैं ? *श्रोता: झूठन। झूठन हां, मराठी में उसको कहते हैं उष्ट। श्रोता: उच्छिष्ट भोजन ?* वह अलग बात है, वह उद्दिष्ट है और यह उच्छिष्ट है। *श्रोता: वह जो डॉक्टर हुकमचंदजी साहब ने एक कहानी लिखी थी न। अच्छा-अच्छा !* उच्छिष्ट भोजीवाली की बात कर रहे हैं ? हां, वह उच्छिष्ट है। जो अंतिम एक आवली प्रमाण निषेक बाकी रहते हैं उसका नाम है उच्छिष्टावली। यह दूसरी एक आवली आ गयी न, आवली प्रमाण यह निषेक का प्रमाण है बस इतनी ही बात लेना। उसकी बात

जब आयेगी तब करेंगे। इसके गणित की टर्मिनॉलॉजि है वह हम अभी नहीं कहेंगे।

श्रोता: निषेकों का जो स्थितिकांडकघात हुआ वह उसके ऊपर के निषेकों का हुआ ? अंतिम ऊपर के निषेकों का ही घात होता है, सबसे ऊपर जो निषेक हैं उनका ही स्थितिकांडकघात होता है, बीचवाला कांडक नीचे आता है ऐसा बिलकुल नहीं है। आपने शायद ब्र. यशपालजी जैन की गुणस्थान के पुस्तक में बनाया हुआ वह चार्ट देखा है- बीचवाला कांडक नीचे आया है - ऐसा नहीं है, वह ग़लत चार्ट है। आपने प्रश्न पूछा न इसलिये बता रही हूं- कांडक सबसे ऊपर के निषेकों का होता है, वे नीचे आते हैं। बीचवाला कोई टुकड़ा नीचे नहीं आता, कभी नहीं आता।

हमने जो कुछ टर्मिनॉलॉजि सीखी है न, देखो, यहां क्या कहते हैं ? पृष्ठ ३१, दूसरा पॅरेग्राफ- **आवली मात्र काल का** यह आवली हमने समझी न ? असंख्यात समय; कितने असंख्यात हैं ? जघन्य युक्तासंख्यात समय को आवली कहते हैं। **आवली मात्र काल का या उतने ही काल संबंधी निषेकों का नाम आवली है।** उतने ही नंबर ऑफ़ निषेक, उसको क्या कहेंगे ? आवली। देखो, हम मान लेते हैं एक कटोरी में एक हजार चावल आते हैं। तो हम उसको क्या कहेंगे ? एक कटोरी चावल, हजार तो उसकी संख्या है। तो एक कटोरी चावल कहने से एक हजार संख्या आ गयी। वैसे एक आवली कहने से वहां जघन्य युक्तासंख्यात समय को भी कहेंगे; एक-एक समय में एक-एक निषेक पड़ा है तो उतने निषेकों को भी हम आवली कहेंगे। यहां बात ख्याल में आयी न ? हां, आवली मात्र काल को भी आवली कहेंगे या उतने काल संबंधी निषेकों को भी आवली कहेंगे क्योंकि एक-एक समय में एक-एक निषेक है। **वहां वर्तमान समय से लेकर आवली मात्र काल को आवली तथा उनके निषेकों को भी आवली या उदयावली कहते हैं।** उदय के समय से लेकर आवली काल तक के निषेक हैं उसको कहेंगे उदयावली। **उसके ऊपरवर्ती आवली को** यानी उदय के समय से एक आवली प्रमाण है वह उदयावली और इमीजिएट उसके ऊपर की एक आवली है, उसको **द्वितीयावली** कहेंगे। उसको द्वितीयावली कहेंगे **या** उसीका दूसरा नाम है **प्रत्यावली**।

बंध समय से लेकर आवली तक उदीरणा आदि क्रियायें नहीं होती, ना उसमें संक्रमण होता है, ना उदीरणा होती है- कुछ भी नहीं होता। बंध के समय से लेकर आवली काल तक जैसी है वैसी स्थिति बनी रहती है, उसको क्या कहेंगे हम ? **बंधावली** और उसीका दूसरा नाम है **अचलावली या आबाधावली**। आबाधावली क्यों कहा ? अभी यह मिनिमम आबाधा है, इतने काल में तो उदय नहीं होगा। आवली काल के बाद उदीरणा के द्वारा उदय चालू हो जाता है। हमने पहले ही देखा था, बंधने के बाद एक आवली काल के बाद उदीरणा होकर कर्मों का उदय शुरू हो जाता है। इसलिये उस एक आवली काल तक, जब तक उदीरणा से भी उदय नहीं होता है उसको आबाधावली कहेंगे, उसीको अचलावली कहेंगे, उसीको बंधावली कहेंगे।

द्रव्य का निक्षेपण करते हुये हमने देखा था न, ऊपर के निषेकों में से परमाणु नीचे के निषेकों में आ मिलते हैं। उनके अपने नीचे के आवली में नहीं जाते तो द्रव्य का निक्षेपण करना यानी ऊपर के निषेकों में से नीचे देना या नीचे से ऊपर देना, उसको निक्षेप कहते हैं। **जिन आवली मात्र निषेकों में निक्षेपण नहीं करते उसका नाम अतिस्थापनावली है।** सर्वत्र आवली शब्द लगाया क्योंकि उतने प्रमाण में नहीं दिया जाता। **स्थितिसत्त्व घटते हुये** यानी जब क्षपणा चालू है तो घटते-घटते-घटते एक आवली प्रमाण बाकी रहा, अवशेष रह जाये उसका नाम **उच्छिष्टावली है। जिस आवली में संक्रमण पाया जाता है वह संक्रमणावली है और उपशमन करना पाया जाता है वह उपशमावली है।** ऐसे जो प्रोसेस हैं जहां आवली प्रमाण निषेकों की बात आती है, उनको अलग-अलग नाम दिये हैं क्योंकि वे अलग-अलग जगह पाये जाते हैं। आवली तो सामान्य संज्ञा है, वहां निषेकों की संख्या को बताते हैं या काल को बताते हैं। यहां उन्होंने आवली के अलग-अलग नाम बताये हैं। सब एक साथ पढ़ने से उनका कोई अर्थ भासित नहीं होता है। जब हम अलग-अलग प्रक्रिया देखेंगे तब दुबारा इनका नाम आयेगा तो दुबारा यहां से इसका रेफरन्स ले सकते हैं।

श्रोता: आवली सर्व सारख्या असतात का ? आवली कोई भी हो उन सबकी संख्या समान है, आवली छोटी बड़ी नहीं होती। सेकंड छोटा बड़ा होता है क्या ? सेकंड तो सेकंड होता है, वैसे आवली का प्रमाण एक ही है - जघन्य युक्तासंख्यात

समय। अब सेकंड से कम्पेअर करेंगे तो सेकंड में अनेक कोड़ाकोड़ी आवली होती हैं, संख्यात हजार कोड़ाकोड़ी आवली का एक सेकंड होता है, एक सेकंड में कितने समय हुये ? असंख्यात। अभी सायन्स ने कितनी तरक्की की ? *श्रोता: नॅनो सेकंड। श्रोता: पिको सेकंड।* हां, तो वह सेकंड का कितना भाग हुआ ? संख्यातवां भाग हुआ, यहां तो असंख्यातवें भाग की बात है। अभी यह अंतःकोड़ाकोड़ी शब्द बार-बार आ रहा है उसकी भी बात करनी है। देखो यह आसान सब्जेक्ट है। **अंतः नाम अंदर का है**, अंदर यानी जिसको हम 'लेस दें' कहेंगे; इससे कम, उसको कहेंगे अंतः। **उक्त प्रमाण से कुछ कम हो वहां अंतः संज्ञा है।** जैसे अंतःकोड़ाकोड़ी - कोड़ाकोड़ी से कम उसको कहेंगे अंतःकोड़ाकोड़ी। मुहूर्त से कम उसको कहेंगे अंतर्मुहूर्त। **वहां कोड़ाकोड़ी से नीचे और कोड़ी से ऊपर**; एक करोड़ से ऊपर और करोड़ गुना करोड़ से नीचे। एक करोड़ में कितने झिरो आते हैं ? बहुत सारे व्यापारी बैठे हैं न यहां पर ! *श्रोता: सात।* हां सात आते हैं और कोड़ाकोड़ी में ? *श्रोता: चौदह।* चौदह हां, क्योंकि करोड़ गुणा करोड़ हो गये न ? एक के ऊपर चौदह झिरो।

एक करोड़ से ऊपर की संख्या और करोड़ गुणा करोड़ से नीचे की संख्या उन सभी संख्याओं को क्या कहेंगे ? **अंतःकोड़ाकोड़ी कहते हैं।** आगे सागर शब्द लगाते हैं यानी करोड़ गुणा करोड़ सागर से नीचे और एक करोड़ सागर से ऊपर यह जो काल है उसको हम अंतःकोड़ाकोड़ी सागर कहेंगे। उसके भी बहुत सारे भेद हैं - कोड़ाकोड़ी से जस्ट नीचे भी हो सकते हैं या करोड़ से जस्ट ऊपर भी हो सकते हैं। अंतःकोड़ाकोड़ी के भी बहुत भेद हो सकते हैं। **मुहूर्त से कम और आवली से अधिक उसको अंतर्मुहूर्त कहते हैं।** छोटे में छोटा अंतर्मुहूर्त कितना है ? एक आवली प्लस एक समय। आवली से ऊपर यानी वहां से अंतर्मुहूर्त चालू हो गया और कहां तक है ? मुहूर्त में एक समय कम तक। मुहूर्त होता है अड़तालीस मिनट का; अड़तालीस मिनट - दो घड़ी। अड़तालीस मिनट में एक समय कम वह सबसे बड़ा अंतर्मुहूर्त है। अंतर्मुहूर्त के अलग-अलग असंख्यात भेद होंगे। जब-जब हम दो घड़ी या अंतर्मुहूर्त कहते हैं; शास्त्र में आता है दो घड़ी अपना अनुभव करो; परंतु वह दो घड़ी यानी अंतर्मुहूर्त समझना; वह अड़तालीस मिनटवाला नहीं समझना, उसको अंतर्मुहूर्त कहते

हैं। दिवस से कुछ कम उसको अंतर्दिवस कहते हैं। लिखा है न ? यह अलग-अलग टर्मिनॉलॉजि बता रहे हैं।

एक शब्द आता है पृथक्त्व; पृथक्त्व वर्ष कहेंगे, पृथक्त्व सागर कहेंगे। पृथक्त्व का अर्थ होता है कुछ यानी अनेक। कहीं-कहीं **तीन से ऊपर और नौ से नीचे उसको भी पृथक्त्व कहेंगे** या कहीं पृथक्त्व से उसकी संख्या बता दी जाती है। **अथवा कहीं-कहीं बहुत हजारों का भी नाम पृथक्त्व है**, अब जहां पृथक्त्व का जो अर्थ होता है उस विषय में बतायेंगे कि कितना होता है, **वह यथासंभव जानना**। अन्य भी कुछ ऐसे नाम आते हैं। अभी हमने निषेक रचना देखी, नीचे के निषेक बड़े हैं और ऊपर के क्रम से कम होते चले जाते हैं, ऐसे टेपरिंग होते हैं, तो इसको गाय की पूंछ की उपमा दी और उसको गोपुच्छ कहते हैं। इसको कहेंगे गोपुच्छ रचना होती है। गाय की पूंछ ऊपर चौड़ी और नीचे कम होती है परंतु यहां निषेकरचना नीचे ज्यादा चौड़ी है और ऊपर कम चौड़ी है। ऊपर के निषेकों में परमाणुओं की संख्या घटती चली जाती है तो उसको कहेंगे गोपुच्छ। जितना कम होता है उसका नाम है चय। हर एक निषेक में जितना फिक्स्ड डिफरन्स है उसको चय या गोपुच्छ विशेष भी कहेंगे। *श्रोता: गोपुच्छ विशेष ?* हां, गोपुच्छ विशेष।

अब हम यहां पढ़ेंगे, **दृष्टांत की अपेक्षा संज्ञा कहते हैं**। ये जो नाम पड़े हैं वे दृष्टांत के तौर पर पड़े हैं; **जैसे गाय की पूंछ क्रम से घटती होती है, वैसे यहां एक-एक चय घटते क्रम से निषेक पाये जाते हैं**, चय का अर्थ होता है डिफरन्स। पहला निषेक बहुत बड़ा है, दूसरे में परमाणुओं की संख्या थोड़ी कम है; थोड़ी कम यानी जो डिफरन्स है। दूसरे और तीसरे निषेक में भी वही डिफरन्स है। तीसरे-चौथे में भी वही है। निषेक एक-एक चय से घटते क्रम से हैं। उसको चय कहेंगे, उसीका दूसरा नाम विशेष भी है। इस विशेष से घटते क्रम से निषेक पाये जाते हैं। **वहां गोपुच्छ संज्ञा है**। अब यह आगे की बात कुछ यहां मायने नहीं रखती। द्रव्य देना यानी जो द्रव्य ऊपर से नीचे आता है, कुछ गुणश्रेणी में दिया जाता है, कुछ कहीं अन्यत्र दिया जाता है, हीनाधिक दिया जाता है तो उसके अलग-अलग नाम है। जब उसका प्रकरण आयेगा तभी उसको पढ़ना अच्छा है। आगे उसके गणित वगैरह बताये हैं। हम केवल यहां

संज्ञायें देख रहे हैं और आगे जाकर जब जो विषय आयेगा तब हम उसको पढ़ेंगे।

देखो भूमिका का लास्ट प्रकरण ३९ पेज पर नीचे से दूसरा पैरेग्राफ- यहां और भी बहुत सारी टर्मिनॉलॉजि समझायी है, जब-जब उसका प्रकरण आयेगा तब हम यहां से निकालकर देखेंगे। **इस प्रकार यहां द्रव्य देना आदि में विधान कहा है।** विधान यानी उसका प्रोसेस। द्रव्य देना यानी जैसे अपकर्षित किया हुआ द्रव्य कहां दिया जाता है ? उदयावली में दिया जाता है, गुणश्रेणी में दिया जाता है, ऊपर में दिया जाता है। यह द्रव्य देने का विधान है। स्थितिकांडकघात हुआ उसका द्रव्य कहां-कहां दिया गया ? उसको द्रव्य देने का विधान कहते हैं। द्रव्य यानी यहां परमाणु; परमाणु कहां कितने मिलाये जाते हैं उसको कहेंगे द्रव्य देने का विधान। **यहां जो यह कथन किया है उसको अच्छी तरह से याद रखना।** यह भूमिका है, हमें याद में रहनेवाली नहीं है, विषय आने पर हम इसे निकाल-निकालकर देख सकते हैं। **इस कथन का स्मरण होगा तो आगे ग्रंथ में अच्छी तरह से प्रवेश होगा और अर्थ को अच्छी तरह से (स्पष्ट) पहचानोगे।**

पं. टोडरमलजी ने मेहरबानी की है ग्रंथ में आनेवाले अनेक नये शब्दों को भूमिका में अलग से थोड़ा समझाया है। क्योंकि जहां वह विषय आयेगा वहां इतना ही कहेंगे स्थितिकांडकघात होता है; तो स्थितिकांडकघात होता है यानी क्या होता है ? उसको पहले यहां भूमिका में समझाया है। हम जब आगे पढ़ेंगे तो दुबारा समझेंगे हां, दुबारा इसको याद करेंगे। **इसलिये पहले यह कुछ कथन किया है।** पं. टोडरमलजी साहब की यही विशेषता है - पहले तो सूचनिका लिखते हैं कि कौनसे अधिकार में क्या बातें आती हैं। उसको बिलकुल शॉर्ट में सब कुछ लिख देते हैं। केवल उसको भी पढ़ेंगे तो ग्रंथ में कहां क्या मॉटर है वह सहजरूप से हमें ढूंढ़ने में आसान हो जाता है। फिर उन्होंने भूमिका में आगे आनेवाले सभी शब्दों की भी पहचान करायी। **जिसका यहां व्याख्यान किया है उसका प्रयोजन** यानी जो कुछ बात बतायेंगे **ग्रंथ में जहां आता है वहां कथन किया उसके अनुसार स्वरूप जानना।** अभी जो बताया है जब-जब वहां ग्रंथ में बात आयेगी तब वैसा उसका स्वरूप समझ लेना। **सर्व व्याख्यान तो आगे ग्रंथ में होगा ही, बाकी डिटेल् वर्णन तो ग्रंथ में आगे चलेगा ही इसतरह पीठबंध**

किया। इसको पीठबंध कहते हैं; भूमिका कह रहे हैं यानी इंट्रोडक्शनरूप से उन्होंने कुछ यहां संज्ञायें बतायी। अब कर्तव्य का प्रारंभ करते हैं।

श्रोता: अभी तक क्या किया ? अभी तक क्या किया ? आपको समझाया थोड़ा-बहुत पहचान करायी। यहां ग्रंथ पूरा होने के बाद उन्होंने बताया है कि मैं तो कृतकृत्य हो गया ! पं. टोडरमलजी बताते हैं लब्धिसार के अंत में। क्यों ? निकालो-निकालो मैं पढ़कर बताऊंगी संदृष्टि अधिकार जहां समाप्त होता है। पृष्ठ ६५६ निकालना, देखो शुरू में- **इति क्षपणासार अर्थ गर्भित लब्धिसार के अर्थों की संदृष्टियों का वर्णन संपूर्ण हुआ, इसके संपूर्ण होने पर यह ग्रंथ समाप्त हुआ।** यह ग्रंथ यानी सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका ग्रंथ जिसमें जीवकाण्ड है, उसकी अर्थसंदृष्टि है; कर्मकाण्ड है, उसकी अर्थसंदृष्टि है और लब्धिसार-क्षपणासार है, उसकी अर्थसंदृष्टि है - तीनों को मिलकर यहां सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका कहा है। कहते हैं कि यहां आकर यह ग्रंथ संपूर्ण होता है, ग्रंथ समाप्त होने पर प्रारंभ किये हुये कार्य की सिद्धि होने से हम स्वयं को कृतकृत्य मानकर इस कार्य करने की आकुलता रहित होकर सुखी हुये। यह शुभभाव भी आकुलतामय है और कहते हैं आकुलता रहित हो गये अभी यह ग्रंथ समाप्त हुआ। **इसके प्रसाद से सर्व आकुलता दूर होकर हमारे शीघ्र ही स्वात्मज सिद्धि जनित परमानंद की प्राप्ति हो।**

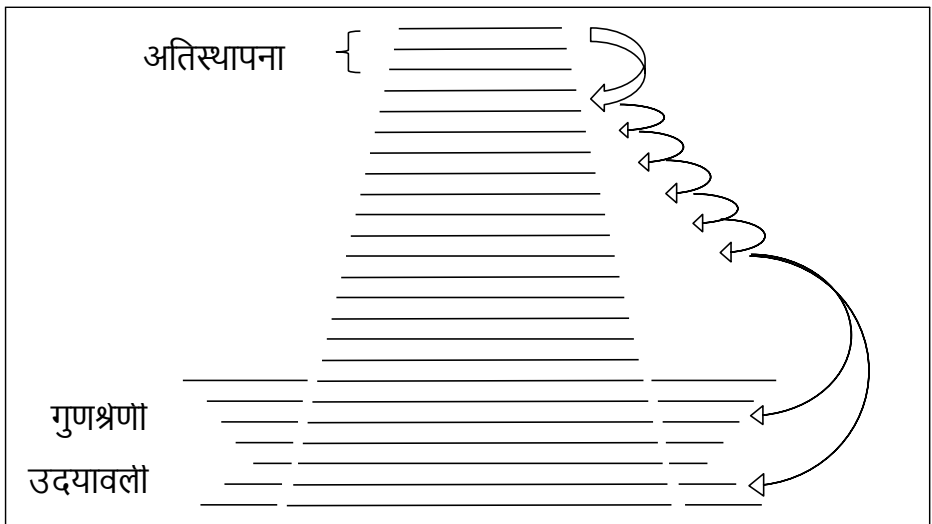
कहते हैं- आपको हो या नहीं हो, हमें हो यह स्वयं अपने लिये बता रहे हैं। यही बात उन्होंने ३९ पेज पर बतायी हैं। आगे चामुंडराय नामक राजा के प्रश्न के कारण कषायप्राभृत जिसका द्वितीय नाम जयधवल है उसके पंद्रह अधिकार में से पश्चिम स्कंध नामक पंद्रहवें अधिकार के अर्थ को ग्रहण करके श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती ने लब्धिसार नामक ग्रंथ की रचना की; उसके सूत्रों का संक्षेप मात्र अर्थ लिखते हैं। ग्रंथ में क्या आनेवाला है उसकी सूचनारूप उन्होंने बताया कि यहां से आगे प्राकृत गाथाबद्ध सूत्रों की रचना हुयी है उसके अर्थस्वरूप यहां लब्धिसार ग्रंथ प्रारंभ होगा। हम भी उसकी चर्चा क्रम से करेंगे।

बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

६. भूमिका - कांडकघात संबंधी संज्ञायें

आचार्य श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती ने इस लब्धिसार ग्रंथ की रचना की है। उसीके आधार से पं. टोडरमलजी ने सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका लब्धिसार-क्षपणासार भाषाटीका द्वंद्वारी भाषा में लिखी है जिसका हिंदी अनुवाद आपके हाथ में है। हमने अभी तक लब्धिसार की भूमिका संबंधी कुछ बातें सीखी, कल रात को बहुत हेवी हो गया। कुछ समझ में नहीं आया, थोड़ा दुबारा देखकर आगे बढ़ेंगे हम।

स्थितिसत्त्व जो कम होता है वह दो पद्धति से होता है। स्थिति का घटना- कुछ परमाणुओं की स्थिति घटना या सत्त्व की जितनी स्थिति है उसका घटना। एक तो स्थितिकांडकघात होता है और दूसरी कौनसी प्रोसेस है ? दूसरा कौनसा विधान देखा ? अपकृष्टि विधान होता है। दो पद्धति से स्थिति घटती है। जहां अपकर्षण होता है वहां निषेकों में से कुछ परमाणुओं का ही अपकर्षण होता है, निषेक अपनी जगह बने रहते हैं। परंतु स्थितिकांडकघात होता है तो ऊपर के कितने ही निषेकों का घात होता है।



अब हम यहां बोर्ड पर ऊपर के निषेकों की बात देखेंगे। यह जो ऐसा त्रिकोण बताया है न ? वह सत्ता के इतने सारे निषेकों की ओरिजिनल रचना है, उसको गोपुच्छ कहा था। ये सत्तावाले निषेक हैं, उनकी ऐसी रचना होती है। उनमें से ऊपर के कितने

ही निषेकों का घात करके वे नीचे आयेंगे, यहां तो एक ही निषेक के परमाणु कहां कहां दिये जाते हैं वह बताया है। जब स्थितिकांडकघात होता है तो ऊपर से लेकर कितनी ही स्थितियों का यानी निषेकों का घात होता है। पहले समय में कुछ परमाणु नीचे आयेंगे, दूसरे समय में कुछ आयेंगे, तीसरे समय में कुछ आयेंगे; एक अंतर्मुहूर्त में इन सभी निषेकों का घात होकर उन निषेकों के सभी परमाणु नीचे के निषेकों में आ मिलेंगे। किसी भी एक निषेक के परमाणु कहां-कहां जाते हैं ? तो अपने नीचे आवली प्रमाण निषेक छोड़कर उनके नीचे सर्वत्र जाते हैं। जिन निषेकों में वह द्रव्य नहीं दिया जाता उनको कहेंगे अतिस्थापना, उसका प्रमाण आवली मात्र होता है। वहां उसको हम अतिस्थापनावली कहेंगे। परमाणुओं की स्थिति घटकर वे नीचे सर्वत्र दिये जाते हैं। सामान्य अपकर्षण में हर एक निषेक के परमाणु अपने-अपने नीचे आवली प्रमाण निषेकों को छोड़कर, उनको लांघकर नीचे उदय के समय से लेकर सर्वत्र दिये जाते हैं। यह सामान्य अपकर्षण हुआ।

जब कांडकघात होता है तब जितना बड़ा कांडक ग्रहण किया है उतनी ऐसी फालि निकाल लेंगे पूरी। ऐसा ऊपर से गन्ना कैसे छिलते हैं ? एक-एक छिलका निकालते हैं, ऐसे थोड़े-थोड़े परमाणु कांडक के सभी निषेकों से निकलेंगे और नीचे आयेंगे; दूसरे समय में निकलेंगे वे नीचे आयेंगे; तीसरे समय में निकलेंगे वे नीचे आयेंगे और अंतिम समय में निकलेंगे तब इतने सारे निषेकों का अभाव होकर वे परमाणु नीचे सर्वत्र दिये जायेंगे। नीचे दिये जाते हैं तो वहां कैसी रचना होती है ? एक तो उदयावली में दिये जाते हैं। नीचे के आवली प्रमाण निषेकों को उदयावली कहते हैं। उसमें पहले निषेक में अधिक, दूसरे में थोड़े कम, तीसरे में थोड़े कम इसतरह उदयावली में विशेष हीन क्रम से दिया जाता है इसीको कहेंगे चयहीन क्रम से। चय यानी एक फिक्स डिफरन्स। उसी डिफरन्स से दूसरे में उतना कम, तीसरे में उतना कम - इसतरह से दिया जाता है। उदयावली में हीन क्रमरूप से दिया जाता है।

उदयावली के ऊपर अंतर्मुहूर्त प्रमाण निषेकों में पहले निषेक में जितना द्रव्य दिया, उससे असंख्यातगुणा दूसरे निषेक में, उससे असंख्यातगुणा तीसरे निषेक में, उससे असंख्यातगुणा चौथे निषेक में, इसतरह असंख्यातगुणा क्रमरूप से दिया जाता

है इसीको कहते हैं गुणश्रेणी। ऐसी गुणश्रेणी मिथ्यादृष्टि जीव को औपशमिक सम्यक्त्व के पहले करणलब्धि में होती है, अन्यथा मिथ्यादृष्टि को कहीं पर नहीं होगी। गुणश्रेणी के ऊपर जो द्रव्य दिया जाता है वह हीन क्रमरूप से ऊपर के अंतिम निषेक तक दिया जायेगा। उदयावली में, गुणश्रेणी में और इसको कहेंगे उपरितन स्थिति में या ऊपरवर्ती निषेकों में दिया जायेगा। अब वह कहां कितने प्रमाण में दिया जाता है ? उसके भागहार का क्या प्रमाण है ? उसकी बात अभी हम छोड़ देंगे। ये सभी निषेकों का जितना द्रव्य का प्रमाण है; द्रव्य यानी परमाणु; उसको विशिष्ट संख्या से भाग देकर एकभाग परमाणु बाहर निकले और उनको फिर उन्हीं निषेकों में दिया गया। हम कहेंगे उनका रिडिस्ट्रिब्यूशन हुआ, उसीमें से निकला है और उसीमें दिया गया। केवल नीचे के उदयावली मात्र निषेकों में से द्रव्य नहीं निकलता। ऊपर के सर्व निषेकों में से निकलता है इसको कहेंगे अपकर्षण होता है। यह अपकर्षण किया हुआ द्रव्य उदय के समय से लेकर सर्वत्र दिया जाता है। कहां नहीं दिया जाता है ? अपने-अपने निषेक के नीचे एक आवली प्रमाण निषेकों में नहीं दिया जाता, उसको कहेंगे अतिस्थापनावली।

आपको लब्धिसार भूमिका में से ही और एक बात मैं बताना चाहती हूं क्योंकि ये बातें बार-बार आगे आनेवाली हैं। पृष्ठ २४ नीचे का पॅरेग्राफ- **अब यहां संज्ञायें कहते हैं।** संज्ञायें यानी कुछ पारिभाषिक शब्द-नाम बतायेंगे यहां पर। **इसतरह ऊपर के निषेकों को क्रम से नीचे के निषेकोंरूप परिणमाकर स्थिति का घटाना, उसका नाम स्थितिकांडक या स्थितिखंड है।** आपके पास जो ११ नंबर का चार्ट है उसमें देखना- ऊपर का एक बड़ा आयाम जो लिया है, उसे कांडक आयाम कहेंगे; आयाम यानी लंबाई। उसमें कितने निषेक हैं ? असंख्यात निषेकों को एक साथ लिया जाता है और उन सभी निषेकों का पूरा घात होगा। उन निषेकों के सारे परमाणु एक अंतर्मुहूर्त में नीचे आयेंगे तो यहां ऊपर जो निषेक हैं उनको हमने कांडक आयाम नाम दिया है। उसके परमाणु नीचे कहां कहां जाते हैं ? उदयावली में जाते हैं, गुणश्रेणी में जाते हैं और उपरितन स्थिति में भी जाते हैं; तीनों जगह जाते हैं। कांडकघात के द्वारा क्या होता है ? स्थितिकांडकघात के द्वारा अनेक निषेकों का घात हो जाता है और स्थितिसत्त्व घटता है। इसीको कहते हैं स्थितिकांडकघात या स्थितिखण्डोत्करण।

उसके लिये जितना काल लगता है उसको कहेंगे स्थितिकांडकोत्करण काल। जितनी कांडक की लंबाई है, जितने निषेकों का घात हो जायेगा उसको कहेंगे स्थितिकांडक आयाम; आयाम यानी उसकी लंबाई। जितने निषेकों को एकसाथ घात करके नीचे लायेंगे उसको कहेंगे स्थितिकांडक आयाम। असंख्यात वर्षों के जितने समय हैं उतना एक-एक स्थितिकांडक आयाम है और उसके लिये काल कितना लगता है ? एक छोटा अंतर्मुहूर्त। यानी एक-एक अंतर्मुहूर्त में स्थिति इतनी-इतनी घटती चली जाती है।

नीचे के पॅरेग्राफ की तीसरी लाइन - **एक कांडक में निषेकों का नाश करके जितनी स्थिति घटायी उसके प्रमाण का नाम स्थितिकांडक आयाम है; जैसे दृष्टांत में आठ समय।** ऊपर दूसरे पॅरेग्राफ में दृष्टांत देख लेते हैं - **स्थितिसत्त्व अड़तालीस समय मात्र था।** इतना कम कभी नहीं होता, हमें समझाने के लिये इतना कम लेकर समझा रहे हैं। **उनके अड़तालीस ही निषेक थे और इन निषेकों के २५००० परमाणु थे।** जैसे हमने यहां लिखे हैं। यहां के परमाणु कितने थे ? २५००० थे, मान लेते हैं ४८ निषेक थे। **उनमें ऊपर के ८ निषेकों का नाश करना है** यानी कांडकरूप से ८ निषेकों का यहां घात करेंगे **जिनमें १००० परमाणु हैं। उनको अवशेष रहे ४० निषेकों में ऊपर के २ निषेक छोड़कर** ये दो निषेक क्यों छोड़ेंगे ? अतिस्थापना के लिये। ऊपर के २ निषेक छोड़कर **नीचे के ३८ निषेकों में मिलाते हैं। वहां उन १००० परमाणुओं में से कितने ही परमाणु पहले समय में मिलाते हैं,** पहले समय में का अर्थ होता है कितने ही परमाणु पहले समय में नीचे आये - पहली फालि। **कितने ही दूसरे समय में** हम मान लेते हैं चार समयों में स्थितिकांडकघात पूरा होगा। अंतर्मुहूर्त के बदले में हमने क्या समझ लिया ? चार समय। पहले समय में कुछ परमाणु नीचे आते हैं; हजार के हजार परमाणु एक ही समय में नीचे नहीं आयेंगे। पहले समय में थोड़े आयेंगे, दूसरे समय में थोड़े आयेंगे, तीसरे समय में थोड़े आयेंगे और चौथे समय में बाकी के सभी आयेंगे। अभी हमने ८ निषेक मान लिये हैं। उन ८ निषेकों का नाश होगा, अभाव हो जायेगा।

इसतरह चार समय तक मिलाते हैं, वहां चौथे समय में अवशेष सर्व परमाणुओं को उन ३८ निषेकों में मिलाने पर उन ८ निषेकों का अभाव होता है।

कांडकघात किसे कहना, उसकी बात चल रही है। **उनका अभाव होने पर ४८ समयों का स्थितिसत्त्व था, वह ४० समय का ही रहता है। ऐसे ही यथासंभव प्रमाण जानकर दार्ष्टांत में विधान जानना।** दार्ष्टांत यानी यथार्थ में। यह दृष्टांत दिया है, दार्ष्टांत यानी जिसके लिये यह दृष्टांत दिया था उसको दार्ष्टांत कहते हैं; अक्चुअल में - यथार्थ में। कितने ही असंख्यात निषेकों का घात होता है, उसको समझना चाहिये।

श्रोता: पहला समय उदयावली में आयेगा ? उदयरूप पहले निषेक से लेकर सर्वत्र दिया जायेगा। परंतु यह कार्य होने के लिये चार समय लगे। पहले समय में हजार में से कुछ परमाणु नीचे आये। मान लेते हैं कि २० आये, दूसरे समय में ८० आये, तीसरे समय में और ज्यादा और अंतिम समय में बहुत सारे आये; वह भी असंख्यातगुणा, असंख्यातगुणा क्रम से। ये सभी बातें यहां नहीं लिखेंगे यह तो बिलकुल भूमिका की बात है। अंट अ टाइम यहां बहुत सारे प्रोसेसेस् हो रहे हैं - स्थितिकांडकघात भी हो रहा है, अपकर्षण भी हो रहा है। यहां ४८ निषेक कायम रखे हैं, चार समय में नीचे से ४ निषेक गल जायेंगे। ये सभी बातें एक साथ समझाएंगे तो कन्फ्यूजन बढ़ जायेगा इसलिये इतना ही समझाया है। जब हम आगे चलेंगे और ज्यादा विस्तार से जानने लगेंगे तो वह बात हमारे समझ में आ जायेगी।

श्रोता: चालीसवें और उनतालीसवें निषेक में क्यों नहीं दिया ? उसको कहते हैं अतिस्थापना। कल बात हुयी थी न ? अतिस्थापना यानी जो अपने-अपने नीचे के दो निषेकों में वहां नहीं दिया जायेगा, तो उन दो निषेकों को छोड़कर जिसको हम अतिस्थापना कहते हैं, उसके नीचे दिये जायेंगे। *श्रोता: अतिस्थापना केवल कांडकघात में होती है ?* नहीं-नहीं, सामान्य में होती है; अपने-अपने निषेक के नीचे अतिस्थापना होती है। उत्कर्षण में अपने निषेक के ऊपर होती है और अपकर्षण में नीचे होती है। अपकर्षण में एक निषेक की बात हम देखेंगे। किसी निषेक के परमाणु अपकर्षित होकर नीचे आते हैं तो नीचे एक आवली प्रमाण निषेकों को लांघकर उदय के समय से बाकी सर्वत्र दिये जाते हैं। जिनमें नहीं दिया जाता है उनको कहते हैं अतिस्थापना, ऐसा ही स्वभाव है। उसका कारण ढूंढने की कोशिश नहीं करना, ये बातें सहज होती हैं। यहां दर्शनलब्धि और चारित्रलब्धि से क्या-क्या होता है उसकी बात चल रही है।

दर्शनलब्धि और चारित्र्यलब्धि कैसे प्राप्त होगी वह अभी के प्रवचन में सुना कि नहीं सुना ? पंडितजी साहब ने बहुत अच्छा समझाया अभी। अपने परमपारिणामिक भाव के आश्रय से। उससे क्या लाभ होगा ? कर्मों में भी कुछ उथल-पुथल होगी क्या ? आत्मा में स्थिर रहने से कुछ होगा ? कुछ करने से कुछ होगा, ऐसा लगता है कि नहीं ? यह तत्त्वविचार से और आत्मा में एकाग्रता करने से ही सब कुछ होगा। सब कुछ होगा तो यह क्यों जानना ? यह इसलिये जानना कि आपको जितना भरोसा एक क्रोसिन की गोली पर है - बुखार की गोली खायी, कितनी देर में बुखार उतर जायेगा भाई ? पंद्रह मिनट - आधा घंटा मॅक्ज़िमम, है न ! कितना विश्वास है ? हंड्रेड पर्सेंट। क्या ऐसा हंड्रेड पर्सेंट विश्वास है कि हम आत्मा में स्थिर हो जायेंगे, तत्त्वों का विचार करेंगे तो अपना कार्य होगा ? नहीं ! कुछ तो करना पड़ेगा ऐसा लगता है न अंदर से ? एक पॅथॉलॉजिस्ट की रिपोर्ट पर जितना भरोसा है, क्या जिनवाणी पर इतना विश्वास है ? छाती ठोककर बताना। जब रिपोर्ट आता है, ब्लड में इतनी शुगर है; तब जैसा डॉक्टर ने बताना क्या खाना, क्या नहीं, बिलकुल वैसा सब चलेगा। परंतु यहां तो भरोसा नहीं, बिलकुल नहीं है और हम तो कहते हैं हमको मोक्ष चाहिये ! मैं पूछती हूं, करणानुयोग पढ़े बिना मोक्ष होगा कि नहीं होगा ? कैसे होगा ? सूत्र क्या है ? 'शुक्ले चाद्ये पूर्वविदः' शुक्लध्यान किसके होता है ? पूर्वविदों को ही होता है। श्रेणी कौन चढ़ सकते हैं ? जिसके १० पूर्व है या १४ पूर्वों का ज्ञान है, उसके बिना कोई श्रेणी नहीं चढ़ता।

हमने शिवभूति मुनि को हमारा आदर्श मानकर रखा है। उनका अधिक अभ्यास नहीं था, उनको केवलज्ञान हुआ तो हमें क्यों नहीं होगा ? केवल शास्त्राभ्यास करते समय उनकी याद आती है, बाकी किसीमें नहीं। हमने देखा था कि जो मुनिराज श्रेणी चढ़कर ऊपर के गुणस्थानों में जाते हैं, आत्मा में स्थिर रहते हैं तो सभी अशुभ कर्मों का अनुभाग प्रतिसमय अनंतगुणा घटता है। ज्ञानावरण का भी अनुभाग इतना घटता है कि उनके भी वह सारा ज्ञान प्रकट हो जाता है। हां, शुरू में नहीं था, बाद में हुआ है। जैसे हम कहते हैं- अंजन चोर को मोक्ष हुआ कि नहीं हुआ ? तो चोरी करते-करते हुआ क्या ? वह पूर्व में कौन था उसको बताने के लिये यह बात आती है। इनको भी ज्ञान में यह सब इतनी स्पष्टता हुयी थी। जिसको इतनी स्पष्टता नहीं होती है उसके

श्रेणी का कार्य भी नहीं होगा। आज नहीं कल कभी तो पढ़ना पड़ेगा और जितना पढ़ेंगे उतनी क्लॉरिटी बढ़ेगी। यह ज्ञान में जितनी निर्मलता, स्पष्टता आयेगी उतना हमें आगे बढ़ने का चान्स अधिक है। ज्ञान से ही सब कार्य होता है।

हमने दृष्टांत देख लिया। अभी नीचे के पॅरेग्राफ की चौथी लाइन देख रहे हैं- **नाश करने योग्य निषेकों का जो सर्व द्रव्य, उसका नाम कांडकद्रव्य है।** कांडकद्रव्य यानी कांडक में जितने हमने निषेक पकड़े; कितने निषेक हैं ? ८ और उसमें द्रव्य कितना था ? १००० परमाणु। दृष्टांत में १०००। इस द्रव्य को अवशेष स्थिति के निषेकों में मिलाते समय, आवली मात्र निषेकों में नहीं मिलाया, दो निषेक छोड़े थे आवली के लिये, उसका नाम अतिस्थापनावली है; जैसे दृष्टांत में दो निषेक। इनको छोड़कर, अवशेष स्थिति के निषेकों में उस कांडकद्रव्य को मिलाना उसका नाम कांडकोत्करण या कांडकघात है। सभी संज्ञायें यानी नाम-शब्द क्या-क्या आनेवाले हैं, उसकी यहां चर्चा की।

एक कांडक का उत्करण, उत्करण कहो उत्कीर्ण कहो एक ही बात है। उत्करण यानी कांडक का घात करने का जो प्रोसेस है, वह होने के लिये कितना काल लगता है ? **अंतर्मुहूर्त काल में पूर्ण होता है** यह अंतर्मुहूर्त का प्रमाण यथायोग्य समझना। जितना जहां पर लगता है उसे कांडकोत्करण काल कहते हैं, जैसे दृष्टांत में चार समय। इस काल के प्रथम समय में, उस कांडकद्रव्य का ग्रहण करके पूरा कांडकद्रव्य ग्रहण नहीं किया, उसमें से कुछ परमाणु नीचे आयेंगे; **जितने परमाणु अवशेष निषेकों में मिलाते हैं, उसका नाम प्रथम फालि है;** यह भी कल हमने बात देखी थी। हजार परमाणु में से कुछ परमाणु पहले समय में नीचे आयेंगे उसका नाम पहली फालि, दूसरे समय में जितने आयेंगे वह दूसरी फालि, तीसरे समय में जितने आयेंगे वह तीसरी फालि, अभी यहां तो हमने ४ ही समय माने हैं, तो चार फालि होगी। तो चौथी फालि को यहां हम अंतिम फालि कहेंगे। ८ निषेकों का जो घात करना है उसकी बात है, टोटल एक हजार परमाणु चार समयों में नीचे आयेंगे। वे चार ग्रुप में, चार लॉट में नीचे आयेंगे। पहली फालि, दूसरी फालि, तीसरी फालि, चौथी फालि, इसतरह से नीचे आयेंगे।

द्वितीय समय में मिलाते हैं उसका नाम द्वितीय फालि है। इसी क्रम से अंत समय में मिलाते हैं, उसका नाम चरम फालि है चरम यानी अंतिम। अंत समय के पूर्व समय इसीको कहते हैं उपांत्य समय में मिलाते हैं, उसका नाम द्विचरम फालि। यहां चार ही हैं, तो हम गिन सकते हैं - एक, दो, तीन, चार। अंतर्मुहूर्त के असंख्यात समय हैं, तो उसमें हम कैसे गिनेंगे ? हम कहेंगे पहला, दूसरा, तीसरा या अंतिम या उपांत्य; उपांत्य समझते हैं न ? द्विचरम-सेकंड लास्ट। **इसतरह एक कांडक समाप्त होने पर द्वितीय कांडक प्रारंभ होता है।** यह गाड़ी चलती रहती है। जहां-जहां ये तीन करणादि परिणाम होते हैं; अपूर्वकरण के परिणाम, अनिवृत्तिकरण के परिणाम, वहां-वहां ऐसे स्थितिकांडकघात होते रहते हैं। सम्यग्दर्शन और सम्यक् चारित्ररूप जो लब्धि हैं, उनके कारण कर्मों में ये बातें सहजरूप से बनती रहती हैं। जीव को उसमें कुछ नहीं देखना है, कुछ नहीं करना है, बस यह ऐसा होता ही है। ये केवलज्ञानियों ने जानकर बतायी हुयी बातें हैं।

ऐसे ही अनेक कांडक होने पर एक कांडक हुआ, फिर दूसरा हुआ, फिर तीसरा हुआ, तो क्या होता है ? स्थितिसत्त्व इतना अधिक था, वह बहुत जल्दी-जल्दी कट हो जाता है, उसमें घट आ जाती है। **ऐसे ही अनेक कांडक होने पर अल्प स्थितिसत्त्व अवशेष रह जाता है, तब कांडक क्रिया नहीं होती।** तो बाद में क्या होता है ? **एक-एक समय व्यतीत होने पर एक-एक समय क्रम से घटकर उस अवशेष स्थिति का नाश होता है। इसतरह कांडक विधान कहा।** यह कांडक का विधान हुआ। कल हमने देखा था दो विधान होते हैं। ऊपर के परमाणु नीचे आने में एक तो स्थितिकांडकघात होता है और दूसरा अपकृष्टि विधान होता है। उसको भी दुबारा पढ़कर आगे बढ़ेंगे क्योंकि यह समझ में नहीं आता है न ! कल बहुत लोगों ने बताया था कि बात समझ में नहीं आयी इसलिये उसको रिपीट कर रहे हैं। *श्रोता: तेरहवें गुणस्थान में भी होता है स्थितिकांडकघात ?* अभी उसकी बात मत निकालो कि आगे क्या होता है। *श्रोता: स्थितिबंध नहीं होता।* स्थितिबंध की बात नहीं कर रहे हैं, वे स्थितिकांडकघात की बात कर रहे हैं। समुद्घात अवस्था में जो स्थिति का घटना होता है वह एक-एक समय में घटता है। वहां यह नियम लागू नहीं करना। वहां क्या होता है

उसका विषय तेरहवें गुणस्थान में देखेंगे। अभी सामान्य टर्मिनॉलॉजि -संज्ञा देख रहे हैं।

अभी अपकृष्टि विधान यानी अपकर्षण होता है, ऊपर के निषेकों के कुछ परमाणु नीचे आते हैं। देखो, **विवक्षित कर्म प्रकृति के सर्व निषेकों संबंधी सर्व परमाणुओं** यानी अभी हमने देखा था न ? टोटल २५००० परमाणु सत्ता में थे। ऐसे ही जितने टोटल हैं उनको लेना है। उसको **अपकर्षण भागहार का भाग देकर** एक विशिष्ट संख्या से भाग देकर **एकभाग मात्र परमाणु ग्रहण किये**, किसलिये ? नीचे लाने के लिये; **उसका नाम अपकृष्ट द्रव्य है**। अपकर्षण होना यानी उसकी स्थिति घटकर नीचे आना। **उस अपकृष्ट द्रव्य में से कितने ही परमाणु तो उदयावली में मिलाते हैं**, हमने यहां देखा है प्रत्येक निषेक में से यह अपकृष्ट द्रव्य; कुछ-कुछ द्रव्य; नीचे आयेगा, सभी निषेकों में से आयेगा। उसे उदयावली में मिलाते हैं, **कितने ही परमाणु गुणश्रेणी आयाम में मिलाते हैं और अवशेष परमाणु उपरितन स्थिति में मिलाते हैं**। यहां नहीं लिखा है, परंतु यहां भी विशेष हीन, विशेष हीन क्रम से ऊपर भी मिलाये जाते हैं। **वहां वर्तमान समय से लेकर आवली मात्र समय संबंधी जो निषेक उसका नाम उदयावली है**। इसकी बात भी हमने कल देखी थी।

उनमें उदयावली में देने योग्य द्रव्य को निषेक-निषेक प्रति यानी प्रति निषेक **एक-एक चयहीन क्रम से मिलाते हैं**। चय यानी डिफरन्स। पहले जितने मिलाये हैं, दूसरे समय में थोड़े कम, तीसरे समय उससे भी थोड़े कम। यह जो थोड़े कम का जो प्रमाण है, कितना कम मिलाया ? उसको कहेंगे चय; उसको एक चय कहेंगे। **उन आवली मात्र निषेकों के ऊपरवर्ती यथासंभव अंतर्मुहूर्त के समय संबंधी निषेकों का नाम गुणश्रेणी आयाम है**। यथासंभव क्यों कहा ? यह गुणश्रेणी आयाम भी छोटा-बड़ा होता है। मालूम है कि नहीं मालूम ? अरे तत्त्वार्थसूत्र पढ़नेवाले हैं हम सब ! बोलो कुसुमबेन, गुणश्रेणी आयाम छोटा-बड़ा होता है कि नहीं होता ? असंख्यात गुणश्रेणी निर्जरा के स्थान हमने तत्त्वार्थसूत्र में पढ़े हैं। वहां १० स्थान बताये न ? १० स्थान हैं, आखरीवाले स्थान के दो भेद करेंगे तो ११ स्थान हो जाते हैं। याद है कि नहीं है ? हां बोलो कौनसे हैं ? नौवें अधिकार का ४५वां सूत्र होगा।

देखो हम पढ़ते हैं मगर हमें उसका अर्थ मालूम नहीं है न ! निर्जरा में हीनाधिकता कहां होती है, कहां अधिक-अधिक निर्जरा होती है ऐसे स्थान तत्त्वार्थसूत्र में बताये हैं। हम पढ़ेंगे- अध्याय नौवां, सूत्र ४५। **सम्यग्दृष्टि, श्रावक, सम्यग्दृष्टि** यानी औपशमिक सम्यग्दृष्टि, श्रावक यानी पांचवां गुणस्थान प्राप्त करनेवाला, **विरत** यानी संयमी यानी मुनि अवस्था प्राप्त करनेवाले। यह आखिर में जाकर बतायेंगे कि जो हम एक-एक नाम ले रहे हैं; उनमें असंख्यातगुणा क्रम से निर्जरा होती है। एक बात है गुणश्रेणी में कितना द्रव्य दिया जाता है, आगे कहेंगे गुणश्रेणी का आयाम यानी लंबाई कितनी है ? जहां गुणश्रेणी निर्जरा अधिक वहां गुणश्रेणी की लंबाई कम, परमाणु अधिक खिरेंगे। नहीं समझे ? बच्चे कम हैं तो उनमें मां-बाप की संपत्ति ज्यादा आयेगी। ऐसे ही एक गुणश्रेणी आयाम में निषेक कितने हैं - कितने में गुणश्रेणीरूप से द्रव्य दिया है ? ऊपर का जो द्रव्य आता है वह प्रतिसमय असंख्यातगुणा आयेगा। गुणश्रेणी छोटी बनेगी तो प्रति निषेक अधिक परमाणु दिये जायेंगे और जब उनका क्रम से उदय आयेगा तो अधिक-अधिक गुणश्रेणीरूप से निर्जरा होगी।

असंख्यातगुणी निर्जरा के १० स्थान बताये हैं, उनके नाम हम देखने जा रहे हैं- पहला औपशमिक सम्यक्त्व, दूसरा श्रावक, फिर विरत, आगे कहते अनंत वियोजक। कल बात आयी थी अनंतानुबंधी की विसंयोजना; उसमें मुनिराजों से भी गुणश्रेणी निर्जरा ज्यादा होती है। फिर दर्शनमोह क्षपक, फिर उपशमक; उपशमक यानी चारित्रमोह का उपशम करनेवाला - उपशमश्रेणी के आठवें-नौवें-दसवें गुणस्थानवाला; फिर उपशांतमोहवाला, फिर क्षपक यानी क्षपकश्रेणी के आठवें-नौवें-दसवेंवाला और फिर क्षीणमोहवाला- बारहवें गुणस्थानवाला। 'क्षीणमोहजिनाः क्रमशः'। जिनेन्द्र भगवान में भी दो लेना - एक सामान्य केवली और एक समुद्घात केवली। समुद्घात अवस्था में और भी असंख्यातगुणा निर्जरा हो जाती है। 'क्रमशोऽसंख्येयगुणनिर्जराः', तो यह गुणनिर्जरा यानी गुणश्रेणी निर्जरा क्या होती है उसको भी हम देखेंगे। गुणश्रेणी का अर्थ क्या है उसको भी हम यहीं पर भूमिका में ही देखेंगे। पूर्वविद् का मिल गया ? अच्छा ! वह शुक्लध्यान के प्रकरण में होगा। उसमें 'शुक्ले चाद्ये पूर्वविदः' सूत्र है न !

हम यहां गुणश्रेणी की बात देख रहे थे। गुणश्रेणी आयाम में जो द्रव्य दिया जाता

है; ऊपर से जितना एकभाग प्रमाण द्रव्य निकाला। उसमें से कुछ तो उदयावली में दिया, कुछ गुणश्रेणी में दिया। गुणश्रेणी में जितना टोटल द्रव्य दिया जायेगा, मान लेते हैं हमने ८५ परमाणु गुणश्रेणी में दिये। यहां पहले निषेक में १ परमाणु दिया, यहां दूसरे निषेक में ४ गुणा यानी ४ दिये, उससे ४ गुणा यानी १६ तीसरे निषेक में दिये, उससे ४ गुणा यानी ६४ चौथे निषेक में दिये। इसतरह हम ८५ देते हैं चार निषेकों में, चार-चारगुणा के क्रम से। ऐसे ही यथार्थ में असंख्यातगुणा क्रम से दिया जाता है उसीको कहते हैं गुणश्रेणी। गुणश्रेणी की रचना और गुणश्रेणीरूप निर्जरा औपशमिक सम्यक्त्व के काल में और पांचवें गुणस्थान आदि स्थानों में चलती है। वहां ऐसे ही अपकर्षण होता है, गुणश्रेणी बनती है और अधिक-अधिक द्रव्य खिरने लगता है। इसी मार्ग से निर्जरा चालू होती है। ऐसी निर्जरा मिथ्यादृष्टि के नहीं होती यह बात बताना चाहते हैं।

श्रोता: गुणश्रेणी की लंबाई यानी क्या ? गुणश्रेणी की लंबाई यानी नंबर ऑफ निषेक। *श्रोता: वह कौन डिसाइड करता है ?* जहां विशुद्धि कम है, वहां गुणश्रेणी की लंबाई ज्यादा है। अभी सूत्र में जो ११ स्थान देखे न, उनमें आगे-आगे के स्थानों में गुणश्रेणी की लंबाई संख्यातवें भाग प्रमाण होगी। पहली से दूसरी संख्यातवां भाग, दूसरी से तीसरी संख्यातवां भाग, तीसरी से चौथी संख्यातवां भाग और उसमें गुणश्रेणीरूप द्रव्य कितना खिरता है ? असंख्यातगुणा-असंख्यातगुणा। प्रति निषेक भी असंख्यातगुणा द्रव्य दिया जाता है; सहजरूप से पूरे मोक्षमार्ग में ऐसी बातें घटती हैं, कर्मों की निर्जरा होती है। हम कहते तो हैं निर्जरा होती है, किस विधि से होती है ? यह सारी विधि यहां बतायी जायेगी। तो इसतरह से गुणश्रेणी में द्रव्य दिया जाता है।

श्रोता: करणलब्धि के पहले भाग में जो निर्जरा होती है, उसमें असंख्यातगुणा होती है ? प्रथमोपशम सम्यक्त्व के पहले जो करणलब्धि होती है तब जीव मिथ्यादृष्टि है, फिर भी वहां पर आयु बिना सभी कर्मों की असंख्यातगुणा क्रम से गुणश्रेणी रचना होती है। करणलब्धिवाला भले ही मिथ्यादृष्टि है, परंतु निश्चितरूप से वह सम्यक्त्व प्राप्त करनेवाला ही है। तो उसने औपशमिक सम्यक्त्व संबंधी जो तीन करण मांडे हैं, वहां अपूर्वकरण से उसके गुणश्रेणीरूप रचना भी होती है और कर्मों का असंख्यातगुणा खिरना भी चालू होता है। *श्रोता: निर्जरा की बात वहां है या नहीं ?* सूत्र में औपशमिक

सम्यग्दृष्टि का ही पहला नाम लिया है। बाद में चौथे गुणस्थानवाले को गुणश्रेणी नहीं होती। *श्रोता: उसके पहले करणलब्धि के काल में जो आपने बताया अपूर्वकरण के काल में, वहां पर नाम ले सकते हैं उसका ?* हां-हां बिलकुल ले सकते हैं, वहीं से गुणश्रेणी रचना शुरू होती है; बाद में तो होती नहीं, बाद में रुक जाती है। औपशमिक सम्यक्त्व प्राप्त होने पर ज्ञानावरणादि अन्य कर्मों में थोड़े काल के लिये गुणश्रेणी रहती है, पर बाद में तो वह भी रुक जाती है। अभी हम औपशमिक सम्यक्त्व पढ़ने जा रहे हैं तो वह बात आपको ज्यादा स्पष्टता से समझ में आ जायेगी। यह जो गुणश्रेणीरूप से रचना होती है, उसका आयाम कम होता चला जाता है। जहां विशुद्धि ज्यादा होती है वहां उसका आयाम यानी लंबाई कम होगी यानी कम निषेकों में अधिक माल दिया जाता है। वे निषेक जब नीचे आते-आते उदय में आयेंगे तब अधिक निर्जरा होगी।

तत्त्वार्थसूत्र के नौवें अध्याय में ३६वां सूत्र है 'शुक्ले चाद्ये पूर्वविदः'। तत्त्वार्थसूत्र में ३७ नंबर का सूत्र है- शुक्लध्यान के स्वामी कौन है ? तत्त्वार्थसूत्र में बताया है। शुक्लध्यान समझते हो क्या है ? हां बोलो शुक्लध्यान कब होता है ? *श्रोता: आठवें गुणस्थान से लेकर।* आठवें गुणस्थान से लेकर शुक्लध्यान होता है। शुक्लध्यान के भी चार पाये हैं- शुरू में पृथक्त्ववितर्कवीचार फिर एकत्ववितर्कअवीचार। अवीचार यानी उसमें पलटना नहीं होता; संक्रमण नहीं होता, द्रव्य से द्रव्यान्तर, योग से योगान्तर ऐसा जहां संक्रमण होता है उसको कहेंगे पृथक्त्ववितर्कवीचार। वीचार यानी पलटना। बाद में १२वें गुणस्थान का बहुभाग चला जाने पर एकत्ववितर्कअवीचार नामक शुक्लध्यान होता है। अभी एक ही विषय पर उसका उपयोग कॉन्सटेंट है, वह पलटेगा नहीं उसको कहेंगे दूसरे नंबर का शुक्लध्यान।

तीसरा और चौथा ? सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति, व्युपरतक्रियानिवर्ति - वे बाद में होनेवाले ध्यान हैं। शुक्लध्यान में से पहले दो ध्यान श्रेणी में होनेवाले हैं इसलिये यहां लिखा है 'शुक्ले चाद्ये पूर्वविदः'। शुक्लध्यान के पहले दो भेद जो हैं वे किसके होते हैं ? पूर्वविदों को होते हैं। विद् यानी जाननेवाले, पूर्वो को जाननेवाले। कौनसे पूर्व ? इसका अर्थ यहीं से - तत्त्वार्थसूत्र की टीका से पढ़ती हूं- 'पहले दो प्रकार के शुक्लध्यान अर्थात् पृथक्त्ववितर्कवीचार और एकत्ववितर्कअवीचार ये दो ध्यान भी पूर्वज्ञानधारी के होते

हैं।' श्रेणी मांडनेवाले के लिये पहले तो उत्तम संहननवाले वगैरह-वगैरह कंडिशन्स होती हैं कि कौनसा ध्यान किसको होता है ? हमें तो लगता है इसको जानने से क्या फायदा ? आप पढ़ना इसके नीचे बहुत विस्तार से इसकी टीका भी लिखी है। अपना अभी विषय नहीं है फिर भी आपको बताया न ! क्योंकि यह बात ऐसी आती है और हमारा उसमें ध्यान नहीं जाता है। उस पर भी बहुत चर्चा चलती है विद्वानों में, फोन पर हमारी बहुत विद्वानों से चर्चा चलती है। ये हमारे हैं न बीना के पं. सुदीपजी, सुबह जल्दी फोन आया तो समझना इनका फोन है, कभी-कभी पांच बजे भी फोन आता है। करणानुयोग के अच्छे रसिक हैं। वहां उनका स्वाध्याय भी चलता है।

अभी गुणश्रेणी को भी यहां भूमिका में दृष्टांत द्वारा समझाया है, हमने देख लिया है उसको। उसकी और कुछ बातें मैं आपको बताना चाहती हूं। पढ़कर बताऊं यह सब ? चलो ठीक है दृष्टांत पढ़ लेते हैं, ज्यादा क्लिअर हो जायेगा। मैं तो आगे की कुछ बातें और बताना चाहती हूं। दृष्टांत पढ़कर फिर आगे बढ़ेंगे, पेज नंबर २५, नीचे से पांचवीं लाइन- **जैसे विवक्षित कर्म प्रकृति की स्थिति ४८ समय।** उन्होंने वही उदाहरण लिया, **उसके निषेक ४८, उनके सर्व परमाणु २५०००, उनको अपकर्षण भागहार ५** यह मान लिया - सारी काल्पनिक संख्या है। २५००० संख्या है उसको ५ से भाग दिया, ५००० आये। **इसलिये सर्व परमाणुओं में से इतने परमाणु ग्रहण करके** यह कहां से ग्रहण किये ? सभी निषेकों में से ग्रहण किये। उदयावली में से नहीं लेंगे, ऊपर के निषेकों में से ग्रहण किये। **उनमें से २५० परमाणु तो उदयावली में देते हैं** यानी कुछ परमाणु उदयावली में दिये। **यहां ४८ निषेकों में से पहले ४ निषेक उदयावली के हैं** हमने मान लिये, तो उसमें कैसे देंगे ? चयहीन यानी पहले निषेक में अधिक, फिर थोड़ा कम, थोड़ा कम इसतरह से, **चयहीन क्रम से मिलाते हैं। १००० परमाणु गुणश्रेणी आयाम में देते हैं। यहां ५वें से लेकर १२वें तक ८ निषेक गुणश्रेणी आयाम के हैं** यह मान लेते हैं, हमें समझाने के लिये बताये हैं।

८ निषेकों में कैसे देंगे ? गुणित प्रमाण में, यह गुण शब्द आता है न ? किसके लिये आता है ? गुणित प्रमाण के लिये आता है। गुणश्रेणी हो, गुणसंक्रमण हो - जहां-जहां गुण शब्द आता है, वह गुणित प्रमाण के लिये है ऐसा समझना। **उनमें**

असंख्यातगुणा क्रम से मिलाते हैं। यहां हजार में कैसे असंख्यातगुणा कहेंगे ? फिर भी समझ लेना- जैसे मैंने आपको ८५ परमाणु के ऊपर बताया था १, ४, १६, ६४ चारगुणा क्रम से मिलाये वैसे अँक्चुअल में - यथार्थ में असंख्यातगुणा क्रम से मिलाया जाता है। **३७५० परमाणु उपरितन स्थिति में देते हैं,** नीचे के उदयावली के चार समय, गुणश्रेणी के ८ समय मिलकर, ४ और ८ मिलकर १२ हो गये। अब कितने रह गये ? **यहां ३६ निषेक अवशेष रहे। उनमें से अंत के ४ निषेक अतिस्थापनरूप छोड़कर;** आवली के लिये यहां चार समय मान लिये हैं; तो वहां नहीं दिया जायेगा। **अवशेष १३वें से लेकर ४४ तक ३२ निषेकों में नानागुणहानि की रचना युक्त चयहीन क्रम से मिलाते हैं।**

जब हम कहते हैं चयहीन क्रम से दिया जाता है- कुछ कम, कुछ कम। तो पहले निषेक में जितना दिया, कहां का पहला निषेक ? यहां तक हम मान लेते हैं, ये चार तो उदयावली के हैं, ऊपर के आठ मान लेते हैं गुणश्रेणी के हैं और ऊपर ३६ रह गये, ऊपर के चार छोड़कर। अब यहां जो एक्स्ट्रा दिया जायेगा, वह कैसे दिया जायेगा ? एक-एक चय से कम। यहां पहले में जितना दिया है, उससे ऊपर थोड़ा कम - थोड़ा कम ऐसे कुछ निषेक जायेंगे तो वहां पहले निषेक में दिया उसका आधा प्रमाण हो जाता है तो उसको कहेंगे गुणहानी हुयी। जितना यहां दिया उससे भी आधा हो जायेगा यह दूसरी गुणहानी हुयी; उससे भी आधा होगा वहां तीसरी गुणहानी; ऐसी अनेक गुणहानियां होती हैं। उसको कहेंगे नाना गुणहानी क्रम से दिया; नाना यानी अनेक, वह गुजरातीवाला नाना यानी छोटा नहीं समझना। **इसीतरह दार्ष्टान्त में यथासंभव प्रमाण जानकर स्वरूप जानना।** अँक्चुअल में जो प्रमाण होगा वह बतायेंगे जहां विषय आयेगा, उसकी भी आगे की बात समझने जैसी है।

चयहीन क्रम से और असंख्यातगुणा क्रम से मिलाने का विधान आगे कहेंगे। जहां उसका विषय आयेगा वहां समझायेंगे। **यहां यह उदयावली के बाह्य गुणश्रेणी आयाम का स्वरूप दिखाया।** क्या कहा ? यह नीचे उदयावली है और उदयावली के ऊपर गुणश्रेणी बनी है। क्या हमेशा ऐसी ही बनती है ? तो कहते हैं, कहीं-कहीं विशिष्ट विशुद्धि के कारण अन्यथा भी बात बनती है। वह क्या है उसे यहां

समझा रहे हैं। उसको कैसे कहना, उसका क्या अर्थ है उसको भी समझायेंगे। **कहीं उदयादि गुणश्रेणी आयाम होता है।** उसका अर्थ क्या है ? उदयादि यानी उदय के समय से लेकर गुणश्रेणी की रचना होती है, पहले उदयावली में क्रमहीन से दिया था और बाद में गुणश्रेणीरूप से दिया था। अब जहां बहुत विशुद्धि होती है, वहां क्या होता है ? यह गुणित प्रमाण में देने का जो प्रोसेस है, वह उदय के समय से लेकर गुणित प्रमाण में ही दिया जायेगा। यह गुणश्रेणी कहां से शुरू होती है ? उदय के समय से लेकर होती है, उदयावली वहां अलग नहीं रहती। वे आवली प्रमाण निषेक गुणश्रेणी में ही गर्भित हो जाते हैं। उदय के समय से लेकर जहां गुणित प्रमाण में द्रव्य दिया जायेगा उसको कहेंगे उदयादि गुणश्रेणी। एक है उदयावली के बाह्य गुणश्रेणी और दूसरी कौनसी होती है ? उदयादि गुणश्रेणी। और भी दो नाम आयेंगे, उसको देखेंगे आगे।

कहीं उदयादि गुणश्रेणी आयाम होता है, वहां अपकृष्ट द्रव्य में से कितने ही द्रव्य को तो गुणश्रेणी आयाम प्रमाण जो वर्तमान समय संबंधी निषेक वर्तमान यानी उदयरूप निषेक से लेकर, यह वर्तमान निषेक जो नीचे का निषेक है वहां से लेकर निषेक हैं उनमें असंख्यातगुणा क्रम से मिलाते हैं। यह हम पढ़ रहे हैं उसका अर्थ भासित होना चाहिये इतना ही है, यह कुछ याद करने की बात है ही नहीं। हम जो पढ़ रहे हैं उस वाक्य का हमें ठीक तरह से अर्थ भासित हो इतना ही महत्व का है। उदय के समय से लेकर असंख्यातगुणा क्रम से जहां दिया जाता है उसको कहेंगे उदयादि गुणश्रेणी। **अवशेष को उपरितन स्थिति में मिलाते हैं।** यानी वहां तीन भाग नहीं होंगे, पहले हमने क्या देखा था ? उदयावली में देते हैं, गुणश्रेणी में देते हैं, उपरितन स्थिति में देते हैं। जब उदय के समय से ही लेकर गुणश्रेणी हुयी है, तो उदय के समय से गुणश्रेणी में दिये और बस उपरवर्ती में दिये हैं, ऐसे दो विभाग होंगे। वे कहां होते हैं ? क्षपणा में और उपशमना में जब उसका प्रोसेस आयेगा, तब उसकी बात करेंगे।

गुणश्रेणी आयाम में उदयावली गर्भित हुयी। उसीके अंदर इन्क्लूड कर दी न ? वह आवली प्रमाण उदयावली के निषेक भी गुणश्रेणी में ही ले लिये। गुणश्रेणी अंतर्मुहूर्त प्रमाण है और वह उदय के समय से बनी है; उदय के समय से आवली प्रमाण निषेक उसी गुणश्रेणी में ही गये तब तो उसको कहेंगे उदयादि गुणश्रेणी। अब

उसमें और भी दो प्रकार हैं। कहीं-कहीं क्या होता है, यह जो गुणश्रेणी बनी है उसमें से एक-एक निषेक गलता जायेगा और यह गुणश्रेणी नीचे के निषेक गलने से नीचे-नीचे आयेगी। गुणश्रेणी के निषेकों में से भी क्रम से एक-एक समय में एक-एक निषेक गल जायेगा और गुणश्रेणी छोटी-छोटी होती चली जायेगी उसको कहेंगे गलितावशेष गुणश्रेणी। गलित अवशेष - गल गयी है और कुछ बाकी है; यथायोग्य काल तक वह क्या होती है ? वह गलती चली जाती है। गुणश्रेणीरूप में जितने निषेकों में द्रव्य दिया है, उसमें से एक-एक निषेक उदय में आने से गुणश्रेणी नीचे-नीचे आ जाती है तो उसको कहेंगे गलितावशेष गुणश्रेणी।

दूसरी कौनसी होती है ? अवस्थित गुणश्रेणी। अवस्थित गुणश्रेणी का अर्थ क्या है ? अभी मान लेते यहां हमने गुणश्रेणी ५ निषेकों में बतायी। अब इसका एक निषेक उदयावली में जायेगा और उपरितन स्थिति का एक निषेक इसमें आयेगा। इसका अर्थ होता है उसमें भी असंख्यातगुणा क्रम से दिया जायेगा। यानी गुणश्रेणी का नीचे का निषेक उदयावली में आयेगा तो गुणश्रेणी के ऊपर का एक निषेक गुणश्रेणी में ले लेंगे; फिर यह दूसरा निषेक चला जायेगा तब ऊपर का और एक निषेक गुणश्रेणीरूप से आयेगा तो गुणश्रेणी उतनी की उतनी बनी रहेगी उसको कहेंगे अवस्थित गुणश्रेणी आयाम। एक-एक निषेक गलता चला जाता है और ऊपर का एक-एक निषेक गुणश्रेणी में प्रवेश करता है।

दो प्रकार की गुणश्रेणी देखी- एक गलितावशेष और दूसरी अवस्थित। वह कहां होती है ? उदयादि गुणश्रेणी अवस्थित होती है कि गलितावशेष होती है ? वह सब जहां जिसका विषय क्रम से आयेगा वहां उसकी चर्चा करेंगे। यहां केवल नाम बता रहे हैं कि दो प्रकार की गुणश्रेणी होती है। यहां बस इतना ही विवेचन करेंगे। औपशमिक सम्यक्त्व, क्षायिक सम्यक्त्व, अनंतानुबंधी की विसंयोजना होती है; तब कहां पर कौनसी गुणश्रेणी होती है वह वहां जाकर बतायेंगे। जहां गुणश्रेणी की बात आयेगी वहां हम दुबारा उसको याद करेंगे कि हमने क्या सीखा था। अभी तो केवल इनके नामों का थोड़ा परिचय कर रहे हैं। बाद में वह विषय आयेगा। *श्रोता: गलितावशेष और अवस्थित - दोनों काम एकसाथ होंगे ?* नहीं, एक समय में या गलितावशेष गुणश्रेणी होगी या तो

अवस्थित गुणश्रेणी होगी। वह कहां पर होती है ? हम क्रम से देखेंगे, कहां पर होती है। ये गुणश्रेणियां भी नयी-नयी बनती रहती हैं। ऐसा भी होता है पहले गलितावशेष थी, फिर बाद में वहीं पर दूसरी अवस्थित बन गयी। वह कैसे होता है, उसका आपस में क्या संबंध होता है वह सब बतायेंगे। चार्ट के द्वारा भी हम समझेंगे।

श्रोता: अतिस्थापना के निषेक ऊपर हैं ? जिस निषेक में से द्रव्य नीचे आ रहा है, उसके नीचे के एक आवली प्रमाण निषेकों को अतिस्थापना कहेंगे। अब मान लेते हैं ऊपर से दसवां निषेक का द्रव्य अपकर्षण होकर नीचे आता है। वह ऊपर नहीं जा रहा है, नीचे आयेगा तो क्या होगा ? उसके नीचे आवली प्रमाण निषेक छोड़कर नीचे आ जायेगा। *श्रोता: उसके ऊपर निषेक रहते हैं कि लास्ट है ?* रहते हैं न, रहते हैं। परंतु यहां सर्वथा अतिस्थापना लास्ट निषेकों में को क्यों बताते हैं ? क्योंकि उनमें से द्रव्य नीचे जाता है, उनमें कहीं से आता नहीं है। नहीं समझे आप ? देखो-देखो पहले हमने देखा था। १०० समय की स्थिति मान लो। वहां १००वें निषेक का कुछ द्रव्य नीचे सर्वत्र आया; हमने बीच में ९९वां, ९८वां और ९७वां ऐसे तीन निषेक छोड़े। ९९वें निषेक का कुछ द्रव्य उसके नीचे के तीन निषेक छोड़कर नीचे सर्वत्र आयेगा, ९८वें निषेक का कुछ द्रव्य उसके नीचे के तीन निषेक छोड़कर नीचे सर्वत्र आयेगा। इन तीन निषेकों को पहले अतिस्थापनारूप छोड़ा ही था, इनका द्रव्य नीचे आयेगा। परंतु इनमें ऊपर कहीं से भी द्रव्य नहीं आनेवाला। ख्याल में आया न ? नीचे के निषेकों में क्या होगा ? ऊपर से उनमें कुछ द्रव्य आ रहा है और उनका द्रव्य भी नीचे जा रहा है। अभी इस ९६वें निषेक की बात करो। इसमें द्रव्य आ भी रहा है, अब इसका द्रव्य नीचे भी जायेगा। उसके नीचे के तीन को लांघकर, नीचे सर्वत्र चला जायेगा। परंतु ऊपर के जो निषेक हैं वे सर्वथा अतिस्थापनारूप से हैं। उनमें ऊपर से कहीं से भी नहीं आ रहा है, परंतु उनका द्रव्य नीचे जा रहा है। इसलिये ऊपर के सर्वथा छोड़े हैं, परंतु एक-एक निषेक हम अलग-अलग सोचेंगे, तो उनका अपना-अपना द्रव्य अपने नीचे आवली प्रमाण निषेकों को लांघकर नीचे दिया जाता है। यह क्लिअर हो गयी न बात ?

श्रोता: यह तीन कॉन्स्टन्ट रहेंगे ? तीन यानी वह आवली प्रमाण है, यहां बताने के लिये हमने तीन कहे। *श्रोता: आपने ये जो तीन लिये, ये तीन कॉन्स्टन्ट ही रहेंगे*

आखरी तक ? अतिस्थापना ऊपर जो आवली प्रमाण है, वह तो हमेशा रहेगी, हमेशा।
 श्रोता: ऊपर द्रव्य कहां से आया ? आप कहते हैं ऊपर आये कहां से ? जो स्थिति बांधी
 थी और सत्ता में पड़े थे; यह पूरी स्थिति में ऐसे ही कर्म पड़े हैं। कहां से आये ? हम ही
 ने बांधे और बांधकर वहां पड़े हैं। हमारा ही पुरुषार्थ है पूर्व का, वे पड़े हैं वहां पर !
 अपना कोई पुरुषार्थ कर्म में नहीं चलता हो ! अभी हम यहां देखेंगे प्रथमोपशम
 सम्यक्त्व की प्ररूपणा। अभी तक तो हम लब्धिसार की भूमिका देख रहे थे। पहला
 अधिकार यहां शुरू होता है, पं. टोडरमलजी ने मंगलरूप से यहां चौपाई लिखी है
 उसको देखेंगे। पृष्ठ ४० पर हमने मंगलाचरण भी देखा था।

**श्री अरहंत सिद्धवर सूरि। उपाध्याय धारै गुणभूरि।
 साधु परम मंगल जग जेष्ठ। जय शरणागत कौं परमेष्ठ॥**

यहां से प्रथमोपशम सम्यक्त्व की प्ररूपणा, प्ररूपणा यानी व्याख्यान-विशेष
 कथन शुरू करते हैं। देखो, आचार्य प्रथम प्रतिज्ञा क्या करते हैं ? कोई भी ग्रंथ लिखते
 हैं, अधिकार लिखते हैं तो वहां पर शुरू में प्रतिज्ञा लिखते हैं कि क्या लिखूंगा और ऐसा
 भी कहेंगे, जो अरिहंत भगवान ने बताया है वह मैं आपको बताऊंगा। रोज हम जो
 मंगलाचरण देख रहे हैं कि 'वंदिय' किसको वंदन करके ? सिद्धों को, जिनेंद्रचंद्र यानी
 अरिहंतों को, आचार्यों को, उपाध्यायों को और साधुगणों को नमस्कार करके;
 सम्यग्दर्शन और सम्यक् चारित्र यानी दर्शनलब्धि और चारित्रलब्धि को मैं बताऊंगा।
 यहां मंगलाचरण में ऐसे हम रोज गा रहे हैं।

अब हम टीका में पढ़ेंगे- **जिनेन्द्र जो अरहंत वे ही हुये सकल लोक के
 प्रकाशने से वा आल्हाद करने से चंद्रमा**, चंद्रमा की उपमा दी है उनको इसलिये
 यहां 'जिणिंदचंद' यानी 'जिनेंद्रचंद्र' कहा **और कृतकृत्य हुये सिद्ध भगवान को** यह
 सिद्ध भगवान कैसे हैं ? कृतकृत्य हैं - करने जैसा सब कर लिया। हम कब कृतकृत्य
 होते हैं ? बच्चों की शादी की तो कृतकृत्य हो गये। **और पंचाचार के प्रवर्तक आचार्य
 को और अध्ययन करने और कराने में अधिकारी उपाध्याय को और मोक्षमार्ग
 के साधक साधुसमूह को वंदन करके** स्वयं आचार्य श्री नेमिचन्द्र जिनको

सिद्धान्तचक्रवर्ती कहते हैं, वे बता रहे हैं।

सिद्धान्तचक्रवर्ती क्यों कहा ? आपने सुना होगा न ! सिद्धान्त के चक्रवर्ती क्यों कहते हैं ? चक्रवर्ती किसको कहते हैं ? छह खण्डों को जीतनेवाले चक्रवर्ती और षट्खण्डागम के छह खण्ड हैं; षट्खण्डागम के जो जानकार हैं, विशेषज्ञ हैं उनको सिद्धान्तचक्रवर्ती कहते हैं। ये जो आगम ग्रंथ हैं न, उनको सिद्धान्त शास्त्र कहते हैं। उसका दूसरा नाम षट्खण्डागम है। ये सारे सिद्धान्त शास्त्र के जो ज्ञाता हैं उनका नाम है सिद्धान्तचक्रवर्ती। सिद्धान्तचक्रवर्ती नेमिचन्द्र आचार्य कहते हैं, इन सबको नमस्कार करके मैं जिसमें सम्यग्दर्शन और सम्यक् चारित्र की लब्धि अर्थात् प्राप्ति का प्रतिपादन किया है ऐसे लब्धिसार नामक शास्त्र का प्ररूपण करता हूं। आचार्य स्वयं ऐसी प्रतिज्ञा करते हैं और इस ग्रंथ में इस विषय का विशेष कथन करेंगे।

पहले में पहले यहां प्रथमोपशम सम्यक्त्व की बात होगी। क्या सम्यक्त्व भी अनेक प्रकार के होते हैं ? हां, होते हैं क्योंकि इसके पीछे प्रथमोपशम नाम लगा दिया तो अन्य भी कोई सम्यक्त्व होने चाहिये। कोई द्वितीयोपशम, तृतीयोपशम, चतुर्थोपशम होना चाहिये ? कहते हैं नहीं। हां, द्वितीयोपशम होता है परंतु ऐसा नहीं है कि पहली बार हुआ वह प्रथमोपशम, दूसरी बार हुआ वह द्वितीयोपशम - ऐसा बिलकुल नहीं है। प्रथमोपशम का अर्थ हम देखेंगे क्या होता है। परंतु मूल में सम्यक्त्व के कुल तीन भेद हैं। कौन-कौनसे होते हैं ? एक यह प्रथमोपशम कहो या औपशमिक सम्यक्त्व है, दूसरा है क्षायोपशमिक सम्यक्त्व और तीसरा है क्षायिक सम्यक्त्व। उनका भी यहां क्रम से प्ररूपण चलेगा कि उनमें कौन-कौनसे विधान होते हैं, उनमें क्या डिफरन्स है, कर्मों में क्या अवस्थाएँ बनती हैं, उसकी हम चर्चा करेंगे।

प्रथमोपशम सम्यक्त्व किसको कहना ? कोई मिथ्यात्व अवस्था में कुछ विशिष्ट कर्मों का उपशम करके सम्यग्दृष्टि होता है। बिलकुल स्थूलरूप से कहते हैं कि क्या प्राप्त करता है ? सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है। किस विधि से करता है ? कर्मों का उपशम करके सम्यक्त्व प्राप्त करता है। कौन कर रहा है ? मिथ्यादृष्टि जीव। कोई मिथ्यादृष्टि जीव कुछ कर्मों का, कुछ कर्म यानी कौनसे कर्म ? अनंतानुबन्धी चार और

मिथ्यात्व; एक होगा तो मिथ्यात्व और उसकी सत्ता में दर्शनमोहनीय की तीन प्रकृतियां होंगी तो मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति। अनंतानुबंधी और दर्शनमोहनीय का उपशम करके जीव सम्यक्त्व प्राप्त करता है उसको कहेंगे प्रथमोपशम सम्यक्त्व।

श्रोता: सात प्रकृतियों का क्षय करेगा ? क्षय नहीं उपशम, यहां उपशम की बात चल रही है। वहां पांच या सात कहेंगे, हम कहेंगे पांच या छह या सात। तो छह या सात कहां से आये ? उसकी चर्चा बाद में करेंगे इसलिये मैंने कहा कि दर्शनमोहनीय और अनंतानुबंधी का उपशम करके जो सम्यक्त्व प्राप्त करता है उसको हम कहेंगे प्रथमोपशम सम्यक्त्व। उसकी प्राथमिक योग्यता या कंडिशन क्या है ? कौनसा जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त कर सकता है ? पहले में पहली कंडिशन है वह मिथ्यादृष्टि होना चाहिये। अरे हां क्योंकि वेदक सम्यक्त्व कौन प्राप्त करता है ? मिथ्यादृष्टि भी कर सकता है या औपशमिक सम्यग्दृष्टि भी वेदक हो जाता है यानी द्वितीयोपशमवाला भी वेदक होता है और प्रथमोपशमवाला भी वेदक हो जाता है, वहां कोई मिथ्यात्व की कंडिशन नहीं है। क्षायिक सम्यक्त्व कौन प्राप्त करता है ? जो वेदक यानी क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि है वह क्षायिक प्राप्त करेगा। तो यह मिथ्यादृष्टि की कंडिशन कहां पर है ? प्रथमोपशम सम्यक्त्व के लिये है। *श्रोता: वह अनादि मिथ्यादृष्टि है ?* वह अनादि मिथ्यादृष्टि भी हो सकता है या सादि मिथ्यादृष्टि भी हो सकता है।

यह सादि-अनादि क्या होता है ? देखो स+आदि=सादि यानी जिसकी शुरुआत है। तो मिथ्यात्व की भी कभी शुरुआत हो सकती है ? हमने तो सुना है मिथ्यात्व अनादि से है। हां, जो एक बार सम्यक्त्व प्राप्त करके दुबारा मिथ्यात्व में जाता है उसका मिथ्यात्व कैसा है ? सादि मिथ्यात्व है और उस जीव को हम कहेंगे सादि मिथ्यादृष्टि जीव। जिसने अभी तक एक बार भी सम्यक्त्व प्राप्त नहीं किया है उसको कहेंगे अनादि मिथ्यादृष्टि और एक बार सम्यक्त्व प्राप्त करके जो मिथ्यात्व में गया है उसको कहेंगे सादि मिथ्यादृष्टि। जो सादि मिथ्यादृष्टि औपशमिक सम्यक्त्व प्राप्त करता है उसके लिये भी कंडिशन है। उसकी बात हम देखेंगे। सबसे पहले किसी जीव को जो अनादि का मिथ्यादृष्टि है और उसको सम्यक्त्व प्राप्त होगा तो औपशमिक सम्यक्त्व ही प्राप्त होगा, प्रथमोपशम सम्यक्त्व ही प्राप्त होगा।

जब प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त होगा तो सम्यक्त्व के पहले समय से मिथ्यात्व के तीन भेद हो जाते हैं - मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति। अब ऐसा सम्यग्दृष्टि जीव मिथ्यात्व में चला जाता है तो उसके तीनों प्रकृतियां बनी रहती हैं। कितने काल तक ? असंख्यात वर्षों तक। मिथ्यात्व का नया-नया बंध होता रहता है और अन्य जो दो प्रकृतियां हैं, उनकी उद्वेलना होती है। उनकी उद्वेलना होते-होते उनकी स्थिति इतनी कम होती है कि करीबन सागर जितनी रह जाती है। उनकी इतनी थोड़ी स्थिति रह जाये तो फिर दुबारा तीनों का एक साथ उपशम कर सकता है। सादि मिथ्यादृष्टि में पहले तीन प्रकृतियां थी, मिथ्यात्व में गया तो उद्वेलना करते-करते पहले सम्यक् प्रकृति नष्ट हो जाती है। फिर उसकी सत्ता में दो ही रहेगी या सम्यग्मिथ्यात्व की भी उद्वेलना करते-करते वह भी पूर्ण नष्ट हो जायेगी। तीन की सत्तावाले जीव को सागर जितनी स्थिति इन दोनों की है और मिथ्यात्व की स्थिति लंबी है, ७० कोड़ाकोड़ी भी हो सकती है। फिर उसकी स्थिति घटायेगा, अंतःकोड़ाकोड़ी करेगा और फिर तीनों को एक साथ उपशमित करेगा यह हो सकता है। यहां कितनी प्रकृतियां उपशमित होंगी ? सात। अनंतानुबंधी की चार, दर्शनमोहनीय की तीन।

सम्यक् प्रकृति अगर उद्वेलना होकर नष्ट हुयी होगी, वह पहले नष्ट होती है तो उसकी सत्ता में दर्शनमोहनीय की दो ही प्रकृतियां हैं। सम्यक् प्रकृति गयी है, सम्यग्मिथ्यात्व और मिथ्यात्व है। अभी चार और दो, वह छह का उपशम करेगा- कर सकता है। सम्यग्मिथ्यात्व का भी नाश हो जायेगा तब मिथ्यात्व प्रकृति ही रही उसकी सत्ता में। तो वह एक मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी चार ऐसी पांच प्रकृतियों का उपशम करेगा। और भी जो कोई विशेषतायें हैं, कंडिशन्स हैं कि कौनसा जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त करने के लायक है, वे क्या कंडिशन्स हैं वह हम दोपहर में देखेंगे। अभी यहीं रुकते हैं।

बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

७. प्रथमोपशम सम्यक्त्व की पात्रता

आचार्य श्री नेमिचन्द्र सिद्धांतचक्रवर्ती ने लब्धिसार ग्रंथ की रचना की है। उसीके आधार से पं. टोडरमलजी ने सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका लब्धिसार-क्षपणासार भाषाटीका ढूंढारी भाषा में लिखी है और आपके हाथ में उसका हिंदी अनुवाद है जो हम पढ़ रहे हैं। आज से दर्शनलब्धि यानी सम्यग्दर्शन संबंधी चर्चा यहां चलेगी उसमें हम सर्वप्रथम प्रथमोपशम सम्यक्त्व की बात देख रहे हैं। प्रथमोपशम सम्यक्त्व यानी क्या ? वह किसको होता है ? उसकी पात्रता क्या है ? जीवों की योग्यता क्या है ? उनकी अभी अपनी चर्चा चल रही है। दर्शनलब्धि और चारित्रलब्धि की यहां बात चलेगी।

लब्धि शब्द अन्य अर्थों में भी आता है। लब्धि यानी लाभ होना, प्राप्ति होना। सामान्य से भी हम देखते हैं लब्धि और उपयोग मिलकर भावेन्द्रिय यानी क्षयोपशम ज्ञान होता है। ज्ञान का जो उधाड़ है उसको लब्धि कहते हैं। तप के कारण जो कोई ऋद्धियां प्राप्त होती हैं उनको भी लब्धि कहने में आता है। दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य के क्षायोपशमिक भाव को लब्धि कहते हैं या क्षायिक भाव को भी लब्धि कहते हैं। केवलज्ञानी को - अरिहंत भगवान को नौ क्षायिकलब्धि होती हैं ऐसा वर्णन आता है। सभी नौ क्षायिक भावों को वहां लब्धि कहते हैं। यह लब्धि शब्द अलग-अलग अर्थों में आता है। यहां दर्शन को लब्धि कहा और चारित्र को लब्धि कहा। जीव को प्रथमोपशम सम्यक्त्व होने के पूर्व में पांच लब्धि का वर्णन आता है। हम उन पांच लब्धियों का यहां स्वरूप देखेंगे। पहले में पहले प्रथमोपशम सम्यक्त्व की पात्रता किसको होती है उसकी अपनी चर्चा चल रही थी। हम दो नंबर की गाथा के आधार से उसकी चर्चा करेंगे। ४० पृष्ठ पर, देखो-

चदुगदिमिच्छो सण्णी पुण्णो गब्भज विसुद्ध सागारो।

पढमुवसमं स गिण्हदि पंचमवरलद्धिचरिमहि॥ २॥

क्या कहते हैं ? चारों गति का मिथ्यादृष्टि जीव। प्रथमोपशम सम्यक्त्व कौनसे गतिवालों को होता है ? चारों ही गतिवालों को होता है। परंतु किसके होगा ? भव्य को ही होगा। यहां लिखा नहीं है, परंतु वह तो जाहिर है क्योंकि भव्य जीवों को ही सम्यक्त्व होगा, अभव्यों को कभी होगा ही नहीं। मेरा प्रश्न है, ऐसे कौनसे कर्म का उदय है

जिसके कारण जीव अभव्य या भव्य होता है ? श्रोता: पारिणामिक भाव। उसको पारिणामिक भाव कहते हैं। जीव की ऐसी सहज योग्यता होती है कि वह अभव्य है। किसी कर्म के कारण वह अभव्य या भव्य नहीं कहलाता। जो अभव्य है वह अनादि से अभव्य ही है और अनंतकाल तक अभव्य ही रहेगा। उसको सम्यक्त्व की प्राप्ति कभी होगी ही नहीं वह मुक्त होने का तो सवाल ही नहीं है। अभव्य जीव तो संसार में हमेशा रुलते ही रहेंगे।

भव्य जीव भी जब तक सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं करेगा; भले उसमें योग्यता है, परंतु उसने सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं की है तो वह मिथ्यादृष्टि है। उसका पहला गुणस्थान चल रहा है। परंतु उसमें सम्यक्त्व प्राप्ति की योग्यता है। काललब्धि आने पर पुरुषार्थ से अपने स्वसमय पर पांचों समवायपूर्वक वह सम्यक्त्व प्राप्त करेगा। यहां तो कौन प्राप्त कर सकता है कौन नहीं उसकी अपनी चर्चा चल रही है। चारों ही गतिवाला मिथ्यादृष्टि जब कहते हैं तो वह सादि मिथ्यादृष्टि भी हो सकता है या अनादि मिथ्यादृष्टि भी- उसकी अपनी चर्चा चल रही थी। अनादि का अर्थ है अनादि से है यानी उसके मिथ्यात्व की कोई बिगिनिंग नहीं है, आदि नहीं है, शुरुआत नहीं है। अनादिकाल से जो मिथ्यात्व अवस्था में ही जन्म-मरण, जन्म-मरण करते-करते अभी तक आया है, जिसने एक बार भी सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं की है ऐसा जीव अनादि मिथ्यादृष्टि है। सादि मिथ्यादृष्टि ? जिसने कभी सम्यक्त्व प्राप्त किया था, अब वह मिथ्यात्व अवस्था में आया है और उसकी सत्ता में दर्शनमोहनीय की तीन प्रकृतियां हैं या दो हैं या एक है। ऐसा जीव भी प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त करता है। अब मिथ्यात्व में आने के बाद कितने काल के बाद प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त करेगा उसकी चर्चा कालांतर से करेंगे। जब प्रकृतियों की अवस्था कैसी होती है उसको हम यहां बोर्ड पर देखेंगे तब हम उसकी चर्चा करेंगे।

यह नक्की हुआ कि चारों ही गतिवाला, अनादि या सादि मिथ्यादृष्टि जीव फिर आगे क्या लिखा है ? संज्ञी पंचेन्द्रिय होना आवश्यक है। सभी देव संज्ञी पंचेन्द्रिय ही होते हैं। सभी नारकी संज्ञी पंचेन्द्रिय ही होते हैं। सभी मनुष्य भी संज्ञी पंचेन्द्रिय ही होते हैं, भले वे पर्याप्त हो या अपर्याप्त। परंतु तिर्यचों में बहुत व्हरायटी है। क्या-क्या व्हरायटी है ? हां, उनमें एकेन्द्रिय भी हैं, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय

और संज्ञी पंचेन्द्रिय भी हैं, जो पर्याप्त भी होते हैं और अपर्याप्त भी होते हैं। इनमें से किसको होगा ? तो कहते हैं संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों को सम्यक्त्व की प्राप्ति हो सकती है। प्रथमोपशम हो या अन्य जो कोई सम्यक्त्व होता है उसकी बात है। वह और कैसा होना चाहिये ? पर्याप्त होना चाहिये। पर्याप्त, अपर्याप्त क्या है ? जिनको करणानुयोग का अभ्यास है वे तो समझते हैं। फिर भी हम उसको देखकर आगे बढ़ेंगे।

दो प्रकार के जीव पाये जाते हैं- एक लब्धिअपर्याप्त जीव और एक पर्याप्त जीव। संज्ञी पंचेन्द्रियों में छह पर्याप्ति होती हैं यानी क्या होता है ? जीव कहीं से मरकर अन्य भव में चला जाता है और वहां शरीर धारण करने के पहले समय से लेकर अंतर्मुहूर्त तक उसकी छह पर्याप्ति पूर्ण होती हैं। पर्याप्ति क्या है ? कुछ शक्तियों की पूर्णता होती है। यह कैसी शक्ति होती है ? पर्याप्तियों के नाम हैं- आहारपर्याप्ति, शरीरपर्याप्ति, इन्द्रियपर्याप्ति, श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति, भाषापर्याप्ति और मनःपर्याप्ति। आहारपर्याप्ति ऐसी शक्ति है कि जीव जो शरीर के परमाणु ग्रहण करता है उनको खलरूप और रसरूप परिणमाता है। यह परिणमन करने की शक्ति यानी निमित्तरूप होने की उसकी जो कुछ योग्यता है उसकी बात है। यह जीव अन्य पुद्गलों का परिणमन कर सकता है ऐसी बात बिलकुल नहीं है। परंतु हमने पहले दिन देखा था यहां सब निमित्त की भाषा में ही कथन होगा।

जीव ने शरीर के परमाणुओं को ग्रहण किया। क्यों ग्रहण किया ? उसके शरीर नामकर्म का उदय है। हम आप मनुष्य हैं, कोई तिर्यच हैं वे औदारिकशरीर के परमाणुओं को ग्रहण करेंगे, उस संबंधी आहारवर्गणा को ग्रहण करेंगे। जो देव, नारकी हैं वे वैक्रियिक जाति के परमाणुओं को ग्रहण करेंगे। वह भी आहारवर्गणा है परंतु उसकी जाति अलग है। उन परमाणुओं को ग्रहण करता है क्योंकि वैसे नामकर्म का उदय वहां शुरू हो जाता है। वहां कोई रेडिमेड शरीर तो होता नहीं है, जीव उन परमाणुओं को खलरूप और रसरूप यानी सॉलिड और लिक्विडरूप परिणमाता है। ऐसी जो शक्ति की उत्पत्ति होती है; शक्ति की पूर्णता होती है उसको कहेंगे आहारपर्याप्ति। शरीरपर्याप्ति में जो खलरूप-सॉलिड और रसरूप-लिक्विड हुये हैं उनमें से अलग-अलग सॉलिड और लिक्विड ऑर्गन्स बनाने की शक्ति यानी शरीर के अलग-अलग अवयव उनमें से उत्पन्न होते हैं तो उस शक्ति को कहेंगे शरीरपर्याप्ति।

उसके कारण द्रव्येन्द्रियों की भी निर्मिति होती है, शरीर के अन्य अवयवों की भी निर्मिति होती है।

इन्द्रियपर्याप्ति में क्या होता है ? जहां इन्द्रियां-द्रव्येन्द्रियां बनती हैं उस जगह के जो आत्मप्रदेश हैं वहां से उन इन्द्रियों का अपना-अपना जो विषय है उसको ग्रहण करने की शक्ति उत्पन्न होती है। जैसे चक्षु इन्द्रिय का विषय क्या है ? श्रोता: वर्ण। हां, उसका विषय है वर्ण। तो वर्ण को ग्रहण करने; ग्रहण करने का अर्थ होता है जानना। ग्रहण करना यानी वहां पर कोई इनटेक नहीं है। वहां के आत्मप्रदेशों के द्वारा वर्ण का ग्रहण होता है। आत्मप्रदेश तो पूरे शरीर में हैं। है न ? आत्मप्रदेश जहां पर हैं वहां पर शरीर की रचना हो रही है। परंतु अन्य आत्मप्रदेशों के द्वारा वर्ण का ग्रहण नहीं होता है। चक्षु इन्द्रिय जहां बनी है वहां के आत्मप्रदेश वर्ण का ग्रहण करते हैं, वहां से वे जानते हैं। ऐसी शक्ति उस-उस इन्द्रिय के जगह उत्पन्न होती है उस शक्ति की उत्पत्ति होना - उस शक्ति की पूर्णता होना उसको कहेंगे इन्द्रियपर्याप्ति। उसके बाद श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति- श्वासोच्छ्वास करने की शक्ति की पूर्णता होना। ये जो शक्तियां यहां अभी पूर्ण हो रही हैं इन शक्तियों का जो कार्य है वह पूरी जिंदगी भर चलेगा। इन शक्तियों की पूर्णता पहले अंतर्मुहूर्त में हो जायेगी। एक-एक शक्ति की पूर्णता के लिये एक-एक अंतर्मुहूर्त लगता है। एक के बाद एक-एक शक्ति पूर्णता को पहुंचती है और उन सबको मिलकर भी एक अंतर्मुहूर्त लगता है।

श्रोता: ये पर्याप्ति कर्मों में होती है ? कर्मों में नहीं, ये तो जीव में होती हैं। जीव नया भव धारण करता है तब एक छोटे अंतर्मुहूर्त में पर्याप्त हो जाता है। हमें पता ही नहीं अंतर्मुहूर्त कितना छोटा है ! सेकंड का भी कुछ पार्ट हो सकता है। उतने काल में सभी पर्याप्ति पूर्ण हो जाती हैं। गर्भ का जीव है वह पर्याप्त ही है। गर्भ में आने के पश्चात् अंतर्मुहूर्त में भी मर जावे तो भी वह पर्याप्त जीव है। जो पर्याप्त जीव है, जिसके पर्याप्त नामकर्म का उदय है वह पर्याप्ति पूर्ण हुये बिना मरता नहीं है - एक बात। गर्भ में आनेवाला प्रत्येक जीव पर्याप्त नामकर्मवाला ही होता है यह दूसरी बात। गर्भपात हो जाये बिलकुल १ घंटे के अंदर, फिर भी उस जीव को अपर्याप्त नहीं समझना क्योंकि गर्भज जीव सारे पर्याप्त ही होते हैं। जो लब्धिअपर्याप्त होते हैं, वे श्वास के अठारहवें भाग में मरते हैं ऐसे जीव गर्भ में उत्पन्न नहीं होते। वे वातावरण में उत्पन्न होनेवाले

सम्मूर्च्छन जीव होते हैं। उनको लब्धिअपर्याप्त सम्मूर्च्छन जीव कहेंगे। *श्रोता: सम्मूर्च्छन जीव कौनसे होते हैं ?* हां, सम्मूर्च्छन जीव कौनसे होते हैं ? वातावरण में उत्पन्न होते हैं वे। जैसे एकेन्द्रिय से लेकर चतुरिन्द्रिय तक के सारे जीव सम्मूर्च्छन ही हैं। परंतु उनमें पर्याप्त भी हैं और अपर्याप्त भी हैं। अब यहां मनुष्यों की अपेक्षा कहेंगे कि अपर्याप्त मनुष्य सारे सम्मूर्च्छन ही होते हैं।

अब यहां क्या बात हो रही है ? पर्याप्त जीवों को ही सम्यग्दर्शन होता है। अपर्याप्त जीव दो प्रकार के बताये जाते हैं- एक जो अपर्याप्त नामकर्मवाले हैं, जो एक भी पर्याप्ति पूरी हुये बिना ही मर जाते हैं उनको कहते हैं लब्धिअपर्याप्त। दुबारा- अभी हमने जो छह पर्याप्ति देखी वे संज्ञी पंचेन्द्रियों की अपेक्षा देखी, उन्हीं की अपेक्षा बात करेंगे। संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों में भी लब्धिअपर्याप्त पाये जाते हैं। लब्धिअपर्याप्त का अर्थ है एक भी पर्याप्ति पूरी हुये बिना वे मर जाते हैं। उनकी छहों पर्याप्ति भले ही एक साथ शुरू हुयी थी, परंतु वे आहारपर्याप्ति पूरी होने के पहले ही मर जाते हैं। उनकी आयु इतनी छोटी होती है। उनकी आयु इतनी अल्प है, इनके तो सम्यक्त्व प्राप्ति का कोई सवाल ही नहीं है। सम्यग्दृष्टि जीव इन पर्याप्तियों में उत्पन्न भी नहीं होते यानी वे तो मिथ्यादृष्टि ही हैं और उस पर्याप्त में रहते हुये उनको सम्यक्त्व नहीं होगा। वहां से मरकर वे संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त गर्भज हो जायेंगे तब उनके सम्यक्त्व हो सकता है।

अब जो पर्याप्त नामकर्मवाले हैं परंतु जब तक दूसरी शरीरपर्याप्ति पूरी नहीं होती है तब तक उन जीवों को निर्वृत्तिअपर्याप्त कहते हैं। निर्वृत्ति नहीं निर्वृत्ति, अभी उनका पर्याप्ति पूर्ण होने का कार्य चल रहा है, काम अधूरा है अभी। पर्याप्ति पूर्ण होने जा रही हैं तो उस अवस्था में भी उनको सम्यक्त्व प्राप्त नहीं होगा। पर्याप्ति पूर्ण होने के पश्चात् बाद में उनको सम्यक्त्व होगा। इसलिये यहां कंडिशन क्या डाली है ? पर्याप्त होना चाहिये। संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त होना चाहिये और आगे क्या लिखा है ? गर्भज होना चाहिये। यह गर्भज शब्द मनुष्य और तिर्यचों की अपेक्षा डाला है क्योंकि मनुष्य तो गर्भज होते हैं क्योंकि जो पर्याप्त मनुष्य हैं वे गर्भज ही होते हैं। लब्धिअपर्याप्त मनुष्य हैं वे तो सम्मूर्च्छन होते हैं। तिर्यचों की यह विशेषता है कि जो सम्मूर्च्छन संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यच हैं वे पर्याप्त भी होते हैं; बड़े-बड़े मगरमच्छ आपने सुने होंगे या बड़े-बड़े पशु-पक्षी भी हो सकते हैं। कोई सम्मूर्च्छन हैं यानी मां-बाप के निमित्त से गर्भ में उत्पन्न नहीं

हुये हैं या अंडों में उत्पन्न नहीं हुये हैं, ऐसे ही जो वातावरण में से उत्पन्न होते हैं उनको सम्मूर्च्छन कहते हैं। वे संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्ति भी हो सकते हैं।

जैसे आपने स्वामीजी से सुना होगा, स्वयंभूरमण समुद्र में महामत्स्य, कितने ? असंख्यात सम्मूर्च्छन महामत्स्य पंचम गुणस्थानवर्ती हैं। *श्रोता: पंचम गुणस्थानवर्ती जीव सम्मूर्च्छन भी हो सकते हैं ?* सम्मूर्च्छन भी हो सकते हैं। गर्भजों को तो सम्यक्त्व होता ही है, सम्मूर्च्छन पंचेन्द्रिय जीवों को भी होगा। वे करोड़ पूर्व की आयुवाले भी हो सकते हैं। यहां तो गर्भज कंडिशन डाली है तो उन सम्मूर्च्छनों को सम्यग्दर्शन कैसे हो सकता है ? बोलो क्या उत्तर है ? उनको प्रथमोपशम सम्यक्त्व नहीं हो सकता। तो कौनसा हो सकता है ? क्षयोपशम हो सकता है। क्षयोपशम कैसे हो सकता है वहां ? जिन्होंने पहले सम्यक्त्व प्राप्त किया था और बाद में मिथ्यात्व में गये हैं ऐसे जीव वहां उत्पन्न हुये हैं उनको हम कहेंगे वे सादि मिथ्यादृष्टि हैं। जिनकी सत्ता में दर्शनमोहनीय की तीन प्रकृतियां पड़ी हैं, उनको मिथ्यात्व अवस्था से डायरेक्ट वेदक सम्यक्त्व यानी क्षयोपशम सम्यक्त्व हो सकता है। इसलिये संज्ञी पंचेन्द्रिय सम्मूर्च्छन तिर्यचों में क्षयोपशम सम्यक्त्व हो सकता है परंतु उनमें प्रथमोपशम सम्यक्त्व की योग्यता नहीं होती। इसलिये यहां गर्भज शब्द डाला है। कुछ ख्याल में आती है बात ?

तिर्यचों में दो प्रकार के संज्ञी पंचेन्द्रिय होते हैं- गर्भज और सम्मूर्च्छन। करोड़ पूर्व की आयुवाले संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यच सम्मूर्च्छन भी हो सकते हैं या गर्भज भी हो सकते हैं। उनमें से प्रथमोपशम सम्यक्त्व की योग्यता किनमें है ? तो गर्भजों में है। क्या सम्मूर्च्छन संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यचों को सम्यक्त्व नहीं हो सकता ? सम्यक्त्व तो हो सकता है, परंतु क्षयोपशम सम्यक्त्व हो सकता है यदि वे सादि मिथ्यादृष्टि हैं तो। प्रथमोपशम सम्यक्त्व उनके नहीं होगा, यह एक बात। आगे की कंडिशन क्या है ? गर्भज की कंडिशन मनुष्य-तिर्यच में लगती है। देव और नारकी तो गर्भज होते ही नहीं हैं, उनके लिये यह कंडिशन नहीं है। उनका जन्म होता है वह उपपाद जन्म कहलाता है। देवों में उपपाद शय्याएं होती हैं। अंतर्मुहूर्त में ही उनकी छहों पर्याप्ति पूर्ण होती है और वे वहां युवा ही जन्मते हैं। देव की युवावस्था की शरीर की रचना एक अंतर्मुहूर्त में बन जाती है। नारकियों में जैसे मधुमक्खी के छत्ते होते हैं वैसे उनके बिलों में ऊपर छतों में उनके उत्पत्ति के स्थान होते हैं वहां उनके शरीर की रचना होती है, कटते-

कटते वे नीचे आते हैं और भूमि पर गिरते हैं। उछलते हैं, फिर गिरते हैं, उनका ऐसा ही वहां का उत्पत्ति का प्रकार है। उसको भी उपपाद जन्म कहते हैं। देव और नारकी उपपाद जन्मवाले हैं। जो पर्याप्त मनुष्य हैं, वे गर्भज हैं, जो लब्धिअपर्याप्त हैं वे सम्मूर्च्छन हैं। पंचेन्द्रिय तिर्यचों में गर्भज और सम्मूर्च्छन दोनों ही प्रकार पाये जाते हैं। एकेन्द्रिय से चतुरीन्द्रिय तक के पर्याप्त और अपर्याप्त सभी सम्मूर्च्छन ही होते हैं।

हमने देखा था सम्यक्त्व किसको हो सकता है ? संज्ञी पंचेन्द्रिय, पर्याप्त, गर्भज जीवों को। उसके आगे एक और कंडिशन डाली है। देखो, कहते हैं पर्याप्ति पूरी हुये बिना सम्यक्त्व होगा नहीं। अभी जब-जब मैं सम्यक्त्व कहूंगी तो प्रथमोपशम सम्यक्त्व की बात समझना। मनुष्यों में पर्याप्ति पूर्ण होते ही उनको सम्यक्त्व नहीं होगा, वहां ८ वर्ष की लिमिट है। ८ वर्ष के पश्चात् ही मनुष्यों को सम्यक्त्व होगा और तिर्यचों में भी गर्भज है तो जन्म के बाद कुछ काल के पश्चात् सम्यक्त्व होगा। जब जन्म कहते हैं तो, शरीर धारण करने का पहला समय वह जन्म का समय है लेकिन हम हमारी बर्थ डेट कौनसी कहते हैं ? जब शरीर धारण किया था उसको याद करते हैं ? वह तो पता नहीं कब हुआ था ! जब मां के गर्भ से जीव निकसा तो उसको हम जन्म कहते हैं। शास्त्र में जब से शरीर धारण किया तब से गिनते हैं या गिनते समय गर्भ के सात महीने अलग गिनते हैं और फिर बाद में प्रसूति के पश्चात् हम जिसको जन्म कहते हैं, तब से ८ वर्ष गिनने की पद्धति है। तिर्यचों में भी गर्भ का यथायोग्य उनका जो अपना-अपना काल है, उसके पश्चात् कुछ दिन के बाद उनको सम्यक्त्व हो सकता है। उसको पृथक्त्व मास ऐसा भी कहते हैं। हर एक तिर्यच में उसका अलग-अलग प्रमाण होता है।

अब हम आगे देखते हैं- इतने काल के पश्चात् प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त करने की योग्यता होती है। वह किसको होगी ? मंद कषायरूप विशुद्धतावाले को होगी। तीव्र कषायवाले को नहीं क्योंकि सम्यग्दर्शन तत्त्वविचार के काल में होता है और तत्त्वविचार के काल में कषायों की मंदता होती है। **मंद कषायरूप विशुद्धता का धारक, गुणदोष के विचाररूप साकार ज्ञानोपयोग से संयुक्त।** ऊपर लिखा था न 'विसुद्ध सागारो;' यह साकार और अनाकार क्या होता है ? ज्ञानोपयोग को साकार कहते हैं, दर्शनोपयोग को निराकार कहते हैं - अनाकार या निराकार कहते हैं। साकार का अर्थ क्या है ? भेद करके जानना ज्ञान का लक्षण है, उसको सविकल्प भी कहते हैं। तो मेरा

प्रश्न है, आत्मा की अनुभूति सविकल्प ज्ञान में होगी कि निर्विकल्प में होगी ? हां बोलो ?
श्रोता: ज्ञान का लक्षण ही सविकल्प है। हां, ज्ञान का लक्षण ही सविकल्प है। क्या कहते हैं ? यह केवलज्ञान सविकल्प है कि निर्विकल्प ? *श्रोता: निर्विकल्प है।* केवलज्ञान भी सविकल्प है।

देखो, विकल्प के बहुत अर्थ होते हैं। राग को भी विकल्प कहते हैं और भेद को भी विकल्प कहते हैं। ज्ञान का स्वभाव भेद करके जानने का है। एक-एक वस्तु को भिन्न-भिन्न जानना यह ज्ञान का स्वभाव है। केवलज्ञानी के एक समय की पर्याय में क्या-क्या जानने में आता है ? वह तो हमने देखा है - अनंत द्रव्य, उनके सभी अनंत गुण, उनकी तीन काल की सभी पर्याय, उन सभी के अविभागप्रतिच्छेद भिन्न-भिन्न भी जानते हैं। अँट अ टाइम जानते हैं परंतु उसका हर एक का अस्तित्व भिन्न-भिन्न जानते हैं। इसीको कहते हैं सविकल्प, इसीको कहेंगे साकार। ज्ञान का लक्षण ही है भेद करके जानना। ज्ञानोपयोग में सम्यक्त्व की प्राप्ति होगी, दर्शनोपयोग में नहीं यह बात बता रहे हैं। देखो यह नियम है अधिक विशुद्धि ज्ञानोपयोग में होती है - साकार अवस्था में और जाग्रत अवस्था में। संक्लेश भी अधिक मॅक्झिमम कब होगा ? ज्ञानोपयोग में और मॅक्झिमम विशुद्धि भी कब होगी ? ज्ञानोपयोग में। मध्यम परिणाम नींद में भी होते हैं और दर्शनोपयोग में भी होते रहते हैं। दैनिक स्वाध्याय में हमारा अभी महाबंध में स्थितिबंध का प्रकरण चल रहा है, वहां हर बार लिखते हैं- यह सबसे उत्कृष्ट स्थितिबंध किसको होगा ? जो साकार है, जाग्रत है, ज्ञानोपयोगवाला है। उत्कृष्ट बंध करनेवाला - अधिक संक्लेश परिणामवाला भी वह साकार ज्ञानोपयोगवाला जीव ही लिया है इसमें।

अब लिखते हैं, गुणदोष के विचाररूप; यह गुणदोष का विचार यानी क्या ? हम भी तो दिनभर गुणदोष का विचार करते रहते हैं- अपने गुणों का और दूसरों के दोषों का। उसकी बात नहीं है यहां पर, हित-अहित का। यहां तत्त्वविचार की बात हो रही है। तत्त्वविचार के काल में, जैसा पं. टोडरमलजी ने कहा है कि तत्त्वविचार में ऐसा तद्रूप हो जाता है कि उसके कर्मों की उपशम आदि बातें सहज होती हैं और सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है। इसका कर्तव्य इतना ही है कि तत्त्वविचार करना और उसमें तत्त्वनिर्णय तक पहुंचना। गुण-दोष के विचाररूप साकार ज्ञानोपयोग से संयुक्त, ऐसे ही जीव को सम्यक्त्व होता है। परंतु कब होता है ? कहते हैं जो अंतिम पांचवीं

करणलब्धि है उसके अनंतर समय में होता है। अब हम इन पांच लब्धियों के नाम देखेंगे। उनमें से अंतिम करणलब्धि में भी तीन भेद हैं। कौनसे तीन हैं मालूम है ? अधःकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण। अनिवृत्तिकरण के अंतिम समय के पश्चात् अनंतर समय में, अनंतर यानी नेक्स्ट समय में जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्व को ग्रहण करता है।

प्रथमोपशम सम्यक्त्व की योग्यता किसमें है और किसमें नहीं है ? किसमें बतायी है इसीसे किसमें नहीं है यह बात सिद्ध होती है। जो ऑलरेडि सम्यग्दृष्टि है, वेदक सम्यग्दृष्टि है, क्या उसको प्रथमोपशम सम्यक्त्व होगा ? तो कहते हैं सवाल ही नहीं हैं। अभव्य को होगा ? नहीं होगा, भव्य को होता है। फिर असंज्ञियों को होगा ? एकेन्द्रिय आदि को नहीं हो सकता। पर्याप्तों को होगा, अपर्याप्तों को नहीं होगा। गर्भजों को होगा, सम्मूर्च्छनों को नहीं होगा। मंद कषायरूप विशुद्धता के धारियों को होगा, तीव्र कषायवालों को नहीं होगा। जाग्रत अवस्थावाले को होगा, नींद में नहीं होगा। कोई-कोई हमसे बात करते हैं और फोन भी बहुत आते रहते हैं कि मुझे लगता है कल रात मुझे नींद में सम्यग्दर्शन हुआ। मुझे लगता है ! इतनी शंका है कि दूसरे से कन्फर्म करना चाहता है यानी उसको निःशंक गुण रहा कि नहीं रहा ? यह ऐसी भ्रमणा चलती है। यह जाग्रत अवस्था में यहां नहीं लिखा परंतु वह उसीमें गर्भित है।

श्रोता: देव नारकियों में कैसे होगा ? देव, नारकी संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीव हैं न, यह गर्भज कंडिशन मात्र मनुष्य और तिर्यचों की अपेक्षा बतायी है। नारकी में लिखने की जरूरत नहीं है, जिनमें दो भेद हैं उनकी बात लिख दी। पर्याप्तों के सम्मूर्च्छन और गर्भज ये दो भेद तिर्यचों में होंगे। बाकी सब संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीव हैं इसलिये वहां लिखने की जरूरत नहीं थी। जो लिखते हैं वह किस अपेक्षा से लिखते हैं ? क्योंकि गाथा तो दो लाइन की होती है, उसमें क्या-क्या लिखेंगे ? इसीलिये तो टीकायें लिखी हैं ताकि वह स्पष्ट करके हमें बतायें और पं. टोडरमलजी ने उसको और खोलकर बताया है यहां पर।

श्रोता: आपने छह पर्याप्ति बतायी थी। यहां कहां बात आयी ? छह पर्याप्ति मैंने बतायी थी अच्छा, चार बतायी श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति तक। भाषापर्याप्ति क्या होती है ? भाषावर्गणा को शब्दरूप परिणमाने की जीव की शक्ति उसकी पूर्णता होना। पूर्णता

तो पर्याप्ति के काल में हुयी। बाद में बोलने का कार्य जो चलता है यह कार्य हमारी पूरी जिंदगी भर चलता है। यह कार्य करने की शक्ति कब उत्पन्न हुयी ? जब शरीर ग्रहण किया और भाषापर्याप्ति पूर्ण हुयी तभी हो गयी। यहां निमित्तरूप से उसमें यह शक्ति है, यह कोई जीव का कार्य नहीं है। भाषा बोलने का, शब्दरूप परिणमित होने का कार्य पुद्गल का है और जीव उसमें निमित्त है। जीव के बिना भाषा निकलती है कि नहीं निकलती ? शब्द निकलते हैं कि नहीं ? ध्वनि निकलती है कि नहीं निकलती ? पुद्गल की भाषावर्गणा है वह शब्दरूप से, ध्वनिरूप से परिणमित होती है। परंतु यहां जीव मानता है कि हमने ऐसा बोला, हमने जोर से बोला, हमने धीमे से बोला।

देखो, मैं आपसे कहती हूं जीव बोलता है ऐसा उपचार से कथन चलता है। यह उपचार है, जीव का उसमें निमित्तपना बनता है और पं. टोडरमलजी की भाषा में ऐसे निमित्त-नैमित्तिक संबंध घने हैं। इसलिये जीव को ऐसा ही लगता है कि यह कार्य मैं कर रहा हूं। उसमें उसके बहुत सारे कर्मों के उदय निमित्त होते हैं। स्वर नामकर्म का उदय निमित्त है, उसमें जीव भाषावर्गणा के परमाणुओं को शब्दरूप परिणमाता है और यहां भाषा बोली जाती है। उसमें उसका वचनयोग आदि सब निमित्त बनते हैं। देखो, बहुत सारी बातें अनेक अलग-अलग कर्मों के उदय के निमित्त से सहजरूप से होती हैं। शरीर का कार्य तो यह कर्म ही मॅनेज कर रहा है और बीच में जीव के भाव भी निमित्त होते हैं तो हमें ऐसा लगता है कि मैं ही यह सारा कर रहा हूं। यही तो मिथ्यात्व भाव है। करणानुयोग के माध्यम से भी हमें यह पता चलता है कि इसमें अपना तो कुछ है ही नहीं। अलग-अलग कर्मों के उदय में अलग-अलग बातें होती हैं। हमसे ही क्यों भाषा बोली जाती है ? हम भी जीव हैं और वनस्पति भी जीव है। उसकी भाषा क्यों नहीं होती ? हां, नीलेशभाई एकेन्द्रियों की कितनी पर्याप्ति होंगी ? उच्छ्वासपर्याप्ति तक चार ही होंगी। उसको ना ही भाषापर्याप्ति है, ना मनःपर्याप्ति है। उसमें स्वर नामकर्म का उदय भी नहीं है। तो उसके भाषा को शब्दरूप परिणमाने की ऐसी योग्यता भी नहीं होगी। तो वनस्पति कुछ बोलेगी भी नहीं। यह सहज ऐसा निमित्त-नैमित्तिक संबंध बनता है।

अभी यहां हम कौनसी बात देख रहे हैं ? पर्याप्तियों की पूर्णता की बात हुयी न अपनी और भाईसाहब ने बताया आपने पांच ही पर्याप्ति बतायी, मनःपर्याप्ति में क्या

होता है ? जो द्रव्यमन की रचना है, वह शरीर का अंग है। वह शरीरपर्याप्ति में हुआ था। जहां द्रव्यमन की रचना हुयी है, जीव में निमित्तरूप से उसके माध्यम से जानने के कार्य की शक्ति वहां उत्पन्न होती है वह मनःपर्याप्ति का कार्य है। ऐसी अलग-अलग शक्तियों की पूर्णता होना उसको पर्याप्ति कहते हैं। जब जीव पर्याप्त हो जाता है, उसके बाद अंतर्मुहूर्त तक उसकी कषायों की मंदता होती चली जाती है। तब देवों और नारकियों में एक अंतर्मुहूर्त में सम्यक्त्व प्राप्त हो सकता है। सातवें नरक का नारकी भी मिथ्यात्व के साथ जन्मता है। वहां जन्मने के पश्चात् एक अंतर्मुहूर्त में उसको प्रथमोपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति हो सकती है।

श्रोता: तीव्र कषाय में भी उसको प्रथमोपशम सम्यक्त्व कैसे ? तीव्र कषाय में नहीं, उसकी अपेक्षा उसके मंदता है। सातवें नरक के नारकियों के कृष्ण लेश्या होती है; कृष्ण लेश्या के असंख्यात लोकप्रमाण अलग-अलग व्हेरिएशन्स हैं, उनमें भी पूर्व परिणाम से उसकी जो मंदता होती है उसीको वहां विशुद्धि कहेंगे। उसकी बात क्रम से आयेगी। हम जब पांच लब्धि का विस्तार से विवरण देखेंगे तब उसमें वे बातें आयेगी। ऐसे ग्रैवेयक के देव सारे शुक्ल लेश्यावाले हैं। कितने मंद कषायी हैं ! तो सबको सम्यक्त्व होना चाहिये था। वहां भी मिथ्यादृष्टि हैं। वहां जाने के पश्चात् भी वे सम्यक्त्व प्राप्त कर सकते हैं। वहां पर शुक्ल लेश्या में भी पूर्व परिणाम से उसकी मंदता और बढ़ेगी तो उस काल में सम्यक्त्व होगा। यह कंडिशन सब जगह है।

श्रोता: देवों में लेश्या कौन-कौनसी होती हैं ? देवों में अपनी-अपनी शुभ लेश्या होती है। नीचे के देवों में यानी सौधर्म-ईशान तक पीत लेश्या होती है। सनत्कुमार से लेकर सहस्रार तक पद्म लेश्या होती है। आनत-प्राणत से लेकर ऊपर सर्वार्थसिद्धि तक शुक्ल लेश्या होती है। नरकों में भी ऊपर के पहले तीन नरकों में कपोत लेश्या होती है। फिर बीच में नील लेश्या होती है, नीचे कृष्ण लेश्या होती है। नरक की अपनी-अपनी लेश्या पूरी जिंदगी भर वही लेश्या कायम रहती है। देवों की भी अपनी-अपनी लेश्या होती है। मनुष्यों में और तिर्यचों में चौथे गुणस्थान तक छहों लेश्या होती हैं और वे अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्त में पलटती हैं। यहां हम मिथ्यादृष्टि की बात देख रहे हैं तो मिथ्यादृष्टि को छहों लेश्या हैं। परंतु जब वह प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त करेगा तो तीन शुभ लेश्या में ही प्राप्त करेगा। मनुष्य और तिर्यच को कपोत, नील और कृष्ण लेश्या में

सम्यक्त्व की उत्पत्ति नहीं होगी। सम्यग्दृष्टि को ये तीन लेश्या नहीं होती हैं ऐसा मैंने नहीं कहा - इसमें से उलटा अर्थ नहीं निकालना।

जो प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त करने जा रहा है उस जीव को उस काल में शुभ लेश्या में ही सम्यक्त्व की प्राप्ति होगी। मनुष्य और तिर्यचों के लिये यह नियम है। नारकी अपनी कृष्ण लेश्या में भी उसको प्राप्त कर सकता है। परंतु कृष्ण, नील या कापोत लेश्या के होते हुये उस काल में मनुष्य, तिर्यच को सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं होगी उनमें लेश्या अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्त में पलटती है। चौथे गुणस्थानवाले को भी छहों लेश्याओं में उसका परिणमन चलता है, अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्त में वे पलटती हैं।

देखो, कोई सर्वार्थसिद्धि का देव है। ३३ सागर तक वहां सम्यग्दृष्टि रहा। शुक्ल लेश्या में रहा। वहां से मरकर माता के गर्भ में आया है तो एक अंतर्मुहूर्त में वह शुक्ल से पद्म, पद्म से पीत, पीत से कपोत फिर नील और कृष्ण लेश्या तक पहुंच सकता है। माता के गर्भ में अभी-अभी तो वहां से आया है। मनुष्यों और तिर्यचों में ऐसे लेश्याओं का पलटना होता रहता है। पांचवें गुणस्थान से ऊपर निरंतर शुभ लेश्यायें होगी। पांचवें से सातवें गुणस्थान तक पीत, पद्म और शुक्ल लेश्यायें ही चलती रहेंगी। सातवें गुणस्थान के ऊपर यानी आठवें से तेरहवें गुणस्थान तक शुक्ल लेश्या रहेगी। अलग-अलग जीवों में कहां कौनसी लेश्या पायी जाती है उसकी बात है।

अब हम यहां ४१ पृष्ठ पर चौथी लाइन पढ़ रहे थे न, देखो- **मिथ्यात्व गुणस्थान से छूटकर जो उपशम सम्यक्त्व होता है, उसका नाम प्रथमोपशम सम्यक्त्व है।** पहली कंडिशन क्या है ? जो मिथ्यादृष्टि है क्योंकि यहां अपनी बात प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त करनेवाले जीव की चल रही है। मिथ्यात्व में से जो सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है वह पहले गुणस्थान से चौथे में जा सकता है, पहले से डायरेक्ट पांचवें में जा सकता है या पहले से डायरेक्ट सातवें में जा सकता है। यह डायरेक्ट की बात है। सातवें गुणस्थान में जानेवाला चौथे, पांचवें को टच करते-करते जाता है ऐसा कथन कोई करते हैं वह बिलकुल गलत है। हम देखेंगे उसके जो सारे प्रोसेसेस् हैं स्थितिकांडकघात, अनुभागकांडकघात, स्थितिबंधापसरण आदि जो कुछ बातें होती हैं, उनका चौथे, पांचवें या सातवें में जानेवालों का प्रपोर्शन अलग-अलग होता है। इसलिये

प्रथमोपशम सम्यक्त्व के काल में जीव चौथे में गया और वहां से पांचवें में गया और फिर वहां से सातवें में गया ऐसी बात संभव नहीं है। ऐसी बात होती नहीं है।

अपने मन की कल्पना से करणानुयोग का एक भी नियम बनाने की कोशिश मत करना। उसमें बहुत खतरा है क्योंकि हमें बहुत सारी बातें मालूम नहीं है और हम अपनी ओर से कुछ कथन करने जायें तो आगम से विरुद्ध बात होती है। तो इसका अवश्य डर रखना चाहिये क्योंकि हम कोई गलत बात प्रस्तुत करेंगे तो वही बात आगे चलेगी। हमारे विद्वानों की जबाबदारी तो और बढ़ती है। करणानुयोग का कथन करना है उसके पहले उसका अभ्यास होना आवश्यक है। चारों ही अनुयोगों का अभ्यास आवश्यक है, उसमें अपना हित होता है। पर का हित होगा, नहीं होगा वह तो बात अलग है।

यहां क्या कहते हैं ? मिथ्यात्व गुणस्थान से छूटकर जो उपशम सम्यक्त्व होता है उसका नाम प्रथमोपशम सम्यक्त्व है। तथा अभी द्वितीयोपशम क्या है यहीं पर बता रहे हैं। उपशमश्रेणी चढ़ने के लिये क्षयोपशम सम्यक्त्व से जो उपशम सम्यक्त्व होता है इसका अर्थ क्या है ? देखो, कोई चौथे, पांचवें, छठे, सातवें गुणस्थानवाला जीव है। इन चार गुणस्थानों में सम्यक्त्व कौन-कौनसे हो सकते हैं ? कोई प्रथमोपशम सम्यक्त्व होकर इसमें आया है। प्रथमोपशम सम्यक्त्व अंतर्मुहूर्त तक रहता है, उसके बाद वह जीव सम्यग्दृष्टि रहा तो उसका वेदक सम्यक्त्व हो जाता है तो वेदक सम्यक्त्व में रहता है या कोई वेदक सम्यग्दृष्टि जीव क्षायिक करेगा तो उसका क्षायिक सम्यक्त्व वहीं पर प्रारंभ हो जाता है।

अब श्रेणी चढ़ने का अर्थ क्या है ? उपशमश्रेणी की बात करें- आठवां, नौवां, दसवां और ग्यारहवां गुणस्थान होता है फिर वापस उसी क्रम से नीचे आते हैं। तो यह कार्य क्षयोपशम यानी वेदक सम्यक्त्व के साथ नहीं हो सकता क्योंकि वहां सम्यक् प्रकृति का उदय है। वह दर्शनमोहनीय की प्रकृति है, भले वह सम्यक्त्व में बाधा नहीं डालती फिर भी वहां चल-मल-अगाढ़ दोष होता है और ऐसे दोष सहित श्रेणी चढ़ने का कार्य नहीं होता। इसलिये क्षायिक सम्यग्दृष्टि होगा तो वह डायरेक्ट उपशमश्रेणी चढ़कर उतर सकता है परंतु जो क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि है वह उपशमश्रेणी चढ़ने के पूर्व में क्षयोपशम सम्यक्त्व में से फिर दुबारा उपशम सम्यक्त्व कर लेता है। उसकी सत्ता में

सम्यक् प्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व और मिथ्यात्व तीन प्रकृतियां हैं। वह तीनों को एक साथ उपशमाता है उसको कहेंगे द्वितीयोपशम सम्यक्त्व। यह कार्य सातवें गुणस्थान में होता है। वह कैसे होता है ? उसकी चर्चा आगे चलेगी।

यहां क्या कहते हैं ? **उपशमश्रेणी चढ़ने के लिये क्षयोपशम सम्यक्त्व से जो उपशम सम्यक्त्व होता है उसका नाम द्वितीयोपशम सम्यक्त्व है। इसलिये यहां,** यहां यानी प्रथमोपशम सम्यक्त्व के प्ररूपण में **मिथ्यादृष्टि का ग्रहण किया।** यानी यह कंडिशन बतायी कि वह मिथ्यादृष्टि होना चाहिये। *श्रोता: चौथे गुणस्थानवाला क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि उपशमश्रेणी नहीं चढ़ सकता है क्या ?* चौथे गुणस्थानवाले क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि को प्रथमोपशम करने का सवाल नहीं है। द्वितीयोपशम सम्यक्त्व उसको नहीं हो सकता। क्या कहा ? चौथे, पांचवें या छठे गुणस्थानवाला द्वितीयोपशम करने का कार्य नहीं करता। परंतु जो जीव द्वितीयोपशम करके श्रेणी चढ़कर यानी आठवां, नौवां, दसवां, ग्यारहवां, फिर दसवां फिर नौवां, आठवां, सातवां, छठे तक आया है; वह छठे से नीचे पांचवें में या चौथे में द्वितीयोपशम के साथ आ सकता है। द्वितीयोपशम सम्यक्त्व के गुणस्थान कौनसे हैं पूछेंगे तो चार से ग्यारह कहेंगे, परंतु चौथे गुणस्थान में द्वितीयोपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति हो ही नहीं सकती। सातवें में ही यह कार्य होता है, नीचे के गुणस्थानों में नहीं होता। अब आगे देखते हैं।

श्रोता: हमें सम्यक्त्व हुआ है या नहीं कैसे पता चले ? वह आप हमसे पूछ रहे हैं यानी आपको शंका है। *श्रोता: आत्मा की अनुभूति हुयी हो, सम्यक्त्व हुआ हो वह दूसरे को पूछ सकता है कि नहीं ?* पूछने की आवश्यकता नहीं होती। उसको तत्त्व में निर्मलता होती है और उसको आत्मा की अनुभूति हुयी है। अपने अतीन्द्रिय आनंद का अनुभव हुआ है तो दूसरे को पूछने नहीं जाना पड़ता। केवल हम जैनी हैं, स्वाध्याय करते हैं, मंद कषायवाले हैं इसलिये हम सम्यग्दृष्टि हैं यह मान्यता बिलकुल गलत है। बात ख्याल में आयी ?

श्रोता: द्वितीयोपशम सम्यक्त्व में से ग्यारहवें गुणस्थान से गिरेगा तो मिथ्यात्व में जाता है ? क्रम से जायेगा क्या ? देखो, यह बहुतों की ऐसी मान्यता है। जब ऐसा कहते हैं कि देखो परिणामों की विचित्रता ! द्वितीयोपशम सम्यक्त्व किया है, ग्यारहवें

गुणस्थान में गया और वहां से गिरता है और मिथ्यात्व में जाता है तब ऐसा समझना कि कालांतर से वह जीव मिथ्यात्व में जा सकता है ऐसा उस कथन का अर्थ है। कोई भी जीव ग्यारहवें में से नीचे आता है तो दसवें में ही आयेगा। दसवें से नौवें में, नौवें से आठवें में, आठवें से सातवें में, सातवें से छठे में - यहां तक तो क्रम से ही नीचे आना होता है। उसके पश्चात् हो सकता है कोई पांचवें में जाये, कोई चौथे में जाये, कोई सासादन में भी जा सकता है, कोई पहले में भी जा सकता है। उसके लिये अलग-अलग रास्ते हैं। परंतु कोई ग्यारहवें में से सीधा मिथ्यात्व गुणस्थान में जाता ही नहीं ऐसा बिलकुल नियम है। परंतु परिणामों की ऐसी विचित्रता है कि जिसके पूर्ण वीतरागता प्राप्त हुयी थी वह भी एक अंतर्मुहूर्त में नीचे गिरकर मिथ्यात्व में जा सकता है यह बात बतायी जाती है।

आगम में तो ये सभी बातें बतायी जायेगी। ऐसा एक भी जीव गिरकर नीचे आता है तो उसका कथन शास्त्र में आयेगा। केवली के ज्ञान में सब कुछ आया है। एक जीव की भी ऐसी परिणति हुयी तो वह कथन आयेगा। सम्यक्त्व से छूटकर कितने जीव मिथ्यात्व में चले जाते हैं यह भी कथन आयेगा। एक बार प्रथमोपशम होकर छूटा तो दूसरी बार प्रथमोपशम होने के लिये बीच में कितने काल का अंतर पड़ता है मालूम है ? असंख्यात वर्ष। पत्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण काल जाने के बाद, जो असंख्यात वर्षों का होता है, इतना काल जाने पर दुबारा प्रथमोपशम हो सकता है। ऐसा प्रथमोपशम सम्यक्त्व भी किसी जीव को असंख्यात बार होता है। उसका अर्थ ? असंख्यात बार सम्यक्त्व छूटा है और बीच में इतना काल गया है तब तो उसको दुबारा प्रथमोपशम हुआ।

हम देखते हैं किसी जीव को एक बार सम्यक्त्व हुआ तो अगर मिथ्यात्व में चला भी गया तो अधिक से अधिक कितना लंबा काल वह इस संसार में रहेगा ? अर्धपुद्गलपरावर्तन काल समाप्त होने के पहले-पहले वह मोक्ष जायेगा ही जायेगा। उसके सिद्ध अवस्था प्राप्त होगी, बिलकुल ! उससे अधिक वह इस संसार में नहीं रुलेगा। यह जो अर्धपुद्गलपरावर्तन काल है वह इतना बड़ा अनंतकाल है कि उसमें तो अनंतानंत अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी चली जाये ! इतना लंबा काल है और ऐसे अनंत जीव हैं जिन्होंने एक बार सम्यक्त्व प्राप्त किया था जिनका अर्धपुद्गलपरावर्तन काल चल रहा

है। क्या कहा ? यह बात पचती नहीं है ! दुबारा-

किसी जीव को एक बार सम्यक्त्व होकर छूट गया है और उसका अर्धपुद्गलपरावर्तन काल चल रहा है। मिथ्यात्व गुणस्थान में चौदह के चौदह जीवसमास में ऐसे जीव पड़े हैं। सूक्ष्म एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय, संज्ञी पंचेन्द्रिय - सभी लब्धिअपर्याप्त, पर्याप्त; इन सभी चौदह जीवसमासों में ऐसे जीव पड़े हैं जिन्होंने कभी न कभी सम्यक्त्व प्राप्त किया था और अभी मिथ्यात्व के साथ वे वहां हैं। ऐसे सब टोटल कितने जीव हैं ? तो कहते हैं ऐसे अनंत जीव हैं। क्योंकि यह अनंतकाल है न ! अनंत जीव हैं, उनका वह अर्धपुद्गलपरावर्तन काल चल रहा है, अनंतकाल है वह। कभी उन्होंने सम्यक्त्व तो प्राप्त किया था। प्राप्त किया था इसलिये कुछ नहीं होता, इससे क्या होता है ? यह डरने की बात नहीं है। ऐसा सुनकर डरने की बात नहीं ! हम कभी प्रयत्न ही नहीं करेंगे इतनी बार गिरते हैं तो। स्वामीजी कहते थे गिरने की बात मत करना। क्यों ? वहां पुरुषार्थ के उपदेश की मुख्यता है। परंतु कोई ऐसा नहीं समझे, हम तो सम्यग्दृष्टि ! अभी क्या ? हमें तो क्या हुआ ? हमें दो सींग आ गये ! ऐसा नहीं है।

यह जब पढ़ते हैं तो ख्याल में आता है अरे ! सम्यग्दृष्टि हुआ तो क्या हुआ ? उपशमश्रेणी चढ़कर उतरा है, फिर भी नरक निगोद में जा सकता है। परिणामों की विचित्रता हो सकती है। ऐसा भी है देखो, क्षपित कर्मांशिक आदि की बातें आती हैं। कोई जीव ऐसा है जिसने पल्य के असंख्यातवें भाग बार प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त किया है, वह असंख्यात बार अनंतानुबंधी की विसंयोजना कर चुका है। बार-बार मिथ्यात्व में आया तभी तो दुबारा करेगा। एक बार करने के बाद दुबारा क्यों करेगा ? क्योंकि वह मिथ्यात्व में आया है। कितनी बार पांचवां गुणस्थान प्राप्त किया ? असंख्यात बार। अनेक बार भावलिंगी संत भी हुआ है, अनेक बार इसलिये कहा कि मैक्झिमम बत्तीस बार ही हो सकता है। चार बार उपशमश्रेणी चढ़कर उतरा है। फिर भी ऐसा जीव अभी कहीं निगोदादि में पड़ा है। हां, वहां से निकलेगा। उसका मोक्ष प्राप्त करना तो निश्चित है। परंतु जीवों के परिणाम ऐसे भी हो सकते हैं इसलिये ख्याल में आता है कि सम्यक्त्व प्राप्त भी हुआ तो क्या हुआ ? उसकी तो कितनी संभाल करनी पड़ेगी ! सम्यक्त्व होने से क्या होता है ? जब तक वह चारित्र नहीं है और अंतरंग

में स्थिरता कायम नहीं है तब तक कुछ नहीं है। मुनि अवस्था प्राप्त करके भी नीचे आ सकता है तो हमारी आपकी क्या कथा ? यहां मान होने का कोई सवाल ही नहीं है। चलो, मुझे सम्यग्दर्शन हुआ तो मैं सबसे बढ़ गया - ऐसी कोई बात नहीं है।

श्रोता: द्वितीयोपशम सम्यक्त्व में से भी सासादन होता है क्या ? द्वितीयोपशम सम्यक्त्व में से भी सासादन होता है ऐसा एक मत है और एक मत ऐसा है कि द्वितीयोपशम सम्यक्त्व में से गिरकर सासादन नहीं होता, परंतु प्रथमोपशम में से गिरकर होता है। दोनों ही आचार्यों के मत हैं। हमें तो दोनों को ही स्वीकार करना है। क्योंकि अभी केवली नहीं हैं, श्रुतकेवली भी नहीं हैं। इसका निर्णय स्वयं आचार्य वीरसेन स्वामी ने भी धवला, जयधवला में नहीं किया है तो हम आप करनेवाले कौन हैं ? *श्रोता: चौथे से गिरकर मिश्र गुणस्थान में जायेगा क्या ?* द्वितीयोपशम का काल पूर्ण होने पर बाद में तीसरे में जा भी सकता है या पहले गुणस्थान में जाकर फिर बाद में भी तीसरे में जा सकता है। ऐसी कोई बात नहीं। उसकी मिश्र में जाने की कोई ना नहीं होगी। हां, उसके लिये कंडिशन है कि तीर्थकर प्रकृति की सत्तावाला नहीं जायेगा, ऐसी बात है।

अब बहुत चर्चा चली। हां, क्या बोलते हैं ? *श्रोता: क्षायिक सम्यक्त्व के लिये श्रुतकेवली और केवली की आवश्यकता होती है ?* यह बात आयेगी जब हम क्षायिक सम्यक्त्व की बात पढ़ेंगे। अभी हम प्रथमोपशम की बात करेंगे। क्या है, ये ऐसे अलग-अलग प्रश्न जो मन में उठते हैं उन्हें सीधे पूछना अच्छा नहीं है। आप लिखितरूप से दे देंगे तो उसकी बिलकुल विस्तार से चर्चा होगी, सबका समाधान होगा। आप अलग-अलग प्रश्न पूछते हैं तो विषयांतर होता है। अलग-अलग दिशाओं में अलग-अलग विषयों पर अपनी चर्चा बदलती चली जाती है। इसलिये हम अपने विषय से चलेंगे।

श्रोता: द्रव्यानुयोग में तो दृष्टिमुक्त हुआ कहते हैं और करणानुयोग में उसकी व्हॅल्यू नहीं है। क्या ऐसा है ? आप कहते हैं कि द्रव्यानुयोग में तो दृष्टिमुक्त हुआ कहते हैं और करणानुयोग में उसकी व्हॅल्यू नहीं है। देखो, उसकी व्हॅल्यू नहीं होती तो दर्शनलब्धि की चर्चा क्यों करते ? बिलकुल व्हॅल्यू है, परंतु जीवों को सम्यक्त्व की प्रेरणा देते हैं तो कहते हैं सम्यक्त्व प्राप्त करो। हम तो, सम्यक्त्व हुआ कि नहीं ? सम्यक्त्व कैसे हो जाये ? हम कहां देख रहे हैं ? हम सम्यक्त्व की पर्याय की तरफ देख रहे हैं तब तक सम्यक्त्व होगा कि नहीं होगा ? पर्याय की मुख्यता है न ? अरे हम तो स्वयं

शुद्धात्मा हैं और इनमें सारी पर्याय होनेवाली हैं, यथासमय होनेवाली हैं। पर्याय का लक्ष करने से सम्यक्त्व प्रकट नहीं होगा। अपनी पर्यायों का क्रम निश्चित है तो सम्यक्त्व जरूर प्रकट होगा। सम्यक्त्व क्या ? यहां से केवलज्ञान भी प्रकट होनेवाला है ! हमें अपनी मुख्यता आती है कि सम्यक्त्व की मुख्यता आती है ? फिर भी द्रव्यानुयोग में उसका कथन होगा। अलग-अलग अपेक्षाओं से अलग-अलग कथन होते हैं। उस अपेक्षा को ख्याल में रखकर हम उसका अर्थ लगायेंगे तो कोई घोटाला नहीं होगा।

देखो, यहां अभी हम प्रथमोपशम सम्यक्त्व किसके होता है, किसके नहीं होता है उसकी चर्चा कर रहे हैं। अभी हम एक ही गाथा में अटके हैं न ! देखो, ४१ पृष्ठ पर तीसरा पैराग्राफ है उसको देखेंगे- **यह प्रथमोपशम सम्यक्त्व तिर्यचगति में असंज्ञी जीव हैं, कौनसे ? एकेन्द्रिय से असंज्ञी पंचेन्द्रिय तक, उनके नहीं होता और मनुष्य, तिर्यचगति में लब्धिअपर्याप्त और सम्मूर्च्छन हैं उनके नहीं होता। गर्भजों में ही होता है। संज्ञी पंचेन्द्रिय सम्मूर्च्छन तिर्यचों में क्षयोपशम सम्यक्त्व हो सकता है परंतु प्रथमोपशम सम्यक्त्व नहीं हो सकता। चारों गतियों में संक्लेशता से युक्त जीवों के नहीं होता। अनाकार दर्शनोपयोग के धारी जीव के नहीं होता, क्योंकि वहां तत्त्वविचार संभव नहीं है। तत्त्वविचार के काल में सम्यक्त्व होता है। तब ज्ञानोपयोग चलता है। देखो, एक बार सम्यक्त्व की प्राप्ति हुयी; तो उपशम सम्यक्त्व अंतर्मुहूर्त तक रहेगा। सम्यक्त्व प्राप्त होगा तो बाद में दर्शनोपयोग और ज्ञानोपयोग होते रहते हैं। उसकी ना नहीं है, परंतु सम्यक्त्व की प्राप्ति के समय में उसको ज्ञानोपयोग होगा यह बात बता रहे हैं।**

तीन निद्रा के उदय का अभाव होगा। यानी स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा और प्रचलाप्रचला के उदय में सम्यक्त्व नहीं हो सकता। यह तो गहरी नींदवाली अवस्था है, इसके होते हुये सम्यक्त्व नहीं होता। इसलिये वह जाग्रतवाली कंडिशन डाली। **इसलिये सोते हुये जीव को नहीं होता। भव्य के ही सम्यक्त्व होता है, इसलिये अभव्य के नहीं होता।** ये भी विशेषण यहां पाये जाते हैं। गाथा में नहीं कहे, फिर भी यहां ये विशेषण समझ लेना चाहिये।

श्रोता: दर्शनोपयोग को क्यों नहीं लिया उसमें ? दर्शनोपयोग में नहीं होता,

ज्ञानोपयोग में होता है क्योंकि तत्त्वविचार का जो कार्य है वह ज्ञानोपयोग में चलता है।
श्रोता: दर्शनोपयोग और ज्ञानोपयोग भिन्न-भिन्न हैं न ? भिन्न-भिन्न हैं। बाद में दर्शनोपयोग हो सकता है। उपयोग अंत अ टाइम दर्शन या ज्ञान का चलेगा - उपयोग की बात है और पूरी पर्याय उपयोगरूप नहीं होती। लब्धि और उपयोग मिलकर पूरी पर्याय होती है। जब ज्ञान का कार्य चल रहा है, दर्शन का कार्य मिट जाता है क्या ? नहीं। दोनों का कार्य चल रहा है, परंतु पूरी एक पर्याय उपयोगरूप नहीं है। यहां उपयोग की बात चल रही है - या तो ज्ञानोपयोग होता है या दर्शनोपयोग होता है। दर्शनोपयोगपूर्वक ज्ञानोपयोग होता है।

तत्त्वविचार जब शुरू किया था तब हमने पहले जो पढ़ा था या सुना था उसको मन के द्वारा याद किया। यह मतिज्ञान यानी मन के द्वारा स्मरण में लिया। फिर उस पर तत्त्वविचार चला तो मतिज्ञान के पहले दर्शनोपयोग हुआ था। फिर मतिज्ञान में तत्त्वों को स्मरण में लिया। उस पर विचार चला तो मतिज्ञानपूर्वक श्रुतज्ञान भी हुआ और फिर उन शब्दों के अर्थ में हम उपयोग लगाते हैं। यह ज्ञान की जो पर्याय चल रही थी, उसी ज्ञानोपयोग में यह कार्य हुआ। ज्ञानोपयोग के चलते हुये यह सब कार्य होगा इसलिये साकार ज्ञानोपयोग में सम्यक्त्व होता है ऐसा कहते हैं। तत्त्वविचार से ही ये बातें होंगी। 'देखो यह तत्त्वविचार की महिमा' हमने कितनी बार सुना है न मोक्षमार्गप्रकाशक में ! तत्त्वविचारवाला ही इसका अधिकारी है। व्रत धारण किये, संयम धारण किये इसलिये यह होगा ऐसा नहीं है। उसके भी अगर होता है तो वह भी तत्त्वविचार से होगा। भले पहले उन्होंने मुनिदीक्षा ली है तो पहले से सातवें में जा सकता है। यदि उतनी विशुद्धि बढ़े और उसके वैसी सातवें में जाने की योग्यता हो तो उसके सातवां गुणस्थान होगा।

यहां पर प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त होने की योग्यता किसके है ? उसकी बात चल रही है। *श्रोता: यहां निद्रा और प्रचला का उदय हो सकता है क्या ?* हां, हो सकता है परंतु उसको जाग्रत अवस्था में ही ले लिया है। देखो, निद्रा, प्रचला का उदय बारहवें गुणस्थान के उपांत्य समय तक है। उसका इतना मंद उदय होता है, नहीं के बराबर होता है तो हम जाग्रत अवस्था कहते हैं। कौनसे कर्म का उदय है कि नहीं है ये सब बातें केवलज्ञानगम्य होती हैं इसलिये निद्रा, प्रचला को नहीं लिया यहां, तीन निद्राओं को ले लिया। हम ऐसा सोचेंगे, अरे ! श्रेणी में भी निद्रा और प्रचला का उदय कैसे हो

सकता है ? होता है।

श्रोता: दर्शन की पर्याय स्वतंत्र है और ज्ञान की पर्याय स्वतंत्र है। जब दोनों की पर्याय मिल जाती हैं तब जीव को दर्शनपूर्वक ज्ञान होता है ? ज्ञान की और दर्शन की पर्याय स्वतंत्र होने पर भी दोनों उपयोगों का मिलकर चेतना का उपयोग कहलाता है। चेतना के ये दो भेद हैं - दर्शन और ज्ञान। उसका कार्य है ग्रहण करना; ग्रहण कहो, प्रतिभास कहो, अवलोकन कहो - जो कुछ है। उपयोग में दो भेद पड़ते हैं- ज्ञान और दर्शन। उपयोग में, उनकी स्वतंत्रता बतानी है। उनकी पूरी पर्याय लब्धि और उपयोग मिलकर होती है। ज्ञान और दर्शन दोनों गुणों की पर्याय चलती है परंतु उपयोग एक में चलेगा। यह उपयोग की बात अलग है और पूरी पर्याय की बात अलग है। अब यहां मिथ्यात्व गुणस्थानवाला प्रथमोपशम सम्यक्त्व को प्राप्त करता है तो उसके पहले पूर्व अवस्था में पांच लब्धिपूर्वक सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है। उसको यहां पंचलब्धि कहेंगे। यहां कौनसी पांच लब्धि की बात है ? प्रथमोपशम सम्यक्त्व के पहले होनेवाली पांच लब्धि की। उनका वर्णन भी शास्त्र में आता है। तीसरे नंबर की गाथा पढ़ेंगे। देखो-

खयउवसमियविसोही देसणपाउग्गकरणलद्धी य।

चत्तारि वि सामण्णा करणं सम्मत्तचारित्ते ॥ ३ ॥

देखो क्या कहते हैं ? दैनिक स्वाध्याय में जब पढ़ते हैं तो संस्कृत में भी गाथा पढ़ते हैं, इसलिये हमारे स्वाध्यायियों ने संस्कृत गाथा भी पढ़ना प्रारंभ किया। क्षयोपशम, विशुद्धि हर एक के आगे लब्धि शब्द लगा दो यानी हम कैसे पढ़ेंगे ? **क्षयोपशमलब्धि, विशुद्धिलब्धि, देशनालब्धि, प्रायोग्यतालब्धि और करणलब्धि ये पांच लब्धि हैं।** आगे कहते हैं **वहां आदि की चार तो साधारण हैं।** यह साधारण है इसका अर्थ क्या ? कॉमन है। किसमें ? भव्य के भी हो सकती हैं और अभव्य के भी हो सकती हैं। अभी देखेंगे हम, अभव्य जीव के भी प्रायोग्यलब्धि में होनेवाली कर्मों की सभी अवस्थाएं होती हैं- कितनी ही प्रकृतियों का बंध रुक जाता है- वहां तक वह पहुंचेगा। परंतु करणलब्धि उसके नहीं हो सकती और उसको सम्यक्त्व भी नहीं होगा। इसलिये कहेंगे ये चार तो साधारण हैं, सामान्य हैं यानी अभव्यों के भी होती हैं। **भव्य के और अभव्य के भी होती हैं। परंतु करणलब्धि भव्य ही के सम्यक्त्व और**

चारित्र के साध्यभूत होते हुये ही होती है। कब होगी ? अभी-अभी सम्यक्त्व होनेवाला है ऐसी अवस्था में उसके करणलब्धि होगी। भव्य है इसलिये होगी ऐसा नहीं; उसके भी होगी तो पुरुषार्थ से ही होगी, अपने स्व समय में ही होगी, उसकी होनहार होगी तो ही होगी। पांचों ही समवाय उसमें लगा लेना। उसके निमित्तरूप से कर्म की जो कुछ उपशमादि अवस्थायें होती हैं वे भी उसमें हो जायेगी। करणलब्धि के अनंतर उसको सम्यक्त्व की प्राप्ति होगी।

देखो यहां पांच लब्धियों के जो नाम बताये हैं न, अन्य-अन्य ग्रंथों में उनके अन्य-अन्य नाम बताये हैं। यहां हमने कौन-कौनसे नाम देखे ? यहां बोर्ड पर हैं न ! कौन बतायेगा ? हां, बोलो-बोलो। *श्रोता: क्षयोपशमलब्धि, विशुद्धिलब्धि, देशनालब्धि, प्रायोग्यलब्धि और करणलब्धि।* अभी हम उनके अर्थ भी देखेंगे क्रम से। इसके ही अन्य-अन्य ग्रंथों में अन्य भी नाम आते हैं। सागार धर्माभूत ग्रंथ में लिखा है संज्ञीत्व यानी संज्ञी पंचेन्द्रियपना, शुद्धि, देशना, कर्महानि और अस्त मिथ्यात्व ऐसे पांच नाम दिये हैं। नियमसार में तो और अलग नाम बताये हैं। वहां लिखा है काललब्धि, करणलब्धि, उपदेशलब्धि, उपशमलब्धि और प्रायोग्यतालब्धि। उसका अलग-अलग वर्णन किया है। अलग-अलग उसका जो कुछ क्रम है उसकी भी बात अलग से की है।

अभी हमने पढ़े हैं उसी क्रम से हम उनका अर्थ भी देखेंगे। उसमें क्या-क्या बातें होती है, जीव के परिणामों में क्या होता है, कर्म में क्या होता है - उसकी चर्चा यहां हम विस्तार से करनेवाले हैं। जब तक करणलब्धि का अंतिम समय है तब तक जीव का गुणस्थान कौनसा है ? *श्रोता: मिथ्यात्व गुणस्थान।* मिथ्यात्व गुणस्थान है। क्योंकि मिथ्यात्व गुणस्थान में ही जीव पांच लब्धि के अंतिम समय तक पहुंचा है और अनंतर-नेक्स्ट समय में उसको सम्यक्त्व होगा, औपशमिक सम्यक्त्व। करणलब्धि में अंतिम लब्धि है अनिवृत्तिकरण। हर एक का अपना-अपना अंतर्मुहूर्त होता है। अनिवृत्तिकरण का अंतिम समय बीत चुका और नेक्स्ट समय में क्या होगा ? उसको औपशमिक सम्यक्त्व की प्राप्ति होगी। औपशमिक सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है यानी कर्मों में क्या-क्या होता है, जीव में क्या-क्या होता है हम उसकी चर्चा करने जा रहे हैं।

श्रोता: करणलब्धि के परिणाम सम्यक्त्व से पूर्व होते हैं ? जब-जब सम्यक्त्व और चारित्र की बात आती है, अनंतानुबंधी की विसंयोजना होती है वहां भी तीन करण

परिणाम होते हैं। जब उपशमश्रेणी चढ़ी जाती है, उसके पहले द्वितीयोपशम करने के लिये भी तीन करण परिणाम अलग, जब उपशमश्रेणी चढ़ते हैं उसके तीन करण परिणाम अलग। नाम तो उनके यही हैं। जब क्षपकश्रेणी चढ़ी जाती है वहां पर भी तीन करण परिणाम होते हैं। क्षायिक सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है तब भी वहां पर तीन करण परिणाम होते हैं। करणानुयोग में करणलब्धि के परिणाम या करण परिणामों की चर्चा होती है। द्रव्यानुयोग में हम शुद्धोपयोग और अशुभोपयोग, शुभोपयोग की बात करते हैं। करणानुयोग में तो करण परिणामों की बात होगी। हां, इसलिये जयसेनाचार्य हमेशा दोनों ही बातें बताते हैं। करणानुयोग की भाषा में ऐसा और द्रव्यानुयोग की भाषा में ऐसा। हां ऐसा बताते हैं।

श्रोता: सादि मिथ्यादृष्टि को भी पांच लब्धिपूर्वक प्रथमोपशम सम्यक्त्व होता है ? बिलकुल-बिलकुल सादि मिथ्यादृष्टि जीव को भी क्योंकि उसका बीच में कितना काल बीत गया ? पल्य के असंख्यातवें भाग और उसके बाद वह प्रथमोपशम कर रहा है तो उसके भी पांचों लब्धि होनी चाहिये। वेदक सम्यक्त्व के लिये वह कंडिशन नहीं है। उसकी बात तो आगे चलकर आयेगी। हां क्या प्रश्न है ? *श्रोता: कोई जीव एक भव में औपशमिक सम्यक्त्व कितनी बार कर सकता है ?* आपका प्रश्न है एक भव में औपशमिक सम्यक्त्व कितनी बार हो सकता है ? कोई बतायेगा यहां पर ? *श्रोता: एक बार होगा।* तो ३३ सागर का नारकी क्या करेगा और ३१ सागर का ग्रैवेयकवाला और तीन पल्य का भोगभूमिवाला ? हां, तो जिसकी आयु पल्यों में है उसके तो अनेक बार भी प्रथमोपशम सम्यक्त्व हो सकता है। ख्याल में आयी बात ? हम अपनी आयु की अपेक्षा बात करते हैं तो इस आयु में एक बार होगा। यदि गिरेगा तो वेदक सम्यक्त्व अंतर्मुहूर्त में हो सकता है। प्रथमोपशम नहीं होगा, वेदक हो सकता है। यहीं रुकेंगे हम।

बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

८. क्षयोपशमलब्धि, विशुद्धिलब्धि

आचार्य श्री नेमिचन्द्र सिद्धांतचक्रवर्ती ने इस लब्धिसार ग्रंथ की रचना की है। उसीके आधार से पं. टोडरमलजी ने सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका लब्धिसार-क्षपणासार भाषाटीका ढूंढ़ारी भाषा में लिखी है और अभी हम उसका हिंदी अनुवाद यहां देख रहे हैं। प्रथमोपशम सम्यक्त्व की अपनी प्ररूपणा यहां चल रही है। कौनसा जीव इसको प्राप्त कर सकता है उसकी पात्रता का हमने विचार किया।

हमने पांच लब्धि के नाम देखे; कौन बतायेगा इन पांच लब्धि के नाम ? हां बेटा, आप बताना। *श्रोता: क्षयोपशमलब्धि, विशुद्धिलब्धि, देशनालब्धि, प्रायोग्यलब्धि...* और करणलब्धि। करणलब्धि के कौनसे तीन परिणाम होते हैं ? अधःकरण को अधःप्रवृत्तकरण भी कहते हैं। अधःप्रवृत्तकरण कहो या अधःकरण कहो एक ही बात है। अधःप्रवृत्तकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण ये करणलब्धि के तीन परिणाम हैं। इन पांचों ही लब्धि का हर एक का अपना-अपना काल अंतर्मुहूर्त है। परंतु सबका मिलकर भी अंतर्मुहूर्त ही होता है। यानी प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त करने के जस्ट पहले एक अंतर्मुहूर्त तक ये पांच लब्धि होती हैं। चार लब्धि तो हमने देखी थी - वे तो सामान्य से होती हैं, अभव्यों के भी होती हैं और करणलब्धि मात्र भव्य के ही होगी। ये चार लब्धि एक साथ प्रकट भी हो सकती हैं। क्योंकि जिसके ऑलरेडि क्षयोपशमलब्धि, विशुद्धिलब्धि आदि चार लब्धि हैं - अभी उनकी क्या बात है, उनका स्वरूप क्या है उसको हम देखेंगे। चार लब्धि पूर्वक पांचवीं करणलब्धि प्राप्त होगी और उसको अंतर्मुहूर्त में सम्यक्त्व प्राप्त होगा।

कितने ही जीवों को ऐसा लगता है हमें चार लब्धि बहुत सालों से चल रही हैं। उसका काल कितना है ? *श्रोता: अंतर्मुहूर्त।* अंतर्मुहूर्त, एक ही अंतर्मुहूर्त तक। क्योंकि क्या लगता है ? हम संज्ञी पंचेन्द्रिय हैं तो हमें क्षयोपशमलब्धि है। विशुद्धिलब्धि तो हमारी है ही है और फिर हमने स्वामीजी से देशना सुन रखी है तो हमारे देशनालब्धि भी चल रही है। अभी हम तत्त्व का विचार भी करते हैं तो प्रायोग्यलब्धि भी प्राप्त है। *श्रोता: प्रयोग कर रहे हैं।* हां-हां प्रयोग कर रहे हैं अच्छा ! इसलिये है ! तो हमें चार लब्धि हैं कि नहीं हैं ? इसके बारे में बहुत भ्रमणा चलती है। यह पंचलब्धिवाली पुस्तक है न ! हां, आपने पढ़ी होगी शायद, इसमें ये पांचों ही लब्धि का स्वरूप बताया है।

उसमें बहुत सारी चर्चा भी की है। जब लिखा तब मेरा लब्धिसार का और अधिक अभ्यास हुआ। उसमें से और अन्य अनेक ग्रंथों में से यह बात निकली है। इसमें से एक भी बात मैंने अपने मन की नहीं लिखी है।

हम केवल संज्ञी पंचेन्द्रिय हैं यह अपनी क्षयोपशमलब्धि नहीं है। ज्ञान का क्षयोपशम होना अलग बात है और क्षयोपशमलब्धि जो सम्यक्त्व के पूर्व में होती है वह बात अलग है। क्षयोपशमलब्धि यह टर्मिनॉलॉजि सम्यक्त्व के बाबत में अगर नहीं होगी; तो एकेन्द्रियों को स्पर्शन संबंधी जो मति-श्रुतज्ञान है उसको भी उसकी क्षयोपशमलब्धि कहने में आती है। जितना-जितना ज्ञान का क्षयोपशम है उसको भी आगम ग्रंथों में क्षयोपशमलब्धि कहा है। परंतु उस क्षयोपशमलब्धि की इस क्षयोपशमलब्धि के साथ तुलना नहीं करना। वह बात अलग है, यह बात अलग है। यहां क्या होता है उसकी बात हम देखेंगे। विशुद्धिलब्धि चल रही है यानी कोई भी शुभभाव होना ऐसा उसका अर्थ नहीं लगाना है। यह कैसे होती है ? क्यों होती है ? उसका नाम क्या ? हमें लंबे काल से देशनालब्धि चल रही है ऐसा अर्थ नहीं लेना है। उसका अंतर्मुहूर्त का काल है। देशना अलग बात है, देशनालब्धि अलग बात है।

जिसके देशना भी मिली है, परंतु जिस काल में उसका तत्त्वविचार में उपयोग लगेगा उस काल में उसको देशनालब्धि चल रही है, ऐसा हम कहेंगे। क्योंकि हमने तत्त्व तो सुने हैं और स्वाध्याय भी बहुत रसपूर्वक हमने सुना। हमारी विशुद्धि भी बढ़ी और फिर टाइम होते ही हम चलो भाग निकले। किसीको घर के काम करने की जल्दी है, किसीको नौकरी पर जाना है, किसीको व्यापार धंधे में चले जाना है। तो जिसकी विशुद्धि हुयी थी उसके संक्लेश परिणाम चालू हो गये। उस काल में कुछ तत्त्वविचार नहीं रहा ! यदि किसीने देशना सुनी है और वह तत्त्वविचार करता है तो उस काल में उसके चार लब्धि एक साथ शुरू होती हैं, उस विशुद्धि में शुरू होती हैं। पर ऐसा नहीं समझना कि हम संज्ञी पंचेन्द्रिय हैं इसलिये हम क्षयोपशमलब्धिवाले हैं और हमने देशना कभी न कभी सुनकर रखी है तो हम देशनालब्धिवाले हैं - ऐसा बिलकुल नहीं है। इसमें बहुत भ्रमणा चलती है। अपनी कोई मिथ्या मान्यता होगी तो हम ग्रंथों के आधार से उसको टाल देंगे, है न ! तो इन एक-एक का अर्थ हम देखेंगे।

पहले में पहले क्षयोपशमलब्धि का अर्थ क्या है उसको देखेंगे। सम्यक्त्व संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों को होता है यह तो हमने पहले प्राथमिक योग्यता के रूप में देखा था। परंतु जिस काल में ज्ञानावरणादि समस्त अप्रशस्त कर्मों का अनुभाग प्रति समय अनंतगुणा हीन-हीन होकर उदय में आता रहता है। यानी पहले समय में जितना था दूसरे समय में उसके अनंतवें भाग प्रमाण हो जाता है। किसकी बात ? अनुभाग की। तीसरे समय में उससे भी अनंतवें भाग। इसतरह से प्रति समय अनंतवां भाग - अनंतवां भाग - अनंतवां भाग होता है। किसमें ? सभी अप्रशस्त कर्मों के अनुभाग उदय में । उस काल में उसको क्षयोपशमलब्धि कहने में आयेगी।

क्षयोपशम तो सब संज्ञी पंचेन्द्रिय को है। कोई तीव्र संक्लेशवाला है, उसको क्षयोपशम नहीं है क्या ? नींद में भी क्षयोपशम चल रहा है। संज्ञी पंचेन्द्रियपना क्षयोपशमलब्धि नहीं है क्योंकि हमें जो पांच इन्द्रियों संबंधी ज्ञान का उघाड़ है और मन संबंधी उघाड़ है वह तो नींद में भी चल रहा है। अरे कोई बेहोश अवस्था में है, कोमा में गया है उसका भी संज्ञी पंचेन्द्रियपना नष्ट नहीं हुआ है। मात्र संज्ञी पंचेन्द्रियपना क्षयोपशमलब्धि नहीं है। जिस काल में उसके ज्ञानावरणादि समस्त अप्रशस्त कर्मों का अनुभाग प्रति समय अनंतवें भाग - अनंतवें भाग होकर उदय में आता है ऐसी जब उसकी अवस्था होती है तो उस काल में उसको क्षयोपशमलब्धि कहने में आयेगी।

श्रोता: उस समय जीव के परिणाम कैसे होते हैं ? हां, जीव के परिणाम शुभ होते हैं। क्योंकि अप्रशस्त कर्मों में मोहनीय भी लेना है। मिथ्यात्व और चारित्रमोहनीय का अनुभाग भी अनंतवें भाग-अनंतवें भाग होकर उदय में आने लगता है, उसके फलस्वरूप जीव के परिणाम भी मंद कषायरूप रहते हैं यह ऐसा जीव लिया है कि अभी उसे देशना भी नहीं मिली है, परंतु उसके अंदर कोई ऐसी जिज्ञासारूप भाव है। ऐसा भाव अन्यमति को भी हो सकता है कि नहीं हो सकता ? क्योंकि वह विचार करने लगता है न कि मेरा स्वरूप क्या है ? ऐसे यह देह तो छूट जाती है। अभी-अभी बोल रहा था मेरे साथ, यह जीव कहां गया ? क्या हुआ ? मैं कौन हूं ? उसके ऐसे अंदर से कुछ न कुछ विचार जाग्रत होने लगते हैं और उसी काल में उसकी क्षयोपशमलब्धि होती है। अप्रशस्त कर्मों में मिथ्यात्व भी आया, अप्रशस्त कर्मों में सारे कषाय भी आये - वे भी मंद-मंद होकर उदय में आने लगते हैं। तब उसके धर्मानुरागरूप शुभभाव

यानी विशुद्धरूप परिणाम चलते हैं। वह आगेवाली विशुद्धि है वह अलग है। तत्त्वविचार के काल में विशुद्धि होगी वह बहुत ज्यादा होगी वह बात नहीं है।

अभी उसके कषाय इतने मंद हैं कि अंदर से कुछ न कुछ विचार जाग्रत होने लगे हैं। उसके कोई जिज्ञासा उत्पन्न हुयी और उसके निमित्त से वहां शुभभावरूप; कैसे शुभभाव ? धर्मानुरागरूप। कैसे ? कोई सुनाता है या कोई कहीं बात चलती है तो सोचता है देखें तो सही, सुने तो सही क्या कहते हैं ? क्योंकि यहां जीव के अपने स्वरूप की बात चलती है और उसे जिज्ञासापूर्वक जो सुनता है; जरूरी नहीं वह जैन ही होना चाहिये। अरे ! यह चारों गति के जीवों को होता है। तो मनुष्यगति में जैनियों में जन्मनेवाले को ही होता है ऐसा कहीं लिखा है ? नहीं। यह तो केवल कौनसी जाति बतायी ? पंचेन्द्रिय जाति, वह भी संज्ञी पंचेन्द्रिय। जिस जीव के अपना स्वरूप जानने की जिज्ञासा होती है, उसके कर्मों में ऐसा ही अनुभाग हीन होकर मंदरूप से उदय में आने लगता है। क्षयोपशमलब्धि और विशुद्धिलब्धि एक ही बात के दो पहलू हैं। जैसे एक सिक्के-कॉइन के दो बाजू कहते हैं न ? क्षयोपशमलब्धि में अप्रशस्त कर्मों का अनुभाग हीन होता है यानी मोहनीय का भी अनुभाग मंद हो रहा है। तो कषाय और मिथ्यात्व भी मंद हो रहे हैं। तो नचरली उसके निमित्त से उसके शुभभाव भी हो रहे हैं।

ऐसे शुभभाव होते हैं कि जहां तत्त्व की बात चलती है, उसको सुनने का मन होगा। सुनानेवाले मिले तो सभी सुनने के जिज्ञासु नहीं होते। क्योंकि जिसको यह बात समझ में आती है उसको ऐसा लगता है कि इसको और लोग भी सुने ! वह सबको पकड़-पकड़ कर सुनाना चाहता है ! उससे क्या होता है ? हमारे अपने-सारे रिलेटिव्हज् क्या करते हैं ? दूर भागना चाहते हैं क्योंकि सबको तो रुचि नहीं होती। यह क्या रात दिन आत्मा-आत्मा की बात करते हैं ऐसा उनको लगता है। वह तो अपने लिये भी अच्छा होता है क्योंकि उतनी शांति मिलती है। जिसको विषय कषायों में रुचि है उसको आत्मा की बात अच्छी नहीं लगती है। शास्त्र में ऐसा लिखा है- जो अत्यंत तीव्र परिणामवाले मिथ्यादृष्टि जीव हैं वे तो उपदेश देने के लायक भी नहीं हैं; यह देखना वक्ता का कर्तव्य है, उपदेशदाता का कर्तव्य है - वहां तो ऐसा लिखते हैं। तीव्र अनुभागवाले मिथ्यात्व का जिसका उदय चल रहा है वह उपदेश देने के योग्य नहीं है। हम देखते हैं न किसीको यह बात नहीं पसंद पड़ती। इतना ही नहीं वह उपदेश

सुनकर चिढ़ जाता है और उपदेश करनेवालों के प्रति उलटा विघ्न लाता है इतना उसको द्वेष होता है। यह जीव पात्र नहीं है। कोई भी दान दिया जाता है तो पात्र-अपात्र का विचार करके दिया जाता है। यह ज्ञानदान तो महान दान है ! जिसमें मोक्ष प्राप्ति का उपाय बताया जाता है; वह उपदेश भी पात्र जीवों को देखकर ही दिया जाता है। हमें ख्याल में आ गया है कि इस जीव को रुचि नहीं है तो जबरदस्ती पकड़कर उसको वह डोस पिलाने की जरूरत नहीं है।

देखो, हम देखते हैं हम कहीं ट्रेन में जाते हैं। तब बाजूवाले कोई अन्यमति के साथ तत्त्व की ऐसी कोई बात निकलती है कि गहरी तत्त्वचर्चा तक पहुंच जाते हैं। क्यों ? उसको ऐसी जिज्ञासा होती है कि उसके साथ वह सत्य बात निकलती है। कितने ही ऐसे जीव हमें मिलते हैं। जब मैं प्रॅक्टिस करती थी तो मेरी डिस्पेंसरी के सामने एक मुस्लिम मेकॅनिक था, हां मोटर मेकॅनिक। जब मेरे पास पेशेंट नहीं होते थे, मैं खाली बैठी हूं देखता था तब आकर बैठता था। मैं कुछ न कुछ पढ़ती हूं देखकर कहता था आप इतना सब पढ़ती हैं। हमें बताओ न आपके धर्म में क्या बताया है ? उसकी इतनी गहरी रुचि थी ! एक अन्यमति साधारण आदमी को भी ऐसी जिज्ञासा हो सकती है। ऐसा जरूरी नहीं कि वह जैन ही होना चाहिये या अपना ही कोई मुमुक्षु होना चाहिये। तो यहां बात क्या हो रही हैं ? क्षयोपशमलब्धि और विशुद्धिलब्धि एक ही काल में होनेवाली बातें हैं। उनको कारण और कार्य के रूप में यहां प्रस्तुत कर रहे हैं। इसलिये पहला नाम क्षयोपशमलब्धि का लिया और दूसरा नाम विशुद्धिलब्धि का लिया। हम यहां ग्रंथ के आधार से ४२ पृष्ठ पर क्षयोपशमलब्धि की परिभाषा पढ़ेंगे।

गाथा नंबर ४ की टीका देखो- **कर्मों में मलरूप जो अप्रशस्त ज्ञानावरणादि का पटल अर्थात् समूह** कर्मों में मलरूप क्यों कहा है ? यह कर्म इटसेल्फ मल है और उसमें भी जो अप्रशस्त कर्म हैं उनको यहां लिया। **उसकी शक्ति अर्थात् शक्ति का अर्थ क्या है ? अनुभाग वह जिस काल में समय-समय प्रति अनंतगुणा घटता अनुक्रमरूप होकर उदय में आता है** अनंतगुणा घटता यानी अनंतवें भाग होकर। कर्म की शक्ति हम किसमें नापते हैं ? अविभागप्रतिच्छेदों में। प्रत्येक कर्म में अविभागप्रतिच्छेद अनंत-अनंत होते हैं, उस अनंत का भी अनंतवां भाग होकर उदय में आता है। यह बहुत बड़ा अनंत है। उसका अनंतवां भाग होकर उदय में आता है।

दूसरे समय में उसका भी अनंतवां भाग, तीसरे समय में उसका भी अनंतवां भाग ऐसे अप्रशस्त कर्म हीन-हीन होकर उदय में आने लगते हैं। **उस काल में क्षयोपशमलब्धि होती है।**

हमने इसका काल कितना देखा ? एक अंतर्मुहूर्त। अंतर्मुहूर्त तक समस्त अप्रशस्त कर्मों का अनुभाग प्रति समय अनंतवां भाग-अनंतवां भाग होकर उदय में आने लगता है। देखो, ज्ञानावरण की शक्ति हीन होती है; इसका अर्थ क्या है ? ज्ञान खिल रहा है, है न ! ज्ञान का विकास हो रहा है। जितना पहले था; अंतर्मुहूर्त की बात है। तत्त्वविचार के काल में विशुद्धि और भी बढ़ती है, वह तत्त्वविचारवाला यहां नहीं लिया है। जब तत्त्वविचार की बात करेंगे तब बाद में समझायेंगे। जिसको देशना मिली है और जो तत्त्व का विचार करता है उसके तो चारों लब्धि एक साथ चालू हो जाती हैं। इसलिये मैंने तत्त्वविचार के काल में ऐसा कहा। अभी यहां हम एक-एक लब्धि की बात करेंगे। अभी तो जिसको देशना नहीं मिली ऐसा जीव यहां लेते हैं। सहजरूप से ऐसी बातें बनती हैं कि वहां उसको मंद कषायरूप परिणाम चलते हैं। क्यों ? क्योंकि समस्त अप्रशस्त कर्मों में मोहनीय का भी अनुभाग मंद होकर उदय में आने लगता है।

ऐसा भी ले सकते हैं कि ऐसी बातें होती हैं कि जो पहले बंधे हुये अप्रशस्त कर्म हैं उनका अभी सहजरूप से मंद उदय चल रहा है। हम लौकिक में भी देखते हैं कोई सज्जन हैं, भले हैं, किसीका बुरा नहीं चाहते हैं यानी उनके मंद कषायरूप परिणाम चल रहे हैं और उसीमें वे संतुष्ट होकर रह जाते हैं कि वे अच्छे हैं, भले हैं। वे कहते भी हैं न, आप तो स्वाध्याय करते हैं फिर भी बहुत क्रोध करते हैं। आपसे तो हम अच्छे हैं सबको मदद करते हैं यानी वे उतने मात्र में संतुष्ट होकर रह जाते हैं। वह बात यहां नहीं लेनी है। यहां तो अंतर्मुहूर्त में जो बातें बनती हैं उसकी बात चल रही है।

यहां देशघाति प्रकृतियों को देशघाति स्पर्धक और सर्वघाति स्पर्धक के रूप में बताया है। हमने पहले देखा था, घातिकर्म में सर्वघाति, देशघाति प्रकृतियां हैं। जो देशघाति प्रकृतियां हैं जैसे मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, उनमें देशघाति स्पर्धक भी हैं और सर्वघाति स्पर्धक भी हैं। उनके देशघाति स्पर्धक का उदय चलता है और सर्वघाति स्पर्धक देशघातिरूप हो-होकर उदय में आते हैं। मतिज्ञानावरण-श्रुतज्ञानावरण में ऐसी

बात चलती हैं, तभी तो हमारा मतिज्ञान-श्रुतज्ञान चलता रहता है। जिसको हम ज्ञान का क्षयोपशम कहते हैं, वह बात हमने पहले विस्तार से यहां देखी भी थी। ज्ञान का क्षयोपशम अलग बात है और क्षयोपशमलब्धि अलग बात है। यहां तो सभी अप्रशस्त कर्मों में लेना। सभी ? क्या असाता में भी ले सकते हैं हम ? हां-हां, अप्रशस्त में सबका अनुभाग मंद होकर उदय में आने लगता है।

हम क्या करते हैं ? पहले में पहले क्या करना चाहते हैं ? संयोग को ठीकठाक करना चाहते हैं और फिर स्वाध्याय करेंगे कहते हैं। जब हम बूढ़े हो जायेंगे न, रिटायर हो जायेंगे, हमारी बहू आ जायेगी तब हम स्वाध्याय करने लग जायेंगे। जब तक बहू नहीं आती तब तक ऐसा ही लगता है। बहू आने के बाद क्या होता है ? कहां बैठी है हमारी सरला, कहां गयी ? बहू भी आती है और बाद में उसके जुड़वां बच्चे भी आते हैं एक साथ। तो हमारी सास और बिड़ी हो जाती है ! यानी किसी संयोग के कारण हमें रुकना नहीं चाहिये क्योंकि संयोग से हम भिन्न ही हैं। चाहे जो संयोग हो, उसमें तो स्वाध्यायपूर्वक अपने आत्मा की अनुभूति करने का कार्य अवश्य करना चाहिये। संयोग कभी आड़े नहीं आते। हमें ऐसा लगता है कि संयोग के कारण हम रुके हैं, संयोग के कारण हम अटके हैं - ऐसा बिलकुल नहीं है। बुरा हो या अच्छा, अरे ! सातवें नरक का नारकी भी सम्यक्त्व प्राप्त कर सकता है तो क्या हम नहीं कर सकते हैं ? अरे ! गुरुदेवश्री की छत्रछाया में हमें इतना सारा माल मिल गया है कि उन्होंने अभी तत्त्वविचार कितना सरल, कितना सुलभ कर दिया। पहले तो इन ग्रंथों के अर्थ नहीं समझते थे। गुरुदेवश्री ने सरल करके द्रव्यानुयोग पूरा हमें अपने हाथ में दे दिया है।

यहां देशघाति, सर्वघाति की बात है। देशघाति स्पर्धक का उदय चल ही रहा है, वह भी अत्यंत मंद होकर उदय में आ रहा है यह बात बतानी है। जिस काल में कषाय मंद होते हैं वहां ज्ञान का उपयोग स्वाध्याय में लगाते हैं तो ज्ञान और खिलता है। यहां पर भी हमें ऐसा लगता है कि ये बातें हमारी कुछ समझ में नहीं आती। ऐसा नहीं है। हम इसमें उपयोग लगाते हैं, बार-बार इनको पढ़ते हैं तो ये बातें जरूर हमारे ज्ञान में आती हैं। क्योंकि इसमें ज्ञानावरण का अनुभागउदय कम होता रहता है न। इसमें उपयोग लगायेंगे तो ये बातें जरूर समझ में आयेगी। ऐसा कभी नहीं होता कि जिज्ञासा है और समझ में नहीं आवे; जिज्ञासा है और कोई समझानेवाला नहीं मिले ऐसा तीन

काल में नहीं होता। अपनी योग्यता से ही कार्य होता है। जहां योग्यता है वहां निमित्त जरूर मिलता ही है। निमित्त अपने आप हाजिर हो जाता है वहां पर। यहां ऐसी कोई जिज्ञासा उत्पन्न हुयी है उसी काल में ऐसे क्षयोपशमलब्धिरूप से सहज उसके अप्रशस्त कर्मों का अनुभाग भी मंद होता है और विशुद्धिलब्धि भी उसी काल में होती रहती है।

तीसरी लाइन- **क्योंकि उत्कृष्ट अनुभाग का अनंतवां भाग मात्र जो देशघाति स्पर्धक उनके उदय होने पर भी उत्कृष्ट अनुभाग का अनंत बहुभाग मात्र जो सर्वघाति स्पर्धक, उनके उदय का अभाव वह तो क्षय यानी यहां क्षयोपशम की परिभाषा समझायी है कि सर्वघाति स्पर्धकों के उदय का अभाव है। वे ही सर्वघाति स्पर्धक जो उदय अवस्था को प्राप्त न हुये हैं उनकी सत्ता अवस्था वह है उपशम; भविष्य में पड़े हैं वह उपशम; उनकी प्राप्ति वह क्षयोपशमलब्धि जानना।** उसमें भी सभी अप्रशस्त कर्मों का अनुभाग अनंतवां भाग होकर उदय में आना इसकी बात यहां क्षयोपशमलब्धि के रूप में ले लेना है।

अब आगे देखते हैं गाथा नंबर ५ की टीका- **पहली जो क्षयोपशमलब्धि उससे उत्पन्न जो जीव के साता आदि प्रशस्त प्रकृतियों के बंध के कारणभूत धर्मानुरागरूप शुभ परिणाम होते हैं,** अभी इसका विचार करेंगे। यदि संज्ञी पंचेन्द्रिय होना इतना ही अगर हम क्षयोपशमलब्धि का अर्थ करते हैं तो- संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव को अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्त में साता का बंध, असाता का बंध, साता का बंध, असाता का बंध चलता ही रहता है। यह तो नियम है कि लगातार अंतर्मुहूर्त काल तक साता का बंध होगा तो लौटकर असाता बंध का होगा ही होगा। यहां क्या लिखा है - क्षयोपशमलब्धि के फलरूप यहां क्या हो रहा है ? साता के बंधरूप शुभ परिणाम हो रहे हैं। साता आदि में कहा क्योंकि शुभ प्रकृतियां कहां होती हैं ? अघातिकर्मों में होती हैं। अघातिकर्मों में साता आदि का अर्थ क्या है ? वेदनीय में साता प्रकृति लेना, आयु बंधती होगी तो शुभआयु बंधेगी, नाम में शुभ नामकर्म बंधेगा और गोत्र में उच्चगोत्र। तो साता आदि प्रशस्त प्रकृतियों के बंध के कारणभूत परिणाम उसको यहां विशुद्धि कहेंगे।

साता आदि प्रशस्त प्रकृतियों के बंध के कारणभूत; देखो उस समय भी

घातिकर्म बंध रहा है वह अप्रशस्त ही है। साता आदि इसलिये कहा कि प्रशस्त और अप्रशस्त के भेद अघाति में हैं और यहां विशुद्धिलब्धि के काल में उसके कैसे परिणाम हैं ? विशुद्ध परिणाम हो रहे हैं यानी मंद कषायरूप हो रहे हैं। उसके कारण उस काल में उसको साता आदि का बंध हो रहा है; उस काल में क्योंकि वह अंतर्मुहूर्त तक ही रहेगा। इसलिये उतने अंतर्मुहूर्त तक की बात चल रही है। सभी लब्धि अंतर्मुहूर्त तक ही होती हैं क्योंकि जीव के कोई भी परिणाम हो - शुभ हो, अशुभ हो या शुद्ध हो जिसको द्रव्यानुयोग में हम उपयोगरूप कहते हैं; उसका भी अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्त काल है। **उसकी प्राप्ति वह विशुद्धिलब्धि है।** क्षयोपशमलब्धि में क्या हो रहा है ? अप्रशस्त कर्मों का अनुभाग घट रहा है। उसी काल में, अभी उसको हम निमित्तरूप से लेंगे; मोहनीय कर्म जो बंध का कारण है, उसका अनुभाग भी घटकर उदय में आ रहा है। तो यहां जीव के परिणाम कैसे होंगे ? मंद कषायरूप से चलेंगे; निमित्त की ओर से बात करेंगे तो। जीव के अपने परिणाम स्वयं की योग्यता से हो रहे हैं परंतु यहां कर्मों के आधार से हम जीव के परिणामों को बता रहे हैं। हां, वे तो बतानेवाले हैं। उस समय क्या होता है ? **अशुभकर्म का अनुभाग घटने पर संक्लेशता की हानि और उसके प्रतिपक्षी विशुद्धता की वृद्धि होना युक्त ही है।** कर्मों की ओर से बात हो रही है न !

हमने क्या देखा ? अशुभकर्मों का अनुभाग घटकर उदय में आ रहा है। सत्ता में क्या पड़ा है, उससे जीव को कुछ फल नहीं मिल रहा है। उदय में किसरूप से आ रहा है ? उनका अनुभाग घटकर उदय में आ रहा है। ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, अंतराय सभी कर्म अप्रशस्त ही हैं और बाकी असाता आदि भी अप्रशस्त ही हैं। उनका अनुभाग घटकर उदय में आ रहा है तो संक्लेश कम हो रहा है, विशुद्धि बढ़ रही है। एक को कारण और दूसरे को कार्यरूप से हम यहां क्षयोपशमलब्धि और विशुद्धिलब्धि को बता सकते हैं। एक ही काल में ये दोनों लब्धि होती हैं। विशुद्धिलब्धि यानी यह कोई बहुत व्रतादिक करता है ऐसा इसका अर्थ नहीं लेना है।

अभी हम आगे बढ़ेंगे। **देशनालब्धि का स्वरूप कहते हैं।** देशना अलग बात है और देशनालब्धि अलग बात है। देशनालब्धि कौनसे गुण की पर्याय है ? चाणेकरजी बतायेंगे आप ? हां। आप क्या कहते हैं अमृतभाई ? देशनालब्धि कौनसे गुण की पर्याय है ? *श्रोता: ज्ञान गुण।* ज्ञान गुण की पर्याय, आप क्या कहते हैं ? आपने चारित्र गुण

कहा। हां, बहुत अच्छा ! अरे अनंत गुण हैं किसीका भी नाम बता दो न ! देशना अलग बात है और देशनालब्धि अलग बात है, नहीं समझे ? देशना उपदेश को कहते हैं। कौनसा उपदेश ? पैसा कैसे कमाना ? नहीं, सर्वज्ञ भगवान द्वारा जो उपदेश मिला है और आचार्यों की परंपरा से ज्ञानियों के द्वारा जो चला आ रहा है। वह कौनसा उपदेश है ? मोक्षमार्ग संबंधी उपदेश है। छह द्रव्य, सात तत्त्व संबंधी जो उपदेश है, स्व-पर का भेदज्ञान संबंधी जो उपदेश है, मोक्षमार्ग का जो उपदेश है, उस उपदेश को यहां देशना कहेंगे और उसकी प्राप्ति होना देशनालब्धि है। प्राप्ति कहां होती है ? जब उसको समझेंगे तो उसकी प्राप्ति हुयी कहेंगे। वहां उपदेश चल रहा है, तो यहां हमें देशना मिले ऐसा थोड़ी है ! हम सुन रहे हैं और यहां कन्नड भाषा में उपदेश चल रहा है तो हम कुछ समझें ही नहीं तो हम उसको देशनालब्धि कहेंगे कि नहीं कहेंगे ?

देखो, ६ नंबर की गाथा पढ़ेंगे। **तदियलब्धी** यानी तृतीय लब्धि। तृतीय यानी कौनसी ? देशनालब्धि। किसको कहना ? देखो, नीचे संस्कृत में देखना। **षड्द्रव्य** - छह द्रव्य, नौ पदार्थ उसके उपदेशक कौन ? मूल तो तीर्थंकर भगवान। **सूरिप्रभृति** सूरि यानी आचार्य, प्रभृति यानी आदि, आचार्यादिकों का उपदेश। आचार्यादिक यानी कौन-कौन लेना उनमें ? आचार्य, उपाध्याय, साधु तो सब लेना ही लेना, पांचवें और चौथे गुणस्थानवालों को भी लेना। सर्वज्ञ भगवान तो मूल उपदेशक हैं, फिर गणधर हैं, आचार्य हैं, अन्य जो पांचवें, चौथे, गुणस्थानवाले ज्ञानियों को लेना उसमें। इनका लाभ होना और **देशित पदार्थ** देशित यानी उपदेशित, उपदेशित पदार्थ यानी जिन विषयों पर उन्होंने उपदेश दिया है उसको जानना। उसमें तो ऐसा आता है श्रवण यानी सुनना, ग्रहण यानी समझना, धारण यानी वह याद रखना क्योंकि उस पर विचार चलेगा न ! तत्त्वविचार तो उसीपर होगा जो बातें याद रहेगी। फिर धारण के बाद निर्धारण यानी ये तत्त्व ऐसे ही हैं ऐसा अपने ज्ञान के द्वारा निर्णय होना। परिणमन यानी उसरूप उसका परिणमन होना। ये सब बातें देशनालब्धि में आयेगी।

देखो, पृष्ठ ४३ पर टीका पढ़ेंगे- **छह द्रव्य, नौ पदार्थ का उपदेश करनेवाले आचार्यादि का लाभ**, गाथा में तो थोड़े में ही लिखते हैं न। आचार्यादि में सब ले लेना क्योंकि मूल उपदेशकर्ता तो सर्वज्ञ भगवान हैं। उन्हीं के द्वारा जो उपदेश हमारे तक आया है उसीकी बात है। कोई कहता है मैंने ऐसा उपदेश दिया, मैंने कोई मार्ग शुरू

किया। अगर सर्वज्ञ भगवान के साथ उसका कनेक्शन नहीं होगा, सर्वज्ञ की परंपरानुसार वह उपदेश नहीं होगा तो वह असत्य है। **उनके उपदेश की प्राप्ति** पहले में पहले आचार्यादि का लाभ यानी ज्ञानियों का लाभ होना। उपदेश देनेवाले ज्ञानियों का लाभ। उनके उपदेश की प्राप्ति क्योंकि ज्ञानी तो है, उनका उपदेश ही नहीं मिला- तो उसे उपदेश की प्राप्ति नहीं कहेंगे। **अथवा उपदेशित पदार्थ के धारण करने की, धारण करने यानी समझकर याद रखने की प्राप्ति वह तीसरी देशनालब्धि है।** तु शब्द से नारकादि में जहां उपदेश देनेवाला नहीं है वहां पूर्व भव में धारणा में लिये हुये तत्त्वार्थ के संस्कार के बल से सम्यग्दर्शन की प्राप्ति जानना।

देखो, जरा विस्तार से इसका अर्थ देखते हैं । क्या कहते हैं ? देशनालब्धि के लिये देशना निमित्तरूप है। किसकी देशना होती है ? ज्ञानी की ही देशना होती है; देशना में अज्ञानी के उपदेश को देशना नहीं कहते। यह तो नियमसार में भी बात आयी है भाई। आप अभी नियमसार ले रहे हैं न ? ज्ञानी की ही देशना होती है और उसकी प्राप्ति होना देशनालब्धि है। भले इस भव में नहीं, किसीको पूर्वभव में ज्ञानी की देशना मिली हो, तो तीन भव पूर्व तक की देशना काम आती है और इस भव में निमित्त क्या होता है ? उसने पूर्व की देशना धारणा में ली होगी तो कोई ग्रंथ पढ़कर पूर्व का उपदेश याद आता है, उसका भावभासन होता है। किसीके तो जिनबिंब देखकर होता है। नरक में तो वह कुछ भी नहीं है, वहां तो तीव्र वेदना होती है। वेदना के काल में जीव के विचार कुछ ऐसे चलते हैं कि पूर्वभव की देशना वहां काम करती है। सातवें नरक में कौन समझाये उनको ? हमारा आपस में कुछ समझने-समझाने का भाव चलता है, वहां नारकियों में आपस में लड़ाई झगड़े ही चलते रहते हैं। उस पर्याय में वैसा ही उनका सहज स्वभाव है। वहां भी जीवों को सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है।

देशनालब्धि में देशना तो तीन भव पूर्व तक की हो सकती है, मात्र एक कंडिशन है। उसका संज्ञीपना चलना चाहिये। आगे लिखा है तत्त्वार्थ के संस्कार। तत्त्वार्थ के संस्कार का अर्थ क्या है ? यह संस्कार क्या है ? कौनसे गुण की पर्याय है ? *श्रोता: ज्ञान गुण की।* ज्ञान गुण की। हम क्या मानते हैं ? संस्कार यानी बच्चों पर संस्कार डालने चाहिये। वह आचरण के संस्कार की बात यहां नहीं है। चारित्र गुण की कौन बात कर रहे हैं ? हां, चारित्र गुण की पर्याय को संस्कार नहीं कहेंगे। हम आचरण को

संस्कार कहते हैं, यह हमारे हिंदुस्तानी संस्कार हैं, भारतीय संस्कार हैं वह बात यहां नहीं है। संस्कार ज्ञान गुण की पर्याय है, तो संस्कार किसको कहेंगे ? कौनसे ज्ञान को ? बोलो सिंगतकरजी ? हां, अपनी धवला में बहुत बातें चलती है उस पर हां। *श्रोताः तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्। श्रोताः तत्त्वार्थ का विचार करना।* नहीं-नहीं, देखो-देखो ! यह कौनसी बात संस्कार में चलेगी ? जो धारणा तक पहुंची है वही चलेगी। मतिज्ञान में हम क्या कहते हैं ? अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा। तो धारणा किसको कहते हैं ? कब कहेंगे धारणा ?

देखो, हम धारणा किसको कह रहे हैं ? जो जानी हुयी बात ज्ञान की हर पर्याय में चल रही है उसको धारणा कह देते हैं। यह हमारी धारणा में है कहना सही नहीं है। धारणा उसीको कहते हैं जो संस्कार का कारण है। धारणा की यह परिभाषा धवला में भी आयी है, जयधवला में भी आयी है। संस्कार यानी ज्ञान की हर एक पर्याय में वह धारणा तक पहुंचे हुये ज्ञान की धारा चलती रहती है। वह लब्धरूप से ज्ञान की हर एक पर्याय में चल रही है, उपयोगरूप भले न हो। यह आपके कॉम्प्यूटर में मेमरी में डालते हैं, क्या करते हैं ? उसका बटन दबाया तो जो डाला है, सेव्ह किया है वह रहेगा वहां। यहां क्या होता है ? जो धारणा तक पहुंचा है; हमें बचपन की कुछ बातें - कुछ घटनायें याद आती हैं। सभी तो नहीं आती हैं, कुछ-कुछ - तो वे कैसी हैं ? वे धारणा तक पहुंची हैं और ज्ञान की हर एक पर्याय एक स्वतंत्र पर्याय है। फिर भी हर पर्याय में उतना ज्ञान - उतना ज्ञान -उतना ज्ञान लब्धरूप से चलता रहता है। उसको संस्कार कहते हैं। वह ज्ञान संस्काररूप है। वह ज्ञान भले उपयोग में नहीं है, परंतु ज्ञान की हर पर्याय में स्वतंत्ररूप से उतना ज्ञान - उतना ज्ञान चल रहा है। तब हम उसको कहेंगे संस्कार। यदि बीच में वह लुप्त हो गया, निकल गया तो कुछ काम का नहीं है।

कुछ बातें ऐसी होती हैं हम भूल भी जाते हैं। बाद में कुछ काल के लिये याद आती है। बचपन में हमने क्या-क्या याद किया था ? स्कूल की सब बातें - कितनी कवितायें, प्रश्नोत्तर, सब कुछ याद किया था। अभी कितनी ही बातें हम भूल भी गये। कुछ काल तक रहे संस्कार, बाद में वे भी निकल गये। तो संस्कार हम उसीको कहते हैं, जो ज्ञान धारणा तक पहुंचा है और वह ज्ञान की हर पर्याय में चल रहा है। यह संज्ञी पंचेन्द्रियपना तीन भव तक चल रहा हो तो देशना भी तीन भवों तक काम आती है,

अधिक भवों तक नहीं। मेरा प्रश्न है एक छोटासा- इन्द्रभूति गौतम अन्यमति था। इंद्र ने जाकर प्रश्न पूछा था कि यह छह द्रव्य, नौ पदार्थ आदि क्या होते हैं ? तो उन्होंने क्या बोला ? मैं तुम्हारे गुरु के साथ चर्चा करूंगा। वे आये यहां, महावीर भगवान के समवसरण में। तो उनको किसके निमित्त से सम्यग्दर्शन हुआ ? भगवान महावीर के निमित्त से हुआ कि नहीं हुआ ? *श्रोता: नहीं हुआ।* नहीं हुआ। तो किसके निमित्त से हुआ ? मानस्तंभ के जिनबिंब देखकर हुआ। क्यों ? उन्हें भगवान महावीर की देशना मिली कि नहीं मिली ? *श्रोता: बाद में मिली।* बाद में मिली तो सम्यग्दर्शन के बाद देशना हुयी है ? नहीं-नहीं। *श्रोता: देशना बाद में खिरी।* उनकी दिव्यध्वनि बाद में खिरी। परंतु इन्द्रभूति को देशना कब मिली ? पूर्वभव की देशना से उनको सम्यक्त्व हुआ था। मिथ्यादृष्टि के निमित्त से भगवान की वाणी खिरेगी नहीं।

ऐसा नियम है कि जो तीर्थकरों के सामने जाकर दीक्षित होते हैं, मुनि अवस्था धारण करते हैं, उन्हें सातवां गुणस्थान प्रकट होने पर जो चार ज्ञान के धारी होते हैं - उन्हीं के निमित्त से वाणी खिरती है। इन्द्रभूति भले पूर्व में वैदिक था और गृहीत मिथ्यादृष्टि था। उसकी बात नहीं है। अभी वह सम्यग्दृष्टि हुये, मुनिराज हुये और उनके निमित्त से वाणी खिरी, परंतु महावीर भगवान की वाणी से उनको देशना नहीं मिली थी। उनके निमित्त से वाणी खिरी वह बात अलग है। परंतु उनको देशना पूर्वभव में मिली थी और अभी जिनबिंब देखकर उसका भावभासन हुआ, उनको सम्यक्त्व हुआ, वे समवसरण में अंदर चले गये, मुनिदीक्षा ली। यह सहजरूप से ऐसी बातें होती हैं। तो पूर्वभव की भी देशना हो सकती है; परंतु बिना देशना के सम्यक्त्व होता ही नहीं। दो कंडिशन्स बतायी- ज्ञानी की ही देशना होती है और बिना देशना के सर्वथा निसर्गज सम्यक्त्व होता ही नहीं।

हमने तो तत्त्वार्थसूत्र में पढ़ा है- सम्यक्त्व निसर्गज भी होता है। परंतु उस भव में कोई ज्ञानी गुरु नहीं मिले तो हम कहेंगे उसको निसर्गज हुआ, परंतु पूर्व की देशना होनी ही चाहिये। सर्वथा निसर्गज सम्यक्त्व होता ही नहीं। यह बात बिलकुल आगम के आधार से मैं बोल रही हूं। हां, तो पूर्वभव की वह देशना थी। अधिगमज यानी इस भव में कोई ज्ञानी गुरु मिले तो हम कहेंगे अधिगमज है। पूर्वभव में किसी ज्ञानी की देशना मिली हो तो अभी वर्तमान में कोई ग्रंथ पढ़कर भी स्वयं देशनालब्धिरूप परिणमित

होते हैं, जैसे गुरुदेवश्री को इस भव में समयसार हाथ में आया और पढ़कर सम्यग्दृष्टि हुये। पढ़नेवाले तो बहुत थे। हम तो मूल दिगंबरी थे। हमको तो वह कुछ ख्याल में नहीं आता था। उन्होंने अन्य संप्रदाय में जन्म लिया, वहां की मुनिदीक्षा भी ली और फिर जब समयसार हाथ में आया; मोक्षमार्गप्रकाशक पढ़ा तब सत्य बात ख्याल में आयी, पूर्व भव की देशना थी तो उन्होंने वह पढ़कर 'यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है' ऐसा निश्चित किया। स्थानकवासी संप्रदाय छोड़कर दिगंबर जैन सामान्य श्रावक की भूमिका अंगीकार करके उन्होंने अपना स्वयं का तो कल्याण किया ही किया। उनके निमित्त से लाखों लोगों का कल्याण हुआ और उन्हीं के निमित्त से अभी भी सब जगह स्वाध्याय की परंपरा चल रही है।

ऐसे कोई जीव हैं कि पूर्व की देशना भी उनके काम करती है। वर्तमान में उनके लिये बाह्य निमित्तरूप से जिनबिंब दर्शन हो सकता है या कोई शास्त्र का पठन हो सकता है। अन्य कोई ऐसी चीज़ें देखने पर वह पूर्व की देशना उनके काम कर जाती है। परंतु कब ? जब संस्काररूप से चली आयी हो और उपयोगरूप हो जाये तो। *श्रोता: ज्ञानी यानी चौथा गुणस्थान भी लेंगे ?* चौथा गुणस्थान भी ज्ञानी का ही होगा। जो ज्ञानी है यानी जिन्होंने आत्मानुभूति कर ली है उन्हीं की बात है। *श्रोता: भरत चक्रवर्ती के पुत्रों को, उनको देशना कहाँ मिली थी ?* उनको तो आदिनाथ भगवान की देशना मिली। वे वहां भगवान के समवसरण में आये थे, वहां उनकी देशना चलती थी।

देखो, एक प्रश्न आया था किसी भाई का। *सम्यक्त्वसन्मुख मिथ्यादृष्टि विदेहक्षेत्र में जन्म ले सकता है क्या ? कौनसा जीव विदेहक्षेत्र में जन्म ले सकता है कृपया समझाने का कष्ट करें।* आप पहले में पहले विदेहक्षेत्र में ही क्यों जन्म लेना चाहते हैं ? विदेहक्षेत्र में भी बहुत ऑप्शन्स हैं। हां, कहाँ जाना है विदेह में ? सीमंधरस्वामी के पास। क्यों ? युगमंधर नहीं चलेंगे ? बाहु-सुबाहु कोई नहीं चलेंगे ? सीमंधर के ही पास जाना चाहते हैं। जाना चाहते हैं यानी यहां मिथ्यादृष्टि रहना चाहते हैं। नहीं समझे ? जो सम्यक्त्व प्राप्त करेगा वह यहां से मरकर कर्मभूमि का मनुष्य तो नहीं होगा। यहां से भोगभूमि का भी मनुष्य नहीं हो सकता है क्योंकि वहां तो क्षायिक लेकर जाना पड़ेगा। उनका प्रश्न है कि कौन जाता है ? सम्यक्त्वसन्मुख किसको कहना ? यह भी एक सोचने की बात है। करणानुयोग में सम्यक्त्वसन्मुख उसको कहेंगे जो करणलब्धि के

अंत समय में है। वहां तो कोई मरेगा ही नहीं। जो करणलब्धि में प्रवेश करता है उसका वहां मरण नहीं होगा तो वहां मरकर जाने का सवाल नहीं है - एक बात।

अब पूर्व अवस्था में जिसने देशना आदि प्राप्त की है, तत्त्वों का विचार भी करता है। हो सकता है उस जीव ने मनुष्यायु बांधी है और वह मिथ्यादृष्टि है इसलिये मरकर विदेहक्षेत्र में जा सकता है। कोई जीव देव में से मरकर सम्यक्त्व के साथ विदेहक्षेत्र में जा सकता है, परंतु यहां कर्मभूमि से कोई सम्यग्दृष्टि जीव मरकर विदेह में जन्म नहीं लेगा यह बिलकुल गॅरंटी की बात है। क्योंकि करणानुयोग के ऐसे कोई अकाट्य नियम हैं उसको कोई टाल नहीं सकता। जो सम्यक्त्व का कार्य होना है वह हम करनेवाले हैं। हम संज्ञी पंचेन्द्रिय हैं। सम्यक्त्व प्राप्ति की सभी योग्यता हमारे में उपलब्ध है। यहां जो कार्य हो सकता है वह वहां जाकर क्यों करना चाहते हैं ? *श्रोता: वहां सर्वथा चौथा काल चलता है न ?* हां, चौथा काल चलने से क्या होगा ? देखो, वहां चौथा काल चलता है तो क्या हुआ ? यहां पंचमकाल में मुनि तक का - सातवें गुणस्थान तक का पुरुषार्थ हो सकता है।

श्रोता: सम्यक्त्वसन्मुख किसे कहा जायेगा ? जो सम्यक्त्व प्राप्त करनेवाला है उसको सम्यक्त्वसन्मुख कहेंगे। अभी करणलब्धि में आयेगा वह भी अंतिम समय में आया है। कहां गये अश्विनभाई ? हमारा अभी महाबंध में चल रहा है विषय- हर बार सम्यक्त्वसन्मुख की बात आती है तो करणलब्धि के अंतिम समयवाला लेते हैं वहां पर। मोक्षमार्गप्रकाशक में सम्यक्त्वसन्मुख मिथ्यादृष्टि की बात की है - वहां सामान्य से चर्चा है। परंतु अगर सिद्धांत ग्रंथों के आधार से सम्यक्त्वसन्मुख का अर्थ करेंगे तो सन्मुख का अर्थ क्या है ? अभी नेक्स्ट समय में सम्यक्त्व प्राप्त करेगा उसको सम्यक्त्वसन्मुख कहेंगे। छठें गुणस्थानवाले को मिथ्यात्व के सन्मुख कब कहेंगे ? जब वह छठे से गिरकर मिथ्यात्व में जानेवाला है तब उसको मिथ्यात्व के सन्मुखवाला कहेंगे। तो मिथ्यात्व में से जो नेक्स्ट समय में सम्यक्त्व प्राप्त करेगा उसको यथार्थ में देखना है तो सम्यक्त्वसन्मुख कहेंगे। जिसको तीनों ही लब्धि हैं उसको कहीं-कहीं सम्यक्त्वसन्मुख कह देते हैं तो कोई भी ऑप्शन ओपन है। हमें तो आगम के आधार से चलना है।

श्रोता: विदेह में म्लेच्छ में गये तो ? महाविदेह में भी जानेपर वहां आर्यखंड में ही जन्मेगा ऐसी कहां गॅरंटी है ? वहां भी हर एक विदेह में एक आर्यखंड होता है तो पांच

म्लेच्छखंड होते हैं। ऐसे कितने विदेह हैं ? $32 \times 5 = 160$ विदेह हैं। १६० विदेह में हर एक में एक-एक आर्यखंड और हर एक में पांच-पांच म्लेच्छखंड हैं। आर्यखंड में ही चौथा काल चलता है। म्लेच्छखंड में भले ही शरीर के आकारादि की अपेक्षा चौथा काल चलता रहे परंतु वहां धर्म की प्राप्ति नहीं है, सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं हो सकती और वहां तीर्थकरों का विहार वगैरह कुछ नहीं होता, ख्याल में आयी बात ?

हमने तो किसी क्षेत्र को ही निमित्त मानकर निमित्त को निश्चित कर लिया। निमित्त से कार्य होता है यह इसके पीछे अपना विपरीत अभिप्राय पड़ा है भाई ! अपने अभिप्रायों में कहीं कुछ गलत बात पड़ी है तो हमें ही ढूंढ़कर निकालनी है। हमारा कार्य किसी निमित्त के कारण अटका नहीं है और निमित्त के कारण होनेवाला भी नहीं है। अपना जो कार्य हो रहा है, हर समय की जो पर्याय है वह अपने उपादान से होती है। सम्यक्त्वरूप कार्य करना है वह भी अपने उपादान से ही होगा। कोई निमित्त आकर हमको समझा देगा ऐसा नहीं है। अभी क्या करें ? हमें ज्ञानी कहां मिलेगा ? क्योंकि यहां लिखा है ज्ञानी की देशना होनी चाहिये। अभी ज्ञानी को ढूंढ़ने के लिये कहां-कहां दिनरात मेहनत करनी पड़ेगी। जहां उपादान की योग्यता है वहां ज्ञानी सामने से सहज उपलब्ध होंगे या पूर्व की देशना काम करेगी। उसमें क्या है ? बहुत बड़ी बात क्या है ? हम तो बाहर ही ढूंढ़ते हैं कि क्या करें ? किसके कारण मुझे सम्यक्त्व हो जाये ? यानी निमित्त से कार्य होता है यह हमारा अभिप्राय अभी कायम है।

गुरुदेवश्री ने कितनी बार बताया है कि निमित्त-उपादान है, क्रमबद्धपर्याय है, निश्चय-व्यवहार है इनके बारे में आपको बिलकुल सही निर्णय होना ही चाहिये। जब हम छह द्रव्य का निर्णय कहेंगे तब यहां छह द्रव्य के केवल नाम सीखना वह छह द्रव्य का निर्णय नहीं है। छह द्रव्य हैं तो उनका स्वरूप क्या है ? उनका परिणमन कैसे होता है ? उनकी अवस्थायें कौन पलटाता है ? उनकी अनादिअनंत पर्यायों का क्रम कैसे सुनिश्चित है ? ये सब बातें हम निश्चित करेंगे तो ही हमने द्रव्य को जाना ऐसा कहेंगे। छह द्रव्य को जाना यानी उनकी पूरी व्यवस्थित प्रक्रिया जानी। उसका उपदेश तो ज्ञानियों ने दिया ही है। हमारे पास तो कितने सारे ग्रंथ उपलब्ध हैं - प्रवचनसार है, नियमसार है, समयसार है, पंचास्तिकाय है, अष्टपाहुड है। आचार्यों के उपकार तो छोड़ो, उन्होंने तो महान उपकार किये ही हैं। परंतु उस जमाने से आजतक के उन

श्रावकों का कितना बड़ा उपकार है कि हमारे लिये ये सारे ग्रंथ आजतक उपलब्ध हैं, सुरक्षित हैं। उस जमाने में तो ताड़पत्र के ऊपर लिखे जाते थे।

जैसे गुरुदेवश्री ने कितने ग्रंथ लिखे बेन ? *श्रोता: एक भी नहीं।* एक भी नहीं तो उनके प्रवचनों को लिखनेवाले और छपानेवाले कितने मिले ? उस जमाने में भी जो आचार्यों ने उपदेश दिया है उसको लिखितरूप से रखनेवाले, उसको प्रिंज़र्क करनेवाले, उसकी कॉपियां यानी प्रतिलिपियां बनानेवाले कितने हो गये ! आगे कितने ही ज्ञानियों ने उन पर टीकायें लिखीं। गुरुदेवश्री ने सारा खोलकर समझाया। ये ज्ञानियों के उपकार हैं कि नहीं ? उन्होंने लिखा है परंतु वह आज तक हमारे लिये उपलब्ध है ! उन ग्रंथों का सही अर्थ हमें आज मिल रहा है यह आज के काल में कितनी बड़ी उपलब्धि है।

यहां पर हम देशनालब्धि की बात देख रहे हैं। आचार्यादि का समागम मिलना, उनका मोक्षमार्ग संबंधी जो उपदेश मिलता है उसकी प्राप्ति होना, अभी हमने देखा न, छह द्रव्य, नौ पदार्थ आदि के संबंध में उपदेश को सुनना, समझना, धारण करना यानी याद रखना, बारंबार उस पर विचार करना और विचार करके निर्धारण यानी सही निर्णय तक पहुंचना, यह सारा ही देशनालब्धि में गर्भित है। देशनालब्धिरूप ज्ञान में यह सब कार्य चल रहा है। ज्ञान में जो निर्मलता बढ़ेगी यही विशुद्धि है। जब कहेंगे यहां विशुद्धि अनंतगुणी बढ़ती है - तब तत्त्वज्ञान संबंधी जो निर्मलता है वही विशुद्धि है। केवल शुभभाव को यहां विशुद्धि नहीं कहा। क्योंकि उस काल में कषायों की तो मंदता हो ही रही है। हम कहेंगे मंद कषायरूप विशुद्धि चल रही है, परंतु मूल में यहां ज्ञान में जो स्पष्टता होती चली जाती है उसी की बात है। नहीं तो उपदेश की मुख्यता क्यों ली इतनी ? जो निर्णय करने का कार्य है कि यही सही है, अभी तक हम मान रहे थे वह बराबर नहीं था। इसका हम ही खुद निर्णय करेंगे। अपना अभिप्राय किस दिशा में चल रहा है ? अपने स्वयं में क्या बातें चल रही हैं, अपनी मान्यता क्या है, आदि बातों को हम स्वयं ही ज्ञान के द्वारा जानेंगे और अपनी मान्यता में कुछ भूल रह गयी हो तो हम ही स्वाध्याय के द्वारा, उपदेश सुनकर, बारंबार उस पर विचार करके निर्णय तक पहुंचेंगे और अपनी भूल सुधारेंगे। यह सारा कार्य ज्ञान में ही होगा।

श्रोता: देशना किस गुण की पर्याय है ? हां, आपका प्रश्न है देशना किस गुण की

पर्याय है ? बोलो नीलेश। *श्रोता: देशना पुद्गल की पर्याय।* पुद्गल की पर्याय; उन्होंने कहा पुद्गल की पर्याय है क्योंकि वह तो उपदेश है, वाणी है। *श्रोता: उन्होंने कहा था ज्ञान गुण की पर्याय है।* देशनालब्धि ज्ञान गुण की पर्याय है और देशना उपदेश है। उपदेश सुनने को कहा, पढ़ने को नहीं कहा। दौलतरामजी ने क्या कहा ? 'दौल समझ सुन चेत सयाने, काल वृथा मत खोवै।' क्यों ? 'यह नरभव फिर मिलन कठिन है, जो सम्यक् नहीं होवै।' यह मनुष्यभव कितना दुर्लभ है, हमने पहले करणानुयोग में कर्मकाण्ड में, जीवकाण्ड में बहुत बार देखा है। इतना दुर्लभ में दुर्लभ यह मनुष्यभव है, हमें उसका पता नहीं है। मनुष्यभव हमने आज तक कहां-कहां खोया है ? बचपन में कुछ समझ नहीं थी। फिर पढ़ाई में लगे रहे। मां-बाप हमें पढ़ाते रहे, हम पढ़ते गये। एक-एक डिग्री कमाते गये। अभी इतना पढ़ा है तो कमाना भी चाहिये, उसके पीछे दौड़ते गये। अब कमाया है तो भोगना भी चाहिये कि नहीं ? तो उसके पीछे... ऐसा करते-करते मनुष्यभव समाप्त होने को आता है और तब पता चलता है कि हमने इतना किया वह बेकार गया। हम जिसको अपना मानते थे उसके लिये करते गये। वे तो अपने नहीं थे ऐसा बाद में पता चला।

श्रोता: आपने बताया कि तीन भव तक वह ज्ञान के संस्कार रह सकते हैं। अगर पूर्वभव में संज्ञी पंचेन्द्रियवाला होगा ? तो तीन भव का क्या लॉजिक है ? नहीं लॉजिक कहीं नहीं है, ऐसे शास्त्र में आता है। जैसे जातिस्मरण में जो संस्काररूप से पर्याय है वह तो नौ-नौ भव तक भी हमने देखी थी। हां, वह जातिस्मरण में लिया है और यह तत्त्वसंबंधी देशना की बात ली है। हां, तीसरे भव तक की भी देशना होती है। *श्रोता: ज्यादा से ज्यादा ?* हां, ज्यादा से ज्यादा। *श्रोता: जैसा ज्ञान में चलता है तो श्रद्धा में भी होगा ?* श्रद्धा में भी उसका अपना कार्य चल रहा है, परंतु ज्ञान में निर्णय तक पहुंचने का कार्य होता है। श्रद्धा में जो कुछ परिवर्तन हुआ है, उसमें मिथ्यात्व की मंदता चलती है। परंतु जब तक सूक्ष्म मिथ्यात्व भी है - अनिवृत्तिकरण के अंतिम समय तक जीव मिथ्यादृष्टि है। वहां ज्ञान की कितनी स्पष्टता, निर्मलता हो रही है। उसको हम कहने के लिये मिथ्याज्ञान ही कहेंगे, परंतु यह सब कार्य मिथ्याज्ञान में ही हो रहा है। केवल मिथ्यात्व के उदय से वहां मिथ्याज्ञान नाम पाता है। परंतु उसी ज्ञान की इतनी स्पष्टता, निर्मलता हो रही है और उस स्पष्ट ज्ञान के सहित, तत्त्वविचार सहित, तत्त्वनिर्णयपूर्वक

शुद्धात्मा का लक्ष भी उसने किया है। तत्त्वविचार के काल में, दर्शनमोह की उपशमना वगैरह होती है और उसको सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है। तब उस ज्ञान को भी सम्यग्ज्ञान कहेंगे।

वैसे तो मिथ्यात्व के कारण ही उस ज्ञान को हम मिथ्याज्ञान कहेंगे। उसने जो सारा उपदेश सुना है वह ज्ञानियों के द्वारा सुना है। सही सुना है, उसके ऊपर सही विचार कर रहा है और वह निर्णय कर लिया है। अँक्सेट तो किया ही किया है और यही सही है अन्यथा नहीं है यह भी उसने ज्ञान में ही दृढ़तापूर्वक लिया है। वहां पर उसका मिथ्यात्व संबंधी जो अनुभाग है, वह अत्यंत मंद-मंद हो रहा है। परंतु वह सम्यक् रूप कहां हुआ है ? करणलब्धि के बाद सम्यग्दर्शन होता है। यह सम्यग्दर्शन हुआ है यह कैसे पता चला ? बोलो नीलेश, सम्यग्दर्शन हुआ है यह कैसे पता चला ? सम्यग्दर्शन का लक्षण क्या है ? अभी न्याय का शिबिर किसने-किसने अटेंड किया है हां ? सम्यग्दर्शन का लक्षण क्या है ? *श्रोता: स्वानुभूति।* हां, स्वानुभूति। *श्रोता: स्वानुभूति को सम्यग्दर्शन का लक्षण कहा है।* बराबर यानी जीव को कैसे पता चलेगा अपने को स्वानुभूति हुयी ? स्वानुभूति यह कौनसे गुण की पर्याय है ? *श्रोता: ज्ञान गुण की।* ज्ञान गुण की। तो ज्ञान गुण की पर्याय के द्वारा श्रद्धा गुण की पर्याय को निश्चित किया। तो अनुभूति सम्यक्त्व का आत्मभूत लक्षण हुआ कि अनात्मभूत लक्षण ? यह पंचाध्यायी में इसकी बहुत अच्छी चर्चा है। बात ख्याल में आती है न !

जीव को अतीन्द्रिय आनंद का वेदन हुआ। वह तो तत्त्वविचार में लीन था। वह विकल्पात्मक से निर्विकल्प भी हो गया। उसको आत्मा के अतीन्द्रिय आनंद का अनुभव हुआ। उसी समय उसको सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हुयी। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र उनका समय एक है। वह निश्चित कैसे हुआ ? क्या दूसरों को पूछना पड़ेगा कि मुझे ऐसा लगता है कि मुझे अभी सम्यक्त्व हो गया है ? ऐसा नहीं है। उसने कैसे निश्चित किया ? अपनी अनुभूति के द्वारा। आचार्य भी कहते हैं न स्वानुभूति के द्वारा प्रमाण करना ! अपना तत्त्वनिर्णय हुआ है, अपने को सम्यग्दर्शन हुआ है यह कब निश्चित हुआ ? स्वानुभूति हुयी तो हमने जो तत्त्वनिर्णय किया है वह सही है यह अभी निश्चित हो गया। इसको कहते हैं स्वानुभूति के द्वारा प्रमाण करना। स्वानुभूति होती है तो उसके पहले क्या-क्या होता है इसकी अपनी चर्चा चल रही है। पांच लब्धि के

प्रकरण में अपनी इसी की बात हो रही है। देशनालब्धि में हम क्या देखते हैं ? देशना यानी उपदेश की प्राप्ति होना।

श्रोता: मेरी मान्यता में गलती हो रही है यह ज्ञान में झलक रहा है कि श्रद्धा में झलक रहा है ? मेरी यह गलत मान्यता मेरे ख्याल में आ रही है। यह ज्ञान जानेगा कि श्रद्धा ? आपका प्रश्न है मेरी मान्यता गलत है यह ज्ञान जानेगा कि श्रद्धा जानेगी ? बहुत अच्छा प्रश्न है। श्रद्धा यानी दृष्टि; श्रद्धा क्या करती है ? यह हमने आप पर श्रद्धा रखी वह श्रद्धा नहीं है। लौकिक में जो हम श्रद्धा शब्द का वापर करते हैं वह बात यहां नहीं है। श्रद्धा कहो, दृष्टि कहो, उसका विषय क्या है बोलो ? *श्रोता:* स्वपना। हां, वह स्वपना किसमें है ? श्रद्धा दूसरे किसीको नहीं अँक्सेट करती। श्रद्धा स्व कौन है उसको स्वीकार करती है। किसमें श्रद्धा है ? जो स्व नहीं उसमें उसने स्व माना, पर मैं उसने स्वपना मान लिया तो वह उसकी दृष्टि मिथ्या हुयी - गलत दृष्टि हुयी, खोटी दृष्टि हुयी। जो स्व - शुद्धात्मा, जिनेन्द्र भगवान ने जैसा अपना स्वरूप बताया है; सात तत्त्वों में सहीरूप से हेय-ज्ञेय-उपादेयरूप से जो चर्चा की है; उसमें जो मैं स्वयं जीवतत्त्व - जो मात्र मेरा स्वयं का ज्ञान, दर्शन, आनंद स्वभाव बताया है; उसकी ओर दृष्टि - उसका अनुभव - उसमें स्वपना स्थापित हुआ। 'यह मैं हूँ' ऐसा उसने अँक्सेट किया वह दृष्टि है।

कोई कहता है, आप हमारे गुरु हैं, हम आप पर विश्वास रखते हैं - उस श्रद्धा की बात यहां बिलकुल नहीं है। अभी यह शरीर है और यह वस्त्र है - दोनों मेरे से भिन्न हैं। हमने इस शरीर को मैं माना है और इस वस्त्र को पर माना है। है न ? किसको मैं माना ? देह में मैंपना मान लिया। अभी देह की बात छोड़ो, शरीर मैं नहीं हूँ इतना मान लिया परंतु राग में मैंपना मान लिया कि मैं बहुत दयालु हूँ, मैं बहुत धार्मिक हूँ, मैं बहुत स्वाध्याय करनेवाला हूँ। जो रागभाव है उसमें मैंपना स्थापित किया - यह भी गलत है, यह भी मिथ्या मान्यता है। सात तत्त्वों में आस्रव के साथ भी भेदज्ञान करना है। शुभाशुभ भाव और मिथ्या मान्यतायें आस्रवतत्त्व में चली जायेंगी। इनसे मैं स्वयं भिन्न हूँ जिसकी हम सभी अध्यात्म ग्रंथों के आधार से रातदिन चर्चा करते हैं। आप तो स्वयं स्वाध्यायी हैं। जैसे अभी शरीर में आत्मबुद्धि हो रही है और वस्त्र में परायापन सिखाना नहीं पड़ता है। कॉटन का वस्त्र पहना तो मैं सूती हो गया और नायलॉन का पहना तो

मैं नायलॉन का हो गया - ऐसा कोई नहीं मानता है। ऐसी आत्मबुद्धि स्वयं के शुद्धात्मा में हो जाये तब उसकी वह सही मान्यता है। दृष्टि मात्र स्व को अक्सेप्ट- स्वीकार करती है और ज्ञान स्व-पर दोनों को जानता है। यह दृष्टि और ज्ञान में अंतर है।

जैसे जब दृष्टि का विषय कहते हैं तो मात्र स्व; उस दृष्टि में स्व कौन है उसकी चर्चा होती है। उसको भी ज्ञान ही निश्चित करता है। ज्ञान स्व को भी जानेगा, पर को भी जानेगा, शुद्धात्मा को भी जानेगा, स्वभाव को भी जानेगा, पर्याय को भी जानेगा। पर्याय को जानना कोई गलत नहीं है। गलत की क्या बात ? वह तो ज्ञान का स्वभाव है; परंतु उसमें स्वपना मान लिया तो मिथ्या मान्यता हो गयी। अगर कोई कहता है कि पर्याय को हम जानेंगे ही नहीं, हम तो स्वभाववाले हैं हम स्वभाव को ही जानेंगे। अरे नहीं ! ज्ञान तो स्व और पर दोनों को जानेगा और उनमें से यह मैं स्व हूं, यह पर है ऐसा भेदज्ञान करनेवाला तो ज्ञान है। पर को जानेगा ही नहीं तो भेदज्ञान किससे करेगा ? इसतरह से यह दृष्टि और ज्ञान में अंतर है। *श्रोता: चारित्र में ?* चारित्र में क्या है ? स्थिरता है। चारित्र में निज में स्थिरता होती है। चारित्र में जितनी स्थिरता होगी उतना अतीन्द्रिय आनंद का अनुभव होगा। ख्याल में आया न ?

दर्शनलब्धि, चारित्रलब्धि होती है तो उसमें जो कुछ करण परिणाम होते हैं और प्रथमोपशम सम्यक्त्व के पूर्व भी ये जो चार लब्धि होती हैं, उनका वर्णन यहां चलेगा। द्रव्यानुयोग तो सर्वतोपरी है ही है। उसकी चर्चा हम खूब कर रहे हैं और वह करना भी चाहिये। क्योंकि उसके जो मूल सिद्धांत हैं उनको सीखकर किसी भी अनुयोग के द्वारा हम अपना कल्याण कर सकते हैं, वीतरागता की प्राप्ति कर सकते हैं, सम्यग्दर्शन प्राप्त कर सकते हैं। यह सम्यग्दर्शन के भी जो अन्य-अन्य प्रकार आत्मानुशासन में बताये हैं न। दस प्रकार बताये हैं। हां बोलो, कौनसे हैं ? आज्ञासम्यक्त्व है, मार्गसम्यक्त्व है, बीजसम्यक्त्व भी है।

बीजसम्यक्त्व समझते हैं किसको कहते हैं ? यह करणानुयोग के जो गणित हैं न, उनमें उपयोग सूक्ष्म हो जाता है। अभी जिसने तत्त्वनिर्णय कर लिया है ऐसा जीव है और करणानुयोग भी पढ़ रहा है। तो उसका उपयोग इतना सूक्ष्म होता है और वहां से हटकर आत्मा को लक्ष में लेता है। क्योंकि उपयोग की सूक्ष्मता होना और विषय से नहीं हटना यही एकाग्रता है और वह अपनी शुद्धात्मा में लीन हो जाता है और उसके

सम्यग्दर्शन प्रकट होता है, इसको बीजसम्यक्त्व कहते हैं। देखो जो सम्यग्दृष्टि है - मुनिराज हैं, भावलिंगी संत हैं - उनके जो धर्मध्यान के विषय बताये हैं वे तो करणानुयोग के विषय हैं। संस्थानविचय में क्या है ? त्रिलोक की पूरी रचना का वे बारंबार विचार करेंगे। यह जो हमने गुणश्रेणी देखी, करणानुयोग के अभ्यास में असंख्यातगुणा गुणश्रेणी निर्जरा होती है। इससे मुनिराजों के उपयोग की बहुत एकाग्रता होती है। उनको तो वीतरागता ऑलरेडि है ही; अब उतनी वीतरागता के साथ किसी एक विषय को एकाग्रतापूर्वक जान रहे हैं। वहां कोई अन्य राग-द्वेष की उत्पत्ति नहीं हो रही है। तो उनके लिये वह गुणश्रेणी निर्जरा का कारण है।

हमें भी अपने उपयोग की स्थिरता के लिये करणानुयोग बहुत अच्छा अवलंबन है। इतनी उपयोग की स्थिरता हमारे अन्यत्र नहीं होती। हमारे घर पर दैनिक स्वाध्याय चलता है - रोज डेढ़ घंटा करणानुयोग चलता है। शाम को दो घंटे द्रव्यानुयोग भी चलता है। कब घड़ी आगे चली जाती है पता ही नहीं चलता और फिर हमको याद रखना पड़ता है कि अभी अपना समय बीत गया है। डेढ़ घंटा कहां चला जाता है पता ही नहीं चलता। इस विषय में इतनी एकाग्रता होती है कि दुनियाभर की कुछ चीजें याद नहीं आती। नहीं तो क्या ? दिनभर तो कषायों की होली जलती रहती है न। आपस में मिलेंगे, क्या-क्या बातें करेंगे, दुनियादारी की सब बातें होंगी। परंतु करणानुयोग के विषय में अपना उपयोग इतना लगता है कि दुनिया को भूल जाते हैं। यह जो जानना है वह रागद्वेष रहित जानना चलता है; अभी हम पूरे रागद्वेष रहित नहीं हुये हैं। परंतु इसमें स्थूल तौर पर हम देखेंगे। अन्य कोई विषय कषाय की बातें या अन्य रागद्वेष की बातें यहां नहीं हो रही हैं।

हम इस विषय को जान रहे हैं और इसमें सत्य बातों को जान रहे हैं। इन सत्य बातों को जानने में हमारा उपयोग इतना सूक्ष्म हो जाता है। यह तो हमारे फायदे की चीज़ है। जो ऑलरेडि सम्यग्दृष्टि हैं, जो ऑलरेडि मुनिराज हैं उनके लिये तो और भी अधिक कार्यकारी है। इसलिये करणानुयोग के अभ्यास की इतनी मुख्यता है। पं. टोडरमलजी ने इसके बारे में बहुत बार कहा है; वे बारंबार यही कहते हैं कि इसका अभ्यास अवश्य करना, हां ! अब हम यहीं रुकेंगे। आगे की चर्चा शाम को करेंगे।

बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

९. देशना और देशनालब्धि

आचार्य श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती ने इस लब्धिसार ग्रंथ की रचना की है। उसीके आधार से पं. टोडरमलजी ने सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका लब्धिसार-क्षपणासार ग्रंथ दूढ़ारी भाषा में लिखा है। उसीका हिंदी अनुवाद हम यहां देख रहे हैं। उसके आधार से अपनी प्रथमोपशम सम्यक्त्व की बात चल रही है।

प्रथमोपशम सम्यक्त्व होता है उसके पूर्व में पांच लब्धि होती हैं यानी इन पांच लब्धिपूर्वक ही प्रथमोपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है। यह पूर्व अवस्था का वर्णन है। ये पांचों ही लब्धि मिथ्यात्व गुणस्थान में चल रही हैं और उसके अनंतर-नेक्स्ट समय में यहां प्रथमोपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति होनेवाली है। हमने देखा था क्षयोपशमलब्धि, विशुद्धिलब्धि, देशनालब्धि, प्रायोग्यतालब्धि या प्रायोग्यलब्धि और करणलब्धि ये पांच लब्धि के नाम हैं। करणलब्धि में भी तीन प्रकार हैं- अधःप्रवृत्तकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण। तीन करण की चर्चा आयेगी तब विस्तार से हम उनका स्वरूप देखेंगे।

यहां हमने क्षयोपशमलब्धि की भी चर्चा की। जिस काल में ज्ञानावरण आदि समस्त अप्रशस्त प्रकृतियों का अनुभाग प्रति समय अनंतगुणा हीन-हीन होकर उदय में आने लगता है, उस अंतर्मुहूर्त काल तक जीव को क्षयोपशमलब्धि की प्राप्ति हुयी है ऐसा हम कहेंगे। उसी काल में अप्रशस्त कर्मों में मोहनीय के भी अनुभाग का मंद उदय चल रहा है तो राग की मंदता चल रही है। उसीको यहां विशुद्धिलब्धि कहेंगे। जीव के कभी साता का बंध होता है कभी असाता का। यहां साता के बंधयोग्य परिणामों को ही विशुद्धिलब्धि में लिया है। पुण्य परिणाम चल रहे हैं- धर्मानुरागरूप बुद्धि है। कहीं शास्त्र स्वाध्याय चल रहा है तो सुनने की बुद्धि हो रही है; मंदिर में जाने की बुद्धि है; कोई उपदेश दे रहा है तो वह क्या कह रहा है उसे सुनने की बुद्धि हो रही है, शांति से सुन रहा है। सोचता है कि इसमें मेरे कोई कल्याण की बात हो रही है, सुने तो सही क्या कहते हैं ! इतनी बात है।

पर हम देखते हैं समाज में ऐसे बहुत सारे व्यक्ति मिलते हैं कि ऐसी बातों से भी उनको चिढ़ आती है। है न ! उनको विषय कषायों की बातें सुनायें तो बहुत आनंद आता है। उलटा तो स्वयं पैसा खर्चा करके भी आपको उन बातों में वे साथ में ले

जायेंगे। सिनेमा देखना है, कहीं पर्यटन करना है, साइट सीइंग करनी है और बाकी भी पंचेन्द्रियों के विषय में जो-जो बातें चलती हैं उनकी बातें करो तो वे बहुत प्रेम से आपके साथ पेश आयेंगे और थोड़ी स्वाध्याय की बातें निकाली तो उन्हें अंदर से तिलमिलाहट हो जाती है। जैसे उबलते हुये तेल में पानी छाटेंगे तो क्या होगा ? यह सबको पता है। नज़दीक आते हैं तो पहले पुरुषों को ऑर्डर मिलती है - पानी का छींटा नहीं उड़ जाये इसमें, यहां तेल उबल रहा है। इस उबलते तेल में पकोड़े डालते हैं, पूरी डालते हैं तो क्या होता है ? वे अच्छी तरह से तलकर ऊपर आते हैं। ऐसे ही जो विषय कषाय के तीव्र रुचिवाले जीव हैं, उनके रुचिवाली बात करेंगे तो बहुत मज़े से आपके साथ आनंद से रहेंगे, परंतु उसीमें जिनवाणीरूपी शीतल जल थोड़ा छिटक जाये, छांटा भी पड़ जाये तो क्या हो जाता है ? आगबबूले हो जाते हैं। तो उनकी अभी देशना सुनने की भी योग्यता नहीं है, पात्रता नहीं है।

जीव को अपने ही कल्याण की बातें जहां रुचती नहीं हैं, तब उनका कल्याण होने का अवसर नहीं आया है, इतनी बात ख्याल में रखकर हमें शांति रखनी चाहिये। क्योंकि वे हमारी क्यों नहीं सुनते हैं ? कभी ऐसा भी होता है न ? हमारे ही बच्चे नहीं सुनते हैं तो हमें ऐसा दुःख लगता है कि यह इतनी अच्छी कल्याण की बातें वे क्यों नहीं सुनते हैं ? देखो, सुनाने का प्रयत्न करना। नहीं सुनेंगे तो छोड़ देना। पं. टोडरमलजी की भाषा में उनको देख-देखकर स्वयं कषायी मत होना। हमने दो लब्धि की बात देखी थी, देशनालब्धि के बारे में मान्यताओं में बहुत सारी विपरीतता चलती हैं। उसका सही स्वरूप भी हम देखेंगे। हम आगम के आधार से चलेंगे। एक प्रश्न आया है-

प्रश्न: देशनालब्धि ज्ञान की पर्याय बतायी, क्षयोपशम और विशुद्धिलब्धि श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र तीनों की पर्याय लेंगे ? क्षयोपशमलब्धि में हमने सभी अप्रशस्त कर्मों का अनुभाग प्रतिसमय अनंतगुणा हीन होने की बात देखी थी। जीव के मोह-रागद्वेष मंद हो रहे हैं उसकी बात विशुद्धिलब्धि के रूप में देखी थी। क्षयोपशमलब्धि में ज्ञानावरण का क्षयोपशम तो है ही है साथ में, फिर भी वह अकेले ज्ञान की पर्याय भी नहीं कहेंगे। क्षयोपशम शब्द है वह घातिकर्मों के बारे में लगता है और क्षयोपशमलब्धि के काल में सभी अप्रशस्त कर्मों का अनुभाग मंद हो रहा है वह तो घाति-अघाति सबमें हो रहा है। देखो क्षयोपशम की परिभाषा हमने पहले देखी थी, उसकी चर्चा करके आगे चलेंगे।

हमारा जितना ज्ञान का उघाड़ है उसको भी क्षयोपशम कहते हैं। क्यों ? क्योंकि वहां ज्ञानावरण कर्म की क्षयोपशमरूप अवस्था चल रही है। हमने मतिज्ञानावरण पर उसे घटित किया था। मतिज्ञानावरण प्रकृति है वह देशघाति प्रकृति है, परंतु उसके जो स्पर्धक हैं - अनुभाग को बतानेवाले जो परमाणु हैं वे दो प्रकार के हैं, सर्वघाति भी हैं और देशघाति भी हैं। सर्वघाति स्पर्धक सत्ता में पड़े रहते हैं, उदय में आते समय देशघातिरूप हो-होकर उदय में आते हैं। अब देशघाति में भी बहुत सारी व्हरायटी है। देशघाति में कोई तीव्र अनुभागवाले हैं, कोई मंद अनुभागवाले हैं। हमारी इंटेलेक्चुअल लेव्हल जो है, अलग-अलग होती है न ! बुद्धि अलग-अलग पायी जाती है। जो हमारा आय क्यू होता है, इंटेलिजन्स कोशंट; क्या होता है ? कोई बुद्धिमान है और कोई मतिमंद है। ये जो व्हेरिएशन्स हैं, बुद्धि के अलग-अलग स्तर देखे जाते हैं। तो देशघाति का उदय होते हुये भी बुद्धि की तरतमता पायी जाती है उसमें भी हीनाधिक उदय चल रहा है। अब हम कर्म की ओर से बता रहे हैं- अपनी बात कर्म के निमित्त की ओर से चल रही है। क्षयोपशमलब्धि में ज्ञानावरण के मंद अनुभागउदय को तो लेना ही लेना। सभी अप्रशस्त कर्मों का अनुभाग मंद होते हुये यहां पाया जायेगा तो मिथ्यात्व और कषाय कर्मों का भी अनुभाग मंद होगा। उसके निमित्त से मिथ्यात्व और कषाय भी मंद होंगे। ख्याल में आती है बात क्षयोपशमलब्धि की ?

अब विशुद्धिलब्धि में इसीको लेना, विशुद्धिलब्धि में खास कषायों की मंदता के रूप में इसको प्रस्तुत किया है। परंतु उसका कारण वही है जो क्षयोपशमलब्धि में बताया है कि वहां कर्मों का अनुभाग हीन होकर उदय में आ रहा है। उसके निमित्त से जीव के मंद कषायरूप भाव चल रहे हैं। ऐसे निमित्त-नैमित्तिक संबंध सहज बनते रहते हैं। अब हम आगे बढ़ेंगे। दूसरा एक क्या प्रश्न है ? श्रोता: चारित्र गुण में ? चारित्र गुण में तो राग की मंदता हो रही है। श्रोता: मिथ्यादृष्टि जीव जब अणुव्रत या महाव्रत ग्रहण करता है, तब चार कषाय चौकड़ी में किसका अनुभाग मंद लिया जायेगा ? आपका क्या विचार है ? तो उसके अनुसार हम चर्चा करेंगे। श्रोता: उदय तो चारों का है। हां, अनंतानुबंधी सहित चारों का उदय चल रहा है। भले ही मिथ्यात्व अवस्था में अणुव्रत या महाव्रत ग्रहण किये हों, तब भी वह मिथ्यादृष्टि जीव है। हां, अब आगे-

श्रोता: अनंतानुबंधी ही खड़ा है, उसमें मतलब कि मुख्यरूप से उसको ही

एकत्वबुद्धि अंदर मंदता में इस प्रकार के परिणाम आ जाने से मतलब ऐसे ही विचार हैं... हां, यह अनंतानुबंधी का ही कार्य है। ये अनंतानुबंधी आदि चार नाम तो सबको मालूम हैं ? ये जो कर्म हैं, जो कषायों के नाम हैं वे ही कर्मों के नाम हैं। कौन-कौनसे हैं ? अनंतानुबंधी क्रोध-मान-माया-लोभ, अप्रत्याख्यानावरण क्रोध-मान-माया-लोभ, प्रत्याख्यानावरण क्रोध-मान-माया-लोभ और संज्वलन क्रोध-मान-माया-लोभ। उनकी जाति अलग-अलग हैं, उनमें केवल मंदता और तीव्रता नहीं हैं। हर एक में मंदता तीव्रता के भेद हैं। परंतु हर एक की जाति अलग है। अनंतानुबंधी की जाति क्या है ? वे सम्यक्त्व नहीं होने देते। अप्रत्याख्यानावरण कैसी है ? सम्यक्त्व तो होने देते हैं परंतु अणुमात्र भी व्रत नहीं होने देते। प्रत्याख्यानावरण अणुव्रत तो होने देते हैं परंतु महाव्रत-सकलसंयम नहीं होने देते। संज्वलन कैसे हैं ? सकलसंयम तो होने देते हैं, परंतु यथाख्यात संयम - पूर्ण वीतरागता नहीं होने देते।

परंतु यह ऐसा नियम है जो जीव मिथ्यात्व में है, उसके चारों कषाय चौकड़ी का उदय है। अनंतानुबंधी का वहां उदय है उस समय अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण, संज्वलन का भी उदय है, वे सम्यक्त्व को नहीं होने दे रहे। संज्वलन भी सम्यक्त्व को नहीं होने दे रहे; कब ? मिथ्यात्व गुणस्थान में संज्वलन कषायों का सर्वघाति स्पर्धकों का उदय है। श्रोता: सर्वघाति स्पर्धकों का उदय है ? हां, पहले से पांचवें गुणस्थान तक संज्वलन कषाय कर्म के सर्वघाति स्पर्धकों का उदय है। जब जीव छठे-सातवें गुणस्थान में होगा तब संज्वलन के देशघाति स्पर्धकों का उदय होगा। पहले गुणस्थान में तो चारों ही कषाय चौकड़ी अनंतानुबंधी जैसा कार्य कर रही हैं। जब अनंतानुबंधी चला गया तो चौथे गुणस्थान में अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण, संज्वलन तीनों ही ऐसा कार्य कर रहे हैं कि अणुव्रत नहीं होने दे रहे। यह कर्मकाण्ड की बात है, मेरे मन की बात नहीं है। उसमें ऐसा स्पष्टरूप से लिखा हुआ है। जब अप्रत्याख्यानावरण चला जाता है, प्रत्याख्यानावरण और संज्वलन दो ही हैं उस समय संज्वलन भी प्रत्याख्यानावरण जैसा कार्य कर रहा है यानी तब वह संयम नहीं होने दे रहा है। कब ? पांचवें गुणस्थानवाले को जो संज्वलन का उदय है, वह सकलसंयम नहीं होने दे रहा है। अभी छठे-सातवें गुणस्थानवाला है, उसके संज्वलन के देशघाति स्पर्धकों का उदय चल रहा है, वहां सकलसंयम हो रहा है। तो यह कषाय कर्म हैं इन

कर्मों का अनुभाग का उदय गुणस्थान के अनुसार अलग-अलग चलता है।

श्रोता: नोकषाय ? नोकषाय में उस मात्रा में समझना क्योंकि उसका जहां तक उदय चलता है वहां तो उसके मुख्यतः देशघातिरूप से ही उदय चलता है। *श्रोता: नहीं-नहीं, अनंतानुबंधी के समय में ?* अनंतानुबंधी के समय में तीव्र है बस इतना ही लेना उसमें। *श्रोता: लेकिन मिथ्यादृष्टि के अगर अणुव्रत के परिणाम हुये तो फिर ?* मिथ्यादृष्टि अणुव्रत के परिणाम कर रहा है तो वह किस अभिप्राय से कर रहा है ? कौनसे अभिप्राय से कर रहा है ? यह तत्त्वज्ञानवाला होगा। सच्चा वैराग्य होगा, हो सकता है। अगर वह सच्चा है, तत्त्वनिर्णय कर रहा है तो पहले से पांचवें में जा सकता है। ऐसा भी है कि उसने हठ से व्रत ग्रहण किये हैं और जो कोई आचरण है - शुभराग भी है और शरीर की क्रिया भी है - उसको मैं कर रहा हूं और इससे मेरा कल्याण होगा ऐसा मान रहा है तो वह मिथ्यादृष्टि है। केवल बाह्य में अणुव्रत, महाव्रत ग्रहण किये हैं और हो सकता है कि उसकी उपदेश में तो बिलकुल उलटी प्ररूपणा चल रही हो। यह भी बात बन सकती है न ?

केवल कोई व्रत अंगीकार किये हैं या कोई आचरण सुधारा है; सुधारा यानी वह मान रहा है कि हमने यह आचरण किया है तो जरूरी नहीं है कि वह सम्यक्त्वसन्मुख भी होगा। हो सकता है कि वह तीव्र मिथ्यादृष्टि भी हो। हां, ऐसा हम नहीं कह रहे कि वे सच्चे अणुव्रत-महाव्रत हैं। हम उसको गृहीत मिथ्यादृष्टि तो नहीं कहेंगे, ख्याल में आया न ? परंतु उसने उन क्रियाओं को ही अपना स्वरूप या मोक्षमार्ग मान लिया है यानी उसके आगमानुसार व्रत को भी बालव्रत, बालतप कहा है; कुंदकुंद आचार्य ने स्वयं कहा है। उसकी मान्यता कहां तक सही है, क्या है वह या तो उसके बोलने से पता चलेगा या उसके आचरण से। सब लोग उसका अंदाजा नहीं लगा सकते; अन्य मुनि उसका अंदाजा लगा सकते हैं, अन्य सम्यग्दृष्टि लगा सकते हैं। अभी बाह्य में किसीका व्यवहार देखकर उसके अनुसार उसका अंदाजा नहीं लगा सकते। अनुभाग के उदय संबंधी या उसके उत्कृष्ट अनुभाग है कि नहीं आदि जो कोई बातें आती हैं वह तो सब हम आगम के आधार से बता सकते हैं। ख्याल में आयी बात ? हां।

श्रोता: क्रमभंग होने से तो तीव्र कषाय होगा ? आप कह रहे हैं कि क्रमभंग हुआ न ? अभी सम्यक्त्व की प्राप्ति हुयी नहीं है और डायरेक्ट ऊपर के कुछ व्रत

अंगीकार कर दिये हैं यह तो क्रमभंग हो गया। सम्यग्दर्शन होना तो राजमार्ग है। हां, अभी सम्यग्दर्शन हो रहा है यानी उसके लिये प्रयत्नशील है कहो या स्वाध्याय कहो या उसके सही मान्यता या सही निर्णय तक वह पहुंच रहा है कहो और ऐसी अवस्था में उसने वैराग्यपूर्वक महाव्रतादि अंगीकार किये हैं। ऐसा ही जीव-मनुष्य जिसको प्रथमोपशम सम्यक्त्व की पात्रता में लिया है, वह पहले गुणस्थान से डायरेक्ट सातवें गुणस्थान में पहुंच जायेगा। इसके लिये आवश्यक कंडिशन्स क्या-क्या हैं ? उसकी बात हम बाद में करेंगे। अभी हम देशनालब्धि की बात कर रहे हैं।

देखो, मेरे हाथ में पंचलब्धि पुस्तक है, उसमें भी बहुत सारी चर्चा की है मैंने। लब्धिसारादि ग्रंथों के आधार से मैं कुछ पॉइंट्स भी आपको बताना चाहती हूं। जो देशना बतायी जाती है वह देशना यानी उपदेश के मूल उपदेशकर्ता सर्वज्ञ भगवान हैं। हमें जो-जो मोक्षमार्ग संबंधी उपदेश मिला है वह तीर्थकरों की दिव्यध्वनि के द्वारा मिला है, उनके द्वारा मोक्ष का मार्ग सबको प्राप्त हुआ है। दिव्यध्वनि के द्वारा गणधरों ने सुना है, समझा है, द्वादशांग की रचना की है और यही उपदेश अन्य सभी जीवों को दिया है। उसके बाद आचार्यों की परंपरा से यह मार्ग आगे चला। मूल जो सर्वज्ञ से चली आयी धारा है, वह अब तक नहीं टूटी है तो वही उपदेश हमें प्राप्त है। यह किसी अन्य क्षयोपशम अज्ञानियों के द्वारा दिया हुआ उपदेश नहीं है, परंतु सर्वज्ञ भगवान का उपदेश है। अनेक ज्ञानियों ने इसको सुनकर स्वयं आत्मानुभूति की है। यह उपदेश आगे चला है और आज हमें प्राप्त हुआ है। इसीको यहां देशना में लिया है।

कोई कहता है नहीं-नहीं, मैंने यह मार्ग चालू कर दिया तो वह सत्य नहीं हो सकता। क्या होता है ? किसीसे हमें यह ज्ञान प्राप्त हुआ, उसकी महानता हो जाये तो हम उसको भगवान से भी बड़ा मानने लगते हैं। ऐसा बिलकुल नहीं है। ऐसा मानने में अपने गुरु का अविनय हो जाता है क्योंकि उन्होंने भी जो मार्ग अपनाया है वह तो सर्वज्ञ की परंपरा से उन्हें प्राप्त हुआ है। अभी हम कहेंगे पंचमकाल में महावीर भगवान से यह मार्ग प्राप्त हुआ है और वही परंपरा आज तक चल रही है। जब हम कुंदकुंद आचार्य का नाम लेते हैं, अमृतचन्द्र आचार्य का नाम लेते हैं, अनेक ज्ञानी बीच में हुये हैं, उनके द्वारा हमें यह मार्ग आज उपलब्ध हुआ है।

देखो, इस मार्ग का उपदेश सुनने की जिज्ञासा और बुद्धि होना; क्योंकि यह सुनने की सबको तो बुद्धि नहीं होती है। जिसको रुचि नहीं है उसको अनेक कारण मिलते हैं। जिसको तीव्र रुचि है उसके कितनी ही प्रतिकूलता आने पर भी उनको गौण करके कैसे भी करके यह सुनने के लिये उपस्थित हो जाता है। जिसको टीव्ही की कोई सीरियल पसंद है तो क्या होता है ? सबको पता है कि बाकी काम कैसे भी निपटाकर उस समय पर बराबर वहां हाजिर होता है। *श्रोता: अभी सब छोड़कर आये हैं/ सब छोड़कर यहां शिबिर में आये हैं।* जिन्हें स्वाध्याय की रुचि है वे सब छोड़कर आये हैं। सभी लोग नहीं आये हैं सब छोड़कर, कुछ लोग आये हैं तो यह बताता है उनकी रुचि कहां है। ख्याल में आता है ?

देखो, आज के ज़माने में तो शिबिर बहुत आसान कर दिये हैं आप लोगों ने, रहने की इतनी सुविधा। हम १९७५ में यात्रा में गये थे, बाबूभाई मेहता ने जो धर्मचक्र यात्रा निकाली थी उसमें। ये हमारे छोटे बाबूभाई थे साथ में तब से हमारा इनसे बहुत परिचय है। *श्रोता: बड़े बाबूभाई ने।* बड़े बाबूभाई ने यात्रा निकाली थी। बाबूभाई मेहता, हुकुमचंदजी भारिल्ल, नेमचंदजी रखियालवाले, नेमिचंदजी पाटनी हां यह सामने उनकी फोटो है न, उस यात्रा में हम इनके संपर्क में आये तब की बात है। यात्रा की बात है। उस समय तो इतनी प्रतिकूलता में ये बातें चली थी। हम हजार यात्री सत्रह-अठारह बसेस में पूरे भारत भर में घूमे थे, सौ दिन की यात्रा थी। *श्रोता: पौने तीन महीने की।* हां ? पौने तीन महीने की। कहीं पर भी जाओ, कभी रास्ते में ही रुक जाते थे और वहीं पर दरी बिछाते थे रास्ते के बाजू में देर रात में, कहीं जंगल में, कहीं भी सो जाते थे। कहीं स्कूलों में, अंडर-कन्स्ट्रक्शनवाली बिल्डिंग में कहीं पर भी ठहराते थे और शिबिरों में भी कोई खास व्यवस्था नहीं होती थी। कभी-कभी एक कॉमन हॉल देते थे १५० लोगों के लिये; आज तो चार लोगों को भी एक रूम में रहना मुश्किल हो रहा है। क्यों ? इसी देवलाली में इन छोटी-छोटी रूमों में हम आठ-आठ जन रहे हैं। आज तो वह व्यवस्था भी अधूरी लगती है। यहां क्या कहते हैं ? अन्य प्रतिकूलताओं को गौण करके हमें जो सत्य उपदेश मिलता है उसको रुचिपूर्वक समझे तो हमें यह मार्ग उपलब्ध होता ही है। यहां क्या कहते हैं ?

देखो, इसको जानने की जिज्ञासा और बुद्धि होना, सत्य उपदेश सुनने का

अवसर प्राप्त होना यह महान पुण्य का उदय है। हम पुण्य का उदय किसको समझते हैं ? पैसा मिला उसे हम हमारा पुण्य का उदय समझते हैं। कोई अच्छे संयोग मिले, हमारे पुण्य का उदय है। घर अच्छा मिला, हमारे पुण्य का उदय है। यह तो साधारण पुण्य है। अलौकिक पुण्य का उदय तो तभी कहलायेगा जब यह मोक्षमार्ग के उपदेश जैसा सच्चा उपदेश हमें सुनने को मिलेगा और जिसकी पात्रता होगी उसीको यह सुनने को मिलता है। पहले-पहले में हम जब सुनते थे; पहले स्वामीजी जब कहते थे कि भाग्यवानना काने आ वात पड़े छे ऐसी बात थी न कुछ ? *श्रोता: काने पड़े छे।* यानी जिनवाणी कान पर पड़ती है - सुनने को मिलती है। हमें लगता था कि हम सुनने आये हैं इसलिये वे कहते होंगे भाग्यवान के कान में यह जिनवाणी पड़ती है। परंतु जब जिनागम का अभ्यास हुआ तो सही बात का पता चला। सचमुच ऐसे निकृष्ट काल में हमारा कुछ ऐसा परम सौभाग्य है कि यह परम सत्य बात हमारे कानों में पर पड़ी !

जिसकी ऐसी पात्रता हो, अंदर से जिज्ञासा हो और उसको निमित्तरूप से कोई ज्ञानी न मिले ऐसा तीन काल में नहीं होता ! महावीर का जीव तो सिंह की पर्याय में था, जंगल में था। उसको कौन सुनाने आया ? चारण ऋद्धिधारी मुनि आकाश से जा रहे थे और उस जीव को देखकर उन्हें विचार आया 'अरे ! यह तीर्थकर होनेवाला जीव है। भावी तीर्थकर का जीव है।' सहज उनको ऐसी बुद्धि हुयी। उनको कौनसी भाषा में, कैसे अंक्शन में, कैसा उपदेश दिया होगा ? वह भी वहां निमित्त हुआ और सिंह को सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हुयी। वह हमने देखा न, चारों गति के जीवों को सम्यक्त्व की प्राप्ति हो सकती है और उनको वैसा सहजरूप से जो कुछ यथावकाश निमित्त है, वह भी मिल जाता है। उसके लिये विशुद्ध परिणामवाले को देशनालब्धि होती है ऐसा कहेंगे। जिसके परिणाम इतने मृदु हैं, धर्मानुरागरूप हैं, कोमल परिणाम हैं जो विशुद्धिलब्धि में होते हैं, उसीके देशना सुनने का भी अवसर प्राप्त होता है। उसीको तत्त्व के विचार आयेंगे, नहीं तो तीव्र कषाय में उसको तत्त्व का विचार क्यों सूझने लगे ? इन सभी लब्धि का स्वरूप ऐसा है, बिलकुल एक दूसरे को पूरक ऐसी बातें होती हैं।

अभी हम देशनालब्धि का स्वरूप देखते हैं। उसमें क्या-क्या बातें होती हैं ? छह द्रव्य, सात तत्त्व या नौ पदार्थ, मोक्षमार्ग, सच्चे देव-गुरु-शास्त्र का स्वरूप आदि कौन-कौनसे विषयों का बिलकुल निर्णय होना चाहिये ये बातें बता रहे हैं। छह द्रव्यों

का स्वरूप, सात तत्त्व कहो या नौ पदार्थ कहो, उनका सही स्वरूप, बिलकुल उसमें हेय, ज्ञेय, उपादेय श्रद्धान की जितनी विस्तार से बात जानने लायक है, उसको जानना भी चाहिये। सहीरूप से उसको अभिप्राय में लेना चाहिये। चौथे गुणस्थान से लेकर चौदहवें गुणस्थान तक का पूरा ही मोक्षमार्ग क्या है, प्रत्येक गुणस्थान का स्वरूप क्या है वह भी समझ में आना चाहिये। हम मान्यता में या ज्ञान में अन्यथा बातें लेकर बैठे हों, उसीको मोक्षमार्ग माने और फिर हमें सम्यग्दर्शन हो जाये, यह बात नहीं हो सकती।

एक आवश्यक कंडिशन है सच्चे देव, सच्चे गुरु और सच्चे शास्त्र का निर्णय होना ही चाहिये। नहीं तो इतना उपदेश सुना, इतने शास्त्र पढ़े, सच्चे देव की पूजा करने लगे; परंतु अभी सच्चे मुनियों का या सच्चे देव का या सच्चे शास्त्र का निर्णय नहीं है तो सम्यक्त्व होने का बिलकुल चान्स नहीं है। समाज के डर से या क्या करें ? इतने लोग जा रहे हैं तो हमको भी जाना चाहिये, उनको इतने लोग मानते हैं तो हमको भी मानना चाहिये; ऐसी-ऐसी बातों के आधीन होकर जो लोग कुगुरुओं की या कुदेवों की वंदना, पूजा करते हो या मान्यता में कहीं उनके प्रति विनय, आदर हो तो भी उन्हें सम्यक्त्व की प्राप्ति होना दुर्लभ है यानी सम्यक्त्व प्राप्त हो ही नहीं सकता। मोक्ष जैसा महान कार्य जिसके प्रकट होनेवाला है उसके पूर्व में यह कंडिशन आवश्यक ही है। इसमें कोई समाज के लिये वगैरह करने की बात नहीं होती। जब-जब हम मनुष्य में उत्पन्न होंगे तब समाज तो रहेगा ही साथ में। समाज के डर से मिथ्या मान्यताओं का पोषण करने की आवश्यकता नहीं है। सत्य क्या है ? उसका निर्णय करना ही चाहिये। इतना निर्भीक तो होना ही चाहिये, निडर होना ही चाहिये। जो सत्य है उसको सत्यरूप से अंगीकार करना ही पड़ेगा। *श्रोता: कोई माने ना माने ?* दूसरा माने या नहीं माने उससे हमारा कुछ नफा-नुकसान नहीं होनेवाला है। हम जो कुछ मानेंगे उसीका हमें फल मिलेगा। यह हमें स्वयं के लिये करना चाहिये।

देखो-देखो ! एक बार एक भाईसाहब आये थे हमारे पास। बहुत उम्र के थे सत्तासी वर्ष के थे। उन्होंने जैनतत्त्व परिचय पुस्तक पढ़ी और ढूंढ़ते-ढूंढ़ते ऐसे फ़ोन करके आ गये। आते ही बोला कि मैं सुन नहीं सकता हूं। वे बोलते थे बहुत जोर से, बहुत बुलंद आवाज़ थी। कहा कि मुझे सुनने में थोड़ी तकलीफ़ है। रोज़ हमारे स्वाध्याय में रेकॉर्डिंग होती थी, तो माइक उनके सामने रख दिया। हमने माइक भी

लगाया और कॅसेट भी लगायी रिकॉर्डिंग करने के लिये। डेढ़ घंटे उनके साथ हमारी चर्चा हुयी। उन्होंने बोला कि मैं चार साल से सम्यग्दर्शन प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहा हूं। मुझे एक भाई मिले थे, उन्होंने कहा कि मैंने अनेक मुनियों को सम्यग्दर्शन दिलाया है, मैं आपको भी दिला दूंगा। उनके बताये हुये मार्ग के अनुसार मैं रोज़ प्रयत्न करता हूं। मैंने बोला कि आप क्या प्रयत्न करते हो ? मैं रोज़ सुबह ४:३० बजे उठता हूं। पौना घंटा पद्मासन लगाकर बिलकुल स्थिर चित्त ऐसा सीधा बैठता हूं और 'ॐ नमः सिद्धेभ्यः' का जाप करता हूं। वहां बहुत लंबी-चौड़ी चर्चा हुयी थी। हमने उनको पूछा कि आप 'ॐ नमः सिद्धेभ्यः' कहते हो अच्छी बात है, पर सिद्ध भगवान का स्वरूप आपको पता है ? तो कहने लगे उसकी क्या जरूरत है ? भोले थे और सच्चे दिल से आये थे ! उनको ऐसा प्रयत्न करके भी कुछ मार्ग सूझ नहीं रहा था। इसलिये सच्चे दिल से उन्होंने कहा- मैंने जब जैनतत्त्व परिचय पुस्तक पढ़ी तो मुझे ऐसा लगा कि यहां सही मार्ग उपलब्ध होगा क्योंकि उसमें बहुत सारी तत्त्वों, द्रव्यों आदि बातों की हैं इसलिये वे पूछने आये थे।

समाज में दूसरों को भ्रम पैदा करके, ऐसा कुछ न कुछ उपदेश देनेवाले भी बहुत मिलते हैं क्योंकि पता ही नहीं न ! जिसका तत्त्वज्ञान का अभ्यास नहीं है उसको ज्ञानी-अज्ञानी के निर्णय की बात तो छोड़ ही दो, परंतु जो उपदेश सुन रहे हैं वह उपदेश सच्चा है कि झूठा है इसका निर्णय भी नहीं हो सकता। आजकल तो उपदेश ही उपदेश प्राप्त हैं। टीव्ही लगाओ तो उपदेश ही उपदेश मिल रहा है ऐसा हमने सुना है। हमारे पास केबल नहीं है, परंतु लोग हमको सुनाते हैं कि केबल पर आता है; यह चॅनल आता है, वह चॅनल आता है। इसमें इतना सारा उपदेश घर बैठे मिलता है। मुनि भी आते हैं, विद्वान भी आते हैं, सब हमको उपदेश सुनाते हैं। परंतु वह उपदेश कितना सही है और कितना गलत है उसका निर्णय करने की अभी बुद्धि कहां है ? कुछ है ही नहीं न ! यह सही है कि झूठ है इसका निर्णय तो करना पड़ेगा कि नहीं पड़ेगा ? लोग कहां देखते हैं ? उनके बाह्य स्वरूप को देखेंगे और ऐसा लगता है कि नहीं-नहीं, इतने लोग इनको माननेवाले हैं तो हम भी इनका ही उपदेश सुनेंगे। ऐसी भ्रमणा सब जगह चल रही है।

अभी यहां इतना ही समझना- जिसकी ऐसी होनहार है उसको ऐसे ही उपदेश

देनेवाले मिलेंगे तो अपना समाधान हो जाता है यानी कहीं जाकर उनको यह बंद करो, यह मत सुनो, यह कहने से कुछ मतलब नहीं है। सच्चा उपदेश सुनाओ - उनको ठीक लगा, पसंद आया तो ले लेंगे, नहीं तो नहीं लेंगे। गुरुदेवश्री की भाषा में आज मानो या काले मानो आ मान्या वगर छुटको नहीं। जब यही बात सत्य मानेंगे, सुनेंगे, सही है ऐसा निर्णय करेंगे, तभी उनका आगे का रास्ता खुलेगा। तब तक मोक्षमार्ग की शुरुआत ही नहीं होनेवाली। सच्चे देव, सच्चे गुरु और सच्चे शास्त्र का निर्णय करके उन्हीं का उपदेश सच्चा है, अन्यथा बिलकुल नहीं है ऐसा जब दृढ़तापूर्वक निर्णय होगा तभी आगे चलकर उस पर विचार होगा। तब उस पर तत्त्वचिंतन चलेगा।

हमें सही मार्ग तो अक्लेबल-उपलब्ध है, फिर भी जिसे निर्णय नहीं वह मानता है कि यह भी सच्चा है, वह भी सच्चा है। अभी देवलाली तक आये ही हैं तो जाते-जाते उनका भी आशीर्वाद लेकर चले जायेंगे। ऐसा कोई आपको मालूम है कि नहीं ? नहीं है तो अच्छा है। श्रद्धा-सबूरी सब पास में है तो वहां भी जाते हैं। कोई भी चरणानुयोग का ग्रंथ निकालकर देखो, सबसे पहला अधिकार है सम्यग्दर्शन अधिकार। रत्नकरण्डश्रावकाचार या कोई भी श्रावकाचार हो, पुरुषार्थसिद्धिउपाय हो। पहला अधिकार है सम्यग्दर्शन अधिकार और उसमें देव-गुरु-शास्त्र का निर्णय करने की बात सर्वप्रथम आती है। उस निर्णय में कचास है फिर भी लोग कुछ व्रतादि अंगीकार करते हैं और अपने आपको मान लेते हैं हम धार्मिक हैं ! हम कुछ धर्म कर रहे हैं मानकर उसमें संतुष्ट होकर रहते हैं। उससे उनका कुछ भी भला होनेवाला नहीं है।

श्रोता: ज्ञान से सम्यक्त्व होता है ? हां ? श्रोता: ध्यान, ध्यान। ध्यान शिबिर ? ध्यान शिबिर से पूछ रहे हो तो उससे नहीं होता, परंतु ध्यान से होता है। नहीं समझे ? श्रोता: ध्यान। आप पूछ रहे हैं ध्यान से सम्यक्त्व होता है कि नहीं होता है ? ध्यान के काल में होगा। कौनसा ध्यान ? श्रोता: शुक्लध्यान। शुक्लध्यान तो श्रेणी में होता है, आत्मध्यान से सम्यक्त्व होता है। देशना में क्या मिलेगा ? उपदेश। किस संबंधी उपदेश ? आत्मा संबंधी उपदेश। आत्मा कैसा है, उसका स्वभाव क्या है, उसको प्राप्त करने का साधन क्या है - इन सब बातों का ज्ञान यानी शास्त्रज्ञान के द्वारा हम उसका मार्ग समझते हैं। यह बात आगे आयेगी। किसतरह से सम्यग्दर्शन प्राप्त होता है ? सम्यग्दर्शन प्राप्त होता है विशुद्धि के काल में, तत्त्वविचार के काल में। तत्त्वसंबंधी उसका विचार चलता

है, उसीका ध्यान चलता है, उसीमें एकाग्र होना यानी ध्यान। तत्त्वविचार में जो ध्यान लगता है उसमें तो इतनी लीनता होती है कि उसको आत्मा का अनुभव हो जाता है। परंतु आप कौनसे ध्यान की बात कर रहे हैं ? ध्यान तो हम बहुत करते हैं। हम अपने बच्चे का भी ध्यान रखते हैं। पैसे का भी ध्यान रखते हैं। जब पैसे लेकर आना है तो बिलकुल पैसे संभाल-संभाल कर लाते हैं। तो कौनसे ध्यान से सम्यक्त्व की प्राप्ति होगी बोलो ? हां ? *श्रोता: ध्यान शिबिर से ?* अभी ध्यान शिबिर में क्या करते हैं ? मुझे पता नहीं है क्योंकि मैंने कभी अटेंड नहीं किया है। अभी अन्य जो कुछ कर रहे हैं उस पर हम कुछ यहां टीका टिप्पणी करें वह तो बात ठीक नहीं है।

श्रोता: ध्यान तो है ही चार प्रकार - आर्तध्यान, रौद्रध्यान। हां आर्तध्यान, रौद्रध्यान; उसके तो कभी शिबिर नहीं लगे। हां, रौद्रध्यान के होते हैं। हास्यानंदीवाले कुछ शिबिर लगते हैं न। हास्य के क्लब चलते हैं न, हा-हा-हा, अभी कुछ काल के बाद रोने के भी लगेंगे। शायद हो सकता है कि शिबिर में ध्यान की प्रेरणा मिले। परंतु ध्यान तो एकांत में होने की बात है। अभी वहां ध्यान शिबिर में क्या होता है मुझे पता नहीं है। हम देशना की बात करेंगे उसमें ध्यान कैसा होता है वह बात आगे चलकर आयेगी। ध्यान के काल में ही आत्मा की अनुभूति होगी। एकाग्रता से अंदर में जो लीनता हो जाती है, तत्त्वविचारों में जो लीनता हो जाती है उस काल में आत्मानुभूति होगी।

अब यहां हम देखेंगे देशनालब्धि। हमने देखा छह द्रव्य हैं, सात तत्त्व हैं, देव-गुरु-शास्त्र के स्वरूप का निर्णय है, 'स्व' और 'पर' का ज्ञान जिसको भेदज्ञान कहेंगे। 'स्व' कौन ? 'स्व' में क्या ? जो जिनेन्द्र भगवान ने जिस 'स्व' का स्वरूप बताया, शुद्धात्मा की बात बतायी है जिसको हम दृष्टि का विषय कहते हैं, उस 'स्व' का और 'पर' का पहले ज्ञान होगा। उस संबंधी भेदज्ञान भी होगा। उस पर तत्त्वविचार भी चलेगा। स्व में जब एकाग्रता हो जायेगी तब जाकर वह ध्यान कहलायेगा और तब जाकर आत्मा की अनुभूति होगी। हां, हेय, ज्ञेय, उपादेय भावों का श्रद्धान होगा। सात तत्त्वों में कौनसे तत्त्व हेय हैं ? हेय यानी छोड़ने लायक। कौनसे तत्त्व छोड़ने लायक हैं ? *श्रोता: आस्रव और बंध।* आस्रव और बंध। फिर उपादेय यानी प्रकट करने योग्य संवर-निर्जरा है, मोक्ष है। आश्रय करने योग्य उपादेय कौनसा है ? *श्रोता: जीवतत्त्व।* हां, जीवतत्त्व - मैं स्वयं शुद्धात्मा जो हूं और ज्ञेय तत्त्व ? *श्रोता: अजीवतत्त्व।* अजीवतत्त्व।

यह पूरा विश्व हमारा ज्ञेय है। कैसा ज्ञेय है ? हमने ज्ञेय तो माना; परंतु कैसा ? अरे ! उसीको रुचिपूर्वक जानते रहे। यह सभी हमारा ज्ञेय है। यह टीव्ही भी हमारा ज्ञेय है। यह सब हमारे बाल-बच्चे हमारे ज्ञेय हैं। ऐसा नहीं, यह मैं नहीं हूँ ऐसा ज्ञेय है। बोलो हमने कैसा ज्ञेय माना ? हां, जानने लायक है न ? तो रुचिपूर्वक उसीको जानने में लग गये। ऐसा जानना था कि यह मैं नहीं। यहां तो सारे बंगले एक जैसे दिखते हैं तो कैसा जानना है उनको ? यह मेरा है और यह दूसरा मेरा नहीं है ऐसा ? अभी यहां सारे हमारे मुमुक्षु हैं। परंतु कहीं बाहर चले जाओ वहां एक सरीखी बिल्डिंगें होंगी और हम किसीके भी घर में घुस जायें तो क्या होगा ? डंडे पड़ेंगे। ऐसा ही, जो पर वस्तु है उसरूप मैं अपने को मानूं या वह मेरी है ऐसा मानूं तो क्या होगा ? चार गति के डंडे खाने पड़ेंगे जैसे अनादिकाल से हम खा रहे हैं। इसलिये हेय, ज्ञेय और उपादेय का श्रद्धान होना आवश्यक है। देशना में क्या-क्या बातें आती हैं ? यह हम देख रहे हैं। इन बातों संबंधी जो सच्चा उपदेश देते हैं ऐसे आचार्यादिकों की प्राप्ति यानी तीर्थकर, आचार्य, उपाध्याय, साधु, पंचम गुणस्थानवर्ती या चतुर्थस्थानवर्ती जो ज्ञानी हैं - उनका पहले में पहले समागम मिलना। दूसरी बात उनके द्वारा दिये गये उपदेश का यानी देशना का मिलना यानी वह सुनना। सुने मगर समझे ही नहीं तो क्या फायदा ?

गुरुदेवश्री कानजीस्वामी को शुरू में जब हमने सुना था तो बस आहाहा और समझाणुं काई ? इतना ही समझते थे। क्योंकि उस समय भी भाई ! मैं पूरा प्रवचन लिख लेती थी, एक शब्द छूटता नहीं था। मेरे पूरे नोट्स अभी भी हैं। परंतु उसमें इतनी गहराई है वह कुछ नहीं समझते थे। वे गुजराती में बोले तो हम भी छे-छे करके सब मराठी में लिख लेते थे। बाद में जाकर इन सब लोगों से हम सीखे, हमारा अभ्यास हुआ - बाबूभाई मेहता और यह जो छोटे बाबूभाई, हुकुमचंदजी भारिल्ल, ज्ञानचंदजी, नेमिचंदजी रखियालवाले, नेमिचंदजी पाटनी और खिमचंदजी, चिमनभाई कामदार - बहुत सारे विद्वान; सभी गुरुदेवश्री के शिष्य और उनमें से किसीको हमने नहीं छोड़ा ! हमने सबसे सीखा - अभ्यास किया है; उनके पीछे लगकर, हम उनके पास से टाइम मांग लेते थे। हम सोनगढ जाकर डेढ़ महीना रहे थे। तो हर एक के पास जाकर प्रायःव्हेटली एक-एक घंटा मांग लेते थे कि आप हमको एक घंटा पढ़ाओ और वे बहुत खुशी से पढ़ाते थे। श्रोता: सुशीला श्री। सुशीला श्री से भी पढ़ते थे, बहुत सारे हैं।

श्रोता: नेमचंदकाका तो... हां, नेमचंदजी रखियालवाले। उन्हें तो दिनेशजी रोज दुकान से लौटते समय रात को ८ बजे लेकर आते थे, वे हमें पढ़ाते थे और हमारे घर के २९-३० सदस्य उनके सामने बैठकर रोज डेढ़ घंटे सुनते थे। अनेक महीनों तक उन्होंने हमें पढ़ाया। उन्हीं की प्रेरणा से हम प्रांतिज, गुजरात में प्रक्षिण शिबिर में गये थे। कैलाशचंदजी बुलंदशहरवाले बम्बई में आये थे, ढाई महीने रहे थे। दुकान और दवाखाने को ताला लगाकर और बच्चों को किसी भी हालत में रखकर हम १६-१६ लोग प्रतिदिन तीन बार जाते थे- सुबह, दोपहर और रात को। १९७६ में हमने उनसे पढ़ा था, वे तो मुझे ए डॉक्टरनी कहते थे ! ढाई महीने के बाद उन्होंने बोला- अभी आपको किसीकी जरूरत नहीं है। तब कहते थे हिंदुस्तान में आप जैसा होशियार कोई नहीं है - तभी १९७६ में उन्होंने ऐसा बताया था। तब हम जानते थे, हम कुछ नहीं हैं। जब वे सिखाते थे तब एक बार तो बता देते थे वह सुनकर उन्होंने परिभाषा पूछी तो मैं झट से बता देती थी। हमारे परिवार के सब लोग उत्तर देते थे। मगर उसकी गहराई क्या है ? उसका मर्म क्या है ? वह ख्याल में नहीं आता था। जब इन सभी विद्वानों से हमने पढ़ा, तब कानजी स्वामीजी क्या कहते हैं - उनके एक-एक वाक्य में कितनी गहराई है और कितना मर्म है वह हमें समझ में आने लगा। गुरुदेवश्री का ऐसा एक भी प्रवचन नहीं है या एक भी ऐसा पुस्तक नहीं जिसका हमने अनेकों बार स्वाध्याय न किया हो। आद्योपांत स्वाध्याय किया है और दूसरों को भी पढ़ाया है। गुरुदेवश्री के सभी पांचों परमागम और अन्य ग्रंथों पर हुये प्रवचनों में से एक-एक लाइन पढ़कर हम उसे समझाते हैं। इसीतरह स्वाध्याय में अपनी बात चलती है। उस कारण हमारा द्रव्यानुयोग का - तत्त्वज्ञान का बहुत गहराई से अभ्यास हो गया है और करणानुयोग में यही कार्यकारी हुआ है। हां, क्योंकि इसीलिये करणानुयोग के माध्यम से भी हम उसका मर्म निकाल सकते हैं। यह गुरुदेवश्री का हम पर बहुत बड़ा उपकार है।

देशना का मिलना जिसको कहेंगे न, महाभाग्य से ऐसा कुछ अवसर आता है। तब भी सुननेवालों की क्या ? थोड़ी शिकायत होती है। वे कहते हैं हमारे बच्चे छोटे हैं ! हमारी भी छोटी-छोटी बच्चियां थी। जब यात्रा में गये थे तीन महीने के लिये, तब उन्हें छोड़कर गये थे - एक तीन साल की थी, एक पांच साल की। तभी भी स्कूल के अंडमिशन में बहुत तकलीफ होती थी। यात्रा में गये फिर भी हो गयी स्कूल में

अँडमिशन, सब हो गया। *श्रोता: डॉक्टर भी हो गयी।* हां ! डॉक्टर भी हो गयी। हमें लगता है न हम करेंगे तो हो जायेगा, नहीं तो हमारे बच्चों का क्या होगा ? सब कुछ हो जाता है, जो यथा अवसर होना है। यहां कहते हैं कि कितनी भी प्रतिकूलतायें आयें, इस तत्त्व को नहीं छोड़ना है। जहां से सही उपदेश मिल रहा है उसको कभी नहीं छोड़ना।

देशना किसको कहते हैं ? मोक्षमार्ग के उपदेश का मिलना। ज्ञानियों के द्वारा उपदेश का मिलना वह देशना कहलायेगी और देशनालब्धि किसको कहेंगे ? पहले में पहले उपदेश सुनना। सुनने की मुख्यता इसलिये है- जब हम पढ़ते हैं तब हम अपनी मतिकल्पना से उसका अर्थ लगाते हैं या हमारे लौकिक में जो शब्द हैं, यहां भी शब्द वे ही हैं। शब्द तो सीमित हैं, संख्यात हैं और भाव तो अनंत हैं। वे ही शब्द यहां भी आते हैं और वे ही शब्द हम लौकिक में भी वापरते हैं, है न ! शब्द तो वे ही के वे ही होंगे। जैसे व्यवहार यानी घर पर आये हुये महेमान को आओ, बैठो, चाय पियो आदि करना उसको हम व्यवहार समझते हैं और यहां तो निश्चय-व्यवहार कुछ और ही बातें हैं। शब्द तो वही के वही हैं। जैसे द्रव्य- हम यहां द्रव्यानुयोग में द्रव्य किसको कह रहे हैं ? जैसे स्वभाव की दृष्टि को द्रव्यदृष्टि कहते हैं, करणानुयोग में तो परमाणु को द्रव्य कहते हैं। कितना द्रव्य नीचे आया है, कितना ऊपर गया है उसको हम द्रव्य कह रहे हैं और लौकिक में पैसे को-धन को द्रव्य कहते हैं। द्रव्यदृष्टि तो हमारी है ही है। एक ही शब्द अलग-अलग अर्थों में आता है और हम अपनी बुद्धि के अनुसार उसका अर्थ लगाते हैं तो कुछ न कुछ गलत अर्थ निकलता है।

हम पहली बार अमेरिका गये, मधुभाई कहां है ? अमेरिकावाले कौन है यहां दूसरे ? हां बहुत हैं। जाकर आये हुये भी होंगे बहुत, हां ? *श्रोता: हम भी आये न ?* हां, हां। वहां कैसा स्वाध्याय चलता है ? सब जगह नहीं चलता होगा। पांच, छह, आठ, जन जो कुछ स्वाध्याय की रुचिवाले हैं, वे वहां इकट्ठे होते हैं। कोई शास्त्र लेते हैं, दो-चार लाइन पढ़ते हैं फिर एक जन बोलेगा, मेरी मान्यता के अनुसार ऐसा; दूसरा कहता है मेरी कल्पना के अनुसार यह ऐसा है; तीसरा बोलता है यह मेरी कल्पना ऐसी है; फिर दूसरा कहता है मुझे ऐसा लगता है यह ऐसा होना चाहिये। अपने को क्या लगता है वह स्वाध्याय नहीं है। वैसे अनादि से लगता आया है। भगवान ने किस दृष्टि से उसका क्या सही अर्थ बताया है ? ज्ञानी उसका क्या अर्थ बताते हैं उसके अनुसार हमें सोचना है।

अपनी कल्पना के अनुसार उसका अर्थ नहीं लगाना है। हमने बहुत जगह यह सुना और वहां भी हमने उनको ठोक बजाकर बताया है कि यह बात नहीं चलेगी। यह स्वाध्याय नहीं कहलाता। अपनी मान्यता तो अनादि से मिथ्यात्व में चल रही है। हमें शास्त्र का सही अर्थ ग्रहण करना है। ज्ञानियों ने उसका क्या अर्थ बताया है ? वैसा हमें सोचने की आदत लगानी चाहिये।

अर्थों का अनर्थ कैसे होता है पता है ? एक बार मैं क्लिनिक में बैठी थी तो कॉलेज की कुछ तीन चार विद्यार्थिनी आयी। उन्होंने मुझे पूछा- आप हेअर स्पेशलिस्ट हैं न ? मैंने बोला नहीं तो। अगर नहीं हैं तो बाहर बोर्ड क्यों लगाया है ? आपने बाहर बोर्ड लगाया है और आप नहीं कह रही हैं ! क्या बोर्ड लगाया है हम देखेंगे तो सही ! बाहर बोर्ड था बालरोगतज्ञ यानी बच्चों की स्पेशलिस्ट यानी चाइल्ड स्पेशलिस्ट। उन्होंने बाल का अर्थ क्या किया ? यानी पढ़े-लिखे लोग भी ऐसा अर्थ लगा सकते हैं। वहां अंग्रेजी और हिंदी दोनों भाषा में लिखा था फिर भी उनके हेअर स्पेशलिस्ट की जरूरत थी तो चली आयी पूछने को। ऐसे ही हम जब शास्त्र का अभ्यास करते हैं तो कुछ अर्थ का अनर्थ करके उसको सोच लेते हैं। इसलिये सुनने की मुख्यता है। देशनालब्धि में, देशना में सुनने की मुख्यता है। ज्ञानियों के द्वारा जब सुनते हैं तब सही अभिप्राय समझ में आता है। जब उपदेश देनेवाले भी श्रोता को देखते हैं तो सामनेवाले की आंखों से पता चलता है कि किसने कितना ग्रहण किया। क्या इसको ग्रहण हुआ कि नहीं हुआ ? क्या उन्हें इसमें कोई प्रश्न है ? यह सुननेवालों के एक्सप्रेशन से ही पता चलता है। तब वक्ता अधिक स्पष्टता करता है या सामनेवाले के कोई प्रश्न हो तो उसका समाधान करने की भी कोशिश करता है।

केवल सुनने की क्रिया देशनालब्धि नहीं है। क्या कहा ? देशनालब्धि में सुनने को मुख्य कहा पर हमने सुना कब कहेंगे ? घर में कोई मेहमान आते हैं तो मां अपने बच्चे को कहती है- जा बेटा, जरा पानी लेकर आना। बच्चा वहीं पर खड़ा रहता है। फिर मां जरा जोर से कहती है, अरे जा ना, पानी लेकर आ, बोला न, सुना नहीं क्या ? फिर भी बच्चा वहीं खड़ा रहता है। फिर मां गुस्सा-गुस्सा हो जाती है। तीन-तीन बार बता रही हूं सुना नहीं तुमने ? मैंने कितनी बार बताया है ? बच्चा कहता है आपने पहली बार ऐसा बताया, दूसरी बार ऐसा बताया, तीसरी बार गुस्सा करके बोला। तो

उसने सुना कि नहीं सुना ? सुना ऐसा कब कहेंगे ? वह जाकर पानी लेकर आये तो उसने सुना कहेंगे।

हम भी क्या करते हैं ? हमारे भगवान ने इतनी बार बताया। भगवान की बात छोड़ो, आचार्य भी कहते हैं। हमें तो स्वामीजी भी भगवान आत्मा कहकर पुकारते हैं, वह कितनी बार याद आता है और किसीने इन्सल्ट किया हो; वह कितनी बार याद आता है ? *श्रोता: वह बात दिल में से निकलती नहीं।* वह निकलती नहीं और हम भगवान की सुनते भी कहां है ? हम तो सुनाने में लगे रहते हैं; किसको ? भगवान को। नहीं समझे ? उठते ही हम गा-गाकर भगवान को पूजा सुनाते हैं, उनकी स्तुति करते हैं। हर एक को करना भी चाहिये। हम उनको सुनाते हैं परंतु उन्होंने बतायी हुयी बातें सुनते नहीं हैं। तो हमारी अवस्था कैसी हुयी मालूम है ? द्वीन्द्रिय जीव, त्रीन्द्रिय जीव, चतुरिन्द्रिय जीव जैसी। द्वीन्द्रियों को दो इन्द्रियां हैं, कौनसी ? स्पर्शन और रसना यानी वे बोल सकते हैं। त्रीन्द्रिय भी बोल सकते हैं, सुन नहीं सकते। चतुरिन्द्रिय भी बोलते हैं सुनते नहीं हैं। पंचेन्द्रियों को ही कर्णेन्द्रिय होती है। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय बोलते हैं परंतु सुनते नहीं हैं। हम भी भगवान को सुनाते हैं, बोलते रहते हैं, परंतु भगवान की सुनते नहीं हैं तो हम पंचेन्द्रिय हैं कि विकलेन्द्रिय हैं जरा अपने आप से नक्की करना !

भगवान तो बैठे-बैठे मूक उपदेश दे रहे हैं। उनकी तरफ देखेंगे तो भी उनमें वीतरागता ओतप्रोत भरी हुयी है। उनके अंग-अंग से हमें उस वीतरागता का एहसास होना चाहिये। क्योंकि वे तो वीतरागता की मूर्ति हैं। जब हम अरिहंत भगवान की प्रतिमाजी देखते हैं तो उनका सही स्वरूप ख्याल में आ जाये, भावभासन हो जाये तो ही हमने उनको नमस्कार-वंदन किया कहेंगे। यहां इन ग्रंथों की बातें हम क्यों पढ़ रहे हैं ? यह अरिहंत भगवान की वाणी है। उसके द्वारा हमें देव-गुरु-शास्त्र का स्वरूप निश्चित करना है। अरिहंत भगवान का स्वरूप निश्चित करना है। लास्ट टाइम मैंने अष्टपाहुड में से भी आपको बताया था कि अरिहंत भगवान की स्थापना करना है तो स्थापना किसको कहेंगे रमेशजी ? आपने की है न बैंगलोर में, हां ? मंदिरजी का निर्माण कराया। वहां अरिहंतजी की प्रतिमा भी विराजमान की। कौनसे भगवान हैं ? *श्रोता: आदिनाथ भगवान।* आदिनाथ भगवान हैं।

स्थापना किसको कहते हैं ? हम कुंदकुंद आचार्य को पूछेंगे अष्टपाहुड में। वहां

कुंदकुंद आचार्य कहते हैं कि अरिहंत भगवान पर जीवसमास, पर्याप्ति, प्राण, संज्ञा आदि बीस प्ररूपणा लगाना और उनकी अपेक्षा अरिहंतों के स्वरूप का निर्णय करना यह अरिहंत की स्थापना है और हम कहते हैं कि गुणस्थान आदि को क्यों जानना ? अरिहंत भगवान का गुणस्थान कौनसा है ? उनका जीवसमास कौनसा है ? उनके पर्याप्ति कितनी हैं ? उनको प्राण कितने है ? किसीको मालूम है ? अरिहंतों को कितने प्राण होते हैं, हां ? श्रोता: चार/ ये सब अभ्यासी हैं न, बता रहे हैं चार प्राण हैं। कौनसे चार प्राण हैं ? ऊर्मिलाबेन बताओ, आप होशंगाबादवाली हैं न ? बोलो-बोलो। देखो, अरिहंत भगवान हम आप जैसे संज्ञी पंचेन्द्रिय हैं फिर भी उनके इन्द्रिय प्राण नहीं हैं क्योंकि वे इन्द्रियों से जानते नहीं हैं। उन्हें कायबल है, वचनबल है, वाणी है न उनकी, श्वासोच्छ्वास है और आयु है - उनके चार प्राण हैं। किसके ? तेरहवें गुणस्थानवाले के और चौदहवें गुणस्थानवाले के आयु प्राण है। हां, यहां कहते हैं ये जो प्ररूपणायें हैं; जीवकाण्ड में बतायी हैं बीस प्ररूपणा; इनके द्वारा अरिहंतों को जानेंगे तब हमने अरिहंतों की स्थापना की है ऐसा कहेंगे। हमने केवल उनकी मूर्ति में विधिपूर्वक मंत्र कहे और उनकी स्थापना की ठीक है, उसको हम स्थापना नहीं कहेंगे, ऐसा नहीं है, परंतु अरिहंतों को जब हम द्रव्य-गुण-पर्याय से जानना कहेंगे तो ये सभी प्ररूपणायें उनमें लगा लेना। क्योंकि ये जीव की अवस्थायें हैं। उनको कौनसी मार्गणा में रखना ? उनके कितनी पर्याप्ति होती हैं ? कितने प्राण होते हैं ? इन सबकी हमें बिलकुल सहीरूप से जानकारी होनी चाहिये। तब हम कहेंगे हमने सच्चे देव को जाना। हर एक के बारे में ऐसा है। पूरे मोक्षमार्ग में ऐसा लगाना चाहिये। हमें तो लगता है गुणस्थान, मार्गणास्थान आदि को क्यों जानना ? यह टाइमपास है, बेकार की बातें हैं, अप्रयोजनभूत है ऐसा लगता है किसी-किसीको।

कहते हैं देशनालब्धिवाला जो जीव है, वह केवल सुनने की कोरी क्रिया नहीं करता। कुछ लोग कहते हैं कि क्या करें ? अच्छे-अच्छे शब्द कान पर पड़ते हैं इसलिये हम आकर बैठते हैं। घर में क्या है ? बहुत झगड़ा होता है। यहां शांति से थोड़ा एक घंटा बैठने को तो मिलता है। घर जाये तो वह काम-काम-काम। इस हेतु के लिये सुनना वह सुनना नहीं कहलायेगा। जो अपने स्वरूप संबंधी उपदेश अत्यंत रुचिपूर्वक सुनता है तो उसकी जिज्ञासा भी है न ! वही जिज्ञासा उसको मार्ग कर देती है।

पद्मनन्दि आचार्य ने कहा है, यहां दीवार पर कहीं लिखा होगा, जो अपनी आत्मा की बात तत् प्रति प्रीति चित्तेन, प्रीति चित्त यानी अत्यंत रुचिपूर्वक सुनता है; अपनी ही बात है और अत्यंत रुचिपूर्वक सुनता है तो वह निश्चित ही भव्य है और अल्पकाल में मोक्ष जानेवाला है, वह मोक्ष का पात्र है। वह अपने स्वरूप संबंधी बातें सुनकर आनंदित होता है। उसको उत्साह आता है और अधिक सुनने के लिये उसे तालावेली लगती है। कैसे भी कोशिश करके वह सुनने के लिये पहुंच जाता है। कभी नहीं सुनी हैं ऐसी कोई अलौकिक बातें सुनने को मिल रही हैं तो उसमें उसको आनंद आयेगा ही आयेगा। क्योंकि उसमें उसे भासित होता है कि यह मेरे कल्याण की बात है।

जिसको तत्त्वज्ञान की रुचि - तीव्र रुचि जग गयी है उसकी रुचि ही उसको मार्ग बना देती है। रुचि अनुयायी वीर्य तो होता ही होता है, परंतु उसकी तीव्र रुचि के अनुसार, उसकी उपादान की योग्यता के अनुसार उसके सहजरूप से ऐसे निमित्त भी मिलते चले जाते हैं कि जिसके कारण उसको यह सारा मार्ग समझ में आता है। ऐसा कुछ प्लॅन करने के कारण वह मार्ग मिले ऐसा कुछ नहीं है। जैसे मैं मेरी बात करूंगी- हम धर्मचक्र यात्रा में क्यों गये ? मेरे सास-ससुर की सेवा करने के लिये गये और मुझे यात्रा की तीव्र रुचि भी थी। बच्चों को भी छोड़कर गये। वहां तीन महीने तक यह पूरा तत्त्वज्ञान सुना तो ख्याल में आया कि अरे यही सच्चा है ! मैं तो बचपन से बहुत धार्मिक घर की कहलाती थी। हां ! सच्चे देव को ही मानती थी, अन्यथा नहीं मानती थी। परंतु अभी तत्त्वज्ञान का निर्णय नहीं था या तत्त्वज्ञान की ऐसी कोई मालूमात नहीं थी। यात्रा के दौरान प्रवचन सुनने से पता चला था कि यह कुछ अलग बात है यहां पर ! नहीं तो बचपन से यात्रा करना, देवपूजा करना या गुरुओं को आहारदान देना वगैरह सब बातें चलती थी। परंतु सच्चा तत्त्व का निर्णय नहीं था। इन तीन महीनों की यात्रा में पता चला कि नहीं यह तो कुछ और बात है। हम जिसे जिनधर्म समझते थे वह कुछ अलग बात है और यहां कुछ अलग बात है। जब ऐसी तीव्र रुचि लगी तब आगे जाकर मार्ग स्पष्ट हुआ। सहज हो जाता है, उसके लिये कुछ करना वगैरह नहीं पड़ता।

देखो, जिसे तीव्र रुचि होती है उसे ज्ञानी का समागम, देशना का मिलना और वैसे संयोग भी सहज मिलते चले जाते हैं। संयोग कभी बाधक होते ही नहीं हैं। कभी-कभी प्रतिकूल संयोगों में भी जीव इस ओर मुड़ता है - हमने बहुत से ऐसे लोग देखे हैं।

हम देखते हैं किसी घर में किसीकी मौत हो जाये या अन्य कोई आपत्ति आ पड़े तो फिर जीव विचार करता है। उसको इतने वैराग्य के परिणाम हो जाते हैं। *श्रोताः क्षणिक भासित होता है।* वह वैराग्य क्षणिक भले आता है, पर उस काल में यदि सच्चा तत्त्वज्ञान मिले तो बस उसका जीवन पलट जाता है। ऐसे बहुत सारे लोग देखते हैं हम। अपने आजू-बाजू में ही देखते हैं।

देखो, हम जो कहते हैं न उपदेश सच्चा है कि झूठा है, सामनेवाला ज्ञानी है कि अज्ञानी है इसका पता कैसे चले ? हमने देखा जिसको यह उपदेश मिलता है, जो सुनता है, अंदर से जिसे तीव्र रुचि है, जिसके क्षयोपशमलब्धि वगैरह भी शुरू हो गयी हैं उसके अशुभकर्मों का अनुभाग मंद होकर उदय में आ रहा है। तो उसके ज्ञान यानी बुद्धि की भी कुछ विशेषता हो रही है न वहां पर ? तल्लखता हो रही है। तो उसको अंदर से ही पता चलता है कि यह उपदेश सच्चा है या झूठा है, उस पर वह जरूर विचार करेगा। जो कोई उपदेश मिल रहा है उसके ऊपर उसका विचार चलेगा कि नहीं ? निमित्त से कार्य नहीं होता उसने सुना, तो उस पर उसका विचार चलेगा। उसे तो ऐसा भासित होता था कि निमित्त आया तभी कार्य हुआ, अभी तक नहीं हो रहा था और ये तो ऐसा कहते हैं। तो उस पर उसका विचार चलेगा। जब विचार करते-करते सही निर्णय हो जायेगा तब उसको मान्य होगा। नहीं तो उसे अन्यथा कहनेवाले मिलेंगे और वैसे ही उसकी योग्यता होगी तो उसको वह बात सही लगेगी। जिनागम के आधार से ही कहनेवाले भी हैं कि निमित्त से कार्य होता है और जिनागम के आधार से ही निमित्त से कार्य नहीं होता है यह सिद्ध होता है यह हम आप सब जानते हैं। हमने उसका अभ्यास भी किया है और ज्ञानी के द्वारा हमने सुना भी है बहुत बार। तो कहते हैं कि इतना विवेक उसके अवश्य होता है कि वह सही है या गलत है उसका वह निर्णय कर सके।

वक्ता भी बहुत प्रकार के मिलते हैं न ! समाज में कोई यश के लोभ में, कोई पैसे के लोभ में कही, अन्य किसीके लोभ में, थोड़ा इधर का, थोड़ा उधर का, थोड़ा माल-मसाला मिलाकर उपदेश देनेवाले भी बहुत होते हैं। पं. टोडरमलजी ने लिखा है कि जो खोटा व्यापार करनेवाला है, कुछ सच्चे मोती दिखाता है, कोई खोटे मोती उसमें मिलाकर व्यापार करता है। ऐसे ही, शब्द तो जिनागम के लेता है और उसमें कुछ-

कुछ माल भर देता है तो सुननेवाले को उसमें से कुछ भासित नहीं होता। हां, बड़े-बड़े शब्द सुनाता है। सम्यग्दर्शन, रत्नत्रय ऐसे कुछ-कुछ शब्द तो बीच-बीच में आते हैं। परंतु उसमें से कुछ माल नहीं मिलता है। ऐसा उपदेश देनेवाले भी बहुत मिलते हैं। परंतु जो अज्ञानी होते हैं, जिनका तत्त्वज्ञान का शुरू से अभ्यास नहीं है; द्रव्य, गुण, पर्याय क्या है मालूम नहीं है वे उसका निर्णय नहीं कर पाते।

देखो, देशना में निमित्तरूप से सच्चे देव, सच्चे गुरु, सच्चे शास्त्र होते हैं। शास्त्र को इसलिये कहा- जिसने पहले देशना सुनी है उसको शास्त्र पढ़कर भी देशना हो सकती है। जिसने पहले सुना है या पूर्वभव की भी देशना है, उसको शास्त्र पढ़कर भी उसमें से सही अर्थ कैसे निकालना यह पता है। जो समझेगा, याद रखेगा, धारणा में लेगा, उस पर बारंबार चिंतन करेगा। मैंने उसके पांच बिंदु बताये थे- कौनसे ? सुनना यानी श्रवण, समझना यानी ग्रहण, धारणा यानी याद में रखना, स्मरण में रखना क्योंकि जो हमने सुना है और धारणा में लिया है या याद में लिया है उस पर बारंबार विचार चलेगा। हम भले सुनेंगे एक घंटा, परंतु हमारे मन में तत्त्व के विचार दिनभर चलते रहेंगे। अपना लौकिक कार्य करते हुये भी उन तत्त्वों का घोलन, चिंतन और उसका ऑप्लिकेशन चलेगा। कैसे ? रोटी बनाते-बनाते। हमने तो सुना है बाई रोटी नहीं बना सकती। वहां तो अनेक चीजों का निमित्तरूप से अपना-अपना कार्य चल रहा है। हां, वह बेलन अपनी क्रियावती शक्ति से घूम रहा है। वह रोटी आटे में से परिणमित हो रही है। ऐसे हमने जो तत्त्व सुने हैं उसके विचार अपने चलेंगे। यानी होते हुये कार्य का कर्ता कौन है ? इसका अपना निर्णय चलेगा।

ऐसा नहीं कि हम रोटी नहीं बना सकते इसलिये आज से नहीं बनायेंगे। देखो आप कैसे रोटी खाओगे ? यह तो उलटा हठ हो गया। इसको निर्णय नहीं कहते। हां, तो जो होते हुये कार्य में उसका कर्ता कौन है ? पुद्गल, पुद्गल की पर्यायों का कर्ता है। हम जीव हैं, हम ज्ञान के कर्ता हैं। हम जानने का कार्य करें। यह साथ-साथ ऐसी बातें चलेगी तो उसको हम कहेंगे एक घंटा सुना है और उसका विचार चल रहा है। ये तत्त्व हम सुनेंगे नहीं तो उसके विचार कैसे चलेंगे ? जिसमें रुचि होती है, उसीके विचार चलते हैं। घर में मेहमान आनेवाले हैं तो किसके विचार चलते हैं ? वे आयेंगे तो उसकी कैसे तैयारी करेंगे ? खाने के लिये क्या बनायेंगे ? क्या-क्या तैयारी करनी है ? क्या-क्या

लाना है ? उसके संरंभ, समारंभ, आरंभ सब चलता रहता है। जब हम रुचिपूर्वक तत्त्व सुनते हैं तब भले बाकी के कितने भी काम क्यों न हो, उन्हें करते हुये भी यह तत्त्व की बात अंदर विचारों में चलती रहती है। नींद में और सपनों में भी यही बातें चलती रहती हैं।

हम रुचिपूर्वक सुनेंगे तो उसका अर्थ ऐसा नहीं कि चौबीस घंटे वक्ता के सामने बैठना पड़े, ऐसी बातें नहीं होती हैं ! 'ज्ञानाभ्यास करें मन मांहीं, ताके मोह महातम नाहीं' यह ज्ञानाभ्यास तो मन ही मन में चलता रहता है। हम जितना सुनते हैं, समझते हैं उसीको जो धारणा में लिया है न, उसके निर्धारण के प्रति चलते हैं। फिर आगे क्या है ? उसरूप परिणमन होना, जैसे हमने सच्चे देव-गुरु-शास्त्र का स्वरूप सुना, समझा और निर्णयपूर्वक नक्की किया कि ये ही सच्चे देव हैं, ये ही सच्चे गुरु हैं और ये ही सच्चे शास्त्र हैं। अब वह किसीको दिखाने के लिये, समाज कोई बुरा-भला नहीं कहे इसलिये किसी कुदेवादि के सामने जाकर माथा रगड़ेगा कि नहीं रगड़ेगा ? वह आचरण उसका छूट ही जायेगा। इसको कहेंगे परिणमन। जिसका सही निर्णय किया है वैसा उसका परिणमन सहज ही होता जायेगा। जैसा तत्त्वों का निर्णय होता चला जायेगा वैसा उसका परिणमन भी होता जायेगा; श्रद्धा, चारित्र में भी यथायोग्य परिणमन होता जायेगा। यहां मुख्यरूप से कर्म आदि में क्या-क्या होता है उसकी बात चलेगी।

देशनालब्धि में निमित्तरूप में देशना के अंतर्गत हमने बहुत सारी बातें देखी हैं। देशना में द्रव्य-गुण-पर्याय, सात तत्त्व, निमित्त-उपादान, क्रमबद्धपर्याय, चार अभाव, पांच समवाय आदि अनेक बातें आती हैं। अन्य भी जितनी बातें हैं इन संबंधी सिद्धान्तों का-तत्त्वों का बारंबार विचार चलेगा, उससे ये सभी बातें हमें सहीरूप से समझ में आती हैं। इन सबका ही देशना और देशनालब्धि के प्रकरण में हम विचार करते हैं। और भी कुछ बातें हैं उनको लेकर हम आगे की क्लास में आगे बढ़ेंगे।

बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

१०. प्रायोग्यलब्धि - स्थितिकांडकघात, अनुभागकांडकघात

आचार्य श्री नेमिचन्द्र सिद्धांतचक्रवर्ती ने इस लब्धिसार ग्रंथ की रचना की है। उसीके आधार से पं. टोडरमलजी ने सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका लब्धिसार-क्षपणासार द्वंद्वारी भाषा में भाषाटीका लिखी है और उसीका जो हिंदी अनुवाद है वह हम यहां पढ़ रहे हैं। हमने प्रथमोपशम सम्यक्त्व के प्रकरण में तीन लब्धियों का स्वरूप देखा है- क्षयोपशमलब्धि, विशुद्धिलब्धि और देशनालब्धि। अभी हम आगे बढ़ेंगे, उसके पहले एक प्रश्न आया है उसको जरा देखते हैं।

प्रश्न: आगम में लिखा है कि सम्यग्दर्शन चारों गतियों में हो सकता है। यह अभी हमने आगम के आधार से ही देखा है। मनुष्यगति में भी सबको हो सकता है। सिर्फ जैनदर्शी को होता है ऐसा कोई नियम नहीं है। तो फिर अन्यदर्शी, सच्चे देव, सच्चे गुरु, सच्चे शास्त्र का निर्णय कैसे करेंगे ? सत् देव, सत् गुरु और सत् शास्त्र का यथार्थ निर्णय न होने पर भी वे सम्यग्दर्शन को ग्रहण कर सकते हैं या नहीं ? इसका उत्तर है- भले अन्यमति हों; ऐसे कितने ही अन्यमति हुये हैं, महावीर के गणधर इन्द्रभूति, अग्निभूति, वायुभूति भी अन्यमति थे। परंतु उनका जो मत था, उनकी मान्यता चेंज हुयी, सच्चे देव-गुरु-शास्त्र संबंधी उनकी मान्यता सही हुयी, उनको सहीरूप से ग्रहण किया तभी उनके सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हुयी। इतना ही नहीं, उन्होंने मुनि अवस्था धारण की और गणधर भी बने। ऐसे हमारे पास कितने ही अन्यमति हैं कि जिन्होंने जैन धर्म अंगीकार किया, उनको सच्चैरूप से अंगीकार किया और जैनियों के मुनि भी बने और कितने ही बड़े-बड़े आचार्य भी हो गये।

बनारसीदासजी क्या थे ? अन्यमतियों में उत्पन्न हुये थे और फिर सच्चे दिगंबर जैन बने, सम्यग्दृष्टि बने। नाटक समयसार लिखा है न उन्होंने। *श्रोता: वर्णीजी, श्रीमद्जी, कानजीस्वामीजी।* वर्णीजी, श्रीमद्जी, कानजीस्वामीजी। हमारे पास कितने ही उदाहरण हैं। एक दो नहीं अनेक उदाहरण हैं। कितने ही महान आचार्य, मुनि हो गये हैं वे अन्यमतियों में जन्मे थे- कोई ब्राह्मण थे, कोई अन्यमति थे। उन्होंने सही जैन मत अंगीकार किया और सच्चे जैनी बने। तभी तो उनके सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हुयी। ऐसा नहीं है कि जन्म से जैन होना आवश्यक है। परंतु अभिप्राय में ये ही सच्चे देव हैं, ये ही सच्चे गुरु हैं और यही सच्चा शास्त्र है और यही सच्चा उपदेश है ऐसा जब

अंगीकार करेंगे; उन तत्त्वों का निर्णय करेंगे तभी उनको सम्यग्दर्शन हो सकता है, अन्यथा बिलकुल नहीं। दोनों ओर से यह पक्का है। जरूरी नहीं कि जन्म से जैनी हो उसीको सम्यक्त्व होगा। हमने पहले ही योग्यता बतायी थी कि चारों गतियों में सम्यक्त्व होता है। चारों गतियों में होता है तो तिर्यचों के होता है तो क्या अन्यमतियों के नहीं हो सकता ? अन्यमति रहते हुये नहीं हो सकता। जन्म से किसी भी संप्रदाय का हो, सच्चे-सही मत को जिन्होंने अंगीकार किया है, उसका निर्णय किया है, उन्हींको सम्यग्दर्शन हो जायेगा।

प्रश्न में उन्होंने यही लिखा है न, वे सही निर्णय कैसे करेंगे ? उन्हें भी कोई ऐसा प्रसंग प्राप्त होगा कि सच्चे उपदेश सुनने का मौका आ जायेगा। हम देखते हैं न, अपने साथ कोई अपने मित्र परिवार के लोग भी सुनने को चले आते हैं या अपने यहां कोई स्वाध्याय चल रहा है तो हम अपने मित्रों को भी बुलाते हैं। हम गये थे अमेरिका में, छोटेसे गांव में। किंग्स्टन नाम का वहां गांव है। वहां पर भी हमारी कंडिशन थी कि आप ६ घंटे सुनने को तैयार हैं तो ही हम आयेंगे। अन्यथा हम कहीं भी नहीं जायेंगे। वहां भी मैं ३ घंटे और दिनेशजी ३ घंटे बोलते थे। मेरा लब्धिसार ग्रंथ का अनुवाद करने का काम भी वहां चलता था। पूरे अमेरिका के २ महीने के दूर में लब्धिसार के ३०० पेजेस का ट्रांस्लेशन हुआ है। हम दोनों रोजाना ६ घंटे जो प्रवचन करते हैं, वहां पर दोनों ही बैठते हैं। यह हमारी मूल कंडिशन हमेशा होती है - वहां अमेरिका में भी। यदि आप अपना कामधंधा छोड़कर ६ घंटा सुनने को तैयार हैं तो हमको बुलाओ, नहीं तो हम आने को तैयार नहीं। हमारे पास फालतू समय नहीं है। ऐसे समर्पित जीव वहां पर भी हैं और वहां भी ऐसा नहीं है कि वे रिटायर्ड हैं, हमारे जैसे फालतू नहीं बैठे हैं।

लोग कहते हैं आपको क्या ? आप अभी रिटायर्ड हैं, फालतू बैठे हैं तो यह करते हैं। ऐसा नहीं, वहां पर भी बड़े-बड़े डॉक्टर्स हैं। हम राले में जाते हैं। पूरे नॉर्थ कैरोलिना युनिव्हर्सिटी के जो चीफ हैं, वहां ऑन्कोलॉजिस्ट हैं डॉक्टर वारिया, उनकी वाइफ भी वहां साइकोलोजिस्ट है। वे दोनों तथा अन्य भी कितने ही डॉक्टर्स वहां हैं, ६-८ तो डॉक्टर्स हैं। वे रोजाना ६-६ घंटे हमारे स्वाध्याय में बैठते हैं। जब हमारा प्रोग्राम निश्चित होता है तो १० दिन के लिये पूरी छुट्टी लेते हैं। पूरे साल भर की उनकी कुछ छुट्टियां होती हैं, उसमें से १० दिन हमारे लिये रखते हैं और रोजाना ६-६ घंटे वे भी

समर्पित होकर सुनते हैं। यानी इतना समर्पण भाव है। मैं वहां के अन्यमति की बात कर रही थी। वहां किंग्स्टन में ज्योत्स्नाबहन ने अपनी एक सहेली को प्रवचन सुनने के लिये बुलाया। वह भी अन्यमति है, डॉक्टर है, वर्षा पंड्या नाम है उसका। उसने सात तत्त्व का एक ही लेक्चर सुना और एक ही लेक्चर में कुछ ऐसी बातें निकली थी, बहुत सारी चर्चा हुयी थी कि हमें ज्ञान का एहसास ही नहीं होता। ज्ञान के साथ-साथ अन्य भी बातें चलती हैं तो हमें ज्ञान की महत्ता नहीं आती, ज्ञेय की महत्ता आती है। राग की महत्ता आती है और हम उसका ही अधिक से अधिक विचार करते हैं। एक दिन का लेक्चर सुनकर वह दूसरे दिन दुबारा आयी और आते ही कहा 'अभी मुझे ज्ञान का अवेयरनेस हो रहा है। जाते-जाते किसीका अॅक्सिडेंट हुआ उसे देखकर तो मुझे पहले यह भासित हुआ कि जाननेवाली तो मैं हूं। वहां क्लिनिक में गयी। मैंने मेरे असिस्टंट पर गुस्सा किया, उसने कुछ भूल की थी। तभी मुझे ऐसा पता लगा कि मेरे ज्ञान का अवेयरनेस हो रहा है। ये तो रागभाव मेरे में उत्पन्न हो रहे हैं।'

एक अन्यमति - उसने एक लेक्चर सुनकर इतना ग्रहण किया। बुद्धि तो अन्यमति के पास भी है। उनकी भी कोई होनहार है कि नहीं है ? उनको यदि सच्चा मार्ग मिलना है तो वे भी किसी प्रसंगवश ऐसे सुन लेते हैं, उस पर उनके विचार चलते हैं। अभी तो वह अच्छी स्वाध्यायी बन गयी है। ऐसे अन्य भी बहुत सारे मिले हैं। डलास में एक जन ने एक लेक्चर सुना, उसके घर में सभी धर्मों के भगवानों का पूरा दरबार भरा था। सबके फोटो लगे थे। एक लेक्चर सुनकर रात में घर गया। उसकी बीवी श्वेतांबर थी। दोनों ने आपस में विचार-विनिमय किया और सबका-सब दरबार हटा दिया और फिर दूसरे दिन हमको घर पर बुलाया। यह देखो हमारा मंदिर अभी खाली है, इसमें क्या रखे ? मैंने बोला शास्त्र विराजमान करो। अभी उन दोनों का इतना स्वाध्याय हो रहा है। उनका वहां पर तीन-तीन चार-चार घंटे स्वाध्याय चलता है। यह हमारा ठेका नहीं है कि हम मुमुक्षु हैं तो हम स्वाध्याय करते हैं ! ऐसा नहीं है। अन्यमतियों में भी जिसको बहुत रुचि है, अगर वह सही सुनेगा, वह समझेगा, उस पर निर्णय करेगा तो उसको भी सम्यग्दर्शन हो सकता है। बात ख्याल में आयी न ?

अगर कोई हठ से सोचेगा कि हम अभी तक वैसा मानते आये हैं, अभी हमने ऐसा उलटा माना तो हमारे रिलेटिव्ह क्या कहेंगे ? हमारे घरवाले क्या कहेंगे ? इस डर

से ऐसे सोच में रह जायेंगे तो उनकी आयु ऐसे ही चली जायेगी। मनुष्यभव ऐसा ही चला जायेगा। दुबारा मनुष्यभव प्राप्त होगा और ये बातें सुनने को मिलेगी ऐसे भरोसे में मत रहना ! भव की तो क्या बात है ? परिणाम भी ऐसे ही नहीं रहेंगे। हम कहते हैं ठीक है, अभी इतना कुछ हमारे से नहीं होता है। चलो हम थोड़े आगे चलकर भविष्य में ज़रूर आप जैसे बूढ़े हो जायेंगे, रिटायर्ड हो जायेंगे तो हम आगे सुनेंगे, समझेंगे, स्वाध्याय करेंगे। इस भरोसे में मत रहना ! परिणाम वैसे ही रहेंगे इसकी कोई ग़रंटी नहीं है। अभी जब परिणाम सुनने जैसे हो रहे हैं तब सुनने, समझने और अधिक से अधिक इस पर विचार करने की जरूरत है। मैं हमेशा कहती हूँ कि ऐसे बहुत से लोग मिलते हैं जो कहते हैं कि हम आप जैसे बूढ़े होने के बाद स्वाध्याय करेंगे। आगे का सुनना है ? हमको एक भी ऐसा नहीं मिला कि जो कहे- अभी हमारे कमाने धमाने के दिन हैं, बुढ़ापे में जाकर मैं शादी करूँगा। साथ-साथ कमाई-धमाई भी चलती है, शादी भी करते हैं, बच्चे भी होते हैं, कुटुंब परिवार की एक साथ सभी बातें चलती हैं। स्वाध्याय तो अपने जीवन का अंग होना चाहिये और तत्त्वनिर्णय भी होना चाहिये।

हम आगे बढ़ेंगे क्योंकि देशनालब्धि में जितना बोले उतना कम है। महत्व की बात वही है न ! जब तक उपदेश की सत्यता का निर्णय नहीं होता है तब तक जीव उस पर आगे चलेगा कैसे ? जब उपदेश प्राप्त होता है, तत्त्वों का विचार चलता है तो कर्मों में बहुत सारी उथल-पुथल हो जाती है। अपनी प्रायोग्यलब्धि की बात अभी आगे चलेगी। प्रायोग्य यानी कोई प्रयोग करता है ऐसी बात बिलकुल नहीं है। उसके कर्मों में विशिष्ट अवस्थायें होती हैं और जीव के परिणामों में भी विशिष्ट योग्यता तैयार होती है उसको यहां प्रायोग्यलब्धि या प्रायोग्यतालब्धि कहते हैं। क्या यह कोई प्रयोग करना है ? कैसे बैठना है ? कैसे कहां दृष्टि ले जानी है ? वैसी बात नहीं है। तत्त्वविचार के काल में ये बातें सहज होती रहती हैं। अब हम यहां प्रायोग्यलब्धि का स्वरूप देखेंगे। हम ७ नंबर की गाथा पढ़ेंगे, पृष्ठ संख्या है ४३-

अंतोकोडाकोडी बिट्टाणे ठिदिरसाण जं करणं।

पाउग्गलद्धिगामा भव्वाभव्वेसु सामण्णा ॥७॥

भव्य और अभव्यों में यह साधारण है। प्रायोग्यलब्धि तक की जो चार लब्धि हैं

वे भव्य में भी हो सकती हैं, अभव्य में भी हो सकती हैं। हमने पहले भी यह पढ़ा था। इसमें और क्या-क्या बातें होती हैं ? देखो, अंतःकोड़ाकोड़ी यानी अंतःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण होती है। क्या ? स्थिति; कर्मों की स्थिति अंतःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण हो जाती है। कौनसे कर्मों की ? सातों कर्मों की, आयु बिना सभी। आयु में कुछ फर्क नहीं होगा। आयु की जो निषेक रचना है, जितनी उसकी स्थिति है वह उतनी ही रहेगी। आयु में कुछ परिवर्तन नहीं होगा। परंतु अन्य सातों ही कर्मों की स्थिति पहले कितनी भी क्यों न बंधी हो, अब अंतःकोड़ाकोड़ी सागर की हो जाती है। तीन लब्धिपूर्वक यानी क्षयोपशमलब्धि है, विशुद्धिलब्धि है; वे दोनों साथ-साथ चलती हैं न ? अंतर्मुहूर्त की होती है। अभी तीनों साथ चल रही हैं। देशनालब्धि भी है और अब तीन लब्धि के साथ वह तत्त्वविचार में जुड़ गया है - ऐसी अवस्था में क्या होता है उसकी यह बात है।

वह तत्त्वविचार में लग गया है। उस काल में कर्मों की स्थिति; पहले कितनी ? मिथ्यात्व की ७० कोड़ाकोड़ी सागर की बांधी हुयी हो या ज्ञानावरण की ३० कोड़ाकोड़ी सागर भी क्यों न बंधी हो - उतनी सत्ता में पड़ी है। विशुद्धिलब्धि आदि होते-होते एक अंतर्मुहूर्त चला गया तो अभी प्रायोग्यलब्धि में आ गया तो क्या होता है ? सातों कर्मों में एक बड़ा स्थितिकांडकघात हो जाता है। स्थितिकांडकघात हमने देखा न पहले ? कितना कट हो जाता है ? अंतःकोड़ाकोड़ी बाकी रहता है यानी एक कोड़ाकोड़ी से भी कम स्थिति बाकी रहती है। जितनी अधिक स्थिति ऊपर की थी वह सब कट हो जाती है, वे सारे परमाणु नीचे आ जाते हैं। प्रायोग्यलब्धि में शुरू में एक ही स्थितिकांडकघात होता है। एक के बाद एक, ऐसे बहुत सारे स्थितिकांडकघात होने का कार्य अपूर्वकरण से शुरू होगा। प्रायोग्यलब्धि में आने के पश्चात् वहां पर एक ही ऐसा बड़ा स्थितिकांडकघात होता है कि कर्मों की स्थिति अंतःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण रह जाती है। और क्या होता है ? देखो हम यहीं से टीका पढ़ेंगे। आपको अधिक अच्छे से ख्याल में आयेगा क्योंकि सामने अक्षर रहेंगे।

देखो, **पूर्वोक्त तीन लब्धि संयुक्त जीव** यानी क्षयोपशमलब्धि, विशुद्धिलब्धि और देशनालब्धिवाला जीव **प्रतिसमय विशुद्धता से वर्धमान होता हुआ** यानी उसकी विशुद्धि प्रतिसमय बढ़ती चली जाती है **आयु बिना सात कर्मों की अंतःकोड़ाकोड़ी मात्र स्थिति अवशेष रखता है।** अवशेष रखता है यानी बाकी रखता है। ऊपर की

स्थिति का क्या होता है ? तो एक बड़ा स्थितिकांडकघात हो जाता है। **उस काल में पहले जो स्थिति थी, उसको एक कांडकघात द्वारा छेदकर** अभी सुबह के पहले लेक्चर में हमने विस्तार से देखा था कांडकघात होता है यानी क्या-क्या होता है। स्थितिकांडकघात होता है यानी अनेक स्थितियों के अनेक निषेकों का एक कांडक होता है। उस कांडक की पहली फालि, दूसरी फालि, तीसरी फालि नीचे आती है इसतरह से उन सभी निषेकों का पूर्णरूप से नाश होकर वे सभी परमाणु नीचे के निषेकों में आ मिलते हैं। उसको कहेंगे स्थितिकांडकघात। यहां अभी गुणश्रेणी वगैरह कुछ नहीं होती है। बस एक ही स्थितिकांडकघात होता है। **उस कांडक के द्रव्य को अवशेष रही स्थिति में निक्षेपण करता है** यानी उन निषेकों में मिलाया जाता है। अभी उन कर्मों की स्थिति कितनी अवशेष रहेगी ? अंतःकोड़ाकोड़ी सागर।

अब दूसरी क्या बात है ? रस की बात यानी अनुभाग की भी बात बता रहे हैं। **घातिकर्मों का लता, दारुरूप और अघातिकर्मों का निंब और कांजीररूप द्विस्थानगत अनुभाग शेष रहता है।** इसको द्विस्थान भी कहते हैं। हमने देखा था, जब हमने स्पर्धकों को नाम देकर समझा था। घातिकर्मों के चार नाम कौनसे देखे थे स्पर्धकों के ? *श्रोता: लता, दारु, अस्थि और शैल*। लता, दारु, अस्थि और शैल। उसमें से अस्थि और शैल टाइप नष्ट हो जाते हैं। नष्ट हो जाते हैं यानी उस अनुभागवाले स्पर्धकों की तीव्रता इतनी मंद हो जाती है वे परमाणु दारु और लतारूप हो जाते हैं यानी द्विस्थानगत हो जाते हैं। परमाणु सत्ता छोड़कर गये नहीं हैं। उन परमाणुओं में अधिक अनुभाग था। ज्ञानावरण में इतना अनुभाग था, वह कम होकर दारु और लता जैसा हो गया। तो घातिकर्मों का लता और दारुरूप; अभी मिथ्यात्व का अनुभाग घटेगा कि नहीं घटेगा ? *श्रोता: घटेगा*। सर्वघाति का देशघाति होगा कि नहीं होगा ? मिथ्यात्व सर्वघाति प्रकृति ही है। मिथ्यात्व कितना भी मंद क्यों न हो, वह दारु के बहुभागरूप रहेगा; वह कभी लतारूप नहीं होगा यानी कभी देशघातिरूप नहीं होगा। जो-जो सर्वघाति प्रकृतियां हैं वे दारुरूप हो जायेगी, परंतु वे देशघातिरूप नहीं होगी।

अनंतानुबंधी है वह शैल और अस्थिवाला मिटकर दारु का बहुभाग जो सर्वघाति स्पर्धकरूप है वैसा ही रहेगा, उसका लतारूप नहीं होगा। परंतु जिनमें चारों प्रकार के अनुभाग हैं उनमें ऊपर के दो अनुभागों के परमाणु नीचे के अनुभाग जैसे हो

जायेंगे। अभी यहां सत्ता की बात चल रही है। सत्ता में सभी निषेकों में जो अनुभाग रहेगा वह कौनसे टाइप का है ? लता और दारुवाला रहेगा। जो सर्वघाति प्रकृतियां हैं - मिथ्यात्व है, अनंतानुबंधी आदि १२ कषाय हैं ये जो सर्वघाति हैं तो उनमें सर्वघातिवाले परमाणु हैं उनका अनुभाग घटकर वे दारु तक आ जायेंगे, वे लतावाले नहीं होंगे। जो मतिज्ञानावरण आदि देशघाति प्रकृतियां हैं उनमें चारों टाइप के स्पर्धक होते हैं - लता, दारु, अस्थि और शैल। उनमें से शैल और अस्थिवाले मिटकर दारु और लता जैसे हो जायेंगे। इसको कहते हैं अनुभाग द्विस्थानगत रह जायेगा।

सत्ता में जो अनुभाग पड़ा है, सभी निषेकों में पड़ा है। सभी निषेकों में अप्रशस्त कर्मों का जो अनुभाग अधिक था - अभी हम घाति की बात कर रहे हैं। घाति तो सभी अप्रशस्त ही हैं और उनका द्विस्थानगत अनुभाग शेष रहता है। इसके लिये क्या प्रोसेस हुआ ? एक ही अनुभागकांडकघात हुआ और एक ही छोटे अंतर्मुहूर्त में अनुभाग इतना कम हुआ। जीव ने क्या किया ? तत्त्वविचार अभी चल रहा है। अभी निर्णय तक भी नहीं पहुंचा क्योंकि अभव्य को भी ऐसा होता है। हम प्रायोग्यलब्धि के और भी बहुत सारे प्रोसेसेस् आगे देखेंगे। वे सारे ही अभव्यों को भी होते हैं, परंतु अभी वह निर्णय तक नहीं पहुंचा है। वह करणलब्धि में भी नहीं जानेवाला है, फिर भी, हां देशना भी मिली है और तत्त्व का कुछ विचार भी चल रहा है उसका।

श्रोता: शैल और अस्थिवाले सारे सर्वघाति स्पर्धक लता तक नहीं आयेंगे न ?
लता तक नहीं आयेंगे। सर्वघाति प्रकृतियों के सभी स्पर्धक सर्वघाति होते हैं। सर्वघाति यानी कौनसे ? शैल, अस्थि और दारु का बहुभाग, अनंत बहुभाग। वे सर्वघाति मिटकर यहां देशघाति नहीं होनेवाले। अभी केवलज्ञानावरण प्रकृति है वह भी सर्वघाति है, उसका अनुभाग भी मंद होगा। परंतु दारु से नीचे लतावाला नहीं होगा। यह सबमें लगा लेना। *श्रोता: सर्व सर्वघाति ?* सर्वघाति प्रकृतियों के सभी स्पर्धक सर्वघाति होते हैं। अपने प्रतिपक्षी का पूरा घात करने का उनका जो स्वभाव पाया जाता है उसमें मंदता जरूर आयेगी। फिर भी वे सर्वघाति से देशघाति नहीं होते हैं यह मुझे कहना है। यहां तक बात ख्याल में आयी ? घातिकर्मों का अनुभाग लता, दारुरूप हो जाता है। अब अघातिकर्मों में दो प्रकार हैं- प्रशस्त प्रकृतियां भी हैं, अप्रशस्त भी हैं, उनमें से अप्रशस्त को लिया। अप्रशस्त में भी चार प्रकार के स्पर्धक हैं। कौनसे ? निंब, कांजीर,

विष और हलाहल। उनमें भी विष और हलाहल टाइप के जो स्पर्धक हैं उनका अनुभाग घटकर वे निंब और कांजीररूप हो जायेंगे। देखो, यहां लिखा है न, **अघातिकर्मों का निंब और कांजीररूप द्विस्थानगत अनुभाग यहां अवशेष रहा है।** उससे तीव्र अनुभाग सत्ता में से नष्ट हुआ।

लोग कहते हैं हमारे कर्म कैसे हैं ? बहुत आकरा फल देते हैं; आकरा क्या होता है ? पता नहीं है। *श्रोता: कड़क।* हमें बहुत प्रतिकूलता है। तो कहते हैं तत्त्वविचार के काल में क्या होगा ? इतना अनुभाग मंद होकर उदय में आनेवाला है। *श्रोता: बंध भी कम होगा।* बंध भी कम होगा, सत्ता की जितनी स्थिति है उससे भी स्थितिबंध कम होगा। हम बंध की बात बाद में करेंगे। अभी सत्ता में क्या हो रहा है उसको देख रहे हैं। यदि सत्ता में इतना अनुभाग कम हो गया है और बंध अधिक होगा तो सत्ता का अनुभाग कैसे कम हो जायेगा ? जो बंधता है वह सत्ता का कहलायेगा। यदि सत्ता का अनुभाग कम हुआ और बंधा चार स्थानवाला तो हम सत्ता का अनुभाग भी चार स्थानवाला कहेंगे। इसका अर्थ, अप्रशस्त कर्मों में जितना सत्ता का अनुभाग हुआ है उससे भी कम अनुभाग बंध होगा। सत्ता की स्थिति भी अंतःकोड़ाकोड़ी सागर होगी। अभी नया स्थितिबंध उससे भी कम होगा। अप्रशस्त कर्मों का अनुभाग भी द्विस्थानगत हुआ। अब नया बंध उससे भी कम होगा। *श्रोता: द्विस्थान तक ही मॅक्झिमम होगा ?* हां, उतना ही होगा। अभी तो हम स्थिति की बात कर रहे हैं। यहां बहुत सारे परिवर्तन होते हैं। हम एक-एक प्रोसेस अट अ टाइम देखेंगे और फिर दुबारा एक साथ भी देखेंगे।

ऐसा मत सोचना कि शाम को क्या-क्या सुना था कुछ नहीं पता चला। उसकी चिंता में व्यस्त होने की कुछ जरूरत नहीं है। कभी-कभी क्या होता है ? ऐसे प्रोसेस; तभी मैंने देशनालब्धि लेनी चाही थी कि थोड़ा सरल हो जाये। परंतु अभी प्रायोग्यलब्धि में प्रवेश करेंगे। क्योंकि हमेशा क्या होता है ? प्रायोग्यलब्धि तक आकर रुक जाते हैं। करणलब्धि में कभी आते ही नहीं है। पढ़ाने में भी ऐसे होता है। यहां पर देखते हैं। अप्रशस्त में घातिकर्मों का अनुभाग लता, दारुरूप और अघातिकर्मों का निंब, कांजीररूप होता है। प्रशस्तकर्मों में क्या होता होगा ? उसका भी द्विस्थानगत होता है क्या ? अरे उसमें तो बढ़ेगा। *श्रोता: उलटा ?* हां उलटा ! प्रशस्त में उलटा होता है। यहां पर उसका अनुभाग बढ़ेगा, चतुःस्थानगत हो जायेगा। *श्रोता: अमृत समान।* ऐसा ऊपर

का द्विस्थान नहीं, वे तो सभी चतुःस्थान रूप हो जाते हैं।

देखो, पहले जो अनुभाग था वह अप्रशस्त की बात की। स्थिति किसकी घटती है प्रशस्त की कि अप्रशस्त की ? श्रोता: अप्रशस्त की। नहीं, दोनों की। स्थिति किसकी घटेगी ? आयु बिना सभी कर्मों की घटेगी। सातावेदनीय हो या कुछ भी हो, स्थिति सब कर्मों की घटेगी। प्रशस्त हो या अप्रशस्त हो, आयु बिना सभी कर्मों की स्थिति घटेगी। अनुभाग में अप्रशस्तों का द्विस्थानीय हो जाता है। द्विस्थानीय में घातिकर्मों का लता और दारुरूप और अघातिकर्मों का निंब और कांजीररूप होता है। यह सत्तावाले अनुभाग की बात चल रही है। स्थितिसत्त्व और अनुभागसत्त्व की बात चल रही है। कैसे होता है ? स्थिति कैसे घटी ? स्थितिकांडकघात के द्वारा। अप्रशस्त कर्मों का अनुभाग कैसे घटा ? अनुभागकांडकघात के द्वारा। यहां तक समझ में आती है बात ? कोई प्रश्न है तो अभी पूछ लेना इसके बारे में। श्रोता: यह सब तत्त्वविचार में ही हो रहा है ? हां, यह सब तत्त्वविचार के काल में ही हो रहा है।

श्रोता: प्रायोग्यलब्धि में तत्त्वविचार कैसे होता है ? तत्त्वविचार होता है क्योंकि उसको देशना मिली है। तत्त्वनिर्णय तक नहीं पहुंचा है। कुछ तत्त्व संबंधी विचार चलते हैं या स्वाध्याय चल रहा है। जिस काल में उसके तत्त्व संबंधी विचार चलते हैं, उस काल में ये बातें होती हैं। श्रोता: तत्त्वविचार किसे कहते हैं ? प्रश्न है तत्त्वविचार किसे कहते हैं ? हमने देव-गुरु-शास्त्र का स्वरूप सुना। तत्त्वविचार देखना है आपको ? तत्त्वविचार करना यानी निर्धारण तक पहुंचना। मोक्षमार्गप्रकाशक में इसके बारे में बहुत अधिक विस्तार से चर्चा है, अन्य ग्रंथों में सर्वत्र है। देशना के बारे में तो हमने देखा ही है। आगे कोई पूछते हैं कि अभी गुरु के द्वारा हमें उपदेश मिलता है तो गुरु को समर्पित होना कि नहीं होना ? सर्व समर्पण करना है न गुरु को ? गुरु की आज्ञा में रहना है ! आज्ञा का अर्थ क्या होता है ? मैं इससे शादी करूं कि नहीं करूं पूछने पर वे जो बतायेंगे वह आज्ञा होती है क्या ? मुझे शिबिर में जाना है, मैं जाऊं कि नहीं जाऊं ? मुझे यह पुस्तक पढ़ना है, आपकी आज्ञा है कि नहीं ? इसको आज्ञा नहीं कहते। यह जो मोक्षमार्ग का उपदेश हम गुरु से सुनते हैं उसीको गुरु की आज्ञा कहते हैं। उसीको गुरु की उपासना भी कहते हैं। हमने उसके गलत अर्थ मान रखे हैं।

किसीने गुरु से आज्ञा मांगी हमें गांव जाना है, घूमनेको जाना है। हम जायें कि

नहीं जायें ? ऐसी बातें चल रही है। इसको गुरु की आज्ञा भी मानते हैं। दूसरी बात, गुरु को सर्व समर्पण करना है कि नहीं ? क्या-क्या समर्पण करोगे ? श्रोता: तन, मन, धन। तन, मन, धन, वह तो सारा पुद्गल है। उसका आप क्या समर्पण करेंगे ? हां, अपना जो है उसका समर्पण करो ! अपना तो उपयोग है, उपयोग समर्पण करो। जो उपदेश सुनते हो उसको उपयोगपूर्वक सुनो और निर्णय करो यही सर्व समर्पण है। हमने कुछ न कुछ मान रखा है, जो अन्यमतियों की भ्रामक कल्पना है वैसा हमने भी माना। कोई कहता है हमको गुरु करना है। किसी विशिष्ट व्यक्ति को हमने गुरु माना तो बस हमारा कल्याण हो गया। अरे गुरु मानने से कुछ नहीं होता। ऐसे माननेवाले हैं कि हमने अमुक-अमुक व्यक्ति को गुरु बना लिया। वे अभी हमारा सब पार लगायेंगे या हमारा सब बोझा हमने उन पर डाला। जैसे हमें देवलाली में आना था। बहुत बोझा था तो स्टेशन पर हमने क्या किया ? श्रोता: कूली ! कूली पर सारा बोझा डाल दिया। इसीप्रकार कोई गुरु मिलेगा हमको कि हमारा बोझा ढो देगा ? ऐसा कुछ नहीं है।

देखो, पं. टोडरमलजी क्या कहते हैं ? 'सच्चा उपदेश सुनकर यह जीव सावधान होकर विचार करने लगता है। अहो ! मुझे तो इन बातों की खबर ही नहीं थी।' यह तो सबको याद है वहां पर क्या-क्या लिखा है। 'मैं भ्रम से भूलकर प्राप्त पर्याय में ही तन्मय हुआ। प्राप्त पर्याय यानी मैं मनुष्य हूं उसमय होकर अपने को मानने लगा।' मैं तो मनुष्य हूं, मैं तो स्त्री हूं, मैं तो ऐसा हूं, मैं तो डॉक्टर हूं, मैं तो इंजिनिअर हूं, ऐसा मानता है। मैं मनुष्य हूं यह प्राप्त पर्याय में तन्मय होना है। परंतु इस पर्याय की थोड़े ही काल की स्थिति रही है और मुझे सर्व निमित्त मिले हैं। क्या निमित्त है ? इतना उत्तम निमित्त है सच्चे देव-गुरु-शास्त्र मिले हैं, उपदेश मिला है और अभी विचार करने जैसी बुद्धि है। इसको कहेंगे सर्व निमित्त मिले हैं। तो कहते हैं इसलिये मुझे इन बातों को बराबर समझना चाहिये। क्योंकि इसमें तो मेरा ही प्रयोजन भासित होता है, यह बात तो बहुत अच्छी तरह से बहुत विस्तार से बतायी है।

अब तत्त्व का निर्धारण यानी विचार करना यानी क्या करना ? श्रोता: विचार मतलब ? हां, वही बात है। इसके तीन अंग हैं। पहले तो हमने सुना है, समझा है और याद रखा है। अभी निर्धारण करना यानी विचार करना। इसके तीन अंग हैं। उद्देश्य यानी उनके नाम सीख लेना। लक्षणनिर्देश यानी लक्षणों को जानना। पश्चात् विचार

सहित परीक्षा करना- क्या तत्त्व ऐसे ही हैं ? अन्यथा नहीं हैं। ये तीनों ही अंग उसमें आ जाते हैं। जैसे सात तत्त्व हैं तो हमने तत्त्वों के नाम सीखे। हमने पहले याद किये, रटे हमने। फिर जैसा स्वरूप बताया वैसा उस पर विचार किया। तो यह ऐसे ही हैं या नहीं इस बात पर विचार करना जब तक... कब तक विचार करना ?

स्कूल में जब हम गणित सीखते थे- स्कूल में हमारे टीचर सिखाते थे और फिर घर में कुछ गृहपाठ देते थे कि इतने-इतने गणित सॉल्व्ह करके आओ। गणित सुलझाकर आओ, देते थे न ? हां, तो हम करते थे और होने के बाद अपना उत्तर सही है कि नहीं तो कहां देखते थे ? पुस्तक में पीछे उत्तर लिखे हुये होते हैं। वहां देखते थे और उत्तर नहीं मिलता तो क्या करते थे ? *श्रोता: दुबारा करते थे।* दुबारा करते थे ? अच्छा, कब तक ? *श्रोता: जब तक सही उत्तर नहीं मिलता।* हां, जब तक अपना उत्तर उससे नहीं मिलता। तो हमारे जैसे सयाने पुस्तक में अपने उत्तर जैसा सुधार कर लेते हैं। उससे कुछ नहीं होनेवाला। यदि अपना उत्तर नहीं आता है तो हमारे सहपाठी वगैरह से पूछेंगे कि मेरा जवाब नहीं आ रहा है, आपको आया कि नहीं बराबर ? सही आया कि नहीं ? उसका भी नहीं आया तो हम टीचर को पूछेंगे। कब तक यह कोशिश करेंगे ? जब तक जैसा वहां उत्तर आना चाहिये वैसा नहीं आता तब तक हम ट्राय-ट्राय अँड ट्राय करते रहते हैं। ऐसे ही, जब तक जिनेंद्र देव ने जैसे तत्त्व कहे हैं उसी प्रकार अपना निर्णय नहीं हो जाता तब तक इसीप्रकार अपने विवेक से विचार करें।

तत्त्वविचार का अर्थ क्या है ? जिस दृष्टि से - जिस अँगल से जिनेंद्र देव ने सभी द्रव्यों का, तत्त्वों का - सबका जैसा जो स्वरूप बताया है ऐसा ही जब तक हमें अपने विवेक से भासित नहीं होता तब तक उस पर बार-बार विचार करना है। यहां ऐसा कहा है, मुझे तो कुछ अलग लगता था, तो सही क्या होना चाहिये ? जब हम उस पर विचार करेंगे तो सही का निर्णय भी होगा ही होगा। यदि संदेह हो तो ? यदि अपना समाधान नहीं हो रहा तो क्या करेंगे ? अपने गुरु से या अन्य विद्वानों से पूछे या अन्य साधर्मियों से पूछे। विवेकपूर्वक एकांत में अपने उपयोग में विचार करें कि जैसा उपदेश दिया है वैसे ही है या अन्यथा है ? जो उपदेश हमने ग्रहण किया है, भगवान आत्मा जो कहते हैं, जो पारिणामिक भाव की चर्चा - कोई भी विषय है, उसका जैसा स्वरूप बताया है क्या हमें वैसा भासित हो रहा है ? अध्यात्म ग्रंथों में बहुत खोल-

खोलकर सब विस्तार से बताया है। परंतु उस पर जब हम विचार करते हैं तो क्या हमें वैसा लगता है ? क्या हमें ऐसा ही भासित होता है ? उसके प्रति हमारी अंदर से अधिक रुचि बढ़ती है ? यह बात विशुद्धि के प्रकरण में आगे आयेगी। आगे चलकर तत्त्वविचार के काल में जो विशुद्धि बढ़ेगी वहां ये बातें और आयेगी।

तत्त्वों का सही निर्णय होने के लिये सही तत्त्व सुने हैं और उस पर विचार करेंगे तो हम निर्णय तक जरूर पहुंचेंगे। वहां आत्मसन्मुखता के पूर्व उसका विचार भी चलेगा, निर्णय भी होगा। आत्मसन्मुखता तो सबसे महत्वपूर्ण है और उसी काल में उसको आत्मा की अनुभूति होगी। द्रव्यानुयोग में आत्मसन्मुखता, शुद्धोपयोग वगैरह बातें आती हैं, करणानुयोग में तीन करण मांडे ऐसा कहेंगे - वहां करणलब्धि की बात आती है। कहते हैं यहां अपनी मान्यताओं का पोषण नहीं करना, परंतु जैसे जिनेंद्र भगवान ने बताया है उसको सही अनुमान, सही तर्क लगाकर उसका विचार करना। खोटे तर्क नहीं लगाने हैं। हम कुतर्क करने में बहुत माहिर हैं, ऐसे तर्क नहीं लगाते। जैसे दिनेशजी हमेशा उदाहरण देते हैं; क्या ? कि गधे को ४ पैर हैं, आदमी को २ पैर हैं इसलिये आदमी आधा गधा है। *श्रोता: यह कुतर्क है।* यह कुतर्क है। तर्क भी सही होने चाहिये क्योंकि तर्क अनुमान आदि सब परोक्ष प्रमाण के भेद बताये हैं। जैसे आगम में तर्क बताये हैं वैसे हमें सही पद्धति से उसका विचार करना योग्य है। इसको तत्त्वविचार कहेंगे। अभी इसमें तो बहुत विस्तार है, आप इसमें से या अन्य ग्रंथों में से भी पढ़ लेना।

अभी हम प्रायोग्यलब्धि की बात करेंगे, पेज ४३ पर दूसरे पॅरेग्राफ की छठी लाइन- **पहले जो अनुभाग था, उसमें अनंत का भाग देकर** किसको भाग देना ? अविभागप्रतिच्छेदों को क्योंकि अनुभाग जो फल देने की शक्ति है वह हम अविभागप्रतिच्छेदों में नापते हैं। वहां अनुभाग के अनंत अविभागप्रतिच्छेद थे उसको यथायोग्य अनंत का भाग देकर **बहुभाग मात्र अनुभाग को छेदकर** यानी तीव्र अनुभागवाले परमाणु हैं वे मंद अनुभागवाले हो जाते हैं तो हम कहेंगे अनुभाग का घात हुआ, अनुभाग का छेद किया। **अवशेष रहे हुये अनुभाग में प्राप्त करता है।** परमाणु तो जीव को छोड़कर चले नहीं गये हैं। परंतु जो तीव्र अनुभागरूप से पहले बंधे थे न, सत्ता में पड़े थे वे मंद अनुभागरूप हो गये हैं। सहजरूप से हो गये। जीव तो तत्त्वविचार में लगा है। अभी तो वह निर्णय तक भी नहीं पहुंचा है। यह तो सामान्य है,

इतना तो अभव्यों के भी होता है; भले देशना मिली है, कभी तत्त्वविचार भी कर लेता है परंतु ऐसे ही ऊपर-ऊपर कर लेता है, फिर तत्त्वविचार छूट जाता है। उसके फलस्वरूप कुछ काल के लिये - अंतर्मुहूर्त तक के लिये शुभभाव होते हैं ऐसी कुछ बातें बनेंगी यहां पर भी। कहते हैं **उस कार्य करने की योग्यता की प्राप्ति, वह प्रायोग्यतालब्धि है। वह भव्य के और अभव्य के भी समान होती है।**

देखो, नीचे की भी टीका पढ़ लेते हैं। **संक्लेशी संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त के पाये जानेवाला ऐसा उत्कृष्ट स्थितिबंध** इसका अर्थ देखते हैं। हम मिथ्यात्व की बात करेंगे या ज्ञानावरण की बात करेंगे। मिथ्यात्व का उत्कृष्ट स्थितिबंध कितना होता है ? हम सबने बहुत बार सुना है, ७० कोड़ाकोड़ी सागर। ज्ञानावरण का ? *श्रोता: ३० कोड़ाकोड़ी सागर। ३० कोड़ाकोड़ी सागर।* प्रत्येक प्रकृति में यथायोग्य होता है तो अशुभ कर्मों में इतना उत्कृष्टबंध करनेवाला कौन जीव होता है ? संज्ञी, पंचेन्द्रिय, पर्याप्त और तीव्र संक्लेशवाला मिथ्यादृष्टि जीव उत्कृष्ट स्थिति का बंध करेगा। इतनी लंबी स्थिति के बंध के योग्य जब परिणाम चल रहे हैं उस काल में उसको प्रथमोपशम सम्यक्त्व नहीं होगा यह बात बता रहे हैं।

अभी हम पूरा वाक्य पढ़ेंगे। **संक्लेशी संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त के पाये जानेवाला ऐसा उत्कृष्ट स्थितिबंध और उत्कृष्ट स्थिति, अनुभाग, प्रदेश का सत्त्व** यानी जिसकी सत्ता में उत्कृष्ट स्थिति पड़ी है, जिसकी सत्ता में अप्रशस्त कर्मों का उत्कृष्ट अनुभाग पड़ा है **तथा** यानी वह जीव क्या होंगे ? अभी पेज पलटकर वाक्य पढ़ लेंगे पहले, फिर वहां आते हैं वापस। **इनके होते हुये** यानी इतने उत्कृष्ट संक्लेशवाला, इतनी उत्कृष्ट स्थिति जिसकी है वह **जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्व को ग्रहण नहीं करता।** सम्यक्त्व ग्रहण करने के पहले प्रायोग्यलब्धि में उसकी स्थिति इतनी कट हो जायेगी। अप्रशस्त कर्मों का अनुभाग इतना कम हो जायेगा। अत्यंत संक्लेश परिणाम करते हुये उस काल में उसको सम्यक्त्व नहीं होगा। हां, उसके पश्चात् के काल में उसके परिणाम जब विशुद्ध हो जायेंगे तब जाकर उसका प्रायोग्यलब्धि में प्रवेश होगा। तब वह स्थितिकांडकघात, अनुभागांडक करेगा। उसके बाद वह करणलब्धि में जा सकता है। उसके बाद वह प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त करेगा। एक बात, दूसरी बात क्या बताते हैं ? फिर आना वापस उस पेज पर।

तथा विशुद्ध क्षपकश्रेणीवाले के पाये जाता है ऐसा यह क्षपकश्रेणीवाले की बात नहीं है, परंतु क्षपकश्रेणी में जैसा पाया जाता है ऐसा थोड़ा स्थितिबंध जिसको होता है। **जघन्य स्थितिबंध और जघन्य स्थिति, अनुभाग, प्रदेश का सत्त्व** क्योंकि क्षपकश्रेणी में पाये जाते हैं- ऐसे असंज्ञी पंचेन्द्रिय जैसा, द्वीन्द्रिय आदि के जैसा, एकेन्द्रिय के जैसा स्थितिबंध पाया जाता है। असंज्ञी पंचेन्द्रियों को १००० सागर का ही स्थितिबंध होता है। एकेन्द्रिय को एक सागर का स्थितिबंध होता है। ऐसे इतना कम बंधवाले को भी प्रथमोपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं होगी। क्या बात बतायी ? अत्यंत तीव्र संक्लेशवाला उत्कृष्ट स्थितिवाला जीव भी प्रथमोपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं करेगा। इतना अत्यंत कम बंध करनेवाले कौन हैं ? वह तो असंज्ञी जीव हैं। उनके भी प्रथमोपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं होगी।

श्रोता: क्षपकश्रेणी में भी ? क्षपक में स्थितिबंध इतना घटते चला जाता है इसलिये उसकी बात यहां की। क्षपक को इसलिये लिया क्योंकि उसके स्थितिसत्त्व भी घटता चला जाता है। उपशमश्रेणी में स्थितिबंध भले घटे परंतु स्थितिसत्त्व घटता नहीं है। जब इसमें क्षपकश्रेणी की बात आयेगी तो उसकी अधिक चर्चा होगी। क्षपकश्रेणी में क्या होगा ? वहां बंधनेवाले प्रकृतियां तो कम स्थितिवाली ही बंधेगी और सत्ता में स्थितिकांडकघात होते रहते हैं; उसके कारण स्थितिसत्त्व अत्यंत कम होते चला जाता है। उपशमश्रेणी में स्थितिबंध भले अल्प हो जाये, परंतु स्थितिसत्त्व इतना नहीं घटता। वह अंतःकोड़ाकोड़ी सागर जितना बना ही रहता है। स्थितिसत्त्व की बात है- स्थितिबंध भले ही घट जाये, परंतु कर्म उपशमित हो रहे हैं वहां पर। क्षपकश्रेणी में कर्मों की सत्ता नष्ट हो रही है। तो उनकी स्थिति भी घटती चली जाती है और वहां होनेवाला बंध भी घटता जाता है। उसकी और चर्चा जब उसका प्रकरण आयेगा तभी होगी। अभी यहां तो प्रथमोपशम के काल में क्या-क्या होता है ? किसको प्रथमोपशम सम्यक्त्व हो सकता है और किसको नहीं उसकी बात बतायी। प्रायोग्यलब्धि में उसकी सत्ता-सत्त्व जो है उसकी स्थिति घट जाती है। उसके बाद वह करणलब्धि में प्रवेश करता है।

श्रोता: इमोजिनरी पॉइंट है न इतने कमवाले के ? इमोजिनरी नहीं है। इतने कमवाले कौन हैं ? एकेन्द्रिय जीव हैं, द्वीन्द्रिय हैं, असंज्ञी पंचेन्द्रिय हैं। उनको तो होने का चान्स ही नहीं है और अन्यथा संज्ञी पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि जीव के इतनी कम स्थिति

तो होती ही नहीं। श्रोता: उनकी अपेक्षा बात है ? उनकी अपेक्षा बात है। मिथ्यादृष्टि संज्ञी पंचेन्द्रियों को इतनी कम स्थिति बंधेगी ही नहीं। इतनी कम स्थिति कब पायी जाती है ? क्षपकश्रेणी में पायी जाती है। वहां प्रथमोपशम होने का कोई सवाल ही नहीं है। ख्याल में आती है बात ? श्रोता: अनादि मिथ्यादृष्टि को तो ऐसे होगा ही नहीं न क्षपक जैसे ? नहीं होता है। क्षपक जैसे कब होता है ? एकेन्द्रियों में होता है। देखो, एकेन्द्रियों में ज्ञानावरण का अधिक से अधिक बंध कितना होता है ? श्रोता: लेकिन सत्ता भी है वहां पर। सत्ता भी उसकी कम हो जाती है; नवीन बंध भी और सत्ता भी।

देखो, कोई संज्ञी पंचेन्द्रिय है उसने संज्ञी पंचेन्द्रिय के योग्य स्थितिबंध किया था - भले उत्कृष्ट हो या जघन्य हो। कोई संज्ञी पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि कम से कम भी स्थितिबंध करेगा तो अंतःकोड़ाकोड़ी सागर का बंधता है, उससे नीचे नहीं बंध करता। संज्ञी पंचेन्द्रिय की बात है। अब वह अधिक करे या कम करे और वह एकेन्द्रिय में चला गया। एकेन्द्रिय में कितना बंध करेगा ? एक सागर के अनुपात में। अनुपात यानी प्रपोर्शन। संज्ञी पंचेन्द्रिय में मिथ्यात्व का उत्कृष्ट स्थितिबंध ७० कोड़ाकोड़ी सागर है, एकेन्द्रिय में १ सागर है। जहां संज्ञी पंचेन्द्रिय में ज्ञानावरण का उत्कृष्ट स्थितिबंध ३० कोड़ाकोड़ी सागर का होता है, वहां एकेन्द्रिय में तीन बटे सात सागर यानी तीन सप्तमांश सागर उसका उत्कृष्ट स्थितिबंध होगा और जघन्य कितना होगा ? उसमें पल्य का असंख्यातवां भाग कम। यह उसकी रेंज है। एकेन्द्रिय में इतना बंध होता है और ऐसा बंध संज्ञी पंचेन्द्रिय को कब हो सकता है ? मात्र क्षपकश्रेणी में होता है, अन्यथा कहीं नहीं होता। इसलिये क्षपकश्रेणी का नाम लिया, ख्याल में आयी बात ? केवल बंध नहीं, क्षपकश्रेणी में उसका स्थितिसत्त्व भी इतना कम हो जाता है। क्षपकश्रेणी में जब प्रवेश किया था तब वहां अंतःकोड़ाकोड़ी सागर की स्थिति थी। वह घटते-घटते-घटते फिर कुछ लक्ष सागर तक आ गयी। फिर वहां से १००० सागर तक आ गयी। फिर उससे भी घटते-घटते १०० सागर हुयी। ५० सागर हुयी। २५ सागर हुयी। १ सागर हुयी। फिर पल्य प्रमाण हुयी। फिर और घटती गयी फिर जाकर अंत में नष्ट हो गयी। यह प्रोसेस तो क्षपकश्रेणी में ही होता है। अन्यथा संज्ञी पंचेन्द्रिय को इतना कम बंध कहीं नहीं होता है, सत्त्व भी। सत्त्व की मुख्यता है यहां। ख्याल में आयी बात ?

अभी कोई मिथ्यादृष्टि है। ७० कोड़ाकोड़ी सागर का बंध करके यानी सत्ता में

इतनी सत्ता लेकर एकेन्द्रिय में गया है। तो एकेन्द्रिय में जाने के बाद भी वहां क्या होता है ? अभी नया बंध वहां कितना करेगा ? *श्रोता: एक सागर।* एक सागर या उसके प्रपोर्शन में हम समझते हैं। उसे मिथ्यात्व का एक सागर या थोड़ा कम स्थितिबंध होगा। वहां क्या होगा फिर ? इतनी सत्ता लेकर गया है। उसका क्या होगा ? वहां भी स्थितिकांडकघात होते हैं। हमने भी पहले कभी यह नहीं सुना था। पंचेन्द्रिय की इतनी सत्ता लेकर एकेन्द्रिय में गया है। वहां स्थितिकांडकघात द्वारा केवल स्थिति का घटना होता है। वहां गुणश्रेणी वगैरह कुछ नहीं होती है। एक-एक अंतर्मुहूर्त में पल्य के असंख्यातवें भाग जितनी स्थिति कट होती चली जाती है। *श्रोता: किसके बल पर ?* बस, क्योंकि नया बंध इतना कम है और उसके संक्लेश और विशुद्धि की इतनी मंदता है। इतनी मंदता ऊपर के इन्द्रियवालों के नहीं होती। हम कहते हैं वहां भावकलंक की प्रचुरता है, उसमें इतने संक्लेश हैं कि निगोद से बाहर नहीं आ रहा है। परंतु लंबे काल तक - असंख्यात वर्षों तक जो एकेन्द्रिय में पड़ा है उसकी सत्ता में एक सागर से अधिक स्थितिवाला कोई भी कर्म नहीं है। कषायों की वहां इतनी मंदता है।

ज्यादा तीव्र कषाय भी पंचेन्द्रियों के ही होते हैं। *श्रोता: एकेन्द्रिय को भावकलंक प्रचुर क्यों कहा ?* हां, इसलिये कहा क्योंकि वहां अशुभ लेश्या हैं - कृष्ण, नील, कपोत लेश्या हैं। वे जब-जब आयु का बंध करते हैं तब वैसी-वैसी पर्याय संबंधी कर रहे हैं तो हम कहेंगे भावकलंक प्रचुर। वह करणानुयोग की भाषा है। आयुबंध के समय वे उसी पर्याय संबंधी कर्म बांधते रहते हैं अपर्याप्त संबंधी, पर्याप्त संबंधी; परंतु एकेन्द्रिय जाति बांध रहे हैं तो वैसी उनके उस जाति के परिणाम हो रहे हैं। उनके कर्मों की स्थिति इतनी कम हो जाती है। केवल स्थिति ही नहीं, अनुभाग भी इतना कम होता है जिसको हतसमुत्पत्तिक कहते हैं। हत यानी घात, सत्ता में अनुभागकांडकघात होते-होते मंद अनुभागवाले कर्म वहां शेष रहते हैं। फिर क्या फायदा ? वही एकेन्द्रियवाला जीव एकेन्द्रिय से मरकर संज्ञी पंचेन्द्रिय में उत्पन्न हो सकता है, डायरेक्ट मनुष्य में भी आ सकता है।

अभी मैं आपसे निमित्त की बात करती हूं। जिसने असंख्यात वर्षों का काल एकेन्द्रिय में बिताया वह जीव अभी संज्ञी पंचेन्द्रिय में आया है। उसकी सत्ता में कर्मों का अनुभाग भी इतना मंद है। तो अभी वह पंचेन्द्रिय के योग्य परिणाम करेगा कि नहीं

करेगा ? श्रोता: करेगा। उसका कैसे अनुभाग का उदय चल रहा था ? मंद अनुभाग का और परिणाम कैसा कर रहा है ? तीव्र क्योंकि अभी उसके पंचेन्द्रिय के योग्य अनुभाग बंधेगा, पंचेन्द्रिय के योग्य स्थिति बंधेगी। श्रोता: आबाधाकाल पूरा हो जायेगा ? यहां पर आबाधाकाल की बात नहीं है, नये बंध की बात है। क्योंकि उसकी सत्ता में तो इतने मंद अनुभागवाले परमाणु हैं और उन्हीं का उदय हो रहा है। इतने मंद अनुभाग का उदय होते हुये भी उसका पंचेन्द्रिय के योग्य इतना संक्लेश परिणाम हो रहा है। वहां एकेन्द्रिय में उसके एक सागर का बंध हो रहा था और यहां आते ही, अपर्याप्त अवस्था में आते ही अंतःकोड़ाकोड़ी सागर का बंध हो रहा है। श्रोता: यह सारा विग्रहगति में होता है ? नहीं, विग्रहगति में नहीं, बाद में अपर्याप्त अवस्था में होता है। विग्रहगति में १००० सागर जितना बंध होगा। फिर यहां औदारिक-मिश्र में अंतःकोड़ाकोड़ी सागर का बंध होगा। पर्याप्त होते ही वह अधिक बंध करने लगेगा।

अभी निमित्तरूप से जैसा अनुभागउदय है वैसा ही जीव परिणाम करता है ऐसा मानेंगे तो वह सही नहीं है। भाई, करणानुयोग के एक-एक लाइन में यह सिद्ध होता है कि निमित्त से कार्य नहीं होता। यदि जैसा उदय में आये वैसा ही जीव को परिणाम होने लगे तो पंचेन्द्रिय में आने के बाद भी एकेन्द्रिय जैसा परिणाम होना था क्योंकि अनुभाग वैसा लेकर आया था और उदय वैसा चल रहा था। परंतु उसकी अपनी योग्यता से संज्ञी पंचेन्द्रिय के योग्य उसके संक्लेश परिणाम होते हैं। संज्ञी पंचेन्द्रिय विशुद्ध परिणाम भी करे; उपशमश्रेणीवाले भावलिंगी संत भी क्यों न हो - उनकी सत्ता की स्थिति भी अंतःकोड़ाकोड़ी सागर और बंध भी अंतःकोड़ाकोड़ी सागर का होता है। ऐसी बहुत सारी बातें हैं। हम केवल ऐसी ऊपर-ऊपर की बातें करते हैं न ! हम जितना विस्तार से उसका अभ्यास करेंगे उतना यह सिद्ध होता है कि निमित्त से कार्य नहीं होता है। इसके लिये हमने आपको कितने सारे करणानुयोग के उदाहरण बताये हैं जो निमित्त का कथन करनेवाला शास्त्र है। उसी शास्त्र में से नक्की होता है कि निमित्त से कुछ नहीं होता है, उपादान से होता है !

अब पंचेन्द्रिय में से जो एकेन्द्रिय में गया है, कितना अनुभाग लेकर गया है ? पंचेन्द्रिय के योग्य अनुभाग लेकर गया है और एकेन्द्रिय में जानेवाला है तो तीव्र संक्लेश करके गया है। कोई देव है, ७० कोड़ाकोड़ी सागर का बंध करेगा और दूसरे समय में

मरकर एकेन्द्रिय में जा सकता है। वहां तीव्र अनुभाग लेकर गया है। वहां पर उसका तीव्र अनुभाग का उदय होगा और बंध हो रहा है एकेन्द्रिय जैसा - नया बंध मंद अनुभाग का हो रहा है। तो तीव्र के उदय में मंद क्यों कर रहा है ? ख्याल में आयी न बात ? अपने-अपने उपादान से वैसे परिणाम होते हैं ! वहां कर्मों में भी चेंजेस होते रहते हैं। वह तो बात अलग है। अब हम जो यहां देख रहे थे -

कौनसी स्थितिवाला जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त करता है उसकी बात है और उस योग्यता की प्राप्ति यहां होती है। कौनसी योग्यता ? प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त करने की योग्यता क्या है ? अत्यंत बड़ी स्थितिवाला, उत्कृष्ट स्थितिवाला प्रथमोपशम सम्यक्त्व को प्राप्त नहीं करता। उसकी योग्यता क्या है ? एक स्थितिकांडक होकर स्थिति घट जाती है और अंतःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण स्थिति बन जाती है। इस योग्यता की प्राप्ति होती है उसको यहां प्रायोग्यलब्धि कहेंगे। यहां पर और भी अनेक बातें बनेगी। अशुभकर्मों में जो चार-चार स्थानवाला अनुभाग था वह द्विस्थानगत होता है - सत्ता में पड़े हुये सभी निषेकों का अनुभाग। जहां-जहां उत्कृष्ट अनुभाग था वह घटकर हीन अनुभागवाला हो जाता है। यहां आते ही पहले ही अंतर्मुहूर्त में ये दो कार्य हो जाते हैं। प्रायोग्यलब्धि शुरू होते ही ये दो बातें तो बनती ही बनती हैं। कौनसी दो बातें ? एक स्थितिकांडकघात होकर आयु बिना सभी सात कर्मों की स्थिति अंतःकोड़ाकोड़ी सागर बन जाती है यानी एक करोड़ गुणा एक करोड़ सागर से भी नीचे; और सभी अप्रशस्तकर्मों का अनुभाग द्विस्थानगत होता है - घातिकर्मों में लता, दारुरूप और अघातिकर्मों के अप्रशस्त में निंब, कांजीररूप। यह बात ख्याल में आयी ?

अभी हम यहां पढ़ेंगे, ९ नंबर की गाथा की टीका - **प्रथमोपशम सम्यक्त्व के सन्मुख हुआ मिथ्यादृष्टि जीव** अभी प्रायोग्यलब्धिवाले को भी सन्मुख कहा है और ऐसे अलग-अलग अपेक्षाओं से उसको सम्यक्त्वसन्मुख भी कहेंगे हम। क्योंकि यह कौनसा जीव लिया कि आगे चलकर वह सम्यग्दृष्टि होनेवाला है ऐसा भी ले सकते हैं। अभव्यों के भी चार लब्धि होती हैं उसकी भी बात यहां देखेंगे। परंतु वह करणलब्धि में नहीं जानेवाला। ऐसा मिथ्यादृष्टि **जीव विशुद्धता की वृद्धि से वर्धमान होता हुआ**। विशुद्धि और संक्लेश ऐसे दो शब्द आते हैं। यहां विशुद्धि यानी वीतरागता नहीं है। वीतरागता

कहां है ? ऐसी विशुद्धि अभव्यों को भी होती है। विशुद्धि का अर्थ होता है कषायों की मंदता - उसको कहेंगे विशुद्धि। विशुद्धि का बढ़ना यानी कषाय की मंदता की ओर आगे-आगे चलते रहना। कषाय मंद-मंद-मंद-मंद-मंद होते रहना इसको कहेंगे विशुद्धि बढ़ना। आचार्य अमृतचंद्र ने क्या कहा ? 'मम परमविशुद्धिः भवतु।' किस काल में ? ग्रंथ लिखने के काल में, उनका उपयोग इतना उसमें लग जाता है और यह अध्यात्म की बात है। उसमें बारंबार उसके प्रति रुचि बढ़ती चली जाती है, परिणामों में निर्मलता यानी विशुद्धि बढ़ती चली जाती है। कषायों की मंदता बढ़ती है उसको कहेंगे विशुद्धि हो ! 'मम परमविशुद्धिः भवतु।'

श्रोता: शुद्धभाव के बाद ? हां, बिलकुल कषायों की मंदता होती चली जाती है। जब हम यहां तत्त्व सुन रहे हैं तो कितनी कषाय कर रहे हैं ? हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह क्या-क्या कर रहे हैं यहां पर ? तो इस काल में हमारी क्या है ? विशुद्धि बढ़ रही है। जब हम गुरुदेवश्री का सीडी प्रवचन सुनते हैं, उसमें जब भगवान आत्मा की बात करते हैं तब अंदर से ऐसे भाव उछलते हैं यानी वहां विशुद्धि बढ़ती है और इस विशुद्धि के काल में ही आत्मा का अनुभव होगा। *श्रोता: करेगा ?* बिलकुल, प्रायोग्यलब्धि में वही तो हो रहा है- विशुद्धि बढ़ रही है और उसके कारण अनेक बातें बनेंगी। अधःप्रवृत्तकरण, अपूर्वकरण में विशुद्धि और बढ़ती चली जायेगी और ऐसी बढ़ती हुयी विशुद्धि में ही यह कार्य होनेवाला है। ऐसे अनुभव के लिये बस आप बैठ गये और हो जाये सम्यक्त्व ऐसा थोड़ी ज़बरदस्ती होता है ? स्वाध्याय के काल में भी जब हमें अंदर से ऐसे उछाल आता है। मैं तो कहूंगी स्वाध्याय कर रहे हैं, शास्त्र सामने लेकर बैठे हैं और किसी बात पर अंदर से ऐसा गहराई से आनंद आता है। यह तो तत्त्व का आनंद है। फिर स्थिर हो जाओ न ! छोड़ दो सब कुछ और बैठ जाओ। ऐसे सामने शास्त्र खोले और बैठ जाओ और हो जाये सम्यक्त्व ! क्या बात है उसमें ? उस काल में विशुद्धि बढ़ रही है उस काल में यह कार्य हो सकता है।

लौकिक में तो हम बहुत सयाने हैं। तवा गरम करते हैं। इतने में क्या होता है ? किसीका फोन आता है तो कितने घंटे की छुट्टी हो गयी ? आधे-पौने घंटे की तो छुट्टी हो गयी। तो क्या करते हैं ? बंद कर देते हैं, हां, गॅस बंद करते हैं। उतना तो विवेक है, गॅस बंद करें। यहां शिबिर में बराबर याद आता है कि इलेक्ट्रिसिटी बंद करके आना

है, नल बंद करके आना। क्यों ? उसकी बर्बादी होती है। परंतु उपयोग की बर्बादी की कोई नहीं सोचता है। वह अपना ही है न ? अनादिकाल से चला आ रहा है, कहां जानेवाला है ? हम गॅस बंद करके फोन पर बात करते हैं, फिर आते हैं और ठंडे तवे के ऊपर रोटी सेकते हैं कि नहीं ? नहीं सेकते। उतना तो विवेक है। मराठी में एक कहावत है 'तवा गरम है तभी रोटी सेकी जाती है।' ऐसे, परिणाम विशुद्ध हैं तब तक सम्यक्त्व होता है। यहां शास्त्र सुनते समय तो बहुत विशुद्ध परिणाम हुये। फिर व्यापार धंधे का समय हो गया। चले गये तो विशुद्धि खलास। वहां उसके संक्लेश परिणाम चालू होते हैं। फिर लगता है हमने इतना तत्त्व सुना, हम रोज इतना सुनते हैं, इतना स्वाध्याय करते हैं। हमें सम्यक्त्व की प्राप्ति क्यों नहीं होती ?

श्रोता: क्या इसीका अर्थ ऐसे निकाला जाता है कि शुभभाव से शुद्धभाव यानी संवेदन होता है ? शुभभाव से नहीं। शुभभाव को विशुद्धि नहीं कहा, तत्त्वज्ञान की निर्मलता को कहा। शुभभाव से शुद्धभाव होता है ऐसा अर्थ अपने मन से नहीं निकालना। *श्रोता: ऐसा सुनने में आया है।* यह सुनने में गलत आया है। यह जो विशुद्धि है, जो कषाय की इतनी मंदता है; वह कौनसे शुभभाव से होती है ? किसको शुभभाव कहेंगे ? क्योंकि शुभभावों की कौलिटी भी अलग-अलग है। *श्रोता: क्योंकि कषाय मंद-मंद होते हैं।* मंद कषाय में हम दूसरे की हेल्प भी करेंगे, स्कूल भी खोलेंगे, हॉस्पिटल भी खोलेंगे। वह भी शुभभाव है। एक दूसरे को मदद करेंगे वह भी शुभभाव है। सर्वोत्कृष्ट शुभभाव तो तत्त्व का विचार है यह भी शुभभाव है, तत्त्वज्ञान संबंधी जो निर्मलता है उससे जो विशुद्धि बढ़ती है, ऐसी विशुद्धि अन्यथा नहीं बढ़ेगी। *श्रोता: यह विकल्पात्मक है ?* हां, यह विकल्पात्मक है। अभी वह कहां पहुंचा है ? निर्णय तक पहुंचा ही नहीं। वह तो आगे चलकर करणलब्धि में निर्णय तक पहुंचेगा। ये शुभभाव भले हैं, परंतु शुभभाव से तत्त्वनिर्णय नहीं हो रहा है। उसके ज्ञान में जो स्पष्टता हो रही है, निर्मलता हो रही है, यह ज्ञान में ही सारा कार्य हो रहा है और उसीके द्वारा विशुद्धि बढ़ेगी।

शुभभाव से यानी कौनसे शुभभाव से ? पूजा से ? भक्ति से ? दान से ? उपवास से ? शुभभाव के नाम पर हम किसी क्रिया को करना चाहते हैं। हमने शुभभाव और क्रिया का भी अलग-अलग भेद नहीं किया है। लोग पूछते हैं निगोद जीव कैसे शुभभाव

करते होंगे ? यानी वे क्या क्रिया करते होंगे ऐसा प्रश्न होता है। हमें बहुत सारे पूछनेवाले मिले कि निगोद से मरकर कोई मनुष्य में आते हैं तो वहां कौनसा शुभभाव करता होगा ? कभी ऐसा प्रश्न खड़ा हुआ कि वहां अशुभभाव कैसे करता होगा ? क्यों नहीं खड़ा हुआ ? अशुभभाव तो होते हैं और शुभभाव तो हम सोच समझकर करते हैं ऐसी हमारे अभिप्राय में भूल पड़ी है। यहां आने के लिये कितना सोचना पड़ा ? कितनी अरेंजमेंट करनी पड़ी ? है न ! यानी हमने ऐसा माना है कि शुभभाव हमारे कंट्रोल में हैं और हम सोच समझकर कर रहे हैं।

अभी यह तत्त्वविचार के काल में ज्ञान का ही कार्य चल रहा है। उस समय में हमने देखा न सभी अप्रशस्त कर्मों का अनुभाग इतना मंद हो रहा है कि शुभभाव अपने आप हो रहे हैं। शुभभाव करने से यहां सम्यक्त्व नहीं हो रहा है। *श्रोता: यह विशुद्धि बढ़ रही है यानी यह ज्ञान की निर्मलता है ?* यहां जो ज्ञान की निर्मलता हो रही है उसको विशुद्धिलब्धि में नहीं लेना। विशुद्धिलब्धि देशनालब्धि के पूर्व होती है। वहां की जो विशुद्धि है, उसमें सभी अप्रशस्त कर्मों का अनुभाग प्रतिसमय अनंतगुणा घटता है। वहां हम तत्त्वजिज्ञासा भी कह सकते हैं। वह सामान्य विशुद्धि है। अभी यहां जो आगे-आगे विशेष विशुद्धि बढ़ेगी उसकी बात अलग है। तत्त्व संबंधी जो विचार चलेंगे उसमें बहुत सारा कार्य हो जाता है।

अब हम आगे बढ़ेंगे- **प्रथमोपशम सम्यक्त्व के सन्मुख हुआ मिथ्यादृष्टि जीव विशुद्धता की वृद्धि से वर्धमान होता** है यानी उसकी विशुद्धि बढ़ती चली जाती है। अब यह विशुद्धि क्यों बढ़ती चली जाती है ? क्योंकि उसके ज्ञान में यह स्पष्टता, क्लैरिटी हो रही है। तत्त्व संबंधी अधिक से अधिक क्लैरिटी, तत्त्व संबंधी विचार हो रहे हैं तो सहजरूप से उसके कषायों की मंदता हो रही है। हम कहेंगे कषायों की मंदता यह उसका बाय प्रॉडक्ट है। क्यों ? क्योंकि यहां ज्ञान उसमें लगा है, उपयोग उसमें लगा है। तत्त्व के विषय में उपयोग लगा है तो अन्य कोई राग-द्वेष, कषायों की बातें उसके हो ही नहीं रही हैं। जो कुछ हो रही हैं वे मंदतापूर्वक चल रही हैं। परंतु उसका उपयोग कहां लग रहा है ? तत्त्वविचार में लग रहा है। हम उसको आरोप करके कहेंगे शुभभाव से यह कार्य होता है। वह बिना तत्त्वज्ञान के होगा कि नहीं होगा ? जो आपने सुन रखा है कि शुभभाव से शुद्धभाव होता है, क्योंकि सुनानेवाले बहुत मिलते हैं न

हमको। हां, क्या करें ! जिन लोगों का तत्त्व का अभ्यास नहीं है तो उनका बहुत कम्प्यूजन होता है। क्या करें, किसको सही माने ? यह ऐसा कहता, वह वैसा कहता, वह वैसा कहता है, सब जगह सुनते भी हैं परंतु निर्णय नहीं हो रहा है। निर्णय तो स्वयं ही को करना पड़ेगा। कोई निर्णय करके देनेवाला है ही नहीं।

प्रायोग्यलब्धि के प्रथम समय से लेकर पूर्व स्थितिबंध के यानी इसके पहले जितना स्थितिबंध होता था उससे **संख्यातवें भाग मात्र अंतःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण आयु बिना सात कर्मों का स्थितिबंध करता है।** अभी इसकी बात दुबारा सोचते हैं। एक तो प्रायोग्यलब्धि में आते ही एक स्थितिकांडकघात किया। उसके द्वारा क्या हुआ ? *श्रोता: स्थितिसत्त्व घटा।* स्थितिसत्त्व घटा। सत्ता में जो अधिक स्थिति थी वह अंतःकोड़ाकोड़ी सागर बन गयी। अब यहां नया स्थितिबंध कितना होगा ? जो स्थितिसत्त्व है उससे भी कम होगा। यह नया बंध है। यदि नया बंध अधिक होगा तो स्थिति बढ़ेगी, सत्त्व बढ़ेगा परंतु ऐसा तो नहीं होता। उसने जितना स्थितिसत्त्व घटाया है, अंतःकोड़ाकोड़ी सागर हुआ है। नया बंध उससे भी कम होता है। उसको भी अंतःकोड़ाकोड़ी सागर कहेंगे। ख्याल में आयी इतनी बात ? कौनसे कर्मों का ? सातों कर्मों का। आयु में कोई परिवर्तन नहीं होगा। यहां पर आयु के बंध के बारे में कोई अन्य बात नहीं है। अभी आगे जाकर आयु का भी बंध रुकनेवाला है। प्रायोग्यलब्धि में ऐसे कुछ-कुछ बातें होनेवाली हैं वह कल सुबह हम देखेंगे।

श्रोता: पूर्व के संख्यातवें भाग ? प्रायोग्यलब्धि में प्रवेश करने के पहले जितना स्थितिबंध होता था उसके संख्यातवें भाग। आप कहेंगे संख्यातवें भाग क्यों कहते हैं ? पहले तो अधिक से अधिक ७० कोड़ाकोड़ी सागर का बंध हो रहा था और अभी मान लेते हैं अंतःकोड़ाकोड़ी हो रहा है। आप अंतः की छोड़ दो, एक कोड़ाकोड़ी भी हो रहा तो ७० कोड़ाकोड़ी का एक कोड़ाकोड़ी कितना भाग हुआ ? *श्रोता: सत्तरवां भाग।* सत्तरवां भाग यानी संख्यातवां भाग। अरे हज़ारवां, लाखवां, कोड़ाकोड़ीवां भाग होगा तो भी संख्यातवां भाग ही कहेंगे। इसकी अधिक चर्चा हम कल सुबह दुबारा करेंगे। अभी तो यहीं रुकते हैं।

बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

११. प्रायोग्यलब्धि - स्थितिबंधापसरण, प्रकृतिबंधापसरण

आचार्य श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती ने इस लब्धिसार ग्रंथ की रचना की है। उसीके आधार से पं. टोडरमलजी ने सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका लब्धिसार-क्षपणासार भाषाटीका ढूंढारी भाषा में लिखी है और उसीका हम हिंदी अनुवाद देख रहे हैं। अभी प्रथमोपशम सम्यक्त्व की प्ररूपणा संबंधी अपनी यहां बात चल रही है।

हमने देखा है प्रथमोपशम सम्यक्त्व किसे प्राप्त होगा ? कौनसे जीव को वह प्राप्त हो सकता है ? हमने देखा था, चारों गति का भव्य, मिथ्यादृष्टि सादि हो या अनादि हो, फिर संज्ञी पंचेन्द्रिय, पर्याप्त, तिर्यच और मनुष्यों के लिये गर्भज, फिर मंद कषायरूप विशुद्धता का धारी, जाग्रत होना चाहिये, साकार उपयोगवाला होना चाहिये। श्रोता: भव्य/ हां, भव्य- पहले ही चारों गतिवाला भव्य मिथ्यादृष्टि कहा था न। साकार उपयोग में सम्यक्त्व होगा। ऐसा जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति कर सकता है। प्रथमोपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति किसके होती है उसकी बात हमने देखी थी, परंतु उसमें योग वगैरह की बात गाथा में नहीं बतायी है।

कौनसे योग में होता है ? मनोयोग में, वचनयोग में कि काययोग में ? नीलेश, आप क्या कहते हैं ? श्रोता: तीनों में से किसी एक योग में। तीनों में से किसी एक योग में होता है। कौनसी लेश्यावाले को होता है ? देव की अपनी-अपनी शुभ लेश्या होती है, नारकी की अपनी-अपनी अशुभ। नारकी को कृष्ण लेश्या में भी सम्यक्त्व हो सकता है, परंतु मनुष्य और तिर्यचों को शुभ लेश्या में पीत, पद्म या शुक्ल तीनों ही प्रकार की शुभ लेश्या में सम्यक्त्व हो सकता है। सम्यग्दृष्टि होने के बाद चौथे गुणस्थान के परिणाम कृष्ण लेश्या तक हो सकते हैं। उसमें कोई बाधा नहीं, उसमें कोई दोष नहीं है। परंतु जब सम्यक्त्व की प्राप्ति हो रही है उस काल में शुभ लेश्या होती है। हमने यहां तक बातें देखी थी।

फिर उसको पांच लब्धिपूर्वक करणलब्धि के पश्चात् सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है। इन पांच लब्धि के नाम कौन बताना चाहते हैं ? आप बतायेंगे बेटा ? हां, बोलो, हमें यहां यंगस्टर्स चाहिये। श्रोता: क्षयोपशम, विशुद्धि, देशना, प्रायोग्य और करणलब्धि। ये किसकी बात चल रही है ? लब्धि की। हर एक के साथ लब्धि शब्द लगाना। देशना

कहने से अलग बात होती है, देशनालब्धि कहने से अलग बात होती है। तो सम्यग्दर्शन का निमित्त क्या है ? श्रोता: छह द्रव्य, नौ पदार्थ... छह द्रव्य सम्यग्दर्शन का निमित्त हैं ? हां, उसका ज्ञान, अच्छा यानी आप देशना कह रहे हैं। मुझे पूछना है सम्यग्दर्शन का निमित्त क्या है ? हमने देखा न, देशना के बिना सम्यक्त्व नहीं होता है। देशना तो होती ही है। तो देशना किसका निमित्त है? देशना किसमें निमित्त है ? श्रोता: लब्धि में निमित्त है/बहुत अच्छा ! वह देशनालब्धि में निमित्त है। देशना-उपदेश का सुनना हमें समझने में निमित्त है। यह उपदेश मिला और उसको सुनकर हमने समझा। फिर भी उसको सम्यग्दर्शन में निमित्त कहने में आता है। यह तो देशना जो मिली है वह पूर्वभव की भी हो सकती है। परंतु जिस काल में हम तत्त्वविचार में जुड़ जाते हैं और मिली हुयी देशना पर विचार करते हैं उस काल में फिर देशनालब्धि प्रारंभ हो जाती है। उस काल में हम उसको देशनालब्धि कहेंगे।

जिस काल में ज्ञानी के द्वारा सुने हुये तत्त्व हैं उस पर जो विचार करेंगे उस काल में देशनालब्धि का अंतर्मुहूर्त वहां शुरू हो जाता है। फिर भी उसको उपचार से सम्यक्त्व का निमित्त कहने में आता है। निमित्त-नैमित्तिक संबंध एक ही समय में होता है। जिस समय में कार्य होता है उसी समय में वहां कारण विद्यमान है। यहां हम निमित्त कारण की बात कर रहे हैं, परंतु जहां कार्य है वहीं पर उपादान कारण भी है। अभी गुरुदेवश्री के प्रवचन में कारणपरमात्मा की बात सुनी न ! कार्य कहां हो रहा है ? श्रोता: जीव में स्वयं में। हां, यहीं पर होगा। और उसका कारण भी उसी क्षेत्र में ही विद्यमान है। क्योंकि पर्याय तो पूरे आत्मा के क्षेत्र में होगी। वहीं पर उसका कारण भी विद्यमान है। यह कारण को कहीं बाहर ढूँढना नहीं है। यहां हम निमित्त कारण की बात करते हैं तो उसका समय भी वही होता है। उसको कालप्रत्यासत्ति कहते हैं। जिस समय में कार्य है, उसी समय में निमित्त है। यहां हम निमित्त के लिये कर्मों की उपशम या क्षयोपशम अवस्था पर आरोप डालते हैं। कर्मों में यह उपशम अवस्था होती ही है जिस समय यहां औपशमिक सम्यक्त्व होता है।

हमने क्षयोपशमलब्धि, विशुद्धिलब्धि, देशनालब्धि की विस्तार से चर्चा की। अब प्रायोग्यलब्धि की बात यहां चल रही है। कल प्रवचन के दौरान बात आयी थी अरिहंत की स्थापना कैसी करनी चाहिये ? तब अष्टपाहुडजी शास्त्र नहीं मिला था तो हमारे

अमृतभाई ने अभी यहां लाकर रखा है। कहते हैं अभी अरिहंत की स्थापना करके बताओ। अरिहंतों की स्थापना करो। आचार्य कुंदकुंद अष्टपाहुड ग्रंथ में क्या कहते हैं ? यह बोधपाहुड में गाथा नंबर ३१ है, उसमें बताते हैं।

गुणठाणमग्गणेहिं य पज्जत्तीपाणजीवठाणेहिं।

ठावण पंचविहेहिं पणयव्वा अरहपुरिसस्स ॥ ३१ ॥

छे स्थापना अर्हन्तनी कर्तव्य पांच प्रकारथी।

गुण, मार्गणा, पर्याप्ति तेमज प्राण ने जीवस्थानथी ॥

गुजराती में बताया है। अरिहंत की पांच प्रकार से स्थापना करनी है। कौनसे ? गुणस्थान से, मार्गणास्थान से चौदह मार्गणा हैं। हर मार्गणा में अरिहंत को फिट करना। कौन-कौनसी मार्गणा में उनका क्या स्वरूप है ? उनके पर्याप्ति कितनी हैं ? कौनसी हैं ? प्राण कितने हैं ? कौनसे हैं ? अरिहंतों का जीवसमास कौनसा है ? क्योंकि जीवसमास के भी चौदह भेद हैं। इसके द्वारा यानी जीवकाण्ड का जो विषय है बीस प्ररूपणा का, उन बीस प्ररूपणा को अरिहंत भगवान पर लगाना। फिर अरिहंत भगवान का स्वरूप निश्चित करना तब हमने अरिहंतों की स्थापना की ऐसा कहेंगे। ३१ गाथा के आगे हर गाथा में गुणस्थान से अरिहंत की स्थापना, मार्गणास्थान से अरिहंत की स्थापना, पर्याप्ति से अरिहंत की स्थापना बतायी है - पढ़ लेना अष्टपाहुडजी। हां, उसमें बहुत विस्तार है। अभी आपको दिखाया तो पढ़ना चाहिये। बोधपाहुड की ३१ गाथा से आगे की कई गाथायें इसके ऊपर हैं। अभी प्रायोग्यलब्धि संबंधी विषय चलेगा।

प्रायोग्यलब्धि यानी अभी सम्यग्दर्शन होने जा रहा है, अभी हुआ नहीं है। अभी करणलब्धि में भी नहीं आया है। जो करणलब्धि में प्रवेश करनेवाला है उस जीव की कैसी योग्यता होती है ? उस योग्यता को यहां प्रायोग्यलब्धि कहते हैं। किसी प्रयोग की बात नहीं है। कैसा बैठना ? क्या सोचना ? यह बात नहीं है। जिसको तत्त्व का अभ्यास होता है और तत्त्वज्ञान की गहरी पकड़ आती है उसको आगे क्या करना चाहिये ऐसे प्रश्न उद्भवते नहीं हैं। सहज प्रक्रिया हो जाती है। हां, जिसके अभी कचास है, प्राथमिक अवस्था है उसको थोड़ासा सिखाना पड़ता है। ख्याल में आया न ? वह सब सहज प्रक्रिया हो जाती है। कौनसे विचार करना, क्या करना ऐसी कोई बात नहीं। सहज तत्त्व

के विचार उठते रहते हैं। विचार भी सहज उठते हैं। निर्विकल्प अवस्था भी सहज होती है। हां, उसके लिये प्रेरणा दे सकते हैं परंतु लोग पूछते हैं कैसे विचार करना चाहिये ? अभी हम क्या सोचें ? अभी क्या पढ़ें तो हमें सम्यग्दर्शन होगा ? पढ़ते-पढ़ते, सुनते-सुनते तो नहीं होनेवाला है। जो तत्त्व हमने सीखे हैं उन पर हम विचार करेंगे, तत्त्वविचार में डूब जायेंगे तो उसी अवस्था में हो जाता है।

अब हम यहां प्रायोग्यलब्धि की बात देख रहे थे। प्रायोग्यलब्धि में आते ही पहले में पहले क्या होता है ? एक बड़ा स्थितिकांडकघात होता है और एक अनुभागकांडकघात होता है। स्थितिकांडकघात के द्वारा क्या होता है ? सत्ता की जो स्थिति है जिसको स्थितिसत्त्व कहते हैं वह स्थिति घटकर अंतःकोड़ाकोड़ी सागर की हो जाती है। अनुभागकांडकघात के द्वारा पूर्व में कभी न कभी बंधा हुआ अप्रशस्त कर्मों का चार-चार स्थानवाला जो अनुभाग सत्ता में पड़ा है वह द्विस्थानीय हो जाता है। घातिकर्मों में लता और दारुभागरूप हो जाता है और अघातिकर्मों के अप्रशस्त कर्मों में नीम और कांजीररूप रह जाता है। सत्ता में जो अप्रशस्त कर्मों का अनुभाग है वह इतना हीन हो जाता है। जो प्रशस्त कर्मों का अनुभाग है वह तो बढ़ेगा उसकी बात हम आगे करेंगे। अभी यहां और अन्य क्या-क्या बातें होती हैं उनको हम देखेंगे। सात कर्मों का बंध अंतःकोड़ाकोड़ी सागर करता है यह बात भी हमने देखी थी। स्थितिसत्त्व तो अंतःकोड़ाकोड़ी हो ही गया। नया बंध तो उससे भी कम होगा। नया बंध अधिक होगा तो सत्ता बढ़ जायेगी - ऐसा नहीं होता यहां पर। जहां विशुद्धि अधिक होती है वहां कर्मों की जितनी स्थिति ऑलरेडि है उससे भी कम प्रमाण में बंध होता है।

सात कर्मों में स्थितिकांडकघात और स्थितिबंधापसरण होता है। अप्रशस्त कर्मों में अनुभागकांडकघात होता है। स्थितिबंध घटकर होता है। कितना होता है ? अंतःकोड़ाकोड़ी सागर होता है। वह क्या होता है, कैसे घटता है अभी उसकी बात चलेगी। हमने देखा था कि आयु बिना सात कर्मों का स्थितिबंध अंतःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण होता है जो पूर्व अवस्था में जितना बंध होता था उसके संख्यातवें भाग प्रमाण होता है। पूर्व अवस्था में कितना लेना ? भले ७० कोड़ाकोड़ी सागर तक भी क्यों न लो, परंतु ७० कोड़ाकोड़ी सागर की अपेक्षा एक कोड़ाकोड़ी सागर से छोटा यानी सत्तरवां भाग तो हो ही गया न ! एक कोड़ाकोड़ी पूरा भी लेंगे तो उसका सत्तरवां भाग हो गया

यानी संख्यातवां भाग; हजारवां भाग होगा तब भी संख्यातवां कहेंगे। यह तो संख्यातवां है ही है यानी अभी स्थितिबंध कितना होगा ? अंतःकोड़ाकोड़ी सागर होगा। यहां जो नया स्थितिबंध शुरू हुआ है अंतःकोड़ाकोड़ी सागर से शुरू हुआ। अब आगे बढ़ेंगे।

श्रोता: इसमें देशना का क्या मतलब है ? किसकी बात चल रही है ? श्रोता: उसीमें जो आपने बताया अनुभागबंध प्रायोग्यलब्धि में ? अभी तो प्रायोग्यलब्धि में अनुभाग का सत्त्व घटाया ऐसा हमने देखा। श्रोता: शैल और अस्थि तो चला गया। हां, श्रोता: दारु और लतारूप रह गया। लता और दारुरूप रह गया। श्रोता: सर्वघाति प्रकृति के स्पर्धक ? नहीं, सर्वघाति प्रकृति के स्पर्धक देशघातिरूप नहीं होते हैं, वे दारुरूप रह जायेंगे। देखो, सर्वघाति स्पर्धक कौनसे होते हैं ? शैल, अस्थि और दारु का अनंत बहुभाग। सर्वघाति प्रकृति के स्पर्धक देशघाति नहीं हो रहे हैं। परंतु वे कहां तक आकर रुकेंगे ? दारु के विशिष्ट भाग तक आयेंगे क्योंकि अब आगे उसका अनुभाग भी घटता चला जायेगा। वे यहां पर कभी सर्वघाति से देशघाति नहीं होनेवाले। सर्वघाति प्रकृति सर्वघातिरूप ही रहेगी।

श्रोता: और देशघाति प्रकृति ? जो देशघाति प्रकृतियां हैं न, जैसे मतिज्ञानावरण में सर्वघाति स्पर्धक भी थे और देशघाति स्पर्धक भी थे। कौनसे ? शैल भी थे, अस्थि भी थे, दारु भी थे और लता भी थे; वे दारु और लतारूप रह गये। यानी देशघाति प्रकृतियों में भी सर्वघाति स्पर्धक रहे। भले रहे, थोड़े दारुरूप रह जायेंगे। हां, उसकी कोई ना नहीं है। अभी तो वे दारुरूप यानी द्विस्थानीय हुये इतना ही यहां समझना। द्विस्थानीय हुये ऐसा यहां कथन है, वे देशघाति हुये ऐसा यहां कथन नहीं है। जीव जब श्रेणी में आयेगा तब उसकी चर्चा वहां करेंगे। अभी तो क्या हो रहा है ? द्विस्थानीय हो रहा है। सत्ता का जो अनुभाग है वह द्विस्थानीय हुआ है। अब जितना हुआ है उससे बढ़कर अनुभाग बंध नहीं होनेवाला है, उससे भी घटकर बंध होगा। हमने अभी अनुभागबंध की बात पढ़ी नहीं है, हम स्थितिबंध की बात पढ़ रहे हैं। १० नंबर की गाथा पढ़ेंगे।

ततो उदय सदस्स य पुधत्तमेत्तं पुणो पुणोदरिय।

बंधम्मि पयडि बंधुच्छेदपदा होंति चोत्तिसा ॥ १० ॥

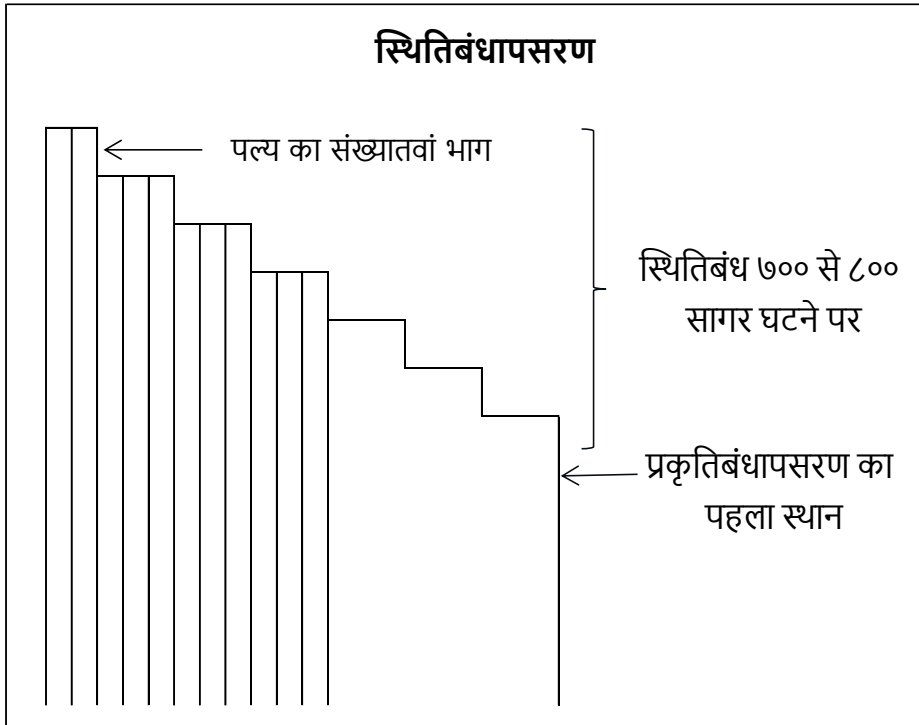
यह बहुत इंटरेस्टिंग विषय है। यहां क्या होगा ? स्थितिबंध क्रम से घटता चला

जायेगा। क्रम से घटता चला जायेगा उसको कहेंगे स्थितिबंधापसरण। अपसरण यानी घटना। मिथ्यात्व गुणस्थान में बंधयोग्य प्रकृतियां कितनी हैं ? तो ११७ हैं। १२० बंधयोग्य होती हैं उनमें मिथ्यादृष्टि को कौनसी नहीं बंधेगी ? आहारकशरीर, आहारकअंगोपांग और तीर्थकर प्रकृति का बंध मिथ्यादृष्टि को नहीं होता। यहां पर उसको ११७ प्रकृतियों का बंध हो सकता है। उनमें से यहां कितनी ही प्रकृतियों का बंध रुकते चला जायेगा - प्रायोग्यलब्धि में ही। जितनी प्रकृतियों का बंध रुका उसको कहेंगे प्रकृतिबंध का अपसरण होना। विशिष्ट प्रकृतियों का बंध रुकते चला जायेगा। अभव्यों के भी यह होगा। कितने काल तक ? अंतर्मुहूर्त तक। जो करणलब्धि में प्रवेश करेगा उसकी तो बंधने से रुकी हुयी प्रकृतियों का बंध और आगे भी कुछ काल तक रुकेगा। किसका कितने काल तक रुकेगा वह हम जब क्रम आयेगा तब उसकी बात करेंगे।

यहां कौनसी दो बातें हो रही हैं ? स्थितिबंध का अपसरण और प्रकृतिबंध का अपसरण। विशिष्ट प्रकृतियों का बंध यहां से रुकता चला जायेगा। अँट अ टाइम नहीं रुकता है- कोई प्रकृति पहले बंधना रुकेगी, फिर दूसरे स्थान पर दूसरी प्रकृति बंधना रुकेगी, फिर और कुछ समय के बाद तीसरी रुकेगी। ऐसे आगे-आगे कुछ-कुछ प्रकृतियां बंधना रुकेंगी। यहां दो बातें होंगी। स्थितिबंधापसरण और प्रकृतिबंधापसरण। अब हम टीका पढ़ेंगे। **उस अंतःकोड़ाकोड़ी सागर स्थितिबंध से** यहां आते ही कितना स्थितिबंध शुरू हुआ था ? अंतःकोड़ाकोड़ी सागर उससे **पल्य के संख्यातवें भाग मात्र हीन** यहां असंख्यातवें लिखा गया है। प्रेरणाबेन कहां बैठी हैं ? जरा इसको संख्यातवें कर देना। यह संदृष्टि है। सिम्बॉल्स हैं। प यानी पल्य। डिक्टाइडेड बाय यह संख्यात का चिन्ह है। इतना स्थितिबंध घटेगा वहां। पहले कितना स्थितिबंध होता था ? अंतःकोड़ाकोड़ी सागर।

अब देखना यहां पर। यह एक ही सिंगल लाइन हमने निकाली है समझने के लिये। यहां इतना स्थितिबंध हुआ। दूसरे समय में उतना ही होता है। तीसरे समय में भी उतना ही होता है। चौथे समय में भी उतना ही होता है। इसको कहेंगे अंतर्मुहूर्त तक लगातार उतना का उतना स्थितिबंध होता है। यह यहां की विशेषता है। अंतर्मुहूर्त काल तक उतना का उतना स्थितिबंध होगा। उसके बाद क्या होगा? स्थितिबंध में कटौती हो जायेगी। कितनी कटौती हुयी अँट अ टाइम ? पल्य के संख्यातवें भाग प्रमाण। इतने

वर्ष कम बंधेंगे। अंतःकोड़ाकोड़ी में से इतना कम हुआ तो भी उसको क्या कहेंगे ? अंतःकोड़ाकोड़ी सागर। फिर उतना का उतना स्थितिबंध लगातार अंतर्मुहूर्त तक होता रहेगा। फिर उसमें पल्य के संख्यातवें भाग प्रमाण कटौती होगी और इतना स्थितिबंध होते रहेगा। यह फिर अंतर्मुहूर्त तक होगा। फिर पल्य के संख्यातवें भाग प्रमाण कटौती होगी। फिर अंतर्मुहूर्त तक इतना का इतना स्थितिबंध होगा।



हम संख्यातवें भाग के लिये चौथा भाग भी लेंगे तो एक बार चौथा भाग कट हुआ। दूसरी बार चौथा भाग, तीसरी बार चौथा भाग, चौथी बार चौथा भाग। चार बार कट हो जायेगा तो एक पल्य प्रमाण स्थिति कट हुयी। तो एक सागर प्रमाण स्थिति कट होने के लिये कितनी बार स्थितिबंधापसरण होगा ? बोलो नीलेश ? हां, बोलो। *श्रोताः चालीस कोड़ाकोड़ी बार।* चालीस कोड़ाकोड़ी बार। अश्विनभाई बोल रहे हैं। हां-हां, उनको तो मालूम है न यह। क्योंकि एक सागर में १० कोड़ाकोड़ी पल्य होते हैं और एक टाइम में, हमने माना है पल्य का चौथा भाग कटौती हो रही है। हो सकता है और छोटा भाग होता हो। हमने तो चौथा भाग मान लिया है। दसवां भाग या हजारवां भाग

भी संख्यातवां भाग कहलायेगा। आपको समझाने के लिये बता रहे हैं कि पल्य का चौथा भाग हम मान लेते हैं। चार बार कटौती होगी तब जाकर स्थिति एक पल्य कट हो गयी, इतनी कम बांधी और ऐसे १० कोड़ाकोड़ी बार होना चाहिये।

४० कोड़ाकोड़ी बार स्थितिबंध घटेगा और हर बार स्थितिबंध घटने के लिये एक अंतर्मुहूर्त लगेगा। तो इतनी बार इतने अलग-अलग स्थितिबंधापसरण होंगे तब एक सागर घटेगा। इसतरह स्थितिबंध ७०० से ८०० सागर घटने के लिये कितनी बार होगा अभी उसका हिसाब लगाओ। उसको और ७०० से गुणा कर दो। अँट अ टाइम पल्य के संख्यातवें भाग प्रमाण स्थिति ही कट हो सकती है। फिर उतना का उतना स्थितिबंध, फिर वह कटौती, फिर उतना का उतना यह अंतर्मुहूर्त तक होगा ही होगा। तो ऐसे लगातार होते-होते-होते जब स्थितिबंध ७०० से ८०० सागर घट जाता है यानी इतनी बार स्थितिबंधापसरण के अंतर्मुहूर्त हो जाते हैं तब जाकर प्रकृतिबंधापसरण का पहला स्थान आयेगा।

फिर से दुबारा देखेंगे। यहां आते ही स्थितिबंध कितना शुरू हुआ ? अंतःकोड़ाकोड़ी सागर। अंतर्मुहूर्त तक उतना का उतना स्थितिबंध हुआ, फिर कटौती हुयी। जैसे अपनी भाषा में समझना है, मान लेते हैं न हजार वर्ष का स्थितिबंध हुआ, फिर कटौती हुयी। कितनी कटौती हुयी ? मान लेते हैं १० साल की हुयी तो ९९० वर्ष की स्थिति बंधेगी। फिर कटौती हुयी १० साल की, फिर अंतर्मुहूर्त तक ९८० वर्ष की स्थिति बंधेगी। इसतरह से होते- होते- होते १०० वर्ष घटने के लिये कितनी बार करना पड़ेगा ? *श्रोता: १० बार* हां, ऐसे ही यहां ७०० से ८०० सागर कटौती होने के लिये कितनी बार स्थितिबंधापसरण होगा ? है न ? ७०० गुणा ४० कोड़ाकोड़ी बार। इतनी बार स्थितिबंधापसरण होगा तो यहां आकर पहली बार एक प्रकृति का बंध रुकेगा। देखो, हमने गाथा में क्या पढ़ा अभी ? देखो, संस्कृत में देखो,

ततः उदये शतस्य च पृथक्त्वमात्रं पुनः पुनरुदीर्य।

बंधे प्रकृतिबंधोच्छेदपदानि भवन्ति चतुश्चत्वारिंशत्॥

यानी ऐसा एक प्रकृतिबंधापसरण का स्थान; दूसरा, फिर तीसरा, फिर चौथा। प्रकृतिबंधापसरण के एक-एक स्थान के बीच में स्थितिबंध में ७०० से ८०० सागर की

कटौती होगी तब जाकर दूसरा स्थान आयेगा। प्रकृतिबंधापसरण के ऐसे ३४ स्थान होते हैं। उनमें कौन-कौनसी प्रकृतियों का बंध रुकता है वह अभी हम देखेंगे। हम टीका पढ़ेंगे तो आपको और क्लैरिटी होगी। गाथा १० की टीका- **उस अंतःकोड़ाकोड़ी सागर स्थितिबंध से पल्य के संख्यातवें भाग मात्र हीन स्थितिबंध अंतर्मुहूर्त तक समान प्रमाण युक्त करता है।** इसका अर्थ समझ में आता है न ? जितना स्थितिबंध घट कर रह गया है उतना अंतर्मुहूर्त तक समान स्थितिबंध होता है। **इसतरह क्रम से संख्यात स्थितिबंधापसरणों द्वारा।** किसको संख्यात कहा यहां ? ७०० x ४० कोड़ाकोड़ी के लिये यहां संख्यात कहा। इतनी बार स्थितिबंधापसरण हुये तब **पृथक्त्व सौ सागर घटने पर** क्या घटने पर ? स्थितिबंध घटनेपर। यहां ७०० से ८०० सागर को पृथक्त्व सौ सागर कहा न ! सात या आठ को यहां पृथक्त्व कहा है। कहीं-कहीं ३ से ९ तक की संख्या को पृथक्त्व कहते हैं। कहीं-कहीं हजारों को भी पृथक्त्व कहते हैं। कहां किस अपेक्षा से शब्द आया है वह वहां बता देंगे। हां, श्रीमद्जी ने कहा है, 'ज्यां-ज्यां जे जे योग्य छे तहां समझवुं तेह।' पं. टोडरमलजी की यह विशेषता है कि अनेक नये शब्दों के अर्थ भी वहां लिख देते हैं।

इतना स्थितिबंध घटने पर पहला प्रकृतिबंधापसरण स्थान होता है। यानी कोई एक प्रकृति यहां तक बंध रही थी, वह इससे आगे अब नहीं बंधेगी। कब तक नहीं बंधेगी ? जब तक प्रथमोपशम सम्यक्त्व का काल पूरा नहीं होता है तब तक नहीं बंधेगी। बाद में कुछ प्रकृतियां बंधना शुरू हो जायेगी। कुछ तो वहां सम्यक्त्व होने के बाद बंधेगी ही नहीं, डिपेंड्स। कौनसी प्रकृति है उसकी अपेक्षा से वह बात होगी। हम देखेंगे वे कौनसी प्रकृतियां हैं। *श्रोता: यह सारा कुछ प्रायोग्यलब्धि में हो रहा है ?* यह प्रायोग्यलब्धि में होता है। यह अभव्यों के भी होता है। *श्रोता: यह पृथक्त्व ७००, ८०० कैसे हुये ?* यह पृथक्त्व सौ का अर्थ है। सौ अलग निकालो और पृथक्त्व का अर्थ है ७ या ८। हां, आपको यह देखना है ? यह इसी पैरेग्राफ में लास्ट दो लाइन देखना। **यहां पृथक्त्व नाम सात या आठ का है, इसलिये यहां पृथक्त्व सौ सागर कहने से सात सौ सागर वा आठ सौ सागर जानना।** ख्याल में आयी न बात ? हां, वे स्वयं बताते हैं। आचार्यों ने भी जहां जो पृथक्त्व का अर्थ होता है वहां वह स्वयं बता दिया।

अभी हम ऊपर पढ़ रहे थे तो हमने क्या देखा ? यहां प्रायोग्यलब्धि में आकर

स्थितिबंधापसरण होते रहते हैं। पहले स्थितिकांडकघात हुआ था, तब स्थितिसत्त्व घट गया था। अभी स्थितिबंध की बात चल रही है। स्थितिसत्त्व और स्थितिबंध में अंतर समझ लेना- स्थितिसत्त्व घटता है यानी सत्ता की जो कुछ निषेक रचना थी उसमें ऊपर के अनेक निषेकों का अभाव करके उनके परमाणु नीचे के निषेकों में आ मिलते हैं। जो नया स्थितिबंध हो रहा है वह भी अभी अंतःकोड़ाकोड़ी सागर का होता है, वह भी घटते चला जाता है। एक बार जितना स्थितिबंध होता है, अंतर्मुहूर्त तक उतना ही रहता है। फिर उसमें कटौती होती है। अँट अ टाइम कितनी कटौती होती है ? वहां पल्य के संख्यातवें भाग प्रमाण हीन नया बंध होता है। यानी कटौती कितनी हुयी ? पल्य के संख्यातवें भाग। ऐसी एक बार हुयी। फिर अवस्थित यानी उतना का उतना स्थितिबंध, फिर कटौती। फिर उतना का उतना, फिर कटौती। यहां दिखाया है न सीढ़ी उतरने जैसा, कि इतना स्थितिबंध हुआ, फिर कम हुआ; फिर उतना का उतना हुआ, फिर कम हुआ। फिर उतना हुआ, फिर कम हुआ। तो यहां कितना घट गया ? ७०० से ८०० सागर। तब जाकर पहला प्रकृतिबंधापसरण का स्थान आया।

श्रोता: स्थितिसत्त्व भी घटता है ? स्थितिसत्त्व घटेगा न। परंतु यहां स्थितिसत्त्व एक-एक समय से घटेगा क्योंकि एक-एक समय व्यतीत हो रहा है और अधिक बंध नहीं हो रहा है। एक ही बार स्थितिकांडकघात हुआ है, बार-बार स्थितिकांडकघात नहीं हो रहे हैं। इसलिये स्थितिसत्त्व फास्ट नहीं घटेगा यहां। एक-एक समय व्यतीत हुआ तो एक-एक निषेक गल गया - उतना ही घटेगा, अधिक नहीं घटेगा। अंतर्मुहूर्त तक घटेगा उससे तो कुछ फर्क नहीं पड़नेवाला। परंतु स्थितिबंध बहुत अधिक मात्रा में घट रहा है। *श्रोता: यह बंध के समय हो रहा है ?* बंध हो रहा है न यहां पर ? *श्रोता: तो बंध के समय होता है यह सब ?* स्थितिबंध हर समय चल रहा है। प्रायोग्यलब्धि का काल एक अंतर्मुहूर्त है। उस अंतर्मुहूर्त में हर समय बंध हो रहा है कि नहीं हो रहा है ? सभी कर्मों का बंध तो चल ही रहा है, आयु बंधे या नहीं बंधे वह ऑप्शनल है। उसका काल आया होगा, बंधयोग्य अवसर आया होगा तो बंधेगी भी।

अब यहां पहले ही प्रकृतिबंधापसरण में एक नरकायु का बंध रुक जायेगा। जो अब तक बंध सकती है, यहां से आगे नहीं बंधेगी। ख्याल में आयी न बात ? यहां तक जो प्रकृतियां बंधयोग्य थी इससे आगे एक-एक स्थान पर विशिष्ट प्रकृति का बंध

रुकनेवाला है उसको कहेंगे प्रकृतिबंध का अपसरण होना, प्रकृतिबंधापसरण। *श्रोता: जिस जीव की नरकायु बंध चुकी है तो बाद में क्या ?* जिसकी नरकायु बंध चुकी है उसका भी नरकायु का बंध वहां रुकेगा। क्योंकि दो बार भी आयु बंध सकती है कि नहीं बंध सकती ? उसके लिये रुकेगी वह। आयु बंध के आठ अवसर आते हैं। अभी क्या है ? देव में अलग बात होगी। देव नरकायु और देवायु नहीं बांधेंगे उनके लिये अलग बात करेंगे। यह तो पहले सामान्य से चौतीस स्थान बतायेंगे। कितनी ही प्रकृतियां हैं जो देवों में बंधती ही नहीं, उनके लिये हम बंधापसरण का वह स्थान कहेंगे ही नहीं। अपना थोड़ा कर्मकाण्ड का भी अभ्यास होगा न ! अगर प्रकृतियों के नाम मालूम हो तो यह और ज्यादा क्लिअर हो जायेगा। कोई बात नहीं, अभी सुन तो लें कि प्रकृतिबंधापसरण का अर्थ क्या होता है। पहले जब हमने पढ़ा था तब कुछ नहीं समझते थे। क्या चल रहा है ? स्थितिबंधापसरण क्या है ? प्रकृतिबंधापसरण क्या है ? हम क्या पढ़ रहे हैं ? आप लोग तो बहुत अच्छे से समझ रहे हैं, शांति से समझ रहे हैं।

उसी क्रम से एक बार प्रकृतिबंधापसरण का एक स्थान हुआ उसी क्रम से। उसी क्रम का अर्थ है हर बार ७०० और ८००, ७०० से ८०० सागर का स्थितिबंध घट जायेगा, उतनी कटौती हो जायेगी तब जाकर प्रकृतिबंधापसरण का दूसरा स्थान आयेगा। उतना ही स्थितिबंध और कम हो जायेगा तब जाकर प्रकृतिबंधापसरण का तीसरा स्थान आयेगा। तो कहते हैं उसी क्रम से **उससे भी** यानी जितनी स्थिति अभी बंध रही है उससे भी **पृथक्त्व सौ सागर घटने पर दूसरा प्रकृतिबंधापसरण स्थान होता है।** यानी उस स्थान पर दूसरी जो प्रकृति यहां तक बंध सकती थी अब इससे आगे नहीं बंधेगी। **इसतरह इसी क्रम से** इसी क्रम से यानी हर बार इतनी-इतनी बार स्थितिबंधापसरण होता है तब जाकर एक-एक प्रकृति का या ग्रुप ऑफ़ प्रकृतियों का बंध यहां रुकेगा। वे कौनसे ग्रुप्स हैं ? उस एक-एक स्थान में कौन-कौनसी प्रकृतियों का बंध रुकता है वह हम क्रम से देखेंगे। इसी क्रम से **इतना-इतना स्थितिबंध घटने पर प्रकृतिबंधापसरण का एक-एक स्थान होता है।** यह वाक्य पूरा करने के लिये आवश्यक जो शब्द मूल पुस्तक में नहीं थे वह मैंने ब्रैकेट में डाले हैं। इसलिये उनको तिरछे-इटैलिक लेटर्स में लिखा है। **ऐसे प्रकृतिबंधापसरण के चौतीस स्थान होते हैं।**

यह प्रकृतिबंधापसरण किसको कहना यह बात सबके ख्याल में आयी ? उन

प्रकृतियों के नाम लेकर देखेंगे अभी हम, कौन-कौनसी प्रकृतियां बंधने से रुकती हैं। ख्याल में आती है बात ? नहीं आयी ? स्थितिबंध घटते चले जाता है यह बात ख्याल में आयी ? अब प्रकृतियों का बंध जो हम देखते हैं। मिथ्यादृष्टि जीव को अँट अ टाइम कितनी प्रकृतियों का बंध हो सकता है ? ११७ तो किसीके एकसाथ बंधती ही नहीं है। जो कोई उसके बंधयोग्य प्रकृतियां हैं; अलग-अलग जीव इन प्रकृतियों का बंध कर सकते हैं। उनमें से यहां से लेकर इतनी-इतनी प्रकृतियों का बंध नहीं होगा, किसीके भी नहीं होगा यह बात यहां चल रही है। उसको क्या कहेंगे ? प्रकृतिबंध का रुकना। पर्टिक्युलर प्रकृतियां, विशिष्ट प्रकृतियां यहां से आगे नहीं बंधेगी उसकी बात यहां चल रही है। यह तो हमने दो लाइन पढ़ी थी। देखो,

अब चौतीस स्थानों में क्रम से कौनसी प्रकृतियों का व्युच्छेद होता है। बंध व्युच्छेद किसको कहा है ? परंतु जब हम बंधव्युच्छित्ति कहते हैं तो उसका अर्थ होता है उस गुणस्थान तक बंधती है, बाद में नहीं बंधती है। भले ही यहां इसको व्युच्छेद कहा है, परंतु इसमें से मनुष्यायु, देवायु वगैरह कुछ प्रकृतियां ऐसी हैं सम्यग्दर्शन होने के पश्चात् - उपशम सम्यक्त्व के बाद उनका बंध फिर होगा। अभी कुछ काल के लिये आयु का - चारों ही आयु का बंध यहां क्रम से रुकेगा। आयु का बंध यहां नहीं होगा और ना ही आगे करणलब्धि में होगा और ना ही उपशम सम्यक्त्व के काल में होगा, बाद में होगा। ये कुछ प्रकृतियां अभी नहीं बंध रही हैं इसका बस इतना ही अर्थ लेना।

अब हम पृष्ठ ४५ पर टीका पढ़ेंगे- **पहला नरकायु का व्युच्छित्ति स्थान है।** इसका अर्थ ७००-८०० सागर जितना स्थितिबंध घट गया है। यहां आकर अभी नरकायु का बंध किसीको नहीं होगा। अब तक हो सकता था, अब नहीं होगा। **यहां से लेकर उपशम सम्यक्त्व तक नरकायु का बंध नहीं होता, ऐसे ही आगे जानना।** बाद में भी नहीं होगा क्योंकि नरकायु तो पहले गुणस्थान में ही बंधती है, आगे बंधती ही नहीं है। परंतु अन्य जो-जो प्रकृतियां बाद में भी बंध सकती हैं उन सबके लिये नियम क्या है ? इन प्रकृतियों का बंध रुक गया है, उपशम सम्यक्त्व होने तक इनका बंध नहीं होगा। इनमें से कुछ प्रकृतियों का बंध आगे भी नहीं होगा। परंतु किन्हीं-किन्हीं प्रकृतियों का होगा भी। उन प्रकृतियों के जब नाम आयेंगे तब उसकी चर्चा करेंगे।

पहला स्थान कौनसा देखा ? श्रोता: नरकायु का। नरकायु का। अब हम चौतीस स्थान देखेंगे और हर दो स्थानों के बीच में स्थितिबंध कितना घटता है ? श्रोता: ७०० से ८०० सागर। ७०० से ८०० सागर। ख्याल में आयी बात ? यह तो बहुत ईझी है, कुछ नहीं है इसमें। आप तो कितनी कठिन-कठिन बातें सीखते हैं - लौकिक में क्या-क्या पढ़ते हैं। यह तो ऑर्डिनरि है। श्रोता: एक समान स्थितिबंध के लिये एक अंतर्मुहूर्त लगता है ? हां, एक समान स्थितिबंध के लिये एक अंतर्मुहूर्त। श्रोता: और ये बातें किसमें चल रही हैं ? पूरे प्रायोग्यलब्धि में ऐसे एक बार प्रकृतिबंध का अपसरण होने के लिये ७०० से ८०० सागर। उसका हमने क्या हिसाब लगाया ? ४० कोड़ाकोड़ी मल्टिप्लाइड बाय ७००। इतने-इतने अंतर्मुहूर्त हुये ही हुये वहां और ये सारे अंतर्मुहूर्त किसमें ? प्रकृतिबंधापसरण एक बार हुआ उतने काल में हुये। ऐसे चौतीस प्रकृतिबंधापसरण; उसको मल्टिप्लाइड बाय चौतीस और ये सारे प्रायोग्यलब्धि के एक अंतर्मुहूर्त में हैं और ऐसी पांचों लब्धि मिलकर भी काल एक अंतर्मुहूर्त है। अंतर्मुहूर्त के भेद कितने और वह अंतर्मुहूर्त कितना सूक्ष्म होगा ! अपने ख्याल में भी नहीं आयेगा, इतना छोटा होता है। हम सेकंडों में और मिनटों में गिनते हैं; अंतर्मुहूर्तों को अपनी भाषा में, सेकंडों में ट्रान्स्फर करने की कोशिश मत करना। ऐसे ही रहने देना। यह बहुत सूक्ष्म बात है।

पहला स्थान हुआ नरकायु का। आप पेन्सिल से अपनी पुस्तक में नंबर डाल सकते हैं। फिर दूसरा तिर्यचायु का, तीसरा मनुष्यायु का और चौथा देवायु का। यहां यानी प्रथमोपशम सम्यक्त्व में आयुबंध का अभाव है। मेरा प्रश्न है वेदक सम्यक्त्व में आयुबंध का अभाव है कि नहीं है ? वेदक सम्यग्दृष्टि आयु का बंध करेगा कि नहीं करेगा ? श्रोता: करेगा। हां, करेगा। क्षायिक सम्यग्दृष्टि ? श्रोता: नहीं करेगा। नहीं करेगा ? श्रोता: करेगा। श्रोता: चौथे गुणस्थान में क्षायिक सम्यग्दृष्टि हैं ? चौथे गुणस्थान में क्षायिक सम्यग्दृष्टि है, वह देवायु का बंध करेगा कि नहीं करेगा ? और क्षायिक सम्यग्दृष्टि देव मनुष्यायु का बंध करेगा कि नहीं करेगा ? अब पहले नरक में जो हमारे श्रेणिक राजा हैं, हमारे होनेवाले तीर्थंकर, वे मनुष्यायु का बंध करेंगे कि नहीं करेंगे ? नहीं तो यहां कैसे आयेंगे ? ख्याल में आयी बात ? वेदक सम्यक्त्व में, क्षायिक सम्यक्त्व में आयु का बंध होगा। कौनसी गति में हैं, कौनसी आयु का बंध करेगा उसकी बात अभी छोड़ दो। उपशम सम्यक्त्व के काल में आयु का बंध नहीं होता, ना

ही मरण होता है।

श्रोता: जब प्रायोग्यलब्धि से बात चली तो प्रायोग्यलब्धि में भी इसका मरण नहीं होता है ? मरण की बात नहीं है, मरण तो हो सकता है, प्रायोग्यलब्धि से आयु का बंध रुक गया है; करणलब्धि में भी उसका बंध नहीं होगा और उपशम सम्यक्त्व के काल में भी नहीं; यह सब मिलकर भी एक अंतर्मुहूर्त काल ही है। पांच लब्धि और उपशम सम्यक्त्व का मिलकर भी पूरा एक अंतर्मुहूर्त ही है और वह भी सबसे बड़ा अंतर्मुहूर्त नहीं है। यह पढ़ते हैं न तब जाकर केवलज्ञानी की महत्ता आती है कि केवलज्ञान क्या होगा ! ये तो बहुत ऑर्डिनरि चीजें हैं। श्रुतज्ञानियों ने जानकर श्रुतज्ञानियों को समझाया है। केवलज्ञानी ने कितना जाना है ? करणानुयोग पढ़ते हैं तो सर्वज्ञ की सच्ची महिमा आती है। सर्वज्ञ का स्वरूप जानने की हमारी कर्पेसिटि है न ! यह कठिन- बठिन कुछ नहीं है। यह हम जान सकते हैं, हम जानें इसलिये पं. टोडरमलजी साहब ने इतनी मेहनत की है। इतना सब सरल करके समझाया है। हमने प्रकृतिबंधापसरण के चार स्थान देखे। उसमें चार आयु देखी- नरकायु, तिर्यचायु, मनुष्यायु और देवायु। यहां इनका बंध रुक गया है।

श्रोता: उपशम सम्यक्त्व में काल छोटा है इसलिये आयु का बंध नहीं है ? उपशम सम्यक्त्व में ऐसी विशुद्धि है कि वहां आयु का बंध नहीं होता। ऐसा नहीं है कि वहां काल छोटा है इसलिये आयु का बंध नहीं होता। वेदक सम्यक्त्व का भी जघन्य काल अंतर्मुहूर्त हो सकता है। अरे, सासादन गुणस्थान का काल कितना है ? एक समय से लेकर छह आवली। उसमें भी आयु का बंध हो सकता है। सासादन का काल कम है, उपशम सम्यक्त्व के काल में से कट करके वह निकला है। उसमें भी आयु का बंध हो सकता है तो अन्य की क्या बात है ? ख्याल में आयी बात ? तो काल कम है यह उसका कारण नहीं है। आयु के बंध के योग्य परिणाम कहां होते हैं, कहां नहीं होते हैं उसके सारे नियम होते हैं। उसके अनुसार यहां उसका बंध नहीं हो रहा है बस इतनी बात है। ये चार स्थान हुये। अभी बाकी बातें मत निकालना। क्या प्रश्न है ?

श्रोता: उपशम सम्यक्त्व में देवों का विहार ? उपशम सम्यक्त्व में देवों का विहार है ऐसा बताया है और उपशम सम्यक्त्व के काल में हजारों बार छठा-सातवां

गुणस्थान भी होता है उसकी चर्चा जब उपशम सम्यक्त्व प्राप्त होगा तब करेंगे न ! अभी आप प्रायोग्यलब्धि से आगे ही नहीं बढ़ने देते। *श्रोता: बीचमें केश्वन पूछना स्टॉप कर देना चाहिये।* बिलकुल स्टॉप, अब यहां उसके लिये भी उसका अपसरण कर दो। प्रश्न पूछने का अपसरण होगा जब तक सम्यक्त्व नहीं प्राप्त होगा; अभी कोई प्रश्न नहीं पूछा जाये और जो पूछना चाहते हैं वे लिखितरूप से यहां रखें। यथासमय उन सबका निराकरण किया जायेगा। ऐसा नहीं कि किसीके प्रश्न का उत्तर नहीं मिलेगा। बिलकुल मिलेगा। परंतु यह क्या है ? जिसको हम मराठी में कहते हैं- फाटे फुटतात त्याला ! हां, ट्रॅक बदल जाती है।

अभी तक हमने चार स्थान देखे। **पांचवां नरकगति और नारकानुपूर्वी** या उसको कहते हैं नरकगत्यानुपूर्वी। ये नामकर्म के नाम हैं। नरकगति का बंध यहां तक हो सकता है, इससे आगे नहीं होगा। छठवें स्थान पर अभी यहां एक शब्द है संयोगरूप यानी ऐसी ग्रुप ऑफ़ प्रकृतियां यहां बंधेगी उससे आगे नहीं बंधेगी। परंतु, उसमें से कुछ प्रकृतियां आगे भी बंधेगी। परंतु ऐसा संयोगरूप अंट अ टाइम जो बंधनेवाली है यह कॉम्बिनेशन आगे नहीं बंधेगा। कॉम्बिनेशन यह शब्द यथार्थ है। संयोगरूप यानी क्या है ? अभी जो प्रकृतियां बतायेंगे यह कॉम्बिनेशन इससे आगे नहीं बंधेगा। इसमें से अलग-अलग प्रकृतियां दूसरे कॉम्बिनेशन के साथ बंध सकती हैं। देखो हम पढ़ेंगे - **छठवां संयोगरूप** स्थान कौनसा है ? **सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण का है।** एकेन्द्रियों संबंधी बादर या सूक्ष्म बंधता है उसमें से सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण नामकर्म यह कॉम्बिनेशन यहां तक बंधेगा, इससे आगे नहीं बंधेगा। यह छठवां स्थान हुआ। **यहां संयोगरूप कहने से तीनों का मिलाप युक्त तो यहां तक ही बंध है।** यानी तीनों का कॉम्बिनेशनवाला बंध यहां तक ही है। अपर्याप्त नामकर्म इससे आगे भी बंधेगा, सूक्ष्म का पर्याप्तवाला भी बंधेगा, बादर का अपर्याप्तवाला भी बंधेगा। आगे चलकर रुकेगा। अभी कौनसा कॉम्बिनेशन रुक गया है ? सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण। हां, यहां लिखा है **परंतु इन तीनों में से कोई प्रकृति बदलने से यथासंभव इन प्रकृतियों में से किसी प्रकृति का बंध आगे भी होता है, यह संयोगरूप कहने का अभिप्राय जानना।** यह अभिप्राय की बात समझ में आयी ? यह कॉम्बिनेशन यहां तक ही होगा।

आगे भी संयोगरूप कहने का इसीप्रकार अर्थ समझना। किसी-किसी स्थानपर एक से ज्यादा प्रकृतियों का ग्रुप बतायेंगे तो वहां पर संयोगरूप स्थान समझना। अब तक हमने कितने देखे ? छह देखे। **सातवां संयोगरूप सूक्ष्म, अपर्याप्त और प्रत्येक का है।** छठे में हमने साधारणवाला देखा था। यह सूक्ष्म, अपर्याप्त और प्रत्येकवाला है। **आठवां संयोगरूप बादर, अपर्याप्त और साधारण का है।** पहले दोनों सूक्ष्म के लिये - साधारण और प्रत्येक अपर्याप्त के। यहां दोनों बादर के लिये हैं। **नौवां संयोगरूप बादर, अपर्याप्त और प्रत्येक का है।** हमने सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण; सूक्ष्म, अपर्याप्त, प्रत्येक; बादर, अपर्याप्त साधारण; बादर अपर्याप्त प्रत्येक; ऐसे चार देखे न ! हां, पहले हमने पांच देखे थे, फिर ये चार देखे। यहां एकेन्द्रिय अपर्याप्तों के हो गये न ? सूक्ष्म के भी दो हुये और बादर के भी दो हुये।

अभी हम द्वीन्द्रिय के लेंगे, त्रीन्द्रिय के लेंगे। हर एक के साथ अपर्याप्त शब्द लगायेंगे। **दसवां संयोगरूप द्वीन्द्रिय, अपर्याप्त का है। ग्यारहवां संयोगरूप त्रीन्द्रिय, अपर्याप्त का है। बारहवां संयोगरूप चतुरिन्द्रिय, अपर्याप्त का है। तेरहवां संयोगरूप असंज्ञी पंचेन्द्रिय, अपर्याप्त का है। चौदहवां संयोगरूप संज्ञी पंचेन्द्रिय, अपर्याप्त का है।** यह अपर्याप्त संबंधी कितने देखे ? देखो, हमने कहां से शुरू किया था ? छठे से शुरू किया था। छठा, सातवां, आठवां; फिर कहां तक ? चौदहवें तक। ये सारे अपर्याप्त के हुये। एकेन्द्रिय के सूक्ष्म के दो, बादर के दो; द्वीन्द्रिय का एक; त्रीन्द्रिय का एक; चतुरिन्द्रिय का एक; असंज्ञी का एक और संज्ञी का एक - ये नौ स्थान अपर्याप्त संबंधी हुये। यह याद रखने के लिये आसान होगा। पहले चार आयु के चार स्थान नरकायु, तिर्यचायु, मनुष्यायु, देवायु। फिर नरकगति, नरकानुपूर्वी पांचवां स्थान हुआ। छठे से लेकर एकेन्द्रिय के सूक्ष्म के दो, बादर के दो। फिर द्वीन्द्रियादि के संज्ञी पंचेन्द्रिय तक के सभी के अपर्याप्त के साथ संयोगरूप स्थान देखे। अभी तक हमारे चौदह स्थान हुये। हम आपको याद करने के लिये नहीं बता रहे, फिर भी ट्रिक बता रहे हैं कैसे याद रख सकते हैं। तो अपर्याप्त के हमने नौ देखे।

अब आगे बढ़ेंगे। अभी पर्याप्त के देखेंगे यानी अपर्याप्त नामकर्म यहां तक ही बंधेगा। अभी इससे आगे अपर्याप्त नहीं बंधेगा, परंतु इसके आगे पर्याप्त के साथ एकेन्द्रिय का बंध होगा, सूक्ष्म का भी होगा, बादर का भी होगा वह बतायेंगे अभी।

पंद्रहवां संयोगरूप सूक्ष्म, पर्याप्त, साधारण का है। सोलहवां संयोगरूप सूक्ष्म, पर्याप्त, प्रत्येक का है। सत्रहवां संयोगरूप बादर, पर्याप्त, साधारण का है। अठारहवां संयोगरूप बादर, पर्याप्त, प्रत्येक का है। परंतु यह एकेन्द्रिय के संबंध में अंतिम बंध है इसलिये एकेन्द्रिय, स्थावर और आतप को यहीं पर ले लिया। अठारहवें स्थान पर बादर, पर्याप्त, प्रत्येक को तो लिया ही लिया, परंतु एकेन्द्रिय संबंधी बंध अभी इससे आगे नहीं होगा। इसलिये एकेन्द्रिय, आतप और स्थावर को भी यहां तक लिया। यह अठारहवां स्थान हुआ।

उन्नीसवां संयोगरूप द्वीन्द्रिय, पर्याप्त का है। बीसवां संयोगरूप त्रीन्द्रिय, पर्याप्त का है। इक्कीसवां चतुरिन्द्रिय, पर्याप्त का है। और बाइसवां असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त का है। देखो, संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त का बंध नहीं रुकेगा क्योंकि कोई न कोई गति, कोई न कोई जाति तो बंधती ही रहेगी। सर्वथा बंध का अभाव तो नहीं होनेवाला है। पंचेन्द्रिय संबंधी पर्याप्त का बंध यहां से आगे भी चलता रहेगा। इसलिये अपर्याप्त में संज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त को भी हमने रुकनेवाले बंध में जोड़ दिया था, परंतु पर्याप्तों में असंज्ञी तक रुक गये। ये कितने हो गये ? अपने बाइस स्थान हो गये। चौदह तक तो हमने अपर्याप्त देखे थे, पंद्रह से बाइस तक हमने पर्याप्त देख लिये। अभी आगे बढ़ते हैं। तेइसवां संयोगरूप तिर्यचगति, तिर्यचानुपूर्वी, उद्योत का है। तिर्यचगति का बंध यहां तक ही होगा, इससे आगे नहीं होगा। चौबीसवां नीचगोत्र का है। नीचगोत्र का बंध यहां तक ही है, इससे आगे नहीं होगा। पच्चीसवां संयोगरूप अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय का है। हमने देखा न, सम्यग्दृष्टि को जो आगे चलकर नहीं बंधती हैं; दूसरे गुणस्थान में ही बंधव्युच्छिति है ऐसी कितनी ही प्रकृतियां यहां बंधना रुकती हैं। अभी से बंध रुक गया है तो सम्यग्दृष्टि को आगे भी बंधेगी नहीं।

अभी देखो छब्बीसवां- इसमें भी कैसे याद करना ? क्योंकि एक संस्थान, एक संहनन एक साथ लिया। अभी छठे नंबर का संहनन और छठे नंबर का संस्थान लेना- छब्बीसवां हुंडकसंस्थान और असंप्राप्तासृपाटिकासंहनन का है। सत्ताइसवां नपुंसकवेद का है। इसका बंध यहां तक ही होता है आगे नहीं होगा। अट्ठाइसवां वामनसंस्थान और कीलितसंहनन पांच नंबर का है। उलटे क्रम से जाना। नीचे के

संहनन और संस्थान अधिक अप्रशस्त कहेंगे। हम ऊपर-ऊपर चले जायेंगे। **उनतीसवां कुब्जक संस्थान, अर्धनाराचसंहनन का है।** यानी चौथे नंबर का संहनन और संस्थान। **तीसवां स्त्रीवेद का है।** **इकतीसवां स्वातिसंस्थान, नाराचसंहनन का है।** **बत्तीसवां न्यग्रोधपरिमंडलसंस्थान, वज्रनाराचसंहनन का है।** यानी एक संस्थान, एक संहनन - यह दो नंबर का आया। **तैंतीसवां संयोगरूप मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी, औदारिक-औदारिकअंगोपांग, वज्रवृषभनाराच संहनन का है।**

इससे आगे मनुष्य और तिर्यच जीव अब मनुष्यगति को नहीं बांधेंगे। सम्यक्त्व होने पर तो देवगति को ही बांधेंगे। इससे आगे भी वे देवगति बांधेंगे क्योंकि कोई न कोई गति तो बांधेगी ही बांधेगी। परंतु जो देव सम्यक्त्व प्राप्त करने जानेवाले हैं वे मनुष्यगति को बांधेंगे। जो नारकी प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त करेंगे वे मनुष्यगति को बांधेंगे। उनके लिये यह बंधस्थान रुकेगा नहीं। ख्याल में आती है बात ? देव और नारकी दो ही गति बांध सकते हैं या तो तिर्यचगति या मनुष्यगति। उनके लिये तिर्यचगति का बंध रुक गया, परंतु उनके लिये मनुष्यगति का बंध नहीं रुकेगा। वे बांधते रहेंगे यानी यह जो स्थान बताये हैं वे विशेषतया मनुष्यों और तिर्यचों की अपेक्षा हैं और अन्य गतियों में जो होते हैं वे तो अलग से बताते हैं वहां पर।

चौतीसवां संयोगरूप अस्थिर, अशुभ, अयशस्कीर्ति, अरति, शोक, असातावेदनीय इनका बंधव्युच्छिति स्थान है। अब ये प्रकृतियां ऐसी हैं जो छठे गुणस्थानवाले को भी बंधती हैं, परंतु अभी इनका बंध रुक गया है। कब तक रुकेगा ? उपशम सम्यक्त्व प्राप्त होने तक रुकेगा। बाद में इनका बंध छठे गुणस्थान तक होगा। हां, ये छठे गुणस्थान में बंधव्युच्छिति होनेवाली प्रकृतियां हैं। परंतु यह कैसी हैं सभी ? अस्थिर, अशुभ, असातावेदनीय वगैरह ये सब अशुभ प्रकृतियां हैं। अभी यहां विशुद्धि इतनी बढ़ रही है कि इनका बंध कुछ काल के लिये रुका है। उपशम सम्यक्त्व प्राप्त होने पर वह विशुद्धि बाद में कम हो जाती है तब फिर इनका बंध होगा। कुछ प्रकृतियों का बंध होगा, जो बंधने से रुकी हैं उन सबका बंध चालू नहीं होनेवाला। दो आयु का रहेगा- मनुष्यायु या देवायु का बंध होगा; मनुष्य देवायु का बंध करेंगे, देव मनुष्यायु का बंध करेंगे। वेदक सम्यक्त्व के काल में वे बाद में बंधना शुरू हो जायेगी। ये चौतीसवें स्थान में जो छह प्रकृतियां बतायीं वे भी बाद में बंधेंगी। यहां कहीं भी

मिथ्यात्व का नाम नहीं आया है, यहां कहीं भी अनंतानुबंधी का नाम नहीं आया है क्योंकि अभी मिथ्यादृष्टि, अभव्यों को भी यह प्रकृतिबंधापसरण हो रहा है। मिथ्यात्व का बंध तो अनिवृत्तिकरण के अंतिम समय तक होगा।

श्रोता: ये चौंतीस स्थान सभी अघातिकर्म है? घातिकर्म जो हैं, ज्ञानावरण पांचों दसवें गुणस्थान तक बंधती हैं और वे ध्रुवबंधी हैं। अब अपने यहां कर्मकाण्ड का शिबिर दो बार चला है। उसमें ये सभी बातें आयी हैं। अभी उसको मैं यहां रिपीट करूं तो अपनी प्रायोग्यलब्धि रह जायेगी। ज्ञानावरण का बंध पहले गुणस्थान से अनादि से हो रहा है, पांचों ही ज्ञानावरण का बंध अनादि से हो रहा है- मिथ्यादृष्टि से लेकर दसवें गुणस्थान तक हर समय होता है। वे ध्रुवबंधी प्रकृतियां हैं। दर्शनावरण की भी नौ प्रकृतियां ध्रुवबंधी हैं। सम्यक्त्व होने पर स्थानगृद्धि आदि प्रकृतियां बंधने से रुकती हैं। उसकी चर्चा उपशम सम्यक्त्व के काल में करेंगे।

उपशम सम्यक्त्व प्राप्त होते ही मिथ्यात्व, अनंतानुबंधी, स्थानगृद्धि आदि तीन निद्रा वगैरह कितनी ही प्रकृतियां बंधने से रुकेंगी। उसकी चर्चा हम आगे चलकर करेंगे, अभी प्रायोग्यलब्धि में क्या बंधता है, क्या नहीं उसकी चर्चा है। जाग्रत अवस्था कही यानी निद्रा का उदय नहीं है उसकी बात योग्यता के बारे में की थी। स्थानगृद्धि आदि तीन निद्रा का उदय नहीं है इतनी बात हमने देखी थी। यहां किसका बंध होता है, किसका बंध रुकता है उसकी चर्चा चलेगी। देखो, हमें तीन-तीन बातें देखनी हैं। सत्त्व में क्या पड़ा है, उदय में क्या आ रहा है, बंध किसका चल रहा है। हां, तो जहां जिसकी बात होगी उसकी अपनी चर्चा चलेगी। ये चौंतीसों स्थान भव्य और अभव्य के भी समान होंगे।

देखो, हम दुबारा लेते हैं। प्रायोग्यलब्धि में आते ही उसने एक स्थितिकांडकघात किया और आयु बिना सातों कर्मों की स्थिति अंतःकोड़ाकोड़ी सागर हो गयी। यह क्या हुआ ? स्थितिकांडकघात। स्थितिसत्त्व घटा। अनुभागकांडकघात हमेशा अप्रशस्त कर्मों में होता है; प्रशस्त कर्मों का अनुभाग बढ़ता है, उसका घात होने का सवाल नहीं है। अप्रशस्त कर्मों का अनुभाग द्विस्थानीय रह जाता है- घातिकर्मों में लता, दारुरूप और अघाति के अप्रशस्तों में निंब, कांजीररूप। यह सत्तावाले अनुभाग की बात हुयी। अब यहां और क्या होता है ? स्थितिबंध घटते चला जाता है। यहां जो नया स्थितिबंध

होता है वह अंतःकोड़ाकोड़ी सागर होता ही होता है, परंतु हर अंतर्मुहूर्त में पल्य के संख्यातवें भाग प्रमाण स्थिति घट जाती है और उतना नया बंध होता है। अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्त में नया-नया बंध ऐसे घटते चला जाता है उसको कहते हैं स्थितिबंधापसरण - स्थितिबंध का घटते चले जाना। ऐसे ७०० से ८०० सागर प्रमाण स्थितिबंध घटता है तब जाकर एक-एक बार प्रकृतिबंधापसरण होता है।

प्रकृतिबंधापसरण के ऐसे चौतीस स्थान हैं। पहले नरकायु, फिर तिर्यचायु, फिर मनुष्यायु, देवायु ये चार स्थान हुये। पांचवें स्थान पर नरकगति और नरकगत्यानुपूर्वी। उसके बाद अपर्याप्त संबंधी छठे से लेकर चौदहवें तक के स्थान हमने देखे थे; हमने सूक्ष्म, अपर्याप्त साधारण से लेकर संज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त तक के सब चौदह तक स्थान देखे थे। उसके बाद पर्याप्तों के देखे। हमने एकेन्द्रिय के भी देखे- सूक्ष्म के दो प्रकार और बादर के दो प्रकार। अठारहवें स्थान पर एकेन्द्रिय का बंध रुकता है। वहीं पर बादर, पर्याप्त, प्रत्येक के साथ एकेन्द्रिय, स्थावर, आतप को भी लेना। वहां अठारहवें स्थान पर छह प्रकृतियों का बंधापसरण हो जायेगा। फिर द्वीन्द्रिय पर्याप्त, त्रीन्द्रिय पर्याप्त, चतुरिन्द्रिय पर्याप्त, असंज्ञी पर्याप्त तक आ गये। यहां तक आ गये न। कितने हुये ? कुल बाइस हुये।

उसके बाद तिर्यचगति, तिर्यचगत्यानुपूर्वी और उद्योत का तेइसवां स्थान। फिर चौबीसवें में नीचगोत्र लिया। पच्चीसवें में अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय को ले लिया। छब्बीसवें में संस्थान और संहनन का कॉम्बिनेशन छठा-छठा लेना। सत्ताईसवें में नपुंसकवेद लेना। अट्ठाइसवें में फिर पांचवें नंबर का संहनन और संस्थान लिया। उनतीसवें में चौथे नंबर का संस्थान और संहनन लिया। तीसवें में स्त्रीवेद को लिया। इकतीसवें में तीसरे नंबर का संस्थान, संहनन लिया। बत्तीसवें में दूसरे नंबर का संस्थान, संहनन लिया। फिर तैंतीसवें में मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, औदारिकशरीर, औदारिकअंगोपांग और वज्रवृषभनाराचसंहनन का भी बंध यहां रुकेगा। किसके लिये ? मनुष्यों और तिर्यचों के लिये। फिर चौतीसवें स्थान में जो छह प्रकृतियां हैं; वे छठे गुणस्थान में बंधव्युच्छित्ति होनेवाली हैं। अस्थिर, अशुभ, असातावेदनीय, अयशस्कीर्ति, अरति और शोक ये छह प्रकृतियां यहां से बंधना रुकेंगी। इसको कहेंगे प्रकृतिबंधापसरण के चौतीस स्थान। यह भव्य के भी हो सकते हैं। अभव्य के भी होते

हैं जब वह प्रायोग्यलब्धि में आता है परंतु वह आगे नहीं बढ़ेगा। उसके आत्मसन्मुख परिणाम नहीं होते हैं। बस शास्त्र स्वाध्याय सुना और चले गये।

ऐसा ही होगा। हां, तो क्या हुआ ? अंतर्मुहूर्त तक बंधना रुके तो क्या हुआ ? पापबंध रुक गया, पुण्यबंध तो हो ही रहा है और मिथ्यात्व वह मेन कल्पित है वह तो बंध ही रहा है; उदय भी है और उसका बंध भी है। प्रायोग्यलब्धि अंतर्मुहूर्त से ज्यादा रहेगी नहीं। कोई भी लब्धि अंतर्मुहूर्त से ज्यादा काल नहीं टिकती। अंतर्मुहूर्त तक उसने पुण्य बांधा, बाद में पाप बंधना तो चालू हो ही जायेगा। उसका बंध कायम के लिये तो रुका नहीं है। तो उससे क्या मिला ? कुछ नहीं होगा। यानी यह कोई उसका मोक्षमार्ग शुरू होगा ? सम्यक्त्व होनेवाले के यह स्थिति बनती है। उसकी योग्यता इतनी हो जाती है कि अभी आगे चलकर वह करणलब्धि में प्रवेश करता है। विशुद्धि के काल में हमें अंतरंग से ऐसे आत्मा की या पारिणामिक भाव की बहुत महत्ता आने लगती है। परंतु वह विशुद्धि खत्म हो जाती है और हम अपने काम-धंधे पर चले जाते हैं। वह विशुद्धि वहीं खलास हो जाती है। जब अंदर से ऐसे बहुत भाव उत्पन्न हो रहे हो तो बैठ जाओ न, उसमें क्या ! वहीं शास्त्र सामने खुला है, क्या है उसमें ? अंतरंग में स्थिर हो जाओ ! और क्या करना है ? कुछ करने का तो है ही नहीं यहां पर। हम करने के नाम पर और कुछ करना चाहते हैं। अभी क्या करें ! उसकी तो चर्चा रोज के स्वाध्याय में हम करते ही हैं।

अपना विषय कुछ अलग चल रहा है और हम द्रव्यानुयोग की चर्चा करने लग जायेंगे तो आप कहेंगे यह अपना विषय ऐसा ही रह जायेगा। मुख्य तो वह है ही, तत्त्व पचाना ही चाहिये और तत्त्वविचार द्वारा तत्त्वनिर्णय में लग जाये। द्रव्यानुयोग के सभी सिद्धान्तों को सर्वतोपरि रखकर करणानुयोग के अभ्यास से तो हमें, अपने सिद्धान्तों को दृढ़ता मिलती है। एक-एक सिद्धान्त जो हमने सीखे हैं, उनके लिये इतना बल मिलता है क्योंकि सर्वज्ञ की जो सिद्धि है केवलज्ञान क्या हो सकता है या सर्वज्ञता का जो भावभासन है वह इसको पढ़ेंगे तो और ज्यादा हो जाता है।

प्रायोग्यलब्धि में अभी देवों में क्या होता है ? नरकों में क्या होता है ? उसकी बात यहां बहुत विस्तार से समझायी है। हम सातवें नरक की बात करेंगे बाकी चर्चा हम बाद में करेंगे। सातवें नरक में ऐसा नियम है कि सातवें नरकवाला जीव मरकर

कहां चला जाता है मालूम है ? *श्रोता: तिर्यच में।* संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यच में ही जाता है नियम से। नारकी मरकर संज्ञी पंचेन्द्रिय में ही जाता है। देव एकेन्द्रिय में जा सकते हैं; भवनत्रिक के और सौधर्म-ईशानवाले देव मरकर एकेन्द्रिय में जा सकते हैं परंतु नारकी कोई एकेन्द्रिय में नहीं जाता। नारकी मरकर तो संज्ञी पंचेन्द्रिय ही होगा। छठे नरक तक के नारकी मरकर मनुष्य होंगे या तिर्यच होंगे, परंतु सातवें नरकवाला मरकर नियम से तिर्यच ही होता है। अब सातवें नरक के नारकी यदि वे सम्यग्दृष्टि नहीं हो तो मात्र तिर्यचगति का ही बंध करते हैं। छठे नरक तक के नारकी मिथ्यादृष्टि हो तो भी अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्त में तिर्यचगति; गति की बात है आयु की नहीं; तिर्यचगति और मनुष्यगति का बंध ऑल्टरनेटली करते रहते हैं। सातवें नरक की क्या विशेषता है ? जब तक सम्यक्त्व नहीं होता तो तिर्यचगति का ही बंध करते रहेंगे। कब तक ? अनिवृत्तिकरण के अंत समय तक।

अब यह जो तिर्यचगति का स्थान हमने तेइसवें में संयोगरूप देखा वह स्थान सातवें नरक के नारकियों को नहीं होगा। अन्य नारकियों को होगा - छठे नरक तक के प्रायोग्यलब्धिवाले नारकियों के लिये वह स्थान होगा, सातवें नरकवाले को नहीं होगा। वे मिथ्यात्व के अंतिम समय तक इसका भी बंध करेंगे। जब सम्यक्त्व प्राप्त होगा तब वे मनुष्यगति का बंध करेंगे। भले ३३ सागर में पहले अंतर्मुहूर्त के बाद सम्यक्त्व प्राप्त किया। हो सकता है ३३ सागर तक सम्यग्दृष्टि रहा। जब मरना है तो उसके अंतर्मुहूर्त पहले नियम से मिथ्यात्व में जायेंगे। वहां मिथ्यात्व में तिर्यचायु का बंध होगा। वह भी हिंस्र पशु संबंधी होगा और फिर बाद में उसका मरण होगा। मरकर वह तिर्यच में ही जायेगा। जो करीबन ३३ सागर तक सम्यग्दृष्टि रहा, वहां से मरकर जिस पर्याय में जायेगा वहां संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यच होते हुये भी सम्यक्त्व प्राप्त नहीं कर सकता। ऐसी बहुत सारी बातें हैं। उसकी चर्चा हम करेंगे। अभी तो अपना समय पूरा हुआ है।

बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

१२. प्रायोग्यलब्धि – प्रकृतिबंधापसरण, बंध, उदय

आचार्य श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती ने इस लब्धिसार ग्रंथ की रचना की है। उसीके आधार से पं. टोडरमलजी ने सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका लब्धिसार-क्षपणासार ग्रंथ द्रुंढारी भाषा में लिखा है और उसका हिंदी अनुवाद हम यहां देख रहे हैं।

देखो, पं. टोडरमलजी ने गोम्मटसार के जीवकाण्ड, कर्मकाण्ड और लब्धिसार-क्षपणासार को तीनों को मिलकर सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नाम दिया है। हर एक के आगे सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका जीवकाण्ड, सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका कर्मकाण्ड और सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका लब्धिसार-क्षपणासार; पूरा तीनों का मिलकर एक नाम है सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका। क्योंकि विषय बहुतांश वही है। पहले जीवकाण्ड में जीव की बीस प्ररूपणा - गुणस्थान, मार्गणास्थान आदि की चर्चा है। फिर कर्मकाण्ड में कर्मों की विस्तृत चर्चा है, इनकी चर्चा समझकर फिर लब्धिसार में जीवों की और कर्मों की कैसी-कैसी अवस्थाएँ होती हैं इसका वर्णन है। जब प्रथमोपशम सम्यक्त्व होता है, जब क्षायिक सम्यक्त्व होता है, आगे चलकर जब देशचारित्र, सकलचारित्र होता है और श्रेणी चढ़ी जाती है; तो कर्मों की और जीव की क्या-क्या अवस्थाएँ होती हैं इनका इसमें वर्णन है।

यहां हमारी बात प्रथमोपशम सम्यक्त्व संबंधी चल रही थी। प्रथमोपशम सम्यक्त्व के पूर्व में पांच लब्धि होती ही हैं, भले वह प्रथमोपशम सम्यक्त्व पहली बार हुआ हो, दूसरी बार या असंख्यातवें बार हुआ हो। एक बार प्रथमोपशम सम्यक्त्व होता है तो उसका काल है अंतर्मुहूर्त प्रमाण। उसके बाद उसका सम्यक्त्व बना रहेगा तो वह क्षयोपशम सम्यक्त्व यानी वेदक सम्यक्त्व हो जाता है और यदि सम्यक्त्व छूट जाये तो वह मिथ्यात्व में भी आ सकता है। बाद में क्या-क्या होता है वह अपना अभी का विषय नहीं है। एक बार सम्यक्त्व होकर मिथ्यात्व में आता है तो उसको हम कहेंगे सादि मिथ्यादृष्टि जीव। उसकी ये दर्शनमोहनीय की तीन प्रकृतियां असंख्यात वर्षों तक बनी रहती हैं। उसके बाद उनकी उद्वेलना होकर वे अकेले मिथ्यात्वरूप हो जाती हैं। ऐसा जीव असंख्यात वर्षों के गॅप से दुबारा प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त करता है। तब भी उसके ये पांचों ही लब्धि वहां होनी ही चाहिये। परंतु जो अभी-अभी सम्यक्त्व से छूटकर मिथ्यात्व में आया है, वह अंतर्मुहूर्त में दुबारा वेदक सम्यक्त्व प्राप्त कर सकता है। अनेक बार सम्यक्त्व होकर छूटता है और बार-बार ग्रहण करता है तो वह वेदक

यानी क्षयोपशम सम्यक्त्व हो सकता है। परंतु दो प्रथमोपशम सम्यक्त्व के बीच में अंतर इतना बड़ा होता है, जिसको कहते हैं पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण। ख्याल में आया न ? एक बार प्रथमोपशम सम्यक्त्व हुआ और दूसरी बार हुआ उनके बीच में इतना अंतर जाता है। *श्रोता: नियम है ?* नियम है। क्योंकि सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति इन दो प्रकृतियों की स्थिति इतनी घटाये बिना मिथ्यादृष्टि जीव तीनों को एक साथ उपशमा नहीं सकता। लंबी यानी अंतःकोड़ाकोड़ी सागर स्थिति होने पर भी द्वितीयोपशम सम्यक्त्व में उनका उपशम हो सकता है। दो प्रथमोपशम सम्यक्त्व के बीच में इतना लंबा काल चला जाता है। जब हम कर्म प्रकृतियों के चित्रों के साथ उपशम सम्यक्त्व की अवस्थाएँ यहां बोर्ड पर देखेंगे तब उसको और अधिक स्पष्टरूप से समझ सकेंगे।

प्रथमोपशम सम्यक्त्व के पूर्व में ये पांच लब्धि होती हैं। क्षयोपशमलब्धि, विशुद्धिलब्धि, देशनालब्धिपूर्वक अभी प्रायोग्यलब्धि जिसके चल रही है वहां क्या-क्या बातें होती हैं ? जो करणलब्धि में प्रवेश करनेवाला है उसके पूर्व में उसकी कैसी-कैसी योग्यता होती है ? यह बात हम देख रहे हैं। सत्ता में जो अधिक स्थिति थी, वह एक स्थितिकांडकघात के द्वारा घट जाती है, अंतःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण स्थिति बन जाती है। यह स्थितिसत्त्व का घटना हुआ। अंदर अप्रशस्त कर्मों का अनुभाग चतुःस्थानरूप पड़ा था क्योंकि कभी न कभी बंधे हुये वहां सत्ता में पड़े थे। अभी वे स्पर्धक द्विस्थानरूप हो गये। घातिकर्मों में लता, दारुरूप और अघाति के अप्रशस्त में निंब, कांजीररूप हो जाते हैं। यह सत्ता में पड़े हुये कर्मों की बात हुयी।

यहां नया बंध कैसा होता है ? स्थितिबंध अंतःकोड़ाकोड़ी सागर होता है। जितना स्थितिसत्त्व हुआ है, उससे भी कम होता है यह तो जाहिर है, क्यों ? नहीं तो स्थितिसत्त्व बढ़ेगा। अब उसमें भी अंतर्मुहूर्त तक उतना का उतना स्थितिबंध रहता है। फिर उसमें कटौती होती है यानी घट हो जाती है। वह कितनी होती है अँट अ टाइम ? तो पल्य के संख्यातवें भाग प्रमाण। फिर अंतर्मुहूर्त तक उतना का उतना स्थितिबंध होगा, फिर उसमें कटौती होगी। फिर उतना होगा, फिर कटौती होगी। ऐसे पल्य का संख्यातवां भाग, संख्यातवां भाग, संख्यातवां भाग करते-करते जब सातसौ से आठसौ सागर इतनी स्थिति घट जाती है तब जाकर एक नरकायु के बंध का अपसरण होता है

यानी उसका बंध रुक जाता है। यहां तक उसका बंध हो सकता था, इसके आगे नहीं होगा। इसको कहते हैं प्रकृतिबंधापसरण; उसके ऐसे चौतीस स्थान होते हैं।

पहले, दूसरे, तीसरे, चौथे स्थान में नरकायु, तिर्यचायु, मनुष्यायु और देवायु का बंध क्रम से रुक जाता है। यह जो आयु का बंध यहां रुका है, उपशम सम्यक्त्व पूर्ण होने तक यहां आयु का बंध नहीं होगा। बाद में देव और नारकियों के लिये मनुष्यायु का बंध चालू होता यानी जब आयु का बंध होना है तब वे मनुष्यायु का करेंगे और तिर्यच और मनुष्य करेंगे तो देवायु का करेंगे। पांचवें स्थान पर हमने देखा नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी का बंध रुक जाता है। छठे से लेकर चौदहवें स्थान तक हमने अपर्याप्त संबंधी सभी स्थान देखे थे- एकेन्द्रिय के सूक्ष्म के दो, बादर के दो, फिर द्वीन्द्रिय से लेकर असंज्ञी और संज्ञी पंचेन्द्रिय तक हमने देखे थे। उसके बाद हमने पंद्रह से लेकर बाईस तक देखे थे पर्याप्त संबंधी जो उसके बंधस्थान हैं वे भी रुक जाते हैं। कहां तक ? असंज्ञी पंचेन्द्रिय तक। संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त का तो बंध चालू रहेगा क्योंकि बंध चालू है वहां पर, बंध सर्वथा तो रुका नहीं है। उसके बाद हमने देखे थे तिर्यचगति, तिर्यचगत्यानुपूर्वी और उद्योत का बंध रुक जाता है। फिर नीचगोत्र का रुक जाता है और उसके बाद हमने क्रम से देखे थे कि अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय का बंधापसरण होता है। और फिर वह संस्थान, संहनन वगैरह, वगैरह का।

किसी बहन ने पूछा है कि यह सभी संस्थान और संहनन जोड़ी-जोड़ी में ले लिये हैं- छठा, फिर पांचवां वगैरह-वगैरह। पहलेवाले को यहां अकेला वज्रवृषभनाराचसंहनन लिया है, संस्थान क्यों नहीं लिया ? नीलेश क्यों नहीं लिया ? यहां जो तैंतीसवें स्थान में वज्रवृषभनाराचसंहनन तो ले लिया। उसका बंध रुकता है, परंतु पहले नंबर का संस्थान जो समचतुरस्रसंस्थान है उसका बंध तो नहीं लिखा यहां। तो क्या भूल गये लिखने को ? तो क्या हुआ ? हुआ क्या ? हां, बोलो-बोलो ? ऐसा है न, संहनन किसके साथ बंधता है ? जो मनुष्यगति बांध रहा है औदारिकशरीर बांध रहा है वही संहनन नामकर्म का बंध करता है। परंतु जो देवगति बांधता है और वैक्रियिकशरीर उसके साथ बांधता है तो उसके साथ संहनन नहीं बंधता, परंतु संस्थान जरूर बंधता है। संस्थान यानी उस गति में जो शरीर मिलेगा, उस संबंधी जो आकार होगा उसको संस्थान नामकर्म कहते हैं। तो यह समचतुरस्रसंस्थान देवगति के साथ

मनुष्य और तिर्यच बांधते रहेंगे। उसका बंध रुकनेवाला नहीं है इसलिये अकेले संहनन को लिया संस्थान को नहीं लिया। ख्याल में आयी बात ? हां।

श्रोता: जीव के आयुबंध के बारे में, संहनन का कोई मतलब नहीं है वहां पर ? आयु के साथ नहीं, गति के साथ बंध रहा है। *श्रोता: हां ? गति के साथ ?* जो देवगति बांधता है, नरकगति बांधता है, उसके साथ वैक्रियिकशरीर का ही बंध होता है। देवगति और नरकगति में जो वैक्रियिकशरीर है वह शरीर संहननवाला नहीं होता है। संहनन का अर्थ होता है हड्डियों की मजबूती। वैक्रियिकशरीर सप्तधातु रहित होता है तो उस वैक्रियिकशरीर में संहनन नहीं पाया जाता। देवों में और नारकियों में संहनन नामकर्म का उदय नहीं है। देवगति बांधनेवाले उसको बांधेंगे भी नहीं। परंतु जो देव और नारकी मनुष्यगति बांधते हैं उसके साथ औदारिकशरीर- औदारिकअंगोपांग का बंध करते हैं तो उसके साथ कोई न कोई संहनन जरूर बांधेंगे ही। हां, एकेन्द्रियों में संहनन नहीं पाया जाता; एक मात्र एकेन्द्रिय संबंधी बंध जो करते हैं तब उसके साथ संहनन का बंध नहीं होता।

अभी ये कर्मकाण्ड की विशेष बातें हैं, किसीको कुछ समझ नहीं आये तो भूल जाओ, कोई चिंता की बात नहीं है। अभी कर्मकाण्ड की सीडीज् आपको दी जा रही हैं, उसमें भी इतने ही विस्तार से लिया है, आप उसका अभ्यास करेंगे। ये कर्मों के नाम और उनकी विशेषतायें ख्याल में आयेंगी तो कहां कौनसा बंध रुकता है और इन प्रकृतियों का संयोग क्यों किया ये बातें सहज समझ आ सकेंगी। अपना विषय तो अभी दर्शनलब्धि संबंधी है। यहां क्या-क्या विशेष बातें होती हैं इसकी हम चर्चा करेंगे। ये चौंतीस प्रकृतिबंधापसरण के स्थान हुये। यदि हम सभी प्रकृतियां गिनेंगे तो बहुत ज्यादा होती हैं। परंतु इन सभी चौंतीस स्थानों में मिलकर मात्र छियालीस प्रकृतियों का बंधापसरण होता है।

हमने अपर्याप्त नामकर्म कितनी बार गिना ? सूक्ष्म भी दो-दो बार गिना। है न ? दो बार पर्याप्त के साथ भी और दो बार अपर्याप्त के साथ भी। पर्याप्त नामकर्म भी कितनी बार गिना ? फिर भी पर्याप्त नामकर्म बंधना रुका नहीं है। संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त संबंधी बंध चालू ही है। तो ऐसी कितनी ही प्रकृतियां संयोगरूप से रुक गयी हैं, परंतु सिंगल-सिंगल प्रकृतियों का बंध किसीका रुका है और किसीका नहीं भी रुका

है। जैसे अभी इसके आगे एकेन्द्रिय संबंधी बंध नहीं होगा, स्थावर का बंध नहीं होगा, अपर्याप्त का भी बंध नहीं होगा, सूक्ष्म का नहीं होगा, साधारण, आतप आदि कितनी ही प्रकृतियां अभी बंधेगी ही नहीं। देखो, सम्यक्त्व प्राप्त करने के पूर्व की यह अवस्था है, तब भी इनका बंध रुक गया है, तो आगे सम्यक्त्व होने पर इनमें से कुछ प्रकृतियां तो बंधेंगी भी नहीं। ये चौतीस स्थान जो देखे उनमें सबमें मिलकर कितनी प्रकृतियां बंधने से रुक गयी ? छियालीस प्रकृतियां और यह किसके लिये बताया है ? मनुष्यों और तिर्यचों की मुख्यता से बताया है।

अब हम आगे इसी पुस्तक के आधार से देवों में, नारकियों में क्या विशेष होता है उसकी बात यहां देखेंगे। १६ नंबर की गाथा की टीका हम देखेंगे, पृष्ठ ४७ - **मनुष्य, तिर्यच के तो सामान्योक्त** यानी सामान्य से जो अभी चौतीस स्थान बताये हैं यह चौतीसों स्थान पाये जाते हैं। उनके बंधयोग्य एक सौ सत्रह प्रकृतियों में से मनुष्यों और तिर्यचों में मिथ्यादृष्टि जीव के एक सौ सत्रह प्रकृतियों का बंध होता है। यह जो संख्या है वह अलग-अलग जीवों की अपेक्षा है। अट अ टाइम कोई भी एक जीव एक सौ सत्रह का बंध नहीं कर सकता। उनमें से चौतीसों स्थानों द्वारा छियालीस प्रकृतियों की बंधव्युच्छिति होती है। इसको बंधापसरण के बदले बंधव्युच्छिति कह देते हैं, परंतु उनमें डिफरन्स है। वहां आदि के छह स्थानों में नौ; देखो, पहले चार आयु देखी। नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी देखी। फिर अपर्याप्त संबंधी देखी, हां, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण ली। यह नौ प्रकृतियों की बंधव्युच्छिति है। **अठारहवें स्थान में एकेन्द्रियादि तीन;** एकेन्द्रिय, स्थावर, आतप यहां तक बंधते थे, उसके आगे नहीं बंधेंगे। **उत्तरीसवें आदि बीच के स्थानों में द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय तीन** यानी अभी इनका बंध सम्यग्दृष्टि के क्या, उसकी पूर्व अवस्था में भी नहीं होगा। परंतु पंचेन्द्रिय संबंधी बंध चालू रहेगा।

तेइसवां आदि बारह स्थानों में इकतीस यानी तिर्यचगति आदि जो हमने देखे- कौनसे संहनन, कौनसे संस्थान आदि वह सब बंध रुक जायेगा। **ऐसे छियालीस प्रकृतियों की व्युच्छिति होती है।** मनुष्य और तिर्यच कितने कर्म बांधेंगे ? **अवशेष इकहत्तर को बांधते हैं।** इकहत्तर प्रकृतियां बांधेंगे। नाना जीवों की अपेक्षा इतनी प्रकृतियों का बंध होगा। अब देवों में और नारकियों में क्या विशेषता है ? *श्रोता: ये*

प्रकृतियां नाना जीवों की अपेक्षा से हैं ? हां, इनका बंध किसीके होगा ही नहीं। अब उनमें भी जीव अंत अ टाइम एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय चारों ही जाति नहीं बांधते हैं। यह नाना जीवों की अपेक्षा समझना। कोई एक जाति बंधेगी, परंतु इसके आगे इनमें से कोई जाति नहीं बंधेगी। पंचेन्द्रिय जाति का बंध चालू रहेगा।

अब देवों में और नारकियों में देखते हैं। देव और नारकियों को मिथ्यात्व अवस्था में; अभी देवों की बात करेंगे। एक सौ सत्रह का बंध उनके है नहीं क्योंकि देव जो हैं वे इनमें से कौन-कौनसा बंध नहीं करेंगे ? ना उनके नरकायु बंधती है, ना देवायु बंधती है, वे ना देवगति, नरकगति बांधते हैं, ना देवगत्यानुपूर्वी, नरकगत्यानुपूर्वी बांधते हैं, ना वैक्रियिकद्विक बांधते हैं। देव हैं वे सूक्ष्म, साधारण, अपर्याप्त का भी बंध नहीं करते। बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त का बंध उनके होता है। वे जो प्रकृतियां बांध रहे हैं उनमें से बंधापसरण कहलायेगा। यहां तीर्थकर प्रकृति, आहारकद्विक बंध का सवाल नहीं है, इसलिये तीर्थकर प्रकृति आदि को यहां निकाल देंगे बाकी की हम बात करते हैं तो यहां देव कितनी प्रकृतियां बांध सकते हैं ? एक सौ तीन का बंध कर सकते हैं।

अभी यहां पढ़ेंगे हम **भवनत्रिक और सौधर्म युगल में**, इनका गुप अलग इसलिये निकाला क्योंकि इन स्वर्गों में एकेन्द्रिय का बंध हो सकता है। एकेन्द्रिय, स्थावर और आतप का बंध भवनत्रिक यानी भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी और सौधर्म-ईशान इतने ही देव कर सकते हैं। कोई पंचेन्द्रिय का करेंगे, कोई एकेन्द्रिय का करेंगे। तो उनमें दूसरा स्थान होगा; दूसरा स्थान कौनसा है ? तिर्यचायु का। उनके पहला नरकायु का स्थान ही नहीं है। वे देवायु भी नहीं बांधते; कोई देव देवगति या देवायु नहीं बांधते। नहीं तो पहले स्वर्ग का देव इतना पुण्य कर रहा है, वह दूसरे-तीसरे-चौथे स्वर्ग में जाता। फिर वहां से और ऊपर चला जाता, फिर और ऊपर चला जाता। फिर सर्वार्थसिद्धि में चला जाता और वहां से सिद्धशिला कितनी नजदीक है। यूं ही ऊपर चला जाता। ऐसा नहीं है। देव सम्यक्त्व के साथ चले गये और ध्रुआऊट सम्यग्दृष्टि रहे फिर भी उनको मनुष्य में तो आना ही पड़ता है और जो मिथ्यादृष्टि हैं वे मनुष्य में जा सकते हैं, तिर्यच में जा सकते हैं। उनके लिये दोनों ऑप्शन्स हैं। तो भवनत्रिक और सौधर्म युगल के **दूसरा** स्थान होगा।

अभी पलटकर देख लो, दूसरा स्थान कौनसा है ? श्रोता: तिर्यचायु का है। हां,

तिर्यचायु का है। **तीसरा ? श्रोता: मनुष्यायु का है।** मनुष्यायु का है। ये दो बंध तो उनके रुकेंगे। **अठारहवां ?** बादर, पर्याप्त, प्रत्येक का और एकेन्द्रिय स्थावर, आतप का। **तेईसवां ?** तिर्यचगति, तिर्यचगत्यानुपूर्वी और उद्योतवाला। **तेईसवां से लेकर दस** यानी नीचगोत्र फिर आगे के सभी कंटिन्युएशन में लेने यानी तेईस से लेकर दस गिनो, हां, बत्तीस तक। अब **और अंत का चौतीसवां ये चौदह स्थान ही पाये जाते हैं।** देवों के लिये तैंतीस नंबर का स्थान नहीं होगा। क्यों नहीं होगा ? देव दो ही गति बांधते हैं- या तो तिर्यचगति बांधते हैं या मनुष्यगति। अब यहां प्रायोग्यलब्धि में तिर्यचगति का बंध उनके लिये रुक गया। अभी क्या बांधेंगे ? क्योंकि गति नामकर्म हर समय बंधेगा ही बंधेगा। क्या कहा ?

सभी जीवों को आठवें गुणस्थान तक गति नामकर्म तो बंधेगा ही बंधेगा। मिथ्यादृष्टि है तो चार गति में से किसी न किसी गति का बंध चलता है। जीव दिन भर जो कुछ परिणाम करता रहता है न, तो मिथ्यात्व गुणस्थान में चारों ही गतियों का बंध अलट-पलट कर होता रहता है। अभी स्वाध्याय, देवपूजा कर रहा है तो देवगति बंध रही है। फिर चला जाये किसीके साथ, झगड़ाबाजी हो जाये; तीव्र क्रोध-मान-माया-लोभ करेगा तो नरकगति बंध रही है। मायाचारी कर रहा है तो तिर्यचगति बंध रही है। कुछ मध्यम परिणाम होंगे तो मनुष्यगति। इसतरह मिथ्यादृष्टि जीव हमेशा ही अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्त में पलट-पलट कर अन्य-अन्य गतियों का बंध करता है।

दूसरे गुणस्थानवाला नरकगति नहीं, परंतु तीन गतियों का आपस में अलट-पलट कर बंध करेगा। फिर ऊपर के गुणस्थानों में चला जायेगा तो मनुष्य है वह देवगति बांधेगा, देव है वह मनुष्यगति बांधेगा। कोई न कोई गति तो बंधेगी ही बंधेगी। इसलिये देवों के यह तैंतीस नंबर का स्थान क्यों नहीं है ? क्योंकि उनके लिये तिर्यचगति का बंध रुक गया है। वे स्वयं देवगति, नरकगति तो बांधते नहीं हैं, अभी एक ही गति रह गयी मनुष्यगति। वे मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, औदारिकशरीर, औदारिकअंगोपांग और ब्रजवृषभनाराचसंहनन इन पांच का संयोगरूप जो तैंतीसवां स्थान है, वह बांधते रहेंगे। उसका बंध रुकेगा नहीं इसलिये उसको छोड़ दिया। चौतीसवां बंधापसरणवाला स्थान उनके होगा। अब जो ऊपर के देव हैं वे एकेन्द्रिय जाति बांधते ही नहीं हैं तो अठारहवां स्थान उनके है ही नहीं, तो वह रुकने का सवाल

ही नहीं है। वे उसको बांधते ही नहीं इसलिये उसको छोड़कर बाकी के स्थान कह रहे हैं। ख्याल में आया न, कैसे विचार करना ? यह कुछ याद रखने की कोशिश मत करना। समझने की मुख्यता है कि ऐसा यहां क्यों कहते हैं ? उसका रीझनिंग क्या है ? यह ख्याल में आया तो सहजरूप से बातें अपने ख्याल में रह जाती हैं। नहीं रह जाये तो कोई चिंता की बात नहीं है।

चौतीस के बदले उनके चौदह ही स्थान होते हैं। क्योंकि वे ना एकेन्द्रिय जाति बांधते हैं, ना द्वीन्द्रिय, ना त्रीन्द्रिय, ना चतुरिन्द्रिय। बीचवाले असंज्ञी वगैरह कुछ बांधते ही नहीं इसलिये बीचवाले स्थान उनके होते ही नहीं। उनके जो होते हैं उनमें से विशिष्ट स्थान बंध से रुकते हैं। **वहां इकतीस प्रकृतियों की व्युत्पत्ति होती है** क्योंकि कम ही बांध रहे थे और उनमें से इकतीस का बंधापसरण हो जायेगा। **बंधयोग्य एक सौ तीन प्रकृतियों में से** अन्य तो बांध ही नहीं रहे थे। मनुष्यों, तिर्यचों में एक सौ सत्रह बंधती थी और उनमें से छियालीस कट हो गयी और देव कितनी बांधते थे ? एक सौ तीन और उसमें से इकतीस चली गयी तो **बहत्तर प्रकृतियों का बंध** उनके लिये **अवशेष रहता है।**

अब आगे गाथा १७ की टीका देखते हैं- **रत्नप्रभा आदि** यह रत्नप्रभा क्या है ? *श्रोता: पहला नरक है।* सबको मालूम है स्टोरी। गुरुदेवश्री की रत्नप्रभा की कथा मालूम है कि नहीं मालूम है ? नहीं ? मालूम नहीं ? बाबूभाई आपने तो सुनी है न ! कोई महिला स्वामीजी से कोई प्रश्न पूछ रही होगी, जिसको कहते हैं न, दिमाग खाना ऐसी कुछ बातें चलती होंगी। तो स्वामीजी कहते हैं क्या कर रही हो ? मरकर रत्नप्रभा जाना पड़ेगा। उसने कहा था हमारे ऐसे भाग्य कहां ! आप ही.. उसको मालूम ही नहीं था रत्नप्रभा किसको कहते हैं। यह पहले नरक का नाम है रत्नप्रभा। **रत्नप्रभा आदि छह नरक पृथ्वियों में** देखो, नरक पृथ्वियां कहेंगे, पृथ्वियां कहेंगे उसका अर्थ है पहला नरक, दूसरा नरक, छठे नरक तक की बात चल रही है **और सनत्कुमारादि दस स्वर्गों में** यह दोनों में क्या विशेषता है ? यहां एकेन्द्रिय जाति का बंध नहीं है। सातवें नरक को क्यों छोड़ा ? उसकी बात हमने सुबह की थी। सातवें नरकवालों को करणलब्धि के अंतिम समय तक तिर्यचगति का बंध होता रहेगा। इसलिये पहले छह नरकों को लिया और तीसरे सनत्कुमार स्वर्ग से लेकर ऊपर दस स्वर्ग यानी कहां तक

के लिये ? *श्रोता: सहस्रार तक।* सहस्रार तक, क्यों ? वहां तक के ही देव तिर्य्यगति बांधते हैं। आनत-प्राणत आदि ऊपर के सभी देव - ग्रैवेयक तक के - मिथ्यादृष्टि हो या सम्यग्दृष्टि वे नियम से मनुष्यगति ही बांधते हैं। तिर्य्यगति बांधते ही नहीं तो उसका बंध रुकने का सवाल नहीं है।

इसलिये यहां सनत्कुमार से लेकर दस स्वर्गों की बात की। तब उनमें **पूर्वोक्त चौदह स्थान अठारहवें के बिना पाये जाते हैं।** क्यों उसके बिना ? क्योंकि अठारहवां स्थान उनके बंधयोग्य है ही नहीं है। एकेन्द्रिय संबंधी बंध करते ही नहीं हैं इसलिये उनमें वह स्थान भी नहीं होता। यह समझाने के लिये मैंने अपनी ओर से यहां ब्रैकेट में लिख दिया है। देखो, ***इन पर्यायों में इन एकेन्द्रियादि प्रकृतियों का बंध ही नहीं होता, इसलिये उनकी बंधव्युच्छिति होने का सवाल ही नहीं है।*** अब इन तेरह स्थानों द्वारा अट्ठाइस प्रकृतियों की व्युच्छिति होती है। पहले हमने देखा था एक सौ तीन बंधती थी। उनमें से इकतीस का बंध रुक गया। तो कितनी रह गयी ? *श्रोता: बहत्तर।* बहत्तर रह गयी। अब इनके बंधयोग्य कितनी थी ? *श्रोता: सौ।* सौ और उसमें से बहत्तर प्रकृतियों का ही बंध शेष रहता है क्योंकि अट्ठाइस का बंध नहीं होता।

अब आगे बढ़ेंगे- **आनत स्वर्ग से उपरिम ग्रैवेयक तक में** यह ग्रैवेयक तक ही क्यों लिया हां, गाडेकरजी ? मालूम नहीं, सिंगतकरजी कहां हैं ? हां, बोलो ? *श्रोता: ऊपर के तो सभी सम्यग्दृष्टि ही हैं।* हां, ऊपर के सभी सम्यग्दृष्टि ही हैं और हम यहां प्रथमोपशम प्राप्त करनेवाले जीवों की बात देख रहे हैं। प्रथमोपशम सम्यक्त्व कहां तक के देवों के होगा ? *श्रोता: ग्रैवेयक तक के।* हां, ग्रैवेयक तक के। वहां जाकर भी वे प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त कर सकते हैं। इसलिये उन्होंने वहां तक की ही बात उठायी। अंतिम ग्रैवेयक तक में **तेरह स्थान दूसरे और तेइसवें बिना पाये जाते हैं।** क्यों ? दूसरा कौनसा है ? *श्रोता: तिर्य्यचायु।* तिर्य्यचायु का; उनके तिर्य्यगति और तिर्य्यचायु आदि प्रकृतियां बंधती ही नहीं हैं। अभी हमने देखा आनत-प्राणत और ग्रैवेयक आदि के तिर्य्यगति बंधती ही नहीं तो उसका बंध रुकने का भी सवाल नहीं है इसलिये उसको निकाल दिया। अब **उन ग्यारह स्थानों द्वारा चौबीस को घटाकर बंधयोग्य छानबे प्रकृतियों में से** उनके छियानवे बंधयोग्य थी उसमें से **बहत्तर प्रकृतियों का बंध करते हैं।**

देव कितनी प्रकृतियों का बंध कर रहे हैं ? बहत्तर और मनुष्य, तिर्यच कितनी प्रकृतियों का कर रहे हैं ? देख लो। *श्रोता: इकहत्तर।* इकहत्तर, मेरा सवाल है यह बहत्तर, इकहत्तर का डिफरन्स क्यों ? कुसुमताई, देव बहत्तर बांध रहे हैं और मनुष्य इकहत्तर बांध रहे हैं। कौन बताना चाहते हैं ? देखो न, मनुष्य कितनी बांध रहे हैं ? इकहत्तर बांध रहे हैं, है न ! *श्रोता: औदारिकअंगोपांग।* औदारिकअंगोपांग ? मनुष्य वैक्रियिक अंगोपांग बांध रहे हैं। विशेषता क्या हुयी ? *श्रोता: संहनन।* हां, संहनन। देव मनुष्यगति के साथ संहनन को बांधते हैं और मनुष्य वैक्रियिकशरीर के साथ संहनन को नहीं बांधते। बाकी सभी कॉमन हैं, हां, ये ऑप्शनल हैं। देव औदारिकशरीर बांध रहे हैं तो मनुष्य वैक्रियिकशरीर बांध रहे हैं। वे औदारिकअंगोपांग बांध रहे तो मनुष्य वैक्रियिकअंगोपांग बांध रहे हैं। दोनों ही कोई न कोई संस्थान तो बांध ही रहे हैं। डिफरन्स कहां रहा ? संहनन में। कौन-कौनसा बंध होता है और कौनसा बंध रुकता है, इसके बारे में हमने चर्चा की। अभी यह जीव प्रायोग्यलब्धिवाला है। अभव्य को भी ये सारी बातें होती हैं। यहां तक हमने बहुत बार देखा है।

अब यहां सातवीं पृथ्वी के बारे में बता रहे हैं। सातवें नरक में क्या होता है ? देखो, गाथा १९ की टीका- **सातवीं नरक पृथ्वी में ये ग्यारह स्थान तीसरे से रहित,** अभी सातवीं पृथ्वी में यानी सातवें नरक का नारकी है। तीसरा स्थान कोई बतायेगा कौनसा है ? *श्रोता: मनुष्यायु।* मनुष्यायु; सातवें नरक के नारकियों को मनुष्यायु का बंध होता ही नहीं। वहां के सम्यग्दृष्टि को मनुष्यगति बंधती है, पर मनुष्यायु किसीको नहीं बंधेगी। क्योंकि मिथ्यात्व में गये बिना वहां आयु का बंध ही नहीं होता और मिथ्यात्व में जाने के बाद नियम से तिर्यचायु का ही बंध होता है। वह भी आखिर में जब वह सम्यक्त्व से छूटकर मिथ्यात्व में जायेंगे। छह महीने बाकी हैं तभी आयु के बंध का अवसर आता है तब की यह बात है। इसलिये उनके तो मनुष्यायुवाला स्थान ही नहीं है तो उसको भी छोड़ दिया। ग्यारह स्थान तीसरे से रहित, **दूसरे सहित,** दूसरे सहित का अर्थ क्या है ? तिर्यचायु का बंध हो सकता है। ऐसा कोई नारकी है न कि अंत में आयु का बंध करता है। उस समय उसको प्रथमोपशम होने का चान्स है कि नहीं है ? आयु का बंध नहीं हुआ है वहां तो उसको प्रथमोपशम हो सकता है, परंतु तिर्यचायु बंधने का अवसर आयेगा और यहां अगर प्रथमोपशम का काल होगा तो उसको तिर्यचायु नहीं

बंधेगी। उसका वह स्थान होगा। तीसरा स्थान ही नहीं है, दूसरा है परंतु वह रुकेगा। प्रायोग्यलब्धि वहां होगी तो वहां आयु का बंध नहीं होगा, उस स्थान में नहीं होगा।

आगे, **चौबीसवें से रहित पाये जाते हैं।** चौबीसवां कौनसा है ? *श्रोता: नीचगोत्र।* हां, यानी सातवें नरक की क्या विशेषता है ? मिथ्यात्व अवस्था में वह मात्र तिर्यचगति का ही बंध करता है, मनुष्यगति का बंध करता ही नहीं है। तिर्यचगति का बंध करता है तो उसके साथ नीचगोत्र का ही बंध करेगा। हां, यह नियम है। परंतु तिर्यचगति बांध रहा है तो तिर्यचगति के साथ उद्योत प्रकृति बंध भी सकती है या नहीं भी बंध सकती है। इसलिये वहां ऑप्शन लिये, दो का ऑप्शन लिया। उद्योत सहित होगा या रहित होगा यानी बंधती है तो बंधती है, नहीं बंधती है तो नहीं बंधती है। उसमें कुछ नहीं, तिर्यचगति तो बंधती ही रहेगी। इसतरह हमने यह जो स्थितिबंधापसरण के और प्रकृतिबंधापसरण के चौतीस स्थानों में कहां क्या होता है और कौनसी गति में कौन-कौनसे स्थान पाये जाते हैं उसकी चर्चा की।

अब हम प्रायोग्यलब्धि में ही आगे बढ़ेंगे क्योंकि अभी बहुत सारे प्रोसेसेस् बताना बाकी हैं। अब गाथा २० देखेंगे। *श्रोता: अंतर्मुहूर्त में होता है ?* हां, अंतर्मुहूर्त में सब हो रहा है। समझने के लिये चार-चार, दस-दस घंटे लगते हैं। **इसतरह व्युच्छित्ति होने पर** यानी इनका बंध रुकने पर **प्रथमोपशम सम्यक्त्व के सन्मुख मिथ्यादृष्टि** मनुष्य, यहां पर उसको प्रथमोपशम सम्यक्त्व के सन्मुखवाला कहा। **मनुष्य और तिर्यच हैं वे**, अभी कौन-कौनसी इकहत्तर प्रकृतियां बांधते हैं उसकी टोटल बता रहे हैं। मनुष्य और तिर्यच कौन-कौनसी प्रकृतियां बांध रहे हैं ? तो कहते हैं **ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अंतराय की उन्नीस** उन्नीस कौनसी हैं ? ज्ञानावरण की पांच बंध रही हैं। दर्शनावरण की यहां कितनी बंध रही हैं ? *श्रोता: नौ।* नौ, जब सम्यक्त्व प्राप्त होगा तब जाकर स्त्यानगृद्धि, निद्रा-निद्रा और प्रचला-प्रचला तीन का बंध रुकेगा। अभी यहां पर बंध हो रहा है। इन तीन निद्राओं को यहां बंधापसरण में नहीं गिना है उनका बंध हो रहा है। उदय नहीं था, बंध हो रहा है उसकी बात चल रही है। ये उन्नीस हो गयी और ये कैसी प्रकृतियां हैं ? ये ध्रुवबंधी हैं। जब तक व्युच्छित्ति नहीं होती तब तक अपने-अपने गुणस्थान में बंधती रहती हैं। ये अनादि से बंध रही हैं, अभी बंधेगी ही। जहां तक उसका बंध का काल है यानी ज्ञानावरण और अंतराय दसवें गुणस्थान तक बंधेगी।

दर्शनावरणीय की नौ जो हैं वे पहले, दूसरे गुणस्थान में बंधती हैं वे यहां बंधती रहेगी। आगे तीसरे गुणस्थान से तीन निद्रा नहीं बंधेंगी।

अब आगे- **सातावेदनीय** हमने देखा था विशुद्धिलब्धि है तो सातावेदनीय आदि प्रशस्त प्रकृतियों का बंध हो रहा है। वेदनीय में से कौनसी बंधेगी ? आठ कर्मों का हिसाब लगाना है न हमको ? आयु का बंध रुक गया है यहां पर, अभी सात कर्मों का हिसाब लगाना है। घातिकर्मों में देखेंगे- ज्ञानावरण की पांच बंध रही हैं, दर्शनावरण की नौ बंध रही हैं, अंतराय की पांच बंध रही हैं। अब मोहनीय में से देखो, मिथ्यात्व यहां बंध रहा है, सोलह कषाय बंध रहे हैं, वेदों में से पुरुषवेद, हास्य-रति का युगल और भय, जुगुप्सा बंध रहे हैं। भय, जुगुप्सा ध्रुवबंधी हैं; अनादि से बंधती हैं, आठवें गुणस्थान तक बंधती रहती हैं। पुरुषवेद ऑप्शनल है, फिर भी हमने अभी जो बंधापसरण के स्थान देखे उनमें हमने नपुंसकवेद को देखा था और स्त्रीवेद को भी देखा था उनका बंध अभी रुका है। यहां पुरुषवेद का बंध होगा। चौतीसवें स्थान पर अरति और शोक का बंध रुक गया है। यहां हास्य और रति का ही बंध हो रहा है और अप्रमत्त की अट्टाइस। अप्रमत्त की अट्टाइस यानी अप्रमत्त अवस्था में नामकर्म की बंधती हैं ऐसी अट्टाइस प्रकृतियां और उच्चगोत्र ऐसी इकहत्तर प्रकृतियां यहां बंधती हैं। किसके बंधती हैं ? *श्रोता: मनुष्यों और तिर्यचों के।* हां, मनुष्यों और तिर्यचों के बंधती हैं।

नामकर्म की कौनसी प्रकृति बांधता होगा ? गति कौनसी बांधता है ? मनुष्य और तिर्यच कौनसी गति बांध रहे हैं ? *श्रोता: देवगति।* देवगति और जो देवगति बांधता है उसके नामकर्म का अट्टाइसवाला पॅकेज है। अट्टाइस प्रकृतियां बांधता है वे कौनसी हैं ? हमने कर्मकाण्ड के शिबिर में अलग-अलग बंधस्थान देखे थे। यहां बता दिये हैं। कौन-कौनसी प्रकृतियां बंधती हैं उसको भी देख लेते हैं २१ नंबर की गाथा में। **देवचतुष्क**, देवचतुष्क का अर्थ होता है देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकअंगोपांग। **त्रसचतुष्क** यानी त्रस, बादर, पर्याप्त और प्रत्येक। **वर्णचतुष्क** यानी वर्ण, रस, गंध और स्पर्श। **अगुरुलघुचतुष्क** का अर्थ होता है अगुरुलघु, उपघात, परघात और उच्छ्वास। **समचतुरस्रसंस्थान** क्योंकि देवगति के साथ यह पहले नंबर का संस्थान बंधता है। **कामाणशरीर, तेजसशरीर, शुभ विहायोगति** क्योंकि शुभ प्रकृति है न, प्रशस्त विहायोगति जिसको कहते हैं। **पंचेन्द्रिय** यानी पंचेन्द्रियजाति, **स्थिर आदि**

छह यानी स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय और यशस्कीर्ति **और निर्माण ये अट्टाईस प्रकृतियां अप्रमत्त संबंधी जानना।** अप्रमत्त संबंधी क्यों कहा है ? अप्रमत्त इसलिये कहा है कि वहां बंधती हैं इसलिये अप्रमत्त का नाम लिया है।

इन इकहत्तर में से - मनुष्य और तिर्यच इकहत्तर प्रकृतियां बांधते हैं। मिथ्यादृष्टि देव, नारकी इनमें से कौनसी प्रकृतियां बांधेंगे ? तो कहते हैं **देवचतुष्क घटाकर मनुष्यचतुष्क** वे क्या बांधेंगे ? मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, औदारिकशरीर, औदारिकअंगोपांग बांधेंगे। मनुष्यचतुष्क को लेना, अभी औदारिकशरीर है तो उसके साथ वज्रवृषभनाराचसंहनन को जोड़ देना। इसलिये **वज्रवृषभनाराच मिलाने पर** बहत्तर प्रकृतियों का बंध करते हैं। ये **बहत्तर प्रकृतियों को सिद्ध हुये हैं बंधापसरण जिनके** यानी जिनका बंधापसरण हो चुका है **ऐसे जो** प्रायोग्यलब्धिवाले **मिथ्यादृष्टि देव और छह पृथ्वियों के नारकी** कितनी प्रकृतियों को ? बहत्तर प्रकृतियों को बांधते हैं। यहां **देवचतुष्क में देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक, वैक्रियिक अंगोपांग जानना और मनुष्यचतुष्क में मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, औदारिक और औदारिक अंगोपांग जानना।**

अब २३ नंबर की गाथा देखते हैं- **उन बहत्तर प्रकृतियों में से मनुष्यद्विक, उच्चगोत्र बिना और तिर्यचद्विक, नीचगोत्र सहित बहत्तर अथवा उद्योत सहित तिहत्तर प्रकृतियों को सातवीं पृथ्वीवाले नारकी बांधते हैं।** क्या कहना चाहते हैं ? अब सातवें नरक के नारकी क्या बांधेंगे ? *श्रोता: तिर्यचगति।* तिर्यचगति बांधेंगे, तिर्यचगत्यानुपूर्वी बांधेंगे, औदारिकशरीर, औदारिकअंगोपांग बांधेंगे, है न ! उसके साथ उच्चगोत्र नहीं बंधेगा, नीचगोत्र बंधेगा। परंतु तिर्यचगति बांधनेवाले उद्योत प्रकृति को बांध भी सकते हैं, नहीं भी बांध सकते हैं ऐसी यह ऑप्शनल होती है। इसलिये वहां वे कितनी प्रकृतियों को बांधेंगे ? बहत्तर बांध सकते हैं या तिहत्तर बांध सकते हैं। देव में क्यों नहीं कहा बहत्तर, तिहत्तर ? क्योंकि मनुष्यगति के साथ उद्योत नहीं बंधती।

उद्योत का अर्थ समझते हो ? उद्योत नामकर्म के उदय से तिर्यचों में जो चमकीले शरीर होते हैं न, जुगनू आदि के होते हैं; उनको उद्योत प्रकृति का उदय होता है। वह तिर्यचों में ही होता है - एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक किसीके भी हो सकता है। हां, वह प्रकृति तिर्यचगति के साथ बंध सकती है, मनुष्यगति के साथ नहीं बंधती।

सातवें नरक के नारकी तिर्यचगति को ही बांधते हैं तो उद्योत को बांधनेवाले तिहत्तर का बंध करेंगे, उद्योत को नहीं बांधनेवाले बहत्तर का बंध करेंगे। *श्रोता: क्या पंचेन्द्रिय तिर्यचों में उद्योत का उदय होता है?* यहां पंचेन्द्रिय तिर्यचों की ही बात चल रही है। उद्योत प्रकृति पंचेन्द्रिय तिर्यचों में भी होती है। मछलियों के भी होती है। ऐसी चमकीली मछली देखी कि नहीं देखी कभी ?

अब हम गाथा नंबर २४ की टीका देखेंगे- **प्रथमोपशम सम्यक्त्व के सन्मुख चारों गतिवाले मिथ्यादृष्टि जीव बध्यमान प्रकृतियों के** यानी बंधनेवाली प्रकृतियों के **चौतीस बंधापसरण स्थानों में एक-एक स्थान के प्रति पृथक्त्व सौ सागर घटते हुये** हमने देखा था एक प्रकृतिबंधापसरण स्थान आने के लिये सातसौ से आठसौ सागर स्थितिबंध घटा। दूसरा स्थान आने के लिये उतना ही घटा। फिर उतना ही घटा तब तीसरा स्थान आया। उतना ही घटा तो चौथा स्थान आया। ऐसे चौतीस स्थान हुये थे। इतने-इतने पृथक्त्व सौ सागर घटते हुये **क्रम से अंतःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण स्थिति बांधते हैं।** फिर भी कितनी बांधते हैं ? अंतःकोड़ाकोड़ी सागर। क्योंकि उसमें बहुत भेद हैं न ! वहां कुछ सागर घटने से कुछ फर्क नहीं होगा। अंतःकोड़ाकोड़ी सागर का अर्थ होता है करोड़ गुना करोड़ सागर में से कुछ कम। करोड़ सागर से ऊपर और कोड़ाकोड़ी सागर के नीचे उसको कहेंगे अंतःकोड़ाकोड़ी सागर। यह तो स्थिति संबंधी और प्रकृति संबंधी बात हुयी।

अनुभाग कितना बांधते हैं ? अनुभाग कितना घटाते हैं ? हमने देखा था अप्रशस्त कर्मों का अनुभाग द्विस्थानीय होता है; वह सत्ता का अनुभाग हुआ। अब जो अनुभाग का नया बंध हो रहा है वह किसरूप से होता है ? **अनुभाग अप्रशस्त प्रकृतियों का तो दो स्थान को प्राप्त** यानी घातिकर्म में *लता, दारुवाला* और अघातिकर्म में *निंब, कांजीरवाला* भी समझना। यहां लिखा नहीं है मगर निंब, कांजीर भी समझना और कैसा है ? **प्रतिसमय अनंतगुणा घटता बांधते हैं।** पहले समय जितना अनुभाग बंधा था, दूसरे समय में उसके अनंतवें भाग प्रमाण अनुभाग बंधेगा। फिर तीसरे समय में उसके भी अनंतवें भाग प्रमाण बंधेगा। यहां तो **प्रशस्त प्रकृतियां** भी बंध रही हैं। तो उनका बंध **चारों स्थानों को प्राप्त** यानी *गुड, खांड, शर्करा और अमृत* चारों प्रकार का होगा **प्रतिसमय अनंतगुणा बढ़ता अनुभाग बांधते हैं।** चारों

स्थान तो बंधेंगे ही बंधेंगे। प्रशस्त प्रकृतियों का पहले समय में जितना अनुभाग बंधा था, उससे अनंतगुणा अनुभाग दूसरे समय में बंधेगा। अंतर्मुहूर्त तक ऐसा हर समय चलेगा।

अब यहां मिथ्यात्व का बंध नहीं रुका है। स्त्यानगृद्धित्रिक का बंध नहीं रुका है। अनंतानुबंधी का बंध नहीं रुका है। जब सम्यक्त्व प्राप्त करेगा तब जाकर इनका बंध रुकनेवाला है। हमने स्थितिबंध कितना होता है देखा, अनुभागबंध कितना होता है देखा, प्रकृतिबंध कितनी प्रकृतियों का होता है, वह देख लिया है। यहां पूछ रहे हैं अभी प्रदेशबंध कैसा होता है ? प्रदेशबंध तो हीनाधिक होता है परंतु यहां इतनी ही बात बताते हैं कि वह किसमें उत्कृष्ट हो सकता है, किसमें अनुत्कृष्ट भी हो सकता है। अभी उसमें तो अपना कुछ दिमाग नहीं चलेगा, फिर भी हम पढ़ लेते हैं। गाथा २५ की टीका- **ये जीव** यानी प्रायोग्यलब्धिवाले जीव **मिथ्यात्व, अनंतानुबंधी चतुष्क, स्त्यानगृद्धित्रिक, देवचतुष्क, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रवृषभनाराचसंहनन, प्रशस्त विहायोगति, सुभगादि तीन, नीचगोत्र इन उन्नीस प्रकृतियों का उत्कृष्ट वा अनुत्कृष्ट प्रदेशबंध करते हैं।** प्रदेशबंध तो योग के अनुसार होता है और उसमें भी प्रत्येक प्रकृति के अपने स्वभाव के अनुसार यहां विशेषता होती है। इसलिये इसमें तो कुछ खास समझने जैसी बात नहीं है बस यह हमने पढ़ लिया कि इनका उत्कृष्ट भी हो सकता है, अनुत्कृष्ट भी हो सकता है।

श्रोता: अनुत्कृष्ट क्या होता है ? जो उत्कृष्ट नहीं वह अनुत्कृष्ट। जो मॅक्झिमम है न, जो मॅक्झिमम प्रदेशबंध है वह कब होगा ? उत्कृष्ट योग के साथ उत्कृष्ट प्रदेशबंध होगा। उसमें थोड़ासा भी - एक प्रदेश भी कम बंधेगा तो उसको कहेंगे अनुत्कृष्ट। जो उत्कृष्ट नहीं वह सारा अनुत्कृष्ट कहलायेगा। इसलिये ये दो प्रकार के कथन आते हैं - उत्कृष्ट के साथ अनुत्कृष्ट लगाते हैं और जघन्य के साथ अजघन्य लगाते हैं। एक साथ चारों की बात नहीं होती है। जो उत्कृष्ट नहीं है वह अनुत्कृष्ट। जब जघन्य की बात आयेगी तो कहेंगे जघन्य होगा या अजघन्य होगा। इसमें ऐसी चार ही टर्मिनॉलॉजि आती हैं। अब यह तो उन्नीस अलग निकाली हैं। **इनसे रहित ऐसी जो महादण्डकों में कही हुयी प्रकृतियों में से इकसठ प्रकृतियों का अनुत्कृष्ट प्रदेशबंध करते हैं।** यानी बाकी प्रकृतियों का अनुत्कृष्ट प्रदेशबंध होता है इतनी ही बात समझना।

श्रोता: यह दंडक का अर्थ क्या है ? यह दंडक यानी यह लिस्ट जो हमने देखी।

हमने पहली लिस्ट देखी मनुष्य-तिर्यचों के लिये, फिर दूसरी एक लिस्ट देखी भवनत्रिकों के लिये, तीसरी एक लिस्ट देखी सनत्कुमार के लिये, उसको दंडक कहेंगे। देखो, गाथा २७ नंबर की टीका- **मनुष्य, तिर्यच के बंधयोग्य जो पहला दंडक**, दंडक लिखा है न, **उसमें सर्व इकहत्तर ही अपुनरुक्त हैं।** यानी पहले दंडक में बतायी हैं, पहली लिस्ट में बतायी है इकहत्तर प्रकृतियां कौनसी बंधती हैं वह बात बतायी है। अभी आगे कहते हैं **भवनत्रिकादि के योग्य जो दूसरा दंडक** यानी दूसरी लिस्ट देखी हमने उसमें **मनुष्यचतुष्क, वज्रवृषभनाराचसंहनन यह पांच अपुनरुक्त हैं।** अपुनरुक्त यानी पहले में जो नहीं बतायी थी। अब वहां की कुछ प्रकृतियों के बदले यहां जो नये नाम बताये हैं उनको कहेंगे अपुनरुक्त। **अन्य प्रकृतियां पहले दंडक में कही ही थी।** जो डिफरेंट थी उसको अलग से बताया, बाकी पहले बतायी थी। **सातवीं पृथ्वीवाले के योग्य तीसरे दंडक में** यानी सातवीं पृथ्वी की जो लिस्ट बतायी थी उसमें से **तिर्यचद्विक, नीचगोत्र और उद्योत ये चार अपुनरुक्त हैं।** बंधनेवाली प्रकृतियों की बात कर रहे हैं। बाकी जीवों के नहीं बंधती थी, इनके बंध रही हैं, तो बंधयोग्य में गिनायी हैं। **अन्य प्रकृतियां पहले और दूसरे दंडक में कही थी।** दंडक यानी हमने पहली, दूसरी जो लिस्ट देखी थी उसको यहां दंडक कहा। **इसतरह तीनों दंडकों में अपुनरुक्त अस्सी प्रकृतियां जानना। ऐसे बंध कहा।** यह तो बंध की बात हुयी।

प्रायोग्यलब्धि में आते ही पहले हमने स्थिति की बात की यानी सत्त्व की कहेंगे हम। सत्त्व की स्थिति भी घटी और सत्त्व में से अप्रशस्त कर्मों का अनुभाग भी घटा। वह स्थितिसत्त्व, अनुभागसत्त्व की बात हुयी यानी सत्त्व की बात हुयी। फिर बंध की बात हमने बहुत विस्तार से देखी कि बंधापसरण हुआ और होते ही चला गया। अब प्रकृतिबंधापसरण भी हुआ। प्रदेशबंध में क्या-क्या होता हैं और अनुभागबंध में क्या विशेषता होती है वह भी उन्होंने बतायी। अप्रशस्त कर्मों में द्विस्थानिक होगा और वह भी घटते अनुभागवाला होगा और प्रशस्त कर्मों में चतुःस्थानिक और बढ़ते अनुभागवाला होगा। यहां तक बात समझ में आयी ? अब उदय की बात बता रहे हैं। उदय की बात देखने के पहले यह जरा देख लेते हैं आपके पास १० नंबर का चार्ट है। यहां भी बोर्ड पर आप देख सकते हैं।

प्रायोग्यलब्धि

- एक स्थितिकांडकघात द्वारा सात कर्मों की स्थिति अंतःकोड़ाकोड़ी सागर।
- एक अनुभागकांडकघात द्वारा अप्रशस्त कर्मों का अनुभाग द्विस्थानीय।
- स्थितिबंधापसरण और प्रकृतिबंधापसरण।
- अनुभागबंध - अप्रशस्त का द्विस्थानगत, प्रशस्त का चतुःस्थानगत।

प्रायोग्यलब्धि में आते ही हमने क्या-क्या बातें देखी हैं ? एक स्थितिकांडकघात द्वारा, यहां एक शब्द लिखा है क्योंकि स्थितिकांडकघात होना अपूर्वकरण की विशेषता है। वहां और अनिवृत्तिकरण में एक स्थितिकांडकघात पूरा होते ही दूसरा होता है, फिर तीसरा होता है, फिर चौथा होता है तो ऐसे गाड़ी चलती ही रहती है। यहां तो बस अधिक स्थिति थी और एक ही कांडक के घात द्वारा अंतःकोड़ाकोड़ी सागर बना दी। तो कहते हैं एक ही स्थितिकांडकघात द्वारा सात कर्मों की स्थिति अंतःकोड़ाकोड़ी सागर यहां हो जाती है। दूसरी बात- एक ही अनुभागकांडकघात द्वारा अप्रशस्त कर्मों का अनुभाग द्विस्थानीय हो जाता है। अप्रशस्त कर्म में घातिवाले भी लेना और अघातिवाले भी लेना। उनके अपने-अपने अलग-अलग नाम हमने देखे थे।

स्थितिबंधापसरण होता है यानी स्थितिबंध अंतर्मुहूर्त तक समान होता है, फिर अंत अ टाइम पल्य के संख्यातवें भाग घटता है। फिर उतना होगा, फिर घटेगा; फिर उतना होगा, फिर घटेगा ऐसी गाड़ी चलती रहेगी। सातसौ से आठसौ सागर की घट होती है तब जाकर एक प्रकृतिबंधापसरण होता है। ऐसे प्रकृतिबंधापसरण के हमने चौंतीस स्थान देखे और कौन-कौनसी प्रकृतियों का बंध रुकता है वह भी देखा और क्या होता है ? अनुभागबंध में क्या विशेषता होती है ? जब-जब अनुभाग की बात होती है तब हमें प्रशस्त और अप्रशस्त का अलग विचार करना है। जहां-जहां स्थिति की बात होती है, स्थिति तो दोनों की घटती चली जाती है। स्थिति में प्रशस्त और अप्रशस्त दोनों की स्थिति घटती है। अनुभाग अप्रशस्त का घटेगा और प्रशस्त का बढ़ेगा। अप्रशस्त का द्विस्थानगत होता है। यह द्विस्थान यानी नीचे के मंदवाले ही लेना और प्रशस्त का चतुःस्थान यानी गुड़, खांड, शर्करा, अमृतवाले चारों ही टाइप के वहां अनुभाग के बंध होते हैं।

श्रोता: अपुनरुक्त का अर्थ ? अपुनरुक्त ? देखो, पुनरुक्त यानी जो फिर से दुबारा बताया जाता है उसको पुनरुक्त कहते हैं। पुनः उक्त, पुनः यानी दुबारा उक्त यानी बताया गया। अपुनरुक्त यानी दुबारा बताया नहीं है, रिपीट नहीं हुआ है। अब क्या करें ? अपनी भाषा में नहीं समझते तो अंग्रेजी का सहारा लेना पड़ता है। अपुनरुक्त यानी जो अनरिपीटेड है - बिना रिपीट किया हुआ। यह जो नये नाम बताये हैं उसको कहेंगे अपुनरुक्त और जो पुराने ही नाम वहां चलेंगे उसको कहेंगे पुनरुक्त। जैसे हम अभी हिन्दी भाषा देख रहे हैं तो 'है' शब्द कितनी बार आया? तो हम क्या कहेंगे ? वह पुनरुक्त है। हमारे कितने अपुनरुक्त लेटर्स आते हैं ? जैसे कोई अंग्रेजी नॉवेल है उसमें अ, बी, सी, डी अक्षर कितने हैं ? २६ हैं। वे ही पुनरुक्त होते चले जायेंगे न ! यदि वे लेटर हम लेते हैं तो उन्हीं लेटर्स का यूज़ होता है - कोई भी शब्द निकालो। स्पेलिंग लिख दो उसमें वे ही उनके जो छब्बीस लेटर्स हैं, वे पुनरुक्त होते रहेंगे। ज्ञानमार्गणा में बात है न, द्वादशांग के अपुनरुक्त अक्षर कितने हैं ? उसकी बहुत बड़ी संख्या है। उसका अभी विषय नहीं निकालेंगे। अब यहां आगे चलते हैं।

अब उदय की बात चलेगी, उदय में क्या-क्या होता है उसकी बात यहां चलेगी। गाथा २८ की टीका पढ़ेंगे- **प्रथमोपशम सम्यक्त्वसन्मुख जीव के नरकगति में** अभी हर एक गति में अलग-अलग बताना चाहते हैं। क्योंकि हर एक गति के उदय में कुछ अलग-अलग बातें- विशेषतायें होती हैं। देखो, **ज्ञानावरण की पांच** यह ज्ञानावरण का उदय पांच का कब तक चलता है ? **श्रोता:** बारहवें तक। बारहवें तक, उदय की बात। बंध दसवें तक, उदय बारहवें तक। यहां तो पांचों का उदय चलेगा। **दर्शनावरण की निद्रादि पांच बिना चार** क्योंकि हमने देखा था पांचों ही निद्रा का उदय यहां नहीं है। जाग्रत अवस्था में ही प्रथमोपशम सम्यक्त्व होता है। तीन का तो वह नियम बताया था। यहां पांचों ही निद्रा के उदय का अभाव हुआ है।

दर्शनावरण की कौनसी चार प्रकृतियों का उदय है ? **श्रोता:** चक्षु, अचक्षु, अवधिदर्शनावरण, केवलदर्शनावरण। चक्षु, अचक्षु नहीं; चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण, केवलदर्शनावरण। हां, **अंतराय की पांच। मोहनीय की दस, नौ या आठ** उसका अर्थ हम देखेंगे फिर। **आयु की एक नरकायु:** एक नरकायु क्यों कहा ? **श्रोता:** क्योंकि वह भोग रहा है। हां क्योंकि नारकी को

नरकायु का उदय है। मनुष्य की बात करेंगे, हमें मनुष्यायु का उदय है। हम जो आयु भोग रहे हैं उस एक आयु का हमारा उदय चल रहा है। **नामकर्म की भाषापर्याप्तिकाल में उदय आने योग्य उनतीस** अभी इसका भी अर्थ देखते हैं, क्रम से देखेंगे। मैंने बोर्ड पर जो कुछ लिखा है उसको भी जरा देखकर आगे बढ़ेंगे।

उदय

ज्ञानावरण - ५ दर्शनावरण - ४ अंतराय - ५
 गोत्र - १ मोहनीय - १०, ९, ८ आयु - १ वेदनीय - १
 नाम - भाषापर्याप्तियोग्य
 देव, नारकी २९
 मनुष्य ३०
 तिर्यच ३०, ३१

ज्ञानावरण की पांच, दर्शनावरण की चार - इसमें पांच निद्रा बिना चार ली हैं, अंतराय की पांच। यह तो समझ सकते हैं। गोत्र की अभी यहां नरक में नहीं लगाना। यह सामान्य की बात है। मैंने नरकगति की बात नहीं लिखी है, यह सामान्य में यहां लिख दिया है। यहां एक गोत्र का उदय होगा। मोहनीय की दस, नौ और आठ लिखी हैं उसका अर्थ बाद में देखेंगे। आयु अपनी-अपनी एक जो जिस गति में है, जिस आयु को भोग रहा है वह एक और वेदनीय की एक यह हमें ऐसा गिनना है। ज्ञानावरण की पांच हैं, दर्शनावरण की चार हैं, अंतराय की पांच हैं, गोत्र एक है, मोहनीय की १०, ९ या ८ में से कोई एक ऑप्शन होगा, आयु एक और वेदनीय एक। अब नामकर्म की, क्या लिखा है ? भाषापर्याप्ति के योग्य पहले इसका अर्थ हम समझते हैं।

नामकर्म की प्रकृतियों का उदय होता है वह अलग-अलग कालों में अलग-अलग प्रकृतियों का उदय होता है। नामकर्म के उदययोग्यकाल कितने होते हैं ? यहां कर्मकाण्ड में अपना यह विषय चला था। कोई बतायेंगे ? *श्रोता: पांच काल।* पांच काल होते हैं। जीव कहीं से मरकर विग्रहगति में आता है तो विग्रहगति में नामकर्म की विशिष्ट प्रकृतियों का उदय होता है। कितनी प्रकृतियों का उदय होता है अश्विनभाई ? इक्कीस प्रकृतियों का उदय होता है। उसमें से शरीर धारण करने के पहले समय में

आनुपूर्वी का उदय रुक जाता है और अन्य कुछ प्रकृतियों का शुरू हो जाता है। अब पांच कालों के नाम पहले बताती हूं। विग्रहगतिकाल इसको कार्माणशरीरकाल भी कहते हैं। वहां नामकर्म की पर्तिक्युलर इक्कीस प्रकृतियों का उदय पाया जाता है। फिर जब शरीर धारण करने का समय आता है वहां से लेकर शरीरपर्याप्ति तक उसको शरीरमिश्रकाल कहते हैं या मिश्रशरीरकाल कहते हैं। वहां कुछ अन्य प्रकृतियों का उदय शुरू हो जाता है। वहां एकेन्द्रियों के चौबीस का उदय होता है, देव-नारकियों के पच्चीस का उदय होता है, मनुष्यों-तिर्यचों के छब्बीस प्रकृतियों का उदय होता है।

फिर शरीरपर्याप्ति पूर्ण होती है तो कहेंगे शरीरपर्याप्तिकाल। वहां कुछ और प्रकृतियों का उदय शुरू हो जाता है जैसे विहायोगति, परघात आदि। फिर उद्धासपर्याप्तिकाल, जब उद्धासपर्याप्ति पूर्ण होती है तो उद्धास नामकर्म का उदय चालू हो जाता है। जब भाषापर्याप्ति पूर्ण हो जाती है तो उस समय स्वर नामकर्म का शुरू होता है। उस पर्याय में भाषापर्याप्तिकाल से लेकर नामकर्म की जितनी प्रकृतियां उदयरूप होती हैं, उतनी प्रकृतियों का उदय मरण तक चालू रहता है। कोई भी गति का जीव हो, पर्याप्त होने के पश्चात् उसको प्रथमोपशम सम्यक्त्व होता है। इसलिये उदय कितनी प्रकृतियों का होता है ऐसा कहेंगे तो पहले चार कालों में कहां कितने का उदय है वह अपना यहां का विषय नहीं है। वह कर्मकाण्ड में हम देख चुके हैं। अब पर्याप्ति पूर्ण हुयी हैं यानी उसको भाषापर्याप्तिकाल कहेंगे। नामकर्म के उदय की अपेक्षा से भाषापर्याप्ति पूर्ण होने से लेकर मरण तक का जो काल है उसको भाषापर्याप्तिकाल कहते हैं। नहीं तो आप कहेंगे मनःपर्याप्ति पूर्ण नहीं हुयी क्या ? मनःपर्याप्ति पूर्ण तो होगी परंतु नामकर्म की प्रकृतियों के उदय की अपेक्षा उसको क्या नाम देंगे ? भाषापर्याप्तिकाल। ख्याल में आया इसका अर्थ क्या है ?

नारकियों के कितनी प्रकृतियों का उदय पाया जायेगा ? चार्ट के आधार से ही देखते हैं। पांच ज्ञानावरण का होगा, दर्शनावरण की चार का उदय होगा, अंतराय की पांच का उदय होगा। अब नारकी को कौनसे गोत्र का उदय होता है ? अभी हमने इसमें से पढ़ा नहीं है। *श्रोता: नीचगोत्र।* हां, नीचगोत्र का होगा। उनके कौनसी आयु है ? *श्रोता: नरकायु।* नरकायु, उनके कौनसे वेदनीय का उदय होगा ? *श्रोता: असातावेदनीय।* साता का क्यों नहीं ? *श्रोता: कभी साता, कभी असाता।* हां, कभी

साता, कभी असाता का उदय होता है। अभी यहां देखो, यह बंध की बात नहीं है उदय की बात चल रही है। अब हम यहां पढ़ेंगे फिर। यह नामकर्म के उदय की बात पढ़कर फिर आगे बढ़ेंगे। आपको मोहनीय की बात बाद में समझाऊंगी।

नामकर्म की भाषापर्याप्तिकाल में उदय आने योग्य; अभी इस वाक्य का अर्थ समझ में आता है न ? **नामकर्म की भाषापर्याप्तिकाल में उदय आने योग्य उनतीस।** ये उनतीस प्रकृतियां भाषापर्याप्तिकाल में उदय आने योग्य हैं। वे कौन-कौनसी हैं ? एक होती है गति, अभी यहां नरकगति है। पंचेन्द्रिय जाति यानी उनको **गति, जाति, शरीर, संस्थान, अंगोपांग** इनका उदय चलेगा। गति में नरकगति ली, जाति में पंचेन्द्रियजाति ली, **शरीर तीन-** अभी नारकी है तो उसको वैक्रियिकशरीर, तेजसशरीर, कार्माणशरीर नामकर्म का उदय चल रहा है। अंगोपांग कौनसा होगा ? *श्रोता: वैक्रियिक। वैक्रियिकअंगोपांग, निर्माण, संस्थान, कौनसा संस्थान है ? श्रोता: हुण्डकसंस्थान।* हुण्डकसंस्थान का उदय चल रहा है। **वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, स्थिर युगल** यानी स्थिर और अस्थिर दोनों का ही उदय एक साथ चलता है।

बंध में स्थिर बंधेगा या अस्थिर बंधेगा परंतु स्थिर-अस्थिर दोनों प्रकृतियों का उदय एकसाथ चलता रहता है। कब तक चलता है ? उदयव्युच्छिति कहां होती है ? *श्रोता: तेरहवें गुणस्थान में।* तेरहवें गुणस्थान में। किसने बताया ? सिंगतकरजी हां, अच्छा। तेरहवें तक - उदय की बात चल रही है। *श्रोता: मैं नारकी की अपेक्षा पूछ रही हूं ?* नारकी हो, देव हो या मनुष्य हो या तिर्यच हो - स्थिर-अस्थिर दोनों का ही उदय चल रहा है। वे ध्रुवोदयी प्रकृति हैं। हां, अब स्थिर युगल यानी स्थिर-अस्थिर और शुभ-अशुभ ये जोड़ी ऐसी हैं कि दोनों का अँट अ टाइम उदय चलता है, बंधने में एक बंधेगी। आप कहेंगे कितनी-कितनी क्लिष्ट बातें बता रही हो। सुनने में क्या तकलीफ हो रही है ? हमारा उदय तो चल रहा है न ! उसमें कहां तकलीफ हो रही है ?

त्रस, बादर, पर्याप्त। नारकी त्रस, बादर, पर्याप्त है उसके इनका उदय चल रहा है। इसके सभी अप्रशस्त कर्मों का उदय चल रहा है। दुर्भग बंधना रुका था, परंतु इसका उदय चलेगा। **दुर्भग, अनादेय, अयशस्कीर्ति।** अभी **प्रत्येक** त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक एक साथ लेते हैं, वहां पर भी ले सकते हैं। **उपघात, परघात, उद्धास** अगुरुलघु के साथ भी रख सकते थे, यहां अलग से बताया है। इनके अशुभ विहायोगति

होती है, **अशुभ विहायोगति** यानी उनकी चाल अप्रशस्त होती है और **दुस्वर** क्योंकि नरकगतिवालों के इन अशुभ प्रकृतियों का ही उदय चलता है। भले ही सम्यक्त्व प्राप्त क्यों नहीं करे, उनके अशुभ प्रकृतियों का ही उदय चलेगा। उदय की बात अलग है, बंध की बात अलग है। ख्याल में आयी न बात ? हमारे कितने भी छोटे पाप कर्मों का उदय क्यों न हो, सम्यक्त्व होने में कोई बाधा नहीं आती है। अभी यह नारकियों के हो रहा है तो अपने को नहीं हो सकता है क्या ?

वेदनीय की कोई एक, नारकी के लिये भी क्या लिखा ? वेदनीय की कोई एक यानी असाता भी हो सकती है, साता भी हो सकती है। जब नरकगति बंध रही थी तो असाता का बंध किया था। परंतु वहां उदय दोनों का ऑल्टरनेटली होता रहता है। **गोत्र की एक नीचगोत्र** क्योंकि नारकियों में और तिर्यचों में एक नीचगोत्र का ही उदय पाया जाता है। **ऐसे इन प्रकृतियों का उदय है।** अब हमने एक कर्म छोड़ा था, कौनसा ? *श्रोता: मोहनीय।* मोहनीय की कितनी प्रकृतियां हैं कोई गिनायेंगे ? *श्रोता: अट्टाइस।* अट्टाइस हैं। उसमें दर्शनमोहनीय की ? *श्रोता: तीन।* तीन, बंधयोग्य ? *श्रोता: एक।* एक ही बंधती है। अब चारित्रमोहनीय की ? *श्रोता: पच्चीस।* पच्चीस हैं। तो चारित्रमोहनीय की कितनी बंधेगी ? हमने देखी थी कितनी-कितनी बंधती हैं। अब यहां बात किसकी चल रही है ? उदय की। अब मिथ्यादृष्टि है, एक मिथ्यात्व का तो उदय है। अनंतानुबंधी का उदय है कि नहीं है ? *श्रोता: है।* कितने का ? *श्रोता: चारों का।* चारों का अँट अ टाइम होगा ? क्रोध का उदय चलेगा तो अनंतानुबंधी क्रोध, अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, प्रत्याख्यानावरण क्रोध, संज्वलन क्रोध - चार क्रोध का उदय होगा। यानी चार कौन-कौनसी बातें ? या चार क्रोध या चार मान या चार माया या चार लोभ - इनमें से किसी एक का उदय होगा। अभी यह दस, नौ, चार मैं बाद में गिनाऊंगी। अभी अपना समय पूरा हो चुका है। यह मोहनीय की बातें हम बाद में गिनायेंगे।

बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

१३. प्रायोग्यलब्धि - उदय और सत्त्व

आचार्य श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती ने इस लब्धिसार ग्रंथ की रचना की है। उसीके आधार से पं. टोडरमलजी ने सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका लब्धिसार-क्षपणासार द्वंद्वारी भाषा में यह भाषाटीका लिखी है और अभी हम उसका हिंदी अनुवाद देख रहे हैं। यहां पर प्रायोग्यलब्धि में बहुत सारी उथल-पुथल हो रही है - हमारी भी और कर्मों की भी। हमने यहां बहुत विस्तार से उसको देखा ही है।

हमने २० नंबर की गाथा पढ़ी उस संबंधी प्रश्न है- प्रश्न: गाथा २० के अनुसार अप्रमत्त की नामकर्म की अट्टाईस प्रकृतियां कौनसी हैं और अप्रमत्त शब्द का अर्थ क्या लेना ? अप्रमत्त यानी अप्रमत्तविरत नाम का सातवां गुणस्थान यह अप्रमत्त का अर्थ है। नामकर्म की अप्रमत्त की अट्टाईस प्रकृतियां क्यों ली ? सातवें गुणस्थान में नामकर्म की बंधयोग्य प्रकृतियां कितनी हैं ? २८ या २९ या ३० या ३१ हैं परंतु प्रायोग्यलब्धि मिथ्यात्व गुणस्थान में है। फिर भी सातवें गुणस्थान में बंधनेवाली कुछ प्रकृतियां यहां भी बंध रही हैं और कुछ नहीं बंध रही हैं। अप्रमत्तविरत में तो तीर्थकर प्रकृति और आहारकद्विक भी बंधती हैं, वे यहां बंधने का सवाल नहीं है। अप्रमत्त गुणस्थान में २८, २९, ३० या ३१ जो वहां बंधयोग्य हैं, उनमें से अट्टाईस जो यहां बंधती हैं उनकी बात है।

उन इकतीस में से तीर्थकर और आहारकद्विक तीन छोड़ना। वे बंधयोग्य २८ कौनसी हैं ? देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकअंगोपांग। त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, वर्ण, रस, गंध, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, समचतुरस्रसंस्थान, कार्माणशरीर, तेजसशरीर, शुभ विहायोगति, अभी मैं पुस्तक में से ४९ पेज पर पढ़ रही हूं- पंचेन्द्रिय जाति है। स्थिर आदि छह का अर्थ होता है स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय और यशस्कीर्ति; और निर्माण। नामकर्म की इन अट्टाईस प्रकृतियों का यहां बंध हो रहा है उसकी बात चल रही है। सम्यक्त्वसन्मुख मिथ्यादृष्टि यानी प्रायोग्यलब्धिवाला मिथ्यादृष्टि जीव यहां कौनसी प्रकृतियां बांध रहा है उसकी बात चल रही थी। ज्ञानावरण की पांच बांधता है, दर्शनावरण की नौ बांधता है, अंतराय की पांच बांधता है, मोहनीय की बात हम अभी करेंगे। वेदनीय की कौनसी बांध रहा है ? सातावेदनीय ही बांध रहा है। आयुर्कर्म का बंध रुक गया है और नामकर्म की ये अट्टाईस बांध रहा है और गोत्र कौनसा बांधता है ? श्रोता: उच्चगोत्र। हां, उच्चगोत्र

बांधेगा। अभी मोहनीय का हिसाब लगाना था। नामकर्म की बात ख्याल में आयी ?

नामकर्म में भी मनुष्य और तिर्यचों की अपेक्षा बात चल रही है। मनुष्य और तिर्यच यहां कौनसा बंध कर रहे हैं ? देवगति का बंध कर रहे हैं। जब नामकर्म बंधता है तो एक गति बंधेगी, उसकी गत्यानुपूर्वी भी बंधेगी। गति बंधेगी, जाति बंधेगी, शरीर बंधेगा। देवगति के साथ कौनसा शरीर बंधेगा ? वैक्रियिकशरीर बंधेगा। तेजसशरीर और कार्माणशरीर तो बंधता ही है, हर समय बंध रहा है तो उसको भी ले लेना। अब देवगति के साथ संहनन नहीं बंधेगा, संस्थान जरूर बंधेगा। कौनसा संस्थान बंधेगा ? समचतुरस्रसंस्थान बंधेगा। वैक्रियिकअंगोपांग बंधेगा। उदय की बात नहीं कर रहे हैं, अपना बंध का प्रश्न चल रहा है उसकी बात चल रही है। उदय की बात हम बाद में करेंगे। मोहनीय में अगर लेना है तो मिथ्यात्व का बंध हो रहा है। सोलह कषायों का बंध हो रहा है। पुरुषवेद, हास्य-रति का बंध हो रहा है और भय-जुगुप्सा का बंध हो रहा है। ये अपनी बंध की बात हो गयी। यह हुआ आपके प्रश्न का उत्तर।

अब यहां अपनी ५१ पृष्ठ पर उदय की बात चल रही थी। इस जीव के कौन-कौनसी प्रकृतियों का उदय है ? ज्ञानावरण की पांच का उदय है। दर्शनावरण की चार का उदय है क्योंकि यहां जाग्रत अवस्था चल रही है, तो अन्य पांच निद्रा का उदय यहां नहीं है। अंतराय की पांच हैं। मोहनीय की बात हम देख रहे थे। हम मोहनीय के उदय के कूट देखते हैं। मिथ्यात्व गुणस्थान में मोहनीय की कितनी प्रकृतियों का उदय होता है उसको हम यहां टेबल के आधार से देखेंगे।

मोहनीयकर्म के उदय के कूट

२	१	१	०
२ २	२ २	२ २	२ २
१ १ १	१ १ १	१ १ १	१ १ १
४ ४ ४ ४	४ ४ ४ ४	४ ४ ४ ४	४ ४ ४ ४
१	१	१	१

१ यानी उसका एक मिथ्यात्व का उदय चल रहा है। ४ ४ ४ ४ का अर्थ होता है या तो चार प्रकार के क्रोध - अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण और

संज्वलन चार क्रोध का या चार मान का या चार माया का या चार लोभ का उदय होगा। जब मिथ्यादृष्टि को क्रोध हो रहा है तो यह अनंतानुबंधी का क्रोध है कि अप्रत्याख्यानावरण का ? सभी चारों ही का चलता है। मिथ्यादृष्टि है तो उन चारों का यथायोग्य उत्कृष्ट अनुभाग का उदय चलेगा। १ १ १ लिखा है यह वेद है - पुरुषवेद, स्त्रीवेद या नपुंसकवेद - तीन वेद में से एक का उदय होता है। २ २ का अर्थ है इसको हास्य-रति या शोक-अरति इसको युगल कहेंगे, इनमें से किसी एक युगल का उदय होता है। हास्य-रति का होगा या शोक-अरति का होगा। भय, जुगप्सा के बारे में अँट अ टाइम दोनों का उदय हो सकता है या अकेले भय का उदय होगा या अकेले जुगुप्सा का उदय होगा या दोनों का ही उदय नहीं होगा कुछ काल के लिये। तो ये सभी पॉसिबिलिटिज हैं और ये भय, जुगुप्सा के उदय भी अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्त में बदलते हैं।

अभी मोहनीय की उदयरूप प्रकृतियां कितनी हैं उनको गिनना है तो हम हर एक पंक्ति में से गिनेंगे। एक प्लस चार, पांच हुयी; पांच और एक छह; छह और दो आठ। अभी आठ में भय-जुगप्सा दोनों को लेंगे तो आठ प्लस दो दस हो जायेंगी। अकेले भय को लेंगे तो आठ और एक नौ हो जायेंगी। अकेले जुगुप्सा को लेंगे तो आठ और एक नौ हो जायेंगी और भय-जुगप्सा दोनों को नहीं लेंगे तो आठ ही रहेंगी। तो मोहनीय की कितनी प्रकृतियों का उदय होगा ? दस, नौ या आठ। ये उदय के कूट कहलाते हैं। पहले हमने बंध के भी कूट देखे थे, है न ! मिथ्यात्व गुणस्थान है, यहां कितनी प्रकृतियों का उदय चल रहा है ? देखो अभी पेज नंबर ५१ निकालना।

प्रथमोपशम सम्यक्त्व के सन्मुख जीव के अब नरकगति में हम अलग-अलग गतियों में पहले से ही भिन्न करके देखेंगे कि वहां कौनसी प्रकृतियों का उदय पाया जाता है। **ज्ञानावरण की पांच (५), दर्शनावरण की निद्रादि पांच बिना चार (४), अंतराय की पांच (५), मोहनीय की दस, नौ या आठ (१० / ९ / ८),** यानी कितने का भी उदय हो यह तो व्हेरिबल है, वह तो चेंज होता रहता है। दस का होगा या नौ का होगा या आठ का होगा। **आयु की एक नरकायु।** अब यहां उदय की बात चल रही है। यहां नरकायु का उदय चल रहा है। **नामकर्म की भाषापर्याप्तिकाल में उदय आने योग्य** हमने देखा था सम्यक्त्व किसके होता है ? पर्याप्त जीवों के होता है और पर्याप्ति पूरी हुयी हैं तो नामकर्म के उदय की अपेक्षा से अभी मरण तक इसको

भाषापर्याप्तिकाल चल रहा है। इसलिये इसको कहते हैं भाषापर्याप्तिकाल में उदययोग्य प्रकृतियां। नारकियों के पर्याप्त अवस्था में नामकर्म की कितनी प्रकृतियों का उदय चलता है ? तो कहते हैं **उनतीस** प्रकृतियों का। **उनके नाम** क्या हैं ?

गति कौनसी है उनकी ? नरक**गति** नामकर्म का उदय चल रहा है। पंचेन्द्रिय**जाति** का उदय चल रहा है। वैक्रियिकशरीर है, तेजसशरीर, कार्माणशरीर **तीन शरीर** हो गये। **अंगोपांग** में वैक्रियिकअंगोपांग का उदय चल रहा है, **निर्माण** है, **संस्थान** उसका हुण्डकसंस्थान का उदय चल रहा है। **वर्णचतुष्क** है यानी वर्ण, रस, गंध, स्पर्श। **अगुरुलघु** भी चतुष्क लेंगे परंतु यहां उन्होंने उसके नीचे की लाइन में बाकी प्रकृतियां अलग बतायी हैं। **स्थिरयुगल** का अर्थ होता है स्थिर और अस्थिर दोनों का ही उदय अंत अ टाइम चल रहा है और सबको चलता है। बंध के समय अंत अ टाइम एक ही बंधती है, परंतु उदय दोनों का युगपत् चलता रहता है। *श्रोता: कोई उदाहरण ? उदाहरण क्या ? श्रोता: स्थिर और अस्थिर दोनों का कार्य क्या है ?* दोनों का ही कार्य हर समय चल रहा है। स्थिर का अर्थ होता है यह सप्तधातु आदि शरीर की जो कुछ रचना हुयी है उसमें स्थिर प्रकृति का उदयरूप कार्य भी चल रहा है और अस्थिर का भी चल रहा है। इसमें कोई दृष्टान्त का सवाल ही नहीं है। इन प्रकृतियों का उदय हर समय चलता रहता है इतना ही इसमें ले लेना। तेरहवें गुणस्थान तक उनका उदय चलता है। बाद में उनका उदय रुक जायेगा।

शुभ युगल यानी शुभ और अशुभ - इनका भी उदय हर समय चलता रहता है। **त्रस, बादर, पर्याप्त** यह नारकी है, पंचेन्द्रिय है, संज्ञी है तो त्रस, बादर, पर्याप्त है। प्रत्येक भी है वह आगे नाम लिखा है उसका। अब इनके अप्रशस्त प्रकृतियों का ही उदय रहता है तो **दुर्भग** लिया, **अनादेय** लिया, **अयशस्कीर्ति** लिया। यह त्रसचतुष्क में से **प्रत्येक** यहां लिखा और अगुरुलघुचतुष्क में से **उपघात, परघात उद्धास** यहां लिखा है। अब विहायोगति में से उनके **अशुभ विहायोगति** है और **दुस्वर** है। **वेदनीय की कोई एक** क्योंकि वेदनीय का उदय भी अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्त में पलटता रहता है। साता-असाता, साता-असाता होता रहता है। **गोत्र की** नरकगति में तो **नीचगोत्र** का ही उदय है। **ऐसे इन प्रकृतियों का उदय है।** ख्याल में आया न ?

यहां मोहनीय की और नामकर्म की उदयरूप प्रकृतियों के बदलने से भंग

होते हैं। देखो, दस प्रकृतियों का एक स्थान होता है या नौ का है या आठ होता है। तो उदयरूप प्रकृति बदलने से भंग होते हैं का अर्थ क्या होता है ? अभी हमने देखा उदयरूप क्रोध होगा या मान होगा या माया होगी या लोभ होगा। तो वह बदलने से भंग बदलेंगे। हास्य-रति का उदय होगा या शोक-अरति का उदय होगा ये दो भंग होंगे। नरक में तो एक ही वेद है क्योंकि सभी जीवों को एक नपुंसकवेद ही है, वहां तो कोई भंग नहीं। तिर्यचों में अलग-अलग जीवों की अपेक्षा अलग-अलग वेद होंगे। एक जीव की अपेक्षा वेद का पलटना नहीं होगा।

फिर से सुनना, मनुष्यों और तिर्यचों में तीनों ही वेदवालों को सम्यक्त्व हो सकता है। परंतु जिसको जिस वेद का उदय है वह पूरे लाइफ टाइम तक उसी वेद का उदय रहता है। उदय में चेंजेस नहीं होते जैसे क्रोध पलटकर मान, माया, लोभ होता है; योगों में मन, वचन, काय के योग पलटते हैं; वैसे स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद का पलटना नहीं होता। क्योंकि यह प्ररूपणा हर गांव-गांव में चल रही है कि वेद पलटता है, उदय पलटता है। जन्म से जो वेद है मरण तक या मोक्ष जायेगा तो जब तक अपगतवेदी नहीं होता तब तक उसका वही वेद रहेगा। स्त्रीवेदवाला पलटकर पुरुषवेदी नहीं होगा, ना पुरुषवेदी स्त्रीवेदी होगा। हां, इसके संबंध में बहुत भ्रमणा चलती है इसलिये यह इतना बताने का विकल्प आया है। *श्रोता: भाववेद की बात कर रहे हैं ?* भाववेद की ही बात है। भाववेद पलटता नहीं है।

हमने सुना है बहुत जगह बहुत गावों में बहुत विद्वानों के द्वारा ऐसी प्ररूपणा चल रही है कि कोई स्त्रीवेदी... उसको रानी लक्ष्मीबाई का उदाहरण देकर समझाते हैं- वह घोड़े पर बैठकर युद्ध को चली तो उसका पुरुषवेद हो गया। यह वेद का कार्य नहीं है। लौकिक में जिसे पुरुषों का कार्य कहते हैं उससे पुरुषवेद का कोई संबंध नहीं है। समझ में आती है बात ? क्या करें ? *श्रोता: वेद का कार्य क्या होता है ?* वेद का कार्य स्त्री, पुरुष को आपस में जो आकर्षण होता है उस संबंधी है या नपुंसकवेदवाले को दोनों के प्रति आकर्षण होता है, यह वेद का कार्य है। वह जन्म से ही चालू रहता है। हमें लगता है बालक में क्या होगा ? उस कर्म का उदय भी होता है और वैसे परिणाम भी वहां चलते रहते हैं। यह बाह्य क्रिया से उसका कोई संबंध नहीं है। जीव के परिणामों की बात है। जो भाववेद जन्म से है वही वेद उस भव में धूआऊट रहता है,

उसमें कोई परिवर्तन नहीं होता। नीलेशभाई सुन लो। क्या प्रश्न है ?

श्रोता: सभी जीवों का वही वेद रहता है ? नहीं-नहीं, नरक में सभी जीवों को मात्र नपुंसकवेद का ही उदय होता है। देवों में तो दो वेद होते हैं - देवों के पुरुषवेद और देवियों के स्त्रीवेद। भोगभूमि में तिर्यच और मनुष्य को भी दो ही वेद होते हैं, नपुंसकवेद नहीं होता। जो कर्मभूमि के मनुष्य और तिर्यच हैं - उनमें कोई जीव पुरुषवेदी हैं, कोई स्त्रीवेदी हैं और कोई नपुंसकवेदी हैं। अब यहां ऐसी बात है कि देवों में तो जो पुरुष हैं उनको भाव से पुरुषवेद ही होता है, जो स्त्रियां हैं उनको भाव से स्त्रीवेद ही होता है। कर्मभूमि के मनुष्य, तिर्यचों में उलट-पुलट हो सकता है कि जो द्रव्य से पुरुष है-शरीर से तो पुरुष है, परंतु भाव से पुरुषवेदी भी हो सकता है, भाव से स्त्रीवेदी भी हो सकता है, भाव से नपुंसकवेदी भी हो सकता है। ऐसे उलटा भी ले लेना यानी द्रव्य कुछ अलग है और भाव कुछ अलग हैं ऐसे यहां मनुष्यों और तिर्यचों में कर्मभूमि में बात बन सकती है। परंतु जो वेद जन्म से है वही कायम रहता है। उसमें कोई चेंज नहीं होता यह बात मुख्य है। जैसे क्रोध, मान, माया, लोभ पलटते हैं वैसे वेदों में कोई परिवर्तन नहीं होता। बिलकुल, यह बात ख्याल में रखनी है। हां ?

श्रोता: श्रेणी में जो भाववेद है वह भी जन्म से ही रहता है ? बिलकुल जन्म से है तभी तो श्रेणी में रहता है और श्रेणी में उसका अभाव होकर वेदों का उदय मिट जाता है, जीव अपगतवेदी हो जाते हैं। परंतु अभी कोई श्रेणी तक, मुनि होने तक स्त्रीवेदी था और फिर पुरुषवेदी हुआ ऐसा कुछ है ही नहीं। बिलकुल पन्ने-पन्ने पर यह बात हर करणानुयोग की पुस्तक में आयेगी। यह धवला है, महाधवला है, कितने ही ग्रंथ हैं अभी कोई भी पन्ना पलटकर देखो जहां किसी भी विषय में वेदमार्गणा की बात आती है वहां यही कथन है। परंतु अभी उसके लिये क्या प्रूफ है ऐसा भी पूछते हैं। अभी क्या करें ? अभ्यास नहीं है। चलो अभी...

हम पृष्ठ ५२ पर देख रहे थे। यहां क्या कहते हैं ? प्रकृतियां बदलने से यानी वह संख्या उतनी ही रहेगी, अभी नारकी में नामकर्म की सभी अप्रशस्त प्रकृतियां गिनायी हमने, परंतु कहीं मनुष्यों में किसीके प्रशस्त का उदय होगा, उदय की बात है, किसीके अप्रशस्त का उदय होगा। प्रकृति बदलने से वहां कॉम्बिनेशन्स अलग-अलग हो सकते हैं उसको कहेंगे अलग-अलग भंग होते हैं। यह कर्मकाण्ड के प्रकरण में स्थानों की

बात आयी न ? उदय के स्थान, बंध के स्थान में उसकी चर्चा हुयी थी अपनी। यहां आगे पढ़ते हैं- **यहां मोहनीय की और नामकर्म की उदयरूप प्रकृतियों के बदलने से भंग होते हैं। उनका गोम्मटसार में कर्मकाण्ड के स्थानसमुत्कीर्तन यानी स्थानों का कथन, स्थान यानी व्हेरिएशन्स अधिकार में विशेष वर्णन है वहां से जानना।**

ऐसे मोहनीय के मिथ्यात्व, अनंतानुबंधी आदि चार प्रकार के क्रोधादि चार प्रकार के क्रोधादि यानी अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण, संज्वलन क्रोधादि यानी क्रोध या मान या माया या लोभ यानी इनमें से कोई एक अर्थात् चार प्रकार के क्रोध अथवा चार प्रकार के मान, माया या लोभ। अब नरकगति है इसलिये क्या कहा ? **नपुंसकवेद, हास्य-शोक युगल में से एक**, हास्य युगल यानी हास्य के साथ हमेशा रति को लेना और शोक के साथ अरति को जोड़ देना। युगल का अर्थ होता है हास्य-रति या शोक-अरति। यहां तो ऐसा लिखा है हास्य-शोक में से एक और **रति-अरति युगल में से एक** परंतु ऐसा कॉम्बिनेशन नहीं लेना कि हास्य के साथ अरति जोड़ना और शोक के साथ रति - ऐसा नहीं होता है। **ऐसे किसी जीव के चौवन प्रकृतियों का उदय होता है।** हमने गिनी न ! डिफरन्स कहां पड़ा ? मोहनीय में दस, नौ और या आठ। हम बाकी सबकी टोटल करेंगे तो नामकर्म की कितनी देखी थी हमने ? *श्रोता: उनतीस।* उनतीस और बाकी हमने ज्ञानावरण की पांच देखी, दर्शनावरण की चार देखी, अंतराय की पांच देखी, एक गोत्र देखा, एक वेदनीय देखा, एक आयु देखी। अगर सबकी टोटल करेंगे और मोहनीय की दस होगी या नौ होगी या आठ होगी तो उसमें उनकी टोटल करने से टोटल कितनी होगी ? अगर आठ लेते हैं तो चौवन प्रकृतियों का और फिर नौ लेंगे तो पचपन प्रकृतियों का और दस लेंगे तो छप्पन प्रकृतियों का उदय होगा।

देखो, दूसरे पॅरेग्राफ में- उसमें तीन अलग-अलग लिये न, ५४, ५५ या ५६ होंगी। यहां लिखते हैं **किसी जीव के चौवन प्रकृतियों का उदय होता है। वहां मोहनीय के चार कषाय और दो युगल बदलने से आठ भंग** अभी भंगों की बात हम छोड़ेंगे। क्योंकि क्रोध होगा या मान होगा या माया होगी या लोभ होगा तो उसके चार भंग; वेद बदलने का सवाल नहीं है और युगल यानी हास्य-रति या शोक-अरति दो हैं तो चार गुणा दो आठ हो जायेंगे। ये अलग-अलग आठ भंग होंगे। उन भंगों को

वेदनीय में साता का या असाता का उदय होगा उससे गुणा करेंगे तो सोलह हो जायेंगे। नामकर्म की अप्रशस्त प्रकृतियों ही का यहां उदय है इसलिये उसमें बदलने का कोई सवाल ही नहीं है। अब भय-जुगुप्सा दोनों को नहीं लिया था तभी चौवन हुये थे। किसी जीव को भय का उदय होगा, किसीको जुगुप्सा का होगा तो चौवन में एक मिलाने से कितने हो जायेंगे ? पचपन हो जायेंगे। तो कुल पचपन का उदय होता है। अभी उसके भंगों की बात हम छोड़ देते हैं क्योंकि किसीको भय है और किसीको जुगुप्सा है। हमने सोलह देख लिये थे, उसको और दो गुणा करेंगे तो बत्तीस भंग हो जायेंगे। भय और जुगुप्सा दोनों का युगपत् उदय होगा तो ? *श्रोता: छप्पन/ छप्पन* हो जायेंगे।

अब हम आगे बढ़ते हैं। पहले हमने नरकगति में देख लिया, अब तिर्यचगति में उदय कौन-कौनसा हो सकता है उसको देखेंगे। तिर्यचगति है तो उनके कौनसा शरीर है ? *श्रोता: औदारिकशरीर/ औदारिकशरीर* है। संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव है तो यहां कोई न कोई संहनन का उदय होगा ही होगा। यहां एक संहनन मिलाने पर बाकी की सब प्रकृतियां वे ही की वे ही लेनी हैं, वैसे ही लेनी हैं। पचपन, छप्पन और सत्तावन हो जायेंगे। एक-एक बढ़ा दिया। अब इसमें अगर उद्योत बढ़ायेंगे तो और एक-एक बढ़ेगी। अभी उसकी बात नहीं की है। देखो, पचपन के उदय में यहां तीनों वेद पाये जाते हैं। किसीके स्त्रीवेद है, किसीके पुरुषवेद है और किसीके नपुंसकवेद है। वेदों के पलटने से यानी अनेक जीवों की अपेक्षा यह पलटने की बात की। एक जीव की अपेक्षा पलटता है ऐसा इसमें से नहीं लेना। क्योंकि अलग-अलग जीवों की अपेक्षा उदय के अलग-अलग कॉम्बिनेशन्स क्या हो सकते हैं उसकी यहां बात चल रही है।

मोहनीय के चौबीस भंग होते हैं। वेदनीय के दो हैं। नामकर्म के ? अब यहां देखो नामकर्म में भंग कैसे देखेंगे ? संस्थान कौनसा हो सकता है ? बोलो- *श्रोता: एक से छह तक कोई भी/ छह* संस्थान में से कोई भी एक संस्थान हो सकता है। संस्थान के नाम मालूम हैं न ? समचतुरस्रसंस्थान, फिर न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थान, स्वातिसंस्थान, कुब्जकसंस्थान, वामनसंस्थान, हुण्डकसंस्थान कोई भी संस्थान हो, सम्यक्त्व होने में कोई बाधा नहीं है। अरिहंतों को होगा कि नहीं कोई संस्थान ? कौनसा होगा ? *श्रोता: समचतुरस्रसंस्थान/ समचतुरस्रसंस्थान* ? *छहों* में से कोई भी हो सकता है। हमने अरिहंत को कौनसा होता है पूछा, तीर्थकरों को नहीं। तीर्थकरों के समचतुरस्रसंस्थान

का ही उदय होता है परंतु छह संस्थानों में से कोई भी संस्थान हो, उसमें केवलज्ञान होने में कोई बाधा नहीं है। श्रोता: मोक्ष जाने के लिये समचतुरस्रसंस्थान का नियम है ? मोक्ष जाने के लिये संस्थान का नहीं, संहनन का नियम है। संस्थान का नियम नहीं है।

अपनी तिर्यचगति की बात चल रही है। छहों संस्थान में से कोई एक संस्थान होगा। छह संहनन में से कोई एक संहनन होगा। अभी सम्यक्त्व प्राप्ति की बात है, श्रेणी के गुणस्थानों की बात नहीं। वहां उसके लिये संहनन के नियम होंगे। यहां पर वैसा नियम नहीं है। छह संहनन में से किसी भी संहननवाले जीव को सम्यक्त्व हो सकता है। विहायोगति में से किसीको यहां प्रशस्त का उदय चल रहा है, किसीको अप्रशस्त का उदय है। उसमें तो कोई बात नहीं है। सुभग युगल, स्थिर और शुभ को छोड़ दिया। क्यों ? दोनों का उदय चलता है। अभी हमने देखा था- किसीको सुभग का उदय है किसीको दुर्भग का है। स्वर युगल, आदेय युगल और यशस्कीर्ति युगल के बदलने से; यह बदलता है तो उसमें, उसके भंग भी बदलते हैं। उनका आपस में गुणा करना। $6 \times 6 \times 2 \times 2 \times 2 \times 2 \times 2 \times 2 = 1152$ नामकर्म के भंग होते हैं। इनको मोहनीय के २४ और वेदनीय के २ भंगों से गुणा करने से ५५२९६ भंग होते हैं।

देखो, कोई कहते हैं कैसे याद रखना ? बिलकुल याद नहीं रखना। ये तो केवल हम क्या पढ़ रहे हैं उसका अर्थ समझ में आता है कि नहीं ? उसको देखना। यहां कुछ लोग कह रहे हैं, क्या होता होगा ? यह भंग क्या होता है ? स्थान क्या होता है ? स्थान यानी एक जीव के एक समय में जितनी टोटल नंबर ऑफ प्रकृतियां होती हैं उसको स्थान कहेंगे और इन प्रकृतियों के अलग-अलग कॉम्बिनेशन्स होंगे तो भंग हो जायेंगे। जितने हमने देखे - छह हो सकती हैं पॉसिबिलिटिज्। जितनी पॉसिबिलिटिज् हैं उनको आपस में गुणा करना। देखो, यहां छह संस्थान गुणा छह संहनन गुणा विहायोगति युगल यानी दो, फिर सुभग युगल के दो, फिर स्वर युगल के दो, आदेय युगल के दो, यशस्कीर्ति युगल के दो - इनका आपस में गुणा करो तो हमें नामकर्म के भंग मिल जायेंगे। यह स्थानों की और भंगों की चर्चा कर्मकाण्ड में बहुत विस्तार से हुयी है अपनी। अब हम आगे देखेंगे। यहां भय और जुगुप्सा के बदलने से भंग और बढ़ जायेंगे। उसको और दो गुणा करेंगे हम। अभी भंगों की बात छोड़ देते हैं।

अब हम मनुष्यगति की बात करेंगे। मनुष्यगति में भी तिर्यचगति के समान ही

यहां उदय की प्रकृतियां होंगी। डिफरन्स क्या होगा ? तिर्यचों में उद्योत का उदय हो भी सकता है नहीं भी हो सकता, मनुष्यों के वह होगा ही नहीं। इतना ही यहां डिफरन्स होगा। तिर्यचगति में नीचगोत्र का ही उदय है, मनुष्यों में दोनों ही गोत्र हो सकते हैं। यानी मनुष्यों में जो नीचगोत्रवाले मनुष्य हैं उनको भी सम्यक्त्व हो सकता है। यहां लिखा है देखो, **मनुष्यगति में तिर्यचवत् उदय जानना, विशेष इतना है** यानी इतना डिफरन्स है, इतना अंतर है, इतनी विशेषता है **कि वहां** यानी तिर्यचों में **उद्योत सहित उदय** हो सकता था और यहां मनुष्यगति में **नहीं** होता है। **वहां** यानी मनुष्यगति में **दोनों गोत्रों का उदय पाया जाता है** किसीके नीचगोत्र का उदय है, किसीके उच्चगोत्र का उदय है। **इसलिये तिर्यचगति में कहे हुये भंगों से तीनों जगह गोत्र बदलने से दोगुणा भंग जानना**। अभी हम भंगों की चर्चा नहीं करेंगे, परंतु किसीके नीचगोत्र का उदय है किसीके उच्चगोत्र का है तो इसके बदलने से वहां भंग भी दोगुणे हो जायेंगे।

अब देवगति की बात करते हैं। देवगति में क्या होगा ? जैसे नरकगति में भाषापर्याप्तिकाल में नामकर्म के उदय हमने देखे थे वैसे ही यहां पर भी होंगे। इनके भी संहनन का उदय नहीं है तो यहां भी उनतीस प्रकृतियों का उदय होगा। **विशेष इतना है कि** अभी यहां की विशेषता क्या है ? **यहां नामकर्म की प्रशस्त प्रकृतियों ही का उदय है**। वहां अप्रशस्त का ही उदय था और यहां प्रशस्त का ही उदय है। वहां नीचगोत्र का उदय था और यहां **उच्चगोत्र का** है। अब वेद में यहां स्त्रीवेद या पुरुषवेद का उदय होगा यानी स्त्री को भी प्रथमोपशम सम्यक्त्व होगा, पुरुष को भी होगा। नरक में सारे नपुंसकवेदी थे, यहां स्त्रीवेदवाले और पुरुषवेदवाले हैं। इसलिये यहां केवल दो वेद होंगे। अब उसके बदलने से भंग भी दो गुणे हो जायेंगे।

देखो यहां आगे और भी बात बताते हैं - **वहां दो वेदों के बदलने से नरकगति में कहे हुये भंगों से तीनों जगह दोगुणे भंग जानना**। ऐसे ये भंग निद्रा के उदय रहित जीवों की अपेक्षा कहे। क्योंकि हमने दर्शनावरण की चार ही प्रकृतियों का उदय कहा था, है न ! पांचों ही निद्रा के उदय के रहित जीवों की बात यहां ली थी। अब यहां कहते हैं **ऐसे ये भंग निद्रा के उदय रहित जीवों की अपेक्षा कहे**। इन चारों गतियों में जो उदय कहे उनमें उदयरूप निद्रा और प्रचला में से कोई एक प्रकृति मिलाने पर एक-एक प्रकृति से अधिक का उदय होता है। यानी निद्रा के उदय में

या प्रचला के उदय में भी यह अवस्था पायी जाती है। सम्यक्त्वसन्मुख की अवस्था चल रही है। सन्मुख अवस्था चल रही न यहां पर ? निद्रा या प्रचला का उदय हो सकता है तो उसको भी यहां ले सकते हैं। देखो, देवों के और नारकियों के स्थानगृद्धि, निद्रा-निद्रा, प्रचला-प्रचला का उदय ही नहीं होता है। नहीं समझे ? यानी इतनी गाढ़ी निद्रा वहां मिलेगी नहीं। देव में जाना चाहते हैं या नरक में जाना चाहते हैं ? जितना सोना है यहां सो लो। यहां तो पांचों ही निद्राओं का उदय बदलता रहता है। अभी आगे देखेंगे।

अभी तक तो हमने देखा कौन-कौनसी प्रकृतियों का उदय होता है क्योंकि प्रायोग्यलब्धि में बहुत लंबा चलना है न ! पहले हमने सत्त्व की बात देखी, फिर बंध की देखी, अब उदय की देख रहे हैं। उदय में अभी प्रकृतिउदय की बात अपनी समाप्त हुयी। अब स्थितिउदय में क्या समझना ? कितने निषेकों का उदय होगा ? सत्ता का वर्तमान अवस्था का एक निषेक - एक स्थिति ही उदयरूप होती है। यहां देखें गाथा २९ की टीका में- **उदयवान प्रकृतियों की उदय की अपेक्षा एक स्थिति एक निषेक को एक स्थिति कहने में आता है। अर्थात् उदय को प्राप्त हुआ एक निषेक - उसीका भोक्ता वह जीव होता है।** जिस कर्म का उदय है उसका वह भोक्ता है ऐसे यह कथन की पद्धति है। क्या कहा ? क्रोध का उदय है तो हम उस जीव को क्रोध का भोक्ता कहेंगे। जिस गति का उदय है उसका भोक्ता कहेंगे। वर्तमान आयु को भोग रहा है यानी उसका उदय चल रहा है। क्या कहा ? अँट अ टाइम कितनी स्थितियों का - कितने निषेकों का उदय होता है ? एक निषेक का।

वर्तमान उदयरूप जो सत्तावाला निषेक है, उसका यहां उदय चल रहा है। उदय में हमने प्रकृतिउदय को गिना। अब स्थितिउदय में जो उदयवान प्रकृति है उसका वर्तमान जो एक निषेक है उसका उदय चल रहा है। अब उसमें भी कहते हैं अनुभाग का उदय कैसे होगा ? हमने बंध में और सत्ता में देखा था। जो **अप्रशस्त प्रकृतियां हैं उनका द्विस्थानरूप और प्रशस्त प्रकृतियों का चतुःस्थानरूप अनुभाग का भोगना होता है।** यानी प्रशस्त प्रकृतियों का अनुभाग बढ़कर उदय में आ रहा है। चतुःस्थानरूप अनुभाग यहां उदय में आ रहा है। अब प्रदेशों का उदय कितना होता है ? अब उसमें कुछ जानने लायक बात नहीं है परंतु हम पढ़ लेते हैं। **उदय प्रकृतियों के अजघन्य और अनुत्कृष्ट प्रदेश को भोगता है।** यानी कितने

प्रदेशों का, कितने परमाणुओं का उदय होता है ? उत्कृष्ट नहीं है तो अनुत्कृष्ट है। जघन्य भी नहीं है तो अजघन्य है। उसको अनुत्कृष्ट, अजघन्य कह दिया है।

श्रोता: गाथा २९ में ? गाथा २९ में, प्रश्न क्या है ? *श्रोता: एक निषेक का उदय इसका अर्थ ?* हां, एक निषेक यानी सत्ता का एक निषेक। जब हमने पहले निषेक रचना देखी थी तो जो सत्ता में परमाणु पड़े हैं या कर्म पड़ा है वह किस रूप से पड़ा है ? निषेक की रचना में हमने समयप्रबद्ध का बंध होता है उसकी बात देखी थी, परंतु बंधने के बाद वह सत्ता में किस रूप में अवस्थित है ? यह उदय में आने योग्य नीचे का निषेक और यह ऊपर के निषेक सभी जो हमने देखे थे। अभी कर्मों की कितनी सत्ता बनी? अंतःकोड़ाकोड़ी सागर। ये जो अंतःकोड़ाकोड़ी सागर निषेक हैं, उनमें से किसका उदय चल रहा है ? नीचे का वर्तमान निषेक एक उदयरूप है, बस एक ही। पूरी सत्ता में से एक निषेक है वह उदयरूप चल रहा है इसको कहेंगे एक स्थिति का उदय। निषेकों को स्थितियां भी कहेंगे। यह पहली स्थिति, दूसरी स्थिति। निषेक को स्थिति भी कहने का प्रघात है। कर्मों की स्थिति वह अलग बात है और एक स्थिति यानी एक निषेक वह अलग बात है। हमें यहां की भाषा समझनी है। हम स्वयं जब पढ़ेंगे तो इसका अर्थ भासित होना चाहिये।

यहां कहते हैं जघन्य प्रदेशों का उदय नहीं है और उत्कृष्ट का भी उदय नहीं है। क्योंकि जब उत्कृष्ट निर्जरा होगी तब उत्कृष्ट प्रदेश उदय होगा। अभी तो यह प्रायोग्यलब्धि का जीव है। अब आगे बढ़ेंगे। अब कौनसी प्रकृतियों की उदीरणा होगी ? जो उदयरूप प्रकृतियां हैं उनकी उदीरणा भी चलेगी यहां पर। तो उनमें भी कौनसी प्रकृतियों का उदय है जिनकी उदीरणा भी होगी ? उनके प्रदेश वह सब लगा लेना उसमें। अभी तक हमने बंध देखा, उदय भी देखा। अब सत्त्व कहते हैं। सत्त्व यानी कौनसी प्रकृतियों का सत्त्व है ? स्थितिसत्त्व तो हमने देखा कि स्थितिकांडकघात द्वारा स्थितिसत्त्व अंतःकोड़ाकोड़ी सागर का बनाया था। अनुभाग का सत्त्व भी अप्रशस्त प्रकृतियों का द्विस्थानरूप बनाया था। अभी कौनसी प्रकृतियों की सत्ता इसके होगी और किसकी नहीं होगी उसकी चर्चा कर रहे हैं।

अब हम सत्त्व की बात देखेंगे, गाथा ३१ की टीका पढ़ेंगे- **सम्यक्त्वसन्मुख अनादि मिथ्यादृष्टि के** अनादि शब्द डाला क्योंकि अनादि का है तो उसकी सत्ता में ना

सम्यक् प्रकृति है, ना सम्यग्मिथ्यात्व है। अनादि मिथ्यादृष्टि जीव के **अबद्धायु** के अबद्धायु का अर्थ है जिसने अभी तक आयु का बंध नहीं किया है उस जीव को अबद्धायु कहते हैं। जो आयु भोग रहा है उसकी तो सत्ता है, परंतु आयु नहीं बंधी है तो अन्य तीन आयु उसकी सत्ता में नहीं है, यह बात जाहिर है। **अबद्धायु के तो भुज्यमान आयु बिना तीन आयु** की सत्ता नहीं है। क्या कहा ? अनादि मिथ्यादृष्टि अभी अनादि इसके लिये नहीं लगाया, अन्य प्रकृतियों के लिये लगाया। दूसरी बात, तीर्थकर प्रकृति की सत्तावाले जीव को प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त करने का सवाल ही नहीं है।

कोई **तीर्थकर** प्रकृति की सत्तावाला जीव मिथ्यात्व में आ सकता है कि नहीं आ सकता ? *श्रोता: आ सकता है।* आ सकता है। हां, वह जीव कौनसा होगा ? *श्रोता: नरकगतिवाला।* जिसने पहले मिथ्यात्व अवस्था में नरकायु बांधी थी क्योंकि सम्यक्त्व होने पर नरकायु बांधने का सवाल नहीं है। जिसने पहले नरकायु बांधी थी, बाद में जिसने सम्यक्त्व प्राप्त किया है और तीर्थकर प्रकृति का बंध किया है और जो क्षायिक नहीं हुआ है ऐसा जीव। क्षायिक होगा तो मिथ्यात्व में जाने का सवाल नहीं है। अब क्षायिक नहीं हुआ है, वेदक सम्यग्दृष्टि ही रहा है और वह मरकर जब नरक में जाने के सन्मुख हुआ है तो अंतिम अंतर्मुहूर्त में वह मिथ्यात्व में चला जाता है। मिथ्यात्व में तीर्थकर प्रकृति का बंध नहीं होगा। नरक में जाते ही दूसरी शरीरपर्याप्ति पूरी होते ही उसको सम्यक्त्व हो जाता है, अन्य किसी जीव को इतनी जल्दी नहीं होगा। तीर्थकर प्रकृति का बंध वहां शुरू करता है। परंतु उसको तो वेदक सम्यक्त्व ही होगा क्योंकि एक छोटे अंतर्मुहूर्त के लिये वह मिथ्यात्व में आया है तो उसको प्रथमोपशम होने का सवाल ही नहीं है। लंबे काल तक जो मिथ्यात्व में रहता है उसको प्रथमोपशम होगा।

जिसके **आहारकचतुष्क** की सत्ता... अब यह अनादिवाला लिया है। क्या कहा ? अनादि मिथ्यादृष्टि जीव लिया है; अनादि मिथ्यादृष्टि जीव है तो जिसने पहले सम्यक्त्व और संयम प्राप्त किया होगा तभी आहारक का बंध किया था ऐसा हो सकता है और वह मिथ्यात्व में भी आ सकता है। परंतु यह कौनसा जीव लिया ? अनादि मिथ्यादृष्टि जीव, तो उसके आहारकचतुष्क की भी सत्ता नहीं होगी। यह चतुष्क क्यों लिया ? आहारकशरीर, आहारकअंगोपांग, आहारकबंधन और आहारकसंघात। कभी-कभी द्विक भी कहेंगे - शरीर, अंगोपांग कहकर उसमें बंधन, संघात इन्क्लूड करेंगे।

कहीं चतुष्क भी कहेंगे। **सम्यक्त्वमोहनीय और मिश्र मोहनीय** क्योंकि यह अनादि मिथ्यादृष्टि है इसलिये उसके इन दो की भी सत्ता नहीं है। **इन दस बिना एक सौ अड़तीस का सत्त्व है।** यहां १४८ का हिसाब लगाया है। इन दस प्रकृतियों की सत्ता उसके नहीं होगी तो एक सौ अड़तीस की सत्ता होगी। अब उसने यदि आयु का बंध किया हो तो वह एक आयु उसमें मिला देना। तो एक की ही सत्ता और बढ़ जायेगी। **एक बध्यमान आयु सहित एक सौ उनतालीस का सत्त्व हो जाता है। पुनश्च सम्यक्त्वसन्मुख सादि मिथ्यादृष्टि के** अब सादि मिथ्यादृष्टि में कौन-कौनसी प्रकृति हो सकती हैं उसकी चर्चा है। **अबद्धायु के तो भुज्यमान बिना तीन आयु** यानी उसकी सत्ता नहीं होगी। **तीर्थकर** की भी नहीं होगी।

आहारकचतुष्क की भी नहीं होगी। ऐसा क्यों लिखा ? आहारकचतुष्क का बंध सातवें-आठवें गुणस्थान में होता है। ऐसा जीव छठे में आकर फिर कालान्तर से मिथ्यात्व में भी जा सकता है और लंबे काल तक वहां रहेगा तो उसको क्यों नहीं लिया ? उसकी सत्तावाले को क्यों नहीं लिया है ? *श्रोता: प्रथमोपशम सम्यक्त्व का जीव है/प्रथमोपशम सम्यक्त्व की बात है, तो इसको क्यों नहीं लिया ? श्रोता: इनकी उद्वेलना हो जाती है।* उद्वेलना के लिये भी पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण काल जाता है। उद्वेलना का अर्थ हमने पहले देखा था- जब उद्वेलना होती है, उलटा संक्रमण हो जाता है। यानी किसी मुनिराज ने आहारकशरीर, आहारकअंगोपांग आदि प्रकृतियां बांधी थी। वे मिथ्यात्व में चले गये। लंबे काल तक मिथ्यात्व में रहे तो उनकी उद्वेलना शुरू हो गयी। आहारकद्विक की भी उद्वेलना शुरू हुयी और सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक् प्रकृति की भी शुरू हुयी है, परंतु आहारकद्विक की उद्वेलना जल्दी समाप्त होती है। उसकी उद्वेलना समाप्त हुयी तब अभी सम्यक् प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्व की स्थिति बहुत लंबी बाकी थी। इतनी लंबी स्थिति के होते हुये उस काल में प्रथमोपशम सम्यक्त्व नहीं हो सकता इसलिये जब तक उनकी उद्वेलना नहीं हुयी है तब तक वेदक सम्यक्त्व दुबारा हो सकता है, प्रथमोपशम सम्यक्त्व दुबारा नहीं हो सकता।

इसलिये जिसके अभी आहारकद्विक की सत्ता बाकी है इसका अर्थ है वहां पर उसके सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक् प्रकृति की अभी बड़ी स्थिति बाकी है। इसलिये उसकी सत्तावाला जीव प्रथमोपशम प्राप्त नहीं करेगा, वेदक सम्यक्त्व प्राप्त कर सकता है।

आहारकद्विक की सत्तावाले जीव भी सभी जीवसमासों में पड़े हैं; एकेन्द्रिय में, निगोद में भी ऐसे कितने ही जीव हैं कि जिन्होंने कभी आहारकद्विक बांधे थे। इसका अर्थ उन्होंने सातवां-आठवां गुणस्थान कभी प्राप्त किया था। ऐसे जीव हैं सब जगह - सभी जीवसमासों में हैं। हम तो देखते हैं न, ये कीड़े, मकोड़े - ऐसे हो सकता है उनमें से कोई जीव अनेक बार सम्यक्त्व से गिरा हुआ हो और अपने से पहले मोक्ष जानेवाला हो। हमें तो लगता है मुमुक्षुओं को ही मोक्ष होगा। क्यों ?

अब कहते हैं १४० की सत्तावाले को **सम्यक्त्वमोहनीय की उद्वेलना होने पर** उसको सम्यक्त्वमोहनीय का सत्त्व नहीं होगा। ख्याल में आयी बात ? सम्यक्त्वमोहनीय यानी सम्यक् प्रकृति पूर्णरूप से मिथ्यात्वरूप टर्न हो गयी है। उसको अभी क्या है ? सम्यक् प्रकृति की सत्ता नहीं पायी जायेगी तो १३९ का सत्त्व होगा। फिर **मिश्र मोहनीय यानी सम्यग्मिथ्यात्व की उद्वेलना होने पर** उद्वेलना होने पर यानी उद्वेलना पूर्ण होने पर अभी उसकी भी सत्ता नहीं पायी जायेगी। तब **एक सौ अड़तीस का सत्त्व होता है**। यानी अनादि मिथ्यादृष्टि जैसा हो जाता है। उसने यदि आयु का बंध किया हो तो क्रम से हर एक में एक-एक प्रकृति बढ़ा देना तो **एकसौ इकतालीस** होंगी, **एकसौ चालीस** होंगी, फिर **एकसौ उनतालीस** होंगी। **क्योंकि आहारकचतुष्क की उद्वेलना हुये बिना तथा तीर्थकर सत्तावाला जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्व के सन्मुख नहीं होता**। मूल पुस्तक में **तथा** शब्द नहीं था, वह डालना आवश्यक है, नहीं तो उसका अर्थ अलग ही होता है कि आहारकद्विक की उद्वेलना हुये बिना तीर्थकर की सत्तावाला जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त नहीं कर सकता। इसलिये यहां तथा शब्द बहुत आवश्यक है और वही नीचे मैंने विशेषार्थ में भी लिखा है।

जिसके एक साथ आहारक और तीर्थकर की सत्ता है ऐसा जीव उन दोनों की सत्ता सहित मिथ्यात्व में नहीं आ सकता। ऐसा नियम है। परंतु यहां प्रश्न है कि तीर्थकर की सत्तावाला जीव मिथ्यात्व में आता है तो नरकायु की सत्तावाला मिथ्यात्व में जाकर अंतर्मुहूर्त में मरकर नारकी होकर शरीरपर्याप्ति पूर्ण होते ही क्षयोपशम सम्यक्त्व प्राप्त करता है, प्रथमोपशम नहीं। ऐसा कह सकते हैं कि आहारकचतुष्क की उद्वेलना हुये बिना प्रथमोपशम सम्यक्त्व के सन्मुख नहीं होता तथा तीर्थकर की सत्तावाला मिथ्यादृष्टि भी प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त नहीं

करता। ये दो वाक्य अलग-अलग हैं इसलिये वहां **तथा** शब्द डालना आवश्यक था। नहीं तो ऐसे ही पढ़ लेते थे तो उसका अर्थ भासित नहीं हो रहा था।

अभी हम अनुभाग वगैरह कितना होता है उसकी बात छोड़ देंगे। प्रत्येक में प्रकृति, स्थिति, अनुभाग वगैरह की क्या-क्या बातें होती हैं, किसका उदय है, किसका बंध है - ये बातें हमने देख ली हैं। प्रायोग्यलब्धि के अंत तक ये बातें अभी ऐसी ही बनी रहेंगी। अब गाथा ३३ की टीका पढ़ेंगे- **उसके पश्चात् अभव्य के भी योग्य ऐसे चार लब्धिरूप परिणाम को समाप्त कर** ये चार लब्धि के जो परिणाम हैं - चौंतीस प्रकृतिबंधापसरण स्थान हैं ये जो-जो बातें अभी हमने देखी वे सभी अभव्य जीवों के भी हो सकती हैं। इसलिये इसको कहते हैं अभव्य के भी योग्य ये चार लब्धिरूप परिणाम यहां तक समाप्त कर **भव्य जीव ही**, ही लगाया। **अधःप्रवृत्त, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण को करता है।** यानी करणलब्धि में प्रवेश कौन करेगा ? जो भव्य जीव है वही करेगा। **इन तीनों करणों का गोम्मटसार में जीवकाण्ड के गुणस्थानाधिकार में और कर्मकाण्ड के त्रिकरणचूलिका अधिकार में विशेष व्याख्यान है वहां से जानना।** बहुत विस्तार से उसका अपना यहां अभ्यास हुआ है।

हमने पंचलब्धि पुस्तक पर भी यहां एक शिबिर लिया था- प्रथमोपशम सम्यक्त्व की पूर्व होनेवाली पांच लब्धि। ऐसे ही छह-छह घंटे वहां पर भी सिखाया था। यह पूरी पुस्तक पढ़ाई थी। उसकी सभी बातें विस्तार से अपनी हो गयी थी यहां पर। अभी हम यहां बिलकुल स्थूलरूप से उसकी चर्चा करेंगे क्योंकि करणलब्धि हुये बिना सम्यक्त्व नहीं होगा, है न ! तो उसको भी हम देख लेते हैं थोड़ा। यह करणलब्धि में भी क्या-क्या होता है ? अभी जो हमने प्रायोग्यलब्धि के बारे में देखा है उसमें तो कोई आपको केश्वन नहीं है न ? नहीं तो वापस आपको प्रायोग्यलब्धि में लायेंगे तो वह नहीं बनेगा। करणलब्धि शुरू होगी तो आगे ही बढ़ना पड़ेगा, वहां से वापस नहीं लौट सकते हैं।

श्रोता: हर जीव स्वाध्याय के समय प्रायोग्यलब्धि में आयेगा ही एक बार ? प्रश्न है हर बार हम स्वाध्याय करते हैं तो हम प्रायोग्यलब्धि तक आते हैं कि नहीं आते हैं ? स्वाध्याय में तो बैठता है, परंतु मन कहां घूम रहा है ? परिणाम उतने विशुद्ध हैं कि नहीं हैं ? स्वाध्याय यानी पढ़ने मात्र को स्वाध्याय कहना कि नहीं कहना ? हमने कहा था देशना भले इस भव की है या पूर्व भव की है। ज्ञानी की देशना मिली है कि नहीं मिली ?

ये सभी बातें उसमें सोचनी पड़ेगी, हां, तब हम कहेंगे। हो सकता है कि पहले की भी देशना हो या इस भव की भी देशना है। हो सकता है गुरुदेवश्री को सुना तभी तो गौर नहीं किया था, मगर अभी तत्त्व पढ़ते हैं तो ख्याल में आता है कि यह बात हमने उनसे सुनी है तो वह बात अभी कार्य करती है। परंतु जिस समय हम उन तत्त्वों को समझ में यानी ज्ञान में लेंगे, फिर याद करेंगे, स्मरण में ले लेंगे, उस पर विचार चलेगा तब की यह बात है। चार लब्धि एक साथ होती हैं परंतु जब अंतर्मुख परिणाम होंगे, और अधिक गहराई से उस तत्त्व में उतर जायेंगे तब आगे जाकर करणलब्धि की शुरुआत होगी।

श्रोता: ये सभी लब्धि एक साथ हो सकती हैं ? चार लब्धि एकसाथ हो सकती हैं, परंतु एक हो, दो हों उसका कोई मायना ही नहीं है, हां, क्योंकि उसमें कर्मों की सहज कुछ अवस्था बनी है। जिसके कुछ शुभ भाव हुये उसका क्या है ? अन्यमतियों के भी हो रहे हैं। उसकी तो कुछ बात ही नहीं। जब तक सच्चे तत्त्व सुनने को नहीं मिले हैं और समझे नहीं हैं और ये ही सच्चे हैं ऐसा जब तक अंदर से नहीं लगता है तब तक कुछ शुभभाव हुये - नहीं हुये उससे कुछ बात बनती नहीं। हम देखते हैं न यहां मुनिव्रत भी धारण किया है। जिनेन्द्र भगवान ने बताया हुआ सच्चा द्रव्यलिंगी मुनिपद धारण किया है वहां तो कोई गृहीत मिथ्यात्व की बात नहीं है। गृहीत मिथ्यात्व तो है नहीं, परंतु अभी अगृहीत मिथ्यात्व वहां पड़ा है न, उनको यहां द्रव्यलिंगी कहा है। फिर वहां पर भी उन्होंने सच्चे तत्त्व अंगीकार किये हैं कि नहीं ? भले अभी सम्यक्त्व नहीं हुआ है परंतु क्या देशना मिली है कि नहीं ? एक बात। उन्होंने उसको सहीरूप से अंगीकार - स्वीकार किया है कि नहीं यह दूसरी बात। जब तक स्वसन्मुख परिणाम नहीं होते हैं, करणलब्धि में प्रवेश नहीं होता है तब तक आगे का कार्य नहीं होगा।

श्रोता: विशुद्धि कैसे बढ़ावेंगे ? विशुद्धि बढ़ाने से नहीं बढ़ती, वह सहज बढ़ती है। विशुद्धि बढ़ाने के लिये क्या करेंगे ? *श्रोता: कौनसे परिणामों से विशुद्धि बढ़ेगी ?* परिणाम सहज होते हैं ! ये परिणाम भी सहज होते हैं। जो तत्त्व हमने सुने हैं, तत्त्व सुने यानी क्या ? हमने केवल स्वाध्याय किया। हमने आत्मा के बारे में समझा। अभी क्या करना है ? अभी समझे अभी क्या करना है ? *श्रोता: चिंतन/चिंतन ?* क्यों ? जब सामने आम रखा है, उसका बहुत वर्णन सुना था तो ही हमने आम लाया। अभी क्या करना है ? अरे वह तो किसीको बताना नहीं पड़ता ! वहां चिंतन क्यों नहीं करते ? जब सामने

कटोरी में आमरस आया है तो चिंतन क्यों नहीं करते ? यह बहुत मीठा है, पीला है, सुंदर है, खाने में बहुत मधुर लगता है। उसका चिंतन क्यों नहीं करते ? वहां तो डायरेक्ट उसका अनुभव लेते हैं ! हम स्वयं कैसे हैं समझने के लिये स्वाध्याय करते हैं। अब क्या करना है ? चिंतन यानी विकल्प क्यों करना चाहते हो ? चिंतन क्यों करना चाहते हैं ? चिंतन या विकल्प तब तक कार्यकारी है जब तक नहीं समझा था। अब समझ में आ गयी न बात। बस स्थिर हो जाओ, अनुभव करो ! विकल्प क्यों उठाते हैं ? अंदर बड़बड़ाते क्यों हैं ? यह ऐसा हूं, ऐसा हूं, अभी हूं न ! हूं तो जानो न उसको। अब वही कार्य रह गया है। हम बस जल्प में ही रुक गये हैं। बहिर्जल्प हो या अंतर्जल्प हो - जब तक जल्प चलते हैं तब तक आत्मा का चिंतन है, आत्मा का अनुभव करो। अभी डायरेक्ट उसका अवलोकन करो। जो है उसको जानो बस।

श्रोता: यानी उसमें निर्णय करना पड़ेगा ? निर्णय में ही हो जायेगा। निर्णय नहीं है इसीलिये स्वाध्याय; निर्णय होने पर भी स्वाध्याय होगा। निर्णयात्मक भूमि तक नहीं पहुंचा है तब तक ये विकल्प वगैरह कार्यकारी हैं। समझना, समझाना यह सब चलता रहता है। जब वस्तु समझ में आ गयी है तो बस स्थिर होकर जो है उसको जानो न ! हम जाननेवाले भी स्वयं हैं और जिसको जानना है वह भी हम स्वयं हैं। अब क्या करना है ? शुद्ध हूं ! तो शुद्ध किस अपेक्षा से कहा है ? जो शुद्ध है उसको जानो। हम स्वयं हैं वहां, मौजूद हैं, प्रत्यक्ष हैं। प्रत्यक्ष प्रतिभासमय हैं। उसका प्रतिभास करो न ! उसका विकल्प क्यों उठाते हो ? विकल्प तो राग है और हम राग को जान रहे हैं। यह बात रागात्मक है तब तक आत्मा का अनुभव नहीं होगा। वह छूटकर आत्मा का अनुभव होगा। आत्मा का अनुभव होने के पहले विकल्प जरूर आयेंगे, परंतु हमने कहीं अभिप्राय में रख लिया है कि हम विकल्पों से विकल्पातीत हो जायेंगे। प्रक्रिया तो होगी; पहले विकल्प आयेंगे परंतु विकल्प करते रहने से आत्मानुभव होगा यह बात खोटी है।

तो कैसे करना ? कैसे करना सिखाने की क्या जरूरत है ? जिसका स्वाध्याय सही, सरल, योग्य पद्धति से हो रहा है और जिसको गहराई से अपनी अंदर की महत्ता आ रही है - बस स्थिर हो जाओ अंदर में ! हम क्या करना चाहते हैं ? विकल्प उठाना चाहते हैं। जल्प उठाना चाहते हैं। हमें तो विकल्पातीत होने की भी कोशिश नहीं करनी है और ना ही विकल्प उठाने की कोशिश करनी है। हमने वस्तुस्वरूप समझा है कि

नहीं समझा ? यदि समझा है तो बस उसका अनुभव करो। अब यह शब्दों में तो नहीं बताया जा सकता। *श्रोता: यह आत्मा का राग हो सकता है क्या ?* आत्मा का क्या राग है ? आत्मा को जानने की वृत्ति उठ सकती है। वह वृत्ति शुभ रागरूप हो सकती है। परंतु आत्मा का क्या राग है ? देखो-देखो अभी हम आगे बढ़ेंगे।

आपका प्रश्न है अनुभव होने के बाद स्वाध्याय उपदेशादि सब हो सकता है कि नहीं हो सकता ? ये हमारे सामने ग्रंथ हैं वे भावलिंगी संतों ने तो लिखे हैं ! समझाया है। तीर्थंकर की भी बिना इच्छा दिव्यध्वनि छूटती है। स्वाध्याय करने-कराने का कोई निषेध नहीं है। सम्यग्दृष्टि के और किसका अवलम्बन होगा ? ना उसको दुनिया की किसी चीज़ में रुचि है। उसको तो स्वाध्याय में ही रुचि है। क्या करेगा ? चौबीस घंटे तो अंतरंग में स्थिरता नहीं होगी। वह कभी कभार हो जायेगी। तो क्या करेगा ? उसको अवलम्बन किसका होगा ? टीव्ही का या विकथाओं का ? उसके तो और अधिक-अधिक दृढ़ता से स्वाध्याय का अवलम्बन होगा। क्या करेगा वह ? कहां बितायेगा अपना समय ? स्वाध्याय से मन को भी कुछ न कुछ नया प्रमेय मिलता है और उपयोग को एकाग्र करने के लिये तो स्वाध्याय से बढ़कर अन्य कुछ नहीं है।

श्रोता: प्रमत्त, अप्रमत्त में भी ऐसा ही होता है ? बिलकुल यह तो सहजरूप ऐसी अवस्था है। क्या करना है ? यह करना-करना - हम किस क्रिया में घुस गये ? यहां क्रिया की बात नहीं है। जानने की मुख्यता है और तत्त्वों को जानने और निर्णय करने की मुख्यता होती है। तो प्रश्न तब तक उठते कि क्या करें ? कैसा करें ? यह कैसे क्या सीखें ? हम किसके पास जायेंगे ? कौन सिखायेगा हमको ? यह बात तब तक होती है जब तक तत्त्वज्ञान की कचास है। बहुत प्राथमिक स्थूलरूप से बात है वहां ये बातें चलती हैं कि बैठो अभी थोड़ा चिंतन करो। यह तो जिसको तत्त्व समझ में नहीं आता उसके लिये हो सकती है। जिसने तत्त्व पचाया है और अंदर से ऐसा अपना तीव्र माहात्म्य प्रकट होता है, मतलब पूरी दुनिया से अपना माहात्म्य अधिक भासित होता है तो उसका उपयोग बाहर क्यों जायेगा ? उपयोग वहीं चौंटता है जहां की महिमा भासित होती है ! अपनी तीव्र महिमा भासित होगी तो उपयोग सहजरूप से अंदर में ही रहेगा न ? फिर उपयोग जिसको पकड़ेगा, उसका ज्ञान भी हो जायेगा।

उपयोग बाहर भटकता है। हमारा उपयोग विकल्प में रहेगा, विकल्पों को

जानने में उपयोग रहेगा तो अपनी ओर उपयोग नहीं होगा। हां, विकल्पों को जानना छोड़कर उपयोग अंतर्मुख होगा तो उसको उसी काल में अनुभव होगा। वह इतना छोटा काल है। हो सकता है कि कोई जल्प आया मन में कि मैं ऐसा हूं। फिर उसका लक्ष छूटकर अपना लक्ष हो जाये तो अनुभव और प्रतीत हो जाती है; यदि उसका सही स्वाध्याय होगा और शुद्ध हूं का अर्थ समझता होगा तो यह हो सकता है। यदि पर्याय में ही मैं शुद्ध हूं मानने लगेगा और ऐसी मिथ्या मान्यता सहित उसका अनुभव करना चाहेगा तो यह तो हो नहीं सकता। इसलिये द्रव्यानुयोग का हमारा गहरा अध्ययन जब हो जाता है, तब स्वभाव सन्मुखता और एकाग्रता के परिणाम भी सहज उठते हैं और उसमें अनुभूति भी सहज होती है। परंतु यह सब विशुद्धि के काल में होगा। इसलिये इस पंचलब्धि के स्वाध्याय से हमारी उस संबंधी अनेक मिथ्या भ्रमणायें जो चल रही थी वे भ्रमणायें नष्ट हो जायेगी। कौनसे उदय में जीव को सम्यक्त्व होता है उसकी यहां अभी चर्चा चल रही है। सम्यक्त्व होने के पूर्व प्रायोग्यलब्धि में उस जीव की कैसी योग्यता हो जाती है इसका वर्णन है इसमें।

श्रोता: कोई जीव प्रायोग्यलब्धि में आया। मान लो उसके चार या पांच बंधापसरण हुये तो क्या वह जीव वापस लौट सकता है ? आपका प्रश्न है कोई जीव प्रायोग्यलब्धि में है और कुछ स्थितिबंधापसरण हुये। दो-चार प्रकृतिबंध भी रुक गये, फिर क्या वह वापस लौट सकता है ? हां, क्योंकि परिणाम पलट गये। संक्लेशरूप परिणाम हो गये। तत्त्वविचार करते-करते कोई ऐसे दूसरे विचार आये – अरे ! घर में ताला लगा है कि नहीं है ? कूकर रखा है और अभी ध्यान में बैठा हूं तो क्या होगा ? मेरे बच्चों का आज रिझल्ट आनेवाला है, क्या होगा ? यहां बैठे-बैठे यह तो हो जाता है, हो सकता है। *श्रोता: अभव्य को सम्यक्त्व क्यों नहीं होता है ?* अभव्य प्रायोग्यलब्धि तक भी पहुंचा, फिर भी वह आगे नहीं बढ़ेगा क्योंकि उसकी वैसी योग्यता ही नहीं है। अभव्यों में योग्यता ही नहीं है। भव्यों में योग्यता होने पर भी यदि इतने मात्र से संतुष्ट हुआ - सोचेगा बस हमने पढ़ा न आज ? सुना न एक घंटे भर ? वह घर गया तो जाते-जाते वहां के विकल्प चालू हो गये। तो जितनी विशुद्धि तक पहुंचा था वह वहीं पर समाप्त हो गयी। फिर नया बंध, नया पापकर्म वह सब नया चालू हो जायेगा।

उतने काल तक भले ही विशुद्धि थी। वह सुनने में लगा था और सुनते हुये भले

उसकी विशुद्धि बढ़ी थी। परंतु वहां अंतर्मुहूर्त में उसे करणलब्धि नहीं हुयी तो ये चार लब्धिरूप परिणाम भी नहीं रहेंगे। हो सकता है वहां बैठे-बैठे कोई करण मांडे। ऐसा हो सकता है न, तीर्थकर के समवसरण में भी वहां दिव्यध्वनि सुनते-सुनते वह सुनने का विकल्प भी छूट गया। कर्णेन्द्रिय द्वारा तो मतिज्ञान चल रहा था, पर का ज्ञान चल रहा था, वाणी का ज्ञान चल रहा था। वह छूटकर अंतर्मुख परिणाम होने पर उस काल में कोई सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है। कोई मुनि अवस्था प्राप्त कर सकता है। वहां बैठे-बैठे किसीको केवलज्ञान हो जाता है। वहां सामने तीर्थकर विराजमान हैं और समवसरण में दूसरे केवली भी उतनी ऊंचाई पर जाकर विराजमान हो जाते हैं। यह भी तो हो सकता है न ! वह अंतर्मुख परिणाम में होता है। सुनते-सुनते नहीं कहेंगे हम। सुनते हुये तो स्थूलरूप से कहेंगे कि वहां सुन रहे थे और उनको केवलज्ञान हो गया।

तीर्थकर के पादमूल में – केवली, श्रुतकेवली के पादमूल जो क्षायिक सम्यक्त्व होगा तो सुनते-सुनते हुआ क्या ? वहां नियम क्यों कहा ? क्योंकि वहां सुनने में जो ज्ञान की स्पष्टता हुयी है उस संबंध में उसके श्रद्धा की भी अधिक दृढ़ता हुयी है। उस काल में उसको क्षायिक सम्यग्दर्शन हुआ है तो वहां उपदेश पर निमित्त का आरोप आयेगा। परंतु वह सुन रहा था और सुनने से होता है ऐसा मानेंगे तो सुनने में तो कर्णेन्द्रिय द्वारा मतिज्ञान चल रहा था न ! आवाज यानी ध्वनि का ज्ञान चल रहा था, वे कुछ बता रहे थे, उपदेश दे रहे थे उसको सुन रहा था। उसका उपयोग बाह्य में लगा था, जब सुनकर उपयोग पलटकर अंतर्मुख होगा तब उसको सम्यग्दर्शन हुआ कहो या क्षायिक सम्यक्त्व हुआ कहो वह बात ठीक है। जितनी जिसकी योग्यता है - कोई सीधा सातवें गुणस्थान में पहुंच जायेगा मुनि अवस्था होगी। ये अंतर्मुख परिणामों में ही होगा। करणानुयोग में उसको करणलब्धि के परिणाम कहेंगे। ये तीन करण होते हैं और उन तीन करणों के पश्चात् ही उसको सम्यक्त्व होता है। अब यह तीन करणों की बात; उसका काल कितना है ? उनके नाम क्या है ? उनमें क्या-क्या विशेषता होती हैं वह शाम को हम देखेंगे।

बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

१४. करणलब्धि

आचार्य श्री नेमिचन्द्र सिद्धांतचक्रवर्ती ने इस लब्धिसार ग्रंथ की रचना की है। उसीके आधार से पं. टोडरमलजी ने सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका लब्धिसार-क्षपणासार द्वंद्वारी भाषा में भाषाटीका लिखी है और अभी आपके हाथ में उसीका हिंदी अनुवाद है। उसमें प्रथम अधिकार में प्रथमोपशम सम्यक्त्व के संबंध में अपनी यह चर्चा चल रही है। प्रथमोपशम सम्यक्त्व होता है उसके पूर्व में पांच लब्धि होती हैं यानी पांच लब्धिपूर्वक ही प्रथमोपशम सम्यक्त्व होता है।

भले प्रथम बार हो या द्वितीय बार हो, कभी भी हो; जब-जब प्रथमोपशम सम्यक्त्व होता है, उसके पहले पांच लब्धि होती ही हैं। एक बार प्रथमोपशम होकर छूट जाये; जीव मिथ्यात्व में आये; तो कितने ही काल तक उसको वेदक सम्यक्त्व की योग्यता रहती है। वहां इन पांच लब्धि की कंडिशन नहीं है। हां, अभी कोई मिथ्यात्व में आया है वह फिर पुरुषार्थ करेगा, तो फिर सम्यक्त्व प्राप्त करेगा। उसके पास देशना तो है ही; बस तत्त्वविचार में लग गया; कुछ अतत्त्वश्रद्धान हो गया था फिर दुबारा सम्यक्त्व प्राप्त करता है। अब उसमें कितने करण होते हैं ? कौनसे करण होते हैं ? वह विषय अलग है, उसकी चर्चा बाद में। पहले हम प्रथमोपशम सम्यक्त्व में क्या-क्या होता है उसकी चर्चा करेंगे। कहां तक वेदक सम्यक्त्व हो सकता है ? हम उपशम सम्यक्त्व की जब विस्तार से पूरी जानकारी लेंगे उसके पश्चात् यह सभी चर्चा भी करेंगे।

अभी हमने प्रायोग्यलब्धि तक के सभी प्रोसेसेस् देखे हैं। प्रायोग्यलब्धि में बहुत लंबी चौड़ी क्या-क्या बातें होती हैं वह हमने विस्तार से देखी भी। अभी करणलब्धि में जो प्रवेश करता है; प्रायोग्यलब्धि तो भव्य-अभव्य के भी हो सकती है, परंतु उसके बाद किसी भव्य जीव के स्वसन्मुख परिणाम - शुद्धात्माभिमुख परिणाम होंगे तो उसके करणलब्धि की शुरुआत होती है। करण यानी परिणाम; कौनसे परिणाम ? ये ऐसे परिणाम हैं कि वह जीव यहां से लेकर एक अंतर्मुहूर्त में सम्यक्त्व प्राप्त करेगा ही। इन परिणामों के नाम हैं अधःप्रवृत्तकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण। किसी एक जीव की अपेक्षा अगर बात करेंगे तो उसके परिणामों में प्रति समय अनंतगुणा-अनंतगुणा-अनंतगुणा विशुद्धि बढ़ती है।

करणलब्धि मांडनेवाले तीन काल के जीवों के परिणाम केवली भगवान जानते हैं। अनंत जीवों के परिणामों की कंपॅरिझन करने पर उसमें जो विशेषता पायी जाती है उसके आधार से ये तीन करणों के अलग-अलग नाम हैं। एक है अधःप्रवृत्तकरण, दूसरा है अपूर्वकरण और तीसरा है अनिवृत्तिकरण। देखो, कोई जीव अधःकरण शुरुआत करता है उसका काल एक अंतर्मुहूर्त है। अपूर्वकरण का भी काल एक अंतर्मुहूर्त है और अनिवृत्तिकरण का काल भी एक अंतर्मुहूर्त है। परंतु अधःप्रवृत्तकरण का अंतर्मुहूर्त बड़ा है, उसके संख्यातवें भाग प्रमाण अपूर्वकरण का अंतर्मुहूर्त है और उससे भी संख्यातवें भाग प्रमाण इतना छोटा अंतर्मुहूर्त अनिवृत्तिकरण का काल है। तीनों का काल अंतर्मुहूर्त है। परंतु एक से दूसरा छोटा, दूसरे से तीसरा छोटा है। अधःकरण के बाद अपूर्वकरण और अपूर्वकरण के इमीजिएट बाद अनिवृत्तिकरण होगा। इसमें ये जो नाम पड़े हैं वे क्यों पड़े हैं ऐसे नाम ? भिन्न-भिन्न जीवों की अपेक्षा से उनके परिणामों में आपस में तारतम्यता नहीं कहेंगे, उसको उनकी कंपॅरिझन हम कहेंगे, तुलनात्मक कहेंगे ये नाम पड़े हैं।

अभी हम केवल प्रथमोपशम की बात करेंगे। प्रथमोपशम सम्यक्त्व अनादि से कितने ही जीवों ने प्राप्त किया था क्योंकि अनादि जब कहेंगे तो अनंत जीवों ने आज तक किया है, वर्तमान में कोई जीव कर रहे हैं और भविष्य के आनेवाले अनंत काल तक कभी न कभी, कोई न कोई जीव करेगा। करणलब्धि के परिणाम शुरू करके जिसके पहला समय हुआ है उस एक समय के परिणाम कितने अलग-अलग हो सकते हैं यह केवलज्ञानी के ज्ञान में आया है। जो भविष्य में करेंगे वह भी उनके ज्ञान का विषय है, अभी वर्तमान में जो हो रहा है वह भी उनके ज्ञान का विषय है और जो कर चुके हैं वह भी उनके ज्ञान का विषय है। ऐसे कितने जीव हैं ? प्रथमोपशम प्राप्त करनेवाले जीवों ने करणलब्धि शुरू की थी ऐसे जीव कितने हैं ? अनंत हैं। उनके अलग-अलग परिणाम कितने हो सकते हैं ? असंख्यात लोक प्रमाण हो सकते हैं। आप कहेंगे अनंत जीवों के अनंत परिणाम होने चाहिये थे।

अभी दसवीं, बारहवीं वगैरह की परीक्षा हुयी, उसमें लाखों विद्यार्थी बैठे थे। उनको परीक्षाफल यानी सौ में से कितने मार्क्स मिले होंगे ? उनकी कितनी-कितनी पॉसिबिलिटिज हो सकती हैं ? कितनी होंगी ? अरे लोगों को सोचने दो। *श्रोताः*

किसीको ९९, किसीको ९८। हां-हां, कितने हो सकते हैं ? किसीको एक मिला, किसीको दो मिले, हां, तो कितने हो सकते हैं ? और किसीको झिरो मिला हो ? एक सौ एक पॉसिबिलिटिज् होंगी कि नहीं होंगी ? हां, झिरो से हन्ड्रेड तक एक सौ एक पॉसिबिलिटिज् हुयी। परीक्षा में विद्यार्थी कितने बैठे थे ? लाखों और मार्क्स कितने अलग-अलग हो सकते हैं ? एक सौ एक। एक सौ एक होंगे कि नहीं अलग-अलग ? किसीको झिरो, किसीको एक, किसीको दो, आधे-आधे मार्क्स नहीं गिनेंगे। ऐसे ही यहां जीव कितने ? अनंत। अधःकरण के पहले समय में आ चुके हैं, आये थे या आयेंगे उनके परिणाम कितने होते हैं ? असंख्यात लोक प्रमाण।

असंख्यात लोक समझते हैं ? नहीं। एक लोक का अर्थ क्या है ? *श्रोताः असंख्यात प्रदेशः।* असंख्यात प्रदेश। लोकाकाश के जितने असंख्यात प्रदेश हैं उतने क्योंकि असंख्यात के भी असंख्यात व्हेरिएशन्स हैं। हमने आवली में भी असंख्यात समय देखे। आवली तो कितना छोटा माप है। पल्य में कितने होंगे ? असंख्यात। सागर में कितने असंख्यात होंगे ? उनसे भी लोक बहुत बड़ा प्रमाण है। पूरे लोक में कितने प्रदेश होंगे ? उसको कहेंगे असंख्यात। असंख्यात नापने का एक माप है। उसको हम एक लोक कहेंगे। एक लोकाकाश में जितने प्रदेश हैं उस संख्या को; संख्या लेना यहां, प्रदेशों को नहीं लेना है; उन प्रदेशों की संख्या को हम यहां एक लोक कहेंगे। जैसे एक लोक, दो लोक, तीन लोक, चार लोक, करोड़ लोक, कितने लोक लेना है ? असंख्यात लोक। इतनी संख्या में इन अलग-अलग जीवों के परिणामों की विशुद्धि अलग-अलग हो सकती है। इतने वहां व्हेरिएशन्स हैं। अब इनकी हम कंपॅरिझन करेंगे।

किसीको यह परिणाम शुरू करके एक समय हुआ है। दूसरे समय में हर एक की अपनी-अपनी विशुद्धि अनंतगुणा बढ़ेगी। तीसरे समय में उससे भी अनंतगुणा बढ़ेगी। ऐसे करते-करते कोई जीव चौथे समय तक पहुंचा और कोई जीव अभी पहले ही समय में है। अनंतगुणा विशुद्धि करते-करते जो चौथे समय तक पहुंचा है, किसी जीव को ऐसी विशुद्धि पहले ही समय में हो सकती है। किसी जीव को ऐसी विशुद्धि दूसरे समय में हो सकती है। किसी जीव को ऐसी विशुद्धि तीसरे समय में हो सकती है यानी पहले से चौथे समय तक इन परिणामों की समानता हो सकती है। विशुद्धि की समानता हो सकती है। इसको कहेंगे अधःप्रवृत्त यानी यहां अनुकृष्टि होती है। अभी हमें

बहुत डिटेल में जाने की जरूरत नहीं, परंतु अन्य-अन्य जीवों के, ऊपर और नीचे के समयों में परिणामों की समानता हो सकती है। उसको हम क्या कहेंगे ? अनुकृष्टि। अनुकृष्टि अधःप्रवृत्तकरण की विशेषता है। किसी जीव ने पहले समय में कोई परिणाम किये। हर एक के अपने-अपने परिणाम जो व्हेरिएबल हैं; अनंत जीवों के कितने व्हेरिएण्ड्स हो सकते हैं ? असंख्यात लोक। हर एक की अपनी-अपनी विशुद्धि बढ़ने पर ऐसा भी हो सकता है कि चौथे समय का जो परिणाम है और किसीका पहले समय का परिणाम है दोनों की विशुद्धि समान हो सकती है। बहुत विस्तार से इसकी संदृष्टि भी बनायी है। काल्पनिक संख्यायें लेकर भी समझाया है। गणित के रूप में भी इसको विस्तार से समझाया है। हमें तो इतना ही समझना है कि अधःकरण नाम क्यों पड़ा है।

हम पहले गाथा ३४ की टीका पढ़ेंगे- **तीनों ही करण प्रत्येक अंतर्मुहूर्त काल मात्र स्थिति युक्त हैं** यानी हर एक का अपना-अपना काल कितना है ? एक अंतर्मुहूर्त का है। **तथापि ऊपर से संख्यातगुणा क्रम युक्त हैं।** ऊपर से का अर्थ क्या है ? अनिवृत्तिकरण से अपूर्वकरण का काल संख्यातगुणा है और अपूर्वकरण से अधःकरण का काल संख्यातगुणा है। हमने नीचे से बताया था, अधःकरण का अंतर्मुहूर्त बड़ा है और उसके संख्यातवें भाग प्रमाण अपूर्वकरण का है और उसके संख्यातवें भाग प्रमाण अनिवृत्तिकरण का काल है, बात एक ही है। **अनिवृत्तिकरण का काल अल्प है, उससे अपूर्वकरण का काल संख्यातगुणा है और उससे अधःप्रवृत्तकरण का काल संख्यातगुणा है।** अब अधःकरण नाम उसको क्यों दिया ? यह बात गाथा ३५ में बता रहे हैं- **चूंकि यहां नीचे के समयवर्ती** नीचे के यानी जिसको अधःकरण शुरू करके एक समय हुआ है। आप कहेंगे अँट अ टाइम एक समय में कहां सब शुरू कर रहे हैं ? नहीं, किसीने अनंतकाल पहले किया था, परंतु उसका जो पहला समय था और जो आज कर रहा है उसका पहला समय और जो भविष्य में करेगा उसका पहला समय इनके परिणामों की तुलना चल रही है। इसतरह इनकी कंपॅरिझन चल रही है।

आप जब क्रिकेट मॅच देखते हैं तो वहां कोई स्कोअर चलता है। अभी तीसरे ओव्हर में कितना स्कोअर हुआ ? तो कॉमेंटेटर कम्पेअर करता है पूर्व के मॅचों के साथ - इतने साल में यह मॅच हुयी थी, उसमें उसने कितना स्कोअर किया था ? भविष्य की कोई बात करने की वहां कोई शक्यता नहीं है। क्योंकि जो हो चुका है उसको तो जान

रहे हैं। परंतु केवलज्ञानी भविष्य की भी बातें जानते हैं। तीनों काल के अनंत जीवों के सभी द्रव्य, गुण, पर्यायों को एक साथ जानते हैं, वह उनके ज्ञान का विषय है। उनमें क्या-क्या परिणाम हो सकते हैं उसकी यहां चर्चा है। **नीचे के समयवर्ती** यानी पहले, दूसरे आदि समय के **किसी जीव के परिणाम ऊपर के समयवर्ती** यानी मान लेते हैं आठवें, नौवें, दसवें समय के परिणाम **किसी जीव के परिणामों के सदृश होते हैं। इसलिये इसका नाम अधः प्रवृत्तकरण है।**

भावार्थ- करणों के नाम नाना जीवों की अपेक्षा हैं। नाना यानी अलग-अलग, भिन्न-भिन्न अनेक जीवों की अपेक्षा ये नाम यहां पड़े हैं। **अधःकरण मांडकर** यानी अधःकरण परिणाम शुरू होकर **किसी जीव के थोड़ा काल हुआ है**, थोड़े समय बीत गये हैं। **तो किसी जीव के बहुत काल हुआ है**, बहुत यानी अंतर्मुहूर्त से ज्यादा नहीं गिन सकते हैं। अधःकरण के अंतर्मुहूर्त में से थोड़ा काल समझ लेना। **उनके परिणाम इस करण में संख्या और विशुद्धता से समान भी हो सकते हैं ऐसा जानना।** अभी तो हम यहां विशुद्धता की बात करेंगे। संख्या को समझना है तो बहुत विस्तार से समझना पड़ेगा। पंचलब्धि पुस्तक में उसकी अलग-अलग संदृष्टि बनाकर समझाया है और हमारे घर में स्वाध्याय चलता है उसमें हमने विस्तार से लिया है, उसकी सीडीज् भी हैं। अभी क्या है, जब गणित का प्रकरण आता है और शाम का समय है तो यह विषय बहुत क्लिष्ट हो जाता है। क्योंकि सबको उसमें समान रुचि नहीं होती है फिर भी उसमें से स्थूल-मोटी महत्व की बातें हैं उनको देखकर आगे बढ़ेंगे।

श्रोता: अधःकरण के अंतिम समय के जो परिणाम हैं वे सब जीवों के एक से होंगे कि अलग-अलग होंगे ? अलग-अलग हो सकते हैं। आपका प्रश्न है अधःकरण के अंतिम समय में क्या सबके परिणाम एक समान होंगे ? नहीं होंगे। वहां भी असंख्यात लोक प्रमाण भेद हैं क्योंकि उन्हीं परिणामों के साथ वे अपूर्वकरण में प्रवेश करनेवाले हैं। वहां अपूर्वकरण में भी समानता नहीं है, अनिवृत्तिकरण में जाकर समानता होगी। अभी हम अधःप्रवृत्तकरण का क्या स्वरूप है उसको यहां देख रहे हैं। *श्रोता:* तुलना करने से क्या मतलब है ? तुलना करने से मतलब है किसीके परिणाम कम विशुद्ध हैं, किसीके बहुत ज्यादा अनंतगुणा-अनंतगुणा विशुद्ध हैं। फिर भी उनके अधःकरण हो रहे हैं। *श्रोता:* उनका अँक्रेज लेना है पहले समय का, दूसरे समय का ? नहीं, अँक्रेज

नहीं, हर एक जीव का अपना-अपना अलग-अलग परिणाम है। उनमें इतने व्हेरिएशन्स हैं और इतने व्हेरिएशन्स के साथ भी अधःकरण चलता है। ये व्हेरिएशन्स होते हुये विशुद्धि ऐसी बढ़ती है कि जब सभी जीव अनिवृत्तिकरण तक पहुंच जायेंगे तब जाकर सबके परिणाम समान हो जायेंगे। वहां विशुद्धि की समानता लेना।

अभी जब हम अनिवृत्तिकरण तक पहुंच जायेंगे तो वह बात आयेगी। यहां अधःकरण में इतनी ही बात है कि विशुद्धता में असमानता है, फिर भी हर एक की अपनी-अपनी विशुद्धि प्रतिसमय अनंतगुणा बढ़ रही है। हर एक में यह कार्य हो रहा है। किसीने कम विशुद्धि से शुरू किया है, किसीने अधिक विशुद्धि से शुरू किया है। अनिवृत्तिकरण में जाकर सबकी विशुद्धि समान हो जायेगी। *श्रोता: यहां समान को लेना है ?* समान भी हो सकती है और असमान भी हो सकती है। किसी-किसीके समानता है, एक दूसरे से सबकी समानता तो हो ही नहीं सकती। समझ में आती है बात ? अधःकरण नाम क्यों पड़ा है इसकी यह चर्चा है। परंतु अधःकरण में क्या-क्या कार्य होता है ? उसकी हम चर्चा करेंगे। देखो, अभी पहले अपूर्वकरण किसको कहा उसको देखेंगे, गाथा ३६ नंबर की टीका- **प्रति समय जीवों के भाव भिन्न ही होते हैं, वह अपूर्वकरण है।** एक समय की जो रेंज है वह विशिष्ट रेंज होगी। एक समय में भिन्नता भी हो सकती है और समानता भी हो सकती है। अभी अपूर्वकरण की बात हो रही है।

अधःकरण में क्या है ? कोई पहले समयवाला, कोई चौथेवाला उनकी समानता यानी सदृशता हो सकती है। अपूर्वकरण में आने पर क्या होगा ? एक समय के जो परिणाम हैं उनमें समानता हो सकती है - असमानता भी हो सकती है क्योंकि उसकी अपनी रेंज जघन्य से उत्कृष्ट तक की है। परंतु कोई भी पहले समय का परिणाम दूसरे समय के परिणाम के साथ मॅच नहीं हो सकता, समान नहीं हो सकता। अपूर्वकरण के पहले समय में परिणामों की अपनी रेंज अलग है और पहले समय के उत्कृष्ट परिणाम से भी दूसरे समय का जघन्य परिणाम अनंतगुणा विशुद्ध है। यानी प्रति समय की अपनी-अपनी रेंज अलग-अलग है। ऊपर नीचे के समयों में कोई समानता-सदृशता नहीं है उसको कहेंगे अपूर्वकरण। दूसरे, तीसरे आदि समयों के परिणाम अपूर्व-अपूर्व ही होंगे। भिन्न-भिन्न समयों में परिणामों की समानता नहीं है। एक जीव की तो होती ही नहीं है क्योंकि एक जीव में प्रति समय अनंतगुणा-अनंतगुणा-अनंतगुणा-अनंतगुणा

विशुद्धि बढ़ रही है। एक जीव में तो समानता का सवाल ही नहीं है।

भिन्न-भिन्न जीवों के परिणामों की आपस में तुलना करने पर समानता या असमानता होती है या नहीं उसकी चर्चा है। अधःप्रवृत्त में नीचे ऊपर के समयों में परिणामों में समानता हो सकती है, नहीं भी हो सकती वह जाहिर ही है। अपूर्वकरण में एक ही समय में समानता-असमानता हो सकती है, परंतु नीचे के समय के परिणाम की किसी भी अन्य जीव के ऊपर के समय के परिणाम के साथ समानता हो ही नहीं सकती। यह है अपूर्वकरण। सभी जीवों के परिणामों में विशुद्धि प्रति समय अनंतगुणा-अनंतगुणा बढ़ते-बढ़ते जब अपूर्वकरण के अंतिम समय में पहुंच गये और उसके बाद जब अनिवृत्तिकरण में प्रवेश हुआ तब वहां जाकर सबके परिणामों की समानता हो जाती है। अब अनिवृत्तिकरण के अंतर्मुहूर्त के जितने समय हैं, हम मान लेते हैं वहां ८ समय हैं। हर एक समय का एक ही परिणाम होता है यानी अनिवृत्तिकरण में प्रत्येक समय में विशुद्धि के अविभागप्रतिच्छेद हैं उनकी समानता पायी जाती है, एक अंश का भी डिफरन्स नहीं होगा। हां, कोई क्रोधवाला होगा यानी किसीका क्रोध का उदय है, किसीका मान का है, किसीका माया का है। कोई नरकगतिवाला है, कोई देवगतिवाला है, ये चारों गति के डिफरन्सेस तो होंगे। किसीका मनोयोग है, किसीका वचनयोग है, किसीका काययोग है, लेश्या अलग-अलग होती हैं ये डिफरन्सेस होंगे। किसीकी शरीर की अवगाहना छोटी है, किसीकी बड़ी है। वेद का उदय किसीका कोई है। ये डिफरन्सेस भले होते हैं परंतु प्रत्येक समय में सबकी विशुद्धि एक समान होती है।

विशुद्धि शब्द बहुत जगह आयेगा। विशुद्धिलब्धि में भी विशुद्धि कह रहे हैं। वहां तो सामान्य शुभराग-धर्मानुराग है। यहां जो विशुद्धि की अनंतगुणा बढ़ोतरी बता रहे हैं; वह तत्त्वज्ञान की निर्मलता-स्पष्टता ले लेना है। तत्त्व के संबंध में बिलकुल निःशंक निर्णय है और तत्त्वनिर्णय पूर्वक आत्मसन्मुखता के परिणाम चल रहे हैं। अंतर्मुहूर्त तक आत्मा को जानते-जानते यह सब कार्य हो रहा है। क्षयोपशम ज्ञानी एक समय में अपने विषय को पकड़ता नहीं है। उसके आत्मसन्मुख परिणाम हो गये हैं और उस काल में यह बात चल रही है। द्रव्यानुयोग स्थूल कथन करता है, उसकी चर्चा करेंगे। पहले थोड़ा गहरा विषय है वह पढ़ेंगे। अंतिम प्रवचन में इसकी चर्चा चलेगी।

अभी हम देख रहे हैं गाथा ३६ की टीका- **प्रतिसमय जीवों के भाव भिन्न ही**

होते हैं, वह अपूर्वकरण है। भावार्थ- किसी जीव को अपूर्वकरण मांडकर अल्प काल हुआ यानी थोड़े समय हुये। किसीको बहुत काल हुआ यानी अधिक समय हुये। उसका काल ही अंतर्मुहूर्त है। बहुत समय यानी दो चार महीने हुये ऐसा नहीं समझना। वहां उनके परिणाम सर्वथा सदृश नहीं होते उसका अर्थ है सदृश होते ही नहीं। नीचे के समयवालों के परिणाम से ऊपर के समयवालों के परिणाम अधिक संख्या और अधिक विशुद्धता युक्त होते हैं यानी उनकी विशुद्धता अधिक ही होगी। तथा यहां जिनके करण मांडकर यानी करण शुरू करके समान काल हुआ है उनके परिणाम परस्पर सदृश भी होते हैं अथवा असदृश भी होते हैं। क्योंकि एक समयवाली जो रेंज है जघन्य से उत्कृष्ट तक, उसमें असंख्यात लोक प्रमाण क्हेरिएणन्स चल रहे हैं। उनमें आपस में समानता या असमानता होगी। जैसे हमने देखा लाखों विद्यार्थी परीक्षा में बैठते हैं तो ७० मार्क्सवाले कितने होंगे ? कितने ही यानी अनेक होंगे। ९० मार्क्सवाले कितने होंगे ? वे भी अनेक होंगे। ऐसे ही यहां पर भी एक समय के परिणामों में समानता भी होगी और असमानता भी होगी।

आगे लिखते हैं- जहां प्रति समय एक ही परिणाम होता है, वह अनिवृत्तिकरण है। एक ही परिणाम यानी विशुद्धि की जो समानता है उसको एक परिणाम कहा। भावार्थ- जिनको अनिवृत्तिकरण मांडकर समान काल हुआ है, उनके परिणाम समान ही होते हैं। परंतु नीचे के समयवर्तियों से ऊपर के समयवर्तियों के अधिक होते हैं ऐसा जानना। ऊपर-ऊपर के समयों में परिणामों की विशुद्धि अधिक होती है, अनंतगुणा होती है। प्रतिसमय अनंतगुणा विशुद्धि का बढ़ना वहां भी चल रहा है, परंतु सब जीवों का एक समान परिणाम है; एकसा परिणाम है। निवृत्ति का अर्थ है भेद; अनिवृत्ति यानी भेद नहीं होना, समानता होना इसलिये इसका नाम ही अनिवृत्तिकरण है। तो यहां हमने तीन नाम कौनसे देखे ? श्रोताः अधःकरण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण। अधःकरण कहो या अधःप्रवृत्तकरण कहो, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण। आगे लब्धिसार-क्षपणासार में ये तीन नाम बहुत बार आपको सुनने को मिलेंगे।

श्रोताः विशुद्धि का भेद माप किसमें करना ? विशुद्धि का भेद माप किसमें करना ? अविभागप्रतिच्छेदों में करना। पहले अपनी बात हुयी थी। ये जीव के परिणाम

हैं, ये कषायों के स्थान वगैरह उसकी चर्चा हुयी थी। विशुद्धि कितनी है ? संक्लेश कितने हैं ? तो उनको किसमें नापते हैं ? और ये कौन नापेगा ? यह तो केवलज्ञानी ने जानकर बताया है। जीव के आत्मसन्मुख परिणाम हैं, वह तत्त्वविचार में लीन है। अपनी कितनी विशुद्धि हुयी ? क्या हुआ ? अभी उसने भी शुरू किया, मैंने भी शुरू किया। यह उसके ज्ञान का विषय नहीं है। हम आगम से इसको जान सकते हैं। यह केवलज्ञानियों के ज्ञान का विषय है और इसको हमें आगम के द्वारा जानना है। अपनी विशुद्धि कितनी बढ़ी ? अभी बढ़ी कि नहीं ? अभी ध्यान में बैठे हैं, सम्यग्दर्शन हुआ कि नहीं ? ऐसा नहीं होता है। उसका पर्याय की तरफ लक्ष ही नहीं है, अभी उसने शुद्धात्मा को अभेद अखंडरूप से ध्यान में लिया है। यहां पर यह सारा प्रोसेस सहज होता है। केवलज्ञानी ने बताया है किस जीव के कैसे परिणाम होते हैं ? उसका यहां वर्णन है।

श्रोता: ये तत्त्वज्ञान संबंधी विशुद्धि और धर्मानुराग साथ-साथ चलेगा ? धर्मानुराग तो सामान्य कथन है। वह अन्यमति को भी होगा। धर्मानुराग यानी अभी कुछ सुनने के परिणाम हैं तो वे मंद कषायरूप भाव है बस इतनी बात है और यहां करणलब्धि में जो विशुद्धि है वह तत्त्वनिर्णय सहित आत्मसन्मुख परिणाम हैं क्योंकि अभी सम्यक्त्व होने जा रहा है। अभी उसके तत्त्व के संबंध में कोई शंका है नहीं - द्रव्य-गुण-पर्याय के संबंध में, सात तत्त्व के बारे में - यानी जैसा शुद्धात्मा का स्वरूप है वैसा उसने अभी विकल्पात्मक भूमिका में निश्चित कर लिया है। अब शुद्धात्माभिमुख परिणामों में उसको सम्यक्त्व की प्राप्ति होने जा रही है। यहां ये तीन करण परिणाम होते हैं। सम्यक्त्व होने के पश्चात् भी जब क्षायिक करने जायेगा तब कहेंगे तीन करण होते हैं। हां, जब अनंतानुबंधी की विसंयोजना होगी तब भी तीन करण अलग होते हैं। जब उपशमश्रेणी चढ़ी जाती है तब भी तीन करण अलग होते हैं। ये सभी उसमें ले लेना। यहां ज्ञान की, श्रद्धा की, चारित्र की सभी की निर्मलता लेना, मुख्यता तो ज्ञान के द्वारा ही यह विशुद्धि यहां पर होती है। परंतु इसमें कषाय के स्थान भी कम हो रहे हैं। विशुद्धि और संक्लेश यह तो हम चारित्रगुण की अपेक्षा बता रहे हैं। परंतु ऐसी विशुद्धि तत्त्वज्ञान के बिना नहीं हो सकती। सामान्य शुभराग से यह बात नहीं हो सकती है यह बात बताना चाहते हैं। कोई व्रतादि अंगीकार किये और ऐसी विशुद्धि हो जाये यह बात हो नहीं सकती। हां, व्रतों के साथ तत्त्वविचार होगा तो अधिक विशुद्धि हो सकेगी। हो

सकेगी, होगी ही ऐसा नहीं। ऐसा भी नहीं है कि महाव्रत अंगीकार किये हों वह सातवें में ही जायेगा, ऐसा बिलकुल नहीं है। भले महाव्रत अंगीकार किये हैं और वहां पर उसका पुरुषार्थ चौथे के योग्य होगा तो चौथे में जायेगा।

जितनी कषाय चौकड़ी का अभाव होनेवाला है, उसके स्थितिकांडकघात आदि का प्रमाण भी शुरू से ही अलग-अलग होगा। वह बात बतायेंगे अभी यहां पर ही। हम ग्रंथ के आधार से ही चलेंगे। ऐसा हमने कहीं-कहीं सुना है कि जीव चौथे-पांचवें को टच करते-करते सातवें में जाता है। तो कोई ऐसा भी कहनेवाले हैं- महाव्रत लिये हैं न ! इसलिये वह जीव नियम से पहले से सातवें में ही जायेगा। ऐसा नियम से जायेगा तो फिर गिरेगा क्यों ? यदि महाव्रत होते हुये भी वह गिरता है उसका अर्थ क्या है ? उसके संक्लेश, विशुद्धि हीनाधिक होती है। अब जिस मात्रा में विशुद्धि बढ़ी है, उस मात्रा में उसको चौथा, पांचवां या सातवां गुणस्थान हो जायेगा। उसने बाह्य व्रत मिथ्यात्व अवस्था में अंगीकार किये थे। उससे कुछ लेना-देना नहीं है। उससे उसकी विशुद्धि नहीं बढ़ रही है। शारीरिक क्रिया से भी नहीं बढ़ रही है और राग से भी नहीं बढ़ रही है। ख्याल में आती है बात ? हां, उसके भेदज्ञानपूर्वक आत्मा में कितनी स्थिरता है, उसके अनुसार उसकी विशुद्धि होगी।

श्रोता: श्रेणी में ये तीन करण कब होते हैं ? ये श्रेणी के जो गुणस्थान हैं न ! आठवें गुणस्थान का नाम क्या है मालूम है ? *श्रोता: अपूर्वकरण।* अपूर्वकरण। नौवें गुणस्थान का नाम ? *श्रोता: अनिवृत्तिकरण।* श्रेणी मांडनेवाला वहां भी तीन करण करता है। उसका अधःकरण सातवें सातिशय अप्रमत्त गुणस्थान में हो जाता है और आठवें गुणस्थान में उसका अपूर्वकरण चलता है। नौवें गुणस्थान में उसका अनिवृत्तिकरण चलता है। उस गुणस्थान के नाम ही करणों के नाम हैं। परंतु वहां पर भी प्रोसेस तो यही चलेगा। इन करण परिणामों में जो-जो बेसिक चीजें होती हैं उसका वर्णन यहां है। हां, वहां कुछ और चीजें होंगी। वहां चारित्रमोहनीय में कुछ विशेषतायें होंगी। अब यहां जो विशुद्धि हो रही है उसका दर्शनमोहनीय पर ज्यादा असर है। यहां उसका उदय और बंध वगैरह मिटने जा रहा है यानी यह जीव मिथ्यात्व से सम्यक्त्व प्राप्त कर रहा है। आगे सम्यग्दृष्टि के जो करण परिणाम होंगे, वहां कोई अन्य प्रकृति में- अनंतानुबंधी की विसंयोजना वगैरह-वगैरह कार्य अलग चलेगा। करणों के नाम तो ये ही हैं।

आत्मसन्मुखता का पुरुषार्थ यही है। फिर भी अलग-अलग लेव्हल पर विशुद्धि अलग-अलग है वहां अन्य-अन्य प्रकृतियों पर असर होता है। क्यों ? ऐसा ही उन प्रकृतियों का भी स्वभाव है। यह सोच-समझकर कुछ नहीं होता। क्योंकि अंतर्मुख परिणाम में कोई चौथे से सातवें में चला जायेगा और कोई सम्यग्दृष्टि अनंतानुबंधी की विसंयोजना करेगा, कोई नियम नहीं है। तो किस प्रकार की विशुद्धि में कौनसा कार्य होगा ? वह निश्चित है। जिस जीव के पर्याय क्रम में जैसा होना है और जिस कर्म में, जिस प्रकृति में जैसा होना है वैसा ही होगा। यह कोई सोच समझकर नहीं कर सकता।

हम कहाँ गये थे ? देऊलगांवराजा में। किसी महिला ने प्रश्न पूछा- 'बेचारे मुनिराज !' कौन ? बेचारे मुनिराज ! 'हम मिथ्यादृष्टि जानते हैं उपशमश्रेणीवाला गिरता है, तो उन बेचारे मुनिराज को पता नहीं था कि उपशमश्रेणी नहीं चढ़नी चाहिये ?' पूछनेवालों को पता ही नहीं न कि उपशमश्रेणी का स्वरूप क्या है ! वहां कितनी मात्रा में गुणश्रेणी निर्जरा और क्या-क्या कार्य होते हैं ! कर्मों की स्थिति कितनी घटती है और कर्मों की कितनी निर्जरा होती है। उपशमश्रेणी में चढ़ने में और उतरने में अलौकिक कार्य हो जाता है ! हम तो केवल गिरने की बात देखते हैं और मुनिराजों को बेचारा कहते हैं। कौन ? मिथ्यादृष्टि जीव। बेचारा ! ऐसे ही लगता है क्योंकि उनको अभी मोक्षमार्ग का स्वरूप मालूम नहीं है न ! तो ऐसे-ऐसे विचार आते हैं। हम घर में रहते हैं, बेचारे मुनिराज ठंड में, बरसात में वन-जंगल में रहते हैं। हमने मुनिराजों को बेचारा कहा और मुनिराज हमारे बारे में सोच रहे हैं ये बेचारे ! कषायों की अग्नि में रात-दिन जलते हैं, घर-गृहस्थी में रहते हैं। इसमें से इनको कोई मुक्ति का मार्ग, विचार नहीं सूझ रहा है। उनको पता है कि ये जीव सचमुच बेचारे हैं - घर में रहते हैं और उसीमें सुख मानते हैं। मुनिराजों ने सच्चा मार्ग - मोक्षमार्ग पकड़ा है और वे उस मार्ग पर चल रहे हैं। अभी वे प्रचुर अतीन्द्रिय आनंद के भोगी हैं। उनको तो साक्षात् चलते-फिरते सिद्ध कहेंगे। उनका स्वरूप ही अलौकिक है। मुनिजीवन ही अलौकिक है। हम उनको बेचारा मानते हैं क्योंकि हमें मुनिजीवन क्या है इसका पता नहीं है।

अभी यहां तीन करण परिणामों की बात हम आगे बढ़ायेंगे। अनिवृत्तिकरण में जिनको अनिवृत्तिकरण शुरू करके समान काल हुआ है; प्रत्येक समय का अपना-अपना समान परिणाम सभी अनंत जीवों का एक जैसा परिणाम उस समय हो जाता

है। ये कौनसे अनिवृत्तिकरण की बात है ? अभी जो उपशम सम्यक्त्व प्राप्त करने जा रहा है, उस समय के अनिवृत्तिकरण की बात चल रही है। इसमें भी जो पहले से चौथे में जा रहे हैं उनके परिणाम एक सदृश होंगे। जो पहले से पांचवें में जा रहे हैं उनकी विशुद्धि अधिक होगी परंतु आपस में एक समान परिणाम होंगे। जो पहले से सातवें गुणस्थान में जानेवाले हैं, उनके परिणाम अनिवृत्तिकरण में आपस में एक सदृश होंगे। हर एक की विशुद्धि शुरू से ही अलग-अलग है। उनमें इतना तो डिफरन्स होगा ही।

श्रोता: गुणश्रेणी वगैरह भी ? हां, गुणश्रेणी वगैरह सभी में। अभी हमने उसकी चर्चा नहीं की न, गुणश्रेणी में भी उसका अंतर होगा। उसका आयाम भी छोटा-बड़ा होगा। वहां गुणश्रेणी में निर्जरा होनेवाले परमाणु की संख्या भी अलग-अलग होगी। पहले से ही यानी शुरू से ही चौथे में जानेवाले का, पांचवें में जानेवाले का और सातवें में जानेवाले के सारे जो प्रोसेसेस् हैं उनके नाम भले वे ही होंगे, परंतु उनका प्रमाण अलग-अलग होता है, हां, क्योंकि उनकी विशुद्धि ज्यादा है। उनमें जो कांडकघात होंगे या जो कोई स्थितिबंध होगा- सातवें में जानेवाले के स्थितिबंध और घटेंगे। हां, चौथेवाले के थोड़े घटेंगे, सातवें में जानेवाले के अधिक घटेंगे। प्रारंभ से ही इनमें अलग-अलग विशेषतायें हैं। हां, अभी आगे देखेंगे।

अधःप्रवृत्तकरण

- १) विशुद्धि प्रतिसमय अनंतगुणा बढ़ती है।
- २) स्थितिबंधापसरण होता है।
- ३) प्रशस्त प्रकृतियों में प्रतिसमय अनंतगुणा बढ़ता हुआ चतुःस्थानगत अनुभागबंध होता है।
- ४) अप्रशस्त प्रकृतियों में प्रतिसमय अनंतगुणा घटता हुआ द्विस्थानगत अनुभागबंध होता है।

पहले में पहले अधःप्रवृत्तकरण होता है, वहां क्या-क्या होता है ? तो कहते हैं जीव की विशुद्धि प्रतिसमय अनंतगुणा बढ़ती रहती है और इसीके निमित्त से, ये जो बातें यहां बतायी जायेंगी वे होती हैं। आपके पास चार्ट है, यहां बोर्ड पर भी हम देखेंगे विशुद्धि कैसी होती है यहां पर अधःप्रवृत्तकरण में ? विशुद्धि प्रतिसमय अनंतगुणा बढ़ती है। जितनी विशुद्धि पहले समय में है, दूसरे समय में उससे अनंतगुणा, तीसरे समय में उससे भी अनंतगुणा, चौथे समय में उससे भी अनंतगुणा। अधःप्रवृत्तकरण का

काल अंतर्मुहूर्त है, उसमें असंख्यात समय होते हैं। प्रतिसमय विशुद्धि अनंतगुणा बढ़ती है और क्या होता है ? स्थितिबंधापसरण होता है। प्रायोग्यलब्धि में भी स्थितिबंधापसरण हमने देखा था। यहां हर अंतर्मुहूर्त में स्थितिबंध घटते चला जाता है। पल्य के संख्यातवें भाग प्रमाण कटौती होकर स्थितिबंध भी क्रम से घटते-घटते चला जाता है।

हर अंतर्मुहूर्त में स्थितिबंध घटते चला जायेगा। यह स्थितिबंध की बात हुयी। यहां बंध की बात चल रही है। प्रायोग्यलब्धि में सत्त्व में से स्थितिकांडकघात के द्वारा स्थितिसत्त्व घटा था, अप्रशस्त कर्मों का अनुभाग भी द्विस्थानीय हुया था। यहां बंधनेवाले की बात चल रही है। स्थितिबंध में कटौती हो रही है एक बात और अनुभागबंध में क्या होता है ? अनुभाग की बात आती है तब दो बातें बतानी पड़ेंगी- प्रशस्त में क्या होता है और अप्रशस्त में क्या होता है ? प्रशस्त प्रकृतियों में प्रतिसमय अनंतगुणा बढ़ता हुआ चतुःस्थानगत यानी चतुःस्थानीय अनुभागबंध होता है। यानी कौनसा ? श्रोता: गुड़, खांड, शर्करा और अमृत। गुड़, खांड, शर्करा, अमृतवाला अनुभागबंध होता है और अप्रशस्त प्रकृतियों में ? प्रतिसमय अनंतगुणा घटता; पहले समय में बंधा था उससे भी हीन अनुभागवाला बंध होगा, अनंतगुणा हीन होगा। उनका बंध कैसा होता है ? द्विस्थानगत। घाति में लता, दारुरूप और अघाति में नीम, कांजीररूप, हां, यहां ऐसा अनुभागबंध होता है। यह अधःप्रवृत्तकरण की विशेषता है। क्योंकि हर समय में एक-एक जीव की अपनी-अपनी विशुद्धि अनंतगुणा-अनंतगुणा बढ़ती है।

ये नाम क्यों पड़े ? सब जीवों की आपस में कंपॅरिझन में क्या होता है उसकी अपेक्षा से ये नाम हैं। यहां अधःकरण में कार्य क्या होता है ? हम एक जीव में देखेंगे - प्रत्येक समय में विशुद्धि अनंतगुणी बढ़ती है और उसके कारण यहां क्या-क्या हो रहा है ? स्थितिबंधापसरण होता है। तो पहले, यहां हमने देखा न बोर्ड पर। यहां क्या लिखा है ? मैं बोलूंगी आप रिपीट करना। विशुद्धि प्रतिसमय अनंतगुणा बढ़ती है। श्रोता: विशुद्धि प्रतिसमय अनंतगुणा बढ़ती है। दूसरा पॉइंट- स्थितिबंधापसरण होते हैं। श्रोता: स्थितिबंधापसरण होता है। तीसरा पॉइंट- प्रशस्त प्रकृतियों में, श्रोता: प्रशस्त प्रकृतियों में। प्रतिसमय, श्रोता: प्रतिसमय। अनंतगुणा बढ़ता हुआ, श्रोता: अनंतगुणा बढ़ता हुआ। चतुःस्थानगत अनुभागबंध होता है। श्रोता: चतुःस्थानगत अनुभागबंध होता है। अभी चौथा पॉइंट- अप्रशस्त प्रकृतियों में, श्रोता: अप्रशस्त प्रकृतियों में। प्रतिसमय, श्रोता:

प्रतिसमय/ अनंतगुणा घटता हुआ, श्रोता: अनंतगुणा घटता हुआ। द्विस्थानगत अनुभागबंध होता है। श्रोता: द्विस्थानगत अनुभागबंध होता है।

यह चतुःस्थानगत क्या है, द्विस्थानगत क्या है इसका अर्थ समझते हैं। समझकर पढ़ेंगे तो ख्याल में आता है कि क्या होगा। द्विस्थानगत यानी नीचे के दो स्थान लेना है यहां पर। अब अधःप्रवृत्तकरण के कारण ये जो बातें होती हैं, ये आगे भी चलेंगी। ये चार बातें आगे अपूर्वकरण में भी चलती रहेंगी। अपूर्वकरण में भी कौनसी चार बातें होंगी ? प्रतिसमय अनंतगुणी विशुद्धता का बढ़ना, स्थितिबंधापसरण का चलते रहना, प्रशस्त प्रकृतियों में अनंतगुणा बढ़ता हुआ चतुःस्थानगत अनुभागबंध होना और अप्रशस्त कर्मों का प्रतिसमय अनंतगुणा घटता हुआ द्विस्थानगत अनुभागबंध होना। ये चारों ही बातें अपूर्वकरण में भी चालू रहेंगी। अपूर्वकरण से इन ऑडिशन और कुछ बातें होंगी। यहां अपूर्वकरण की क्या विशेषतायें हैं वह देखेंगे।

३७ नंबर की गाथा- वहां फिर दुबारा अधःकरण की बात बतायी है। **पहले अधःकरण में गुणश्रेणी, गुणसंक्रमण, स्थितिकांडकघात, अनुभागकांडकघात नहीं होते। तो क्या होता है ? प्रतिसमय अनंतगुणी विशुद्धता बढ़ती है।** अब यह प्रतिसमय अनंतगुणी विशुद्धता बढ़ती है तो उसके कारण क्या होता है ? देखो आगे की बात- **और सातादि प्रशस्त प्रकृतियों का प्रतिसमय अनंतगुणा चतुःस्थानरूप अनुभाग बांधता है तथा असातादि अप्रशस्त प्रकृतियों का प्रतिसमय अनंतवें भाग मात्र अनुभाग बांधता है।** यथायोग्य वहां बंधनेवाली प्रकृतियों की यह बात है। अब उसके बाद बताते हैं यहां स्थितिबंध कैसा होगा। अभी आपने बोर्ड पर पढ़ा, अधःप्रवृत्तकरण की ही बात चल रही है। हमने देखा स्थितिबंधापसरण होता है।

अधःप्रवृत्त के प्रथम समय से लेकर अंतर्मुहूर्त तक पूर्व स्थितिबंध से पूर्व स्थितिबंध यानी अभी प्रायोग्यलब्धि के अंत में जितना स्थितिबंध होता था उससे पल्य का संख्यातवां भाग मात्र हीन स्थितिबंध होता है। यहां भी स्थितिबंध घटने का वही प्रमाण है। अभी तक वही चल रहा है, हमने देखा था अंतर्मुहूर्त तक उतनी की उतनी स्थिति बंधती है, फिर कटौती हो जाती है। फिर उतनी की उतनी स्थिति बंधेगी, फिर कट हो जायेगी। तो कहते हैं **उसके पश्चात् अंतर्मुहूर्त तक उससे भी पल्य के संख्यातवें भाग मात्र घटता स्थितिबंध है।** इसतरह एक अंतर्मुहूर्त द्वारा पल्य के

संख्यातवें भाग मात्र घटता स्थितिबंधापसरण होता है। अधःप्रवृत्तकरण में ऐसे संख्यात हजार अपसरण होते हैं। यानी शुरू में जितना स्थितिबंध था वह घटते-घटते-घटते उसके संख्यातवें भाग मात्र रह जायेगा।

गाथा ४० की टीका- ऐसे होते हुये प्रथम करण के काल में। यह प्रथम करण कौनसा है ? श्रोता: अधःप्रवृत्तकरण। अधःकरण, उसके काल में प्रथम समय संबंधी अंतःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण स्थितिबंध से यानी शुरू में कितना स्थितिबंध था ? अंतःकोड़ाकोड़ी सागर। लास्ट में कितना होगा ? अंतःकोड़ाकोड़ी सागर। फिर भी शुरू में जो बंध था उसके अंत समय में संख्यातगुणा हीन स्थितिबंध होता है। क्योंकि स्थितिबंध हर अंतर्मुहूर्त घटते-घटते-घटते अब अधःकरण के अंत में पहुंच गया तो अंतःकोड़ाकोड़ी सागर का संख्यातवां भाग होगा। नहीं समझे ? अंतःकोड़ाकोड़ी यानी कोड़ाकोड़ी से कम और करोड़ से अधिक; कोड़ाकोड़ी का अर्थ क्या है ? करोड़ गुणा करोड़। मिनिमम कितना है ? करोड़। करोड़ गुणा करोड़ में है तो ८०० करोड़ को क्या कहेंगे ? श्रोता: अंतःकोड़ाकोड़ी। अंतःकोड़ाकोड़ी और ८० करोड़ हो जायेगा तो क्या कहेंगे ? वह भी अंतःकोड़ाकोड़ी। अभी मैंने वह कोई भी फिगर ली। इसतरह से वह संख्यातवां भाग हो जाता है। अब आगे पढ़ेंगे।

अभी मैंने जो बोला न, पहले से पांचवें में जानेवाले की कुछ अलग बात होती है। गाथा ४१ की टीका में बताया है- उस अंत समय में जो स्थितिबंध कहा वह जो स्थितिबंध कहा वह चौथे की अपेक्षा कहा था। उससे देशसंयम सहित प्रथमोपशम सम्यक्त्व को प्राप्त होनेवाले जीव के संख्यातगुणा हीन स्थितिबंध होता है। यानी अधःप्रवृत्तकरण के काल में स्थितिबंध में - स्थितिबंधापसरण में इतनी बड़ी-बड़ी कटौती होगी कि उसका अभी लास्ट में जो स्थितिबंध हो रहा था; वह चौथे में जानेवाले के स्थितिबंध से पांचवें में जानेवाले का स्थितिबंध और हीन होता है, संख्यातवें भाग प्रमाण होता है। फिर भी अंतःकोड़ाकोड़ी सागर होता है। अब पांचवें में जानेवाले से सातवें में जानेवाले की कंपॅरिझन हो रही है- सकलसंयम सहित प्रथमोपशम सम्यक्त्व को प्राप्त होनेवाले के संख्यातगुणा हीन होता है।

अधःप्रवृत्तकरण से ही इनकी विशुद्धि अलग-अलग है। विशुद्धि ज्यादा है तो इनका स्थितिबंध अधिक प्रमाण में घटकर और कम हो गया है। श्रोता: स्थितिबंध कब

नष्ट होता है ? आगे ग्यारहवें गुणस्थान से स्थितिबंध नष्ट होता है। जब तक कषाय है तब तक स्थितिबंध चलता है। ख्याल में आयी बात ? हमने देखा है जघन्य में जघन्य स्थितिबंध किसका होता है ? ज्ञानावरण का। कितना होता है ? श्रोता: अंतर्मुहूर्त। अंतर्मुहूर्त। कब होता है ? दसवें के अंत में। उसके आगे जाकर ग्यारहवें, बारहवें, तेरहवेंवाले को एक साता वेदनीय का ही बंध है और उसमें कोई स्थितिबंध नहीं होता है। साता वेदनीय बंधता है और उसी समय वह चला जाता है। जाने के लिये आता है। तो स्थितिबंध दसवें गुणस्थान तक होता है।

श्रोता: हमने तीन जीव लिये - एक पहले गुणस्थानवाला जब ऊपर जाता है। एक पांचवें गुणस्थानवाला जब उपशम सम्यक्त्व किये हुये है। इन दोनों के सहित प्रथमोपशम सम्यक्त्व के सन्मुख जो जीव है ? ऐसा है, देखो-देखो- पहले से चौथे में जानेवाला, पहले से पांचवें में जानेवाला, पहले से सातवें जानेवाला। श्रोता: तीनों के जब प्रायोग्यलब्धि आयेगी तब तीनों के परिणाम सबके एक समान हैं या अलग-अलग ? क्योंकि आप अधःप्रवृत्तकरण की बात कर रही हैं तो अधःप्रवृत्तकरण में तीनों के परिणाम भी अलग-अलग होंगे ? तीनों की विशुद्धि अलग है ? प्रायोग्यलब्धि में तीनों की विशुद्धि समान होगी कि अलग-अलग होगी ? विशुद्धि अलग है। अलग हो सकती है न, उसमें बहुत व्हेरिएशन्स हैं। अभी प्रायोग्यलब्धि में स्थिति केवल अंतःकोड़ाकोड़ी सागर हो गयी है। उसमें तो जघन्य और उत्कृष्ट के बहुत भेद हैं। अधःकरण में अभी आत्मसन्मुख परिणामपूर्वक वह ऊपर चढ़ रहा है। उसकी बात यहां अलग है और प्रायोग्यलब्धि में भी परिणामों की व्हेरिएशन्स तो बहुत हैं; अधःकरण में और ज्यादा हैं। वहां पर भी व्हेरिएशन्स होंगे परंतु स्थितिबंध घटते जाते हैं क्योंकि स्थितिबंधापसरण हो रहा है। प्रायोग्यलब्धि में प्रकृतिबंधापसरण हुये हैं। ये चौथे में जाये या सातवें में जाये - उन प्रकृतियों का बंध तो रुक ही गया है। वहां पर उसीकी मुख्यता है कि अभी करणलब्धि में प्रवेश होने की योग्यता तैयार हुयी है, वह करणलब्धि में आया नहीं है।

श्रोता: उनकी कंपॅरिझन कर सकते हैं ? हां, कर सकते हैं। पहले से चौथे में जानेवाले की, पहले से पांचवें में जाने वाले की; परंतु अनिवृत्तिकरण में जब आयेंगे तो चौथे में जानेवाला अनिवृत्तिकरण और पांचवें में जानेवाला अनिवृत्तिकरण उनमें फर्क होगा कि नहीं होगा ? श्रोता: इसका मतलब यह तुलना हो रही है ? यह तुलना तो

अपने-अपने के साथ करना। क्या है ? पहले हम सामान्य से उसका स्वरूप देखेंगे। फिर उसमें विशेष से सोचेंगे तो और गहरी बातें ख्याल में आती हैं। इतनी गहराई है जिनागम में, हम तो अभी प्राथमिक बातें देख रहे हैं।

श्रोता: भेदज्ञान कब होगा ? भेदज्ञान तो तत्त्वविचार के काल में चल ही रहा है न। जब से देशनालब्धि मिली है, देशना संबंधी विचार चलते हैं - तत्त्वविचार चलते हैं। प्रायोग्यलब्धि में भी चलते हैं। यहां करणलब्धि में तो भेदज्ञानपूर्वक आत्मसन्मुख परिणामों की मुख्यता लेना है। भेदज्ञान जो विकल्पात्मक है वह तो पूर्व अवस्था में होता है। तत्त्वनिर्णयपूर्वक आत्मसन्मुख परिणाम अंतर्मुहूर्त तक चलेंगे, परंतु वे इतने छोटे अंतर्मुहूर्त हैं कि ये हमारे पकड़ में भी नहीं आवे ऐसे हैं। पहले विकल्प चल रहे थे वे छूट जाते हैं जिसको निर्विकल्प कहेंगे। निर्विकल्प के भी दो अर्थ होते हैं- रागरहित को भी निर्विकल्प कहेंगे और भेदरहित अखंड शुद्धात्मा को जो शुद्धनय का विषय है उसे ख्याल में लें उसको भी निर्विकल्प कहेंगे। दोनों पद्धति से उसको निर्विकल्प कहेंगे। शुद्धात्माभिमुख परिणाम हैं इतनी बात यहां लेनी है। अभी करणानुयोग में विशुद्धि के काल में कर्मों में और जीव के परिणामों में क्या हो रहा है ? उसकी बात चल रही है। उसके बुद्धिपूर्वक कौनसे विचार चल रहे हैं ? क्या है ? उसकी अभी यहां पर बात नहीं है। जो कुछ विकल्पात्मक था वह तो अभी अबुद्धिपूर्वक में चला गया। अभी वह किसका लक्ष कर रहा है ? शुद्धात्मा का।

हम द्रव्यानुयोग की भाषा में इतने कुशल-एक्स्पर्ट हो गये हैं, यूज्ड टु हो गये हैं कि हमें बार-बार उसी भाषा में उसका उत्तर चाहिये। इसकी बात हम पं. टोडरमलजी के मोक्षमार्गप्रकाशक के आधार से थोड़ी देर में करेंगे। पहले थोड़ी-थोड़ी करणानुयोग की भाषा सीखेंगे। यह तो उन्हीं की बात है। पं. टोडरमलजी ने पहले सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका के तीनों ही ग्रंथ लिखे जो करणानुयोग के महान ग्रंथ हैं और बाद में मोक्षमार्गप्रकाशक लिखा। हमारा कमनसीब था कि वह अधूरा रह गया। क्या उनको पता नहीं था कि आत्मा में ही लीन होना चाहिये ? इतना विकल्प नहीं करना चाहिये ? यह हमारी कल्पना की उपज है कि हम इनको विकल्प ठहराकर करणानुयोग को ही छोड़ देते हैं। यह भगवान की वाणी का अविनय हो रहा है। करणानुयोग नहीं समझता कोई बात नहीं। अपनी उसमें रुचि नहीं, कोई बात नहीं है। अगर इसको हम निठल्ला समझकर

ऐसे छोड़ देते हैं और लोगों को भी उपदेश देंगे कि इसकी कोई आवश्यकता नहीं है, बस तुम भेदज्ञान करो। किससे भेदज्ञान करो ? ख्याल में आयी बात ?

सभी अनुयोग वीतरागता के कारण हैं। सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका की पीठिका पढ़ने लायक है, बार-बार पढ़ने लायक है। हमारे मन में जो प्रश्न उठते हैं उन सभी प्रश्नों को उठा-उठाकर पं. टोडरमलजी ने स्वयं उनके उत्तर दिये हैं। यहां हमने जीवकाण्ड में और कर्मकाण्ड के संबंध में भी पीठिका दो बार ली थी। अभी क्या करें ? एक बार यहां देवलाली में शिबिर हुआ था। जीवकाण्ड का पहला शिबिर था। किसी महिला ने मुझे आकर पूछा आपने स्वामीजी को कभी सुना है ? मैंने कहा हम तो परम सौभाग्यशाली हैं, उनके द्वारा ही हमने सुना है और जो कुछ पाया है उन्हीं के द्वारा पाया है। पूरे द्रव्यानुयोग का मर्म उन्हीं के द्वारा पाया है, उनके हम पर अनंत उपकार हैं कि उन्हीं के द्वारा हमने सब कुछ पा लिया है। उसने कहा मुझे नहीं लगता आपने स्वामीजी को सुना है। मैंने कहा क्यों आपको ऐसा क्यों लगता है ? हमने तो जरूर सुना है। उन्हीं से सुना है। उन्हीं से तो हमें मार्ग मिला है ! वह कहने लगी, नहीं-नहीं ऐसा लगता नहीं है, नहीं तो आप करणानुयोग सिखाने का ऐसा साहस-ढाढ़स नहीं करती। क्योंकि उन्होंने समयसार और परमागम ग्रंथों पर प्रवचन किये हैं।

उनको यह पता नहीं था कि स्वामीजी ने स्वयं धवला के आठ भागों के ऊपर प्रवचन किये थे। उस ज़माने में जब टेपिंग नहीं हो रही थी और जब मैंने उनकी यह बात सभा में कही थी वहां सोनगढ़ की अनेक ब्रह्मचारी महिलायें मेरे सामने मौजूद थी। उन्हीं ने बताया कि धवला के आठ भागों पर प्रवचन हुये थे, हमने स्वयं सुने हैं परंतु तब रेकॉर्डिंग नहीं होती थी। यह पता नहीं तो हम अपने मन से कुछ भी सोचते हैं। हां, गुरुदेवश्री तो राजवार्तिक के उद्धरण देते हैं, जयधवला का देते हैं, कितने ही आगम ग्रंथों का देते हैं। ये भूगोल की बातें आती हैं गहरी-गहरी; वहां लवणसमुद्र के पाताल की बात नियमसार के प्रवचन में आयी। गुरुदेवश्री के प्रवचनों के जितने भी ग्रंथ हैं, हमने हर पुस्तक में उनके करणानुयोग के कथन अलग से नोट करके लिखे हैं। उनका गजब का अभ्यास था। उस महिला ने कहा कि नहीं, आप क्यों करणानुयोग सिखाती हो ? उन्होंने कभी नहीं सिखाया। आपको क्या अधिकार है ? मैंने बोला कि क्या आप मानती हैं कि वे भविष्य में तीर्थंकर होनेवाले हैं ? हां, हम जरूर मानते हैं।

मैंने कहा तो जब उनकी दिव्यध्वनि खिरेगी तो कौनसे अनुयोग का उपदेश देंगे ? इन महापुरुषों के भक्त ही अपनी ऐसी मति कल्पना से उन पर ऐसे कुछ ना कुछ दोष लगाते रहते हैं। ऐसी बात होती रहती है। गुरुदेवश्री का करणानुयोग का बहुत गहरा अभ्यास था।

योग के बारे में पहले हमेशा मैं शिबिरो में पूछा करती थी। योग क्यों होता है ? उसका निमित्त क्या है ? कोई नहीं बता सकते थे। अनेक जगह तो अनेक विद्वान भी कोई नहीं बता सकते थे। गुरुदेवश्री के प्रवचनप्रसाद जो पंचास्तिकाय के लेक्चर हैं उसमें उन्होंने कहा है शरीरनामकर्म के उदय से योग होता है। वे तो इतने सहजरूप से बता देते हैं और हमें तो सोचना पड़ता है ! अरे क्या होगा ? क्या कारण होगा ? द्रव्यानुयोग का कोई पक्षपाती होगा और करणानुयोग पढ़ने का निषेध करता होगा तो यह योग्य बात नहीं है। इसमें सर्वज्ञ का और अपने सर्वज्ञ स्वभाव का भी निषेध होता है। करणानुयोग के विषयों में अपनी बुद्धि चलती है, नहीं चलती है वह बात अलग है। बुद्धि उसमें डालेंगे तो चलेगी, क्यों नहीं चलेगी ? ज्ञान तो अपने पास है। केवलज्ञान यहां से उत्पन्न होनेवाला है। ये श्रुतज्ञानियों ने अपने लिये लिखी हुयी बातें हैं। ये क्यों नहीं समझेंगे हम ? जरूर समझेंगे।

देखो, अभी हम यहां देखेंगे। अधःकरण की जो विशेषता है न, उसको थोड़ा छोड़कर हम आगे देखेंगे क्योंकि परिणामों की ऊपर और नीचे कैसे समानता होती है वही बात है। इसमें विशेषतायें नहीं हैं ऐसी बात नहीं है। हमारे घर में स्वाध्याय चलता है, वहां एक-एक लाइन का एक-एक शब्द का बहुत विस्तार से अर्थ भी किया जाता है। परंतु अभी हम इसको थोड़ा गौण करके आगे बढ़ेंगे। क्योंकि मोटी-मोटी बातें समझ में आयेंगी तो फिर बाद में हम उसको विस्तार से समझ सकते हैं। अब आगे अपूर्वकरण में क्या बातें होती है वह हम देखेंगे। देखो, गाथा ५३ की टीका- अपूर्वकरण के प्रथम समय से लेकर, अभी अपूर्वकरण की बात हो रही है।

अधःप्रवृत्तकरण में चार बातें हुयी थी। अब अपूर्वकरण के प्रथम समय से लेकर जब तक सम्यक्त्वमोहनीय और मिश्रमोहनीय का पूरणकाल अर्थात् जिस काल में गुणसंक्रमण द्वारा मिथ्यात्व को सम्यक्त्वमोहनीय और मिश्रमोहनीयरूप परिणमाते हैं, उस काल के अंत समय तक गुणश्रेणी, गुणसंक्रमण, स्थितिखंडन

और अनुभागखंडन ये चार आवश्यक होते हैं। इसका अर्थ समझेंगे। अभी हमने अधःप्रवृत्तकरण में जो चार बातें देखी हैं, वे चार बातें चालू ही रहती हैं। वे तो चल ही रही हैं उसके साथ-साथ और चार आवश्यक यानी अवश्य होनेवाली बातें यहां शुरू हो जाती हैं। यहां क्या शुरू हो जाता है ? गुणश्रेणी की रचना यहां शुरू हो जायेगी। जहां-जहां अपूर्वकरण होता है; क्योंकि करण परिणाम बहुत बार अनेक जगह होते हैं। वहां गुणसंक्रमण भी होता है, परंतु यहां पर नहीं हो रहा है। प्रथमोपशम सम्यक्त्व के पूर्व होनेवाले अपूर्वकरण में यहां पर गुणसंक्रमण नहीं होगा। बाद में होगा जब उपशम सम्यक्त्व की शुरुआत होगी। किसका होगा ? किसमें होगा वह उसकी चर्चा करेंगे।

सामान्यरूप से जहां-जहां अपूर्वकरण होता है वहां गुणश्रेणी भी होती है, गुणसंक्रमण भी होता है, स्थितिकांडकघात भी होते रहते हैं और अनुभागकांडकघात भी होते रहते हैं। कौनसी चार-चार बातें होती हैं ? देखो आपके पास १३ नंबर का चार्ट है उसे निकालना। अधःकरणवत् चार बातें तो होती रहती हैं और इन ऑडिशन इनके साथ-साथ अन्य चार आवश्यक और होते हैं। और होते हैं यानी ? पहलेवाले चार तो होते ही होते हैं, उनके साथ-साथ ये भी बातें प्रारंभ होती हैं।

अपूर्वकरण

अधःकरणवत् चार बातों के साथ अन्य चार आवश्यक और होते हैं -

- १) गुणश्रेणी
- २) गुणसंक्रमण
- ३) स्थितिकांडकघात
- ४) अनुभागकांडकघात

एक है गुणश्रेणी, आप बोलना मेरे बाद- गुणश्रेणी, श्रोता: गुणश्रेणी। गुणसंक्रमण। श्रोता: गुणसंक्रमण। स्थितिकांडकघात, श्रोता: स्थितिकांडकघात। और अनुभागकांडकघात। श्रोता: अनुभागकांडकघात। इनमें से हमने स्थितिकांडकघात और अनुभागकांडकघात की थोड़ी-थोड़ी बातें देखी थी पहले। अभी हमारे लिये नये शब्द कौनसे हैं ? गुणश्रेणी और गुणसंक्रमण। गुण का अर्थ होता है गुणित प्रमाण में, श्रेणी यानी पंक्तिरूप रचना। अभी ये गुणित प्रमाण में पंक्तिरूप रचना होती है यानी क्या होता है ? उसकी हम चर्चा करेंगे।

ये जो चार बातें यहां चालू हो जाती हैं उनका हम यहां स्वरूप देखने जा रहे हैं। अभी हम गाथा ५४ की टीका पढ़ेंगे। स्थितिबंधापसरण तो; स्थितिबंधापसरण का अर्थ याद है कि भूल गये ? हां नीताबहन ? स्थितिबंध का अपसरण यानी क्या ? स्थितिबंध का घटना। **स्थितिबंधापसरण तो अधःप्रवृत्तकरण के प्रथम समय से लेकर गुणसंक्रमण पूर्ण होने के काल तक होता है।** यहां गुणसंक्रमण होता नहीं कहते हैं और यहां लिखते हैं गुणसंक्रमण पूर्ण होने के काल तक होता है। देखो, गुणसंक्रमण को पहले लेते हैं। जब औपशमिक सम्यक्त्व का प्रथम समय होता है, उस समय मिथ्यात्व के जो परमाणु हैं वे सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृतिरूप परिणमते हैं। पहले समय में जितने परिणमित होते हैं - संक्रमित होते हैं; दूसरे समय में उससे असंख्यातगुणा संक्रमित होते हैं; तीसरे समय में उससे भी असंख्यातगुणा; चौथे समय में उससे भी असंख्यातगुणा; ऐसे एक अंतर्मुहूर्त तक गुणित प्रमाण में संक्रमण होता है उसको कहेंगे गुणसंक्रमण।

प्रथमोपशम काल के शुरुआत के एक अंतर्मुहूर्त तक ऐसा गुणसंक्रमण होता है। मिथ्यात्व में से अन्य दो प्रकृतियां तैयार होती हैं। कैसे ? संक्रमण द्वारा, अनुभाग घटकर। ये जो कार्य हुआ उसको गुणसंक्रमण कहेंगे। यहां से लेकर उसके अंतिम समय तक क्या होगा ? स्थितिबंधापसरण; कौनसी प्रकृतियों का स्थितिबंधापसरण ? स्थितिबंध सबका घटना है। मिथ्यात्व का स्थितिबंध कब तक होगा ? *श्रोता: करणलब्धि के अंतिम परिणाम तक।* हां, करणलब्धि के अंतिम समय तक। बाद में उसका बंध नहीं होगा। परंतु अन्य ज्ञानावरणादि कर्मों का बंध चलता रहता है। उसमें भी स्थितिबंधापसरण चलता रहता है। उसका स्थितिबंधापसरण कहां तक होगा यह बता रहे हैं। प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त होकर गुणसंक्रमण के अंत तक, उस अंतर्मुहूर्त तक स्थितिबंधापसरण तो चलता रहेगा। एक बात हुयी - ख्याल में आयी न ? स्थितिबंध का घटना चल रहा है वह कहां तक होता है वह बात बतायी। वहां तक विशुद्धि क्रम से बढ़ती जाती है। गुणसंक्रमण होने के काल तक विशुद्धि हर समय बढ़ रही है। बाद में विशुद्धि स्टेडी होगी या हीनाधिक होगी। क्योंकि बाद में उसका उपशम सम्यक्त्व प्राप्त करके कुछ काल बीत गया है। उसका जो अंतर्मुहूर्त काल है, उसमें से छोटे अंतर्मुहूर्त तक गुणसंक्रमण होता रहता है और तब तक विशुद्धि हर समय बढ़ती है इसलिये स्थितिबंधापसरण चल रहा है।

श्रोता: आपने कहा कि गुणसंक्रमण प्रथमोपशम सम्यक्त्व के बाद में नहीं होता

है ? प्रथमोपशम होने के पूर्व अपूर्वकरण में नहीं होता है, अनिवृत्तिकरण में भी नहीं होता। कहाँ होता है ? उपशम सम्यक्त्व प्राप्त होने के पहले समय से लेकर मिथ्यात्व के परमाणु गुणसंक्रमण के द्वारा सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक् प्रकृतिरूप होते हैं उसको वहाँ गुणसंक्रमण कहा। अन्य किसी प्रकृति में यहाँ गुणसंक्रमण नहीं हो रहा है। *श्रोता: मिथ्यात्व के परमाणु संक्रमित हो जाते हैं ?* हां, तभी तो दो प्रकृतियाँ तैयार होती हैं। वहाँ संक्रमण होना यानी मिथ्यात्व का अनुभाग घटकर अन्य दो प्रकृतियाँ तैयार होना। *श्रोता: यहाँ क्यों कहा है ?* इसलिये लिया है कि जहाँ-जहाँ अपूर्वकरण होता है वहाँ-वहाँ गुणसंक्रमण होता है। जब अनंतानुबंधी की विसंयोजना में अपूर्वकरण होगा तब अनंतानुबंधी के परमाणु गुणसंक्रमण के द्वारा अन्य कषायरूप हो जायेंगे। जब श्रेणी में गुणसंक्रमण होगा तो वहाँ कुछ प्रकृतियाँ हैं वे गुणसंक्रमण द्वारा अन्यरूप होती जायेंगी। अपूर्वकरण नाम के करण की यह विशेषता है इसलिये यहाँ उसका वर्णन है। परंतु उपशम सम्यक्त्व के पूर्व होनेवाले अपूर्वकरण में इस पोझिशन पर अभी गुणसंक्रमण नहीं है। उपशम सम्यक्त्व होने पर होता है।

श्रोता: संक्रमण केवल सजातीय प्रकृतियों में ही होगा ? अभी मिथ्यात्व दर्शनमोहनीय की प्रकृति है। एक ही प्रकृति थी, उसमें से अनुभाग अनंतगुणा घटकर सम्यग्मिथ्यात्व हुयी। उससे भी अनुभाग अनंतगुणा घटकर देशघातिरूप सम्यक् प्रकृति हुयी। उदय तीनों का नहीं है, अभी उपशम के काल में तो तीन प्रकृतियाँ हो रही हैं। *श्रोता: संक्रमण अनुभाग में नहीं है ? स्थिति में है ?* अभी तो अनुभाग में संक्रमण चल रहा है, स्थिति तो जितनी है उतनी है। यहाँ सम्यक्त्व होने पर मिथ्यात्व का बंध नहीं है, नयी स्थिति बंध नहीं रही है और बाकी जो स्थिति है वह उतनी ही रहती है। अभी जब हम उपशम सम्यक्त्व का स्वरूप देखेंगे न, कौनसे कर्म कहाँ पर हैं, क्या-क्या है। आप अभी कुछ इमोजिन नहीं कर सकते। अभी यहाँ अपूर्वकरण में क्या हो रहा है उतना ही अपना विषय है। आगे की बात मैं समझाऊंगी तो भी आपको कुछ समझ में नहीं आनेवाली है। यथा समय जब उसकी चर्चा करेंगे तो बिलकुल आपकी आंखों के सामने उसका पिक्चर तैयार हो जायेगा। अभी तो समय होने को आया है, हम यहीं रुकेंगे। उसकी और चर्चा बाद में करेंगे।

बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

१५. गुणश्रेणी रचना

आचार्य श्री नेमिचन्द्र सिद्धांतचक्रवर्ती ने इस लब्धिसार ग्रंथ की रचना की है। और उसीके आधार से पं. टोडरमलजी ने सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका लब्धिसार-क्षपणासार भाषाटीका द्वंद्वारी भाषा में लिखी है। उसका हिंदी अनुवाद देखते हुये यहां अपनी प्रथम अधिकार की प्रथमोपशम सम्यक्त्व की प्ररूपणा चल रही है।

उसमें हमने देखा कि पांच लब्धियों में से चार लब्धिपूर्वक; कौनसी चार लब्धि ? श्रोता: क्षयोपशमलब्धि, विशुद्धिलब्धि, देशनालब्धि, प्रायोग्यलब्धि। हां, क्षयोपशमलब्धि, विशुद्धिलब्धि, देशनालब्धि, प्रायोग्यलब्धि। उसके पश्चात् कोई भव्य जीव करणलब्धि शुरू करता है। उसके तीन अलग-अलग भेद हैं- अधःप्रवृत्तकरण, अपूर्वकरण और उसके पश्चात् अनिवृत्तिकरण। ये नाम अनेक जीवों के परिणामों की तुलना के कारण पड़े हैं। एक जीव की अपेक्षा देखेंगे तो उसके परिणाम प्रति समय अनंतगुणा विशुद्ध होते चले जाते हैं। अधःप्रवृत्तकरण में इस विशुद्धि के कारण क्या-क्या बातें होती हैं ? हमने चार बातें देखी थीं। वे बातें चल ही रही हैं, उसके साथ-साथ और कुछ विशेषतायें अपूर्वकरण में होती हैं; हमने चार नाम देखे थे- गुणश्रेणी, गुणसंक्रमण, स्थितिकांडकघात और अनुभागकांडकघात। अनेकों ने मुझे आकर बताया कि गुणश्रेणी, गुणसंक्रमण क्या होता है पता नहीं चला। हम अभी देखेंगे उसको।

गुणसंक्रमण का अर्थ होता है गुणित प्रमाण में संक्रमण। पहले समय में जितने परमाणु संक्रमित हुये, दूसरे समय में संख्या में उससे असंख्यातगुणा परमाणु संक्रमित होंगे। अब कौनसी प्रकृति के परमाणु किसमें जा रहे हैं उसका विषय अभी हम देखेंगे। यह गुणसंक्रमण विशिष्ट स्थान पर होता है। हर समय गुणसंक्रमण कहीं किसी प्रकृति में नहीं होता है। अपूर्वकरण के जो परिणाम हैं उनकी विशेषता है कि यहां जनरली-सामान्यतः गुणसंक्रमण होता है। सामान्यतः क्यों कहा ? ऐसा अपूर्वकरण और कहां होता है ? अनंतानुबंधी की विसंयोजना में। वहां उस समय क्या होता है ? अनंतानुबंधी के परमाणु गुणित प्रमाण में संक्रमित होते हैं। किसमें ? अप्रत्याख्यानावरणादि में। तो उसको कहेंगे गुणसंक्रमण। एक-एक अंतर्मुहूर्त में ऐसा कार्य चल ही रहा है, उसीके द्वारा वे नष्ट हो जाते हैं। हर जगह नष्ट होंगे यह बात नहीं, परंतु गुणसंक्रमण कहां-कहां होता है उसकी बात है। जब श्रेणी चढ़ने का पुरुषार्थ होता है वहां पर भी, नहीं

बंधनेवाली कुछ प्रकृतियां हैं वे बंधनेवाली प्रकृतियों में गुणित प्रमाण में संक्रमित होती हैं। जैसे असातावेदनीय का बंध छठे तक ही है, सातवें में गुणसंक्रमण नहीं है परंतु जब अपूर्वकरण से श्रेणी चढ़ने का पुरुषार्थ होता है, गुणसंक्रमण होता है तो असाता के परमाणु गुणित प्रमाण में सातारूप हो जाते हैं; अन्य भी अनेक प्रकृतियों के होते हैं। वहां की बात है वहां जाकर कहेंगे। ऐसा गुणसंक्रमण अपूर्वकरण की विशेषता है।

अब यहां अपनी प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त करने संबंधी बात चल रही है। प्रथमोपशम के काल में गुणसंक्रमण कौनसी प्रकृति का होगा ? कहते हैं मिथ्यात्व प्रकृति का होगा। संक्रमित होना यानी ट्रांसफॉर्म होना - अन्य सजातीय प्रकृतिरूप हो जाना। मिथ्यात्व के परमाणु किसमें संक्रमित हो जायेंगे ? सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृतिरूप हो जायेंगे। ऐसा गुणसंक्रमण कब होगा ? प्रथमोपशम सम्यक्त्व के पहले समय से होगा। अपूर्वकरण में क्या होगा ? मिथ्यात्व का गुणसंक्रमण नहीं होगा, अन्य भी किसीका नहीं होगा। प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त होने के पहले हम अपूर्वकरण तक पहुंच गये हैं, अन्यत्र अपूर्वकरण में होनेवाला गुणसंक्रमण नाम का प्रोसेस यहां नहीं होगा। अनिवृत्तिकरण के बाद प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त होता है तब होगा। कौनसी प्रकृति में होगा ? मिथ्यात्व का संक्रमण सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक् प्रकृतिरूप होगा। मिथ्यात्व नष्ट नहीं होनेवाला है परंतु मिथ्यात्व प्रकृति में से तीन प्रकृति तैयार होनेवाली हैं; मिथ्यात्व तो है ही है और अन्य दो। गुणसंक्रमण की बात ख्याल में आयी ? प्रति समय असंख्यातगुणा प्रमाण में संक्रमित होते हैं इसका नाम है गुणसंक्रमण। गुण यानी गुणित प्रमाण में; यहां कोई गुण और दोष की बात नहीं चल रही है।

अब दूसरी कौनसी बात होती है ? गुणश्रेणी होती है। हमने देखा था न, चार बातें होती हैं, चार आवश्यक होते हैं। गुणश्रेणी, गुणसंक्रमण, स्थितिकांडकघात और अनुभागकांडकघात। गुणश्रेणी होती है यानी क्या होता है ? गुणित प्रमाण में श्रेणीरूप रचना होती है। हमने पहले स्थितिकांडकघात की बात की थी। स्थितिकांडकघात होता है, तो स्थितिकांडकघात होकर उसके परमाणु कहां-कहां दिये जाते हैं ? अब यहां दो प्रकार से बात चलेगी। यहां अपकर्षण चल ही रहा है। अपकर्षण किये जानेवाले परमाणु कहां दिये जायेंगे ? स्थितिकांडकघात में हमने देखा था यहां निषेकरूप जो रचना है तो ऊपर के कितने ही निषेक कांडकरूप से ग्रहण किये जाते हैं और उनके

परमाणुओं का प्रत्येक समय में एक-एक लॉट नीचे आता जाता है। वह कहां-कहां दिया जाता है ? नीचे उदयावली में दिया जाता है। उसके ऊपर गुणश्रेणीरूप रचना होती है उसका अर्थ है वहां जितने परमाणु दिये जाते हैं; वे गुणश्रेणी के अंतर्मुहूर्त प्रमाण असंख्यात निषेक हैं उनमें गुणित प्रमाण में दिये जाते हैं।

पहले निषेक में जितने दिये उससे असंख्यातगुणा दूसरे में, उससे असंख्यातगुणा तीसरे में, उससे असंख्यातगुणा चौथे में। यह तो एक समय में दिये। दूसरे समय में जो अपकर्षण होनेवाला द्रव्य है वह उससे भी असंख्यातगुणा होता है यानी अधिक द्रव्य नीचे आता है। द्रव्य यानी परमाणु। वह भी उसी असंख्यातगुणा क्रम से दिया जाता है। तीसरे समय में और असंख्यातगुणे परमाणु नीचे आते हैं। वे उसी पद्धति से असंख्यातगुणा क्रम से दिये जाते हैं। यह जो रचना होती है, इसके निषेक बहुत बड़े-बड़े होते जाते हैं। नीचे उदयावली के निषेक क्रम से गलते जाते हैं। जो गुणश्रेणीरूप हुये थे वे निषेक जब उदय के समय तक पहुंच जायेंगे तो कितने अधिक प्रमाण में वे परमाणु खिरेंगे। ऐसी गुणश्रेणी केवल दर्शनमोहनीय में नहीं हो रही है, आयु को छोड़कर ज्ञानावरणादि समस्त प्रकृतियों में हो रही है। यानी सभी कर्मों के बहुत सारे परमाणु खिर रहे हैं। ऐसी निर्जरा सबमें चल रही है। आप कहेंगे अभी तो मिथ्यादृष्टि हैं न, उसको निर्जरा कैसे ? नहीं, अभी तो सम्यक्त्व प्राप्त करनेवाला ही है। अब उसमें ऐसी बात चलेगी।

श्रोता: मिथ्यादृष्टि के कैसी चलेगी यह बात ? आपने बोला न मिथ्यात्व प्रकृति की गुणश्रेणी नहीं हो रही है, बाकी सबकी ज्ञानावरणादि की हो रही है ? मिथ्यात्व में भी गुणश्रेणी हो रही है। केवल उसमें ही नहीं हो रही है, सबमें हो रही है ऐसा मैंने कहा। यानी मिथ्यात्व में भी ऐसी गुणश्रेणी बन चुकी है अभी। ये मिथ्यात्व के परमाणु भी अधिक मात्रा में खिरेंगे। क्या कहा ? मिथ्यात्व के परमाणु अधिक मात्रा में खिरेंगे तो मिथ्यात्व अधिक तीव्र उदय में आयेगा कि नहीं आयेगा ? नहीं ! परमाणु अधिक खिर रहे हैं, परंतु अनुभाग हीन होकर खिर रहे हैं। मिथ्यात्व भी पहले शैल और अस्थिवाला था। अभी द्विस्थानीय रह गया। मिथ्यात्व लतारूप नहीं होता है, मिथ्यात्व तो दारु का बहुभागरूप रहेगा। परंतु वह भी प्रति समय अत्यंत मंद-मंद हो रहा है और मंद होकर उसके अनेक परमाणु खिरे तो अच्छी बात है न ! अनुभाग कम और सत्ता में से अधिक

निकल जा रहे हैं। जीव को छोड़कर जा रहे हैं ये मिथ्यात्व के परमाणु। पहले तो बहुत काल से बांधे थे, अभी खिर रहे हैं।

यह गुणश्रेणी की जो रचना होती है और यह जो कार्य होता है यह अपूर्वकरण परिणाम के द्वारा हो रहा है। सामान्य अपकर्षण तो होता ही होता है, स्थितिकांडकघात भी होता है। ऊपर के कितने ही निषेकों का घात होकर, अभी अंतःकोड़ाकोड़ी सागर स्थिति हो चुकी है। वह स्थिति और भी घटेगी। ऐसे स्थितिकांडकघात केवल मिथ्यात्व में ही नहीं, अन्य कर्मों में - ज्ञानावरणादि अन्य कर्मों में भी ऐसे स्थितिकांडकघात, अनुभागकांडकघात ये सब बातें चलेंगी। मिथ्यात्व में उसका जो कुछ विशेष कार्य होना है वह होगा। परंतु सब कर्मों में गुणश्रेणी वगैरह कार्य होंगे। यह अपूर्वकरण की खास विशेषता है। गुणश्रेणीरूप रचना होगी। अभी यहां गुणसंक्रमण नहीं हो रहा है, बाद में मिथ्यात्व संबंधी होगा। स्थितिकांडकघात हो रहे हैं और अनुभागकांडकघात भी हो रहे हैं। अनुभागकांडकघात का अर्थ क्या है ? अप्रशस्त प्रकृतियों में अभी जितना अनुभाग कम होकर बचा है, उसमें और भी घात हो रहे हैं। अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्त में सत्ता में पड़ा हुआ अनुभाग घट रहा है। जब कांडकघात की बात आती है तो सत्तावाला अनुभाग कम हो रहा है, जब स्थितिबंधापसरण की बात है तो स्थितिबंध घट रहा है। अनुभागबंध की बात है तो अप्रशस्तों में घट रहा है और प्रशस्तों में बढ़ रहा है। इसतरह से उसका अर्थ करना है।

देखो, मैंने पहले बताया न पं. टोडरमलजी ने करणानुयोग और द्रव्यानुयोग के बारे में बहुत सारा कथन किया है उसकी थोड़ी बात हम देख लेते हैं। एक प्रश्न ऐसा है कि *हम शुद्धोपयोग की बात ही नहीं कर रहे हैं। मात्र करण परिणामों के फलस्वरूप सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है ऐसा बारंबार कह रहे हैं। ऐसा क्यों ?* क्योंकि हमने तो उसीको सुना है और यहां उसकी बात तो कुछ आती ही नहीं है। अच्छा प्रश्न है। यहां हम करणानुयोग द्वारा परिणामों का तथा कर्मों का सूक्ष्म वर्णन देख रहे हैं। प्रत्येक अनुयोग की भाषा अलग-अलग होती है और उसकी वर्णन करने की पद्धति भिन्न-भिन्न होती हैं। मोक्षमार्गप्रकाशक ग्रंथ में पं. टोडरमलजी ने स्वयं इसको प्रस्तुत किया है, विस्तार से समझाया है। वह क्या समझाते हैं उन्हीं की भाषा में उन्हीं के शब्दों में मैं हिंदी में बताती हूं। उन्होंने ढूंढारी में बताया है। यह मोक्षमार्गप्रकाशक तो हिंदी में है ही

अपने पास। चरणानुयोग में बाह्य क्रिया की मुख्यता से समझाया जाता है द्रव्यानुयोग में आत्मपरिणामों की मुख्यता से वर्णन किया जाता है और करणानुयोग में जीव के परिणामों का और कर्मों की अवस्थाओं का सूक्ष्म वर्णन किया जाता है। द्रव्यानुयोग में स्थूल निरूपण होता है।

द्रव्यानुयोग आदि अन्य अनुयोगों के पक्षपाती होते हैं न ! तो पं. टोडरमलजी साहब ने स्वयं प्रश्न उठाकर उनका समाधान किया है। द्रव्यानुयोग की बातों को सूक्ष्म है-सूक्ष्म है कहनेवालों को कहते हैं- हे सूक्ष्माभासबुद्धि ! आपको सूक्ष्म ही जानना है तो करणानुयोग का अभ्यास करो ऐसा वे स्वयं लिखते हैं। द्रव्यानुयोग में स्थूल निरूपण होता है। द्रव्यानुयोग में उपयोग के तीन भेद बताये हैं- ज्ञानोपयोग, दर्शनोपयोग की बात नहीं है; शुभोपयोग, अशुभोपयोग और शुद्धोपयोग। छद्मस्थ जीवों के जो बुद्धिगोचर यानी अपने ख्याल में आवे। बुद्धिगोचर का क्या अर्थ होता है ? अपने ज्ञान में जो आते हैं, अपने ही परिणाम अपने ज्ञान में आते हैं उसको कहेंगे बुद्धिगोचर। ज्ञान में आने योग्य परिणामों की अपेक्षा यह कथन है। हमारे परिणाम अभी अशुभरूप चल रहे कि शुभरूप चल रहे हैं कि शुद्धरूप यह अपने ख्याल में आ सकते हैं उसको कहेंगे बुद्धिगोचर परिणाम और ये स्थूल होते हैं। यहां परिणामों की केवलीगम्य सूक्ष्म चर्चा नहीं है। इसमें धर्मानुराग परिणाम शुभोपयोग कहलाते हैं। पापानुरागरूप और द्वेषरूप परिणाम अशुभोपयोग कहलायेंगे और राग-द्वेष रहित परिणाम शुद्धोपयोग कहलायेंगे। ये किसकी अपेक्षा है ? छद्मस्थ की अपेक्षा, द्रव्यानुयोग की अपेक्षा, स्थूल बुद्धिगोचर परिणामों की अपेक्षा ये कथन हैं।

करणानुयोग में कषाय शक्ति की अपेक्षा कथन होता है। यानी गुणस्थानों में कहां कितने संक्लेश हैं ? कितनी विशुद्धि है ? वह विशुद्धि भी कितनी गुणा बढ़ती है ? कितनी कम होती है ? उसकी वहां चर्चा करेंगे। करणानुयोग में रागादि रहित शुद्धोपयोग यथाख्यातचारित्र होने पर होता है। क्या कहा ? द्रव्यानुयोग का शुद्धोपयोग हम चौथे गुणस्थान में कहेंगे और करणानुयोग का शुद्धोपयोग बारहवें गुणस्थान में कहेंगे, वह मोह का नाश होने पर स्वयमेव होता है। यहां तो बुद्धिगोचर की अपेक्षा है। कहीं विरोध नहीं है, परंतु किस अनुयोग की भाषा चल रही है ? कौनसे अनुयोग का कथन हो रहा है ? इसको ख्याल में रखना, नहीं तो आप शुद्धोपयोग है कहेंगे, हम नहीं

है कहेंगे। वहां आपस में झगड़ा करेंगे क्योंकि हमें तो झगड़ने के लिये कुछ बहाना चाहिये। सभी अनुयोगों का कथन समझकर अपना कल्याण करने की बात भूल जाते हैं और दुनियादारी में और वाद-विवाद में पड़ते हैं। नीचे के गुणस्थानों में ऐसा शुद्धोपयोग किसतरह हो सकता है ? यह पं. टोडरमलजी की अपनी भाषा है। मैंने तो केवल उन्होंने पुस्तक में जो लिखा है, उसे वहां से लेकर यहां रखा है।

द्रव्यानुयोग में शुद्धोपयोग करने का ही मुख्य उपदेश दिया जाता है इसलिये छद्मस्थ जीव जिस काल में बुद्धिगोचर; भक्ति आदि तथा हिंसादि - भक्ति आदि यानी शुभरूप, हिंसादि यानी पापरूप - परिणामों को छोड़कर आत्मानुभवन आदि कार्य में प्रवर्तन करता है उस काल में उसको शुद्धोपयोगी कहते हैं। यह द्रव्यानुयोग कहेगा। बुद्धिगोचर भक्ति आदि और हिंसादि कार्य नहीं कर रहा है, तो क्या कर रहा है ? हां तो अभी शुद्धोपयोगी है कहेंगे। उस काल में भी केवलज्ञानगम्य सूक्ष्म राग होता है। उस जीव के भी ख्याल में नहीं आ रहे हैं ऐसे राग को अबुद्धिपूर्वक राग कहते हैं क्योंकि उस जीव के ज्ञान में वे नहीं आ रहे हैं।

जब हम द्रव्यानुयोग की अपेक्षा बात करते हैं- चौथे गुणस्थानवाला है, द्रव्यानुयोग कहेगा इसका शुद्धोपयोग चल रहा है, आत्मा की अनुभूति चल रही है। तो उसको बंध है कि नहीं है ? *श्रोता: है/* बंध नहीं मानेंगे तो जब तक आत्मा में लीन है तब तक पूर्ण वीतराग कहना पड़ेगा। अब चौथे गुणस्थानवाले के अनंतानुबंधी का उदय नहीं है, परंतु अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण, संज्वलन - तीन कषाय चौकड़ी का उदय है और उनका बंध भी चल रहा है। उनसे बंधनेवाली अन्य भी सभी प्रकृतियां बंध रही हैं। हमने अभी प्रायोग्यलब्धि में जो गिनी थी - केवल कुछ गिनीचुनी छियालीस प्रकृतियां नहीं बंधेंगी बाकी तो सब बंध रही हैं कि नहीं बंध रही हैं ? यानी करणानुयोग का कथन अलग है, द्रव्यानुयोग का कथन अलग है। कहते हैं केवलज्ञानगम्य जो सूक्ष्म रागादिक होते हैं - द्रव्यानुयोग में उनकी विवक्षा नहीं की जाती। स्वयं की बुद्धि में आनेवाले बुद्धिगोचर रागादिक छोड़ने की अपेक्षा उसको शुद्धोपयोगी कहते हैं। यथाख्यातचारित्र जब होगा तब ग्यारहवें, बारहवें गुणस्थान में द्रव्यानुयोग और करणानुयोग दोनों की अपेक्षा शुद्धोपयोग कहेंगे। तब तो दोनों का कथन समान होगा। परंतु नीचे की भूमिका में द्रव्यानुयोग शुद्धोपयोगी कहेगा और करणानुयोग जो कुछ

यथायोग्य कितनी विशुद्धि है, कितना संक्लेश है, उसकी चर्चा करेगा।

द्रव्यानुयोग की अपेक्षा नीचे के गुणस्थानों में कभी-कभी शुद्धोपयोग होता है, परंतु करणानुयोग की अपेक्षा से वहां सदा ही कषाय का अंश विद्यमान रहता है - शुद्धोपयोग में भी है और शुभोपयोग में भी है। जहां जितने अंश में संक्लेश-विशुद्धि है वहां उसका कथन करणानुयोग करेगा, वह शुभोपयोग, शुद्धोपयोग नहीं कहेगा। इसलिये द्रव्यानुयोग की कथन पद्धति करणानुयोग से मिलाने पर कभी मिलती है तो कभी नहीं मिलती। ये पं. टोडरमलजी के वाक्य हैं। पं. टोडरमलजी ने आगे कषाय शक्ति की बात बतायी है। उन्होंने इतना ही बताया है कषाय शक्ति अलग बात है और उसकी प्रवृत्ति वगैरह अलग बात है। ये सर्वार्थसिद्धि के देव हैं, शुक्ल लेश्या के परिणाम हैं, मंद कषायी हैं और कोई पांचवें गुणस्थानवाला मनुष्य है, अभी व्यापार आदि करता है, घरगृहस्थी संभालता है, विवाह आदि कार्यों में भाग लेता है तो दोनों में से किसके कषाय ज्यादा हैं ? किसके कम हैं ? *श्रोता: सर्वार्थसिद्धिवाले के कम हैं।* हां, वह मंद दिखते हैं न ! परंतु ज्यादा है। सर्वार्थसिद्धि के देव का गुणस्थान चौथा है और उसके अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण, संज्वलन तीन कषाय चौकड़ी विद्यमान हैं और इसके तो दो ही चौकड़ी हैं। ख्याल में आती है बात ? अभी उस पर हम नहीं जायेंगे। उन्होंने बहुत बातें समझायी हैं। हम अपने विषय से लगती हुयी बातों को देखेंगे।

देखो, इसलिये करणानुयोग अनुसार जैसा है वैसा जान लेना। करणानुयोग में परिणाम और कर्मों की अवस्था का सूक्ष्म विवेचन किया जाता है। परंतु उसके अनुसार प्रयत्नपूर्वक कोई भी उद्यम हो ही नहीं सकता। क्या कहा ? यहां हम इतना विशुद्धि का वर्णन देख रहे हैं। स्थितिकांडकघात, अनुभागकांडकघात का वर्णन देख रहे हैं; तो हमें क्या करना चाहिये ? पहले स्थितिकांडकघात करना कि अनुभागकांडकघात करना ? कुछ नहीं करना, बस जान लेना। प्रयत्नपूर्वक कोई भी उद्यम नहीं किया जा सकता है। ना उपशम किया जाता है, ना क्षयोपशम, ना क्षय - कुछ नहीं कर सकते। हम कर्मों में कुछ कर ही नहीं सकते। यह तो हमारे आगमज्ञान का विषय है।

करणानुयोग में यथार्थ वस्तुस्थिति बतायी जाती है, उसमें आचरण की मुख्यता नहीं होती है। चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग आदि के उपदेशानुसार जो चलेगा उसके निमित्त से जो कार्य होना होगा वह स्वयमेव होगा। उपदेश किसका देंगे ? चरणानुयोग

में आचरण की मुख्यता से उपदेश देंगे और द्रव्यानुयोग में कहेंगे आत्मा में लीन हो जाओ ! शुद्धोपयोग करो, स्थिरता करो ! जो आत्मा में स्थिरता करेगा, जैसे जिसका जो पुरुषार्थ है वैसा उसके करणानुयोग के अनुसार जो यथायोग्य कार्य होना हो वह जरूर होगा। कोई कर्म का उपशम आदि करना चाहे तो किस प्रकार करेगा ? आपको अगर कोई ऑप्शन देगा कि आप कर्मों का उपशम करेंगे कि क्षय करेंगे ? *श्रोता: द्रव्यानुयोग से काम शुरू होगा। अपने आप ही होगा।* अपने आप ही होगा। हम सोच समझकर ना उपशम कर सकते हैं ना क्षय। अरे हम कर्म में कुछ कर ही नहीं सकते यह पहले द्रव्यानुयोग के अनुसार निश्चित करना है। वह तो परद्रव्य है, उसमें अपनी कुछ नहीं चलती है। करणानुयोग से हमने जान लिया है कि क्या होता है और द्रव्यानुयोग का उपदेश है पुरुषार्थ करो। चरणानुयोग में आचरण की मुख्यता से कहेंगे। तो सहज ही उपशमादि सम्यक्त्व होता है। सहज ही होता है यह, है न ! उसके लिये क्या करना है ?

जो स्वयं तत्त्वादिकों का निर्णय करने का उद्यम करेगा, पुरुषार्थ करेगा; कौनसा पुरुषार्थ ? अपना पुरुषार्थ अपने में चलेगा कि कर्मों में चलेगा ? पहले यह नक्की करो। कौनसा ? बस तत्त्वनिर्णय करने का ही पुरुषार्थ करता है। तत्त्वादिकों का निर्णय करने का जो उद्यम करेगा उसके निमित्त से सहज ही उपशमादि सम्यक्त्व होता है। यह सहज होता है, और बिलकुल गॅरंटी से होता है। पुरुषार्थ करे, प्रयत्न करे कुछ अन्य जाति का और सम्यक्त्व हो जाये यह बात कैसे हो सकती है ? इसलिये करणानुयोगानुसार जैसा है वैसा जान लेना। परंतु प्रवृत्ति तो बुद्धिगोचर - जिससे भला होगा वैसी करेंगे। प्रवृत्ति यानी आचरण, प्रवृत्ति का उपदेश देंगे। मोक्षमार्गप्रकाशक में बताया है कि जब तक परिणति ऐसी नहीं हो जाये तब तक श्रद्धान तो ऐसा ही रखना, परंतु प्रशस्त रागरूप प्रवर्तन करना। चरणानुयोग में प्रवृत्ति की अपेक्षा - आचरण की मुख्यता से उपदेश दिया जाता है। आठवें अधिकार में से ये सब वाक्य लिये हैं।

अब कोई पूछेंगे यदि प्रयत्न अथवा पुरुषार्थ द्रव्यानुयोगानुसार तत्त्व जानकर तत्त्वनिर्णय करने का ही है तो करणानुयोग जानना ही क्यों ? सबका प्रश्न है न यह ? बिना वजह समय और शक्ति का अपव्यय क्यों करे ? क्योंकि हम कोई चीज़ फालतू-बेकार की नहीं करना चाहते क्योंकि समय नहीं न अपने पास ! हमें जिसमें रुचि है ऐसे मोक्षमार्ग का सर्वांगीण स्वरूप जानने की जिज्ञासा भी सहज ही होती है। दुनियाभर की

अन्य घटनाओं को जानने का जो रस है न ? यहां क्या हो रहा है ? वहां क्या हो रहा है ? वह सब कम होकर सत्यस्थिति जानने का उत्साह बढ़ता है। यह सत्य परिस्थिति है कि क्या होता है ? क्या नहीं होता है ? कर्मों में क्या बातें होती हैं ? अभी तक क्या हो रहा था ? हम तो समझ रहे थे कुछ क्रिया करे तो होता है। उसमें बंध कैसे होता है ? कैसे चलता है ? क्या-क्या होता है ? वह तो हम इसीसे जान लेते हैं।

अब यह तो अपने अनुभव की बात है - जिसके क्रिकेट की रुचि होती है तो उसको मॅच का फायनल रिझल्ट बाद में समझ में आयेगा न ? बाद में कोई भी बतायेगा उसको कि कौन जीता और कौन हारा, क्या इतने से समाधान होता है ? नहीं होता। पूरा दिन मॅच देखता है। पूरा दिन देखकर समाधान होता है ? नहीं, फिर मॅच के हायलाइट भी देखेगा। उतने से समाधान होता है ? नहीं, फिर उस पर जो चर्चा चलेगी वह उस को भी देखता है। फिर सुबह घूमने जायेगा तो वहां पर भी उसीकी चर्चा चलेगी। अरे ! हम नहीं करेंगे, दूसरे चर्चा करनेवाले मिलेंगे साथ-साथ। तो जिसका जिसमें रस है, रुचि है उसके लिये तो कितनी दौड़-धूप करता है। इसके जानने से, टीव्ही के सामने बैठने से वहां कुछ चेंज होनेवाला है ? एक गेंद है, वह अपनी उपादान शक्ति से इधर-उधर चलती रहती है। कभी याद आती है उस समय उपादान और निमित्त की बात ? नहीं आती। यह बॉल अपने उपादान से इधर से उधर होता है। उसके पीछे बाकी खिलाड़ी भी दौड़ते हैं और हम यहां सोफे पर उछल-कूद करते हैं नीचे-ऊपर और राग-द्वेष करते हैं। उसमें रुचि है तो यह सहज होता है।

जिसको जिसमें रुचि है, जिसे मोक्ष प्रकट करना है, अपने आत्मा संबंधी रुचि है तो यहां क्या हो रहा है वह जानने का भी रस सहज ही हो जाता है। यदि कोई क्रिकेट के रसिक होंगे तो कहेंगे अरे रे रे ! ऐसे अरसिक के लिये उसको ये क्रिकेट मॅच सिखाना हमारे नसीब में मत लिखो। संस्कृत में कथन आता है; 'अरसिकेषु कवित्वनिवेदनं शिरसि मा लिख मा लिख मा लिख।' सुना है कि नहीं कभी ? यह संस्कृत कोई नहीं जानता है, चलो। यह संस्कृत वाक्य है कि कोई साहित्य काव्य आदि के बारे में अरसिक है तो कहते हैं कि हे भगवान ! ऐसे अरसिक को कवित्व वगैरह सिखाने का मेरे नसीब में नहीं लिखना। ऐसे कोई लिखता नहीं है, परंतु उनकी कथन पद्धति है। अब हम थोड़ा आगे देखते हैं।

जयसेन आचार्य ने दोनों ही अनुयोगों की भाषा में बात बतायी है। उन्होंने लिखा है- अध्यात्म भाषा में यह जो शुद्धात्मभावनारूप; भावना यानी केवल उसकी इच्छा करना नहीं; भावना यानी उसरूप भवन - उसरूप होना। निजशुद्धात्मरूप होना यानी उसमें एकाग्र हो जाना। 'निजशुद्धात्मभावनारूप सविकल्प स्वसंवेदन ज्ञान द्वारा।' अरे ! विकल्प छोड़ना है न ? सविकल्प यह ज्ञान का लक्षण है। सविकल्प, स्वसंवेदन ज्ञान द्वारा और आगम भाषा में अधःप्रवृत्तकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण तीन करण परिणामों द्वारा आत्मा में लीन होता है, एकाग्र होता है। दोनों ही करणानुयोग और द्रव्यानुयोग की कथन पद्धति एक साथ बतायी है। बहुत जगह उन्होंने ऐसी बातें लिखी हैं। *श्रोता: भावना का अर्थ ?* भावना का अर्थ एकाग्र होना यह तो बताया।

देखो, करणलब्धिवाले जीव का बुद्धिपूर्वक उद्यम इतना ही होता है कि वह तत्त्वविचार में उपयोग को तद्रूप होकर लगाता है। क्या करता है जीव ? तत्त्वविचार में उपयोग को तद्रूप होकर लगाता है। वह तत्त्वविचार में इतना तल्लीन हो जाता है। अभी पढ़ते-पढ़ते भी कोई ऐसा एक तत्त्व उसको अंदर से इतना भा जाता है, ऐसा कुछ रस, अभी अतीन्द्रिय आनंद तो बाद में आयेगा परंतु ऐसे कुछ अंदर से उल्लास आता है। एकाध वाक्य लेकर उसके ऊपर उसका चिंतन चलता रहता है। वह भी छूटकर उसको अनुभव हो जाता है। उसने बुद्धिपूर्वक क्या उद्यम किया है उसका ? उसने ऐसा किया, वैसा किया वह तो भाषा है। वह सहज होता है। जिसको होना है उसके ऐसी बातें सहज होंगी। हमको भी रटना नहीं है। एक ही वाक्य रटते रहेंगे तो हमको हो जायेगा ऐसी बातें नहीं है। यहां कहीं भी खींचातानी नहीं होती है।

यहां कहते हैं कि बुद्धिपूर्वक उद्यम क्या है कि तत्त्वविचार में उपयोग लगाकर उसमें तद्रूप होना। उसके कारण प्रति समय परिणाम निर्मल होते जाते हैं। ये मोक्षमार्गप्रकाशक के वाक्य हैं। निर्मलता आना यानी उसमें क्लेरिटी होना। पहले वहां उसमें कन्फ्यूजन होगा - जो कुछ है। वह बिलकुल निःशंक रीति से तत्त्वज्ञान के संबंध में उसके अभी ज्ञान हो रहा है। तो तत्त्वविचार निर्मल होते जाने से थोड़े ही काल में उसे तत्त्वश्रद्धानरूप सम्यक्त्व होता है। इन परिणामों की तारतम्यता केवलज्ञानी जानते हैं और उसका निरूपण करणानुयोग में करते हैं। यह तो तत्त्वविचार में लगा है। परिणामों में कितनी विशुद्धि बढ़ रही है वह तो थर्मामीटर लेकर देखना नहीं उसको।

वह देख भी नहीं सकता है। देखो, आपका जो प्रश्न था न, अलग-अलग विशुद्धि की बात। यहां उसकी भी बात है। तत्त्वविचार और तत्त्वनिर्णय में उपयोग लगता है तब जीव के परिणाम अनंतगुणा विशुद्ध होते जाते हैं।

अब यहां तत्त्वविचार और तत्त्वनिर्णय की बात हो रही है। हमने विशुद्धिलब्धि में विशुद्धि बढ़ने की बात कही थी और अब यहां करणलब्धि में भी विशुद्धि की बात कही जाती है। पहले तो सातावेदनीय आदि शुभ प्रकृतियों के बंध के कारणभूत परिणामों को वहां विशुद्ध कहा था और अब यहां विशुद्धि है वह तत्त्वज्ञान संबंधी निर्मलता है, श्रद्धा संबंधी निर्मलता है। अनंतानुबंधी कषाय और मिथ्यात्व संबंधी अनुभाग भी घट रहा है और वह अत्यंत मंद-मंद हो रहा है, उत्तरोत्तर मंद हो रहा है। कषायों की - अनंतानुबंधी की भी जो मंदता हो रही है तो उसकी अपेक्षा विशुद्धि समझना। यहां ज्ञान-दर्शन-चारित्र सब आ जायेंगे उसमें। श्रद्धा संबंधी भी, चारित्र संबंधी यानी कषाय संबंधी भी और ज्ञान संबंधी भी और ऐसी विशुद्धि ऑर्डिनरि शुभ भावों से नहीं होती है। यहां तो अभी वीतरागता उत्पन्न होने जा रही है। अभी उस मार्ग पर है, अभी चल रहा है। यहां से कोई रिटर्न नहीं है। जैसे प्रायोग्यलब्धि से कोई रिटर्न हो सकता था; अब इसमें अभी आया है, यहां तक आया है, अभी वह बिलकुल सम्यक्त्व प्राप्त करेगा ही करेगा। ऐसी यह विशुद्धि तत्त्व के निर्णय तक पहुंचने के काल में होती है। यहां पर निर्णय सहित आत्मसन्मुखता की बात है।

अभी हम अपने विषय पर चलेंगे। अपूर्वकरण में चार बातें होती हैं- गुणश्रेणी होती है, गुणसंक्रमण होता है, स्थितिकांडकघात होता है और अनुभागकांडकघात होता है। थोड़ी अपनी भाषा में समझेंगे, फिर पुस्तक के आधार से भी समझेंगे। श्रेणी का अर्थ होता है पंक्ति। हमने देखा न, कितने ही निषेकों में पंक्तिरूप गुणित प्रमाण में परमाणुओं का डिस्ट्रिब्यूशन होता है। ऊपर के निषेकों में से परमाणु नीचे आते हैं वे कुछ उदयावली में दिये जाते हैं और कुछ परमाणुओं की गुणश्रेणीरूप रचना यहां बन जाती है। पहले नहीं थी, पहले गुणश्रेणीरूप रचना नहीं थी। अब विशिष्ट निषेकों में- अंतर्मुहूर्त प्रमाण निषेकों में पहले में कुछ कम; दूसरे आदि निषेकों में असंख्यातगुणा-असंख्यातगुणा-असंख्यातगुणा क्रम से अपकर्षित द्रव्य दिया जाता है। जितने परमाणु नीचे आते हैं उनका डिस्ट्रिब्यूशन इसतरह से होता है।

हमने उदाहरण के तौर पर देखा था। मान लेते हैं ८५ परमाणु नीचे आये। पहले निषेक में १ दिया तो दूसरे में ४ दिये, तीसरे में १६ दिये, चौथे में ६४ दिये। ये जैसे चारगुणा-चारगुणा क्रम से दिये हैं। दूसरे समय में और अधिक प्रमाण में नीचे आयेंगे। उसका डिस्ट्रिब्यूशन और अधिक गुणित प्रमाण में दिया जायेगा। यह बात यहां चलती ही रहेगी। यहां से जो शुरू हुयी है, यह गुणश्रेणी यहां चलेगी। अब यह गुणश्रेणी कितनी बड़ी बनेगी ? अभी यहां से जो अपूर्वकरण का काल है, अभी आनेवाला अनिवृत्तिकरण का काल है और उससे भी ऊपर थोड़ा काल है इतना सब मिलकर यहां गुणश्रेणी की लंबाई होगी। इतने निषेकों में ऐसा उसका डिस्ट्रिब्यूशन होगा। इसको कहेंगे गुणश्रेणी।

हमने पहले देखा था उदयावली किसको कहते हैं ? याद है कि नहीं ? उदय के समय से लेकर एक आवली प्रमाण जो निषेक हैं उसको कहेंगे उदयावली। आवली का प्रमाण याद है कि भूल गये ? आवली किसको कहते हैं ? *श्रोता: जघन्य युक्तासंख्यात।* हां, जघन्य युक्तासंख्यात समय। यह असंख्यात का एक प्रकार है, जघन्य युक्तासंख्यात इतने असंख्यात समय एक आवली में होते हैं। ऐसी आवली सेकंड की अपेक्षा कितनी बड़ी होती है मालूम है ? एक सेकंड में ऐसी संख्यात हजार कोड़ाकोड़ी आवली होती हैं। हमारे यहां सब कोड़ाकोड़ी, असंख्यात और अनंतों का ही प्रकरण है। जिसको बहुत रुचि है न करोड़ों की। अरे ! करोड़ भूल जाओ। हम तो यहां असंख्यातों में और अनंतों में डील करते हैं। जिनको फिगर का आकर्षण है, संख्याओं का आकर्षण है उनको तो करणानुयोग पढ़ना चाहिये। हां, बाहर तो अभी करोड़ों की बात कुछ मायने नहीं रखती है, अबजों की बात चलेगी। हम तो हमेशा कोड़ाकोड़ी की बात करेंगे। अच्छा, अभी इसमें हम देखते हैं।

अब पुस्तक में गाथा ५३ की टीका देखेंगे- अपूर्वकरण में कौनसे और चार आवश्यक होते हैं वह बात यहां बतायी है **गुणश्रेणी, गुणसंक्रमण, स्थितिखंडन** का अर्थ होता है स्थितिकांडकघात और **अनुभागखंडन** यानी अनुभागकांडकघात **ये चार आवश्यक होते हैं।** आवश्यक क्यों कहा ? यहां ये बातें होती ही हैं इसलिये इनको आवश्यक कहा। आगे की बात भी हमने देखी थी कि **स्थितिबंधापसरण तो अधःप्रवृत्तिकरण के प्रथम समय से लेकर गुणसंक्रमण पूर्ण होने के काल तक होता है।** अभी प्रश्न है कि स्थितिबंधापसरण होता है यानी स्थितिबंध घटते चला जाता

है, तो स्थितिबंध का घटना क्यों होता है ? क्योंकि यहां परिणाम अनंतगुणा-अनंतगुणा विशुद्ध हो रहे हैं। जहां परिणामों की विशुद्धि बढ़ रही है वहां स्थितिबंध घट रहा है। परिणामों की विशुद्धि का बढ़ना कब तक चलेगा ? अधःकरण से शुरू हुआ था, अपूर्वकरण में भी बढ़ रहा है, अनिवृत्तिकरण में और भी बढ़ रहा है, सम्यक्त्व प्राप्त होने पर शुरुआत में भी एक अंतर्मुहूर्त तक बढ़ रहा है। बाद में उपशम सम्यक्त्व का काल चालू रहेगा, परंतु विशुद्धि स्टेडी हो जायेगी। अभी विशुद्धि में बढ़ोतरी नहीं होगी। वहां पर विशुद्धि स्थिर हो जायेगी। स्थितिबंध का घटना वहां तक चलेगा। बाद में तो हीनाधिक होता रहता है या अवस्थित हो जायेगा। अब वहां तक की बात करेंगे। उसके बाद क्या होगा वह बात बाद में देखेंगे। तो यह इसका अर्थ होता है।

प्रायोग्यलब्धि में भी हमने स्थितिबंधापसरण देखे न ? वहां स्थितिबंधापसरण, प्रकृतिबंधापसरण देखे थे, परंतु वहां स्थितिबंधापसरण आदि जो बातें होती हैं तो सम्यक्त्व होगा ही यह कोई जरूरी नहीं है। इसलिये वहां जो आवश्यकवाली बातें हो रही थी, उनको करणलब्धि में फिर से दुबारा बताया है। वहां भी स्थितिबंधापसरण होता था, फिर यहां कहने की आवश्यकता क्या थी ? क्योंकि प्रायोग्यलब्धिवाले को भी स्थितिबंधापसरण होता है, परंतु जो करणलब्धि में अभी आया है, प्रवेश कर चुका है उसकी अपेक्षा यहां कथन हो रहा है। इसलिये यहां स्थितिबंधापसरण भी बतायेंगे। अब स्थितिबंधापसरण में हमने क्या देखा था ? स्थितिबंध अंतर्मुहूर्त तक समान होता है, उसके बाद उसमें कुछ ड्रॉप हो जायेगा- कटौती हो जायेगी, फिर अंतर्मुहूर्त तक उतना का उतना स्थितिबंध होगा। यह जो अंतर्मुहूर्त है उसको स्थितिबंध का काल भी कह सकते हैं या स्थितिबंधापसरण काल कहें तो भी कोई बात नहीं। एक स्थितिबंधापसरण हुआ, उससे लेकर दूसरा स्थितिबंधापसरण हुआ। कितना काल गया ? एक अंतर्मुहूर्त। उसी एक अंतर्मुहूर्त में एक स्थितिकांडकघात होता है।

जितने काल तक वह स्थितिबंध समान अवस्थित चल रहा है उसका काल अंतर्मुहूर्त है। स्थितिकांडकघात में हमने देखा था एक फालि नीचे आती है, फिर दूसरी आती है, फिर तीसरी आती है और फिर अंतिम फालि निकलकर कांडक प्रमाण स्थिति का नाश हो जाता है। ऊपर की स्थिति का नाश हो जाता है। यह हमने स्थितिकांडकघात में देखा था। एक स्थितिकांडकघात होने के लिये जितना समय

लगता है - अंतर्मुहूर्त लगता है और जो स्थितिबंधापसरण का काल है दोनों ही समान अंतर्मुहूर्त हैं। यानी दोनों ही बातें अट अ टाइम चल रही हैं। हर एक अंतर्मुहूर्त में स्थितिकांडकघात भी होता है और उतने काल तक नया स्थितिबंध भी कम स्थितिवाला होगा उसको कहेंगे स्थितिबंधापसरण का काल। ये दो बातें होती रहती हैं। एक बार स्थितिकांडकघात हुआ उसका जो अंतर्मुहूर्त है, उस एक अंतर्मुहूर्त काल में अनुभागकांडकघात संख्यात हजार बार होते हैं और हर एक का अपना-अपना अलग-अलग अंतर्मुहूर्त है। यह सब सुनते हैं तो लगता है ये सब कैसे छोटे-छोटे अंतर्मुहूर्त होंगे और कैसे क्या-क्या बातें होती होंगी ! अब हम यहां पढ़ेंगे।

देखो यहां अंतिम लाइन- स्थितिबंधापसरण काल और स्थितिकांडकोत्करण काल ये दोनों समान अंतर्मुहूर्त मात्र हैं। इसका अर्थ ख्याल में आता है ? जब हम पढ़ रहे हैं तो उसका अर्थ ख्याल में आता है कि नहीं इतना ही देखना है। कहां-कहां क्या-क्या हो रहा है, यह कौन याद रखेगा उसकी चिंता मत करना। याद करने की कोशिश भी मत करना। जो हम पढ़ रहे हैं उसका अर्थ समझता है या नहीं ? नहीं समझता है तो जरूर पूछना कि यह वाक्य मुझे नहीं समझा। ख्याल में आयी बात ? अभी डिटेल में हमने कुछ चीजें छोड़ भी दी हैं क्योंकि जो मुख्य-मुख्य बातें हैं उनको हम देखेंगे।

अब गाथा ५५ की टीका देखते हैं- **गुणश्रेणी का दीर्घत्व** इसके लिये दूसरा कौनसा शब्द है ? आयाम; गुणश्रेणी का आयाम। यानी उसमें कितने निषेक हमने इन्क्लूड कर दिये थे गुणश्रेणीरूप से ? **गुणश्रेणी का दीर्घत्व अर्थात् निषेकों के प्रमाण मात्र आयाम वह अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण के काल से साधिक है।** अब यहां अपूर्वकरण का प्रथम समय शुरू हुआ है। अब यहां गुणश्रेणी की रचना होगी। गुणश्रेणी की लंबाई कितने निषेकों में होगी ? उसका जो अंतिम निषेक है वह वर्तमान समय से लेकर कितने समय ऊपर है ? उतने समयों में अपूर्वकरण का काल लेना, अनिवृत्तिकरण का काल लेना और थोड़ा अधिक लेना। क्यों ? यह जो गुणश्रेणी अभी बनी है, वह कब तक चलेगी ? अनिवृत्तिकरण के अंत तक चलेगी। तो ऊपर का साधिकवाला ? हां, उसकी चर्चा करेंगे। यहां कितनी लंबी गुणश्रेणी बनी ? अपूर्वकरण का काल, अनिवृत्तिकरण का काल और थोड़ा अधिक इतनी लंबी गुणश्रेणी बनी।

देखो, यह गुणश्रेणी बनने का जो कार्य है न, अलग-अलग गुणश्रेणियां बनेंगी।

उसमें क्या-क्या विशेषता है वह बतायेंगे। यह जो पूरा मोक्षमार्ग है उसमें अपकर्षण द्वारा, गुणश्रेणी द्वारा निर्जरा होती रहेगी। इससे आगे भी जहां-जहां जो-जो कुछ विशेष बातें आयेंगी; गुणश्रेणी की बात तो हर जगह चलेगी। कल मैंने तत्त्वार्थसूत्र में दिखाया था न, गुणश्रेणी के अलग-अलग दस स्थान, असंख्यातगुणा गुणश्रेणी निर्जरा के स्थान देखे थे। आगे के गुणस्थानों में अधिक मात्रा में गुणश्रेणी निर्जरा होती है और यही मार्ग है कर्मों को खिपाने का। ऐसी गुणश्रेणी निर्जरा अज्ञानी के कभी भी नहीं हो सकती। वह बंध भी कर रहा है और कुछ खिर रहा है। कभी पुण्य बांध रहा है कभी पाप बांध रहा है। परंतु सामान्य से जितना बंध हो रहा है उतना ही उसका खिर रहा है तो कर्म नष्ट होने का कोई उपाय ही उसके नहीं है। अज्ञानी ऐसा मानता है कुछ पुण्य करूंगा तो मुझे मोक्ष मिल जायेगा। उसको बतानेवाले भी मिलते हैं और अपनी कल्पना से भी सहजरूप से पुण्य की रुचि होती है तो मानता है कि मैं थोड़ा आगे बढ़ा हूं। अभी यह इतनी-इतनी बातें कर रहा है, परंतु उससे उसके हाथ में कुछ आनेवाला नहीं।

हमारी अनादि से यह भूल हो रही है। पुण्य परिणाम की बात तो छोड़ो, हमने तो कुछ क्रिया में ही धर्म मान लिया है और उस क्रिया में शुभ परिणाम हों या न हों, क्रिया करते रहते हैं। हमने कुछ शारीरिक क्रिया की, तो धर्म हो गया है ऐसा मानते हैं। मैं प्रैक्टिस करती थी तो मेरे कुछ पेशेंट थे। महिलायें उपवास करती थी और उन्हें ऑसिडिटी सहन नहीं होती थी। फिर व्हिजिट के लिये बुलाते थे। अरे भगवान ! अरे अरिहंत ! अरे महावीरा ! ऐसा जोर-जोर से चिल्लाया करती रहती थी। कुछ लोग कितना संक्लेश परिणाम करते हैं, क्या-क्या करते हैं। क्या जरूरत है यह उपवास करने की ? क्यों ऐसा कर रहे हैं ? ऐसे केवल क्रिया करते हैं, परंतु अपने परिणामों का कुछ ख्याल नहीं है। ऐसा देखा-देखी करते हैं न ? उन्होंने किये तो हमने किये। उसने पांच उपवास किये, उसने आठ किये तो हमने दस किये। यह ऐसा चलता रहता है देखा-देखी, केवल कुछ क्रिया की और हमने धर्म किया ऐसा मान लेते हैं। अकेले उपवास के बारे में नहीं, अन्य अनेक बातों में ऐसे ही चलता रहता है।

हां, अभी हम गुणश्रेणी की बात देख रहे थे, यह कितनी बड़ी होती है ? अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण और थोड़ा अधिक। अब इसके लिये और एक शब्द आता है। यहां जो गुणश्रेणी बनेगी उसका नाम है गलितावशेष। पहले हमने देखे थे, दो नाम

आते हैं- एक है अवस्थित और एक है गलितावशेष। गलितावशेष का अर्थ क्या है ? जो गुणश्रेणीरूप रचना होती है न, उसमें क्या होता है ? नीचे के निषेक नीचे-नीचे आते हैं, उदयावली में आकर जुड़ जाते हैं और वे यथासमय खिर जाते हैं। पहले निषेक रचना कैसी थी ? ऐसे नीचे से ऊपर घटते क्रम से निषेक थे। उनमें स्थितिकांडकघात वगैरह जो हम पहले देख चुके हैं वे तो सब होते ही रहते हैं। अब अपूर्वकरण में आने के बाद क्या हुआ ? ऊपर के सर्व निषेकों में से कुछ परमाणु निकलकर नीचे आयेंगे, पहले थोड़े उदयावली में दिये जायेंगे और उसके ऊपर जो गुणश्रेणीरूप रचना हो जायेगी। वहां भी दिये जायेंगे और उसके ऊपर के निषेकों में भी।

जहां गुणश्रेणीरूप रचना होती है वहां पूर्व के निषेक थे उसमें और अधिक असंख्यातगुणा-असंख्यातगुणा क्रम से द्रव्य दिया। दूसरे समय में ऊपर से और ज्यादा द्रव्य आयेगा। तीसरे समय में और ज्यादा आयेगा। परंतु उस दूसरे और तीसरे समय में और क्या होगा ? नीचे से एक-एक समय तो गल जायेगा, उदयरूप होकर निकल जायेगा। गुणश्रेणी का क्या होगा ? वह उदय के सन्मुख हो जायेगी। फिर यह आवली प्रमाण उदयावली नष्ट हो जायेगी। तो क्या होगा ? अब गुणश्रेणी के निषेक इतने के इतने नहीं रहते, हर समय उनमें और अधिक-अधिक द्रव्य आ रहा है। हर समय यह बढ़ रहा है। जब गुणश्रेणी के निषेक उदय के काल में आते हैं तब उदयरूप निषेक कितना बड़ा बन जायेगा। वह खिर जायेगा। गुणश्रेणी ऊपर से तो बढ़ नहीं रही है, परंतु नीचे से गलितावशेष यानी गल रही है और छोटी-छोटी हो रही है। निषेक संख्या में कम हो रहे हैं, ऊपर से द्रव्य और असंख्यातगुणा आ रहा है, हर समय असंख्यातगुणा द्रव्य आ रहा है और गुणश्रेणी छोटी-छोटी हो रही है तो अधिक मात्रा में द्रव्य खिर रहा है। इसे कहेंगे गलितावशेष यानी गल रही है और थोड़ी बाकी है।

अपूर्वकरण का काल समाप्त हुआ, तब अपूर्वकरण के जितने समय हैं उतने निषेक गल जायेंगे। फिर अनिवृत्तिकरण का काल शुरू हुआ तो उसमें क्या होता है उसकी बात भी हम देखेंगे। अभी तो हम यहां आगे क्या होता है उसकी बातें देखेंगे, फिर आगे बढ़ेंगे। इसको क्या कहा ? गलितावशेष गुणश्रेणी कहा। इसका एक-एक निषेक गल जायेगा। ऊपर से उसमें कोई दूसरा निषेक गुणश्रेणीरूप से नहीं आ रहा है; ऊपर निषेक तो बहुत हैं, परंतु गुणित प्रमाण में जहां तक देना है वे लिमिटेड निषेक

हैं। उसमें से नीचे एक-एक निषेक गल रहा है तो गुणश्रेणी का आयाम छोटा-छोटा होता जा रहा है। *श्रोता: अवस्थित ?* हां, अवस्थित का अर्थ होता है गुणश्रेणी उतनी की उतनी बनी रहेगी। उसमें नीचे से भले गल जाये, परंतु ऊपर का एक निषेक उसमें प्रवेश करता है। ऐसी अवस्थित गुणश्रेणी यहां नहीं है, यहां केवल गलितावशेष गुणश्रेणी बनती है। अभी यहां बीच में कुछ अतिस्थापना और उसकी चर्चा है।

पेज ७४- अब गुणश्रेणी का विधान कहते हैं। जिन प्रकृतियों का उदय पाया जाता है उन्हीं के द्रव्य का उदयावली में निक्षेपण होता है। हमने देखा था, यह गुणश्रेणीरूप रचना होती है; ऊपर से अपकर्षण होता है उसका द्रव्य यानी परमाणु कहां-कहां दिये जाते हैं ? उदयावली में, गुणश्रेणी में और उसके ऊपर। उदयावली किसकी होगी ? जिसका उदय होगा उसकी और उदीरणा यानी उदयावली में किसका द्रव्य दिया जायेगा ? जिसका उदय है उसका। जिसका उदय नहीं है ऐसी प्रकृतियों का द्रव्य उदयावली में नहीं दिया जायेगा। इतनी सी बात है। यानी उनमें उदीरणा नहीं कहलायेगी। हमने देखा था कौन-कौनसी प्रकृतियों का यहां उदय है, किसका नहीं है, हमने पहले चर्चा की थी। जो उदयरूप प्रकृतियां हैं उन्हींकी उदीरणा होगी इतनी सिम्पल बात है। अब आगे बढ़ेंगे। तो उस द्रव्य का उदयावली में निक्षेपण होता है।

अभी हमने देखा था, सभी निषेकों में से अपकर्षण द्रव्य बाहर निकला। कितना निकला ? संपूर्ण द्रव्य को अपकर्षण भागहार से भाग दिया तो एकभाग प्रमाण द्रव्य अभी हमने अलग निकाला। उसको कहीं-कहीं देंगे। कहां पर देंगे ? उदयावली में देंगे, गुणश्रेणी में देंगे और ऊपर भी देंगे। कहां कितना देंगे उसका प्रमाण कैसे निकालना ? तो उसके लिये विशिष्ट संख्याओं से उसको भाग देंगे। एकभाग उदयावली में दिया, अन्य भाग गुणश्रेणी में दिया और बाकी जो भाग है वह ऊपर दिया - अभी उसीकी बात यहां गाथा ६८ में बताते हैं, देखो- **जिन प्रकृतियों का उदय पाया जाता है उन्हीं के द्रव्य का उदयावली में निक्षेपण होता है।** क्षेपण करना यानी डालना, उदयावली के निषेकों में मिलाना। **उसके लिये असंख्यातलोक का भागहार जानना।** यानी जो हमने अपकर्षण द्रव्य लिया था, उसको पहले में पहले पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर बहुभाग तो ऊपर दिया जाता है और एकभाग उदयावली और गुणश्रेणी में मिलकर दिया जाता है। जो इन दोनों में दिया जानेवाला है उस भाग को हम

असंख्यातलोक नाम की जो संख्या है उससे भाग देंगे। यह बहुत बड़ी संख्या है तो उसका जो रिझल्ट है वह छोटा आयेगा वह उदयावली में देंगे। **जिन प्रकृतियों का उदय पाया जाता है अथवा जिनका उदय नहीं पाया जाता उन दोनों के द्रव्य का उदयावली के बाह्य गुणश्रेणी में और उपरितन स्थिति में निक्षेपण होता है।**

अब जिनका उदय नहीं है, उन प्रकृतियों का अपकर्षण होता है कि नहीं होता है ? उनका भी होता है। परंतु उनका द्रव्य कहां दिया जायेगा ? उदयावली नहीं है उनकी क्योंकि उदय नहीं है, परंतु वहां तो निषेक रचना है। तो उसमें दिया जायेगा। उनकी भी गुणश्रेणी है, उनके भी ऊपर के निषेकों में दिया जायेगा। क्योंकि जिनका उदय नहीं है वे प्रकृतियां भी नष्ट तो होंगी न ! वे उदयावली में अन्य प्रकृतिरूप उदय में आकर नष्ट हो जायेगी। अभी हमने देखा कितनी ही प्रकृतियों का वहां उदय नहीं होता है तो उन प्रकृतियों का क्या होगा ? उनमें भी गुणश्रेणीरूप रचना हो जायेगी, उनमें भी अपकर्षण हो जायेगा परंतु उदयावली में उनका द्रव्य नहीं दिया जायेगा। वे परमाणु भी खिरेंगे तो सही - बिना उदय में आये, पररूप से। बिना उदय में आये नष्ट नहीं होते; अपनेरूप से उदय में नहीं आयेंगे, वे पररूप से आ जायेंगे। अब आगे देखते हैं इसको - **उसके लिये अपकर्षण भागहार जानना।** ये तो कितने परमाणु आते हैं उस भागहार की संख्या बतायी है। **इस कथन को आगे व्यक्त करके कहते हैं।**

देखो, यहां गाथा ६९ की टीका- **यहां ऐसा जानना कि अपकर्षण भागहार का भाग देकर वहां एकभाग को पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर वहां बहुभाग उपरितन स्थिति में निक्षेपण करता है।** सत्ता में जितने निषेक हैं - अंतःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण - किसी भी प्रकृति का द्रव्य इन निषेकों में पड़ा है, पूरा टोटल द्रव्य। उस पूरे टोटल द्रव्य को पहले में पहले पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देना यानी इस संख्या से भाग देना। वह भाग देकर इन सबमें से हमने एकभाग निकाला। ये सब परमाणु कहां से निकले ? सभी निषेकों में से निकले। उदयावली में से नहीं निकलेंगे, परंतु सबमें से मान लेते हैं हमने इतना भाग लिया। अनंत परमाणुओं को अपकर्षण भागहार से भाग दिया तो इतने परमाणु हमने अलग निकाले। अब इनको फिर उन निषेकों में निक्षेपण करना है, कहीं-कहीं। उनमें से ही निकाला और उनमें ही कहीं पर डाला। अब उसके लिये क्या करेंगे ? तो कहते हैं पल्य के असंख्यातवें भाग

का भाग दिया तो एकभाग प्रमाण इतना आया और बाकी बहुभाग कहां दिया ? गुणश्रेणी के ऊपर सर्वत्र दिया, उपरितन स्थिति में - गुणश्रेणी के ऊपर। क्योंकि वहां तो अंतःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण निषेक हैं तो भले ही इतना बड़ा भाग दिया, परंतु सबके खाते में थोड़ा-थोड़ा आयेगा। बाकी जो एकभाग है; उसका कैसा डिस्ट्रिब्यूशन होगा ? कुछ उदयावली में जायेगा और कुछ गुणश्रेणी में जायेगा।

अब उसको पढ़ना- बहुभाग उपरितन स्थिति में निक्षेपण करता है। **कर्म के सत्तारूप स्थिति के निषेकों में से; ये सत्तारूप स्थिति के सभी निषेक, उनमें से; वर्तमान समय से लेकर आवलीकाल में उदय आने योग्य निषेकों में जो द्रव्य दिया उसको उदयावली में दिया कहते हैं।** नीचे से एक आवली प्रमाण जो निषेक हैं अभी हमने उनको गलाते हुये दिखाया नहीं था, यहां जो आवली प्रमाण निषेक हैं उसमें घटते क्रम से दिया। यहां हमने तीन ही निषेक बताये हैं, पर ये आवलीप्रमाण हैं समझना। यहां इसको क्या कहेंगे ? उदयावली में दिया। यह जो एकभाग प्रमाण है उसको असंख्यातलोक का भाग दिया। एकभाग प्रमाण इतना निकाला न, वह जायेगा - गुणश्रेणी में और उदयावली में। इसमें से उदयावली में कितना देना ? असंख्यातलोक का भाग देना। एकभाग उदयावली में देना और बाकी बचा हुआ बहुभाग गुणश्रेणी में देना, पहलेवाला बहुभाग हमने ऊपर दिया था। **उसके ऊपर गुणश्रेणी आयाम प्रमाण निषेकों में जो द्रव्य मिलाया उसे गुणश्रेणी में दिया कहते हैं।**

उसके ऊपर अंत के अतिस्थापनावली मात्र निषेक छोड़कर हमने पहले देखा था अतिस्थापना यानी जिन निषेकों में नहीं दिया जाता उसको अतिस्थापना कहते हैं। अंतिम, ऊपर के लास्टवाले- वहां से द्रव्य नीचे तो आयेगा परंतु उसमें नहीं दिया जायेगा; उसमें कहीं से भी द्रव्य नहीं दिया जायेगा तो उसको कहेंगे आवली प्रमाण अतिस्थापनावली। उसमें नहीं दिया जायेगा, बाकी सर्वत्र इसका डिस्ट्रिब्यूशन हो जायेगा। इसको कहते हैं कि ऊपर के निषेक छोड़कर सर्वत्र दिया। अभी मिथ्यात्व के परमाणु में भी ऐसा होगा। मिथ्यात्व का पूरा द्रव्य कितना है ? जो सत्ता में पड़ा है उतना सब है। वह कितना है ? उनकी भाषा में बताया डेढ़गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध - उसको अभी भूल जाओ। यानी जितना सब वहां सत्ता में - स्टॉक में पड़ा है वह मिथ्यात्व का पूरा द्रव्य है। मिथ्यात्व के पूरे द्रव्य के अभी निषेक कितने हैं ? तो

अंतःकोड़ाकोड़ी सागर बने हैं। हमने देखा स्थितिकांडकघात के द्वारा अंतःकोड़ाकोड़ी सागर इतने बाकी हैं। उसमें द्रव्य कितना पड़ा है ? करीबन सब पूरा द्रव्य उसमें पड़ा है। अब उस पूरे द्रव्य को अपकर्षण भागहार से हम भाग देंगे।

देखो, नीचे के पॅरेग्राफ में लिखा है- जितना आठों कर्मों का द्रव्य है, उसमें से आयुकर्म का द्रव्य अलग निकालो। वह कम है, बहुत थोड़ा है। बाकी स्टॉक में पूरा सातों कर्मों का मिलकर द्रव्य है, उसका करीबन सातवां भाग मोहनीय का होगा। उसमें हीनाधिक है उसकी चर्चा यहां नहीं होगी, वह कर्मकाण्ड में हम कर चुके। किसमें कितना द्रव्य विभाजन होता है ? मोहनीय का कितना है ? करीबन सातवें भाग प्रमाण मोहनीय का द्रव्य है। इसमें से मिथ्यात्व का द्रव्य कितना है ? मोहनीय का द्रव्य किसमें-किसमें डिस्ट्रिब्यूट हुआ था ? दर्शनमोहनीय में भी और चारित्रमोहनीय में भी। यानी यहां मिथ्यात्व में भी, १६ कषाय में भी। अब इसका जो द्रव्य है वह सर्वघाति द्रव्य भी है, देशघाति द्रव्य भी है। सर्वघाति द्रव्य किसमें चला जायेगा ? मिथ्यात्व में भी जायेगा, १६ कषायों में भी जायेगा और देशघाति प्रकृति में भी जायेगा; अनंतवां भाग तो सर्वघाति द्रव्य है। वह १७ में डिस्ट्रिब्यूट होगा। वह पूरे मोहनीय का अनंतवां भाग मिथ्यात्व और १६ कषायों में जाता है, $१६ + १ = १७$ हुये; सत्रहवां भाग जाता है; सत्रहवां भाग मिथ्यात्व में जायेगा। यानी इतना कम आता है फिर भी पूरा पॉवरफुल है। है न ?

उसका जो अपकर्षण होगा, वह थोड़ा उदयावली में जायेगा, थोड़ा गुणश्रेणी में जायेगा और थोड़ा ऊपर जायेगा। ऐसी गुणश्रेणी की रचना ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अंतराय, सब में होगी; आयु में नहीं होगी। आयु के जैसे एक-एक निषेक खिर रहे हैं वैसे ही खिरेंगे, उसकी निषेक रचना में कोई परिवर्तन नहीं होगा। सात कर्मों में ऐसी गुणश्रेणी होगी और सातों ही कर्मों में जब ये खिरेंगे तो अधिक मात्रा में परमाणु खिर जायेंगे। हमने देखा अप्रशस्त कर्मों का अनुभाग घट रहा है। नया अनुभागबंध भी द्विस्थानीय हो रहा है। उदय आयेगा वह भी हीन अनुभाग का हो जायेगा और अधिक मात्रा में परमाणु खिरने लगेंगे। ये जो कार्य हो रहे हैं, अपूर्वकरण से ही ऐसे कार्य हो रहे हैं। अब यहीं रुकेंगे हम।

बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

१६. अपूर्वकरण

आचार्य श्री नेमिचन्द्र सिद्धांतचक्रवर्ती ने इस लब्धिसार ग्रंथ की रचना की है। और उसीके आधार से पं. टोडरमलजी ने सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका लब्धिसार-क्षपणासार भाषाटीका ढूंढ़ारी भाषा में लिखी है। उसका हम यहां हिंदी अनुवाद देख रहे हैं। प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त होता है उसके पूर्व से ही लेकर जीव के परिणामों में और कर्म में क्या-क्या बातें होती हैं, इसका यहां विस्तार से वर्णन चल रहा है। लब्धि में तो दर्शनलब्धि और चारित्रलब्धि की ही बात हो रही है क्योंकि सच्ची लब्धि तो मोक्ष की लब्धि है और उसकी प्राप्ति का उपाय है दर्शनलब्धि यानी सम्यग्दर्शन और अधिक स्थिरता उसको चारित्रलब्धि कहा। उसके साथ तो सम्यग्ज्ञान है ही है, परंतु दर्शन और चारित्र की अपेक्षा से यहां बात चल रही है। जो अनादि मिथ्यादृष्टि है उसको सबसे पहले जो सम्यक्त्व होता है उसको कहते हैं प्रथमोपशम सम्यक्त्व। बाद में भी सादि मिथ्यादृष्टि को मिथ्यात्व में आने पर बहुत काल बीत जाता है - असंख्यात वर्ष, तब फिर दुबारा वह जो सम्यक्त्व प्राप्त करता है उसे भी प्रथमोपशम सम्यक्त्व कहते हैं। पांच लब्धिपूर्वक ही प्रथमोपशम सम्यक्त्व होता है - क्षयोपशमलब्धि, विशुद्धिलब्धि, देशनालब्धि, प्रायोग्यलब्धि और करणलब्धि। उनकी हमने विस्तार से चर्चा देखी थी।

करणलब्धि के भी तीन अलग-अलग परिणाम हैं। तीन अलग-अलग अंतर्मुहूर्तों का यहां विस्तार से वर्णन है। पहला अधःप्रवृत्तकरण, दूसरा अपूर्वकरण और तीसरा है अनिवृत्तिकरण। ये नाम अलग-अलग जीवों के परिणामों की विशेषता से तुलनात्मक हैं। अन्य-अन्य जीवों के परिणाम समान हैं कि असमान हैं ? क्या एक ही समय के लिये समान हैं कि उसमें भी असमानता है ? ऊपर और नीचे के समयों में भी क्या समानता हो सकती है ? अधःप्रवृत्तकरण में अगर एक जीव के परिणाम देखते हैं तो वे प्रतिसमय अनंतगुणा विशुद्ध होते चले जाते हैं। परंतु यदि करण मांडनेवाले त्रिकालवर्ती अनंत जीवों की अपेक्षा उनके परिणामों की आपस में तुलना करेंगे तो किसीके परिणाम पहले समय में जितने विशुद्ध हैं; किसीके उतनी ही विशुद्धि चौथे समय में पायी जाती है, किसीके दूसरे समय में और किसीके तीसरे समय में। चार समय हमने उदाहरण के लिये बताये हैं, वैसे यथायोग्य काल तक समानता पायी जाती है। अधःप्रवृत्तकरण का यह लक्षण है। उसको अनुकृष्टि कहते हैं। ऊपर और नीचे के समयों में परिणामों

की समानता होना उसको अनुकृष्टि कहेंगे। अब यहां क्या विशेष बातें होती हैं ?

अधःप्रवृत्तकरण में प्रत्येक जीव की अपनी-अपनी विशुद्धि अनंतगुणा-अनंतगुणा बढ़ती है। उसके कारण यहां क्या-क्या बातें बनती हैं हमने देखा था। विशुद्धि प्रतिसमय अनंतगुणा बढ़ती है। उसके कारण स्थितिबंध घटता चला जाता है। किसमें ? प्रशस्त में भी और अप्रशस्त में भी। अनुभागबंध में क्या विशेषता होती है ? प्रशस्त कर्मों में बढ़ता हुआ और अप्रशस्तों में घटता हुआ अनुभाग बंधेगा। नये अनुभागबंध की बात है। सत्ता का अनुभाग तो प्रायोग्यलब्धि के काल में घटा ही था, द्विस्थानीय हुआ था। यहां आकर नया बंध और भी हीन-हीन अनंतगुणा हीन ऐसा होता जाता है। ये चार बातें अधःप्रवृत्तकरण से शुरू हुयी हैं वे आगे भी चलती ही रहती हैं।

अपूर्वकरण आदि आगे के करण परिणामों में भी ये बातें होती ही रहती हैं। इन ऑडिशन - इसके साथ-साथ और कौनसी चार बातें होती हैं उसकी चर्चा अपनी कल चली थी। जो अपूर्वकरण के परिणाम हैं उनका नाम क्या है ? अपूर्व। प्रति समय के परिणाम अपूर्व-अपूर्व होंगे। किसी भी जीव के पहले समय के परिणाम की किसी अन्य दूसरे, तीसरे आदि ऊपर के किसी भी समय के अन्य जीव के परिणाम के साथ समानता नहीं हो सकती। पहले समय की जघन्य से उत्कृष्ट तक की परिणामों की रेंज अलग होगी परंतु पहले समय का उत्कृष्ट परिणाम भी ऊपर के समय के जघन्य परिणाम के समान नहीं होता, वह जघन्य भी इससे अनंतगुणा होता है। एक जीव का एक समय में एक ही परिणाम है। परंतु किसीका थोड़ा कम विशुद्ध है, किसीका अधिक विशुद्ध है। परंतु दूसरे समय का जो कम से कम विशुद्ध परिणाम है, वह पहले समय के उत्कृष्ट परिणाम से भी अनंतगुणा विशुद्ध है। हर समय की अपनी-अपनी रेंज अलग-अलग है। परंतु पहले समय के किसी भी परिणाम की दूसरे समय के परिणाम के साथ समानता नहीं है। इसी कारण इन परिणामों को अपूर्वकरण परिणाम कहते हैं। यहां क्या बातें विशेष होती हैं ? चार बातें और ऑडिशनल होने लगती हैं; हमने देखा था- गुणश्रेणी, गुणसंक्रमण, स्थितिकांडकघात और अनुभागकांडकघात। हैं न ? यानी जहां-जहां अपूर्वकरण परिणाम होते हैं, वहां-वहां ये बातें होती रहती हैं।

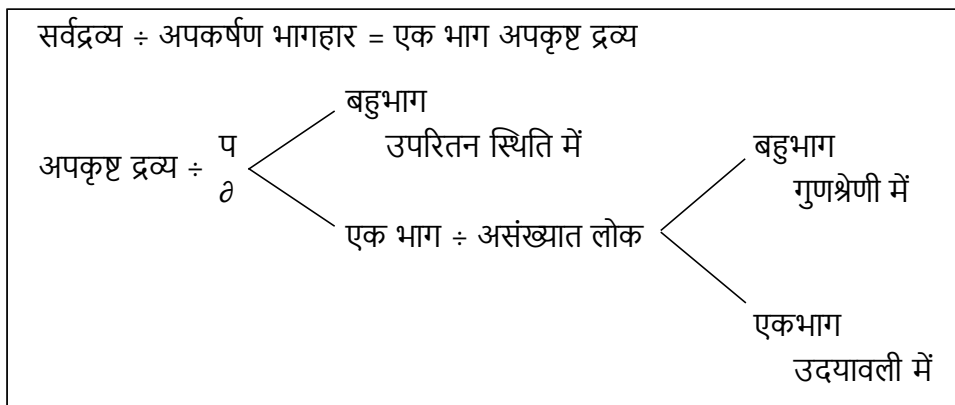
यह गुणश्रेणी होना यानी क्या ? गुणित प्रमाण में पंक्तिरूप रचना होती है। अभी तक हमने देखा यह मिथ्यादृष्टि है - प्रायोग्यलब्धि में भी कुछ बातें हुयी थी, अधःकरण

में भी कुछ हुयी थी परंतु गुणश्रेणीरूप रचना नहीं हुयी थी। सत्ता की स्थिति भले घटी थी और नया स्थितिबंध कम हुआ था। परंतु निषेक की रचना अभी तक कैसी थी ? सत्तावाला नीचे का निषेक बड़ा होता है और ऊपर घटते क्रम से, ऐसी हमने निषेक रचना देखी थी। अब इससे आगे क्या विशेषता होती है ? यहां पर अपकर्षण होता रहता है, स्थितिकांडकघात यहां से शुरू हुआ है। अपकर्षण तो पहले भी होता था परंतु तब थोड़ा-थोड़ा द्रव्य नीचे आता था। मिथ्यादर्शन अवस्था में जैसा रेग्युलर आता है, वैसा यहां पर भी आता था। अभी भी यह जीव मिथ्यादृष्टि है परंतु अभी विशेष विशुद्धि हुयी है, उसकी निर्मलता और बढ़ रही है। तो उसके कारण अपकर्षण होनेवाला द्रव्य भी ज्यादा आता है और यहां स्थितिकांडकघात शुरू हो जाते हैं ।

हमने स्थितिकांडकघात देखा था। अभी स्थिति कितनी बाकी है ? स्थिति अंतःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण बाकी है। तो सबसे ऊपर के जो पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण यानी वह भी बहुत बड़ा असंख्यात होता है इतने निषेकों को कांडकरूप से ग्रहण हुआ। कांडकरूप से ग्रहण हुआ इसका अर्थ क्या है ? सभी निषेकों के कुछ परमाणु पहले समय में नीचे आते हैं यानी उनकी स्थिति घटकर वे नीचे के निषेकों में आ मिलते हैं। उसको हम कहेंगे एक फालि, एक फालि यानी उस फालि का पतन हुआ ऐसा कथन करने में आयेगा। जैसे हम वह गन्ना छीलते हैं न ? क्या करेंगे हम ? ऐसा छीलकर निकालेंगे, फिर और थोड़ा छीलेंगे। इसतरह से पहली फालि के सारे परमाणु नीचे आ गये। फिर वह दूसरी फालि नीचे आ गयी, फिर तीसरी फालि नीचे आ गयी। अंतर्मुहूर्त में पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण निषेक पूर्णरूप से नष्ट होकर, वे सारे ही परमाणु नीचे के निषेकों में आ मिलते हैं। जब स्थितिकांडकघात हो रहा था उसी समय वहां अपकर्षण भी चल ही रहा था। अपकर्षण होना यानी सभी निषेकों में से एकभाग प्रमाण द्रव्य निकाला जाता है और वह सर्वत्र दिया जाता है। कहां-कहां दिया जाता है ? तो नीचे उदयावली में दिया जाता है, बीच में गुणश्रेणी में दिया जाता है, जो अभी यहां नयी बनेगी, यह गुणश्रेणी की रचना होना यहां से शुरू हो जाता है और बाकी जो द्रव्य बचा है वह ऊपरवाली स्थिति में दिया जाता है। तो कहां कितना दिया जाता है ? उसके लिये कल हमने पुस्तक के आधार से भी देखा था।

अपकर्षण की बात मैं पहले कह रही हूं। अपकर्षण कितने द्रव्य का किया

जाता है ? सत्ता में जो अंतःकोड़ाकोड़ी प्रमाण निषेक बाकी हैं, उन सबके टोटल परमाणु जो सत्ता में हैं उसको कहेंगे सर्वद्रव्य। उस सर्वद्रव्य को अपकर्षण भागहार नाम की जो संख्या है उस संख्या से भाग देंगे। तो एकभाग प्रमाण जो संख्या आयेगी उतने द्रव्य का अपकर्षण किया जायेगा। उसको हम कहेंगे अपकृष्ट द्रव्य। वह कहां से निकला ? सभी निषेकों में से। अब इसको फिर सभी निषेकों में दिया जायेगा। यह जो एकभाग प्रमाण द्रव्य सभी निषेकों में से निकला है उसको हम अपकृष्ट द्रव्य कहेंगे। अब उसमें से कहां कितना देना ? उसको बताते हैं। यह प यानी पल्य और यह ० ऐसी जो साइन बनायी है उसका अर्थ होता है असंख्यात। यह साइन है, यह सिम्बॉल बनाया है और यह हमने नहीं बनाया, ना ही टोडरमलजी ने बनाया। आचार्यों ने ऐसे ये सिम्बॉल्स बनाये हैं, इनको कहेंगे संदृष्टि। इन संदृष्टियों के द्वारा असंख्यातों के, अनंतों के बड़े-बड़े गणित समझाये जाते हैं - इसको कहेंगे अर्थसंदृष्टि। हमें लगता है यह शॉर्ट हॅण्ड वगैरह हमने अभी निकाला। ऐसा नहीं है, यह तभी का है।



अपकृष्ट द्रव्य को पल्य के असंख्यातवें भाग नाम की जो संख्या है उस संख्या से भाग देंगे तो जितनी संख्या आयेगी... अभी हम पहले देख लेते हैं; एकभाग और बहुभाग क्या होता है ? जैसे हजार संख्या को हमने दस से भाग दिया तो एकभाग की क्लैल्यू कितनी आयी ? १०० और कितने बचे ? ९००। तो एकभाग है १०० और बाकी बचे ९०० उसे हम कहेंगे बहुभाग। ऐसे ही किसी भी संख्या को भाग देकर हम एकभाग, बहुभाग निकल सकते हैं। अभी अपकृष्ट द्रव्य यानी जितना हमने अपकर्षित द्रव्य देखा उसको पल्य के असंख्यातवें भाग नाम की जो संख्या है उस संख्या से भाग

देने पर उसमें एकभाग और बहुभाग ऐसे दो विभाग होंगे। अब यह जो बहुभाग है वह कहां दिया जाता है ? गुणश्रेणी के ऊपर अंतःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण जितने निषेक हैं उन सभी निषेकों में ये डिस्ट्रिब्यूट - विभाजित होंगे। किस पद्धति से ? तो पहले नीचे के निषेक में अधिक, ऊपर थोड़ा कम, थोड़ा कम, थोड़ा कम, इसतरह से। अब सबसे ऊपर जो अतिस्थापनावली है उसमें नहीं दिये जायेंगे। उसमें से द्रव्य नीचे आता है, परंतु उसमें दिया नहीं जायेगा क्योंकि यह अपकर्षण होनेवाला द्रव्य है। ऊपर नहीं जायेगा, उसमें से नीचे आयेगा। परंतु ऊपर के एक आवली प्रमाण निषेकों को छोड़कर शेष सभी निषेकों में; यह चय घटते क्रम से दिया जायेगा यानी थोड़ा-थोड़ा हीन-हीन-हीन क्रम से ऊपर तक के निषेकों में दिया जायेगा। कौनसा ? यह बहुभाग जो उपरितन स्थिति में दिया। यह जो एकभाग रह गया है यह एकभाग कहां-कहां दिया जायेगा ? गुणश्रेणी और उदयावली में मिलकर दिया जायेगा।

श्रोता: दोनों में ? दोनों में। परंतु किस प्रपोर्शन में देना है ? जो एकभाग निकाला है। कहां से निकाला ? सभी निषेकों में से। इस अपकृष्ट द्रव्य को पल्य के असंख्यातवें भाग से भाग देकर बहुभाग उपरितन स्थिति में दिया और जो एकभाग है उसको फिर असंख्यातलोक का भाग देंगे। अब यह असंख्यातलोक का भाग देने पर एकभाग है वह उदयावली में देना है और बहुभाग है वह गुणश्रेणी में देना है। *श्रोता: पल्य का असंख्यातवां भाग ?* नहीं, असंख्यातलोक, यहां का भागहार असंख्यातलोक है। अब यह जो भागहार है न, यह बहुत बड़ा भागहार है। इसलिये बहुत थोड़ा द्रव्य उदयावली में गया और बहुत अधिक द्रव्य गुणश्रेणी में गया। आगे चलकर जब श्रेणी में हम देखेंगे, यह भागहार पल्य का असंख्यातवां भाग हो जाता है तो उदयावली में असंख्यात समयप्रबद्ध दिये जाते हैं। यह आगे का विषय है। परंतु इस भागहार का जो कुछ महत्व है उसको मैं बता रही हूं। यहां असंख्यातलोक प्रमाण भागहार बहुत बड़ा है। थोड़ा द्रव्य उदयावली में जायेगा, बहुत अधिक यहां गुणश्रेणी में चला जायेगा। आगे चलकर जहां जिस प्रोसेस में यहां भागहार पल्य का असंख्यातवां भाग यानी बहुत छोटा हो जाता है वहां बहुत अधिक द्रव्य उदयावली में जायेगा यानी उदीरणा होकर खिर जायेगा। जिसको कहेंगे प्रतिसमय असंख्यात समयप्रबद्धों की निर्जरा होती है।

यह द्रव्य खिरना या नष्ट होना या उसके क्षय होने का सर्वत्र यही प्रोसेस है। यहां

भी कहो या ऊपर श्रेणी में भी कहो - जहां कहीं भी होता है अलग-अलग भागहारों की संख्या बदलने से यह अपकर्षण होनेवाला द्रव्य हीनाधिक होता है। श्रेणी में असंख्यात समयप्रबद्धों की उदीरणा होकर वह खिर जाता है, निर्जरा हो जाती है। पूरा मोक्षमार्ग ऐसा ही है। कितनी ही प्रकृतियां बंधने से रुकी हैं उसको हम संवर कहेंगे और पूर्व में बंधी हुयी सभी प्रकृतियां, सभी कर्म के परमाणु इसीतरह से अधिक मात्रा में खिर जायेंगे इसको हम कर्मों की निर्जरा कहेंगे। कहां कितनी और कौनसी प्रकृतियों की कैसी अवस्था होती है, यह अपना यहां विषय चल रहा है। अभी तो प्रथमोपशम सम्यक्त्व की अपनी बात हो रही है।

अब गुणश्रेणी में यह बहुभाग दिया जायेगा तो गुणश्रेणी कितनी बड़ी होती है ? उसको हम देखेंगे। यह गुणश्रेणी अभी जो बनी है उसका मैंने यह काल बताया है। अपूर्वकरण का काल, अनिवृत्तिकरण का काल और ऊपर का और थोड़ा काल मिलकर मैंने यहां आपको पूरी गुणश्रेणी दिखायी है यानी यहां अभी मैंने उपरितन स्थिति या उदयावली कुछ नहीं लिखा है। गुणश्रेणी कितनी लंबी होती है ? तो कहते हैं अपूर्वकरण का काल, अनिवृत्तिकरण का काल और ऊपर थोड़ा काल मिलकर यह गुणश्रेणी की लंबाई है। इसे साधिक कहेंगे। अनिवृत्तिकरण के संख्यातवें भाग प्रमाण ऊपर का काल साधिक में ले लिया है। अभी तो अपना प्रोसेस आगे बढ़ेगा।

इसको क्या कहा है ? गलितावशेष गुणश्रेणी। गलितावशेष का अर्थ क्या है ? नीचे से एक-एक निषेक गल जायेगा, उदय में आकर खिर जायेगा और गुणश्रेणी में हर समय ऊपर से और द्रव्य आयेगा। ये निषेक और बड़े-बड़े हो जायेंगे। अँट अ टाइम तो बहुत सारी बातें हो रही हैं परंतु गलितावशेष यानी एक-एक निषेक खिरता चला जायेगा। यहां हमने यह एक समय की बात लिखी है। अपूर्वकरण का काल बीतता जायेगा वैसे-वैसे गुणश्रेणी छोटी-छोटी होती चली जायेगी। अपूर्वकरण हो गया, अभी अनिवृत्तिकरण चल रहा है तो गुणश्रेणी और छोटी रह जायेगी। अनिवृत्तिकरण का और भाग बीत गया तो गुणश्रेणी इतनी सी रहेगी। बाद में विशेष कार्य होनेवाले हैं, निषेकों में अंतर होगा, अंतर के ऊपर के निषेकों का उपशम होगा- वह हम आगे समझायेंगे।

अपूर्वकरण के शुरू में ही- अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण और थोड़ा अधिक, इतनी लंबी गुणश्रेणी तैयार हुयी है। ऐसी गुणश्रेणी कौनसे कर्म में होती है ? तो आयु को

छोड़कर सभी कर्मों में होती है। गुणश्रेणी होने से क्या होगा ? जब वह गलने लगेली तो अधिक मात्रा में द्रव्य खिरने लगेगा। इसको कहेंगे गुणश्रेणी निर्जरा यहां से शुरू हो जाती है। यहां तक की बातें ख्याल में आयी ? गुणश्रेणी क्या होती है ? अभी हमने देखा यह गुणश्रेणी अपूर्वकरण परिणामों के कारण यहां शुरू हो जाती है। उसका दीर्घत्व यानी उसका आयाम कितना है ? अपूर्वकरण का काल प्लस अनिवृत्तिकरण का काल प्लस थोड़ा अधिक। यह सब मिलकर यहां गुणश्रेणीरूप रचना होती है। यह जो थोड़ा अधिक लिया है न, उसको ही बाद में हम गुणश्रेणीशीर्ष कहेंगे। गुणश्रेणीशीर्ष, शीर्ष यानी उसका टॉप। अब कहां कितना द्रव्य दिया जाता है उसकी बात हमने देखी है।

श्रोता: यह अंतर कहां बनेगा ? हां उसीमें, हां, वही आनेवाला है। कुछ निषेकों का नाश होकर वह अंतर बन जायेगा। इसीलिये गुणश्रेणी में थोड़ा अधिक कहा। उस थोड़े अधिक का क्या होता है ? वह तो हमने कहां बताया आपको ? अभी गुणश्रेणी बनी है उतनी बात शुरू हो गयी। ख्याल में आयी बात ? अभी तो गुणश्रेणी कितनी बनी है इतनी ही अपनी चर्चा हुयी है। अपूर्वकरण में यह गुणश्रेणी भी होती रहेगी, यह जो स्थितिकांडकघात, अनुभागकांडकघात वे भी यहां होते रहेंगे। उसकी बात अभी हम पढ़ेंगे। एक शब्द ऐसा भी आता है; जहां स्थितिकांडकघात होता है न यानी उन निषेकों का घात होता है उसको कहेंगे व्याघात - विशेष घात होता है। जब अपकर्षण होता है तो निषेक अपने स्थान पर बने रहते हैं, उनमें से कुछ परमाणु नीचे आते हैं तो उसको कहेंगे अव्याघात। यह अलग-अलग शब्दों का अर्थ समझना है, नहीं तो यह नया शब्द कहां से क्या आया ऐसा होता है और फिर अपनी गड़बड़ी हो जाती है।

हम देखेंगे गाथा ६९ की टीका- **गुणश्रेणी का विधान कहते हैं।** पहले पढ़ा था। परंतु क्या है, शाम को क्या पढ़ा था याद नहीं है इसलिये दुबारा देखते हैं। हमारे घर में भी ऐसा होता है। हमारा प्रतिदिन डेढ़ घंटे का करणानुयोग का स्वाध्याय होता है। पहले दिन जितना पढ़ा है न, दूसरे दिन कभी-कभी तो पौन घंटा या एक घंटा रिक्विजन में जाता है, फिर थोड़ा आगे बढ़ते हैं। दूसरे दिन और डिफिकल्ट बात आती है तो पहले दिन की बात आसान लगने लगती है। **यहां ऐसा जानना कि अपकर्षण भागहार का भाग देकर वहां एकभाग को पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर वहां बहुभाग उपरितन स्थिति में निक्षेपण करता है।** हमने बोर्ड पर लिखा

है। अपकर्षण भागहार का भाग देकर उस एकभाग को पत्य के असंख्यातवें भाग से भाग देकर बहुभाग उपरितन स्थिति में निक्षेपण करता है। यही वाक्य पढ़ा था न ?

अब आगे- **कर्म के सत्तारूप स्थिति के निषेकों में से वर्तमान समय से लेकर आवली काल में उदय आने योग्य निषेकों में जो द्रव्य दिया उसको उदयावली में दिया कहते हैं। उसके ऊपर गुणश्रेणी आयाम प्रमाण निषेकों में जो द्रव्य मिलाया, उसे गुणश्रेणी में दिया कहते हैं।** यह हमने उदयावली में दिया और यह गुणश्रेणी में दिया। **उसके ऊपर अंत के अतिस्थापनावली मात्र निषेक छोड़कर सर्व निषेकों में जो द्रव्य दिया, वह उपरितन स्थिति में दिया कहते हैं।** यह उपरितन स्थिति में दिया। जितना द्रव्य अपकर्षण हुआ उसको पत्य के असंख्यातवें भाग से भाग देकर बहुभाग उपरितन स्थिति में दिया और एकभाग गुणश्रेणी और उदयावली में मिलकर दिया। जो यह मिलकर दिया उसको भी एकभाग-बहुभाग के रूप में दिया है। यही बात उन्होंने मिथ्यात्व के उदाहरण के द्वारा बतायी है।

पहले यहां मिथ्यात्व का द्रव्य कितना होता है यह समझाने के लिये उन्होंने बताया कि सभी आठों कर्मों का मिलकर सत्ता में जितना द्रव्य पाया जाता है उसमें से आयु कर्म का द्रव्य थोड़ा है क्योंकि अन्य कर्म तो हर समय बंध रहे हैं और आयु कभी-कभी बंधती है और वह भी अंतर्मुहूर्त तक बंधती है। अगर अबद्धायु है तो वर्तमान की जो शेष आयु है, वर्तमान आयु के निषेकों के परमाणु जो कुछ यथायोग्य हैं, उनको अगर हम गौण करेंगे तो बाकी सात कर्मों का द्रव्य पड़ा है। मेजॉरिटी तो सात कर्मों के द्रव्य की है। इसको अगर हम सात में डिक्वाइड करेंगे, यानी सभी कर्मों के मिलकर इतने परमाणु हैं उनको हम सात का भाग देंगे तो एकभाग प्रमाण मोहनीय का द्रव्य मिलेगा। यह तो आसान है न ! यह एक्झैक्ट सातवां भाग नहीं है, परंतु स्थूलरूप से हम कहेंगे कि सातवां भाग मोहनीय का द्रव्य है।

देखो, हम यहां पढ़ेंगे। अब यहां मिथ्यात्व के उदाहरण द्वारा विधान कहते हैं- **सर्व कर्म का** यानी सभी पूरे आठों कर्मों का मिलकर **सत्त्वरूप द्रव्य** कितना पाया जाता है ? **किंचित कम डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण है।** अभी यह डेढ़ गुणहानि क्या है ? उसे भूल जाओ। यह टोटल द्रव्य है इतना समझ लेना। **उसमें से आयुकर्म का द्रव्य घटाने के लिये किंचित कम करके** वह दूसरे कर्मों के द्रव्य की

तुलना में बहुत कम है, इसलिये किंचित कम किया। तो थोड़ा कम टोटल द्रव्य, **अवशेष को सात मूलप्रकृतियों के विभाग के लिये**। ज्ञानावरण, दर्शनावरण आदि सात में वह डिक्वाइडेड है। **सात का भाग देने पर मोहनीय का द्रव्य होता है।** यहां तक समझने में कोई दिक्कत है ? यह मोहनीय का द्रव्य बताया। **उसको देशघाति और सर्वघाति का विभाग करने के लिये** क्योंकि मोहनीय का जो द्रव्य है, टोटल परमाणु हैं उसमें हमने देखा था दर्शनमोहनीय है, चारित्रमोहनीय है। उसमें तो देशघाति और सर्वघाति प्रकृतियां हैं। हम प्रकृतियों की बात ही नहीं करेंगे, हम परमाणु की बात करेंगे। जो सर्वघाति स्पर्धकों के परमाणु उनको हम सर्वघाति परमाणु ही कहेंगे और देशघाति स्पर्धकों के परमाणु उनको हम देशघाति परमाणु कहेंगे। अभी इन परमाणुओं का डिस्ट्रिब्यूशन सर्वघाति में और देशघाति में कैसे होता है ?

जो मोहनीय का टोटल द्रव्य है उसमें सर्वघाति का द्रव्य अनंतवें भाग प्रमाण है। मोहनीय का द्रव्य डिक्वाइडेड बाय अनंत इज ईक्वल टू एकभाग, वह सर्वघाति का द्रव्य है और बहुभाग देशघाति का द्रव्य है। वे परमाणु थोड़े होने पर भी पूरा घात करते हैं, वे सर्वघाति हैं। ये सर्वघाति परमाणु हैं वे किसमें चले जायेंगे ? देखो, मोहनीय का सर्व द्रव्य है उसको सर्वघाति-देशघाति का विभाग करने के लिये **अनंत का भाग देकर, एकभाग मात्र सर्वघाति द्रव्य होता है।** अब यह सर्वघाति द्रव्य किसमें-किसमें जायेगा ? कहते हैं **उसके सोलह कषाय और एक मिथ्यात्व के विभाग करने के लिये** जो सर्वघाति द्रव्य है, परमाणु हैं वे मिथ्यात्व और सोलह कषाय- अनंतानुबंधी के चार, अप्रत्याख्यानावरण के चार, प्रत्याख्यानावरण के चार और संज्वलन के चार मिलकर सभी सोलह कषाय में जायेंगे। बंधनेवाले तो सोलह हैं। उदय में हमने देखा चार क्रोध का उदय होगा या चार मान का या चार माया का या चार लोभ का।

देखो, यह जीव कोई भी ऐसा एक परिणाम करता हो - क्रोध हो, मान हो, माया हो या लोभ हो, बंधते तो चारों ही हैं। यहां अनंतानुबंधी आदि चार प्रकार के क्रोध कर रहा है परंतु बंध रहे हैं सोलह। सभी बंध रहे हैं। तो कौनसा कषाय करना अच्छा ? कोई भी करो, क्रोध न करके माया करो फिर भी बंधेंगे तो सभी। यह सर्वघाति द्रव्य सत्रह में डिक्वाइड होगा। यह जो सर्वघाति द्रव्य अनंतवें भाग प्रमाण है, उसको सत्रह का भाग देंगे तो हमको मिथ्यात्व का द्रव्य मिलेगा। मिथ्यात्व प्रकृति के इतने परमाणु

हैं। इसको पहले पीठबंध में यानी लब्धिसार भूमिका में हमने जो देखा था; **उक्त प्रमाणवाले अपकर्षण भागहार नामक भागहार का भाग देकर** देखो, यह मिथ्यात्व का सर्वद्रव्य। उसको अपकर्षण नामक भागहार से भाग देकर **एकभाग बिना** यह एकभाग बिना; एकभाग है न अपकृष्ट द्रव्य, **अवशेष बहुभाग तो** यह एकभाग तो अपकर्षित द्रव्य है। बाकी क्या होगा ? अपने-अपने निषेकों में पड़ा है। अपकृष्ट द्रव्य एकभाग प्रमाण है बाकी निषेक रचना जो है वैसे ही रहेगी। **पूर्व में सत्ता में जैसे अपने निषेकरचनारूप थे वैसे ही रहते हैं।** यह बात ख्याल में आयी ? **तथा जो एकभाग रहा** अपकर्षण भागहार से भाग देने पर जो एकभाग रहा। बहुभाग तो निषेकरूप रचना जैसी थी वैसी ही रही और जो एकभाग है, **उसको पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर बहुभाग का उपरितन स्थिति में निक्षेपण करता है।** जब हम यह वाक्य पढ़ते हैं तो उसका अर्थ भासित होता है कि नहीं इतना ही देखना है।

अभी आगे बढ़ेंगे। पृष्ठ ७६ पर गाथा ७० की टीका- **अवशेष एकभाग रहा** हमने देखा न बहुभाग उपरितन स्थिति में दिया। अवशेष एकभाग रहा **उसको असंख्यातलोक का भाग देकर वहां बहुभाग;** कहां दिया ? **गुणश्रेणी आयाम में देना। और अवशेष एकभाग उदयावली में देना।** यहां तक बात क्लिअर हुयी ? यह अपकर्षण द्रव्य कहां दिया जाता है उसकी बात चल रही है। *श्रोता: असंख्यातलोक का क्या मतलब है ?* असंख्यातलोक का मतलब ऐसा है; एक लोक में कितने प्रदेश हैं ? तो कहते हैं असंख्यात प्रदेश हैं। जैसे हमने देखा एक कटोरी में कितने चावल हैं ? हम मान लेते हैं न हजार चावल हैं और हमने ऐसी हजार कटोरी ली। *श्रोता: असंख्यात का कोई प्रमाण है ?* असंख्यात बहुत प्रकार के होते हैं। सबसे छोटे असंख्यात को जघन्य परीतासंख्यात कहते हैं। तो जघन्य परीतासंख्यात को जघन्य परीतासंख्यात बार आपस में गुणा करने पर आवली का प्रमाण आता है। अपनी भाषा में जघन्य परीतासंख्यात रेज्ड टु जघन्य परीतासंख्यात = जघन्य युक्तासंख्यात, जो आवली का प्रमाण है वह भी इतना बड़ा असंख्यात लगता है, वह इसके सामने कुछ नहीं। क्योंकि एक सेकंड में ऐसी संख्यात हजार कोड़ाकोड़ी आवली होती हैं। यह तो आवली हुयी।

अभी पल्य नाम का प्रमाण जो हमने आपको एक बार बताया था। वह गड्ढा करना, रोमखंडों से भरना... वह भी पल्य है। ऐसे १० कोड़ाकोड़ी पल्यों का एक सागर

होता है। सागर का प्रमाण भी असंख्यात का कोई एक प्रकार है। हम जो कल्पकाल कहते हैं - छह कालों का जो परिवर्तन है ऐसी उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी मिलकर - २० कोड़ाकोड़ी सागर का एक कल्पकाल होता है। उसमें कितने समय होंगे ? उसको भी असंख्यात कहते हैं। अब पल्य है वैसा एक अंगुल नाम का प्रमाण है। अंगुल यानी जो उंगली की चौड़ाई है उसको अंगुल कहेंगे। अंगुल का भी असंख्यातवां भाग करो। उसमें कितने प्रदेश हैं ? अंगुल का प्रमाण तो असंख्यात है ही है, उसका असंख्यातवां भाग करो और उन प्रदेशों को समयों में कन्वर्ट करो। सुनना जरा इस अंगुल की कितनी मॅग्निट्यूड है ! जितना पल्य है न, पल्य को पल्य से गुणा करो-उसको उससे गुणा करो-उसको उससे गुणा करो यानी पल्य के वर्ग का वर्ग, उसका वर्ग, उसका वर्ग असंख्यात बार करेंगे तो अंगुल में प्रदेशों की संख्या का प्रमाण आता है।

अब उन प्रदेशों की संख्या का असंख्यातवां भाग करो और एक प्रदेश के बदले एक समय गिनो। क्योंकि काल में बताना आपको आसान होगा। कितना-कितना काल चला जाता है तो अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण प्रदेशों का प्रमाण आता है ? तो कहते हैं असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी चली जाये तो जितने समय बीत जायेंगे उतने प्रदेश अंगुल के असंख्यातवें भाग में होते हैं। हमें पता ही नहीं न कि प्रदेशों की सूक्ष्मता कितनी है और समय की सूक्ष्मता कितनी ! अब अंगुल हमें दिखायी देता है। अभी पूरे हॉल में कितने प्रदेश होंगे ? पूरे लोकाकाश में कितने होंगे ? फिर भी वे असंख्यात हैं, अनंत नहीं हैं। ऐसे असंख्यातलोक हो जाये तो भी वह संख्या असंख्यात ही है। हमें संख्याओं का बिलकुल भावभासन है ही नहीं। अनंत क्या चीज़ है हमें पता ही नहीं है। अभी हम ये सारी संख्यायें देख रहे हैं वह असंख्यातों की बात चल रही है। संख्यात, असंख्यात, अनंत क्या है उसका थोड़ा एहसास हो जाये तो हम जो बातें करते हैं उसका मर्म और ख्याल में आता है, उसकी विशालता ख्याल में आती है।

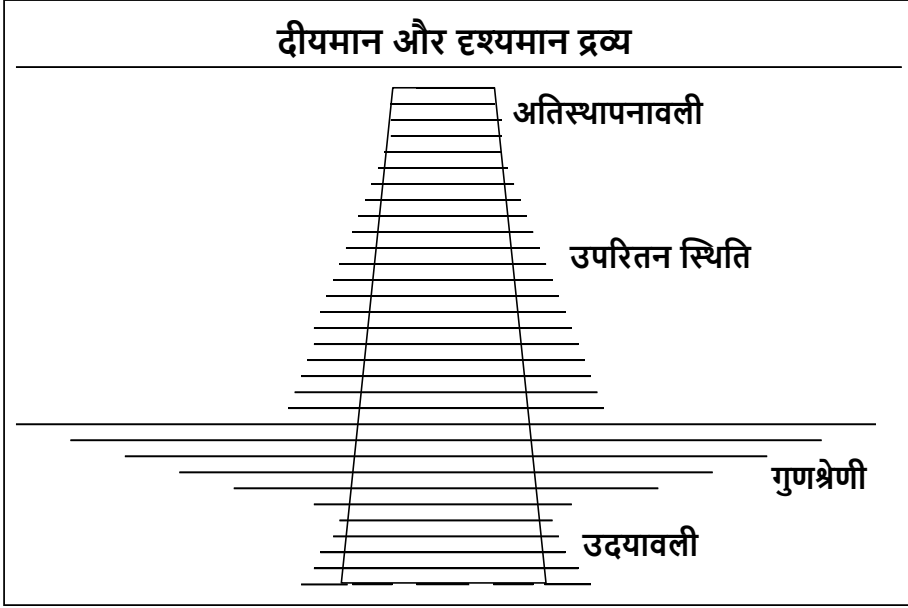
असंख्यातलोक का अर्थ होता है एक लोक में जितने प्रदेश हैं उनकी जो संख्या है उसको दो से, चार से नहीं, उसको असंख्यात से गुणा करो। उसको कहेंगे असंख्यातलोक। इतनी बड़ी संख्या से भाग देंगे तो एकभाग प्रमाण उदयावली में देंगे और बाकी बहुभाग गुणश्रेणी में देंगे। यह सारा गणित क्लिष्ट तो जरूर लगता है परंतु उसका अगर सहीरूप में थोड़ा भी भावभासन हो जाये न, तो यह बात बहुत अच्छी

तरह से ख्याल में आती है। श्रोता: असंख्यात की बात कहां मिलेगी ? जीवकाण्ड में असंख्यात की बात समझायी है। हमने केवल संख्यामान की एक सीडी भी बनायी है। संख्यात क्या है ? असंख्यात क्या है ? असंख्यात के प्रकार कितने हैं ? अनंतों के कौन-कौनसे भेद होते हैं ? उनके नाम, उनकी कुछ विशेषतायें... हमारे घर में स्वाध्याय चलता है, उसमें आठ दिन तक तो केवल संख्यामान की बात समझायी थी और उसकी हमने सीडी बनाकर रखी है। श्रोता: सीडी बुद्धिगोचर या तो फिर अबुद्धिगोचर है ? अरे लिखा है ! लिखनेगोचर है, पढ़नेगोचर है, बुद्धिगोचर ही तो बात चल रही है। अबुद्धिगोचर कैसे होती है ? अरे किसीके बुद्धि में आयी तभी तो इतनी बातें बतायी हैं। क्या होता है ? पढ़ते-पढ़ते नींद आती है तो अबुद्धिगोचर में चली जाती है। ऐसा नहीं।

देखो-देखो, अभी हम उदयावली में कितना दिया, कहां कितना दिया उसके हिसाब में नहीं जायेंगे। उसका भी एक-एक का गणित है - कितना द्रव्य दिया, पहले निषेक में कितना दिया जायेगा और उसका प्रमाण कैसे निकालना। देखो, आचार्यों की कैसी गजब की बुद्धि और कैसे-कैसे उन्होंने वह सारा लिखकर रखा है ! एक-एक का गणित करके समझाया है। पहले निषेक में कितना दिया ? दूसरे में कितना दिया ? तीसरे में ? उसको कितना दिया ? उसकी व्हॅल्यू कैसे निकालना ? थोड़ा कम दिया तो वह थोड़ा कम यानी चय की व्हॅल्यू कैसे निकालना इन सभी के गणित हैं। हम आपको इसमें नहीं उलझाना चाहते हैं क्योंकि अपने को आगे बढ़ना है न ! फिर भी, हमने बीना शहर में स्वाध्यायी लोगों को सिखाया था, वहां पर तो सारा लिया था। वहां जीवकाण्ड के कुछ गणित लिये थे। देखो, कोई जिज्ञासु है तो हमें आनंद होता है कि हां चलो, हमें जितना मालूम है आप भी इसको समझ लो और आगे बढ़ो। अभी आप जो यंग जनरेशन है, आप लोग तो बहुत बुद्धिमान हैं। हम तो अभी बुढ़े हो गये।

यह उदयावली में हीन क्रमरूप से दिया जाता है। गुणश्रेणी में इतना ही समझना कि पहले निषेक से दूसरे निषेक में असंख्यातगुणा, उससे तीसरे में असंख्यातगुणा, उससे चौथे में असंख्यातगुणा। अभी तो हमने यहां जगह नहीं है तो केवल थोड़ा अधिक-थोड़ा अधिक बताया। परंतु इसका अर्थ यहां ऑलरेडि पूर्व में निषेक थे, ऐसे गोपुच्छाकार थे और उनमें जो ऑडिशनल द्रव्य दिया गया है वह गुणश्रेणी में असंख्यातगुणा-असंख्यातगुणा क्रम से दिया है। तो उसकी फायनल रचना

ऐसी दिखायी देगी जैसी चार्ट में दिखायी है।



देखो यह जो है न, पहले सत्ता के निषेक हैं। फिर जो ऑडिशनल द्रव्य दिया जाता है उसको कहते हैं दीयमान द्रव्य और फायनल रिज़ल्ट जो दिखेगा उसको कहेंगे दृश्यमान द्रव्य। यानी हर समय इसमें और ज्यादा द्रव्य आकर मिलेगा और उसके निषेक और बड़े-बड़े होते जायेंगे। परंतु वह दिखाना कैसे ? हम थोड़ा इमॅजिन कर सके इसलिये यहां ऐसी रचना दिखायी जाती है। ऐसी संदृष्टियां मूल ग्रंथों में भी बनी हैं। अब उनका अर्थ कैसे समझना उसका बहुत विस्तार से वर्णन पं. टोडरमलजी साहब ने किया है। अभी हम गुणसंक्रमण क्या होता है उसको देखेंगे। **आगे गुणसंक्रमण का स्वरूप कहते हैं।** ७८ पृष्ठ, ७५ नंबर की गाथा -

पडिसमयमसंखगुणं द्रव्यं संकमदि अप्सत्थाणं।

बंधुज्झियपयडीणं बंधंतसजादिपयडीसु॥७५॥

हम प्राकृत ही पढ़ेंगे। संस्कृत में से मैं आपको अर्थ बताऊंगी। देखो, प्रतिसमयम् यानी प्रतिसमय, असंख्यगुणं द्रव्यं- असंख्यातगुणा द्रव्य। यानी पहले समय में जितना संक्रमित हुआ दूसरे समय में उससे असंख्यातगुणा। संक्रामति- संक्रमित

होता है। किसका ? अप्रशस्तानां- अप्रशस्त प्रकृतियों का। कौनसे अप्रशस्त ? सभी अप्रशस्त नहीं। बंधोज्झितप्रकृतीनां- जिनका बंध नहीं है ऐसी अप्रशस्त प्रकृतियां। किसमें संक्रमित होंगी ? बध्यमानसजातिप्रकृतिषु- बंधनेवाली सजातीय प्रकृतियों में संक्रमित होती हैं। फिर से - नहीं बंधनेवाली अप्रशस्त प्रकृतियां, बंधनेवाली सजातीय शब्द डाला है। ज्ञानावरण की वह अन्य किसीरूप नहीं होगी। तो बंधनेवाली सजातीय प्रकृतियों में संक्रमित होती हैं। वे कैसी संक्रमित होती हैं ? प्रतिसमय असंख्यातगुणा क्रम से संक्रमित होती हैं। उसको कहेंगे गुणसंक्रमण। अब ऐसा गुणसंक्रमण यहां के; यहां के यानी कहां के ? प्रथमोपशम सम्यक्त्व होने के पूर्व जो यहां अपूर्वकरण शुरू हुआ है, यहां किसी भी प्रकृति का गुणसंक्रमण नहीं हो रहा। तो यहां लिखा क्यों ? क्योंकि अन्यत्र जहां कहीं भी अपूर्वकरण परिणाम होते हैं वहां गुणसंक्रमण पाया जाता है। कौनसी प्रकृति में ? विशिष्ट, वहां की जो कोई प्रकृति है उसे वहां बतायेंगे कि कौनसी प्रकृतियों का किसमें गुणसंक्रमण होता है। ख्याल में आयी बात ? गुणसंक्रमण किसे कहना उसकी यहां परिभाषा बतायी है। देखो, टीका में पढ़ेंगे-

गुणसंक्रमण अपूर्वकरण के पहले समय में नहीं होता, अपने योग्य काल में होता है। तथापि उसका स्वरूप यहां कहते हैं- यानी उसकी डेफिनिशन यहां बतायेंगे। **जिनका बंध नहीं पाया जाता ऐसी अप्रशस्त प्रकृतियों का द्रव्य** यानी कुछ परमाणु, पूरा द्रव्य नहीं, **प्रतिसमय असंख्यातगुणा क्रम सहित जिनका बंध पाया जाता है ऐसी सजातीय प्रकृतियों में संक्रमण करता है। अपने स्वरूप को छोड़कर तद्रूप परिणमता है।** नहीं बंधनेवाली प्रकृति बंधनेवाली प्रकृति में संक्रमित होती है यानी उसमें ट्रांसफॉर्म हो जाते हैं। *श्रोता: श्रेणी में क्या होगा ?* देखो, अभी श्रेणी की बात करेंगे। श्रेणी में जैसे असातावेदनीय कर्म का बंध छठे गुणस्थान तक है। जब श्रेणी में अपूर्वकरण परिणाम शुरू होते हैं तो नहीं बंधनेवाली असातावेदनीय के परमाणु संक्रमित होकर सातारूप परिणमित होंगे। *श्रोता: सत्ता में पड़े हुये ?* वही तो- सत्ता में पड़े हुये क्योंकि अप्रशस्त कर्म अभी रखकर क्या होगा ? जैसे श्रेणी में कौनसे वेद का बंध है ? वहां पुरुषवेद का बंध है और वहां स्त्रीवेद और नपुंसकवेद के परमाणु सत्ता में हैं; अभी क्षय कैसा होगा उनका ? तो पुरुषवेद में संक्रमण होकर क्षय होगा।

इतने सारे परमाणु सत्ता में पड़े हैं न ? संक्रमण होने के लिये कितना काल

लगेगा ? कहते हैं गुणित प्रमाण में हो जायेगा। अंतर्मुहूर्त में सारे नष्ट हो जायेंगे। सर्वत्र उसका यह प्रोसेस है। इसको कहेंगे गुणसंक्रमण। कौनसी प्रकृतियों का गुणसंक्रमण कहां पर होगा, जब-जब उसका प्रोसेस आयेगा, विधान आयेगा तब उसकी बात करेंगे। अनंतानुबंधी की विसंयोजना हमने पहले देखी थी। क्या होता है ? जो सम्यग्दृष्टि है, उसकी जब विशुद्धि बढ़ती है और उसके तीन करण परिणाम होते हैं तो उसमें से जब अपूर्वकरण शुरू होता है तो अनंतानुबंधी के परमाणु बंधनेवाली सजातीय प्रकृतियों में संक्रमित होते हैं। सम्यग्दृष्टि है, चौथे गुणस्थान में बंधनेवाली सजातीय प्रकृतियां कौनसी हैं ? अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण, संज्वलन और यथायोग्य जो नोकषाय प्रकृतियां बंध रही हैं उन प्रकृतियों में गुणित प्रमाण में संक्रमित होते रहते हैं और एक अंतर्मुहूर्त में पूरे नष्ट हो जाते हैं। अनंतानुबंधी का गुणसंक्रमण उसके विसंयोजना के काल में अपूर्वकरण से शुरू हो जाता है। वह अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण में चलता रहेगा। यह है गुणसंक्रमण का स्वरूप।

श्रोता: ये अनंतानुबंधी के परमाणु जो हैं वे अप्रत्याख्यानावरणरूप हो रहे हैं तो क्या वे प्रत्याख्यानावरणरूप और संज्वलनरूप भी होंगे ? हां-हां चौथे गुणस्थानवाले के तीनोंरूप होंगे क्योंकि वहां तीनों का बंध चल रहा है। इतना ही नहीं, वहां नोकषाय का भी यथायोग्य बंध चल रहा है। करण परिणाम हैं- अरति-शोक नहीं बंधेंगे, वहां हास्य-रति बंध रहे हैं, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा बंध रहे हैं। उनरूप - बंधनेवाले अन्य सभीरूप हो जाते हैं। बंधनेवाली सजातीय प्रकृतियों में संक्रमित होते हैं। हमने देखा था संक्रमण के लिये बंध की कंडिशन है और दूसरी कंडिशन सजातीय होने चाहिये। मोहनीय के परमाणु- अनंतानुबंधी के परमाणु ज्ञानावरणरूप हो जायें ऐसी बात नहीं हो सकती। *श्रोता: पहले में से सातवें में जाता है तो उसका मतलब गुणसंक्रमण नहीं हो सकता ?* बिलकुल नहीं होता, कल हमने देखा था। यहां प्रथमोपशम के पूर्व गुणसंक्रमण इस पोझिशन पर नहीं है। अन्यत्र अपूर्वकरण में गुणसंक्रमण होता है। कौनसी प्रकृति में होता है बताने के लिये अनंतानुबंधी का नाम लिया। प्रथमोपशम के पूर्व अपूर्वकरण में अनंतानुबंधी में गुणसंक्रमण नहीं हो रहा है; सभी कर्मों में गुणश्रेणी आदि रचना हुयी है, उतना ही हुआ है। ज्ञानावरण में भी गुणश्रेणी हुयी है। सभी में अपकर्षण चल रहा है। सभी में स्थितिकांडकघात चल रहे हैं। इतनी बात सभी कर्मों में हो रही है।

श्रोता: इनकी स्थिति और अनुभाग का क्या होता है ? किसका ? श्रोता: जिनका संक्रमण हो गया है ? उनका वहां जिस अनुभागरूप से बंध पाया जाता है उस अनुभागरूप से संक्रमण होता है। क्योंकि केवल संक्रमण यानी प्रदेशों का ही संक्रमण नहीं हुआ है, प्रकृति का ही नहीं हुआ; अनुभाग का भी संक्रमण होता है; स्थिति का भी संक्रमण होता है। हमने तो बहुत अल्प बात उठायी। यहां केवल प्रकृति के संक्रमण की बात की। प्रकृतिसंक्रमण यानी कर्म परमाणु हैं वे अन्य कर्मरूप हो जाते हैं। पहले अनंतानुबंधी के कहलाते हैं अब अप्रत्याख्यानावरणादि के कहलायेंगे। उसका अनुभाग कैसे होगा ? जिस मात्रा में बंध हो रहा है। अभी द्विस्थानीयरूप से बंध हो रहा है तो यहां के सत्तावाले स्पर्धक द्विस्थानीयरूप हो जायेंगे। अनुभाग भी वैसा हो जायेगा जिस प्रमाण में बंध हो रहा है और स्थिति की बात है तो कहां तक वह चढ़ जायेंगे ? तो जितना नया स्थितिबंध है और जितनी संक्रमित होनेवाले परमाणुओं की शक्तिस्थिति है वहां तक वे संक्रमित होकर उनके सत्ता में जो परमाणु हैं और नये निषेक बंध रहे हैं उनमें उनका संक्रमण हो जायेगा। अभी उसमें तो बहुत सूक्ष्मता भी है, बहुत सारी। जितना पढ़ें उतना कम है। एक-एक संक्रमण पर; स्थितिसंक्रमण पर एक पुस्तक है, अनुभागसंक्रमण पर एक पुस्तक है। पूरे हैं, पढ़ों उतना कम है। जयधवला है, धवला है, महाधवला है, बहुत माल है अपने पास। इसमें प्रवेश करने की कमी है।

देखो अभी हम आगे बढ़ेंगे। हमने क्या देखा ? गुणसंक्रमण की परिभाषा क्या देखी ? जिनका बंध नहीं पाया जाता ऐसी अप्रशस्त प्रकृतियों का, जिनका बंध पाया जाता है ऐसी सजातीय प्रशस्त प्रकृतियों में संक्रमण होगा। आप कहेंगे अनंतानुबंधी सजातीय में तो हो रही है; परंतु वे प्रशस्त कहां हैं ? वह विसंयोजना की बात अलग है। परंतु यहां जो लक्षण बताया है उसकी बात यहां कर रहे हैं। या केवल जिनका बंध पाया जाता है ऐसी ही उन्होंने बताया है। उसमें प्रशस्त ऐसी कंडिशन नहीं डाली है। अब गाथा ७६ पढ़ लेते हैं।

एवंविह संक्रमणं पढमकसायाण मिच्छमिस्साणं।

संजोजणखवणाए इदरेसिं उभयसेट्ठिमि ॥७६॥

देखो, ऐसा असंख्यातगुणा क्रम युक्त जो संक्रमण। उसका नाम क्या देखा था ? गुणसंक्रमण। उसको गुणसंक्रमण कहते हैं। ऊपर गुणसंक्रमण की परिभाषा

बतायी। अब ऐसा गुणसंक्रमण कहां होता है वह बता रहे हैं। **अनंतानुबंधी कषायों का** देखो, कषायों का यानी यहां कर्मों की बात हो रही है। **यानी कषाय कर्मों का गुणसंक्रमण तो उसके विसंयोजन में होता है;** विसंयोजन का अर्थ हमने देखा था - जितना अनंतानुबंधी सत्ता में पड़ा है - अंतःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण, वह सारा का सारा एक अंतर्मुहूर्त में अन्य कर्मरूप परिणमित हो जाता है और अनंतानुबंधी की सत्ता नष्ट होती है उसको कहते हैं विसंयोजन या विसंयोजना। वहां अनंतानुबंधी का अन्य कर्मरूप गुणसंक्रमण होता है। **मिथ्यात्व और मिश्रमोहनीय का गुणसंक्रमण** कहां होता है ? **उनकी क्षपणा में होता है।** यानी जब क्षायिक सम्यक्त्व का प्रकरण चलेगा तब ये बातें फिर आयेंगी। वहां मिथ्यात्व का और सम्यग्मिथ्यात्व का गुणसंक्रमण होकर दोनों प्रकृतियां सम्यक् प्रकृतिरूप परिणमित होकर नष्ट हो जाती हैं तो वहां भी गुणसंक्रमण होता है। गुणसंक्रमण कहां होता है, उसके एक्झॅम्पल्स यहां हमें दे रहे हैं। **और अन्य प्रकृतियों का गुणसंक्रमण** जो नष्ट होनेवाली या उपशमित होनेवाली जो कुछ अन्य प्रकृतियां हैं उनका गुणसंक्रमण **उपशम और क्षपक श्रेणियों में होता है।** आठवें अपूर्वकरण गुणस्थान में और आगे नौवें गुणस्थान में ऐसे गुणसंक्रमण होते हैं।

जैसे, उसमें भी उन्होंने एक उदाहरण दिया। **श्रेणी में बंध रहित** यह श्रेणी यानी उपशमश्रेणी या क्षपकश्रेणी की बात है। बंध रहित **जो असातावेदनीय** है असातावेदनीय का तो बंध छूटे गुणस्थान के ऊपर है नहीं; **उसका द्रव्य बध्यमान** यानी बंधनेवाली **सजातीय सातावेदनीय में संक्रमण करता है, वह कहते हैं।** अभी उसका कितना द्रव्य है ? कितना परिणमित होता है ? उसकी बात हम छोड़ देंगे। यह केवल उदाहरण दिया है कि गुणसंक्रमण कहां-कहां कौन-कौनसी प्रकृतियों का होता है। अपनी बात यहां अपूर्वकरण की हो रही है। अपूर्वकरण में चार बातें और होती हैं- गुणश्रेणी, गुणसंक्रमण, स्थितिकांडकघात और अनुभागकांडकघात। अब यहां स्थितिकांडकघात का स्वरूप कह रहे हैं। हम ७९ पृष्ठ पर गाथा ७७ पढ़ेंगे।

पढमं अवरवरट्टिदिखंडं पल्लस्स संखभागं तु।

सायरपुधत्तमेत्तं इदि संखसहस्सखंडाणि ॥७७॥

देखो, **अपूर्वकरण के पहले समय में किया हुआ स्थितिखंड,** उसीका दूसरा नाम है **स्थितिकांडक आयाम।** आयाम का अर्थ क्या है ? स्थितिकांडकरूप से कितने

निषेकों को ग्रहण किया है उसको कहेंगे आयाम-लंबाई-नंबर ऑफ़ निषेक। वह कितना है ? जिसकी सत्ता की स्थिति कम है उसका कांडक भी छोटा होगा और जिसकी स्थिति लंबी है उसका कांडक भी बड़ा होगा। **जघन्य तो पल्य के संख्यातवें भाग मात्र और उत्कृष्ट पृथक्त्वसागर प्रमाण है। पृथक्त्व नाम सात वा आठ का जानना।** यानी एक कांडक कितना बड़ा होगा ? सात या आठ सागर, इतनी स्थिति एक छोटे अंतर्मुहूर्त में घट जायेगी। उन निषेकों का घात होकर उनके सारे परमाणु नीचे के निषेकों में आ मिलेंगे। **एक कांडक द्वारा इतनी स्थिति घटाते हैं।**

यद्यपि यहां स्थितिसत्त्व सामान्य से अंतःकोड़ाकोड़ी है। प्रायोग्यलब्धि में आते ही अंतःकोड़ाकोड़ी सागर स्थिति बनती है। परंतु अंतःकोड़ाकोड़ी का प्रमाण हीनाधिक भी हो सकता है। इसलिये उसका सामान्य प्रमाण क्या है ? कोड़ाकोड़ी से नीचे यानी अंतःकोड़ाकोड़ी सागर है। **तथापि किसीके तो अंतःकोड़ाकोड़ी पल्य मात्र जघन्य स्थितिसत्त्व है, किसीके अंतःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व है; इसलिये स्थिति के अनुसार कांडक भी जघन्य, उत्कृष्ट है, मध्य में कांडक के भेद असंख्यात हैं।** यानी यहां पर कांडक के व्हेरिएशन्स होंगे। **उनमें संख्यातगुणे स्थिति के भेद हैं। इसलिये संख्यात स्थितिभेदों में एक कांडक भेद पाया जाता है।** अभी इसके विस्तार में नहीं जाना है। हम इतना ही समझेंगे जैसे स्थिति होगी वैसे कांडक के भी व्हेरिएशन्स होंगे। अब आगे देखते हैं गाथा ७८-

आउगवज्जाणं ठिदिघादो पढमाहु चरिमठिदिसत्तो।

ठिदिबंधो य अपुव्वो होदि हु संखेज्जगुणहीणो ॥७८॥

अपूर्वकरण के पहले समय में जो स्थितिखंड स्थितिकांडक, स्थितिसत्त्व और स्थितिबंध पाये जाते हैं, क्या कहा ? जो स्थितिकांडकघात अपूर्वकरण के पहले समय में शुरू हुआ है- उसका जो प्रमाण है; वहां जितनी स्थिति पायी जाती है उसको स्थितिसत्त्व कहते हैं- उसका जो प्रमाण है और यहां अपूर्वकरण के शुरू में स्थितिबंध का प्रमाण है; **उनसे उसके अंत समय में** यानी अपूर्वकरण में ऐसे स्थितिकांडकघात होते-होते-होते-होते अंत तक पहुंचा। स्थितिकांडकघात के कारण क्या हुआ ? स्थिति घटती चली गयी। इतना ही नहीं, वह कांडक का प्रमाण भी छोटा-छोटा होता गया। तो अपूर्वकरण के अंत में इन सबका प्रमाण - स्थितिकांडक का प्रमाण, स्थितिसत्त्व का

प्रमाण और नये होनेवाले स्थितिबंध का प्रमाण; वह क्या है ? **संख्यातगुणे हीन हैं।** संख्यातगुणा हीन का अर्थ होता है संख्यातवें भाग प्रमाण है। जैसे ६४ संख्या है, वह चारगुणा हीन हुयी। उसका अर्थ क्या है ? *श्रोता: सोलह हो गया।* हां, सोलह यानी चौथे भाग प्रमाण, सोलह हो गया। ऐसे यहां पहले उनका प्रमाण अंतःकोड़ाकोड़ी जितना था, उसका संख्यातवां भाग प्रमाण हो गया। उसको भी अंतःकोड़ाकोड़ी ही कहेंगे।

यहां संख्यात हजार स्थितिकांडकघात द्वारा का संख्यातगुणा हीन होना जानना। स्थितिकांडकघात कितने ? एक, दो नहीं, संख्यात हजार बार। एक स्थितिकांडकघात पूरा हुआ, फिर दूसरा शुरू हुआ; वह पूरा हुआ, फिर तीसरा और हर एक के लिये एक अंतर्मुहूर्त काल लगता है। उतने काल तक समान स्थितिबंध होकर फिर स्थितिबंधापसरण भी होता है। यह बात भी चल रही है वहां पर। यह अँट अ टाइम बहुत सारी क्रियायें-प्रक्रियायें यहां एक साथ चलती रहती हैं। तो इसका नतीजा क्या होता है ? फल क्या मिला ? अपूर्वकरण के शुरू में जितना था उससे अपूर्वकरण के अंत में कांडक का आयाम भी संख्यातवें भाग प्रमाण हुआ, स्थितिसत्त्व भी घटते-घटते संख्यातवें भाग प्रमाण हुआ और स्थितिबंध जितना होता था वह भी घटते-घटते संख्यातवें भाग प्रमाण हो गया। **स्थिति के अनुसार स्थितिकांडक का प्रमाण होता है इसलिये स्थितिकांडक का संख्यातगुणा हीन होना जानना।**

संख्यात हजार स्थितिबंधापसरण करके यानी स्थितिबंध के घटने को स्थितिबंधापसरण कहा था। यह शब्द थोड़े-थोड़े याद रखने पड़ेंगे। स्थितिकांडकघात होता है तो सत्ता की स्थिति कट हो जाती है - स्थितिसत्त्व। स्थितिबंधापसरण होता है तो नया होनेवाला स्थितिबंध घटकर कम होता है। **स्थिति के अनुसार स्थितिबंध का संख्यातगुणा हीन होना जानना।** क्या कहते हैं ? जितनी स्थिति घटेगी उतना कांडक का प्रमाण भी घटेगा और जितनी स्थिति कम वहां नया होनेवाला स्थितिबंध उससे भी कम होता है। इसलिये जहां स्थिति घटती है वहां कांडक का प्रमाण भी घटता है और स्थितिबंध का प्रमाण भी घटता है। ये तीनों ही घटते-घटते अपने-अपने संख्यातवें भाग प्रमाण हो जाते हैं। स्थितिकांडकघात की बात बतायी, अब यहां अनुभागकांडकघात भी हो रहे हैं। उसका अभी हम स्वरूप देखेंगे। गाथा नंबर ७९ -

एकेकद्विदिखंडयणिवडणठिदिबंधओसरणकाले।

संखेजसहस्साणि य णिवडंतिरसस्स खंडाणि ॥७९॥

जिसके द्वारा एक बार स्थितिसत्त्व घटाते हैं ऐसा स्थितिकांडकोत्करण काल। एक स्थितिकांडकघात होने के लिये एक अंतर्मुहूर्त लगता है उसको कहेंगे स्थितिकांडकोत्करण काल। उत्करण यानी वह सारा नीचे आ जाना, घात होना और जिसके द्वारा एक बार स्थितिबंध घटाते हैं ऐसा स्थितिबंधापसरण काल यानी पहले अवस्थित रहता है फिर घटता है, फिर उतना रहता है फिर घटता है उसको कहेंगे स्थितिबंधापसरण काल। ये दोनों समान अंतर्मुहूर्त मात्र हैं। दोनों का काल समान है। एक स्थितिकांडकघात होने के लिये जितना काल लगता है उतने ही काल तक समान बंध होकर फिर घटकर दूसरा स्थितिबंध हो जाता है। उस एक अंतर्मुहूर्त में जिसके द्वारा अनुभागसत्त्व घटाते हैं अनुभाग का भी सत्त्व घटा रहे हैं। सत्ता में जितना उत्कृष्ट अनुभाग ऑलरेडि पड़ा था, वह घटकर अनंतवें भाग प्रमाण हो जायेगा। अनुभागसत्त्व जिसके द्वारा घटता है, ऐसे अनुभागखंडोत्करण या कांडकोत्करण एक ही बात है, उसके काल संख्यात हजार होते हैं। एक स्थितिकांडकघात होता है उसके लिये जो अंतर्मुहूर्त काल लगता है, उसी अंतर्मुहूर्त में संख्यात हजार बार अनुभागकांडकघात होते हैं। एक अनुभागकांडकघात होने के लिये भी अंतर्मुहूर्त लगता है। वह अंतर्मुहूर्त कितना छोटा होगा ! संख्यात हजार अनुभागकांडकघात होते हैं तो एक बार स्थितिकांडकघात होता है। ऐसे संख्यात हजार स्थितिकांडकघात होकर अपूर्वकरण के शुरू से अंत तक हम आ गये। क्योंकि उस काल से यह अनुभागखंडोत्करण काल संख्यातवें भाग है। संख्यात हजार को संख्यात कहा।

अब गाथा ८० की टीका पढ़ेंगे- अप्रशस्त जो असातादि प्रकृतियां, उनका अनुभागकांडक आयाम अनंत बहुभाग मात्र है। यह जो अनुभागकांडकघात होगा यह प्रशस्त प्रकृतियों में होगा या अप्रशस्त में ? श्रोता: अप्रशस्त में। अप्रशस्त में क्योंकि प्रशस्त का तो अनुभाग बढ़ रहा है। अप्रशस्तों में अनुभाग घट रहा है। हमने पहले पाप किया है, अभी क्या करेंगे ? अभी हमारा कल्याण कैसे होगा ? कुछ डरने की बात नहीं है। पूर्व में बंधे हुये सभी अप्रशस्त कर्मों के जो अनुभाग हैं वे अनंतगुणा-अनंतगुणा घटते चले जाते हैं। तो क्या कहते हैं ? असातादि प्रकृतियां, उनका अनुभागकांडक आयाम अनंत बहुभाग है। यानी वह कांडक कितना है ? अभी स्पर्धकों में गिनना है,

निषेकों को याद मत करो। निषेकों में हमने देखा था पल्य के संख्यातवें भाग प्रमाण या जो हीनाधिक स्थितिकांडक का प्रमाण होता है। हमने स्पर्धक कितने देखे थे ? अनंत होते हैं। यह जो उत्कृष्ट अनुभाग है उसके अनंत बहुभाग प्रमाण स्पर्धकों का नाश होकर अनंतवें भाग प्रमाण स्पर्धक अवशेष रहते हैं। फिर भी वे अनंत रहते हैं।

अपूर्वकरण के पहले समय में जो अनुभागसत्त्व पाया जाता है, उसको अनंत का भाग देकर वहां एक कांडक द्वारा बहुभाग घटाता है और एकभाग अवशेष रखता है। एक कांडक हुआ तो अनंतवां भाग अवशेष रहा; दूसरा कांडक हुआ तो जो रहा था उसका भी अनंतवां भाग अवशेष रहा; तीसरा कांडक हुआ तो जो अनंतवां भाग रहा था उसका अनंतवां भाग रहा। ऐसे संख्यात हजार कांडक होते हैं। एक स्थितिकांडकघात हुआ उसमें हजारों बार अनुभागकांडकघात होकर अनुभाग अनंतवां भाग-अनंतवां भाग हुआ। ऐसे स्थितिकांडकघात भी संख्यात हजार हुये तो अनुभाग कितना घटा ? ख्याल में आती है न बात ? हम पहले उदाहरण देते हैं।

आप एक ग्लास भर पानी में पोटेशियम परमैंगेनेट डालो, उसका डीप कलर आ जायेगा। उसको हमने एक बड़ी टांकी में डाला तो क्या होगा ? डायल्यूट दिखेगा। फिर उसमें से एक ग्लास पानी निकालो और बहुत बड़े तालाब में डालो - पता ही नहीं चलेगा। उसमें से एक ग्लास पानी निकालो और समुद्र में डाल दो। तो है कि नहीं वहां पर ? *श्रोता: है।* परंतु वह नहीं के बराबर है। ऐसे ही अप्रशस्त कर्मों का अनुभाग घटते चले जाता है अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्त में। उसमें भी एक-एक फालिरूप से वह कार्य होता रहता है। इसतरह से अभी हमने देखा है कि यहां अपूर्वकरण परिणाम होते हैं। यह अधःकरण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण में से अपूर्वकरण शुरू होता है तो उसमें चार बातें होती है - गुणश्रेणी, गुणसंक्रमण, स्थितिकांडकघात और अनुभागकांडकघात। अभी आगे अनिवृत्तिकरण में क्या-क्या होता है उसकी बातें हम दोपहर में देखेंगे।

बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

१७. अनिवृत्तिकरण - अंतरकरण

आचार्य श्री नेमिचन्द्र सिद्धांतचक्रवर्ती ने इस लब्धिसार ग्रंथ की रचना की है। उसीके आधार से पं. टोडरमलजी ने सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका लब्धिसार- क्षपणासार भाषाटीका ढूंढारी भाषा में लिखी है, जिसका हिंदी अनुवाद हम देख रहे हैं। यहां पहला अधिकार है प्रथमोपशम सम्यक्त्व की प्ररूपणा, उसमें अभी हम पांच लब्धि का स्वरूप देख रहे हैं जो प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त होने के पूर्व में होती हैं। इन पांच लब्धिपूर्वक ही प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त होता है।

पांचवीं जो करणलब्धि है उसमें भी तीन भाग हैं- अधःकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण। भिन्न-भिन्न जीवों के परिणामों की तुलना की अपेक्षा से ये नाम पड़े हैं। किसी एक जीव की अपेक्षा अगर हम देखते हैं तो उसके परिणाम प्रतिसमय अनंतगुणा विशुद्ध-विशुद्ध-विशुद्ध होते जाते हैं यानी उसकी विशुद्धि बढ़ती रहती है। यह बढ़ती हुयी विशुद्धि के कारण यहां क्या होता है ? हमने बहुत बार देखा था। अधःप्रवृत्त में स्थितिबंध घटता चला जाता है वह बात भी हमने देखी थी और अनुभाग की बात भी हमने देखी थी कि प्रशस्त कर्मों का अनुभागबंध बढ़ते जाता है, अप्रशस्तों का अनुभागबंध घटते जाता है।

अपूर्वकरण से कुछ विशेष बातें और भी प्रारंभ होती हैं। कौनसी बातें होती हैं ? गुणश्रेणी शुरू होती है, गुणसंक्रमण होता है, स्थितिकांडकघात होते चले जाते हैं और अनुभागकांडक होते हैं। प्रायोग्यलब्धि में तो एक-एक ही स्थितिकांडकघात और अनुभागकांडक हुआ था परंतु यहां से हर अंतर्मुहूर्त में एक-एक स्थितिकांडकघात होता है। एक पूरा हुआ फिर दूसरा प्रारंभ हुआ, उसका घात हुआ फिर तीसरा हुआ। इसतरह से यह बात चलती रहती है। एक स्थितिकांडकघात होता है उतने ही काल में हजारों बार यानी संख्यात हजार बार अनुभागकांडकघात होते रहते हैं। अनुभागकांडकघात के द्वारा सत्ता में पड़े हुये अप्रशस्त प्रकृतियों के अनुभाग का घटना - अनंतगुणा घटना चलता ही रहता है, सत्तावाला भी और उदय में आनेवाला भी। यहां नया बंध भी हीन अनुभागवाला ही बंधेगा। यहां हम देख रहे हैं मिथ्यात्व भी मंद हो रहा है, कषाय भी मंद हो रहे हैं। उसका अनंतगुणा इतना घट रहा है - सत्ता में से भी और जो सत्ता में घटा तो उदय में भी उसरूप से आयेगा। अपूर्वकरण में जो बातें

प्रारंभ हुयी हैं वे आगे अनिवृत्तिकरण में भी चलेगी। हमने अपूर्वकरण तक देखा था।

श्रोता: एक प्रश्न है- आपने कहा कि एक स्थितिकांडकघात में संख्यात हजार बार अनुभागकांडकघात होते हैं। तो क्या अभी या आगे ऐसा होता है कि स्थिति उदय तो होता है लेकिन अनुभाग सत्ता में से पूरा ही नष्ट हो जाये ? ऐसा कभी नहीं होगा, ऐसा बिलकुल नहीं होगा। सत्ता में रहते हुये अनुभाग नष्ट हो जाये ऐसा कभी भी नहीं होगा। अनुभाग तो रहेगा ही रहेगा, कर्म उदय में आता है तो उसका अनुभाग भी होगा ही। अनुभाग उदय में आना उसकी बात चल रही है। अनुभाग नहीं बंधे यह बात तो हो सकती है। कब ? जब कषाय नहीं रहेंगे दसवें गुणस्थान के पश्चात्। ग्यारहवें, बारहवें और तेरहवें गुणस्थान में अकेले एक सातावेदनीय का ही बंध होता है, बाकी कोई प्रकृति नहीं बंधती। ना उसमें स्थिति बंधेगी, ना अनुभाग बंधेगा परंतु अनुभाग का उदय तो चलेगा। उलटा वहां प्रशस्त प्रकृतियों के उत्कृष्ट अनुभाग का ही उदय रहेगा। वहां बहुत अधिक प्रमाण में बढ़कर उसका अनुभाग सत्ता में रहा है वह उदय में आयेगा।

श्रोता: आत्मसन्मुख परिणाम के कारण जब उसका अनुभाग उदय में आयेगा ही तो फिर उस समय कैसे उसका सेटिंग बैठायेगे हम ? किसका सेटिंग ? आप कौनसी प्रकृति की बात कर रहे हैं ? श्रोता: वहां आत्मसन्मुख परिणाम हैं। हां, आत्मसन्मुख परिणाम हैं। श्रोता: तो जैसे पुराने कर्म का उदय आयेगा तो अल्प अनुभाग उदय में आयेगा तो एक बाजू तो उपयोग आत्मसन्मुख परिणाम में लगा हुआ है और दूसरी बाजू कोई घातिकर्म की प्रकृति का मंद होकर उदय आता है इतना ही है ? कि अंदर राग भी है ? बिलकुल है, नहीं तो राग का अभाव और बंध का अभाव मानना पड़ेगा। हम जो कहते हैं कि कर्म के उदय में नहीं जुड़ता; उस पर आपका प्रश्न है न कि आत्मसन्मुख परिणाम हैं तो वहां अनुभाग का भी उदय चल रहा है। अब घातिकर्मों की बात करते हैं। ज्ञानावरणादि- ज्ञान का उतना उघाड़ तो चल ही रहा है परंतु आपको मुख्यतः पूछना है मोहनीय का - कषायों का। चारित्रमोहनीय का भी अनुभाग मंद होकर उदय में आ रहा है। अभी सम्यक्त्व नहीं हुआ है तो भी यहां अनंतानुबंधी का मंद उदय चल रहा है; अप्रत्याख्यानवरण, प्रत्याख्यानवरण और संज्वलन का भी मंद उदय चल रहा है। उतनी मात्रा में वहां जीव के परिणाम भी हैं तभी तो बंध भी है। जब तक अनंतानुबंधी का उदय है तब तक अनंतानुबंधी का बंध

होगा कि नहीं होगा ? अनिवृत्तिकरण के अंतिम समय तक मिथ्यात्व का बंध तो है ही है; अनंतानुबंधी आदि सोलह कषायों का भी बंध है। जितनी मात्रा में वहां उदय है उतनी मात्रा में उदय तभी कहलाता है जितनी मात्रा में जीव परिणाम कर रहा है।

हमारी यह कहने की पद्धति बन गयी है कि उदय चल रहा है और जीव नहीं जुड़ रहा है। क्या ऐसा कभी होगा कि मिथ्यात्व का उदय हो रहा है, जीव नहीं जुड़ रहा है और सम्यक्त्व होगा ? उदय उसीको कहते हैं कि यहां जीव के परिणाम हैं, तभी तो उदय कहलायेगा। ये तो निमित्तरूप से हैं, वे कराते तो हैं ही नहीं। ऐसा नहीं कि उसका उदय आया है, चल रहा है और जीव का परिणाम नहीं हो रहा है; इसको उदय नहीं कहते। हां, ऐसी कोई प्रकृतियां हैं कि जिनका उदय है परंतु उनका पररूप से उदय है। प्रदेश तो खिर रहे हैं। ऐसी भी कुछ प्रकृतियां हैं न कि उनका अपनरूप से उदय नहीं हो रहा है। तो हम कहेंगे कि वे फल दिये बिना चली जाती हैं। यहां फल दिये बिना चली जाती हैं का अर्थ है कि जीव के बुद्धिपूर्वक राग-द्वेष नहीं चल रहे हैं, अबुद्धिपूर्वक के वहां पर भी चल रहे हैं। उस मात्रा में हम उदय कहते हैं कि जिस मात्रा में जीव के परिणाम वहां चल रहे हैं। यह तो निमित्त-नैमित्तिक संबंध है। वह जीव के परिणामों को बतानेवाले हैं, करनेवाले है ही नहीं।

वहां उदय उसीको बताया था कि जीव के परिणाम किसरूप से चल रहे हैं उसका वह दर्शानेवाला है, दर्शक है, ज्ञापक है। बात ख्याल में आयी न ? ऐसी बात नहीं कि वहां उदय चल रहा है और अब जीव आत्मा में लीन है इसलिये उसको उतने राग-द्वेष नहीं हो रहे हैं - यह बात नहीं है। हां, यह होता है जुड़ता नहीं; जुड़ता नहीं जब हम कहते हैं जितनी मात्रा में राग-द्वेष हुये हैं - बुद्धिपूर्वक हो या अबुद्धिपूर्वक हो - उतना तो वह जुड़ ही गया है हम कहेंगे। जुड़ता नहीं यानी संयोगरूप जो कुछ अन्य कर्मों के फल मिल रहे हैं- अघातिकर्मों के - असातावेदनीय का जो कुछ फल चल रहा है। बाह्य संयोग में जो कुछ प्रतिकूलता है। हां, उसके बारे में कह सकते हैं कि वहां प्रतिकूलता होते हुये भी जीव को उस मात्रा में राग-द्वेष नहीं हो रहे हैं तो हम कहेंगे न, यह नहीं जुड़ा, परंतु जितना राग-द्वेष हुआ है वह तो जुड़ना हो ही गया है।

श्रोता: ऐसा कहने से तो सातवें गुणस्थान में भी बंध होता है तो यह बात असिद्ध होगी ? यह तो पूरे श्रेणी में भी हो रहे हैं न, सर्व जगह बंध तो हो ही रहे हैं न ! अनुभाग

का मंद उदय है फिर भी जितना अनुभाग का उदय है और उतनी मात्रा में जहां जीव के परिणाम हो रहे हैं, उतना बंध तो वहां चल ही रहा है। तीन बातें अट अ टाइम होती हैं- पुराने कर्मों का उदय, जीव के मोह राग-द्वेष के परिणाम और नया बंध। उसका आपस में निमित्त-नैमित्तिक संबंध तो है ही, जरूर है। अब जहां जीव तत्त्वविचार करता है उसके अपने मोह राग-द्वेष मंद होते हैं। यहां सत्ता में तो सभी प्रकार का अनुभाग पहले पड़ा था न। हम देख रहे हैं अप्रशस्त कर्मों का अनुभाग मंद होकर उदय में आ रहा है। यह जीव के हाथ की बात है न ! नहीं तो क्या कहना पड़ता ? जीव पराधीन हो गया। बाय चान्स कर्म के अनुभाग मंद पड़ जायें तो जीव मंद राग करे ऐसा होता फिर। ऐसा तो है ही नहीं। जीव जहां तत्त्वविचार करने लगता है तो उसका मिथ्यात्व मंद पड़ता है। उसके राग-द्वेष की मंदता होती है तो सत्ता में पड़ा हुआ अनुभाग मंद होकर उदय में आता रहता है। उपादान के अनुसार जीव के मिथ्यात्व और कषाय मंद होते हैं तब उसको निमित्त कहते हैं, निमित्त का आरोप कर्म पर आयेगा। ऐसा नहीं है कि कर्म का उदय आया इसलिये जीव को रागादि करने पड़े। नहीं तो फिर जीव इसमें से कभी छूट ही नहीं सकता था। यह जीव की अपने हाथ की बात है।

देखो, पहले हमें कुछ चीजें इष्ट-अनिष्ट लगती थी। अभी स्वाध्याय के द्वारा उसमें बहुत फर्क आ गया। हमारा इतना स्वाध्याय चलता है तो अभी मिथ्यादृष्टि रहते हुये भी बाह्य चीजों में इष्ट-अनिष्टता कम होती है कि नहीं होती है ? स्वाध्याय का इतना फल तो सामान्यरूप से होता है कि नहीं होता ? पहले अन्य चीजों में जितने रचे-पचे रहते थे अभी स्वाध्याय के द्वारा उतना तो कम होता है। तो उसका बाह्य चीजों का रस कम हुआ कि नहीं हुआ ? बाह्य प्रतिकूलतायें आने पर भी अभी उनमें इतनी अनिष्टता नहीं लगती है। ऐसा क्यों हुआ ? क्योंकि अभी उसका वैसा सही ज्ञान हुआ है। सत्ता में सभी प्रकार के अनुभाग पड़े हैं। यह हमारे तत्त्वविचार के बल पर अप्रशस्त कर्मों का अनुभाग हीन-हीन होकर वे उदय में आते हैं। ये बातें यहां हो रही हैं।

उसके आत्मसन्मुख परिणाम यहां करणलब्धि से शुरू हो जायेंगे। मिथ्यात्व के रहते हुये पहले में पहले आत्मसन्मुख परिणाम होते हैं। वैसा होते ही इमीजिएट, उसी समय में आत्मिक आनंद का अनुभव नहीं होता। अंतर्मुहूर्त तक आत्मा को जानता रहेगा तब उसको आत्मिक आनंद आयेगा, उसी समय सम्यक्त्व होगा। उसके पहले

उसके करणलब्धि के परिणाम होते हैं। उस काल में मिथ्यात्व इतना मंद-मंद होकर उदय में आ रहा है और बंध भी हो रहा है, परंतु अनुभाग सत्ता में ही नष्ट हो जाये और बिना अनुभाग का ऐसा ही उदय चले - ऐसा नहीं होता। चारों प्रकार का उदय होगा ही। हमने देखा न, प्रदेश उदय है, प्रकृति उदय है, स्थिति उदय है और अनुभाग उदय है - यह तो चलेगा। जिस प्रकृति का उदय जिस गुणस्थान तक है वहां उसके अनुभाग का उदय अवश्य होगा ही।

श्रोता: अविपाक निर्जरा की परिभाषा बताते हैं कि सत्ता में पड़े हुये कर्म आत्मसन्मुख पुरुषार्थ के द्वारा फल दिये बिना ही खिर जाते हैं तो यह सारा ही ? हां, बिलकुल। करणानुयोग के विशेष कथन अलग बात है। फल दिये बिना यानी क्या ? वे कर्म अन्यरूप होकर उदय में आते हैं। जब सम्यग्दर्शन हो जायेगा तो मिथ्यात्व के परमाणु कहां चले जायेंगे ? फल दिये बिना यानी सम्यक् प्रकृतिरूप से उदय में आयेंगे। अनंतानुबंधी के परमाणु उदय में तो आयेंगे, वे अप्रत्याख्यानावरणादिरूप होकर उदय में आयेंगे। तो हम कहेंगे अनंतानुबंधीरूप से फल दिये बिना चले जायेंगे। उसकी निर्जरा हो रही है, प्रदेश खिर रहे हैं। सत्ता की प्रकृति वही कहलायेगी परंतु वर्तमान एक समय के लिये दूसरेरूप टर्न होकर उदय में आयेंगे। जब सम्यक्त्व की बात चालू हो जायेगी तो उसमें ये बातें और ज्यादा क्लिअर हो जायेगी कि परमाणु किस तरह से खिरते हैं। अब हम आगे बढ़ेंगे। देखो हम पृष्ठ ८२ पर आये हैं।

हमने अपूर्वकरण में जो चार बातें देखी- पूरे अपूर्वकरण के काल में स्थितिकांडकघात, अनुभागकांडकघात होते ही रहते हैं और उसके द्वारा स्थितिसत्त्व भी संख्यातवें भाग प्रमाण रह गया, स्थितिकांडक आयाम भी घटते-घटते चला गया है और स्थितिबंध भी पूर्व में जितना होता था उसके संख्यातवें भाग प्रमाण यहां होने लगा है। शुरू में हमने देखा था पल्य के संख्यातवें भाग प्रमाण कांडक होते थे। अब अनिवृत्तिकरण में वे घटते-घटते-घटते पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण हो जाते हैं। **आगे अनिवृत्तिकरण के कार्य कहते हैं - हम ८३ नंबर की गाथा पढ़ेंगे देखो -**

बिदियं व तदियकरणं पडिसमयं एक एक परिणामो।

अण्णं ठिदिरसखंडे अण्णं ठिदिबंधमाणुवई ॥८३॥

बिदियं व तदियकरणं यानी द्वितीयवत् तृतीय करण होता है। दूसरा करण कौनसा था ? अपूर्वकरण। उसीके समान तीसरा यानी अनिवृत्तिकरण होता है परंतु डिफरन्स क्या है ? प्रतिसमय में एक-एक, एक-एक ही परिणाम है। वहां परिणामों के क्वेरिऐशन्स थे - अपूर्वकरण में जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट ऐसे अलग-अलग परिणाम होते थे, परंतु अनिवृत्तिकरण में सबके परिणाम एक समान हो जायेंगे। हम यहां टीका पढ़ेंगे- **दूसरे अपूर्वकरण में कहे हुये स्थितिखंड आदि कार्यविशेष** कार्यविशेष यानी हमने विशेष कार्य देखे थे **उस अनिवृत्तिकरण में भी जानना।** यानी वे यहां पर भी चालू ही रहते हैं। **विशेष इतना है कि** विशेष इतना है कि का अर्थ है कि उनमें जो डिफरन्स है, उसमें और इसमें जो अंतर है। **यहां समान समयवर्ती नाना जीवों के** हमने देखे इसको करनेवाले त्रिकालवर्ती अनंत जीव हैं- कोई कर चुके हैं, कोई वर्तमान में कर रहे हैं, कोई भविष्य में अनंतकाल तक करते रहेंगे; उनके **एकसा परिणाम है। इसलिये, नहीं है निवृत्ति अर्थात् परस्पर परिणामों में भेद जिनके** यहां निवृत्ति का अर्थ परिणामों में भेद और वह जिसमें नहीं है उसका क्या अर्थ है ? परिणाम एक समान हैं, **वे अनिवृत्तिकरण हैं।** प्रतिसमय एक-एक परिणाम ही है।

यहां अन्य ही प्रमाणवाला अन्य ही प्रमाणवाला यानी छोटे प्रमाणवाला, पहले से कम प्रमाणवाला; **स्थितिखंड, अनुभागखंड और स्थितिबंध का प्रारंभ होता है।** यानी इस पॉइंट पर अभी पहले ही समय में नया स्थितिकांडकघात चालू होगा और जो कांडक का आयाम है उसका प्रमाण भी बदलेगा। अभी छोटे प्रमाणवाला होगा। **क्योंकि अपूर्वकरण संबंधी जो स्थितिखंडादि हैं उनका उनके अंत समय में ही समाप्तपना हुआ।** अपूर्वकरण में अंत में जो स्थितिकांडकघात शुरू हुआ था, उसकी समाप्ति अंतर्मुहूर्त में वहीं पर होती है। जब अंतिम स्थितिकांडकघात समाप्त हुआ तो वहां होनेवाला अनुभागकांडकघात भी वहीं पर उसी समय में समाप्त हुआ और वहां का जो समान स्थितिबंध है उसका काल भी वहीं समाप्त हुआ - वहां एक साथ तीनों समाप्त हुये। अब अनिवृत्तिकरण के पहले समय में नये प्रमाण में तीनों ही होंगे- यहां नया स्थितिबंध घटकर प्रारंभ हो जायेगा, स्थितिकांडक आयाम नये प्रमाणवाला शुरू हो जायेगा और अनुभाग भी जितना सत्ता में घटा है उसके आगे यहां नये अनुभागकांडकघात का प्रारंभ हो जायेगा।

देखो, यहां बताया है न, परिणामों में समानता होती है यानी एक ही परिणाम होता है। हमने देखा था, यह समानता किस अपेक्षा है ? *श्रोता: नाना जीवों की अपेक्षा।* हां, नाना जीवों की विशुद्धि की अपेक्षा। किसमें समानता है ? विशुद्धि में समानता है। प्रथमोपशम सम्यक्त्व कौनसे गतिवालों को होगा ? *श्रोता: चारों गतिवालों को होगा।* चारों गतियों में यानी सातों ही नरकों के नारकी भी इसको प्राप्त कर सकते हैं; तिर्यच, मनुष्य, देव कोई भी इसको प्राप्त कर सकते हैं। हर एक की लेश्या अलग-अलग होगी। नारकियों में तो अशुभ लेश्या में ही यह कार्य हो रहा है। देव, मनुष्य और तिर्यचों के तो शुभ लेश्या में यह कार्य हो रहा है। तो लेश्या अलग-अलग है। किसीके क्रोध का उदय है, किसीके मान का, किसीके माया का, किसीके लोभ का - उनमें व्हेरिएशन्स हैं, फिर भी विशुद्धि समान है। गति अलग-अलग है, चारों गति अलग है। उनकी लेश्या अलग हैं। शरीरादि के आकार अलग-अलग हैं; किसीका बड़ा, किसीका छोटा। वर्ण अलग हैं। ज्ञान में कितने व्हेरिएशन्स हैं- कोई अधिक इंटेलेजेंट है और कोई यथायोग्य ज्ञानी है; ज्ञानी यानी ज्ञान सहित, मति-श्रुत ज्ञानवाला। तो उनमें कितने व्हेरिएशन्स हैं, फिर भी समानता किस अपेक्षा से है ? विशुद्धि की समानता है।

इन अनंत जीवों के परिणामों में यहां जो विशुद्धि हुयी है वह एक जैसी - एक समान होगी। पहले समय में एक जैसी, दूसरे समय में अनंतगुणा, फिर भी एक जैसी। तीसरे समय में उससे भी अनंतगुणा, फिर भी एक जैसी। जितने इसके समय हैं, उतने ही परिणाम हैं। पहले क्या था ? एक-एक समय में परिणामों के असंख्यातलोक प्रमाण भेद-व्हेरिएशन्स थे। अब वे सब बढ़ते-बढ़ते-बढ़ते अनिवृत्तिकरण तक पहुंचे तो एक जैसा परिणाम - एक समय में एक परिणाम होता है। पहले कितने थे ? एक समय में असंख्यातलोक प्रमाण परिणाम यानी इतने व्हेरिएशन्स थे। अब अनिवृत्तिकरण में आने पर सबकी विशुद्धि बढ़ते-बढ़ते एक समान एक लेव्हल पर पहुंची गयी। हमने अपूर्वकरण में क्या देखा था ? किसीकी स्थिति ज्यादा है और किसीकी कम है; किसीका कांडक बड़ा है, किसीका छोटा है। अब यहां सबके स्थितिकांडक का आयाम उतना का उतना होगा, स्थितिबंध भी उतना का उतना होगा और जो स्थिति शेष रहती है वह भी सबकी समान हो जायेगी। इसतरह से अनिवृत्तिकरण काल में ये बातें चालू हो जाती हैं। अब हम गाथा ८४ पढ़ेंगे।

संखेज्जदिमे सेसे दंसणमोहस्स अंतरं कुणई।

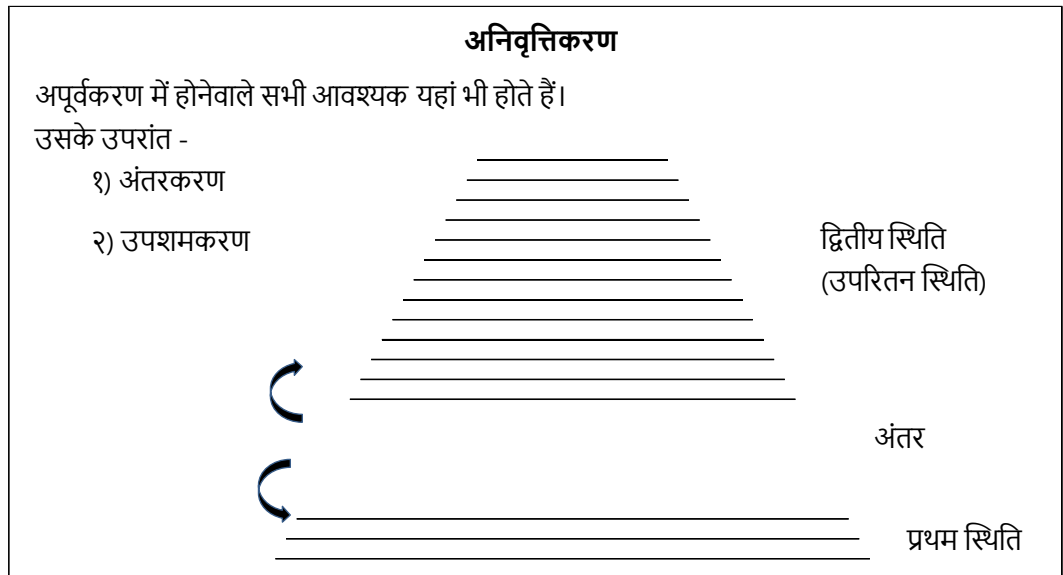
अण्णं ठिदिरसखंडं अण्णं ठिदिबंधणं तत्थ॥८४॥

ऐसे स्थितिखंडादि द्वारा अनिवृत्तिकरण काल के संख्यात भागों में से बहुभाग व्यतीत होने पर। क्या कहा ? ये जो कार्य हैं, वे चलते रहते हैं। एक के बाद एक स्थितिकांडकघात, अनुभागकांडकघात होते रहते हैं। ऐसे संख्यात भागों में से बहुभाग का अर्थ है- मान लेते हैं हम अनिवृत्तिकरण काल के पांच भाग करेंगे। अगर पांच भाग करेंगे तो बहुभाग कितने कहलायेंगे ? *श्रोता: चार/* चार। पांच में से चार भाग व्यतीत हो जायें तो, अगर दस कहेंगे तो दस में से नौ भाग व्यतीत हो जायें तो - इसको कहेंगे संख्यात बहुभाग व्यतीत हो जाने पर। यहां कुछ विशेष बातें होनेवाली हैं।

देखो, हमने पहले देखा था शुरू में गुणश्रेणी बनायी थी। कितनी लंबी थी ? यहां हमने काल बताया - अपूर्वकरण का काल, अनिवृत्तिकरण का काल और ऊपर कुछ। यह कैसी गुणश्रेणी थी ? यह गलितावशेष गुणश्रेणी थी। अपूर्वकरण का काल बीत गया। इतना तो बीत चुका है। अनिवृत्तिकरण का भी संख्यात बहुभाग बीत गया। अभी हम मान लेते हैं क्योंकि हमने ऊपर भी बताया है कि उसका संख्यात बहुभाग बीत गया है। यानी इतनी गुणश्रेणी अवशेष है। यहां केवल गुणश्रेणी बता रही हूं, उसके ऊपर पूरी उपरितन स्थिति अंतःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण शेष है। अनिवृत्तिकरण का संख्यात बहुभाग बीत जाने पर क्या होता है ? उसकी चर्चा यहां चलेगी। अब जीव यहां पर है, अनिवृत्तिकरण का काल यहां तक मान लेते हैं। क्योंकि उससे कुछ अधिक ऊपर तक गुणश्रेणी बनी है। अभी अनिवृत्तिकरण का कुछ काल बाकी है। तब ऊपर जो विशेष अधिक उन्होंने बताया था न, विशेष अधिक गुणश्रेणी बनायी थी।

मान लेते हैं इतनी विशेष अधिक गुणश्रेणी है यह गुणश्रेणीशीर्ष है। ये जो गुणश्रेणी के निषेक और उपरितन के कुछ निषेक उसका प्रमाण बतायेंगे। यानी अनिवृत्तिकरण के ऊपर गुणश्रेणीरूप से जो हमने अधिक लिया था, उसको लेकर उसके ऊपर उससे भी संख्यातगुणा ऐसे जो निषेक हैं उन सबका; क्या होगा वहां पर ? इनका अभाव करना चालू हो जायेगा। उनके परमाणु एक समय में कुछ नीचे, कुछ ऊपर चले जायेंगे। फिर दूसरे समय में कुछ नीचे, कुछ ऊपर चले जायेंगे। तीसरे समय में कुछ नीचे, कुछ ऊपर चले जायेंगे और अंतर्मुहूर्त में इतने निषेकों का अभाव

हो जायेगा। यानी वहां निषेकों में अंतर तैयार होगा। उसके ऊपर तो अंतःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण निषेक बाकी हैं। गुणश्रेणीशीर्ष और उसके ऊपर कुछ निषेक चले गये वहां अंतर हुआ और ऊपर जो पड़े हैं, ऊपर तक इमोजिन करना, उसको द्वितीय स्थिति कहेंगे। अनिवृत्तिकरण का इतना काल शेष है, उसके ऊपर का कुछ काल है वहां निषेकों में एक गॅप हो गयी और ऊपर तो पूरी उपरितन स्थिति बाकी है।



देखो, हम इसको बोर्ड पर देखेंगे। यहां पर फायनली कैसे दिखेगा ? हमने देखा था नीचे ऐसी गुणश्रेणी बनी थी, उसके नीचे के एक-एक निषेक गलते गये; ऐसा होते-होते अपूर्वकरण बीत गया। अनिवृत्तिकरण का संख्यात बहुभाग भी बीत गया। अभी अनिवृत्तिकरण के इतने निषेक बाकी हैं उसको प्रथम स्थिति कहते हैं। उसके ऊपर यहां जो निषेक थे उनके परमाणु एक-एक समय में थोड़े-थोड़े-थोड़े-थोड़े कुछ नीचे आयेंगे, कुछ ऊपर चले जायेंगे। ऊपर कहां जायेंगे ? उत्कर्षण के लिये क्या नियम था ? नया बंध होना चाहिये। यहां केवल दर्शनमोहनीय की बात बतायी है। यहां अनिवृत्तिकरण के अंतिम समय तक मिथ्यात्व का बंध है। जब जीव यहां तक आया है तो मिथ्यात्व का नया बंध हो रहा है, तो जहां गॅप यानी अंतर होनेवाला है वहां के कुछ परमाणु बंधनेवाले निषेकों के साथ ऊपर चले जाते हैं और कुछ परमाणु नीचे आकर इन प्रथम स्थिति के निषेकों में मिलते हैं। यहां गॅप होनेवाली है और यह गॅप होने के

लिये भी एक अंतर्मुहूर्त लगता है। एक समय में थोड़े परमाणु ऊपर-नीचे गये, दूसरे समय में गये, तीसरे समय में गये, चौथे समय में गये। यह जो काल शेष रहा वह भी एक-एक समय से कम हो जायेगा और यहां ऐसी गॅप तैयार होगी। अभी भी अनिवृत्तिकरण का कुछ काल बाकी है। गॅप के ऊपर उपरितन स्थिति अंतःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण बाकी है।

यह हम मात्र मिथ्यात्व कर्म में दिखा रहे हैं। ऐसी गॅप अन्यत्र अनंतानुबंधी आदि किसीमें नहीं हो रही है। ज्ञानावरणादि सर्व कर्मों में उनकी अपनी-अपनी जो गुणश्रेणी बनी थी, वे तो ऐसी ही चलेगी। केवल दर्शनमोहनीय के मिथ्यात्व में गुणश्रेणीशीर्ष जो अनिवृत्तिकरण काल से थोड़ा अधिक लिया था उसका और उसके ऊपर के कुछ निषेकों का मिलकर घात होकर अंतर बन जाता है। इस प्रक्रिया को अंतरकरण कहते हैं - अंतर किया जाता है। अब वर्तमान समय यहां पर नीचे है। यहां अनिवृत्तिकरण के इतने निषेक बाकी हैं इनको प्रथम स्थिति कहते हैं यानी इतने समय बाकी हैं, इनका भी उदय होनेवाला है। जब तक मिथ्यात्व का उदय है तब तक मिथ्यात्व का नया बंध भी है और अनंतानुबंधी का भी उदय और बंध चलेगा। यहां जो अंतर किया गया है तो इसको कहेंगे अंतरकरण किया। अंतरकरण के बाद क्या करते हैं वह अभी हम पढ़ेंगे। अंतर किया यानी क्या किया यह बात समझ में आयी ? उन निषेकों का घात हुआ और उनके परमाणु कहां चले गये ? कुछ नीचे आये, कुछ ऊपर चले गये।

अब यह जो नीचे अनिवृत्तिकरण का काल शेष है इसको कहेंगे प्रथम स्थिति। उसके ऊपर यह है अंतर और अंतर के ऊपर अंतःकोड़ाकोड़ी प्रमाण निषेक बाकी हैं उसको कहेंगे द्वितीय स्थिति या उपरितन स्थिति। अभी तक मिथ्यात्व के जो सारे निषेक हैं वे कंटिन्युएशन में थे। अब क्या हुआ ? अनिवृत्तिकरण के परिणाम होते-होते-होते यहां तक आया तो उन परिणामों के कारण यहां बीच में ही, इन निषेकों में अंतर तैयार हुआ यानी यहां निषेक ही नहीं रहे। अब यह जो ऊपर द्वितीय स्थिति में हैं वे भी नीचे आ सकते हैं न ! हां ! आ सकते हैं, अभी उसकी भी व्यवस्था हो जायेगी। अभी यहां अंतर होता है तो उसकी बात पढ़ेंगे और फिर आगे बढ़ेंगे। यहां हम गाथा ८४ की टीका पढ़ रहे थे- ऐसे स्थितिखंडादि द्वारा अनिवृत्तिकरण काल के संख्यात भागों में से बहुभाग व्यतीत होकर एकभाग अवशेष रहने पर दर्शनमोह का अंतर

करता है। अंतर करता है यानी क्या करता है ? अभी अनिवृत्तिकरण का कुछ काल शेष है तो वह शेष काल को छोड़कर उसके ऊपर के निषेकों में अंतर करता है। **विवक्षित कितने ही निषेकों के सर्व द्रव्य को** वहां निषेक बने रहे तो कुछ फ़ायदा नहीं है, तो उसके सर्व द्रव्य को **अन्य निषेकों में निक्षेपण करके** निक्षेपण करना यानी उसमें मिला देना **उन निषेकों का अभाव करना, उसे अंतरकरण कहते हैं।**

यह जो एक-एक प्रोसेस होता है उसको करण नाम देते हैं। यह अंतरकरण है, अंतःकरण नहीं। अंतर किया जाता है, गॉप तैयार हो जाती है उसको यहां अंतर कहते हैं। **वहां उसके काल के प्रथम समय में अन्य ही स्थितिखंड, अनुभागखंड और स्थितिबंध का प्रारंभ होता है।** इसका अर्थ ऐसा है अंतर करने के लिये एक अंतर्मुहूर्त काल लगता है। अंतर करने के लिये यहां जितना काल लगेगा उतना ही यहां पर होनेवाला स्थितिकांडकघात का काल है जिसको हम स्थितिकांडकोत्करण काल कहते हैं। फिर से- मान लेते हैं यहां पर अंतर करने के लिये २५ समय लगे। मान लेते हैं, लगता तो है अंतर्मुहूर्त। उतने ही २५ समय में यहांवाला स्थितिकांडकघात होगा। यहांवाला क्यों कहते हैं ? क्योंकि अनिवृत्तिकरण के शुरुआत में स्थितिकांडक होने के लिये जो काल लगता था वह बड़ा था।

ऐसे स्थितिकांडकघात करते-करते जब अंतरकरण करने का समय आता है; इस समय यहां होनेवाला जो स्थितिकांडकघात का काल है जिसको स्थितिकांडकोत्करण काल कहते हैं वह काल और अंतर करने का काल ये दोनों समान होते हैं। यहां स्थितिबंध का जो काल है, इस पॉइंट पर जो नया स्थितिबंध शुरू हुआ है; स्थितिबंध का काल उस स्थितिकांडकघात का जितना काल होता है उतना ही होता है। यहां इस पॉइंट पर ये तीनों समान होंगे यह बात यहां बता रहे हैं। फिर से- लास्ट लाइन, **उसके काल के प्रथम समय में** अंतरकरण शुरू किया है उसके प्रथम समय में; **अन्य ही स्थितिखंड** यानी यहां नया स्थितिखंड यानी स्थितिकांडकघात चालू हुआ है, प्रारंभ हुआ है। नया ही अनुभागकांडक चालू हुआ है और नया ही स्थितिबंध यानी घटकर जो नया स्थितिबंध है वह भी इस पॉइंट पर शुरू हुआ है। यह तो शुरू हुये की बात है, मैंने तो पूरा काल उतना होता है वह बात बतायी। अभी आगे पढ़ेंगे, गाथा ८५ पढ़ेंगे। देखो-

एयद्विदिखंडुक्कीरणकाले अंतरस्स णिप्पत्ती।

अंतोमुहुत्तमेत्ते अंतरकरणस्स अद्धणं॥८५॥

एक स्थितिखंडोत्करण काल में अंतर की निष्पत्ति होती है। इसका अर्थ क्या है ? यहां जो नया स्थितिकांडकघात शुरू हुआ है उसका जो स्थितिकांडकोत्करण काल है - उतने ही काल में अंतर तैयार किया जाता है। यानी अंतरकरण करने का काल और स्थितिकांडकघात करने का काल ये दोनों अंतर्मुहूर्त समान हैं इस पॉइंट पर। **एक स्थितिकांडकोत्करण का जितना काल है - कोई भी एक नहीं, यहां का - अभी जो शुरू हुआ है स्थितिकांडकोत्करण उसका काल उतने काल द्वारा अंतर करता है। इसको अंतरकरणकाल कहते हैं, यह अंतर्मुहूर्त मात्र है।** यह अंतर करने के लिये जितना काल लगा उसको क्या कहेंगे ? अंतरकरणकाल। जितने निषेकों का अभाव किया उसको कहेंगे अंतरायाम। क्या कहा ? अंतरायाम कहेंगे। अंतरायाम का अर्थ है अंतर की लंबाई, यह भी अंतर्मुहूर्त ही है। अंतर कितना बड़ा किया उसको कहेंगे अंतरायाम। १, २, ३, ४ आदि जितने निषेकों का अभाव किया उसको हम कहेंगे अंतर का आयाम। इसके लिये काल कितना लगा ? उसको कहेंगे अंतरकरणकाल। समझ में आयी बात ? यह अंतर करने के लिये जितना समय लगा उसको कहेंगे अंतरकरणकाल और जितने निषेक; एक समय में एक निषेक पड़ा है तो जितने निषेकों का अभाव किया उसको हम कहेंगे अंतरायाम। करण नहीं, करण तो प्रोसेस का नाम है। अंतर का आयाम यानी अंतरायाम।

कुछ प्रश्न है ? *श्रोता: क्या अंतरायाम पूरा सम्यक्त्व का काल है ?* नहीं है, आपका प्रश्न है क्योंकि आगे के प्रश्न आते हैं न मन में कि यह अभी अंतर हुआ है तो जब जीव अनिवृत्तिकरण के बाद यहां तक पहुंचेगा तो यहां अभी सम्यक्त्व होनेवाला है। तो क्या यह पूरा अंतरायाम यहां सम्यक्त्व का काल है ? नहीं। इसके संख्यातवें भाग प्रमाण ही सम्यक्त्व रहेगा। बाद में उस अंतर का क्या होगा वह बाद में देखेंगे।

श्रोता: पेज नंबर ८२ में गाथा ८४ सेकंड लाइन में लिखा है विवक्षित कितने ही, तो विवक्षित का अर्थ क्या है ? विवक्षित यानी पार्टिक्युलर। पार्टिक्युलर यानी कुछ विशेष निषेकों का। विवक्षित निषेक कौनसे हैं ? अंतरकरण के लिये जो हमने गुणश्रेणीशीर्ष के निषेक लिये थे उतने और उसके संख्यातगुणा ऊपर के इन निषेकों को मिलाकर

कहा विवक्षित यानी पर्टिक्युलर। अभी इसमें अंग्रेजी का आधार लेना पड़ता है ! उन निषेकों का, वह कौनसे हैं वह अभी बतायेंगे। यहां तो यह बात हुयी है कि अंतर करने को जितना काल लगता है उसको कहेंगे अंतरकरणकाल। विवक्षित कितने निषेकों को - अंतर में कौनसे निषेकों को लेना उसकी बात अब बतायेंगे गाथा ८६ में। देखो -

**गुणसेढिए सीसं तत्तो संखगुणं उवरिमठिदिं च।
हेट्टुवरिम्हि य आबाहुज्झिय बंधम्हि संथुहदि॥८६॥**

देखो, गुणश्रेणी आयाम में अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण से जो अधिक प्रमाण अनिवृत्तिकरण का संख्यातवां भाग मात्र कहा था, हमने देखा था जब अपूर्वकरण के प्रथम समय में गुणश्रेणी की रचना हुयी थी, वह कितनी बड़ी हुयी थी ? अपूर्वकरण का काल, अनिवृत्तिकरण का काल प्लस अनिवृत्तिकरण के संख्यातवें भाग प्रमाण अधिक लिया था। ख्याल में आयी यह बात ? जो अधिक लिया था उसका नाम साधिक; अनिवृत्तिकरण के ऊपर जितना लिया था **उसका नाम यहां गुणश्रेणीशीर्ष है।** क्या कहा उसको ? गुणश्रेणीशीर्ष। यह गुणश्रेणीशीर्ष शब्द अन्यत्र भी आयेगा। कहीं एक ही निषेक को गुणश्रेणीशीर्ष कहेंगे और यहां तो बहुत सारे निषेकों को गुणश्रेणीशीर्ष कहा है। यहां पर उसका अर्थ हमने ऊपर के जितने अधिक देखे थे उन सबको यहां गुणश्रेणीशीर्ष कहने में आ रहा है। ख्याल में आयी बात ?

यहां गुणश्रेणीशीर्ष के सर्व निषेक यानी जितने हमने ऊपर अधिक पकड़े थे वे सर्व निषेक **और इससे संख्यातगुणा**; मान लेते हैं गुणश्रेणीशीर्ष में १० होंगे तो उससे संख्यातगुणा यानी उसके ऊपर और ८ गुणा ले लो न, तो ८० हो जायेंगे, **गुणश्रेणीशीर्ष के ऊपरवर्ती ऐसे उपरितन स्थिति के निषेक इन दोनों को मिलाने पर अंतरायाम होता है।** अंतरायाम शब्द आया है न, जितने निषेकों को अंतररूप यानी उनको घटाकर नष्ट करनेवाले हैं उनका नाम है अंतरायाम। वे कितने हैं ? गुणश्रेणीशीर्ष को तो लिया ही लिया, उसके संख्यातगुणा ऊपर के निषेकों को भी लिया और इनको नष्ट करके अंतर बनायेंगे, उन निषेकों की संख्या को अंतरायाम कहेंगे। अंतरकरणकाल के एक-एक समय में वहां के परमाणु नीचे-ऊपर होकर वहां पूरी गॅप तैयार हो जायेगी। यह अंतर करने का कार्य ऐसा अंतरकरण अभी तो दर्शनमोहनीय में हो रहा है, यह कार्य अन्य किसी भी कर्म में नहीं हो रहा है। अन्य कर्मों की भी गुणश्रेणी बनी

थी, ज्ञानावरणादि अन्य कर्मों की भी हुयी थी वह तो ऐसे ही रहेगी। वह भी गलितावशेष है। यानी वहां पर उसका यथायोग्य कार्य हो रहा है, उसमें किसीमें गॅप तैयार नहीं हुयी है। बाकी सभी कर्मों का कंटिन्युएशन में उदय वगैरह होना है वह चल रहा है यहां पर। यह बात ख्याल में आयी ? आगे-

इतने निषेकों का अभाव करता है, वह भी अंतर्मुहूर्त मात्र है। यानी अंतर करने का काल अंतर्मुहूर्त है, वह छोटा अंतर्मुहूर्त है और जितने निषेकों का अभाव किया जाता है वह भी अंतर्मुहूर्त के जितने समय हैं उतने निषेकों का अभाव होता है, परंतु उसका प्रमाण बड़ा है। **यहां शीर्ष के नीचे** यह शीर्ष के नीचे यानी यहां शीर्ष तो अभावरूप हो गया। अभी यह शीर्ष के नीचे अनिवृत्तिकरण का शेष काल अभी बाकी है। **शीर्ष के नीचे अनिवृत्तिकरण के अवशेष काल मात्र गलितावशेष गुणश्रेणी आयाम अनिवृत्तिकरण के संख्यातवें भाग प्रमाण है वह भी शीर्ष से संख्यातगुणा है।** फिर से- यह शीर्ष यहां था और उसके ऊपर संख्यातगुणा निषेक अंतररूप में गॅप में चले गये। उनका अभाव किया गया। यहां तो प्रथम स्थिति में हमने तीन ही निषेक बताये हैं, परंतु जितने गुणश्रेणीशीर्ष में थे उनसे भी संख्यातगुणे यहां प्रथम स्थिति में रहे वे भी अंतर्मुहूर्त प्रमाण हैं। अनिवृत्तिकरण का संख्यातवां भाग अभी शेष है।

श्रोता: वह संख्यातवां और यह संख्यातवां बराबर है ? कौनसा संख्यातवां ? ऊपर जो था उससे ? ऊपर शीर्ष जितना था उससे यह प्रथम स्थिति संख्यातगुणा है। अभी-अभी हमने वही पढ़ा। देखो, यहां क्या लिखा ? शीर्ष के नीचे यानी गॅप के नीचे अनिवृत्तिकरण के अवशेष काल मात्र; अभी जो अवशेष काल है वहां तो गलितावशेष गुणश्रेणी चल रही है जो पहले बनायी थी। अभी उसमें से उतनी बाकी है। उसका गुणश्रेणी आयाम अनिवृत्तिकरण के संख्यातवें भाग प्रमाण है। मान लेते हैं ५ भागों में से ४ भाग बीत गये हैं, १ भाग बाकी है तो उतने भाग प्रमाण वह शेष है। वह भी शीर्ष से संख्यातगुणा है; जो शीर्ष का प्रमाण था उससे यह संख्यातगुणा है। दूसरी भाषा में, हमने शीर्ष में कितने मान लिये थे ? १० निषेक मान लिये थे। अब उससे संख्यातगुणा यानी पांच गुणा कहेंगे तो यहां ५० मानो न। *श्रोता: शीर्ष के ऊपर गॅप में हैं वे ?* वे भी संख्यातगुणा देखे थे, हमने ८० माने थे। यह गॅप बड़ा है।

श्रोता: कौनसा संख्यातगुणा बड़ा है ? नहीं-नहीं, उसका अल्पबहुत्व बाद में

बतायेंगे आपको। हां, कौनसा संख्यातगुणा कितना बड़ा है, वह क्या है, वे सब बातें आयेंगी। इतनी बातें ख्याल में आयी ? अभी अनिवृत्तिकरण का इतना काल बाकी है, शेष है। अंतर करने का कार्य पूरा होने पर भी अभी अनिवृत्तिकरण काल समाप्त नहीं हुआ है। अभी पोझिशन क्या हुयी है ? बीच में यह गॅप हुयी है। नीचे भी कुछ निषेक हैं और ऊपर भी पड़े हैं। मिथ्यात्व के निषेक नीचे भी हैं और ऊपर भी हैं और बीच में यह गॅप तैयार हुयी है। यहां तक बात ख्याल में आयी न ? हां, अभी इसको पढ़ेंगे।

वहां अंतरायाम में स्थित निषेकों के द्रव्य की जब गॅप तैयार हुयी है एक समय में तो नहीं हुयी, उसके लिये भी अंतर्मुहूर्त लगा था। **प्रति समय अनंतगुणा क्रम युक्त जो फालि** अभी यहां असंख्यातगुणावाली कहना चाहिये, अनंतगुणा कैसे कहा ? यहां असंख्यातगुणा होना चाहिये था। उनका ग्रहण करके अभी यह ऊपर जाता है यानी कहां जाता है उसको भी देखना है। यह जो अभी निषेक ऊपर और नीचे जा रहे हैं और जो हमने देखा था ऊपर जाने के लिये कंडिशन क्या थी ? नया बंध होना चाहिये। अब हम थोड़ा इसको साइड में लिखते हैं।

सत्ता में कंटिन्युएशन में निषेक थे। अभी यहां अनिवृत्तिकरण का कुछ काल शेष है। मिथ्यात्व का नया बंध भी हो रहा है। अभी बीच के कुछ निषेकों का यहां अभाव होनेवाला है। मान लेते हैं इतने निषेकों का अभाव होनेवाला है तो इन निषेकों के परमाणु नीचे और ऊपर चले जायेंगे। ऊपर कहां चले जायेंगे ? तो यहां जो वर्तमान समय में बंध हो रहा है उसकी आबाधा अंतरायाम से बड़ी है, उसके ये निषेक हैं। यह तो ऊपर तक समझना। यहां जो नया बंध हो रहा है उसका आबाधाकाल अंतर से भी बड़ा है और उसके ऊपर नये बंधनेवाले की निषेक रचना होती है। तो अंतर के जो परमाणु हैं वे यहां ऊपर बंधनेवाले निषेकों में चले जायेंगे। ख्याल में आती है बात ? आबाधा में तो कुछ निषेक रचना है ही नहीं, बंध के समय आबाधा में कोई निषेक नहीं है। तो यहां अंतरायाम के परमाणु नये बंधनेवाले के साथ ऊपर चले जायेंगे। यह उत्कर्षण हुआ। कुछ परमाणु नीचे आयेंगे यह अपकर्षण हुआ। ऐसे पहले समय में, दूसरे समय में, तीसरे समय में ऐसा अंतर्मुहूर्त तक चलेगा तब इसका अंतरकरण पूरा होगा। इसकी बात बाद में करेंगे। यह बात समझ में आयी ? यही बात यहां बता रहे हैं।

वहां अंतरायाम में स्थित निषेकों के द्रव्य की प्रतिसमय असंख्यातगुणा

क्रम युक्त जो फालि, उनका ग्रहण करके उस समय बंधनेवाले जो मिथ्यात्व कर्म, उसके स्थिति का आबाधाकाल छोड़कर यह आबाधाकाल छोड़कर का अर्थ समझ में आया ? क्योंकि यह आबाधा बड़ी है, उसको छोड़कर उसके ऊपर जो निषेक रचना हुयी है तो **अंतरायाम समान निषेकों के नीचे और ऊपर के जो निषेक उनमें निक्षेपण करता है।** देखो, ये अंतरायाम समान निषेक, यहां के द्रव्य को एक तो नये बंधनेवाले में ऊपर - अंतर के ऊपर के निषेकों में निक्षेपण करता है या अंतर के नीचे के निषेकों में निक्षेपण करता है। अंतर के नीचे देने के लिये नये बंध की कंडिशन नहीं है। यहां नीचे नये बंधनेवाले कुछ है ही नहीं, उसकी तो आबाधा है। अभी नीचे अनिवृत्तिकरण काल के शेष निषेक सत्ता में पड़े हैं, उनमें वे दिये जायेंगे।

अंतर कैसे किया जाता है, नये बंधनेवाले के साथ ऊपर जायेंगे और जो नीचे शेष स्थिति है उसमें आकर जुड़ जायेंगे। यहां तक बात ख्याल में आयी ? **अंतरायाम समान काल संबंधी निषेकों में निक्षेपण नहीं करता।** इसका अर्थ क्या है ? हमने देखा था कि नीचे अपकर्षण होता है। जब-जब कहीं पर भी अपकर्षण होता है, उसका द्रव्य अपने नीचे आवली प्रमाण निषेक छोड़कर नीचे सर्वत्र दिया जाता है। तो मेरा सवाल है जब यह अंतर के निषेकों का अपकर्षण होगा तो यह अंतर में ही दिया जायेगा कि नहीं दिया जायेगा ? नहीं दिया जायेगा क्योंकि उसका तो अभाव करना है न ! दुबारा फिर उसमें देने से क्या फ़ायदा ? अन्यत्र अपकर्षण में क्या होता है ? अपने नीचे के आवली प्रमाण निषेक छोड़कर उसके नीचे दिया जाता है। परंतु इसका द्रव्य कहां दिया जायेगा ? अंतर को छोड़कर नीचे दिया जायेगा।

श्रोता: नीचे का अतिस्थापनाकाल और ये अंतरायामकाल ये अलग-अलग हैं ? अंतरायाम अलग है। अभी यहां अतिस्थापना लागू नहीं हो रही है। अपकर्षण जो सामान्य से अपकर्षण होता है, अपने-अपने नीचे आवली छोड़कर सर्वत्र होता है। अब यहां तो इनका पूरा अभाव करना है। पूरा अभाव करना है तो कहां दिया जायेगा ? नीचे के निषेकों में और ऊपर बंधनेवालों में। कहां नहीं दिया जायेगा ? जिनका अंतर होना है उनमें नहीं दिया जायेगा। ऊपर से भी जो अपकर्षण, स्थितिकांडक आदि होते रहते हैं, उनका भी द्रव्य अंतर में कुछ नहीं दिया जायेगा। अंतर के नीचे भले आवे उसका कोई निषेध नहीं है, परंतु यहां तो मुख्यतः अंतर की बात कर रहे हैं। यह अंतर

होनेवाले निषेकों का द्रव्य ऊपर और नीचे चला जायेगा। अंतर में नहीं दिया जायेगा यह बात यहां पर बता रहे हैं। अंतर का ही निकालो और अंतर में ही दे दो तो अंतर कब बनेगा ? वह तो कार्य लंबा हो जायेगा। तो इसका यह अर्थ है। देखो आगे-

वहां अनादि मिथ्यादृष्टि जीव तो मिथ्यात्व ही का और सादि मिथ्यादृष्टि जीव तीनों दर्शनमोह का अंतर करता है। इसका अर्थ क्या है ? जो सादि मिथ्यादृष्टि है, पहले सम्यक्त्व प्राप्त किया था उसकी सत्ता में तीन प्रकृति हुयी थी - मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति। वह जब अंतर करने लगा है तो तीनों में ही अंतर करेगा। नहीं तो एक में अंतर किया, एक चालू रहे तो उसका कुछ फ़ायदा नहीं है। तो तीनों में ईकल ऐसी गॅप तैयार हो जायेगी। *श्रोता: सादि के लिये ?* सादि के लिये। उसकी भी कंडिशन है, उन दोनों की स्थिति बहुत कम होनी चाहिये। वह हम आगे जाकर देखेंगे। *श्रोता: दोनों प्रकार के सादि और अनादि ? अनादि मिथ्यादृष्टि के तो एक ही होगा ?* अनादि मिथ्यादृष्टि तो एक मिथ्यात्व में ही अंतर करेगा, सादि मिथ्यादृष्टि की सत्ता में तीन प्रकृति हैं तो तीनों में ही अंतर करेगा यानी उनमें गॅप तैयार होगी।

अंतरकरण करने के काल के प्रथम समय से लेकर जो अनिवृत्तिकरण काल का संख्यातवां भाग मात्र काल अवशेष रहा उसको संख्यात का भाग देकर वहां एकभाग मात्र तो अंतरकरणकाल है। हमने देखा था पूरे अनिवृत्तिकरण का ५वां भाग शेष था। हमने मान लिया है न, ४ भाग बीत गये, १ भाग शेष रहा। अब उसका भी संख्यातवां भाग करो। वह १ भाग का भी ५वां भाग करो। उतना अंतर करने में चला गया और बाकी शेष भाग अभी अनिवृत्तिकरण का बाकी है। ख्याल में आती है बात ? हमने ५वां भाग अवशेष रखा था और उसका भी और ५वां भाग अंतर करने में गया। अभी बाकी शेष है वहां पर। *श्रोता: बहुभाग का अंतरकरण में गया ?* बहुभाग नहीं एकभाग, अंतरकरण करने के लिये एकभाग चला गया। अभी एकभाग का बहुभाग बाकी है। संख्यातवां भाग पहले बाकी था। पहले हमने क्या देखा ? अनिवृत्तिकरण का बहुभाग निकल गया था और एकभाग बाकी था। अब वह एकभाग का फिर एकभाग ही चला गया और बहुभाग बाकी है, अभी इतना भाग शेष है। अब तो अंतरकरण किया है बस इतना ही हुआ। अभी कुछ करने का बाकी है, वह कहेंगे।

एकभाग मात्र तो अंतरकरणकाल है और उसके ऊपर अवशेष बहुभाग

मात्र प्रथम स्थिति का काल है। प्रथम स्थिति का काल यानी अवशेष काल। अभी हमने देखा था यह अंतरकरण यानी अंतर करने का कार्य पूरा हुआ है। अभी अनिवृत्तिकरण के कितने निषेक बाकी हैं ? कितने समय बाकी हैं ? तो जो एकभाग रहा था उसका बहुभाग बाकी है यानी इतने निषेक अभी बाकी हैं, इतने समय बाकी हैं। एक-एक समय में एक-एक निषेक है। अब इन समयों में यहां और कुछ विशेष कार्य होनेवाला है। अंतर करने का कार्य तो पूरा हो चुका। अब अंतर के नीचे के जो निषेक हैं उसको प्रथम स्थिति कहेंगे। अंतर के ऊपर के जितने सारे अंतःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण निषेक हैं उसको द्वितीय स्थिति कहेंगे। यह बात क्लिअर हुयी ? अंतर के नीचे क्या कहेंगे ? प्रथम स्थिति। और ऊपर ? द्वितीय स्थिति। देखो यहां, **एकभाग मात्र अंतरकरणकाल है। उसके ऊपर अवशेष बहुभाग मात्र प्रथम स्थिति का काल है। उसके ऊपर जिन निषेकों का अभाव किया वह अंतर्मुहूर्त मात्र अंतरायाम है।**

हमने यहां देखा था यह नीचे था तब जाकर अंतर करते रहा। करते-करते-करते अभी इतना काल बाकी है - यह है प्रथम स्थिति। अभी यहां अनिवृत्तिकरण का एकभाग का बहुभाग बाकी है। उसके ऊपर अंतर का आयाम है और उसके ऊपर यह पूरी ही द्वितीय स्थिति है। अब भी द्वितीय स्थिति के कुछ परमाणु अपकर्षण होकर यहां प्रथम स्थिति में आ रहे हैं और जब तक बंध है तब तक नये बंध के साथ प्रथम स्थिति के उदयावली के ऊपर के कुछ परमाणु द्वितीय स्थिति में चले जायेंगे। प्रथम स्थिति तो अंतर्मुहूर्त प्रमाण हैं। प्रथम स्थिति उदयावली से बड़ी है; तो कुछ परमाणु ऊपर भी चले जायेंगे नये बंध के साथ। ऊपर से जो अंतर को लांघकर नीचे आयेंगे उसको कहेंगे आगाल और प्रथम स्थिति में से अंतर लांघकर ऊपर चले जायेंगे उसको कहेंगे प्रत्यागाल। अब एक-एक नये-नये शब्द आयेंगे न, हां, आने दो-आने दो, अभी पचाने की ताकत आ गयी है। अभी अंतर में कोई परमाणु नहीं दिये जायेंगे। नहीं तो अंतर करने का कोई मतलब ही नहीं है। अंतर में अभी भी देते रहो तो फिर उदय में आते रहेंगे। फिर सम्यक्त्व होने का कोई अवसर ही नहीं रहेगा। अनादि से तो ऐसा ही था न, कंटिन्युअस उदय ही उदय चल रहा था और नया बंध भी हो रहा था। उसको बीच में कोई अवसर ही नहीं था। ऐसा जब अवसर आयेगा कि बीच में उदय ही नहीं है तब जाकर उसको सम्यक्त्व होनेवाला है।

श्रोता: उसके प्रथम भाग में शुद्ध परिणाम रहेंगे ही ऐसा जरूरी नहीं है ? रहेंगे ही क्योंकि अभी अनिवृत्तिकरण बाकी है। इतना ही नहीं, यहां तक अनंतगुणा विशुद्धि बढ़ेगी ही बढ़ेगी। जब यहां प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त होगा तब एक छोटे अंतर्मुहूर्त तक और भी अनंतगुणा विशुद्धि हो जायेगी। यह तो विशुद्धि रहेगी उसमें। श्रोता: प्रथम स्थिति के नीचे उदयावली है या नहीं है ? है, उदयावली सहित सभी निषेकों को प्रथम स्थिति कहेंगे। उदयावली हमेशा ही कहलायेगी। उदय के समय से लेकर आवलीकाल तक के निषेकों को उदयावली कहेंगे। गुणश्रेणी गलते-गलते शेष बची है उतनी प्रथम स्थिति है। देखो, अभी यहां हम ८७ नंबर की गाथा पढ़ेंगे।

अंतरकदपढमादो पडिसमयमसंखगुणिदमुवसमदि।

गुणसंकमेणदंसणमोहणियं जाव पढमठिदी ॥८७॥

इसतरह एक स्थितिकांडकोत्करण काल के समान काल के द्वारा किया है अंतर जिसने, ऐसा अंतरकृत हुआ। उस जीव को अंतरकृत कहते हैं। जिसने अंतर किया है उस जीव को अंतरकृत कह दिया। कितने काल के द्वारा ? यहां जो स्थितिकांडकघात प्रारंभ हुआ था वह एक स्थितिकांडकघात पूर्ण होने के लिये जितने समय लगे उतने ही समय में यहां अंतर करने का कार्य पूर्ण हुआ। उस जीव को यहां अंतरकृत कह दिया। **उस काल के अनंतरवर्ती जो समय है** यानी अंतर करने के बादवाला समय **वह प्रथम स्थिति का प्रथम समय है।** प्रथम स्थिति तभी कहलायेगी जब अंतर करने का कार्य पूरा हुआ। प्रथम स्थिति का प्रथम समय यानी नीचेवाला यह प्रथम स्थिति का प्रथम समय है। अभी अनिवृत्तिकरण का काल प्रथम स्थिति जितना शेष है। **उससे लेकर उसीके अंत समय तक**, उसीका अंत समय यानी प्रथम स्थिति का अंत समय यानी अनिवृत्तिकरण का अंत समय। उसीके अंत समय तक **प्रतिसमय असंख्यातगुणा क्रम सहित जो अंतरायाम के ऊपरवर्ती निषेक।** क्या कहते हैं ?

अभी यहां कौनसा कार्य प्रारंभ हुआ है ? प्रतिसमय असंख्यातगुणा; क्या होनेवाला है और किसमें होनेवाला है ? इन निषेकों के परमाणुओं में। क्या होगा अभी प्रति समय असंख्यातगुणा ? पहले समय में जो होगा, दूसरे समय में उससे असंख्यातगुणा, तीसरे समय में उससे असंख्यातगुणा। क्या होगा ? वह अभी पता नहीं है। देखना, **उनरूप जो द्वितीय स्थिति** क्या कहते हैं ? अंतरायाम के ऊपरवर्ती निषेक

जिसको हम द्वितीय स्थिति कह रहे हैं, उसमें स्थित दर्शनमोहनीय के द्रव्य को पीठ में कहे हुये प्रमाणवाला - हमने लब्धिसार भूमिका में उसका जो प्रमाण देखा था, ऐसा जो गुणसंक्रमण भागहार, उसका भाग देने पर जो प्रमाण आया, यह लंबा-लंबा वाक्य है न। उतने द्रव्य के समूहरूप जो फालि, उनको उपशमाता है।

अब मेरी भाषा में सुनो- यहां अंतर कर दिया। प्रथम स्थिति के इतने सारे निषेक हैं; अभी यहां हमने तीन ही बताये हैं, परंतु अभी यहां अंतर्मुहूर्त प्रमाण निषेक बाकी हैं। इसका प्रथम समय यहां नीचे है, तो इस प्रथम समय से लेकर एक नया कार्य प्रारंभ हो रहा है। कौनसा ? यहां द्वितीय स्थिति में पूरे निषेकों में जितना सारा द्रव्य पड़ा है - अतःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण - उस द्रव्य को गुणसंक्रमण भागहार नामक संख्या से भाग देना। इनमें से एकभाग प्रमाण परमाणु प्रथम समय में उपशमित हो जायेंगे। उपशमित हो जायेंगे यानी अपनी जगह छोड़कर नीचे नहीं आ सकते ऐसे किये जायेंगे। बाकी के परमाणुओं का क्या होगा ? हां, बाकी में से कुछ नीचे आते रहेंगे। एक समय में इतने परमाणु उपशमित होंगे, दूसरे समय में उससे असंख्यातगुणा उपशमित होंगे, तीसरे समय में उससे असंख्यातगुणा उपशमित होंगे, चौथे समय में उससे... ऐसे करते-करते यहां प्रथम स्थिति के जितने समय हैं उतने समयों में वे उपशमित होंगे।

श्रोता: ये जो कोड़ाकोड़ी बचे हैं सबको उपशमायेंगे ? सबको। दर्शनमोहनीय का जितना द्रव्य सत्ता में है वह पूरा उपशमित हो जायेगा। उपशमित हो जायेगा यानी वह अपकर्षण करके अपनी जगह नहीं छोड़ सकता। नहीं तो क्या होगा ? भले यह अंतर किया है, परंतु अंतर को लांघकर नीचे आता ही रहेगा; नीचे आता ही रहेगा तो उदय भी होता रहेगा। इतना अंतर करने की मेहनत की, उसका क्या फ़ायदा होगा ? *श्रोता: कौनसे कर्म का द्रव्य ?* दर्शनमोहनीय - मिथ्यात्व का द्रव्य। पूरा द्रव्य उपशमित हो जायेगा। मिथ्यात्व का द्रव्य क्योंकि ज्ञानावरणादि सब हैं, गैप किसीमें नहीं होगी और यहां उपशम मात्र दर्शनमोहनीय का ही हो रहा है। यह अंतर करके उपशमित होने का कार्य है वह अन्य किसी कर्म में नहीं होता है।

श्रोता: यहां गुणसंक्रमण भागहार क्यों बताया ? वह पहले समय में कितना द्रव्य उपशमित होता है बताने के लिये। दूसरे समय में उससे असंख्यातगुणा। वह

बताने की जरूरत इसलिये है कि वे उपशमित होनेवाले परमाणु कितने हैं ? हम कहेंगे २-४ का उपशम होता है और आप कहेंगे नहीं, अनंत परमाणुओं का होता है। परंतु उसका प्रमाण तो निश्चित है। इसलिये कहां कितना क्या होता है ? उसका प्रमाण जरूर बतायेंगे। भागहार को भूल भी जाओ तो हम समझाने के लिये ऐसा कहेंगे न पहले समय में थोड़े परमाणुओं का उपशम होता है, फिर और थोड़े का होता है, फिर और थोड़े का होता है। दर्शनमोहनीय का जो मिथ्यात्व कर्म है वह सारा उपशमने का कार्य यहां चल रहा है और यह उपशमने का कार्य एक-एक समय में होते-होते-होते अंतर्मुहूर्त में वह पूरा द्रव्य उपशमित हो जायेगा। *श्रोता: कौनसा ? पूरा द्वितीय स्थिति का ?* हां, द्वितीय स्थिति का। जितनी सारी द्वितीय स्थिति है - पूरा अंतःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण निषेकों का द्रव्य - यह सब उपशमित होगा। हम यहां प्रथम स्थिति के अंतिम समय तक पहुंचे तो नेक्स्ट समय में मिथ्यात्व का उदय में आने योग्य यहां कोई निषेक नहीं रहा न ! उसकी जो बात है वह अभी थोड़े समय के बाद करेंगे।

अभी यह वाक्य पूरा करते हैं, विशेषार्थ देख लो - ***अंतर करने के पश्चात् प्रथम स्थिति के निषेक उदय में आते हैं। जब तक एक-एक निषेक उदय में आता रहता है, तब तक प्रतिसमय द्वितीय स्थिति में स्थित दर्शनमोह के द्रव्य को उपशमाता है। प्रत्येक समय में असंख्यातगुणा क्रम से द्रव्य को उपशमाया जाता है। उसका प्रमाण लाने के लिये द्वितीय स्थिति के द्रव्य को गुणसंक्रमण भागहार का भाग देते हैं। जिसका प्रमाण पीठबंध में कह आये हैं।*** यह वाक्य रचना अटपटी है न, तो समझ में नहीं आती है। यह पूरा वाक्य पढ़कर क्या बताना चाहते हैं उसको दुबारा अलग अपनी भाषा में विशेषार्थ के रूप में मैंने लिखा है। अभी उपशम होता है यानी क्या होता है उसकी बात हम थोड़ी देर के बाद पढ़ेंगे। अभी रुकते हैं।

बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

१८. उपशमकरण, प्रथमोपशम सम्यक्त्व

आचार्य श्री नेमिचन्द्र सिद्धांतचक्रवर्ती ने इस लब्धिसार ग्रंथ की रचना की है। उसीके आधार से पं. टोडरमलजी ने सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका लब्धिसार-क्षपणासार भाषाटीका द्वंद्वारी भाषा में लिखी है, उसीका हिंदी अनुवाद हम यहां देख रहे हैं। प्रथमोपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति होने के पूर्व जो पांच लब्धि होती हैं उसका यहां विवरण चल रहा है।

पांचवीं करणलब्धि है उसमें भी तीन करण हैं- अधःकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण। उनमें से अनिवृत्तिकरण के संख्यात बहुभाग बीत जाने पर यहां कुछ विशेष कार्य हो रहा है। पहले के अपूर्वकरण के कार्य तो शुरू ही थे। कौनसे थे ? गुणश्रेणी, स्थितिकांडकघात, अनुभागकांडकघात का कार्य चल रहा था, गुणसंक्रमण अभी यहां शुरू नहीं हुआ था। यहां क्या-क्या हो रहा था ? सातों ही कर्मों में गुणश्रेणी बनी थी, स्थितिकांडकघात सभी सातों कर्मों में हो रहे थे और अनुभागकांडकघात अप्रशस्त कर्मों में हो रहे थे। अनिवृत्तिकरण में भी ये बातें चल रही थी। ऐसे ही होते-होते संख्यात बहुभाग बीत जाने पर यहां क्या विशेष कार्य हुआ ? अनिवृत्तिकरण काल को छोड़कर ऊपर जो गुणश्रेणीशीर्ष था उस सहित, उसके ऊपर के और अधिक निषेकों को मिलाकर अंतर किया जाता है। इतने निषेकों का वहां अभाव किया जाता है। उनके कुछ परमाणु नये बंधनेवाले के साथ ऊपर चले जाते हैं और बाकी नीचे के निषेकों में आकर मिल जाते हैं। बीच में से इतने सभी निषेकों का अभाव किया जाता है उसको कहेंगे अंतरकरण किया।

अंतरकरण का कार्य जब पूर्ण हुआ तब अनिवृत्तिकरण का कुछ काल शेष है। उस काल के प्रत्येक समय में क्या हो रहा है ? ऊपर द्वितीय स्थिति में दर्शनमोहनीय के जो परमाणु पड़े हैं उनको एक-एक समय में थोड़े-थोड़े करके उपशमित किया जाता है। उपशमित किया जाता है का अर्थ क्या है ? वे अभी अपनी जगह छोड़कर नीचे यानी उदय में नहीं आ सकते ऐसी योग्यतावाले कर दिये जाते हैं। यह उपशम होने का यानी उपशमित रखने का काल अंतर्मुहूर्त का है। उससे ज्यादा वे कायम के लिये उपशमित नहीं होंगे। कुछ काल के लिये वे वहीं पर बने रहेंगे, द्वितीय स्थिति छोड़कर प्रथम स्थिति में नहीं आयेंगे। एक-एक समय में एक-एक लॉट को उपशमित

किया जायेगा। परंतु जो अभी तक उपशमित नहीं हुये हैं, उनमें से कुछ परमाणु अभी भी अंतर को लांघकर नीचे आते रहेंगे और प्रथम स्थिति के कुछ परमाणु नये बंध के साथ उत्कर्षण होकर ऊपर भी चले जायेंगे। नीचे आयेंगे उसको आगाल कहेंगे, ऊपर जायेंगे उसको प्रत्यागाल कहेंगे। अभी आगे चलकर ये बातें हम पढ़ेंगे।

हमने पृष्ठ ८४ पर विशेषार्थ पढ़ा था। अभी हम ८५ पृष्ठ पर देखते हैं- **उदयादि होने के अयोग्य करना, वह उपशम करना है।** यहां जो उपशम है उसकी क्या विशेषता है ? पहले अंतरकरण किया है और जो द्वितीय स्थिति में हैं उनका उपशम किया जायेगा। प्रथम स्थिति में जितने निषेक हैं वे उदयरूप होकर खिरनेवाले हैं। उनका उदय होगा ही और तब तक मिथ्यात्व का उदय भी रहेगा ही; तब तक मिथ्यात्व चल रहा है। अभी भी मिथ्यात्व अवस्था चल रही है, अनिवृत्तिकरण के अंत समय तक मिथ्यात्व अवस्था रहेगी। यहां तक मिथ्यात्व का बंध भी रहेगा और अनंतानुबंधी का भी बंध चल रहा है। उदयादि के अयोग्य करना; आदि में क्या लेना ? ना उसका उदय होगा, ना ही उदीरणा होकर नीचे आयेंगे उसे उपशम करना कहते हैं।

यद्यपि अधःकरण ही से यह जीव दर्शनमोह का उपशामक ही है यह दर्शनमोह का उपशम करनेवाला ऐसा कब से कह रहे हैं हम ? जब से करणलब्धि में प्रवेश किया तब से। परंतु अक्चुअल में, यथार्थ में उपशमने का कार्य कब हो रहा है ? अंतर करने के पश्चात्। परंतु उससे पूर्व होनेवाली विशुद्धि जहां से बढ़ती चली गयी थी, वहां से उसको उपशामक नाम दिया जायेगा। **तथापि इस दर्शनमोह के प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशों का निरवशेषपने यहां उपशामक कहते हैं।** इसका अर्थ है दर्शनमोह की अपनी स्थिति है वह बनी रहेगी, निषेक नीचे नहीं आयेंगे। प्रकृति भी वहीं पर रहेगी। उस प्रकृति का उदय में नहीं आना, अनुभाग का भी उदय में नहीं आना और प्रदेशों का भी उदय में नहीं आना - पूर्णरूप से उपशमित हो जाना इसको कहेंगे निरवशेषरूप से उपशमित होना। यह कार्य अब जाकर यहां बन रहा है, वह एक समय में नहीं होता। जितना अभी अनिवृत्तिकरण का अवशेष काल है उसके एक-एक समय में एक-एक लॉट उपशमित होते-होते द्वितीय स्थिति पूर्णरूप से उपशमित हो जायेगी। अनिवृत्तिकरण के बाद जब अंतर का समय प्राप्त होगा तब जाकर सम्यक्त्व प्राप्त होगा। अभी यहां हम ८८ नंबर की गाथा पढ़ेंगे।

पढमद्विदियावलिपडिआवलिसेसेसु णत्थि आगाला।

पडिआगाला मिच्छत्तस्स य गुणसेढिकरणं पि॥८८॥

प्रथम स्थिति में प्रथम स्थिति कहां है ? हां, अंतर के नीचे। **आवली और प्रत्यावली** इसका अर्थ क्या है ? आवली यानी उदय के समय से लेकर आवली प्रमाण निषेक और प्रत्यावली यानी उदयावली के ऊपर की दूसरी आवली, उसको कहेंगे प्रत्यावली। **अर्थात् उदयावली और द्वितीयावली** दूसरी आवली; उदय के समय से एक आवली वह उदयावली और उसके ऊपर की दूसरी आवली वह द्वितीय आवली, उसीको प्रत्यावली कहा। **एक समय अधिक अवशेष रहे** इतना जब शेष रहता है तब **वहां आगाल, प्रत्यागाल और मिथ्यात्व की गुणश्रेणी नहीं होती।** यानी जब तक एक समय अधिक दो आवली बाकी नहीं रहती तब तक तो ये हो रहे थे, अब जाकर रुक जायेंगे। क्या-क्या रुकेगा ? आगाल भी रुकेगा और प्रत्यागाल भी रुकेगा और गुणश्रेणी भी नहीं होगी। देखो, यह प्रथम स्थिति भी अंतर्मुहूर्त प्रमाण थी और द्वितीय स्थिति तो अंतःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है। अब यह जो अंतर करने का कार्य पूर्ण हो गया, तब यहां प्रथम ही समय में क्या हुआ ? द्वितीय स्थिति के कुछ परमाणु उपशमित हुये। परंतु जो उपशमित नहीं हुये हैं उनका हमेशा जैसा अपकर्षण होता रहता है वैसा यहां पर भी अपकर्षण होगा। अंतर को लांघकर उनके कुछ परमाणु नीचे प्रथम स्थिति में दिये जायेंगे - उदय के समय से लेकर ऊपर सर्वत्र उसको कहेंगे आगाल और प्रथम स्थिति के कुछ परमाणु नये बंधनेवाले के साथ ऊपर भी चले जायेंगे उसको कहेंगे प्रत्यागाल। यह है आगाल और यह है प्रत्यागाल - उलटा ऊपर जाना।

उपशम जो है उसे निरवशेष कब कहेंगे ? जब टोटल उपशम हो जायेगा तब। निरवशेषपने का अर्थ क्या है ? कुछ बाकी रखे बिना पूरा उपशम करना यानी प्रकृति, प्रदेश, स्थिति और अनुभाग किसी भी प्रकार से उदय में न आने योग्य करना। यह कार्य अब जाकर हो रहा है। अभी शुरू हुआ है, अभी इतने परमाणु बाकी हैं। तब तक हर समय में यहां उपशम करने का कार्य चालू है। उपशामक क्यों कहा ? जितने का उपशम किया है उसमें से अभी उनकी उदयादि कोई अवस्था नहीं होगी। फिर दूसरे लॉट का उपशम किया जायेगा, फिर तीसरे लॉट का। जिसका-जिसका उपशम हो चुका है वे पूर्णरूप से उपशमित हैं। उनमें से कुछ नीचे आ सके ऐसा नहीं है। अब

ऐसा होते-होते जितने हैं उन सबका पूर्णरूप से उपशम किया जायेगा। यह कार्य होते हुये भी परमाणुओं का ऊपर से नीचे आना और नीचे से ऊपर जाना अर्थात् आगाल और प्रत्यागाल अभी भी चालू रहता है क्योंकि अभी तक सब परमाणु उपशमित नहीं हुये हैं। यह कार्य कब तक चलेगा ? तो कहते हैं प्रथम स्थिति घटते-घटते-घटते एक समय अधिक दो आवली प्रमाण काल शेष रहे तब तक यह होगा। जब समयाधिक दो आवली ही बाकी रहती हैं तो आगाल भी नहीं होगा, यह भी रुक जायेगा और प्रत्यागाल भी रुक जायेगा। अपकर्षण होकर अंतर लांघकर नीचे आने का कार्य रुक जायेगा।

देखो, हम तीसरी लाइन पढ़ेंगे- **दर्शनमोह बिना अन्य कर्मों की गुणश्रेणी होती ही है।** अब मिथ्यात्व की जो गुणश्रेणी होती थी वह भी रुक जायेगी। बात समझ में आयी ? पहले गुणश्रेणी हो चुकी थी। अभी गलितावशेष कुछ बाकी है। अभी इससे आगे गुणित प्रमाण में द्रव्य देने का कार्य रुक जायेगा। **वहां मिथ्यात्व की उदयावली में** यानी कब की बात है ? जब समयाधिक दो आवली शेष रहे तब की बात है। उसके पहले आगालरूप से परमाणु नीचे आते थे और उदयावली, गुणश्रेणी आदि में सर्वत्र दिये जाते थे। अब वह सब रुक गया। जब समयाधिक दो आवली प्रमाण प्रथम स्थिति शेष रही तब ऊपर से नीचे आना और गुणश्रेणी में देना आदि बातें रुक गयी हैं। अब क्या होगा ? तो कहते हैं **मिथ्यात्व की उदयावली में निक्षेपण करनेरूप केवल उदीरणा ही होती है, वह कहते हैं।** अभी इसका अर्थ बतायेंगे।

समय अधिक द्वितीयावली के निषेकों के द्रव्य को असंख्यातलोक का भाग देकर जो प्रमाण आता है, उतने द्रव्य को उदयावली के निषेकों में अंत के एक समय कम आवली के दो तृतीयांश भाग मात्र निषेकों को अतिस्थापनरूप करके नीचे के एक समय अधिक आवली के त्रिभाग मात्र निषेकों में निक्षेपण करता है। इसतरह प्रतिसमय उदीरणा पायी जाती है। हम इसका अर्थ देखेंगे- प्रथम स्थिति में जब दो आवली प्लस एक समय बाकी रहा, तब प्रथम स्थिति के उदयावली के ऊपर के निषेकों में से उदयावली में द्रव्य दिया जायेगा। क्या कहते हैं ? एक समय अधिक दो आवली बाकी हैं न। दो आवली में हम एक-एक आवली के १६-१६ निषेक मान लेते हैं। तो १६ निषेक उदयावली के और १६ निषेक द्वितीयावली के हैं। द्वितीयावली के निषेकों का द्रव्य नीचे की आवली में आकर मिलेगा। परंतु हमने

हमेशा देखा था कि प्रत्येक के नीचे एक आवली अतिस्थापना छूटती है। परंतु हम यहां समझेंगे १६ तो आवली के समय हैं, हमने मान लिये हैं और १७वें निषेक का द्रव्य कहां दिया जायेगा ? आवली छूटेगी तो कहां दिया जायेगा ? पूरे १६ समय छूट जायेंगे। तो इसलिये इसका हिसाब क्या है ? १६ समय हैं न ? तो उसमें से एक समय कम कर दो, १५ रह गये। १५ के दो तिहाई करना, दो तृतीयांश। कितने हुये ? १० हो गये। तो १० में नहीं देना और नीचे कितने रहे अभी ? श्रोता: ५/ और वह बाकी एक निकाला था। तो १६ में से १० में नहीं दिया, ६ में दिया। तो उसमें द्रव्य निक्षेपण किया जायेगा।

क्या कहा ? नीचे १६ समय की आवली है। उसके ऊपर का निषेक उसकी अभी हम बात करते हैं। उस निषेक का द्रव्य कहां दिया जायेगा ? नीचे के ६ निषेकों में दिया जायेगा और यहां १० में नहीं दिया जायेगा। यह मिनिमम अतिस्थापना है। इससे पहले अतिस्थापना आवली प्रमाण तो होती ही है। परंतु यहां यह हिसाब है। ऊपर १८वें नंबर के निषेक का द्रव्य कहां दिया जायेगा ? नीचे के ६ में और ११ में नहीं दिया जायेगा। १९वें निषेक का द्रव्य उदीरणा होकर कहां दिया जायेगा ? तो कहते हैं कि नीचे के ६ में ही दिया जायेगा ऊपर के १२ में नहीं दिया जायेगा। इसतरह से ऊपर बढ़ते चले जाना। तो अपने नीचे १६ यानी आवली छूटने तक निक्षेप इतना ही रहता है। आवली के ऊपर निषेक कम हैं इसलिये नीचे के वन थर्ड में दिया जाता है। यानी ६ में दिया जाता है १० में नहीं दिया जाता। फिर से सुनना है ? ऐसी उदीरणा कब तक चलेगी ? जब तक आवली मात्र १६ ही निषेक बाकी रहेंगे, तब तक ऐसा ही होगा। यानी जब उदयावली के ऊपर एक भी निषेक बाकी है; आवली के हमने १६ निषेक मान लिये हैं समझने के लिये। तो उदयावली में १६ हैं और ऊपर १७वां निषेक हैं तब, उस १७ वें में से उदीरणा होकर द्रव्य नीचे के ६ में आयेगा। जब १७वां निषेक भी नहीं रहेगा यानी नीचे का वह एक निषेक गल गया तो १६ ही बाकी रहेंगे। तो अभी उदीरणा भी नहीं होगी। अब केवल एक-एक समय में एक-एक निषेक उदय में आयेगा।

दुबारा देखते हैं- जब तक दो आवली और एक समय बाकी नहीं था तब तक क्या हो रहा था ? द्वितीय स्थिति से भी अपकर्षण होकर द्रव्य नीचे आ रहा था, हम उसको आगाल कहेंगे। जब प्रथम स्थिति के समयाधिक दो आवली प्रमाण निषेक बाकी रहते हैं तब क्या होगा ? अब ऊपर से नीचे आना रुक जायेगा। गुणश्रेणी आदि

जो पहले बनती थी वह सब कार्य अभी रुक जायेगा। अभी क्या होगा ? मात्र प्रथम स्थिति के दूसरी आवली में से पहली आवली में द्रव्य नीचे आयेगा। दूसरी आवली यानी उदयावली के १६ समय और ऊपर द्वितीयावली के १६ समय। अब ३३वां निषेक है, उसके नीचे १६ छोड़कर उसका द्रव्य नीचे आ सकता है क्योंकि उसके १६ समय नीचे अतिस्थापनावली के रूप में छोड़ सकता है। परंतु हम नीचे-नीचे आते जायेंगे। यदि नीचे की पहली आवली १६ समय की है और ऊपर १७वें समय का जो निषेक है उसका द्रव्य, उसके परमाणु उदीरणा होकर अपकर्षण होकर नीचे कहां चले जायेंगे ? हमने नीचे १६ समय उदयावली के मान लिये हैं। नीचे के ६ में जायेंगे, १० में नहीं जायेंगे। १८वें का द्रव्य कहां जायेगा ? ६ में ही जायेगा, ११ में नहीं जायेगा। १९वें का द्रव्य ६ में ही जायेगा १२ में नहीं जायेगा। २०वें का ६ में ही जायेगा, १३ में नहीं जायेगा। इसतरह से बढ़ाते जाना। अतिस्थापनावली का प्रमाण १६ होने तक बढ़ाते जाना।

श्रोता: तब तक ६ की व्हॅल्यू नहीं बढ़ती ? वह नहीं बढ़ती। अतिस्थापना बढ़ते-बढ़ते १६ तक पहुंचेगी। वन थर्ड की व्हॅल्यू अब बढ़ेगी, जब वह १६ पार हो जायेगा। बाद में १६ यानी अतिस्थापनावली का प्रमाण तो फिक्स रहेगा। १६-१६-१६ चलते रहेगा और नीचे के फिर वन थर्ड है वह बढ़ता चला जायेगा। अतिस्थापना पहले हमने छोटी १० समय की ली थी। वह बढ़ते-बढ़ते जब तक १६ नहीं हो जायें, तब तक नीचे के वह ६ ही रहेंगे। इसको जघन्य-मिनिमम अतिस्थापना कहते हैं। वह तब तक बढ़ती है जब तक वह अतिस्थापना पूर्ण आवलीरूप; यानी आवली हमने माना है १६ समयरूप, नहीं होती तब तक अतिस्थापना ही बढ़ेगी। निक्षेप तो ६ के ६ ही रहेंगे। ऐसा इसका सहज स्वाभाविक नियम है। फिर से सुनना है ?

श्रोता: ड्रॉइंग बनाना है। ड्रॉइंग बनाना है ? अच्छा, ड्रॉइंग बनाने से ख्याल में आता है न ! क्या करें। ऑडिओ व्हिडिओ चाहिये। हमारे घर में भी ऐसा ही चलता है। विषय समझाने का काम सब स्लेट पर ही चलता है। देखो, अभी अपनी एक समय अधिक दो आवली की बात रह गयी है। पहले अपकर्षण होता था। द्वितीयावली का अपकर्षण होकर कहां चला जायेगा ? यानी परमाणु कुछ प्रमाण में नीचे आयेंगे। तो उसके नीचे एक आवली प्रमाण छोड़कर वह द्रव्य नीचे सर्वत्र दिया जायेगा। इसके लिये नीचे आवली प्रमाण तो हैं यानी उतने तो अव्वेलेबल हैं। अभी हम यहां १६ समय

की आवली समझेंगे, समझने के लिये। तो इसके ऊपर का १७वें निषेक का द्रव्य कहां चला जायेगा ? तो उसके लिये पूरी अतिस्थापनावली नीचे कहां बाकी है ? आवली का अभी हमने जो वन थर्ड का हिसाब बताया था उसमें चला जायेगा। इसकी अतिस्थापना बहुत कम - १० निषेक की है।

यदि हम १६ समय मानते हैं तो उसमें १० की ही अतिस्थापना होगी, पूरे १६ की अतिस्थापना नहीं हो रही है। जो हमेशा आवली प्रमाण होती है उतनी यहां पॉसिबल ही नहीं है। इसका हां, टू थर्ड छोड़ना पड़ेगा। एक समय मायनस करके टू थर्ड करना है। १६-१=१५। उसका टू थर्ड १० होगा। जघन्य अतिस्थापनावली १० होगी अब उसके ऊपर, उसके लिये अतिस्थापना बढ़ती चली जायेगी परंतु निक्षेपरूप से ६ निषेक उतने ही रहेंगे। उसके ऊपर अतिस्थापना और एक समय बढ़ेगी। ऐसे करते-करते हम २३वें निषेक तक पहुंचे तो उसके नीचे पूरी आवली यानी १६ निषेक अतिस्थापनावलीरूप से छूट सकते हैं। २४वें निषेक की उदीरणा से निक्षेप बढ़ते चले जायेंगे। टॉप मोस्ट निषेक में भी कितनी अतिस्थापना छूटेगी ? केवल बीच में आवली छूटेगी और नीचे सर्वत्र दिया जायेगा। तो अतिस्थापना हमेशा जनरली आवली प्रमाण होती है। परंतु जब नीचे थोड़े ही निषेक बाकी हैं तो उसमें यह मिनिमम अतिस्थापना हो सकती है - आवली का टू थर्ड। उदय तो चल रहा है नीचे, बिलकुल। जिसका उदय है उसकी उदीरणा होगी।

अभी अँट अ टाइम सभी बातें चल ही रही हैं न। अँट अ टाइम उदय भी होगा। नीचे का एक निषेक उदय होकर चला जायेगा तो वह १७वां नहीं रहेगा, वह १६वां हो जायेगा। फिर उदीरणा भी रुक जायेगी। हर समय उदय भी हो रहा है। जब एक समय अधिक दो आवली प्रमाण निषेक बाकी हैं तब दूसरी आवली के निषेक उदीरणा होकर कहां चले जायेंगे ? पूरा निषेक नहीं, कुछ परमाणु। नीचे की आवली में जा रहे हैं। नीचे की आवली में कहां जा रहे हैं ? नीचे के वन थर्ड में जा रहे हैं इतना समझ लो न बस। इसका गणित बहुत ज्यादा लंबा-चौड़ा है और बीच में समझाया भी है। उसको गौण करके हम आगे बढ़े हैं। गणित आता है तो थोड़ी अलर्जी होती है न ! देखो, पढ़ेंगे तो और क्लॉरिटी होगी आपको। केवल उदीरणा ही होती है। उसकी बात अभी बतायेंगे।

देखो, गाथा ८८ का दूसरा पॅरेग्राफ - **समय अधिक द्वितीयावली के निषेकों के द्रव्य को** यानी नीचे एक आवली बाकी है, उदयावली। उसके ऊपर एक आवली है

और ऊपर एक समय बाकी है। द्वितीयावली और एक निषेक के द्रव्य को असंख्यातलोक का भाग देकर जो प्रमाण आता है, उतने द्रव्य को उदयावली के निषेकों में अंत के एक समय कम आवली के दो तृतीयांश भाग मात्र निषेकों को अपनी भाषा में १० निषेकों को क्योंकि हमने १६ समय की आवली मानी है। अतिस्थापनरूप करके नीचे के एक समय अधिक आवली के त्रिभाग मात्र निषेकों में अपनी भाषा में ६ निषेकों में निक्षेपण करता है। इसतरह प्रति समय उदीरणा पायी जाती है। उदीरणा का अर्थ उदयावली में देना। कहां से दे रहे हैं ? द्वितीयावली से पहली आवली में आ रहा है बस इतना ही यहां का अर्थ समझना।

द्वितीय स्थिति के निषेकों के द्रव्य को अपकर्षण द्वारा प्रथम स्थिति के निषेकों में प्राप्त करना, उसका नाम आगाल है। यह द्वितीय स्थिति की बात है, द्वितीय आवली की नहीं। हमने पहले देखा था, द्वितीय स्थिति में से यहां लिखा है न ? देखो, द्वितीय स्थिति के निषेकों में से प्रथम स्थिति के निषेकों में प्राप्त करना उसका नाम आगाल है। **प्रथम स्थिति के निषेकों के द्रव्य को उत्कर्षण द्वारा** यह उत्कर्षण द्वारा और उत्कर्षण का नियम क्या है ? नये बंध के साथ वह ऊपर चला जायेगा। **द्वितीय स्थिति के निषेकों में प्राप्त करना** क्योंकि बंध होनेवाले निषेक द्वितीय स्थिति में ही तो मिल रहे हैं तो वह द्वितीय स्थिति में प्राप्त करना **उसका नाम प्रत्यागाल है।**

श्रोता: यहां आप जो पढ़ रहे हैं उसके ऊपर का पैराग्राफ- समय अधिक द्वितीयावली के निषेकों के द्रव्य को यानी आवली द्रव्य को हम असंख्यातलोक का भाग दे रहे हैं। यानी एक आवली इतनी बड़ी होगी ? आवली नहीं, आवली प्रमाण निषेकों के परमाणु। एक-एक निषेक में अनंत परमाणु हैं तो आवली प्रमाण निषेकों में उससे भी असंख्यातगुणा परमाणु हैं। उसको असंख्यातलोक का भाग देंगे तो उतने परमाणु नीचे आयेंगे। *श्रोता: अनंत में असंख्यात का भाग ?* अनंत में असंख्यात का भाग है। आगाल का अर्थ क्या है ? द्वितीय स्थिति में से प्रथम स्थिति में यानी अंतर को लांघकर नीचे आना वह आगाल है। प्रत्यागाल- नीचे के प्रथम स्थिति के निषेकों के कुछ परमाणु अंतर को लांघकर ऊपर चले जाते हैं वह है प्रत्यागाल।

उस प्रथम स्थिति में एक प्रत्यावली ही अवशेष रहने पर उदीरणा भी नहीं होती। अब प्रत्यावली हमने द्वितीयावली को कहा था। परंतु उसका अर्थ है नीचे की

आवली जो उदयावली थी उसका एक-एक समय गलते-गलते-गलते। अभी हमने १६ समय की आवली मानी और १६ समय की प्रत्यावली थी। उदयावली के १६ समय खिर गये; अभी उसके निषेक खिर गये तो कितने बाकी रहे ? १६, जो प्रत्यावली कहलाती थी वह अभी उदयावली हो जायेगी। अभी प्रत्यावली नहीं रही, पहले हमने उसको प्रत्यावली कहा। इसलिये लिखा था कि प्रत्यावली अवशेष रहने पर। परंतु उसका अर्थ समझने के लिये मैंने ब्रैकेट में अपनी ओर से लिखा है **जो उदयावलीरूप होती है** यानी अभी हम उसको उदयावली कहेंगे क्योंकि आवली मात्र निषेक शेष रहने पर उदीरणा भी नहीं होती। कैसे होगी ? क्योंकि उसके ऊपर से उसमें आकर मिलना उसीको उदीरणा कहते हैं। अभी ऊपर से आने के लिये कोई रास्ता ही नहीं है क्योंकि आगाल बंद हो गया है और प्रत्यावली में से उदयावली में आना भी पॉसिबल नहीं है। अभी कोई निषेक ही नहीं है उसके ऊपर, बस आवली प्रमाण निषेक बाकी हैं।

उस प्रत्यावली के निषेकों का यानी जो अभी उदयावलीरूप हुआ है उसका **प्रति समय अधोगलन ही है।** अधोगलन यानी नीचे से गलना। वर्तमान समय नीचे दिखाते हैं। नीचे का एक-एक निषेक प्रतिसमय गल जायेगा यह है अधोगलन। यानी नीचे का एक-एक निषेक खिरता चला जायेगा। अधोगलन होता चला जायेगा। *श्रोताः अधोगलन का अर्थ क्या है ?* अधोगलन होना यानी एक-एक निषेक उदयरूप होकर नष्ट हो जाना, उदय में आकर खिर जाना। आवली का प्रमाण हम १६ समय मान ले तो एक-एक निषेक खिर जाये तो १५ रह जायेंगे, १४ रह जायेंगे, इसतरह से **एक-एक समय व्यतीत होने पर एक-एक निषेक खिरता है** यानी **निर्जरित हो जाता है।** **उपशम विधान प्रथम स्थिति के अंत तक होता है।** यह जो उपशम करने का कार्य है, कहां चल रहा है ? द्वितीय स्थिति में। कब तक होता है ? जब तक प्रथम स्थिति का अंतिम निषेक बाकी है - अनिवृत्तिकरण का अंतिम समय है तब तक उपशमन करने का कार्य चल रहा है। द्वितीय स्थिति के निषेकों को अपनी जगह में कायम रखने का जो कार्य है, उपशमित करने का कार्य है वह प्रथम स्थिति के अंतिम समय तक चलता है। यानी प्रथम स्थिति एक-एक, एक-एक समय गल जायेगी, जब उसका अंतिम समय आयेगा, नीचे का सब गल जायेगा, उस समय भी द्वितीय स्थिति में लास्ट का जो एक लॉट उपशमित होने का बाकी रहा था वह उस समय उपशमित हो जायेगा। द्वितीय

स्थिति में सब कुछ उपशमित हो जायेगा और प्रथम स्थिति का अंतिम निषेक है, वह उसी समय खिर जायेगा। *श्रोता: हमारी समझ में यहां आगाल स्लो हो जायेगी ?* नहीं, अभी आगाल-प्रत्यागाल का सवाल ही नहीं। नीचे की प्रथम स्थिति ही नहीं रहेगी। अभी तो उपशम सम्यक्त्व होनेवाला है। लोग बहुत आतुरता से जिसकी राह देख रहे हैं।

उपशम विधान प्रथम स्थिति के अंत तक होता है। वहां दर्शनमोह के द्रव्य को गुणसंक्रमण भागहार का भाग देकर प्रथम स्थिति के प्रथम समय में उपशम करने योग्य जो प्रथम फालि उसका द्रव्य होता है। जब प्रथम स्थिति बनी थी तब से उपशम करने का कार्य शुरू हुआ था। उपशम करने के कार्य में एक समय में थोड़े परमाणुओं को उपशमित किया जायेगा। कितने परमाणुओं को ? तो उसको कहेंगे एक फालि को उपशमाया। जैसे हमने देखा था स्थितिकांडकघात में एक-एक फालि नीचे आती है। वैसे उपशमित करने का कार्य जो हो रहा है; वहां एक समय में इतने परमाणुओं को उपशमाया उसको कहेंगे पहली फालि उपशमायी। दूसरे समय में दूसरे लॉट को उपशमाया। यह दूसरी फालि उपशमायी। तो उसकी संख्या कितनी है ? तो क्या कहते हैं ? कि गुणसंक्रमण भागहार से भाग देकर। यह मिथ्यात्व का द्रव्य द्वितीय स्थिति में पड़ा है। जो टोटल द्रव्य है उसको इस विशिष्ट संख्या से भाग देकर जो एकभाग का प्रमाण आता है उतना द्रव्य पहले समय में उपशमित किया। अंतर करने के बाद प्रथम स्थिति बनी थी उसके पहले समय में कितना द्रव्य उपशमाया ? तो कहते हैं गुणसंक्रमण भागहार का भाग देकर एकभाग का जितना प्रमाण आया उतने परमाणु एक समय में उपशमित किये। तो उसको कहेंगे पहली फालि।

उससे असंख्यातगुणा द्वितीय समय संबंधी द्वितीय फालि का द्रव्य होता है। पहले समय में जितने परमाणु उपशमित किये उससे असंख्यातगुणा परमाणु द्वितीय समय में उपशमित किये। उससे असंख्यातगुणा परमाणु तीसरे समय में उपशमित किये। उससे असंख्यातगुणा परमाणु चौथे समय में उपशमित किये। ऐसे अंतिम समय तक उपशमाने का कार्य चला। **इसी क्रम से एक कम प्रथम स्थिति के समय प्रमाण बार असंख्यात का गुणकार होने पर अंत फालि का द्रव्य होता है।** यह एक समय कम बार क्या होता है ? मान लेते हैं १० समय बाकी थे, जब प्रथम स्थिति बनी थी तब १० समय थे। तो उपशमाने का कार्य १० समयों में होनेवाला है।

पहले समय में जो उपशमाया, दूसरे समय में एक बार असंख्यातगुणा हुआ, तीसरे समय में दो बार असंख्यातगुणा हुआ, चौथे समय में तीन बार असंख्यातगुणा हुआ, दसवें समय में नौ बार असंख्यातगुणा हुआ। तो एक समय कम बार असंख्यातगुणा हुआ। दस समय में हुआ क्योंकि पहले समय के उपशमित द्रव्य के साथ तुलना करने पर दूसरे समय में एक बार असंख्यातगुणा हुआ। तो दसवें समय में कितनी बार असंख्यातगुणा हुआ ? नौ बार असंख्यातगुणा। उन्होंने यही बात बतायी है। अंत फालि का द्रव्य यानी अभी जितना कुछ शेष द्रव्य है वह सब उपशमित हुआ है।

तो मेरा प्रश्न है मिथ्यात्व का सभी द्रव्य उपशमित हुआ कि नहीं हुआ ? श्रोता: नहीं हुआ। हां, तो क्यों नहीं हुआ ? श्रोता: एक समय का व्यय होने पर जो मिथ्यात्व का बंध हो रहा है। अरे वाह-वाह ! अंतिम समय में जब तक मिथ्यात्व का उदय था तब तक जो नया बंधा था, अंतिम समय की क्या बात करते हो ? यह अंतिम आवली में जो बंधा था वह उपशमित नहीं हुआ है। क्योंकि एक नियम है, बंध होने के एक आवली तक जिसको बंधावली कहते हैं, उसमें कुछ नहीं हो सकता। ना उसका उपशम होगा, ना उसकी उदीरणा होगी, कुछ नहीं हो सकता। तो सेकंड लास्ट-द्विचरम आवली में जो बंधे हैं उनके उपशम होने के लिये भी कुछ काल लगेगा न। उतना भी उपशमित नहीं हुआ है। वह उपशम करने का कार्य आगे चलकर हो जायेगा। वह नीचे आने का कोई सवाल नहीं है। देखो ये क्या कहते हैं ? आगे हम देखेंगे ८९ नंबर की गाथा -

अंतरपढमं पत्ते उपसमणामो हु तत्थ मिच्छत्तं।

ठिदिरसखंडेण विणा उवट्ठाइदूण कुणदि तिधा ॥८९॥

इसतरह अनिवृत्तिकरण काल समाप्त होने पर उसके अनंतर अनंतर यानी पश्चात् अंतरायाम के प्रथम समय को प्राप्त होते ही देखो, प्रथम स्थिति का अंतिम निषेक भी खिर गया, अभी अंतर का प्रथम समय प्राप्त हो गया है। यहां प्रथम स्थिति में दर्शनमोहनीय मिथ्यात्व का कोई द्रव्य ही नहीं है, कोई निषेक ही नहीं है जो उदयरूप हो जावे। जीव अपने परिणामों के कारण यहां सम्यक्त्व अवस्था प्राप्त करेगा और सामने मिथ्यात्व का उदय भी नहीं है। ऐसा कभी नहीं होगा कि मिथ्यात्व का उदय होता रहे, जीव नहीं जुड़े और सम्यक्त्व हो जाये। यह बात तीन काल में नहीं होगी। जीव के परिणाम के कारण ही इसतरह से परिस्थिति बन गयी है। अनादिकाल

से हर समय मिथ्यात्व का उदय चल रहा था, हर समय जीव अपने परिणामों के कारण मिथ्यात्व भाव कर रहा था और तत्त्वनिर्णय पूर्वक स्वसन्मुख अवस्था में दर्शनमोहनीय में ऐसा अंतर किया गया है। अनिवृत्तिकरण के बाद जब अंतर का पहला समय आया वही उपशम सम्यक्त्व का पहला समय है, यहां उपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति हो गयी।

देखो, प्रथम समय को प्राप्त होते ही यानी अंतर के प्रथम समय को प्राप्त होते ही दर्शनमोह और अनंतानुबंधी चतुष्क के प्रकृति, प्रदेश, स्थिति और अनुभाग इनका समस्तपने उदय होने अयोग्य उपशम होने से क्या कहा ? यहां ना प्रकृति का उदय है, ना प्रदेश का उदय है, ना अनुभाग का उदय है, ना स्थिति का उदय है। आप कहेंगे यहां अंतर केवल दर्शनमोहनीय में किया है और अभी आप अनंतानुबंधी को साथ में जोड़ रहे हैं - यह कैसी बात है ? यहां अनंतानुबंधी के निषेक पड़े हैं। परंतु अभी जो जीव यहां आया है, मिथ्यात्व का उदय नहीं है। जीव को सम्यक्त्व हुआ है। अनंतानुबंधी का जो पहले यहां तक उदय आ रहा था, अब यहां क्या होगा ? वह उदय में आते-आते अप्रत्याख्यानावरणादिरूप होकर उदय में आयेगा, अपनेरूप से अभी उदय में नहीं आयेगा। मिथ्यात्व प्रकृति में क्या हुआ है ? उसका अंतरवाला उपशम किया है और अनंतानुबंधी में क्या किया है ? अप्रशस्त उपशम किया है। यह जो अंतर करके उपशम किया जाता है इसको कहेंगे प्रशस्त उपशम। जो अंतर किये बिना अन्य कर्मों में - अनंतानुबंधी में तो अंतर नहीं हो रहा है, फिर भी उसका उदय नहीं होना उसको कहेंगे अप्रशस्त उपशम। अब जहां सम्यक्त्व हो गया है तब अनंतानुबंधी का उदय नहीं चल रहा है। अनंतानुबंधी चार में से किसीका भी उदय नहीं है और यहां मिथ्यात्व का भी उदय नहीं है, अब सम्यक्त्व की प्राप्ति हुयी है।

फिर से पढ़ेंगे- देखो, इसतरह अनिवृत्तिकरण काल समाप्त होने पर उसके अनंतर अंतरायाम के प्रथम समय को प्राप्त होते ही दर्शनमोह और अनंतानुबंधी चतुष्क के प्रकृति, प्रदेश, स्थिति और अनुभाग इनका समस्तपने उदय होने अयोग्य उपशम होने से उपशम किसको कहना ? उदय होने अयोग्य। तत्त्वार्थश्रद्धानरूप औपशमिक सम्यग्दर्शन को पाकर जीव औपशमिक सम्यग्दृष्टि होता है। यहां तत्त्वार्थश्रद्धानरूप सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हुयी है। पहला समय है उसका। वहां प्रथम समय में द्वितीय स्थिति में स्थित मिथ्यात्वरूप द्रव्य

को स्थितिकांडक या अनुभागकांडकघात बिना गुणसंक्रमण का भाग देकर तीन प्रकार परिणमाता है। यहां आकर उसका गुणसंक्रमण होता है; किसका ? मिथ्यात्व का। अभी उसका सारा द्रव्य उपशमित है। उपशमित है यानी उदय के अयोग्य है। उदय के अयोग्य है परंतु मिथ्यात्व का संक्रमण होकर सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति तैयार होने का कार्य यहां प्रारंभ हो जाता है। पहले समय से शुरू हो गया, इसके पहले नहीं हुआ था। भले उपशमित है पर उपशम होने पर भी यहां पर संक्रमण होने का कार्य चल रहा है। क्या कहा ?

पहले हमने क्या देखा था ? अपूर्वकरण में गुणसंक्रमण नहीं होता है ऐसा कहा था। वहां कहा था बाद में होता है। बाद में यानी सम्यक्त्व के पहले समय में ही। प्रथमोपशम सम्यक्त्व का यह पहला समय है, यहां गुणसंक्रमण शुरू हो जाता है। अब नीचे के सब निषेक गल गये हैं। ऊपर सभी उपशमित हैं, उदय में आने अयोग्य हैं। यह सारा मिथ्यात्व का द्रव्य है। उसमें क्या होगा ? अभी पहले ही समय में कुछ परमाणु सम्यग्मिथ्यात्व और कुछ परमाणु सम्यक् प्रकृतिरूप होंगे। दूसरे समय में उससे असंख्यातगुणा परमाणु उन दोरूप परिणमित होंगे। तीसरे समय में उससे भी असंख्यातगुणा होंगे। इसको कहेंगे गुणसंक्रमण। अब जो अंतर्मुहूर्त प्रमाण उपशम सम्यक्त्व का काल है उससे भी छोटे काल में यहां गुणसंक्रमण चलेगा। विशुद्धि अभी भी स्टीप राइज पर चल रही है तब तक गुणसंक्रमण होता रहेगा।

श्रोता: एक बार और समझाना। एक बार और समझेंगे। हमने देखा था प्रथम स्थिति के सभी निषेक समाप्त हुये और द्वितीय स्थिति में क्या पोझिशन है ? सभी उपशमित हैं। उपशमित हैं यानी अपनी जगह छोड़कर नीचे उदयरूप नहीं आ सकते। प्रथम स्थिति भी खलास हो गयी, अभी यहां मिथ्यात्व का उदय होने के लिये कोई निषेक बाकी ही नहीं हैं। यहां जीव की भी ऐसी अवस्था हो गयी कि उसने सम्यग्दर्शन प्राप्त किया है और सहजरूप से कर्मों में भी ऐसी अवस्था हुयी वहां उदय आने योग्य मिथ्यात्व के कोई निषेक बाकी ही नहीं हैं। जीव अंतर के पहले समय में प्राप्त हो गया है। अनंतानुबंधी अपनेरूप से उदय में आता था, अब इस समय से लेकर वह अप्रत्याख्यानावरणादि अन्य कषायरूप से उदय में आयेगा। अभी एक चौकड़ी कषाय का उदय का अभाव हुआ है। हम द्रव्यानुयोग में पहले अभाव-अभाव कहते थे,

परंतु कर्म सत्ता में पड़ा है, एक समय ऊपर पड़ा है, यह तब पता नहीं था न। उसको हम अभाव ही कह देते थे। उदय का अभाव हुआ है, अपनेरूप से उदय नहीं आयेगा। अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण, संज्वलन तीन कषाय चौकड़ी हैं उनरूप से उदय में आयेगा। वह तो आते रहेगा परंतु अनंतानुबंधीरूप से उदय नहीं है।

अभी यहां ना मिथ्यात्व का उदय है और ना अनंतानुबंधी का उदय है। ना उदय है, ना बंध है। अब यहां जीव को सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हो गयी है। अब सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होते ही उसी समय में द्वितीय स्थिति में जितना मिथ्यात्व का द्रव्य पड़ा है उनमें से कुछ परमाणु सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृतिरूप से टर्न होकर दो प्रकृति यहां तैयार हो जाती हैं। अभी तक तो नहीं थी। अब इस समय, हम अनादि मिथ्यादृष्टि की बात करते हैं उसकी सत्ता में मिथ्यात्व ही था। अभी मिथ्यात्व में से ही कुछ परमाणु टर्न होकर सम्यग्मिथ्यात्वरूप हुये और कुछ परमाणु सम्यक् प्रकृतिरूप हुये। यहां दो प्रकृतियां नयी तैयार हुयी। पहले समय में कितना द्रव्य ? जो कुछ है वह उसरूप हो गया। दूसरे समय में उससे भी असंख्यातगुणा परमाणुओं का प्रमाण है जो उन दोरूप से हो जायेगा। *श्रोता: सब निषेकों में से ?* सब निषेकों में से कुछ परमाणु संक्रमित होते हैं क्योंकि जितनी मिथ्यात्व की अंतःकोड़ाकोड़ी सागर स्थिति है, उतनी ही स्थितिवाली दो प्रकृतियां तैयार हो जाती हैं।

श्रोता: मिथ्यात्व का अभी कुछ शेष नहीं रह सकता ? मिथ्यात्व का ? सभी कहां टर्न हुये ? अनंतानंत परमाणु हैं उनमें से कुछ टर्न हुये हैं। कितने टर्न हुये हैं ? गुणसंक्रमण भागहार का भाग देकर जितना आता है उतने संक्रमित होंगे। हमेशा वह भागहार को बताते रहेंगे। सभी तो संक्रमित नहीं होते हैं और यह संक्रमित होने का कार्य जब तक सम्यग्दृष्टि है, तब तक चलता रहेगा। यह संक्रमित होने का कार्य तो वेदक सम्यक्त्व में भी बना रहेगा। प्रथमोपशम सम्यक्त्व में मिथ्यात्व प्रकृति में से और दो प्रकृतियां बनने पर भी तीनों ही उपशमित हैं, किसीका भी उदय नहीं है। जब तक औपशमिक सम्यक्त्व चल रहा है तब तक सारे परमाणु उपशमित हैं। तीनों प्रकृति में से किसीका भी उदय यहां नहीं हो सकता। अंतर चल रहा है।

पहले तो एक मिथ्यात्व प्रकृति ही थी। प्रथमोपशम सम्यक्त्व के पहले ही समय में उस प्रकृति के द्वितीय स्थिति में जितने निषेक हैं उन, प्रत्येक निषेक में से कुछ

परमाणु सम्यग्मिथ्यात्व, कुछ परमाणु सम्यक् प्रकृतिरूप हुये। जितनी स्थिति मिथ्यात्व की थी, उतनी ही स्थिति उन दोनों की होगी। पूरे के पूरे में से कुछ परमाणु, परंतु सभी निषेकों में से। क्योंकि जितनी लंबी स्थिति मिथ्यात्व की है, उतनी ही लंबी स्थिति सम्यग्मिथ्यात्व की होगी और उतनी ही लंबी स्थिति सम्यक् प्रकृति की होगी। निषेकों की संख्या सबकी समान हो जाती है। हां, उन दोनों प्रकृतियों में परमाणु अभी कम होते हैं। दूसरे समय में और असंख्यातगुणे परमाणु अनुरूप हो जायेंगे। तीसरे समय में उससे भी असंख्यातगुणे परमाणु अनुरूप हो जायेंगे। यह गुणसंक्रमण का कार्य एक छोटे अंतर्मुहूर्त तक चलता रहेगा। यह कार्य कब शुरू हुआ ? प्रथमोपशम सम्यक्त्व के पहले समय से। उपशमित रहते हुये संक्रमण का कार्य चालू हुआ है। यहां उपशम होने पर भी संक्रमण चल रहा है। संक्रमण रुका नहीं है।

श्रोता: अनंतानुबंधी के परमाणु एक ही समय में कन्वर्ट हो जायेंगे ? नीचे का एक निषेक ही कन्वर्ट होता है, बाकी सत्ता में अनंतानुबंधीरूप से पड़े हैं। जो वर्तमान उदय में आनेवाला नीचे का एक निषेक है वही केवल अन्यरूप से उदय में आयेगा, बाकी द्रव्य सत्ता में पड़ा रहेगा। सत्ता में पड़े रहना, अपनेरूप से उदय में नहीं आना यही अनंतानुबंधी का उपशम है। मिथ्यात्व का उपशम कैसा हो रहा है ? अंतरकरण किया है और ऊपर के परमाणु उपशमित हैं। मिथ्यात्व का यहां पर प्रशस्त उपशम है। जब क्षयोपशम सम्यक्त्व होता है; वहां क्या होता है ? वह हम बाद में देखेंगे। अभी क्या पोझिशन है ? कि तीन प्रकृतियां बनी हैं। इसीको हम द्वितीय स्थिति का द्रव्य मान लेते हैं न। नीचे वर्तमान समय है, जीव अभी यहां है - उसको प्रथमोपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति हुयी है। यहां मिथ्यात्व के निषेक हैं ही नहीं क्योंकि अंतर किया हुआ है और यहां अनंतानुबंधी का वर्तमान का निषेक है वह अन्य अप्रत्याख्यानावरणादि कषायरूप से उदय में आ रहा है, अपनेरूप से उदय में नहीं आ रहा है। उस समय ऊपर द्वितीय स्थिति में क्या हो रहा है ? मिथ्यात्व के कुछ परमाणु सम्यग्मिथ्यात्वरूप और कुछ परमाणु सम्यक् प्रकृतिरूप संक्रमित होते रहते हैं। ऐसी तीन प्रकृतियां तैयार हो जायेंगी उसकी। हम मान लेते हैं यह है मिथ्यात्व प्रकृति, यह है सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति और यह तीसरी है सम्यक् प्रकृति। जितनी स्थिति मिथ्यात्व की है उतनी ही सम्यग्मिथ्यात्व की है और उतनी ही सम्यक् प्रकृति की है।

श्रोता: अनुभाग ? अनुभाग अनंतगुणा हीन होता है। मिथ्यात्व के अनुभाग से सम्यग्मिथ्यात्व का अनुभाग अनंतगुणा हीन और सम्यग्मिथ्यात्व के अनुभाग से सम्यक् प्रकृति का अनुभाग अनंतगुणा हीन होता है - हीन-हीन, अनंतवें भाग प्रमाण होता है। सम्यग्मिथ्यात्व भी सर्वघाति है। श्रोता: लता, दारु में क्या बना ? मिथ्यात्व दारु के बहुभागरूप था क्योंकि सर्वघाति है, वह कभी लतारूप नहीं था। मिथ्यात्व द्विस्थानीय होने पर भी दारु के अनंत बहुभाग रूप हो गया था, जो सर्वघाति है। सम्यग्मिथ्यात्व भी सर्वघाति ही है और दारु के अनंत बहुभाग का नीचे का लोअर मोस्ट पार्ट उसका हो गया है। सम्यक् प्रकृति कैसी है ? दारु के एकभागरूप और लतारूप है जो देशघाति है। श्रोता: इनके प्रदेश ? मिथ्यात्व में से कुछ एक छोटा असंख्यातवां भाग निकला और उसमें से सम्यक् प्रकृति में जितना गया है उससे असंख्यातगुणा सम्यग्मिथ्यात्व में गया है। मान लेते हैं सम्यक् प्रकृति में एकभाग प्रमाण गया तो सम्यग्मिथ्यात्व में ४ भाग प्रमाण गया है; यहां हम असंख्यात को ४ मानेंगे। मिथ्यात्व का असंख्यातवां भाग निकला। उसमें तो अनंतानंत परमाणु पड़े हैं। वह असंख्यातवां भाग निकला और दोनों में किसरूप से डिस्ट्रिब्यूट हुआ ? सम्यक् प्रकृति में एकभाग तो उससे असंख्यातगुणा सम्यग्मिथ्यात्व में। हम चार्ट में ऐसा दिखायेंगे उसको। सम्यक् प्रकृति में एकभाग होगा तो सम्यग्मिथ्यात्व में असंख्यात भाग होंगे। पहले समय में क्या हुआ ? एकभाग प्रमाण सम्यक् प्रकृतिरूप हुये तो उससे असंख्यातगुणा सम्यग्मिथ्यात्वरूप हो गये। यहां तक बात पहले समय की ख्याल में आयी ?

श्रोता: तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् ? तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् सम्यक्त्व का जो लक्षण है अभी तक तो तत्त्वार्थ का - तत्त्वों का सही निर्णय करते-करते बढ़ा था। परंतु सम्यग्दर्शनरूप कार्य उसका अभी हुआ। जब तत्त्वविचार में तद्रूप होकर लीन हुआ तब उसकी, हम द्रव्यानुयोग में कहते हैं न, निर्विकल्प अवस्था हुयी। उसने अंतर्मुहूर्त तक अपने आत्मा को विषय बनाया तब उसके इस समय में आत्मा की अनुभूति शुरू हो जायेगी। अभी उसके तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् यह जो हम लक्षण बताते हैं उसरूप प्रथमोपशम सम्यक्त्व यहां इस पॉइंट पर शुरू हुआ। हां, सम्यग्ज्ञान हो गया, वह अब सम्यग्दृष्टि हो गया। हां, करणलब्धि में जो प्रवेश करता है वह नियम से सम्यक्त्व प्राप्त करेगा ही करेगा ऐसी जीव की अवस्था होती है। परंतु फिर भी कर्मों

में भी ऐसी अवस्था हो जाती है। पं. टोडरमलजी ने मोक्षमार्गप्रकाशक में लिखा है- जब यह जीव तत्त्वविचार में तद्रूप होकर लीन हो जाता है, उसरूप परिणमन हो जाता है तो कर्मों का उपशम स्वयमेव हो जाता है। ये सारी अवस्थायें स्वयमेव ही होती हैं। परंतु क्या-क्या होता है ? यह हम जानते हैं और यह जानने के लिये है, इसको जानकर हमको उपशम कैसे करना ? अभी क्या करना ? ऐसी बातें हैं ही नहीं। जीव अपना तत्त्वविचार करेगा, चिंतन-मनन करेगा। चिंतन-मनन की बातें आयी थी न कल !

किसीने प्रश्न पूछा है- *सम्यग्दर्शन की प्राप्ति में चिंतन-मनन की जरूरत नहीं है क्या ?* हमने जो बात बतायी थी कि जब तक चिंतन-मनन है वह विकल्पात्मक भूमिका है। चिंतन-मनन जरूर होगा, परंतु चिंतन-मनन शब्दों का हो रहा है कि आत्मा का हो रहा है ? इसको भी जरा देखना। आत्मा-आत्मा-आत्मा-आत्मा कर रहे हैं तो आत्मा-आत्मा शब्द की ओर लक्ष है कि आत्मा की ओर लक्ष है ? शब्द वाचक होते हैं, हमें शब्द के द्वारा वाच्य पदार्थ को पकड़ना है। जब हम स्वामीजी की वाणी में 'भगवान आत्मा' सुनते हैं तो क्या अंदर तक अपना उपयोग चला जाता है ? कि भगवान आत्मा कैसी अच्छी आवाज आ रही है उधर अपना लक्ष है ? शब्द को पकड़कर उसके वाच्य को अगर हमने लक्ष किया तो हम कहेंगे हमने उसको पकड़ा। उस शब्द का लक्ष नहीं करते हुये शब्द के वाच्य को लक्ष में लेकर उसमें अगर हम लीन हो जायेंगे तब उसका विकल्प छूटकर हमने आत्मा को पकड़ा, ग्रहण किया ऐसा कहेंगे।

कथन तो ऐसा ही होगा न, क्योंकि अभी क्षयोपशम ज्ञानी है तो विचारात्मक सब कार्य चलेगा ही चलेगा। परंतु बार-बार शब्दों का लक्ष छोड़कर हम आत्मा का लक्ष करेंगे, उसका ग्रहण होगा, ज्ञान में उसको पकड़ेंगे तब यह कार्य होनेवाला है। इसका अर्थ ऐसा नहीं है कि विकल्प करना ही नहीं। अरे ! वे तो आते हैं। करना नहीं यानी हमने चिंतन पर रोक लगायी, विकल्प करने में रुक गये या छोड़ने में रुक गये या नहीं करने में रुक गये ! यानी कुछ तो करना ही चाहते हैं। नहीं करनेरूप भी कार्य करना चाहते हैं। कर्तुत्व बुद्धि चल रही है न ! देखो विकल्प आते हैं, विकल्प आयेंगे भी और विकल्प छूटेंगे भी। परंतु लक्ष किसका है ? मुख्यता किसकी है ? उन शब्दों की मुख्यता है ? जैसे कोई अन्यमति भी नामस्मरण करते हैं। हम कोई वाक्य लेकर उसके ऊपर विचार करेंगे। गहराई तक उसका अर्थ लक्ष में लेकर अगर आत्मा को हमने

विषय बनाया तो उसकी अनुभूति होगी। यदि केवल शब्दों में ही रमते रहे या विकल्प करते रहने से अनुभूति होगी ऐसी अपनी मान्यता-अभिप्राय है तो वह गलत है।

हमें आत्मा को-अपने स्वभाव को-शब्दों के वाच्य वस्तु को पकड़ना है और हम तो उसके विकल्पों में खुश होकर रहते हैं - इस बात का निषेध है। विकल्पों का, चिंतन-मनन का कहीं किसीका निषेध नहीं है, ना ध्यान का निषेध है, ना किसी अन्य का निषेध है। निषेध तो मिथ्या मान्यता का है। अभी अभिप्राय में कहीं पड़ा हो कि विकल्प करते रहने से मुझे सम्यक्त्व हो जायेगा तो यहां उस बात का निषेध है। हमें तो गुरुदेवश्री ने पूरी विषयवस्तु इतनी सरल करके समझायी है जो अपने सभी आगम शास्त्रों में, सभी अध्यात्म शास्त्रों में आचार्यों ने बतायी है। श्रुत के शब्द लेकर, उसके वाच्य पदार्थ को-आत्मा को अपने लक्ष में लेंगे तो उसकी अनुभूति होगी। यह बात महत्व की है। शास्त्र सुनते समय भी, सीडी सुनते समय भी आत्मा का लक्ष करना है। ये सारे जो साधन हैं, ये समझने के लिये बाह्य निमित्तभूत हैं। ये तो जड़ हैं न ? वाणी तो जड़ है। कोई उंगली से चन्द्रमा की ओर इशारा कर रहा है और हम उंगली को देखते रहे तो चन्द्रमा कब दिखेगा ? इसमें भी ऐसा है। चिंतन-मनन का निषेध नहीं है और ना ही ध्यान की अवस्था का - कुछ लोग ध्यान का भी निषेध समझते हैं। ध्यान का निषेध है ही नहीं। हम जो विषय सुन रहे हैं उसको एकाग्रता से, एकांत में हम स्वयं विचार करके अपने आपको - शुद्धात्मा को लक्ष में ले और उसीका अवलोकन करते रहें, यहां की भाषा में करणलब्धि उत्पन्न हो जाये तो आत्मानुभूति होगी ही होगी। बिलकुल निश्चितरूप से होगी। परंतु हम अपनी ही कल्पना से उसमें कहीं न कहीं चूक जाते हैं।

श्रोता: एक प्रश्न है क्या अभी भी उपशम सम्यक्त्व होने के पश्चात् गुणसंक्रमण हो सकता है ? अनिवृत्तिकरण काल समाप्त होने के पश्चात् सम्यग्दर्शन का जो पहला समय है उस समय गुणसंक्रमण प्रारंभ होता है। वह अंतर्मुहूर्त काल तक चलता है।
श्रोता: अपूर्वकरण का क्या है ? क्या वहां भी गुणसंक्रमण चलता है ? यहां गुणसंक्रमण नहीं होता, यह पहले ही बता चुके हैं। अन्यत्र जहां-जहां अपूर्वकरण परिणाम होते हैं, तीन करण परिणाम जहां-जहां होते हैं वहां विवक्षित प्रकृतियों का गुणसंक्रमण अपूर्वकरण से होता है, यहां नहीं होता यह बात पहले ही बता चुके हैं। उपशम सम्यक्त्व के पहले समय से मिथ्यात्व प्रकृति का गुणसंक्रमण होकर अन्य दो प्रकृतियां

तैयार होती हैं। इसके बारे में और कोई प्रश्न है ? श्रोता: यह कब बताया ? यह अपूर्वकरण का स्वरूप बताया है, तभी बताया। प्रथमोपशम सम्यक्त्व के अपूर्वकरण में गुणसंक्रमण नहीं होता बाद में होता है। एक तो अपूर्वकरण का सामान्य लक्षण बता रहे हैं और एक प्रथमोपशम सम्यक्त्व के अपूर्वकरण में क्या नहीं होता वह बता रहे हैं। इसमें कोई उसका निषेध नहीं है। एक तो अपूर्वकरण नाम का जो प्रोसेस है वह जब-जब होता है, तब वहां पर विशिष्ट प्रकृतियों का गुणसंक्रमण होता है। यह बताकर अब कह रहे हैं कि प्रथमोपशम सम्यक्त्व के पूर्व में होनेवाला जो अपूर्वकरण है वहां मिथ्यात्व का गुणसंक्रमण नहीं हो रहा है और ना अन्य किसी प्रकृति का। परंतु वह कब होगा ? प्रथमोपशम सम्यक्त्व के पहले समय से प्रारंभ होगा, हां।

श्रोता: प्रथमोपशम सम्यक्त्व जब चल रहा है तब ध्यान की अवस्था को धर्मध्यान कहेंगे या शुक्लध्यान कहेंगे ? शुक्लध्यान श्रेणी में होता है। ध्यान की अवस्था में प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त होता है उसको धर्मध्यान कह सकते हैं परंतु प्रथमोपशम सम्यक्त्व का पूरा काल शुद्धोपयोग का काल नहीं है। शुरू में शुद्धोपयोग है परंतु हो सकता है कि वह शुभोपयोग में आ जाये या ऐसा भी रेग्युलर कुछ क्योंकि उसका काल यथायोग्य अंतर्मुहूर्त है। हम उसको शुभोपयोग भी कहेंगे क्योंकि जिसने सातवां गुणस्थान प्राप्त किया है वह इस प्रथमोपशम सम्यक्त्व के काल में हजारों बार छठे-सातवें में आता जाता है। पूरा उपशम सम्यक्त्व का काल शुद्धोपयोग का काल नहीं है। वह बहुत छोटा काल है फिर भी यथायोग्य समझना। गुणसंक्रमण का काल है वह पूर्ण विशुद्धिवाला है। हां बस ! अनुभूति होते ही कुछ झट से थोड़े ही बाहर आयेगा ? यथायोग्य अंतर्मुहूर्त काल तक अनुभूति चलती ही रहेगी, वहां पर भी यथायोग्य विशुद्धि है और जरूरी नहीं कि तत्काल बाहर आकर कुछ अन्य कार्य में लग जाये। बैठे हैं वैसे ही। अपने आनंद का अनुभव लिया है। स्थिर होकर बैठ गये हैं। फिर विकल्पात्मक भूमिका में आ सकते हैं। यह क्या हो गया ! ऐसा अजब नजारा ! ऐसा भी लगेगा, है न ?

श्रोता: वह सब उस समय प्रथमोपशम सम्यक्त्व तक शुद्धोपयोग का काल ही कहेंगे प्रथम समय में ? हां बिलकुल है। उसके पहले भी हम कहेंगे। तो क्या ? क्योंकि शुद्धोपयोग होते ही थोड़े ही अनुभूति होगी ? आप कागज पर मैग्निफाइंग लेन्स पकड़ते हैं। लेते ही वहां पर कागज जलना शुरू होता है ? क्या होता है ? अंतर्मुहूर्त तक पकड़ो

तो जलना शुरू हो जायेगा। अंतर्मुहूर्त तक अपने शुद्धात्मा का लक्ष किया है यानी उसने करणलब्धि में ही शुद्धात्मा को लक्ष में ले लिया। बिलकुल, यह तो हमने देखा था न, शुद्धोपयोग यह सामान्य टर्मिनोलॉजी है; यहां तो करण परिणाम में बताते हैं। फिर भी शुद्धोपयोगरूप भाषा में बोलना है तो उसने पहले ही अपने आत्मा का लक्ष कर लिया क्योंकि अंतर्मुहूर्त तक लक्ष किया तभी तो आत्मा की अनुभूति हुयी कि नहीं हुयी ? पहले बाहर लक्ष था, अंदर लक्ष करते ही अनुभूति थोड़ी ही हुयी ? अंतरंग में स्थिर रहा तो अनुभूति हो गयी। विकल्प आते-आते विकल्प छूट गया और आत्मा को लक्ष में लेकर अंतर्मुहूर्त हो गया और उसको अनुभूति हो गयी।

श्रोता: उसको ऐसी संज्ञा क्यों दी ? कौनसी संज्ञा ? हमें पं. टोडरमलजी ने बताया न, शुद्धोपयोग संज्ञा कितनी स्थूल है। अपने बुद्धिगोचर परिमाणों की अपेक्षा द्रव्यानुयोग में शुद्धोपयोग, शुभोपयोग या अशुभोपयोग कहने में आता है। मिथ्यादृष्टि ने ही तत्त्व का विचार किया, मिथ्यादृष्टि ने ही तत्त्वनिर्णय किया, मिथ्यादृष्टि ने ही शुद्धात्मा का लक्ष किया है। मिथ्यात्व अवस्था भी चल रही है, गल भी तो रही है, मिथ्यात्व हीन भी हो रहा है और शुद्धात्मा का लक्ष करते-करते सम्यक्त्व की प्राप्ति हुयी है। सम्यक्त्व की प्राप्ति होने के बाद थोड़े ही शुद्धोपयोग होगा ? शुद्धोपयोग किया तभी तो उसने सम्यक्त्व की प्राप्ति की है। यह चर्चा का विषय नहीं है, यह तो अनुभव की बात है। मिथ्यात्व का बंध रुक गया, अनंतानुबंधी का बंध रुक गया। अभी और भी बातें आयेंगी। कितनी ही प्रकृतियां जिनकी पहले और दूसरे गुणस्थान में बंधव्युच्छित्ति होती है उनका बंध रुक गया है। जो हमने बंधापसरण में देखी थी उसमें से अभी कितनी ही प्रकृतियों का बंध शुरू भी होगा बाद में। वह तो चर्चा आयेगी। अभी तो पहले समय में गुणसंक्रमण शुरू होता है इतनी ही बात यहां पर आयी है।

श्रोता: आपने स्वाध्याय में बताया कि उपशम सम्यक्त्व में धर्मध्यान होता है कि शुक्लध्यान ? यह धर्मध्यान कब होता है ? देखो, यहां शुक्लध्यान की बात ही नहीं है, शुक्लध्यान श्रेणी में होता है। यहां धर्मध्यान चल रहा था। धर्मध्यान का भी क्या अर्थ होता है ? आजकल बहुत सारे लोग कर रहे हैं न ! किसको मालूम है धर्मध्यान किसको कहना ? *श्रोता:* तत्त्वविचार। तत्त्वविचार। धर्मध्यान के कितने भेद हैं ? बोलो बहन ? *श्रोता:* ४ भेद हैं - आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय, संस्थानविचय।

आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय, संस्थानविचय। यानी क्या कर रहे हैं ? आज्ञाविचय यानी जो तत्त्वों संबंधी भगवान की आज्ञा है - उपदेश है, उन तत्त्वों के स्वरूप संबंधी। विचय यानी क्या है ? वह विचाररूप है न। क्षयोपशम ज्ञानी है तो उसके विचाररूप परिणाम चल रहे हैं। फिर विपाकविचय - कर्म का जो उदय आदि होता है उसके संबंध में विचार करते-करते, विचार छूटकर आत्मा को पकड़ा तो हम कहेंगे वह धर्मध्यान हुआ।

जब तक उसका विचार कर रहे हैं, यह तो शुभभावरूप ध्यान चल रहा है, उसका सविकल्प ध्यान चल रहा है। उसका ध्यान छोड़कर हम आत्मा को पकड़ेंगे तो हम कहेंगे आत्मा का ध्यान हुआ। उसका विचारात्मक-विकल्पात्मक ध्यान चलता है। फिर अपायविचय - उसका उपाय क्या है ? यानी कर्म नष्ट कैसे होते हैं उस संबंधी विचार। और उसके बाद संस्थानविचय यानी त्रिलोक रचना संबंधी उसका विचार चल रहा है। उसका विचार करते-करते ध्यान होता है उसमें उपयोग की एकाग्रता है न। किसी एक विषय को एकाग्रतापूर्वक जानते रहना उसको कहते हैं ध्यान। कहीं पर आत्मा को जानते हुये ऐसा नहीं कहा है। श्रेणी में भी अन्य-अन्य विषयों को, किसी श्रुत के शब्द को भी जानते रहेंगे, उसको वहां ध्यान कहा है। परंतु आत्मानुभव जिसके हुआ है ऐसे जो जीव, किसी एक श्रुत के संबंध में या कोई करणानुयोग के बारे में, अन्य कुछ भी एक ही विषय को जानते रहे हैं उसीमें कॉन्संट्रेशन-एकाग्रता हुयी है उसको धर्मध्यान या शुक्लध्यान कहा है।

वहवाला ध्यान अलग है और जो सम्यग्दर्शन प्राप्त होने के पहले, अभी हम द्रव्यानुयोग की अपेक्षा बात करते हैं, विकल्पातीत होकर आत्मा संबंधी एकाग्र हो जायेंगे वह ध्यान अलग है। जिसको ऑलरेडि सम्यग्दर्शन है उनका किसी एक विषय पर चिंतन चलता है उसको भी वहां ध्यान कहा है। परंतु उसके सम्यग्दर्शन है तो उसको धर्मध्यान कहने में आता है। वह चौथे से सातवें तक कहा जाता है। उसको ऑलरेडि सम्यग्दर्शन हो गया है। *श्रोता: उसे व्यवहार धर्मध्यान कहेंगे ?* निश्चय के साथ है तो व्यवहार हो गया क्योंकि वह शुभोपयोगरूप है। अभी समय हो गया है।

बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

१९. प्रथमोपशम सम्यक्त्व - गुणसंक्रमण

आचार्य श्री नेमिचन्द्र सिद्धांतचक्रवर्ती ने इस लब्धिसार ग्रंथ की रचना की है। उसीके आधार से पं. टोडरमलजी ने सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका लब्धिसार-क्षपणासार भाषाटीका ढूंढ़ारी भाषा में लिखी है और अभी हम उसका हिंदी अनुवाद देख रहे हैं। पं. टोडरमलजी के महान उपकार हैं हमारे पर कि इतना सारा सरल करके हमें समझाया है। आज दोपहर में उपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति होने पर बहुतों ने आनंद व्यक्त किया है। कहते हैं कब से हम इंतजार में थे, कब सम्यग्दर्शन प्राप्त होगा ? हमने विस्तार से पांचों ही लब्धियों का स्वरूप देखा है। अब यहां सम्यक्त्व प्राप्त होते ही पहले ही समय से क्या होता है ? उसकी बात देखेंगे। क्या प्रश्न है उसको देखेंगे।

प्रश्न: प्रथमोपशम सम्यक्त्व फिर से पाने के लिये एक हजार वर्ष क्यों राह देखनी पड़ती है ? एक हजार वर्ष में दुबारा प्रथमोपशम सम्यक्त्व नहीं हो सकता। पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण असंख्यात वर्ष बीत जाने पर दुबारा प्रथमोपशम हो सकता है। दुबारा सम्यक्त्व नहीं होता ऐसा नहीं कहा। यदि कोई सम्यक्त्व से छूट भी जाये और मिथ्यात्व में चला जाये तो एक अंतर्मुहूर्त में वापस सम्यग्दर्शन प्राप्त कर सकता है। तब कर्मों की जो अवस्था होती है उसको क्षयोपशम सम्यक्त्व या वेदक सम्यक्त्व कहते हैं। फिर से दुबारा तीनों को उपशमाना वगैरह कार्य नहीं होता, वहां तीन टुकड़े ऑलरेडि हैं ही, उनमें से सम्यक् प्रकृति का उदय शुरू होता है तो जीव डायरेक्ट सम्यग्दृष्टि होता है। अब उसके लिये ये तीन करण करने की जरूरत नहीं है, दो ही करणों में उसका कार्य होता है। उसकी बात अभी आगे चलकर आनेवाली है। उसके लिये दुबारा यह सारा प्रोसेस नहीं होगा। सम्यग्दर्शन तो हो जायेगा। औपशमिक सम्यक्त्व प्राप्त होने के बाद यदि उसका सम्यक्त्व कायम रहता है तो वह वेदक सम्यग्दृष्टि हो ही जाता है। ऐसे भी मिथ्यात्व में से उसको डायरेक्ट वेदक सम्यक्त्व एक अंतर्मुहूर्त के अंदर ही हो सकता है। ऐसा नहीं है कि उपशम सम्यक्त्व हुआ या वेदक सम्यक्त्व हुआ तो उसमें कुछ अंतर हो गया। सम्यक्त्व तो सम्यक्त्व ही होता है।

श्रोता: पल्य का असंख्यातवां भाग काल ? वह तो दुबारा प्रथमोपशम सम्यक्त्व होने के लिये कम से कम काल कहा है। मिथ्यात्व में आने पर बहुत लंबा काल बीच में चला गया था इसलिये यह बात हो रही है। *श्रोता: पल्य के असंख्यातवें भाग में कितने*

समय होते हैं ? उसमें असंख्यात वर्ष चले जाते हैं। पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण काल जो है, भले हम उनको समयों में भी गिने; तो उन समयों का जो रेग्युलर यूनिट है वर्षों का उसमें अगर हमको देखना है तो असंख्यात अब्ज वर्ष हो जाते हैं। पल्य का असंख्यातवां भाग काल भी बहुत लंबा काल है। इतने काल तक दुबारा प्रथमोपशम नहीं होता। परंतु इतने काल तक सम्यक्त्व नहीं होता यह बात नहीं कही है। बराबर सुन लेना। उस जीव को एक ही अंतर्मुहूर्त काल में दुबारा सम्यक्त्व हो सकता है।

देखो, कोई जीव सम्यक्त्व से भ्रष्ट होकर मिथ्यात्व में चला जाये, एक अंतर्मुहूर्त में वापस सम्यक्त्व प्राप्त कर सकता है। फिर दुबारा भी मिथ्यात्व में चला जाये, फिर सम्यक्त्व प्राप्त कर सकता है। उसको तो धवला में दृष्टपथ कहा है - जिसने मार्ग देख लिया है। जैसे हमें कोई अँड्रेस ढूँढ़ना है। आप बम्बई में चले आये। अँड्रेस ढूँढ़ते-ढूँढ़ते बहुत मेहनत करनी पड़ती है। एक बार हमने किसीका घर देख लिया, उसका अँड्रेस पता है हमको और फिर कालांतर से भी वहां जाते हैं तो जल्दी मिल जाता है। एक बार हमने देख लिया है तो उसको ढूँढ़ लेते हैं। ऐसे ही जिसने सम्यक्त्व प्राप्त किया है और वह मिथ्यात्व में भी चला जाता है तो जल्दी से सम्यक्त्व प्राप्त कर लेता है। उसने मार्ग देख लिया है, चख लिया है। हां, किसी कारण वश वह गिर भी गया है, तो वह क्या कोशिश करेगा ? जल्दी से जल्दी तत्त्वविचार करके फिर ऊपर चढ़ जाये।

प्रश्न:- जीव की इससे कर्म के अनुसंग में पराधीनता नहीं हुयी क्या ? यानी वे मानते हैं कि जीव कर्म के आधीन हुआ, उसकी पराधीनता हो गयी है। पराधीनता कहां हुयी है ? पराधीनता बिलकुल नहीं है। जीव कभी भी पराधीन है ही नहीं, उसमें अनंत स्वतंत्रता है। कर्म में भी अनंत स्वतंत्रता है। कर्म अपने में, जीव अपने में। यह कर्मों की अवस्था कर्मों के अपने कारण हो रही है, जीव की अपनी अवस्था जीव में अपने से हो रही है। दो भिन्न द्रव्यों की एक साथ कौनसी अवस्थायें होती हैं इसका वर्णन चल रहा है। यह ऐसा है न कि मिथ्यात्व कर्म के तीन टुकड़े पड़े हैं, पड़े हैं तो फिर दुबारा उपशम करने की जरूरत नहीं है। डायरेक्ट वह वेदक सम्यक्त्व ही प्राप्त कर सकता है। कर्म के कारण कभी भी जीव का पुरुषार्थ रुका नहीं है। यह हमारी मान्यता में कहीं गड़बड़ चलती है कि हमने मान लिया है कि कर्म के कारण ऐसा होता है। कौन-कौनसी अवस्था कर्मों में हो सकती है और कौनसी नहीं हो सकती इसका यहां वर्णन

है। अभी उपशम किया है, फिर भी एक ही अंतर्मुहूर्त के लिये उपशम रहेगा, उसके बाद उसका सम्यक्त्व बना रहे तो वेदक सम्यक्त्व ऐसे भी होने ही वाला है। गिरने के बाद फिर से वेदक सम्यक्त्व होगा तो भी उसमें कोई फर्क पड़नेवाला तो नहीं है। यहां कोई पराधीनता है नहीं।

अब दूसरा प्रश्न:- जे मिथ्यात्वामधून चौथ्या, पांचव्या, सातव्या गुणस्थाना मध्ये जातात त्या जीवांमध्ये शुद्धतेच्या अपेक्षेने काही फरक राहिल की नाही ? अभी शुद्धता यानी जो विशुद्धि कहते हैं वह विशुद्धि ज्यादा है उनकी। चौथे में जानेवाले से पांचवें में जानेवाले की, पांचवें में जानेवाले से सातवें में जानेवाले की विशुद्धि ज्यादा है। श्रोता: प्रश्न हिंदी में ? हां, हिंदी में ऐसा है- मिथ्यात्व से चौथे, पांचवें या सातवें गुणस्थान में जानेवाले जीवों में शुद्धता की अपेक्षा से कोई अंतर है कि नहीं है ? सम्यक्त्व के पहले समय से आखरी के समय तक शुभोपयोग होगा कि शुद्धोपयोग होगा ? अर्थात् उसे शुद्धात्मानुभूति का काल कह सकते हैं क्या ? मैंने ट्रांसलेशन करके पढ़ा। देखो, यह हम बार-बार द्रव्यानुयोग की भाषा में जानना चाहते हैं। यहां शुद्धोपयोग में ही आत्मा की अनुभूति हुयी है और अनुभूति होते ही तुरंत बाहर जाने का सवाल नहीं है। आनंद का अनुभव वहां चल रहा है। है न ? तो उसकी शुद्धात्मानुभूति चल रही है। उसके पश्चात् भी शुभोपयोग का काल आता है तो उठकर चलने नहीं लगता है, बैठा है। ऐसे अभी-अभी आत्मा का अनुभव- आनंद लिया है। उसमें विकल्प आयेगा या जो कुछ होगा आत्मा संबंधी। समझ में आती है बात ? जैसे हमने देखा, मुनिराज जो सातवें में जाते हैं, सातवें से छठे और छठे से सातवें, प्रथमोपशम सम्यक्त्व के काल में हजारों बार छठा-सातवां होता है। द्रव्यानुयोग में कहेंगे शुभोपयोग-शुद्धोपयोग, शुभोपयोग-शुद्धोपयोग। परंतु यह जरूरी नहीं। हम उनकी बाह्य क्रिया की ओर देखकर कहना चाहते हैं वह क्या कर रहे हैं, क्या नहीं कर रहे हैं - ऐसी कोई बात नहीं है।

अभी तो शुरुआत हुयी है, यहां क्या-क्या होता है ? यह सब हमें पूरे ही विस्तार से देखना है। हमने देखा कि पहले ही समय से मिथ्यात्व कर्म में से कुछ परमाणुओं का सम्यग्मिथ्यात्वरूप और सम्यक् प्रकृतिरूप संक्रमण होना शुरू हो जाता है। यह गुणित प्रमाण में शुरू होता है और मिथ्यात्व के द्रव्य को गुणसंक्रमण भागहार से भाग देकर जो संख्या आती है उतने परमाणु पहले समय में संक्रमित होते हैं। दूसरे समय में

उससे असंख्यातगुणा संक्रमित होते हैं। इसलिये इसको कहेंगे गुणसंक्रमण। यह कार्य एक छोटे अंतर्मुहूर्त तक चलता है। अब हम पुस्तक के आधार से पढ़ते-पढ़ते उसकी और भी विशेषतायें देखने जा रहे हैं। ८६ पृष्ठ पर ९० नंबर की गाथा चलेगी।

मिच्छन्तमिस्ससम्मसरूवेण य तत्तिधा य द्वादो।

सत्तीदो य असंखाणंतेण य होंति भजियकमा ॥९०॥

मिथ्यात्व, मिश्र, मिश्र का अर्थ है सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वमोहनीय इसको सम्यक् प्रकृति भी कहते हैं इन रूप करके तीन प्रकार का होता है। वह क्रम से द्रव्य अपेक्षा असंख्यातवें भाग मात्र और अनुभाग अपेक्षा अनंतवें भाग मात्र जानना। वही कहते हैं- अभी इसको एक्स्प्लेन करेंगे। पहले तो कथन कर दिया। मिथ्यात्व में से जो सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति बनती है; द्रव्य अपेक्षा यानी परमाणु की संख्या अपेक्षा उनका द्रव्य कितना होता है ? असंख्यातवां भाग और उसका भी असंख्यातवां भाग। अनुभाग की अपेक्षा मिथ्यात्व में जितना अनुभाग है उसके अनंतवें भाग प्रमाण सम्यग्मिथ्यात्व का अनुभाग और उससे भी अनंतवें भाग प्रमाण सम्यक् प्रकृति का अनुभाग हो जाता है। अब इसको समझाएंगे।

वही कहते हैं- मिथ्यात्व के परमाणुरूप जो द्रव्य मिथ्यात्व के परमाणुओं की जो संख्या है उसको यहां द्रव्य कहा। **उसको गुणसंक्रमण भागहार का भाग देकर** इस विशिष्ट संख्या से भाग दिया **एक अधिक असंख्यात से गुणा करना है, इतने द्रव्य बिना समस्त द्रव्य मिथ्यात्वरूप ही रहा।** इसको समझेंगे हम। देखो, पहले समय में क्या होता है ? हम बोर्ड पर देखेंगे। यहां बताया है। मिथ्यात्व का जो द्रव्य है उसको गुणसंक्रमण भागहार का भाग दिया। यह एकभाग हुआ, इसको समझने के लिये हम क्ष मानेंगे। नहीं तो ऐसी बातें करते बैठेंगे तो जल्दी समझ में नहीं आयेगा। यह मिथ्यात्व का द्रव्य डिक्वाइडेड बाय गुणसंक्रमण भागहार जो कोई विशिष्ट संख्या आयेगी उतना सम्यक् प्रकृति का द्रव्य होगा। सम्यग्मिथ्यात्व का द्रव्य उसी प्रथम समय में कितना होगा ? तो असंख्यात क्ष यानी क्ष गुणा असंख्यात। यह ० असंख्यात का सिम्बॉल है। अर्थसंदष्टि में इसको इसतरह से संदष्टि बनायी है, चिन्ह बनाया। यह असंख्यात का चिन्ह है। असंख्यात क्ष।

प्रथम समय में -

$$\begin{aligned}\text{सम्यक् प्रकृति का द्रव्य} &= \frac{\text{मिथ्यात्व का द्रव्य}}{\text{गुणसंक्रमण भागहार}} \\ &= \text{क्ष} \\ \text{सम्यग्मिथ्यात्व का द्रव्य} &= \text{क्ष०}\end{aligned}$$

	सम्यग्मिथ्यात्व	सम्यक् प्रकृति
४था समय	क्ष० ७	क्ष० ६
३रा समय	क्ष० ५	क्ष० ४
२रा समय	क्ष०००	क्ष००
१ला समय	क्ष०	क्ष

श्रोता: यह असंख्यात क्यों है ? क्योंकि सम्यक् प्रकृति के परमाणुओं की संख्या है उससे असंख्यातगुणा सम्यग्मिथ्यात्व के परमाणुओं की संख्या होती है। पहले समय में दोनों प्रकृतियां तैयार हुयीं। मिथ्यात्व द्रव्य में से दो प्रकृतियां तैयार हुयीं; कौनसी ? सम्यक् प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्व। हमारी भाषा में बीजगणित में सीखते हैं न हम, एक्स मान लेते हैं - एक्स वाय झेड; हमने उसको क्ष माना। तो सम्यक् प्रकृति का द्रव्य कितना निकला ? क्ष। सम्यग्मिथ्यात्व का उससे असंख्यातगुणा यानी कितना होगा ? क्ष गुणा असंख्यात यानी असंख्यात क्ष। हम पहले बोलते हैं और बाद में लिखते हैं ऐसी अंकों को उलटा लिखने की पद्धति है। असंख्यात X क्ष = असंख्यात क्ष = क्ष०।

मान लेते हैं हम यहां असंख्यात के बदले ४ क्ष लिखते। तो टोटल कितने परमाणु निकले ? ४ क्ष प्लस एक क्ष, ५ क्ष। कितने निकले ? यह आसान है न ? नहीं समझे ? अभी असंख्यात के बदले हम ४ गुणा करते हैं। क्यों स्मिता नहीं समझी ? असंख्यात को भूल जाओ। यदि सम्यक् प्रकृति से ४ गुणा द्रव्य सम्यग्मिथ्यात्व का होता तो सम्यक् प्रकृति में क्ष नंबर आया तो इसमें कितने आ जायेंगे ? ४ क्ष। दोनों मिलकर कितने होंगे ? ५ क्ष। ५ क्ष में क्या किया हमने ? क्ष को क्ष रखा और ४ में एक प्लस कर दिया; यानी (४ + १) क्ष। बात सही है ? क्या किया हमने ? क्योंकि हम कर सकते हैं। ४ में एक मिलाया तो ५ लिख सकते हैं। अभी असंख्यात में एक मिलाया तो आप कैसे

लिखेंगे ? असंख्यात प्लस एक लिखेंगे हम। क्ष मल्टिप्लाइड बाय असंख्यात प्लस वन। दोनों का मिलकर द्रव्य कितना हुआ ? क्ष मल्टिप्लाइड बाय असंख्यात प्लस वन, यानी क्ष (असंख्यात + १)।

प्लस वन क्यों ? देखो यहां अगर अभी क्ष के बदले लाख समझो न। यहां ४ लाख होते और उसमें एक लाख मिलाते हैं तो कितने हो जाते हैं ? यह लाखों की भाषा एकदम जल्दी समझ में आती है। हमने क्या किया ? यह अर्थसंदष्टि की विशेषता है। आगे बड़े-बड़े गणित करने की यह पद्धति है। अभी इन दोनों की हमने टोटल करनी है। क्या कहा ? यहां अगर ४ क्ष होते और उसमें एक क्ष मिलाते तो कितने क्ष हो जाते ? *श्रोता: पांच/पांच।* क्या किया आपने ? क्ष कॉमन है। क्ष तो रखा और आगेवाली संख्या जो मल्टिप्लिकेशन में है उसमें एक अधिक कर दिया। कहीं पर भी देख लो। अभी यहां मल्टिप्लिकेशन में कौनसी संख्या है ? असंख्यात। तो असंख्यात में एक अँड कर दो। असंख्यात प्लस वन से क्ष को गुणा करो। *श्रोता: ब्रैकेट डालना पड़ेगा ?* ब्रैकेट डालना पड़ेगा, नहीं तो पहले असंख्यात से गुणा करके प्लस वन नहीं करना। यहां ब्रैकेट की भी सिस्टिम नहीं है। यह जो अर्थसंदष्टि है इसमें असंख्यात के माथे पर एक लिखकर आड़ी डंडी की तो उसका अर्थ होता है असंख्यात प्लस वन $\frac{1}{0}$ ।

ये सारी बातें अर्थसंदष्टि में हैं और ऐसे अर्थसंदष्टि अधिकार हमने अपने घर पर सामूहिक स्वाध्याय में बोर्ड पर समझाये हैं और उनके व्हिडिओ बनाये हैं। इतने छोटे से घर में ये सारी बातें हुयी हैं। पूरे जीवकाण्ड का अर्थसंदष्टि अधिकार, कर्मकाण्ड का अर्थसंदष्टि अधिकार और लब्धिसार-क्षपणासार का भी अर्थसंदष्टि अधिकार सिखाया है। ऐसे लिखकर समझाये बिना कैसे समझेंगे ? बहुत डिटेल में इसको लिया है। अभी इसका थोड़ा नमूना पेश कर रही हूँ। यह असंख्यात प्लस वन हो गया। ब्रैकेट में असंख्यात प्लस वन लिखना, उसको क्ष से गुणा करना $(0 + १)$ क्ष। मुझे यहां का अर्थ आपको बताना है- मिथ्यात्व के द्रव्य में से इतना द्रव्य इन दो में चला गया तो मिथ्यात्व में कितना द्रव्य रहा ? जो बाकी रह गया वह। मिथ्यात्व का टोटल द्रव्य मायनस क्ष मल्टिप्लाइड बाय ब्रैकेट में असंख्यात प्लस वन इतना रह गया। बोर्ड पर लिखकर बताना है ? प्रेरणाबहन यह कैसे लिखते हैं बोर्ड पर लिखकर जरा बताना। असंख्यात

में वन प्लस कैसे डालते हैं ? यहां एक लिखकर बीच में ऐसे डंडी कर देते हैं १_ तो वह वन प्लस की साइन हो जायेगी। जरा बता देना, लोगों को थोड़ा नमूना देखना है। हम प्लस वन कैसे लिखते हैं ? असंख्यात प्लस वन कैसे लिखते हैं ? यहां अलग से लिखकर बताना। असंख्यात और प्लस वन $\frac{1}{2}$ के लिये कैसे लिखते हैं ? नहीं वह मायनस वन हुआ। यहां प्लस वन करना है। हां बस, यह है असंख्यात प्लस वन की साइन। यहां ऐसा चंद्र उलटा बनायेंगे तो वह हो जायेगा वन मायनस की साइन। वह अभी अपने को नहीं देखनी है।

आपको बताऊं यह पाटी पर ? यह पहले से जो अपने शास्त्र में चिन्ह बने हैं और हमारे मॉडर्न लिखने की पद्धति है उसमें बहुत सारी भिन्नता है। वहां तो भागाकार करने के लिये तो बीच में हम आड़ी लाइन खींचते हैं पर यहां पर कुछ नहीं लिखते। अभी हमने क्या देखा ? यह असंख्यात ० लिख दिया। यह असंख्यात की साइन है। असंख्यात प्लस वन लिखना है तो इसके ऊपर वन करके ऐसी आड़ी लाइन करते हैं $\frac{1}{2}$ । इसका अर्थ होता है प्लस वन। यह असंख्यात प्लस वन की साइन हो गयी। अभी यहां अपना विषय नहीं है परंतु यदि असंख्यात मायनस वन लिखना होता तो हम इसको ऐसा लिखते $\frac{1}{2}$ । बस यह ऐसी ही बहुत सारी बातें हैं जो सीखने योग्य हैं और बहुत इंटरेस्टिंग हैं।

श्रोता: वह ४ प्लस वनवाला नहीं रहेगा मायनस में ? मायनस में नहीं, अभी यह प्लस वन की बात है। देखो, मिथ्यात्व के द्रव्य में से सम्यक् प्रकृति का द्रव्य कितना निकला ? हमने क्ष मान लिया, क्ष द्रव्य किसका है ? सम्यक् प्रकृति का। मिथ्यात्व में से निकला है। हम बाद में मिथ्यात्व को समझायेंगे। यह समझना आसान है और यहां की भाषा समझना आसान पड़े इसलिये सम्यक् प्रकृति का द्रव्य क्ष मान लिया। यह द्रव्य इतना निकला। कैसे निकला ? मिथ्यात्व के द्रव्य को गुणसंक्रमण भागहार से भाग दिया तो एकभाग प्रमाण यह द्रव्य है। अभी इसको क्ष माना आपको समझाने के लिये। यहां ऐसा नहीं लिखा है। अब इससे असंख्यातगुणा सम्यग्मिथ्यात्व का द्रव्य उसी समय में निकला है। क्ष प्लस असंख्यात क्ष = क्ष (असंख्यात + १)। बात ख्याल में आयी ?

अब इनकी टोटल करके बतायेंगे। टोटल करना है तो जो कॉमन है उसको

एक बार लिखना और इसको अलग-अलग नहीं लिखना है। यह क्ष इसमें मिला लेंगे तो असंख्यात में वन प्लस हो जायेगा। क्ष को वन प्लस असंख्यात से गुणा किया। सबको दिखाती हूं मैं, यहां देख लो। अगर हमारी भाषा में लिखना है तो हम कैसे लिखेंगे ? असंख्यात प्लस वन, यह हमारी भाषा हुयी - मॉडर्न हमारी आपकी। मैंने पहले आपको बताया है कि संदृष्टि में कैसे लिखते हैं। यह बात अभी तो ख्याल में आ गयी न ? देखो, यदि असंख्यात के बदले हम यहां ४ लिखते, ४ क्ष प्लस १ क्ष। कितने हुये ? ५ क्ष। आपने क्या किया ? क्ष के साथ जो गुणित का प्रमाण था उसमें आपने १ मिलाया है। आपने कर लिया है प्रोसेस परंतु उसको हम ऐसी भाषा में लिखेंगे तो आप नहीं समझ रहे। ४ क्ष प्लस १ क्ष, हमने क्या किया ? क्ष, क्ष कॉमन निकाला और (४ + १) से गुणा किया। हम भी गणित में ऐसा करते हैं। हमने अभी यही तो बताया। यही बात हुयी न।

अब ४ के बदले असंख्यात को रखो न यहां पर। असंख्यात प्लस एक हुआ। कितना द्रव्य निकला है ? जो हमने एकभाग प्रमाण देखा था वह एकभाग प्रमाण, प्लस उससे असंख्यातगुणा। उसका अर्थ क्या हुआ ? यह जो एकभाग प्रमाण की व्हॅल्यू थी उसको असंख्यात से गुणा करके उसमें मिला दिया। बात ख्याल में आयी ? जो एकभाग की व्हॅल्यू थी क्ष, उसको असंख्यातगुणा करके क्ष४ उस असंख्यात में एक मिला दिया क्ष५। अभी ४ के बदले फिर से असंख्यात समझों। यह असंख्यातगुणा और उसमें वन प्लस कर दिया। इनकी भी भाषा समझो न ! अपनी भाषा तो समझते हैं हमेशा। मिथ्यात्व का द्रव्य कितना बाकी रहेगा ? जो उसमें से निकला है उसको मायनस करो बाकी सब मिथ्यात्व का द्रव्य रहा। पहले समय में मिथ्यात्व का द्रव्य कितना है ? जो सम्यग्मिथ्यात्व का और सम्यक् प्रकृति का मिलकर जितना द्रव्य है। उसे मिथ्यात्व के द्रव्य में से मायनस कर दो तो बाकी सारा मिथ्यात्वरूप रहा।

अभी फिर दुबारा पढ़ेंगे, आप सबको बात समझ में आयेगी। देखो, वही कहते हैं न- **मिथ्यात्व के परमाणुरूप जो द्रव्य**, यानी उसकी टोटल संख्या **उसको गुणसंक्रमण भागहार का भाग देकर** एकभाग का जो प्रमाण आता है, मैंने जिसको क्ष कहा था। मिथ्यात्व के द्रव्य को गुणसंक्रमण भागहार का भाग दिया तो क्ष संख्या आयी न, हमने जो मान लिया था। **एक अधिक असंख्यात से गुणा करता है।** अभी क्यों करना बात समझ में आयी ? अभी हमने करके दिखाया। क्ष को एक अधिक

असंख्यात से गुणा करना। **इतने द्रव्य बिना समस्त द्रव्य** यानी इतना द्रव्य मायनस करना मूल मिथ्यात्व के द्रव्य में से तो शेष द्रव्य **मिथ्यात्वरूप ही रहा** अर्थ ख्याल में आया ? पहले हम कुछ नहीं समझे थे, अब कुछ-कुछ समझे। **और गुणसंक्रमण भागहार से भाजित मिथ्यात्व द्रव्य को असंख्यातगुणा करें** यानी क्ष को असंख्यातगुणा करें, **इतना द्रव्य मिश्रमोहनीयरूप परिणमित हुआ।** देखो हमने एकभाग को क्ष मान लिया तो कितना आसान हुआ। **और गुणसंक्रमण भागहार से भाजित मिथ्यात्व के द्रव्य को** यानी क्ष को **एक से गुणा करें** यानी उतना ही रखें, **इतना द्रव्य सम्यक्त्व मोहनीयरूप परिणमित हुआ।**

क्ष की व्हॅल्यू कितनी है ? मिथ्यात्व का द्रव्य डिक्वाइडेड बाय गुणसंक्रमण भागहार। क्ष प्रमाण द्रव्य सम्यक् प्रकृतिरूप हुआ, उससे असंख्यातगुणा द्रव्य सम्यग्मिथ्यात्वरूप हुआ और इन दोनों की टोटल करके मिथ्यात्व द्रव्य में से मायनस किया इतना द्रव्य मिथ्यात्वरूप रहा। यह पहले समय की पोझिशन है। यह इतनी बात ख्याल में आयी ? यही बात हमने नीचे भी लिखी है। हम बोर्ड पर देखेंगे- यहां लिखा है नीचे। पहले समय में सम्यक् प्रकृति का द्रव्य क्ष। क्ष की व्हॅल्यू अभी हमने ऊपर देखी थी - मिथ्यात्व का द्रव्य डिक्वाइडेड बाय गुणसंक्रमण भागहार उसको हमने क्ष नाम दिया था समझने के लिये। यहां सम्यग्मिथ्यात्व का द्रव्य उसी पहले समय में असंख्यातगुणा क्ष। यानी क्ष को एक बार असंख्यात से गुणा किया इतना सम्यग्मिथ्यात्व का द्रव्य। अब इन द्रव्यों की टोटल करके मिथ्यात्व के द्रव्य में से बाद करेंगे, मायनस करेंगे तो बाकी रहा वह मिथ्यात्व का द्रव्य। यह पहले समय की बात हुयी।

अब दूसरे समय में क्या हुआ ? यहां पहले समय में सम्यग्मिथ्यात्व का द्रव्य है क्ष० उससे असंख्यातगुणा दूसरे समय में सम्यक् प्रकृति का द्रव्य होगा। इसलिये यहां दो बार असंख्यात से क्ष को गुणा किया क्ष००। उसी दूसरे समय में मिश्रमोहनीय का यानी सम्यग्मिथ्यात्व का द्रव्य तीन बार असंख्यात से क्ष को गुणा किया क्ष०००। देखो पहले समय में क्या हुआ ? क्ष और एक बार असंख्यात से गुणा क्ष। दूसरे समय में सम्यक् प्रकृति का द्रव्य दो बार असंख्यात गुणा क्ष है और सम्यग्मिथ्यात्व का द्रव्य तीन बार असंख्यात गुणा क्ष है। तीसरे समय में क्ष को चार बार, अभी डायरेक्ट ४ लिख दिया। ४ बार असंख्यात नहीं कहा, यहां बीच में ४ लिख दिया। और यहां क्ष असंख्यात

लिखकर बीच में डंडी करके ५ लिखा। ५ का अर्थ ५ बार असंख्यात से गुणा किया। चौथे समय में क्ष को ६ बार असंख्यात से गुणा किया। उसी समय में यहां सम्यग्मिथ्यात्व के लिये क्ष को ७ बार असंख्यात से गुणा किया। ऐसे ही अंत समय तक बातें चलेंगी। हर बार में पहले समय के सम्यग्मिथ्यात्व से दूसरे समय में सम्यक् प्रकृति का द्रव्य असंख्यातगुणा और उसी समय सम्यग्मिथ्यात्व का द्रव्य उससे भी असंख्यातगुणा होता है।

पहले समय में क्ष और क्ष असंख्यात, दूसरे समय में क्ष असंख्यात-असंख्यात यानी दो बार असंख्यात, वह मिश्रवाला तीन बार असंख्यात। तीसरे समय में सम्यक् प्रकृति का ४ बार असंख्यात, सम्यग्मिथ्यात्व का ५ बार असंख्यात। आगे के समय में यह ६ बार तो वह ७ बार। ऐसे ही चलेगा अंतर्मुहूर्त तक। असंख्यातगुणा-असंख्यातगुणा द्रव्य इन दोरूप से परिणमित होता रहेगा। इसीको कहेंगे यहां गुणसंक्रमण चल रहा है। अब पढ़ेंगे तो आपको अधिक क्लिअर होगा। ८६ पेज पर नीचे से तीसरी लाइन- **मिथ्यात्व के परमाणुरूप जो द्रव्य, उसको गुणसंक्रमण भागहार का भाग देकर, यह अपनी क्ष व्हॅल्यू आयी, एक अधिक असंख्यात से गुणा करता है।** यह दोनों का मिला हुआ द्रव्य हुआ। **इतने द्रव्य बिना** यह हमने मायनस किया, **समस्त द्रव्य मिथ्यात्वरूप ही रहा।** अर्थ ख्याल में आया ? **और गुणसंक्रमण भागहार से भाजित मिथ्यात्व के द्रव्य को असंख्यातगुणा करें,** यानी क्ष असंख्यात, **इतना द्रव्य मिश्र मोहनीयरूप परिणमित हुआ।** यह पहले समय की ही बात चल रही है। **और गुणसंक्रमण भागहार से भाजित मिथ्यात्व द्रव्य को एक से गुणा करें।** एक से गुणा करेंगे तो व्हॅल्यू उतनी ही रही जिसको हमने क्ष मान लिया है। **इतना द्रव्य सम्यक्त्व मोहनीयरूप परिणमित हुआ। इसलिये द्रव्य अपेक्षा असंख्यातवें भाग का क्रम आया।** क्योंकि गुणसंक्रमण भागहार की व्हॅल्यू भी पर्टिक्युलर असंख्यात है।

पहले में पहले मिथ्यात्व के द्रव्य को पर्टिक्युलर असंख्यात से भाग देकर, एकभाग प्रमाण तो सम्यक् प्रकृति का द्रव्य और उससे असंख्यातगुणा सम्यग्मिथ्यात्व का द्रव्य हुआ। यह सब असंख्यातवें भाग प्रमाण हुआ। मिथ्यात्व के द्रव्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण सम्यग्मिथ्यात्व का द्रव्य और उसके भी असंख्यातवें भाग

प्रमाण सम्यक् प्रकृति का द्रव्य हुआ। इतनी बात ख्याल में आयी ? द्रव्य अपेक्षा यानी संख्या अपेक्षा परमाणु कितने हुये ? असंख्यातवें भाग और उसके भी असंख्यातवें भाग। यदि आप स्थिति कितनी होगी पूछेंगे तो निषेक उतने के उतने होंगे। जितने अंतःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण निषेक मिथ्यात्व के हैं उतने ही निषेक दोनों प्रकृतियों के बने हैं। अभी उनमें परमाणु अल्प हैं। हर समय में उसमें और असंख्यातगुणे परमाणु आते रहेंगे, उन्हीं निषेकों में अँड होते चले जायेंगे। अब यहां अनुभाग की अपेक्षा बात कर रहे हैं।

अनुभाग अपेक्षा संख्यात अनुभागकांडकों के घात द्वारा जो मिथ्यात्व का अनुभाग पूर्व अनुभाग के अनंतवें भाग मात्र अवशेष रहा, उसके अनंतवें भाग देखो यहां अनुभागकांडकघात नहीं हो रहे हैं, परंतु यह बात बता रहे हैं कि अब तक मिथ्यात्व में जितने अनुभागकांडकघात हुये हैं उसके कारण मिथ्यात्व का अनुभाग अत्यंत-अत्यंत-अत्यंत मंद होते-होते-होते यहां तक आया है। फिर भी सर्वघाति है। लिखा है न, मिथ्यात्व का अंश भी बुरा है। यह तो हमने बहुत बार पढ़ा है। सूक्ष्म अंश भी बुरा है। परंतु यह सूक्ष्म अंश भी सर्वघाति है, फिर भी शैल-अस्थि से कम्पेअर करो तो अभी दारु के बहुभाग का भी कितना ? उसका भी अनंतवां भाग-अनंतवां भाग होते-होते यहां तक आया है। तो अभी मिथ्यात्व का जितना अनुभाग अवशेष रहा है, उसके अनंतवें भाग। पूर्व में उसका अनुभाग ज्यादा था। अनुभागकांडकों के द्वारा घटते-घटते अभी तक जो अवशेष रहा था, उसके भी अनंतवें भाग मिश्रमोहनीय का अनुभाग है और उसके अनंतवें भाग सम्यक्त्वमोहनीय का अनुभाग है।

सम्यक् प्रकृति मिथ्यात्व प्रकृति में से तैयार हुयी है, सम्यग्मिथ्यात्व भी मिथ्यात्व में से तैयार हुयी है परंतु सम्यग्मिथ्यात्व का अनुभाग मिथ्यात्व के अनंतवें भाग प्रमाण है फिर भी है सर्वघाति और उसका भी अनंतवां भाग होकर सम्यक् प्रकृति बनी है जो है देशघाति। अभी तो उसका उदय नहीं है, परंतु जब सम्यक् प्रकृति का उदय होगा तो देशघाति है यानी वह सम्यक्त्व का घात नहीं करेगी। उसका उदय भी होगा और क्षयोपशम सम्यक्त्व भी चालू ही रहेगा। वह बाद में होगा, अभी नहीं। अभी तो तीनों ही प्रकृतियां उपशमित हैं। अभी तीनों में से किसीका भी उदय नहीं है। उपशमित अवस्था में यह संक्रमण का कार्य चल रहा है। यह विशेषता है यहां पर।

श्रोता: सादि मिथ्यादृष्टि को भी होता है यह सब ? सादि मिथ्यादृष्टि को भी होगा। सादि मिथ्यादृष्टि की क्या बात होती है ? जिसकी सत्ता में ऑलरेडि तीन प्रकृतियां हैं उनका सम्यक्त्व होने पर क्या होता है ? मिथ्यात्व अवस्था में तीन में से इन दो की स्थिति बहुत कम थी। देखो क्या है ? सादि मिथ्यादृष्टि में क्या होता है उसकी भी बात करेंगे। सादि मिथ्यादृष्टि जब मिथ्यात्व अवस्था में था तो कभी अधिक, कभी कम ऐसे उसने मिथ्यात्व का बंध किया। सादि मिथ्यादृष्टि का अर्थ पहले देख लेते हैं। पहले सम्यक्त्व हुआ था तब मिथ्यात्व में से तीन प्रकृति समान स्थितिवाली ऐसी उत्पन्न हुयी। यह आगे का विषय है। फिर भी हम थोड़ा देखकर आगे बढ़ेंगे। प्रथमोपशम सम्यक्त्व के काल में तीनों की स्थिति समान थी। जब बाद में वेदक सम्यक्त्व हो जायेगा तो एक समय नीचे सम्यक् प्रकृति का उदय चालू होगा और बाकी दो ऊपर पड़ी रहेंगी। जब ऐसा जीव मिथ्यात्व में आयेगा तो यहां सम्यक् प्रकृति का उदय मिटकर मिथ्यात्व का उदय चालू हो जायेगा और बाकी दो सत्ता में पड़ी रहेंगी।

हम ऐसा मान लेते हैं कि अभी-अभी मिथ्यात्व में आया है। आप कहेंगे अभी तो सम्यक्त्व में रहने दो न थोड़ा टाइम। अभी क्या है ? प्रश्न उठे तो सम्यक्त्व तो रहेगा नहीं न ! अभी छूट गया। इसको सादि मिथ्यादृष्टि बना दिया। तो यह मिथ्यात्व का उदय है। अभी-अभी मिथ्यात्व में आया है तो इन तीन की स्थिति करीबन समान है। अभी इसके बाद क्या होगा ? यहां मिथ्यात्व की अंतःकोड़ाकोड़ी सागर की स्थितिवाला जीव अनेक कोड़ाकोड़ी सागरों का बंध करने लगे और इन दोनों की उद्वेलना होते-होते उनकी स्थिति घट जायेगी। फिर भी इतनी लंबी स्थिति है तो इन तीनों को एक साथ उपशमा नहीं सकता। तीनों को एक साथ उपशमाने के लिये इन दो की स्थिति बहुत घटानी पड़ती है क्योंकि उद्वेलना का कार्य भी पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण काल में जाकर पूरा होता है। इन दोनों की अंतःकोड़ाकोड़ी सागर की स्थिति घटते-घटते जाती है, हर समय मिथ्यात्व का नया बंध तो हो ही रहा है। वह तो अनेक कोड़ाकोड़ी सागरों का होता रहेगा। कभी ७० कोड़ाकोड़ी सागर, कभी कम होगा। ये जो सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति हैं उनकी उद्वेलना होते-होते स्थिति घटते-घटते-घटते कितनी रह जानी चाहिये ? एक सागर के करीबन। करीबन इसलिये कहते हैं, एकेन्द्रिय से आनेवाले और द्वीन्द्रियादि से आनेवाले जीवों के लिये कुछ अलग प्रमाण है। हम

समझने के लिये समझते हैं कि एक सागर के करीबन इनकी स्थिति बाकी है। अब जाकर तीनों को एक साथ उपशमा सकता है।

अब तीनों को एक साथ उपशमानेवाला जीव क्या करेगा ? पहले मिथ्यात्व प्रकृति को प्रायोग्यलब्धि में स्थितिकांडकघात द्वारा अंतःकोड़ाकोड़ी सागर बना देगा। बाकी जो हमने सारे प्रोसेस देखे वे सब होंगे। फर्क क्या होगा ? अनादि मिथ्यादृष्टि ने अकेले मिथ्यात्व में अंतर किया था, यह सादि मिथ्यादृष्टि तीनों में मिलकर अंतर करेगा। दोनों के ही मिथ्यात्व का ही उदय रहेगा और अनिवृत्तिकरण पूर्ण होने पर मिथ्यात्व का उदय मिट जायेगा। अभी पोझिशन ऐसी है कि सम्यक्त्व तो हुआ है। मिथ्यात्व की स्थिति अंतःकोड़ाकोड़ी सागर थी और बाकी दो की स्थिति बहुत थोड़ी थी। अब पहले समय से क्या होगा ? मिथ्यात्व में से ये दो प्रकृतियों में परमाणु संक्रमित होंगे। जितनी मिथ्यात्व की स्थिति है उतनी ही इन दोनों की बन जायेगी। पहले उनके जितने परमाणु थे उनमें ये भी मिल जायेंगे। यह कार्य सादि मिथ्यादृष्टि के होगा। परंतु बीच में यह जो काल गया है वह असंख्यात वर्षों का गया है क्योंकि उनकी स्थिति इतनी कम हुये बिना तीनों को एक साथ उपशमा नहीं सकता। जब सम्यक्त्व में से मिथ्यात्व में गया था तो तीनों की स्थिति करीबन अंतःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण थी। मिथ्यात्व का फिर नया बंध हुआ तो अधिक बांधने लगा। तो ऐसी अवस्था में तीनों को एक साथ नहीं उपशमा सकता। परंतु सम्यक् प्रकृति का उदय होकर वह वेदक सम्यक्त्व प्राप्त कर सकता है। वह कैसे होता है उसकी बात बाद में करेंगे। अभी तो यहां पर अपना प्रथमोपशम सम्यक्त्व का प्रकरण चलेगा।

श्रोता: लेकिन ये दोनों मिथ्यात्व में रहेंगे न पल्य के असंख्यातवें भाग बाद में ? यह सब कार्य मिथ्यात्व में ही तो हुआ। पल्य के असंख्यातवें भाग काल प्रमाण यदि वह लगातार मिथ्यात्व में रहा तो उसने उद्वेलना करते-करते उनको घटाया है। *श्रोता: लेकिन फिर भी तीनों का ?* तीनों सत्ता में हैं तभी तो सादि मिथ्यादृष्टि प्रथमोपशम सम्यक्त्व कर सकता है ऐसा कहा। परंतु कंडिशन क्या है ? उसने उनकी उद्वेलना करते-करते उन दो प्रकृतियों की स्थिति बहुत कम रह गयी है। *श्रोता: वापस उसको प्रथमोपशम सम्यक्त्व कहेंगे ?* बिलकुल कहेंगे, इसको कहेंगे सादि मिथ्यादृष्टि ने दुबारा प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त किया। तब तक का जो काल है उसको कहेंगे वेदकयोग्य

काल। क्या कहा ? एक बार प्रथमोपशम सम्यक्त्व होकर जीव मिथ्यात्व में यदि जाता है तो असंख्यात वर्षों तक वह सम्यक्त्व तो प्राप्त कर सकता है। परंतु कौनसा प्राप्त करेगा ? वेदक सम्यक्त्व ही प्राप्त करेगा, प्रथमोपशम सम्यक्त्व नहीं। तो उसको कहेंगे वेदकयोग्य काल और उस काल के बाद वह प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त कर सकता है। उसको उपशम काल कहेंगे या उपशमयोग्य काल कहेंगे। या अनादि मिथ्यादृष्टि जैसी उसकी एक ही प्रकृति रह जाये तो दुबारा सम्यक्त्व प्राप्त करेगा तो प्रथमोपशम सम्यक्त्व ही करेगा। वह तो कोई सवाल ही नहीं है।

वेदकयोग्य काल किसको कहते हैं ? एक बार प्रथमोपशम सम्यक्त्व होने के पश्चात् यदि जीव मिथ्यात्व में चला जाता है। हो सकता है अंतर्मुहूर्त में सम्यक्त्व प्राप्त करे। हो सकता है कुछ काल के बाद करे, असंख्यात वर्षों के बाद करे। फिर भी यदि वेदकयोग्य काल चल रहा है तो वह वेदक सम्यक्त्व ही प्राप्त करेगा। *श्रोता: वेदकयोग्य काल कितना है ?* पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण काल है। इसको वेदकयोग्य काल कहते हैं। *श्रोता: यदि सादि मिथ्यादृष्टि जीव की एक सागर प्रमाण स्थिति बाकी है तो क्या वह क्षयोपशम ही करेगा या औपशमिक करेगा ?* यह मिथ्यात्व प्रकृति की नहीं, अन्य दो प्रकृतियों की स्थिति इतनी कम हुयी हो तो अभी उसको प्रथमोपशम सम्यक्त्व ही करना पड़ेगा। इतनी कम सत्ता के साथ अभी वह क्षयोपशम सम्यक्त्व प्राप्त नहीं करेगा, प्रथमोपशम ही करेगा। इसलिये वेदकयोग्य काल पूरा होने पर यदि सम्यक्त्व प्राप्त करेगा तो प्रथमोपशम सम्यक्त्व ही प्राप्त करेगा यह बात है। *श्रोता: यदि उद्वेलना पूरी हो गयी तो ?* तब भी प्रथमोपशम ही करेगा क्योंकि पहले सम्यक् प्रकृति की उद्वेलना पूर्ण होती है, बाद में सम्यग्मिथ्यात्व की। अब यदि वह सम्यक्त्व प्राप्त करता है तो नियम से प्रथमोपशम सम्यक्त्व ही करेगा।

श्रोता: मिथ्यात्व के टुकड़े उपशम सम्यक्त्व होने पर किये। लेकिन सादि मिथ्यादृष्टि जो है उसने तीनों समान कब किये ? सम्यक्त्व के पहले समय में। सम्यक्त्व के पहले समय में तीनों की स्थिति समान हो गयी, पहले समय में। मिथ्यात्व गुणस्थान में तो टुकड़े करता ही नहीं है। संक्रमण होने का कार्य तो सम्यक्त्व होने के पश्चात् होता है। अभी तो बताया न, वही तो बताया। पहले उन दोनों की सत्ता कितनी थी ? सागर जितनी स्थिति थी। अभी कितनी हो जायेगी ? अंतःकोड़ाकोड़ी सागर की हो जायेगी।

श्रोता: सादि मिथ्यादृष्टि की भी ? सादि मिथ्यादृष्टि की भी। प्रथमोपशम सम्यक्त्व के पहले समय में उसने संक्रमण किया और जितने मिथ्यात्व के निषेक थे उतने ही अन्य दो प्रकृतियों के निषेक तैयार हुये। जब तक मिथ्यात्व में था तो उनकी स्थिति बहुत कम थी, सागर जितनी थी। अब बढ़कर अंतःकोड़ाकोड़ी सागर हो गयी। अब पढ़ेंगे आगे तो और भी क्लोरिटी हो जायेगी। पहले हमने क्या देखा था ? उनका द्रव्य असंख्यातवें भाग-असंख्यातवें भाग हो गया और उनका अनुभाग अनंतवें भाग-अनंतवें भाग हो गया। ये दो बातें यहां बतायीं। द्रव्य का प्रमाण बताया, द्रव्य का अर्थ होता है परमाणुओं की संख्या और अनुभाग का प्रमाण बताया वह अनंतवें भाग और अनंतवें भाग है। अब आगे बढ़ेंगे। ९१ नंबर की गाथा पढ़ेंगे-

**पढमादो गुणसंकमचरिमो त्ति य सम्ममिस्ससम्मिस्से।
अहिगदिणाऽसंखगुणो विज्झादो संकमो तत्तो ॥९१॥**

अनिवृत्तिकरण के अनंतर यानी नेक्स्ट समय में **गुणसंक्रमण काल के प्रथम समय से लेकर** अभी हमने जो प्रथम समय देखा है जिसमें हमने सम्यक् प्रकृति का द्रव्य क्ष मान लिया और सम्यग्मिथ्यात्व का असंख्यात क्ष। **अंत समय तक** यानी गुणसंक्रमण काल जो है उसका काल है अंतर्मुहूर्त। उसके पहले समय से गुणसंक्रमण काल के अंत समय तक, **सर्प की चालवत् प्रतिसमय असंख्यातगुणा संक्रमण सहित मिथ्यात्व का द्रव्य सम्यक्त्व और मिश्र मोहनीयरूप परिणमता है।** यह तो कथन हुआ। **वही कहते हैं।** अभी इसको एक्स्प्लेन करेंगे, समझायेंगे। जब पढ़ेंगे न तब अपने ख्याल में आयेगा। *श्रोता: सर्प की चालवत् बता दीजिये ?* हां, सर्प की चाल अभी समझायेंगे। **पहले समय में सम्यक् प्रकृति का द्रव्य अल्प है।** हमने उसे क्ष माना। **उससे असंख्यातगुणा मिश्रमोहनीय का द्रव्य है।** उसको हमने असंख्यात क्ष माना। है न ? **उससे असंख्यातगुणा** यानी एक बार असंख्यात क्ष से असंख्यातगुणा यानी दो बार असंख्यातगुणा क्ष हुआ। **दूसरे समय में सम्यक् प्रकृति का द्रव्य है और उससे असंख्यातगुणा उसी समय का मिश्रमोहनीय का द्रव्य है।**

हमने जो बोर्ड पर लिखा है। पहले समय के सम्यक् प्रकृति के द्रव्य से पहले ही समय का मिश्रमोहनीय का द्रव्य असंख्यातगुणा। उससे दूसरे समय का सम्यक् प्रकृति का द्रव्य असंख्यातगुणा है। उससे उसी दूसरे समय का सम्यग्मिथ्यात्व का द्रव्य

असंख्यातगुणा है। हां, हां, चॉक से ऐसा-ऐसा करना है न। यहां से यहां गया, फिर यहां गया, फिर यहां गया। इसको सर्प की चालवत् कहते हैं। यह ऐसी-ऐसी सर्प की चाल। इसको अहिगतिवत् ऊपर लिखा है। अहिगदिणा असंख्यगुणा। देखो, एक ही समय में सम्यक् प्रकृति से सम्यग्मिथ्यात्व असंख्यातगुणा। दूसरे समय में सम्यक् प्रकृति असंख्यातगुणा, उसी समय में सम्यग्मिथ्यात्व असंख्यातगुणा। तीसरे समय में सम्यक् प्रकृति असंख्यातगुणा, उसी समय में सम्यग्मिथ्यात्व असंख्यातगुणा। यह ऐसा इधर से उधर गया, उधर से इधर आया। यह हुआ सर्प की चालवत्। समझ में आया ? इसलिये सब बोर्ड पर लिखना पड़ा। **इसतरह सर्प की चालवत् सम्यक्त्वमोहनीय से मिश्रमोहनीयरूप और मिश्रमोहनीय से सम्यक्त्व मोहनीयरूप परिणत द्रव्य असंख्यातगुणा क्रम से अंत समय तक जानना।** यह बात ख्याल में आयी ?

एक ही समय में कम्पेअर करना है तो सम्यक् प्रकृति से सम्यग्मिथ्यात्व का द्रव्य असंख्यातगुणा और ऊपर के समय में देखना है तो नीचे के समय के सम्यग्मिथ्यात्व से ऊपर के समय का सम्यक् प्रकृति का द्रव्य असंख्यातगुणा है। फिर उसी समय का सम्यग्मिथ्यात्व का द्रव्य असंख्यातगुणा, फिर उसके ऊपर का सम्यक् प्रकृति का द्रव्य असंख्यातगुणा। यानी इसतरह से यह असंख्यातगुणा क्रम से द्रव्य संक्रमित हो रहा है। **वहां अंत समय में** कौनसा अंत समय ? सम्यक्त्व का नहीं, गुणसंक्रमण काल का अंत समय। बाद में संक्रमण का प्रमाण बदलेगा। संक्रमण तो चलता रहेगा जब तक सम्यक्त्व है। अंत समय में **गुणसंक्रमण काल संख्यात आवली मात्र है** अंतर्मुहूर्त है उसको संख्यात आवली कहेंगे। तो संख्यात आवली काल तक गुणसंक्रमण चलता रहा तो **उसमें से दो घटाकर उसको दो गुणा करके**, इसको समझाउंगी मैं आपको, पहले पढ़ लेते हैं। दो घटाकर दो गुणा करके **उसमें दो मिलायें** इतनी बार सम्यक्त्वमोहनीय के असंख्यात का गुणकार होता है तथा संख्यात आवली में से एक घटाकर उसको दो गुणा करके उसमें एक मिलायें, इतनी बार मिश्रमोहनीय के असंख्यात का गुणकार होता है। कुछ नहीं समझे !

चलो, अभी हमारा अंत समय यहां है। चौथा समय अंत समय मान लेते हैं। अभी यहां फिर यह वाक्य पढ़ेंगे। **अंत समय में** अभी गुणसंक्रमण छोड़ दो। **उसमें से दो घटाकर** हमारा चौथा समय है तो उसमें से दो घटाओ; ४ में से २ घटाये २ हुये।

उसको दो गुणा करके चार हुये। **उसमें दो मिलाओ** ६ हुये। **इतनी बार सम्यक्त्वमोहनीय के असंख्यात का गुणकार होता है।** हमने यहां ६ बार असंख्यात से गुणा किया था। है न जादू ! यथार्थ में असंख्यात बार करने जा रहे हैं। वहां पर यही फॉर्म्युला लगेगा। हमने गुणसंक्रमण का काल ४ समय माना वहां सम्यक्त्वमोहनीय के द्रव्य को असंख्यात का गुणकार ६ बार हुआ। हमने क्या किया ? ४ में से २ घटाये तो दो हुये। उसको २ गुणा किया ४ हुये। उसमें दो मिलाये ६ हुये। इतनी बार असंख्यात से क्ष को गुणा किया। अभी आगे का वाक्य पढ़ते हैं। **तथा एक घटाकर** चार में से एक घटाकर कितने हुये ? तीन **उसको दो गुणा करना** ६ हुये, **उसमें एक मिलाना**, ७ हुये **इतनी बार मिश्र मोहनीय के द्रव्य का असंख्यात का गुणकार होता है।** यानी सात बार असंख्यात से गुणा किया। है न ! कितना आसान है !

सब समझते हैं कि करणानुयोग बहुत कठिन है। **पुनश्च गुणसंक्रमण काल के अंत समय तक।** देखो, कुछ-कुछ फॉर्म्युले तो ऐसे हैं, गजब के हैं। मॉडर्न मेथड से भी उसका गणित निकालने में बहुत काल लगता है। यहां तो कुछ सेकंडों में उसके उत्तर मिल जाते हैं और वह भी असंख्यातों के गणित, अनंतों के गणित। यह गजब की बात है; अर्थसंदष्टि गजब की बात है। चमत्कार है अक्चुअलि, मॅथेमॅटिक्स में चमत्कार है। उसका अभ्यास नहीं किया है न, तो हमें उसकी व्हॅल्यू ही समझ में नहीं आती। ऐसी अलौकिक बात है। वह शकुंतला बहन भी कहती हैं- हमने महावीराचार्य के गणितसार से सब लिया है। महावीराचार्य के गणितसार से उन्होंने सीखा है। वह शकुंतलादेवी जो कुछ मॅथेमॅटिक्स करती है, वह जैनिझम से लिया है- उन्होंने तो बताया है।

हां, अब यहां आगे बढ़ते हैं। **उसके अनंतर गुणसंक्रमण होने के पश्चात्।** अभी तक क्या हुआ ? अंत समय तक गुणसंक्रमण होता रहा। क्योंकि यहां तक विशुद्धि बढ़ती गयी थी। गुणित प्रमाण में संक्रमण होता रहा। क्या हुआ ? मिथ्यात्व के द्रव्य में से सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृतिरूप होते रहा। अब उसके पश्चात् **अवशेष रहे मिथ्यात्व के द्रव्य को** क्योंकि जितना द्रव्य अभी उसमें से घट गया न, अन्य दो प्रकृतियों में कुछ परमाणु ट्रांस्फर हो गये। अब मिथ्यात्व का द्रव्य जितना शेष रहा है उसके लिये संक्रमण का जो भागहार है उसका प्रमाण बदलेगा। उसका नाम है विध्यातसंक्रमण भागहार। गुणसंक्रमण भागहार से यह भागहार का प्रमाण बड़ा है तो

कम परमाणु संक्रमित होंगे। पहले अधिक परमाणु संक्रमित होते थे, अभी उसका प्रमाण घटेगा। संक्रमण तो चालू रहता है। इसको कहेंगे विध्यातसंक्रमण। देखो पढ़ेंगे- अभी विशुद्धि थोड़ी स्टेडी हो गयी न। पहले तो विशुद्धि एकदम अनंतगुणा-अनंतगुणा बढ़ती गयी। अब यहां तक आकर वह स्टेडी हो गयी है। तो अभी क्या होगा ? संक्रमण का जो प्रोसेस है, स्लो डाउन हो गया है।

मिथ्यात्व द्रव्य को विध्यातसंक्रमण नामक भागहार का भाग देकर जो प्रमाण आता है उतने द्रव्य को सम्यक्त्वमोहनीय और मिश्रमोहनीयरूप परिणमाता है। यानी उनरूप परिणमाने का जो कार्य है वह चलता ही रहेगा। अभी तो औपशमिक सम्यक्त्व चल रहा है। बाद में जब वेदक सम्यक्त्व हो जायेगा तब भी यह संक्रमण चलता रहेगा। मिथ्यात्व में से अन्य दो प्रकृतिरूप होने का कार्य तो लगातार चलता ही रहेगा। **विध्यात शब्द का अर्थ मंद है, यहां विशुद्धता मंद हुयी है इसलिये;** अभी इसका प्रमाण बता रहे हैं। उस प्रमाण से कुछ डरने की बात नहीं है। प्रमाण नहीं ख्याल में आया तो छोड़ दो। *श्रोता: इसकी जो इन्क्रीजिंग कपॅसिटि होती है वह मंद होती है ?* वह मंद होती है। **इसलिये सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण जो विध्यातसंक्रमण भागहार** यानी जो भाग देनेवाली संख्या। पहले हमने गुणसंक्रमण नाम के भागहार से भाग दिया था उसकी व्हॅल्यू अलग आती थी। अब यह विध्यातसंक्रमण भागहार नाम का जो कोई प्रमाण है, उससे हम भाग देंगे तो कुछ अन्य संख्या आयेगी जो छोटी होगी। **उसका भाग देनेपर अल्प द्रव्य आया** यानी संक्रमित होनेवाला द्रव्य अभी कम होगा। परमाणुओं की संख्या घटेगी क्योंकि भागहार बड़ा है तो संख्या थोड़ी हो गयी। **उसीको उनरूप परिणमाता है।**

हमने क्या देखा ? प्रथमोपशम सम्यक्त्व के पहले समय से ही गुणसंक्रमण के द्वारा मिथ्यात्व का द्रव्य सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति दोनोंरूप परिणमने लगा। यह कार्य तो अंतर्मुहूर्त तक चला। उसको क्या कहा हमने ? गुणसंक्रमण हुआ। उसके बाद अब क्या शुरू हुआ ? विध्यातसंक्रमण शुरू हुआ। उसका भागहार कितना है ? क्या है ? वह सब भूल जाओ। पहले गुणसंक्रमण होता था। अब विध्यातसंक्रमण होने लगा। इतनी ही बात यहां ख्याल में रखनी है, बाकी कुछ नहीं। अब आगे उसके अल्पबहुत्व कहेंगे, गाथा ९२ की टीका। **अपूर्वकरण के प्रथम समय से लेकर**

गुणसंक्रमण काल के पूर्ण होने तक हमने कहाँ से शुरू किया था ? अपूर्वकरण से लेकर। तब क्या-क्या बातें हुयी थी ? स्थितिकांडकघात हुये थे, अनुभागकांडकघात हुये थे, बीच में अंतरकरण हुआ था और फिर स्थितिबंधापसरण वगैरह और जो-जो कुछ बातें हुयी थी। कहाँ तक की बात है ? अब हम कहाँ तक आये हैं - गुणसंक्रमण काल के अंत तक। यहां तक जो विशिष्ट बातें हुयी हैं और उसके लिये जितना कुछ काल लगा है वह हमने देखा। तो कहते हैं **अनुभागकांडकोत्करण काल आदि का** आदि क्योंकि अल्प और बहुत्व कहने जा रहे हैं। अल्प यानी छोटे में छोटा काल और बहुत्व यानी अधिक से अधिक लंबा काल इनकी कंपॅरिझन में कहेंगे। इसलिये आदि में इसको लिया, अनुभागकांडक होने के लिये जितना काल लगता है वह सबसे छोटा अंतर्मुहूर्त है। उनका **अल्पबहुत्व कहते हैं**। यहां शुरू में छोटे से लेकर आगे बड़े काल की बात बतायेंगे।

श्रोता: यह छोटे-बड़े अंतर्मुहूर्त की बात है ? हां, यह छोटे-बड़े अंतर्मुहूर्त की बात है। फिर स्थितिबंध कितना कहाँ पर होता है वह बतायेंगे। कहाँ पर कितना आबाधाकाल है ? उसको बतायेंगे। अभी इसमें कुछ कठिन नहीं; कौनसा छोटा है और कौनसा बड़ा है, कब होता है- इतनी बातें यहां बताने जा रहे हैं। *श्रोता:* अब कांडकघात होगा ? अनुभाग का ? अभी अनुभाग उतना ही रहेगा। अभी अनुभागकांडकघात रुक गया है। दर्शनमोहनीय के सारे परमाणु उपशमित हैं। अभी ना उनकी स्थिति घट रही है, ना अनुभाग घट रहा है। वह उतना ही रहेगा, केवल अनुभाग किसका घटा ? मिथ्यात्व का घटकर सम्यग्मिथ्यात्व हुआ, सम्यग्मिथ्यात्व से भी घटकर सम्यक् प्रकृतिरूप हुआ। परंतु सत्ता का अनुभाग अनुभाकांडकघातरूप से घटता था वह नहीं घट रहा है। अपनी-अपनी प्रकृति का अनुभाग उतना रहेगा यह बात है।

श्रोता: गुणश्रेणी रचना बंद हो गयी न ? गुणश्रेणी कब की बंद हो गयी, बाकी कर्मों में गुणश्रेणी हो रही थी। सम्यक्त्व होने पर भी बाकी कर्मों में कुछ काल के लिये गुणश्रेणी थी। जितनी बनी थी न, गलितावशेष थी। मिथ्यात्व का अभी गुणसंक्रमण काल चलेगा वहां तक बाकी कर्मों में गुणश्रेणी भी चलेगी। हमने जहां तक देखा था न, उसका गुणश्रेणीशीर्ष जहां तक था, बाकी कर्मों का भी वहां तक था। उनकी गुणश्रेणी तो पूरी गलने तक बनी रहेगी। देखो, यहां गुणश्रेणी से एक बात याद आती है। अभी जो

गुणश्रेणी बनी है, जो जीव पहले से चौथे में जाता है उसकी गुणश्रेणी अभी समाप्त हो गयी न, अन्य कर्मों की भी। अभी उसको प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त हुआ है। गलितावशेष गुणश्रेणी जितनी बाकी है उतनी निकल जायेगी, खिर जायेगी। चौथे गुणस्थान में बाद में गुणश्रेणीरूप कार्य नहीं चलेगा।

श्रोता: प्रथमोपशम सम्यक्त्व के काल के बाद बंद हो जायेगी ? हां, बंद हो जायेगी। अभी जितनी गुणश्रेणी अवशेष थी उतनी गल गयी क्योंकि गलितावशेष थी। अब चौथे गुणस्थान में गुणश्रेणी नहीं होनेवाली। अनंतानुबंधी की विसंयोजना में फिर से होगी उसकी बात यहां नहीं लेनी। परंतु चौथे गुणस्थानवाला वेदक सम्यग्दृष्टि है तो उसकी गुणश्रेणीरूप निर्जरा नहीं होती। यह बात अनेकों को पता नहीं है और चौथे गुणस्थान से ही गुणश्रेणी निर्जरा बता देते हैं वह बात योग्य नहीं है। परंतु जो जीव पांचवें गुणस्थान में जाता है, उसकी प्रथमोपशम सम्यक्त्व होने के लिये जो गुणश्रेणी बनी थी वह तो गलितावशेष थी और अभी पांचवें गुणस्थान में गया इसलिये देशचारित्रवाली गुणश्रेणी बनेगी अभी। वह कैसी होगी ? अवस्थित बनेगी। अवस्थित का अर्थ क्या है ? एक-एक निषेक गल जायेगा और ऊपर का एक-एक निषेक उसमें प्रवेश करेगा।

कोई मनुष्य अर्लिंएस्ट आठवें साल के बाद पांचवां गुणस्थान प्राप्त कर सकता है और करोड़ पूर्व की आयु लेकर आया है तो उसकी गुणश्रेणी कितने काल तक चलेगी ? जब तक उसका पांचवां गुणस्थान है तब तक। अगर नहीं गिरता है और पांचवें गुणस्थान में ही रहता है तो उसके पांचवें गुणस्थानवाली गुणश्रेणी चलती ही रहेगी। पांचवें गुणस्थान में या छठे-सातवें गुणस्थान में, उसकी अपनी-अपनी गुणश्रेणी बनी रहती है। उसरूप से अपकर्षण होना है और गुणश्रेणीरूप से खिरना चलता रहता है। ऐसा कार्य पांचवें में सतत हो रहा है। छठे-सातवें में तो सतत होता ही होता है। परंतु चौथे गुणस्थान में प्रथमोपशम के पहले जो गुणश्रेणी बनी थी, बस उतने ही काल के लिये गुणश्रेणीरूप से निर्जरा हुयी थी। बाद में निर्जरा नहीं होती वह बात नहीं है; वहां पर भी उसकी निर्जरा चलेगी। हमने देखा था न, चौथे गुणस्थान से आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा तो हो रही है। पहले से अधिक प्रमाण में हो रही है परंतु गुणश्रेणीरूप से रचना होकर खिरना चौथे में नहीं होगा, पांचवें गुणस्थान से लगातार चलेगा।

श्रोता: उसमें भी असंख्यात समयप्रबद्धों की निर्जरा होती है ? उसको

असंख्यात समयप्रबद्ध नहीं कहते। असंख्यातगुणा या यथायोग्य अधिक मात्रा में निर्जरा होगी। विशिष्ट जगह ही असंख्यात समयप्रबद्धों की उदीरणा या निर्जरा होती है, उसका प्रमाण हर एक जगह अलग-अलग है। आगम के कथन के अनुसार वहां पर जानना पड़ेगा। श्रोता: गुणश्रेणी निर्जरा अलग और असंख्यातगुणा निर्जरा होती है दोनों का ज्ञान अलग-अलग होता है ? वहां तो उदीरणा में लेते हैं। असंख्यात समयप्रबद्धों की उदीरणा होना वह बात अलग होती है क्योंकि वहां ऑलरेडि ओरिजिनल निषेक बड़े-बड़े हैं और उसमें उदीरणावाला द्रव्य और ज्यादा होता है और फिर खिरनेवाला द्रव्य बढ़ता है। आपका कुछ प्रश्न है ? श्रोता: पहले गुणस्थान से चौथे गुणस्थान तक और पहले गुणस्थान से पांचवें या सातवें गुणस्थान का ये तीनों के प्रथमोपशम सम्यक्त्व का काल अलग-अलग होगा या एक ही होगा ? प्रथमोपशम का काल उतना ही रहता है क्योंकि उसमें तो जघन्य-उत्कृष्ट काल ऐसा कहते हैं परंतु वह काल उतना ही है क्योंकि उन कर्मों का उपशम उतने काल के लिये ही हुआ है। उसको जघन्य काल कहने में आता है। वह तो सबका उतना ही समान होगा।

श्रोता: उसमें फर्क है काल में ? नहीं कुछ नहीं, फर्क तो विशुद्धि में ही हुआ था। हमने देखा न, उसने कांडकघात कितने बड़े किये ? स्थिति कितनी घटायी है ? कितनी विशुद्धि हुयी ? विशुद्धि में अंतर था सबके। इसलिये कोई पहले से चौथे में गया है, कोई पहले से पांचवें में गया है और कोई पहले से डायरेक्ट सातवें में गया। फिर सातवें से छठे, छठे से सातवें में वह उनका आना-जाना चलता रहेगा। जो पांचवें में गया वह पांचवें में ही रहेगा। चौथे में गया वह चौथे में ही रहेगा। किसीने मुझे पूछा था प्रथमोपशम सम्यक्त्व के काल में फिर चौथे से पांचवें में जाने में क्या हर्जा है या पांचवें से सातवें में ? उस अंतर्मुहूर्त के काल में वह कार्य नहीं होगा। पहले से जो पांचवें में गया है तो अभी पांचवें में ही रहेगा। प्रथमोपशम सम्यक्त्व के चलते हुये वह पांचवें से सातवें में नहीं जा सकता। हां, बाद में वेदक सम्यक्त्व होकर चला जायेगा उसकी कोई ना नहीं है। अभी तो हो गया अपना समय। यहीं रुकेंगे हम।

बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

२०. सासादन; उपशम सम्यक्त्व के पश्चात्

आचार्य श्री नेमिचन्द्र सिद्धांतचक्रवर्ती ने इस लब्धिसार ग्रंथ की रचना की है। उसीके आधार से पं. टोडरमलजी ने सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका लब्धिसार-क्षपणासार भाषाटीका ढूंढ़ारी भाषा में लिखी है और उसका हिंदी अनुवाद अभी हम देख रहे हैं। देखिये, लब्धिसार ग्रंथ की जो रचना हुयी है वह जयधवला के आधार से हुयी है। उसमें भी यतिवृषभाचार्य ने जो चूर्णिसूत्र लिखा है और जो कषायप्राभृत ग्रंथ है उसके आधार से वीरसेन स्वामी ने जयधवला टीका लिखी है और उसके आधार से यह लब्धिसार ग्रंथ बना है और उसके आधार से यह लब्धिसार-क्षपणासार भाषाटीका हुयी है।

जब मैं इसका हिंदी अनुवाद कर रही थी तब मूल जयधवला का भी हमारा सामूहिक स्वाध्याय चल रहा था। अनेक जगह ऐसी बातें आती थी कि सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका लब्धिसार-क्षपणासार निकालकर उसका विस्तार से वर्णन पढ़ना पड़ता था। वहां हमें विषय इतना क्लिअर नहीं होता था जितना पं. टोडरमलजी ने सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका में करके दिखाया है। तभी तो उनके सामने जयधवला भी नहीं था। उस ज़माने में धवला और जयधवला तो केवल दर्शनीय थे। अन्य टीकाओं के आधार से उन्होंने इतना सारा माल निकालकर हमारे हाथ में दे दिया है। उनकी बुद्धिमत्ता तो गजब की थी। उनकी तो हमेशा यही भावना रहती थी कि सब जन-जन इसको जाने। उन्होंने जब भाषाटीका ढूंढ़ारी भाषा में लिखी तो बहुत विरोध हुआ था। विरोध तो हर काल में होता रहता है न ! कहते थे ग्रंथ प्राकृत और संस्कृत में शोभा देते हैं, नहीं तो उनकी गरिमा कम हो जाती है, व्हॅल्यू कम हो जाती है। अरे ! व्हॅल्यू कैसे कम होगी ? लोग समझेंगे तो व्हॅल्यू अधिक हो जायेगी न ! सभी लोग समझें इसलिये उन्होंने उसके गणित को भी अलग से संदृष्टि अधिकार में समा दिया और बाकी मोटे-मोटे तौर पर उन्होंने बाकी कथन कर दिया। अभी उसीके आधार से हम यहां देख रहे हैं। हिंदी छपाने में कुछ तकलीफ नहीं हुयी क्योंकि हिंदी में क्या ? अभी लोग पढ़ने लगे हैं। क्योंकि ढूंढ़ारी पढ़ने से लगता था कि हमें ढूंढ़ारी समझ में नहीं आ रही है। तो हिंदी में समझो भाई, परंतु समझो। अभी बहाना बंद हो गया। ग्रंथ छपवाने से कुछ नहीं होगा। उसको समझेंगे, पढ़ेंगे तो ही वह कार्यकारी होनेवाला है।

हमारा सौभाग्य यह रहा कि मैंने इसका अनुवाद तो किया ही किया, हमने

उसका प्रकाशन और वितरण भी किया, उस पर अभी अपने शिबिर भी हो रहे हैं जो आप लोगों की सहायता से हो रहे हैं। सुननेवाला सामने कोई नहीं होगा तो हम क्या कर सकते हैं ? अच्छा है कि आप इतनी बड़ी संख्या में इतनी रुचि लेकर यहां ऐसा क्लिष्ट विषय - गहन विषय भी समझना चाहते हैं। बहुत अच्छी बात है। हमें प्रमोद होता है, आनंद आता है कि आप जैसे जीव हैं जो इतने आनंद से, उत्साह से पढ़ना चाहते हैं ! तो हमारा पढ़ाने का उत्साह और भी बढ़ जाता है। अरे ! सहजरूप से निमित्त-नैमित्तिक संबंध होते हैं। जिसकी ज्ञान की पर्याय की योग्यता है उसको वैसे निमित्त सहजरूप से मिल जाते हैं। हमें भी पं. टोडरमलजी मिले। उनको तो हम परोक्ष गुरु मानते हैं। वे तो २५०-३०० साल पहले हो गये और अभी हम प्रत्यक्ष गुरुवत् उनसे सीख रहे हैं। उनका एक-एक शब्द अनमोल है। हमें ऐसा लगता है कि उनके शब्द बोल रहे हैं कि चलो हमें जानो और हम जो कह रहे हैं उसको जानो। इतना अर्थ इसमें भरा है। हमें फुरसत नहीं है न समझने के लिये क्योंकि लौकिक में हम इतने व्यस्त हैं।

अभी हम अल्पबहुत्व को थोड़ा गौण करके आगे का विषय लेंगे। हम गाथा ९७ की टीका पढ़ेंगे, फिर गाथा ९८ की भी टीका पढ़ेंगे। वे यहां क्या बताने जा रहे हैं इसको मैं बताऊंगी। कोई जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्व सहित चौथे में जाता है, कोई पांचवें में जाता है, कोई सातवें में जाता है, उनका स्थितिसत्त्व कितना होता है ? उसके बारे में इसमें कथन है। डायरेक्ट गाथा की टीका पढ़ेंगे। देखो- **जिस अंतरायाम के प्रथम समय में अंतरायाम का प्रथम समय यानी सम्यक्त्व प्राप्ति का प्रथम समय संख्यात हजार सागर से हीन अंतःकोड़ाकोड़ी** यानी अंतःकोड़ाकोड़ी सागर स्थितिसत्त्व था। उसमें से अनेक बार स्थितिकांडकघात आदि होकर कितना रह गया ? तो संख्यात हजार सागर कम हो गये और अंतःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण स्थितिसत्त्व अभी भी बाकी है। इतना **स्थितिसत्त्व हो, उस समय में उपशम सम्यक्त्व गुण को ग्रहण करता है।** यानी उपशम सम्यक्त्व को प्राप्त करता है।

अब उसीके आगे की गाथा- **उसी अंतरायाम के प्रथम समयरूप स्थान में** यह पहलेवाली जो बात हुयी थी वह चौथे में जानेवाले की बात थी, मात्र सम्यक्त्व प्राप्त किया उतनी ही बात थी। अब **यदि देशसंयम सहित प्रथमोपशम सम्यक्त्व को ग्रहण करे तो उसके स्थितिसत्त्व पूर्वोक्त से** यानी अभी जो बताया उससे

संख्यातगुणा हीन होता है। यानी उसके भी संख्यातवें भाग प्रमाण होता है। और यदि सकलसंयम सहित प्रथमोपशम सम्यक्त्व को ग्रहण करता है यानी प्राप्त होता है तो उसके स्थितिसत्त्व उससे भी यानी देशसंयम प्राप्त करनेवाले से भी संख्यातगुणा हीन होता है। क्योंकि अनंतगुणी विशुद्धता के विशेष से स्थितिखंडायाम संख्यातगुणा होते हैं। ख्याल में आयी बात ? बड़े-बड़े आयामवाले कांडक होते हैं तो स्थिति अधिक घटती है। क्यों ? क्योंकि विशुद्धता ज्यादा है। अभी ९९ नंबर की गाथा हम पढ़ेंगे और फिर उसका अर्थ देखेंगे।

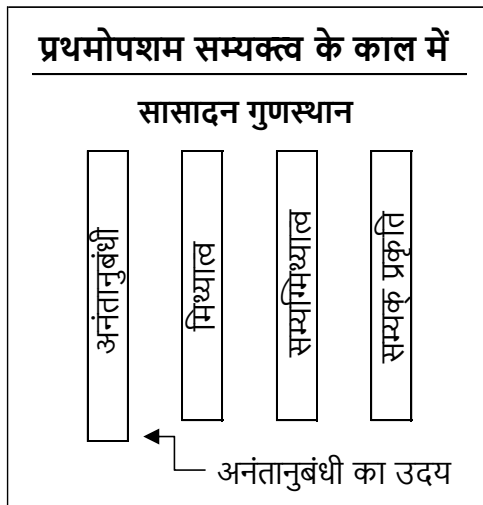
उवसामगो य सच्चो णिव्वाघादो तहा णिरासाणो।

उवसंते भजियच्चो णिरासणो चेव खीणम्हि ॥९९॥

सर्व ही दर्शनमोह का उपशम करनेवाला जीव निर्व्याघात अर्थात् विच्छेद या मरण से रहित है। क्या कहना चाहते हैं ? दर्शनमोह का उपशम करनेवाला जो जीव है उसका उस अवस्था में मरण नहीं होता। प्रथमोपशम सम्यक्त्व के काल में मरण नहीं होता और उपशम करने का जो प्रोसेस चल रहा है उस काल में भी उसका मरण नहीं होता। उपशामक कब से कहां ? तो करणलब्धि में आते ही उसको उपशामक कहना शुरू किया था। है न ? हमने पहले भी देखा था। अधःकरण से उसको उपशामक कहने में आयेगा। अभी उसका वहां से लेकर प्रथमोपशम सम्यक्त्व का काल जो अंतर्मुहूर्त है वहां तक इस जीव का मरण नहीं होगा यह नियम है। इसलिये उसको क्या कहते हैं ? निर्व्याघात यानी विच्छेद रहित यानी मरण रहित। निरासादक अर्थात् सासादन को प्राप्त नहीं होता। क्या कहा ? उपशामक जीव सासादन को प्राप्त नहीं होता ऐसा कहा और हमने तो देखा था, सासादन को कौन प्राप्त होता है ? औपशमिक सम्यग्दृष्टि और यहां लिखते हैं सासादन को प्राप्त नहीं होता। ऐसा क्यों ? हां-हां, देखो-देखो, यहां क्या कहना चाहते हैं ?

दर्शनमोह का उपशामक; उपशामक- उपशम करने का कार्य करनेवाला उसको उपशामक कहेंगे। कब से कब तक है ? अधःकरण से लेकर उपशम करने का कार्य पूरा हुआ तब तक। कब पूरा हुआ ? अनिवृत्तिकरण के अंतिम समय तक पूरा हुआ। अब उपशम करनेवाला जो जीव है वह सासादन को प्राप्त नहीं होता यह बात बता रहे हैं। उपशम सम्यक्त्व शुरू होने के बाद उपशम सम्यक्त्व का काल पूरा

होने के पहले वह सासादन में जा सकता है क्योंकि जीव सासादन में वहीं से तो जा सकता है। अन्यथा कोई सासादन में जा ही नहीं सकता। सासादन यानी दूसरा गुणस्थान। दूसरे गुणस्थान को कौनसा जीव प्राप्त होता है ? औपशमिक सम्यक्त्व का जो काल चल रहा है; अभी यहां देखना बोर्ड पर। यहां अंतरायाम के शुरुआत से यहां तक मान लेते हैं यह औपशमिक सम्यक्त्व का काल है। यहां दर्शनमोहनीय की तीनों प्रकृतियां उपशमित हैं और मिथ्यात्व का अन्य दो में संक्रमण चल रहा है। अब यहां से लेकर यहां तक यह उपशम सम्यक्त्व का काल है। इस उपशम सम्यक्त्व के काल में यहां जाकर उसका उपशम सम्यक्त्व पूर्ण होनेवाला है। परंतु उसके पहले- हो सकता है एक समय पहले, हो सकता है छह आवली पहले तक; एक समय से लेकर छह आवली तक इतने पहले अनंतानुबंधी क्रोध या मान या माया या लोभ का उदय हो जाये, तो जीव का औपशमिक सम्यक्त्व छूट जाता है, सम्यक्त्व की विराधना होकर जीव सासादन सम्यक्त्व नामक दूसरे गुणस्थान को प्राप्त होता है।



अभी मिथ्यात्व तो उपशमित है, मिथ्यात्व का उदय नहीं आ सकता। इन तीनों का ही उदय नहीं आ सकता क्योंकि उदय में नहीं आवे ऐसी उनकी उपशम अवस्था कर दी है। जब तक उनका उपशम का अंतर्मुहूर्त पूरा नहीं होता तब तक वहां से छूट नहीं सकते, नीचे आ नहीं सकते। परंतु हमने देखा था, अनंतानुबंधी वर्तमान एक समय में टर्न होकर अप्रत्याख्यानावरणादिरूप से उदय में आ रहा था। उसका इतना काल

जाने पर यहां उदय हो सकता है। क्यों होता है ? जीव के परिणामों के कारण। उसके परिणामों की ऐसी कोई विचित्रता हो जाती है कि अनंतानुबंधी का उदय जाता है। उसके कारण क्या हुआ ? अनंतानुबंधी सम्यक्त्व का विराधक है उसका उदय होने पर सम्यक्त्व तो छूट गया। सम्यक्त्व छूट गया परंतु मिथ्यात्व का उदय आने के लिये किसीके एक समय तो किसीके छह आवली तक इतना काल बाकी है। इतने काल तक उसका गुणस्थान कौनसा कहलायेगा ? दूसरा सासादन गुणस्थान। वह जीव सम्यक्त्व से भ्रष्ट हो चुका है, सम्यक्त्व से गिर चुका है और आगे जाकर जब मिथ्यात्व का उदय शुरू हो जायेगा तब उसको मिथ्यात्व गुणस्थान प्राप्त होगा। यानी दूसरे सासादन गुणस्थान में आनेवाला जीव नियम से मिथ्यात्व में जायेगा ही, लौटकर उलटा ऊपर के गुणस्थानों में नहीं जायेगा यह नियम है।

सासादन में कौन आता है ? औपशमिक सम्यग्दृष्टि ही आ सकता है। वेदक सम्यग्दृष्टि या अन्य कोई जीव सासादन गुणस्थान में नहीं आ सकता। प्रथमोपशम के काल में - जिसका उपशम सम्यक्त्व का काल चल रहा है, उसने सम्यक्त्व तो प्राप्त कर लिया, परंतु उसी काल में अनंतानुबंधी का उदय हो जाये तो उसका सम्यक्त्व छूट जाता है, सम्यक्त्व से वह गिर जाता है, भ्रष्ट हो जाता है। जैसे उदाहरण देते हैं न, छत से छिपकली गिर गयी और अभी नीचे जमीन पर गिरी नहीं है तो बीच में इतना काल लगेगा। ऐसे ही सासादन का इतना ही छोटा काल है। परंतु वहां तो तत्त्वश्रद्धान उसका छूट गया, अव्यक्तरूप से उसका अतत्त्वश्रद्धान शुरू हो गया है और वह नियम से मिथ्यात्व में जायेगा। मिथ्यात्व का उदय भी शुरू हो जायेगा। उपशम सम्यक्त्व के काल में ही अनंतानुबंधी के उदय से जीव सासादन गुणस्थान को प्राप्त हो सकता है। परंतु यहां क्या बात हो रही है ? दर्शनमोह का उपशामक जीव सासादन में नहीं जा सकता। यानी करणलब्धि में उपशम करने का जो कार्य चल रहा है उस काल में वह बीच में ही सासादन में जाये यह बात हो नहीं सकती यह बताना चाहते हैं।

जिसने उपशमाने का कार्य शुरू किया, करणलब्धि मांडी है तो क्या वह बीच में से उलटा चला जायेगा ? सासादन सम्यक्त्व का अर्थ होता है सम्यक्त्व की विराधना। जिसने सम्यक्त्व प्राप्त ही नहीं किया वह उसकी विराधना क्या करेगा ? करणलब्धि शुरू होने पर कोई जीव ऐसा बीच से ही लौटकर नहीं चला जायेगा। अभी प्रश्न आया

था कि *करणलब्धि* में *अधःकरण* चालू हुआ तो नियम से *अपूर्वकरण*, *अनिवृत्तिकरण* पूर्ण करके *प्रथमोपशम* सम्यक्त्व होता ही है या *अधःकरण* या *अपूर्वकरण* तक जाकर *प्रथमोपशम* सम्यक्त्व से वंचित रहता है ? कहते हैं ऐसा नहीं होता। वह नियम से सम्यक्त्व प्राप्त करेगा, बीच में से लौटकर नहीं आयेगा। नियम से सम्यक्त्व प्राप्त करेगा और वह बीच में छूटेगा भी नहीं। जो मार्ग पर चल रहा है वह सासादन में जाये ऐसा तो हो ही नहीं सकता। यहां लिखा है न, **निरासादक यानी सासादन को प्राप्त नहीं होता।** यह नियम है। *करणलब्धि* में जो प्रविष्ट हुआ यानी उसकी शुरुआत हुयी तो निश्चितरूप से उसे अभी उपशम सम्यक्त्व प्राप्त होगा ही होगा।

श्रोता: अनंतानुबंधी श्रद्धा को कैसे घात करता है ? हां ? अनंतानुबंधी श्रद्धा को कैसे घात करता है ? इसके तो दो कार्य हैं- वह मिथ्यात्व के साथ मिला जुला है और अनंतानुबंधी कषाय में भी निमित्त है। उसका कार्य क्या है ? तो वह सम्यक्त्व नहीं होने देता। उपशम सम्यक्त्व के काल में अनंतानुबंधी के उदय से सम्यक्त्व से भ्रष्ट हुआ है परंतु अभी मिथ्यात्व हुआ नहीं है क्योंकि मिथ्यात्व का उदय अभी आया नहीं है। जब मिथ्यात्व का उदय शुरू हो जायेगा तब उसको हम मिथ्यात्व गुणस्थान कहेंगे। द्रव्यानुयोग में तो हम जीव को मिथ्यादृष्टि या सम्यग्दृष्टि ऐसा कहते हैं। वहां सासादन की या तीसरे गुणस्थान की चर्चा नहीं होती। करणानुयोग में श्रद्धा गुण की चार अवस्थायें होती हैं - एक मिथ्यात्व अवस्था, एक सासादन अवस्था, एक मिश्ररुचि यानी - मिश्र अवस्था और एक सम्यक्त्व अवस्था। परंतु द्रव्यानुयोग में हम डायरेक्ट या तो मिथ्यादृष्टि या सम्यग्दृष्टि ऐसा कहेंगे। हां, जब मिथ्यात्व से सम्यक्त्व हुआ तो एक ही समय में मिथ्यात्व से सम्यग्दृष्टि हुआ क्योंकि चढ़ते समय यह दूसरा, तीसरा गुणस्थान नहीं आयेगा। ऐसे दूसरे में गया, फिर तीसरे में गया ऐसा नहीं होता है। चौथे, पांचवें या छठे से गिरकर दूसरे में आया है और दूसरे से गिरकर नियम से पहले में ही जायेगा। दूसरे से कोई ऊपर नहीं चढ़ेगा। वह गिरने का ही गुणस्थान है। गिरकर ही आया है और वहां से नीचे ही जायेगा।

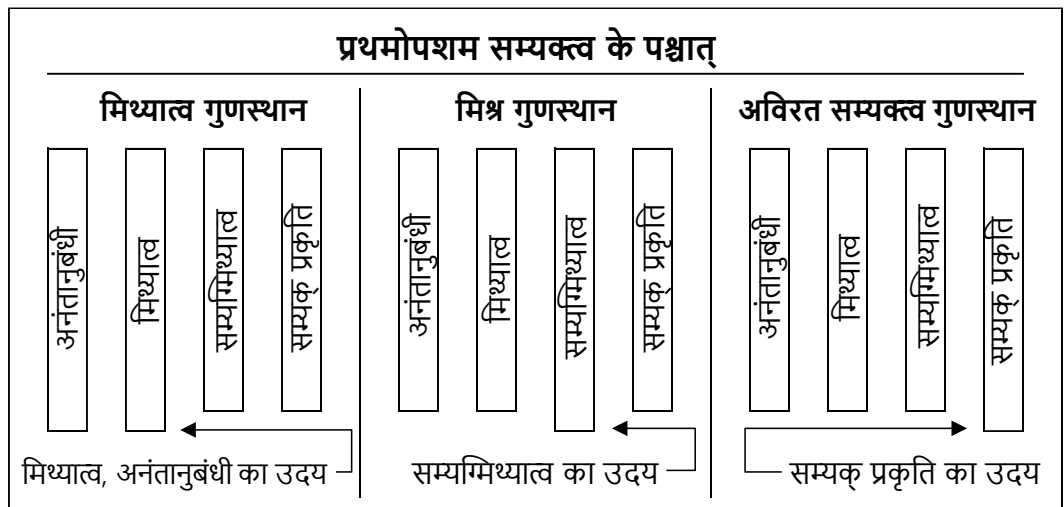
श्रोता: परिणाम इतने ऐसे ही हैं उसके कि मिथ्यात्व में जायेगा ? वैसे ही हैं उसके क्योंकि उन प्रकृतियों का उपशम कुछ काल के लिये हुआ था - लिमिटेड काल के लिये - अंतर्मुहूर्त के लिये। उस अंतर्मुहूर्त के बाद उपशम छूटेगा और अनंतानुबंधी

के कारण ऑलरेडि सम्यक्त्व से तो छूट ही गया है तो अभी यहां मिथ्यात्व का उदय आयेगा ही आयेगा। उपशामक अवस्था में ना मरण होता है और ना ही सासादन में जाता है। यह बात यहां पर बताना चाहते हैं। *श्रोता: इधर अनंतानुबंधी का उदय हो गया लेकिन मिथ्यात्व का उदय नहीं है उस बीचवाले काल में तो ?* वह सासादन का काल है। *श्रोता: लेकिन बाहर श्रद्धा अव्यक्त हुयी न ?* वह अतत्त्वश्रद्धान अव्यक्त है। अभी श्रद्धा को पूरा घाता है ऐसा नहीं कहेंगे लेकिन उसका अव्यक्तरूप से अतत्त्वश्रद्धान चल रहा है। सम्यक्त्व छूट गया है उसका अर्थ क्या है ? उसका तत्त्वश्रद्धान तो छूट गया है, फिर भी जो व्यक्तरूप से मिथ्यात्व है वह अभी शुरू नहीं हुआ है। *श्रोता: चारित्र गुण और श्रद्धा गुण तो दोनों भिन्न-भिन्न हैं ?* बिलकुल भिन्न है फिर भी अनंतानुबंधी ऐसा डबल एजंट है - उसका कार्य ही ऐसा है, अपवाद नहीं है। उसकी ऐसी ही सहज प्रकृति है।

उपशम होने के पश्चात् उपशम सम्यक्त्वी हो जाये तब भजनीय है। भजनीय का अर्थ समझते हैं ? भजनीय है यानी ऑप्शनल है। सासादन में जा भी सकता है। यह जरूरी नहीं कि जो जीव उपशम सम्यक्त्व प्राप्त करता है वह सासादन में जायेगा ही - यह कोई जरूरी नहीं है। उसके लिये तो बहुत अलग-अलग रास्ते हैं। कोई जीव उपशम सम्यक्त्व का काल पूरा होने तक सम्यक्त्वी ही रहता है और कोई जीव भ्रष्ट होकर सासादन में आता है ये दोनों ही पॉसिबिलिटिज हैं। **कोई जीव सासादन को प्राप्त नहीं होता और कोई जीव सासादन को प्राप्त होता है।** इसको कहेंगे भजनीय। भजनीय का अर्थ क्या है ? हो सकता है। **पुनश्च क्षीणे ऊपर लिखा न, खीणमिह अर्थात् उपशम सम्यक्त्व का काल समाप्त होने के पश्चात् सासादन नहीं होता।** क्या कहा ? उपशम सम्यक्त्व का काल पूर्ण हो गया तो डायरेक्ट मिथ्यात्व में ही जा सकता है, बीच में सासादन की बात ही नहीं। एक साथ मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी का उदय होगा। सासादन में क्या हुआ था ? अकेले अनंतानुबंधी का उदय हुआ था और मिथ्यात्व का उदय अभी नहीं हुआ था इसलिये सासादन हुआ।

अब उपशम का काल पूर्ण हुआ। अभी क्या पॉसिबिलिटिज हैं ? यहां पर तीन प्रकृतियां हैं। देखो क्या-क्या पॉसिबिलिटिज हैं ? यहां तक आया, उपशम का काल पूर्ण हुआ। अभी उसमें अंतर पूरने का वगैरह कार्य होता है उसकी बात छोड़ दो। हम

डायरेक्ट आगे की बात करते हैं। अभी तीन पॉसिबिलिटीज् क्या हैं ? इन तीन प्रकृतियों में से किसी एक प्रकृति का उदय हो जाये। जिसका उदय है वह लाइन नीचे से लंबी बतायी है। यह मिथ्यात्व प्रकृति है, यह सम्यग्मिथ्यात्व और यह सम्यक् प्रकृति। मिथ्यात्व का उदय हो जाये तो सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक् प्रकृति ऊपर रहती हैं और मिथ्यात्व का निषेक उदयरूप होता है तो यह जीव मिथ्यात्व में आता है। यदि सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति का उदय हो जाये तो अन्य दो प्रकृतियां ऊपर ही रहती हैं, सम्यग्मिथ्यात्वरूप होकर उदय में आती हैं, तो यह तीसरा गुणस्थान होता है। परंतु यह कब होगा ? उपशम सम्यक्त्व का काल पूर्ण होते ही बाद में होगा। तीसरी बात क्या हो जायेगी ? उपशम सम्यक्त्व का काल पूर्ण हुआ और जीव सम्यग्दृष्टि ही रहा - चौथे में गया वह चौथे में, पांचवेंवाला पांचवें में, सातवें में गया वह सातवें-छठे में रहा। यहां सम्यक् प्रकृति का उदय हो रहा है और यहां सम्यग्मिथ्यात्व और मिथ्यात्व प्रकृतियां उदय के ऊपर हैं और वे सम्यक् प्रकृतिरूप होकर उदय में आती रहती हैं। तो उसका सम्यक्त्व बना रहेगा वह वेदक सम्यक्त्व कहलायेगा।



हमने यहां अविरत सम्यक्त्व लिखा यह चौथे की अपेक्षा लिख दिया। उपशम सम्यक्त्व होने के पश्चात्, उसके ये तीन पॉसिबिलिटीज् हैं, तीन रास्ते हैं। इन तीन में से जिसका उदय हो जाये उसकी बात है। यदि मिथ्यात्व का उदय होता है तो साथ-साथ अनंतानुबंधी का भी होता है। सम्यग्मिथ्यात्व का उदय हो जाये तो क्या होगा बहन ?

सम्यग्मिथ्यात्व का उदय हो जाये तो मिश्र गुणस्थान होगा। वहां अनंतानुबंधी का उदय होगा कि नहीं होगा ? श्रोता: नहीं होगा। दूसरे गुणस्थान तक ही अनंतानुबंधी है, तीसरे में उसका उदय नहीं है; ना उदय है ना बंध है। तो यहां सम्यग्मिथ्यात्व का उदय होगा, अनंतानुबंधी का नहीं, यह सम्यग्मिथ्यात्व यानी मिश्र गुणस्थान हुआ। सम्यक् प्रकृति का उदय है, चौथा गुणस्थान है वहां भी अनंतानुबंधी का कोई कार्य नहीं है। वह भी ऐसा ही अन्यरूप होकर उदय में आ रहा है, अपनेरूप से उसका उदय नहीं हो रहा है। ये तीन पॉसिबिलिटिज हैं। अब यहां पढ़ेंगे हम।

हमने क्या देखा था ? दर्शनमोहनीय का उपशामक जो है उसके मरण नहीं होता। उपशामक अवस्था में सासादन को भी प्राप्त नहीं होता। बाद में सासादन को प्राप्त हो सकता है, परंतु प्रथमोपशम सम्यक्त्व के पूरे काल में मरण होता ही नहीं। सासादन में यदि जाता है तो मरण हो सकता है। परंतु यदि वह औपशमिक सम्यग्दृष्टि ही रहा तो उस अंतर्मुहूर्त में उसका मरण नहीं होता। मिश्र में भी मरण नहीं होता। मिश्र गुणस्थान की भी विशेषता है कि उसमें मरण नहीं है। श्रोता: सासादन काल में मरण नहीं है ? सासादन में मरण हो सकता है। श्रोता: आयु बंध किया हो तो ? उसको आयु बंध नहीं कहते। आयु पूरी हुयी है तो। आयु का बंध होना अलग बात है और यदि उसकी आयु वहां समाप्त होती है तो मरण होगा। आप कहती हैं उपशम के काल में यदि आयु पूरी हो गयी तो क्या होगा ? यदि बीच में आयु समाप्त होनेवाली है तो वह करणलब्धि मांडेगा नहीं। ऐसे ही सहज निमित्त- नैमित्तिक संबंध होते हैं। हो सकता है कि सासादन में मरण आये। आयु के इतने अंत में जाकर औपशमिक सम्यक्त्व भी प्राप्त किया, गिरा भी और सासादन में आकर मरा भी। ऐसा भी हो सकता है। यह पॉसिबिलिटि हो सकती है। देखो, हम ९९ गाथा की नीचे से दूसरी लाइन पढ़ रहे थे- **क्षीणे अर्थात् उपशम सम्यक्त्व का काल समाप्त होने के पश्चात् सासादन नहीं होता।** इसका अर्थ समझ में आया न ? **वहां नियम से दर्शनमोह की तीन प्रकृतियों में से एक का उदय होता है।** किसका उदय होने पर क्या होता है ? अभी हमने देखा। अब यहां पढ़ेंगे १०० नंबर की गाथा पढ़ेंगे।

उवसमसम्मत्तद्धा छावलिमेत्ता दु समयमेत्तो ति।

अवसिद्धे आसाणो अणअण्णदरुदयदो होदि॥१००॥

उपशम सम्यक्त्व के काल में से यह सासादन का वर्णन चल रहा है। **उत्कृष्ट छह आवली, जघन्य एक समय अवशेष रहने पर** यानी एक समय से लेकर छह आवली तक कुछ भी काल हो - इतना यदि अवशेष रह जाये और **अनंतानुबंधी क्रोधादि में से** क्रोधादि यानी क्रोध, मान, माया, लोभ में से **किसी एक का उदय होने से**। क्योंकि अँट अ टाइम किसी एक का ही उदय होता है। सम्यक्त्व की विराधना होने पर अभी मिथ्यात्व को प्राप्त नहीं हुआ है, तब बीच में सासादन होता है। मिथ्यात्व को इसलिये प्राप्त नहीं हुआ कि अभी तो मिथ्यात्व प्रकृति उपशमित है, अभी उसका उदय नहीं हो सकता क्योंकि उसके लिये अभी एक समय से लेकर छह आवली तक का काल बाकी है।

श्रोता: सासादन में उपशम काल पूरा करेगा ? सासादन में उतना काल बितायेगा और फिर मिथ्यात्व का उदय होने पर मिथ्यात्व गुणस्थान में नियम से जायेगा ही। यह सासादन का स्वरूप है। *श्रोता: नहीं, इधर लिखा है मिथ्यात्व को प्राप्त नहीं है।* जब तक मिथ्यात्व को प्राप्त नहीं है तब तक सासादन में है। *श्रोता: मिथ्यात्व को प्राप्त नहीं हुआ तब अतत्त्वश्रद्धान कैसे हुआ ?* हां, अतत्त्वश्रद्धान इसलिये हुआ क्योंकि उसका सम्यक्त्व छूट गया है। अनंतानुबंधी चारित्रमोहनीय की प्रकृति होते हुये भी उसका डबल काम है। क्योंकि उसकी जाति कैसी है ? वह सम्यक्त्व नहीं होने देती। वह चारित्रमोहनीय प्रकृति है तो सम्यक्त्व क्यों नहीं होने देती ? हमने पहले उसका कार्य देखा था। उसके उदय के साथ उसका कार्य चलता है। आगे गाथा नंबर १०१ -

सायारे पट्टवगो णिट्टवगो मज्झिमो य भजणिज्जो।

जोगे अण्णदरम्हि दु जहण्णए तेउलेस्साए॥१०१॥

साकार जो ज्ञानोपयोग उसके होते हुये ही जीव के प्रथमोपशम सम्यक्त्व का प्रारंभ होता है। यह तो हमने पहले ही कंडिशन्स में देखा था। साकार ज्ञानोपयोग में उपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है, प्रारंभ होता है। **तथा उसका निष्ठापक निष्ठापक यानी पूर्ण करनेवाला; अर्थात् संपूर्ण करनेवाला और मध्य अवस्थावर्ती जीव भजनीय है।** भजनीय यानी यह ऑप्शनल है। वह साकार या अनाकार **उपयोग युक्त होता है।** यानी क्या ? ज्ञानोपयोग रहता है, बीच में दर्शनोपयोग होता है, फिर ज्ञानोपयोग होता है - यह पलट सकता है। अभी कोई ऐसा नियम नहीं है, कंडिशन

नहीं है कि उसको थ्रूआउट ज्ञानोपयोग में ही रहना है।

देखो, भावार्थ- **दर्शनोपयोगी होकर पश्चात् ज्ञानोपयोग से युक्त जीव जो तीन योगों में से किसी योग में वर्तमान है, प्रथमोपशम सम्यक्त्व का प्रारंभक होता है।** यानी वह ज्ञानोपयोग में हुआ न ? उस ज्ञानोपयोग के पहले दर्शनोपयोग हो चुका था, फिर ज्ञानोपयोग हुआ और उस ज्ञानोपयोग में प्रथमोपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति हो गयी। मनोयोग, वचनयोग और काययोग में से किसी योग में रहते हुये सम्यक्त्व की प्राप्ति होगी। **तिर्यच और मनुष्य मंद विशुद्धता युक्त हो तो भी हमने देखा था न कि यहां विशुद्धि के मंद से तीव्र तक के बहुत सारे भेद पाये जाते हैं। यदि मंद में मंद विशुद्धि होगी तो भी पीत लेश्या के जघन्य अंश में ही विद्यमान जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्व का प्रारंभक होता है।** जो प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त करने जा रहा है वह शुभ लेश्या में करता है। कम से कम पीत लेश्या का जघन्य अंश तो रहेगा ही रहेगा, अशुभ लेश्या में नहीं होता। यह बात मनुष्यों और तिर्यचों के लिये बतायी है। **यद्यपि नरक में नियम से अशुभ लेश्या है तथापि वहां जो लेश्या पायी जाती है उस लेश्या का मंद उदय होने पर** यानी वहां लेश्या के बहुत सारे अंश हैं - असंख्यात लोकप्रमाण भेद होते रहते हैं तो उसमें से वह मंद होगा। कृष्ण लेश्या में भी सम्यक्त्व प्राप्त करेगा, परंतु उसके मंद-मंद-मंद कषाय होंगे। उस लेश्या के होते हुये भी उसकी अपेक्षा मंद लेना। **प्रथमोपशम सम्यक्त्व का प्रारंभक होता है।**

देव के नियम से शुभ लेश्या है, क्योंकि हमने देखा था, भवनत्रिकों में और सौधर्म-ईशान में पीत लेश्या है। जब सौधर्म-ईशान कहते हैं तो वे स्वर्गों के नाम हैं। कल किसीने पूछा सौधर्म-ईशान तक के जीव एकेन्द्रिय में जाते हैं ? जाते हैं कहने पर यह भी पूछा कि सौधर्म इंद्र भी एकेन्द्रिय में जाता है क्या ? सौधर्म नाम स्वर्ग का है, ईशान नाम स्वर्ग का है और उन स्वर्गों के कितने ? ३२ और २८ लाख तो विमान हैं, उनमें तो एक-एक विमान में असंख्यात-असंख्यात देव हैं। इतने असंख्यात देव हैं वहां, सौधर्म इंद्र तो नियम से अगले भव में मोक्ष जानेवाले हैं, एकभवावतारी हैं। उनकी यहां बात नहीं है। वहां के जो अन्य देव हैं, वे हो सकता है एकेन्द्रिय संबंधी बंध करें और मरकर एकेन्द्रिय में जाये। परंतु ऊपर के देव एकेन्द्रिय का बंध ही नहीं करते। उनके पद्म लेश्या होती है और वहां एकेन्द्रिय संबंधी बंध नहीं पाया जाता। उसकी बात मैंने

कल कही थी। ऐसे कुछ प्रश्न आते हैं न, बीच में ऐसे पूछते हैं तो हमें और ज्यादा उसको स्पष्ट करना पड़ता है।

सौधर्म-ईशान ये स्वर्गों के भी नाम हैं और उन इन्द्रों को भी हम सौधर्मइंद्र और ईशानइंद्र कहते हैं। यहां क्या कहा ? **देव के नियम से शुभ लेश्या है, उसमें वर्तमान जीव उसका प्रारंभक होता है।** भवनत्रिक और सौधर्म-ईशान तक के देव पीत लेश्यावाले हैं, सनत्कुमार से लेकर सहस्रार तक पद्म लेश्या होती है और उसके ऊपर आणत-प्राणत आदि में शुक्ल लेश्या है। कहां तक है ? सर्वार्थसिद्धि तक। परंतु जिन्हें सम्यक्त्व प्राप्त नहीं हुआ है और अभी कर नहीं रहे हैं, करने जा रहे हैं। वे कौनसे, कहां तक के देव होंगे ? नौवें ग्रैवेयक तक के। तो अपनी-अपनी लेश्या पायी जाती हैं। वे सभी शुभ ही लेश्यायें हैं- पीत हो, पद्म हो या शुक्ल हो ये शुभ लेश्यायें हैं।

श्रोता: प्रारंभक यानी क्या ? प्रारंभक यानी शुरू करनेवाला। अभी-अभी जो जीव सम्यक्त्व में आया है उसको प्रारंभक कहेंगे। वह कौनसी लेश्या में आयेगा ? हमने पहले ही देखा था कि साता के योग्य ऐसे जो कुछ वहां पर परिणाम होते हैं। यह मनुष्यों और तिर्यचों के लिये शुभ लेश्या की कंडिशन है, नारकी जीवों के लिये अपनी-अपनी अशुभ लेश्या में ही यह कार्य होगा। यह बात हमने पहले भी देखी थी। *श्रोता: प्रायोग्यलब्धि के बीच में लेश्या बदल जायेगी ?* हां, अधिक शुभ हो सकती है। पीत से पद्म या पद्म से शुक्ल। अभी आगे १०२ नंबर की गाथा-

अंतोमुहुत्तमद्धं सव्वोवसमेण होदि उवसंतो।

तेण परं उदओ खलु तिण्णेकदरस्स कम्मस्स ॥१०२॥

अंतर्मुहूर्त काल तक सर्व दर्शनमोह का उपशम करके उपशम सम्यग्दृष्टि होता है। हमने देखा द्वितीय स्थिति और पहली स्थिति बनी थी, बीच में अंतर किया था। अंतर के ऊपर जितने परमाणु थे उन सबको यहां उपशमित किया जाता है और फिर जीव जब प्रथम स्थिति पूर्ण करके अंतर में आ गया तब उसको औपशमिक सम्यक्त्व की प्राप्ति हुयी थी। तो कहते हैं **उसके पश्चात्** क्या होगा ? अंतर्मुहूर्त तक औपशमिक सम्यक्त्व टिका। उसके बाद **दर्शनमोहनीय की तीन प्रकृतियों में से किसी एक का उदय नियम से होता है।** नियम से उदय होता है। हमने सासादन की बात देख ली,

वह उपशम काल पूरा होने के पहले-पहले हो सकता है। अभी उपशम काल तो पूरा हुआ, अंतर्मुहूर्त तक उपशम सम्यग्दृष्टि रहा। अब क्या होगा ? तीन बातें हो सकती हैं। तीन प्रकृतियां हैं उनमें से किसी एक का उदय आ सकता है। इसको पढ़ेंगे अभी हम।

उवसमसम्मत्तुवरि दंसणमोहं तुरंत पूरेदि।

उदयल्लिस्सुदयादो सेसाणं उदयबाहिरदो॥१०३॥

उपशम सम्यक्त्व के उपरांत, उपरांत यानी समाप्त होने पर, पश्चात्, **उसके अंत समय के अनंतर दर्शनमोहनीय की अंतरायाम के ऊपर की जो द्वितीय स्थिति,** देखो जितना अंतर किया था उतना उपशम सम्यक्त्व का काल नहीं है। अंतर बहुत बड़ा किया था और उसके संख्यातवें भाग प्रमाण काल में ही उपशम सम्यक्त्व का काल समाप्त हुआ। अब कहते हैं यहां तो इतना बड़ा अंतर है। तो क्या प्रकृतियां जम्प करके नीचे आयेंगी ? क्या होगा ? ख्याल में आया न क्या कहना चाहते हैं ? अभी तो उपशम सम्यक्त्व का काल पूरा हुआ है और बीच में निषेकों के अभावरूप अंतर बाकी है - वहां कोई निषेक हैं ही नहीं। अभी गॅप बहुत है। जितना उपशम सम्यक्त्व का काल है उससे संख्यातगुणा ऊपर अभी गॅप बाकी है। तो उसका क्या होगा ? अभी हमने गाथा में पढ़ लिया क्या होगा। अभी हम टीका में पढ़ेंगे।

उपशम सम्यक्त्व के उपरांत उसके अंत समय के अनंतर दर्शनमोहनीय की अंतरायाम के ऊपर की जो द्वितीय स्थिति, उसके निषेकों के द्रव्य को अपकर्षण करके अंतर को पूरता है। यानी वह गॅप भर दी जाती है। अब वह गॅप किस पद्धति से भरी जायेगी उसकी बात बता रहे हैं। इसको अभी स्लेट पर समझाना पड़ेगा। हां, समझाएंगे आपको, पहले पढ़ेंगे फिर उसको हम समझेंगे भी। क्योंकि क्या है ? यह गॅप तो बड़ी थी न। अब उसमें से उपशम का काल तो बहुत अल्प हो चुका है। अभी उसको किसरूप से भर दिया जाता है उसको हम देखेंगे। *श्रोता: हर एक बार ऐसा ही होता है। गॅप बड़ी ही होती है ?* हां, गॅप बड़ी ही होती है, पहले अंतर बहुत बड़ा किया था न। अंतर जब किया था तो बहुत बड़ा किया था। देखो यहां सम्यक्त्व की प्राप्ति हुयी थी। *श्रोता: यह अंतर छोटा भी कर सकते हैं क्या ?* अंतर जितना होना है उतना ही होता है। हां, आप कहेंगे बाद में फिर दुबारा क्यों खड्डा भरना ? पहले से कम करते न !

हमने देखा था कि ऊपर द्वितीय स्थिति में सारे निषेक पड़े थे और इतना बड़ा अंतर था। अंतर में आने के बाद मान लेते हैं यहां तक ही उसका उपशम सम्यक्त्व का काल पूरा हुआ। यहां तो कोई निषेक थे ही नहीं न। बस यहां से यहां तक आ गया। पहले यहां नीचे था, अब यहां थोड़ा ऊपर तक आ गया। यह सम्यक्त्व का अंतिम समय है। अभी यहां इसके ऊपर कुछ नहीं है, गॅप ही गॅप है। अभी तक उसका सम्यक्त्व चल रहा था। अब इसके बाद क्या होगा ? तीन में से किसी एक का उदय आयेगा। हमने यहां तीन प्रकृतियां देखी थीं न ! इसको चार्ट के द्वारा बतायेंगे तो आपको समझने में आसान हो जायेगा। यहां पर यह मिथ्यात्व प्रकृति है, यह दूसरी सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति है और यह तीसरी सम्यक् प्रकृति है। तीनों ही द्वितीय स्थिति में पड़ी हैं। सब ईकल लेवेल पर हैं। अभी क्या होगा ? अभी यहां तक ही सम्यक्त्व का काल है, उसके नेक्स्ट समय में किसी एक का उदय होनेवाला है। अब जिसका उदय होगा उसके निषेक उदय के समय से लेकर तैयार होंगे। अभी वह गुणश्रेणीरूप से नहीं बताना है।

यहां नीचे उसके उदयावली के निषेक ऐसे घटते हुये बनेंगे और बाकी फिर ऊपर उसकी रचना यथायोग्य ऊपरितन स्थिति बनेगी। द्वितीय स्थिति में ही निषेक थे, अब नीचे अंतर में नये निषेक बनेंगे। मिथ्यात्व का उदय होनेवाला हो तो मिथ्यात्व के निषेक उदय के समय से लेकर उसकी उदयावली आदि सब बनेंगे। सम्यग्मिथ्यात्व उदय में नहीं आनेवाला तो उसकी उदयावली नहीं बनेगी, आवली के ऊपर से उसकी निषेक रचना होगी। सम्यक् प्रकृति का भी उदय नहीं होनेवाला तो उदयावली को छोड़कर ऊपर उसकी भी निषेक रचना होगी। यानी अभी ऐसे तीन प्रकृतियों के निषेक तैयार हुये। यह जो नीचे तक आया है वह मिथ्यात्व है, उसका उदय चालू हो जायेगा। ऐसे ही जिसका उदय होनेवाला है उसकी निषेक रचना उदय के समय से होगी और बाकी दो प्रकृतियों के जो निषेक हैं वे उदयावली के ऊपर से होंगे।

अभी हम पढ़ेंगे तो ख्याल में आयेगा कि यहां क्या बताना चाहते हैं। भावार्थ पढ़ेंगे ९३ पेज पर- **उपशम सम्यक्त्व के काल से संख्यातगुणा जो अंतरायाम,** इसका अर्थ क्या है ? जितनी गॅप की थी, उसके संख्यातवें भाग प्रमाण ही उपशम सम्यक्त्व का काल है यानी उससे संख्यातगुणा ऊपर का अंतरायाम है। **उसमें से उपशम सम्यक्त्व के काल प्रमाण निषेक तो अभावरूप रहे** क्योंकि तभी उपशम

सम्यक्त्व चला, वहां तो अभावरूप ही रहे। वहां पर कोई निषेक थे ही नहीं। **वे उपशम सम्यक्त्व के काल में व्यतीत हुये।** यानी जितने समय तक उपशम सम्यक्त्व रहा उतने निषेक तो अभावरूप ही रहे। **अवशेष अंतरायाम के निषेक रहे वे अभावरूप थे।** थे की बात है यानी वहां भी गॅप तैयार की थी। **उनमें द्वितीय स्थिति का द्रव्य निक्षेपण करके** यानी ऊपर के द्वितीय स्थिति में से द्रव्य अपकर्षित होकर अभी वह गॅप में आ जायेगा क्योंकि अभी उसका उदय होनेवाला है। **उसका पुनःश्च सद्भाव करता है।** अभी ये तीनों ही प्रकृति नीचे गॅप में आ जायेगी और वहां उन तीनों के ही निषेक बनेंगे।

उस अपकर्षण किये हुये द्रव्य को, जिस प्रकृति का उदय है तीनों में से किसी एक का उदय होनेवाला है। क्यों होनेवाला है ? जैसा जीव का परिणाम है वैसा होनेवाला है। तीनों में से जिस प्रकृति का उदय है **उसका उदयावली के प्रथम निषेक से लेकर** उदयावली का प्रथम निषेक है यानी जो अभी उदयरूप होनेवाला है। इसलिये वहां से लेकर **और उदयहीन प्रकृतियों का** अभी मिथ्यात्व का उदय होनेवाला है तो उदय के समय से लेकर यानी उदयावली के प्रथम समय से लेकर मिथ्यात्व की निषेक रचना होगी। जो हमने अभी बोर्ड पर देखा था। बाकी दो का ? उदयहीन प्रकृतियों का **उदयावली के बाह्य निषेक से लेकर** यानी आवली प्रमाण समय छोड़कर उसके ऊपर से उनकी निषेक रचना हो जायेगी। ख्याल में आती है बात ? **अंतरायाम में और द्वितीय स्थिति में निक्षेपण करता है।**

द्वितीय स्थिति में क्यों निक्षेपण करता है ? क्योंकि अपकर्षण ऐसे ही होता रहता है। सभी निषेकों में से निकालना और फिर उन्हीं में डिस्ट्रिब्यूट कर देना। तो जहां निषेक नहीं थे वहां तो पूरे निषेक बने और जहां ऊपर द्वितीय स्थिति में निषेक थे वहां वह चय घटते क्रम से ऊपर दे दिया। समझ में आयी बात ? देखो, अभी उपशम सम्यक्त्व का काल पूरा हुआ। पूरा हुआ तो भी उसके ऊपर अंतर बाकी है; कितना ? जितना उपशम सम्यक्त्व का काल था उससे भी संख्यातगुणा अंतर अभी ऊपर बाकी है। अभी नेक्स्ट समय में ही उदय आनेवाला है तो कैसे उदय में आयेगा ? ऊपर द्वितीय स्थिति में जो उपशमित हुये थे न, अभी उनका उपशम छूट गया। दूसरी स्थिति में से अपकर्षण होकर द्रव्य नीचे आया। नीचे आया तो गॅप भर दी गयी और ऊपर की

स्थिति में भी कुछ अपकर्षित द्रव्य दे दिया। जिस प्रमाण में जहां जितना देना है वह दे दिया और गॅप भर दी गयी।

जो उदयरूप प्रकृति होगी, उसकी उदय के समय से लेकर निषेक रचना होगी और जो उदयरूप प्रकृतियां नहीं हैं - अन्य दो प्रकृतियां जो उदयरूप नहीं होंगी उनकी उदयावली के ऊपर के निषेक से लेकर रचना होगी। *श्रोता: एक ही समय में ? एक ही समय में। दूसरे समय में और भी आता रहेगा, अपकर्षण चलता रहेगा। परंतु पहले ही समय में उदय शुरू होनेवाला है। यानी जिस समय अपकर्षण होगा, निषेक रचना भी होगी और उसी समय उसका उदय भी शुरू हो जायेगा। यह तो उपशम सम्यक्त्व के पश्चात् नेक्स्ट समय में यह बात हो रही है। अब गाथा १०४ पढ़ेंगे-*

उक्कट्ठिइगिभागं समपट्टीए विसेसहीणकमं।

सेसासंखाभागे विसेसहीणेण खिवदि सव्वत्त ॥१०४॥

वहां उदयवान सम्यक्त्वमोहनीय हो तो क्या हो जायेगा ? सम्यक् प्रकृति का उदय हो जाये तो क्या होगा ? सम्यक्त्व बना रहेगा। है न ? कौनसा सम्यक्त्व होगा ? *श्रोता: वेदक सम्यक्त्व।* वेदक सम्यक्त्व होगा। उसके लिये क्या पुरुषार्थ करेगा ? अरे बस सहजरूप उपशम हो गया है, अभी उपशम छूट गया। अभी सम्यक् प्रकृति नीचे उदयरूप होती है तो सम्यक्त्व बना रहता है, उपशम सम्यक्त्व में से क्षयोपशम सम्यक्त्व हो जाता है। **उसके द्रव्य को अपकर्षण भागहार का भाग देकर** अभी यह हमेशा आता है। क्यों ? कितना द्रव्य अपकर्षित होता है वह बताने के लिये। बहुतों का ऐसा प्रश्न है। आपका भी है, कि किसी अनादि मिथ्यादृष्टि जीव को पहली बार प्रथमोपशम सम्यक्त्व होता है; तो क्या गिरेगा नहीं ? अनेक ग्रंथों में ऐसा आता है कि वह तो गिरेगा। अनादि मिथ्यादृष्टि पहली बार प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त करता है तो गिरता है। हो सकता है कि अंतर्मुहूर्त में फिर दुबारा वेदक सम्यक्त्व प्राप्त करे। जयधवला, लाटी संहिता आदि अनेक ग्रंथों में कथन आता है कि अनादि का मिथ्यादृष्टि है वह प्रथमोपशम सम्यक्त्व के बाद गिरता है। फिर दुबारा चढ़ भी जाता है।

परंतु जब प्रथमोपशम सम्यक्त्व इतना ही हम कहते हैं तब उसके बाद ये सभी पॉसिबिलिटिज हैं। प्रथमोपशम इतना ही कहा। वह पहली बार हुआ, दूसरी बार,

उसकी बात नहीं है। ख्याल में आती है न बात ? अभी वह गिरता ही है इसके बारे में भी दो मत हैं। उस पर भी चर्चा चलती रहती है। परंतु ऐसा ग्रंथों के आधार से लिखा हुआ मिलता है कि उसके अनादि के जो इतने मिथ्यात्वरूप संस्कार हैं कि वह एक बार प्राप्त करके गिरता है और फिर दुबारा प्राप्त कर सकता है। नहीं भी गिरता है। दोनों मत हैं। परंतु हर बार प्रथमोपशम सम्यक्त्ववाला गिरेगा ही यह बात नहीं है। प्रथमोपशम सम्यक्त्व में से क्षयोपशम सम्यक्त्व हो जायेगा।

यहां क्या कहते हैं ? **उदयवान सम्यक्त्वमोहनीय हो तो उसके द्रव्य को अपकर्षण भागहार का भाग देकर बहुभाग तो जैसे थे वैसे रहे।** क्योंकि निषेकरूप से जैसे थे वैसे ही रहे। **एकभाग को असंख्यातलोक का भाग देकर एकभाग तो उदयावली में देना।** उसका जो प्रमाण है, उतने परमाणु उदयावली में देना। अभी हम भागहार को गौण करेंगे। अभी क्या होगा ? यह द्रव्य कहां से आया ? द्वितीय स्थिति में से नीचे आया, अपकर्षण करके आया। अपकर्षण करके आया, उसमें से एकभाग उदयावली में दिया। **‘उदयावलिस्स दव्वं’ इत्यादि सूत्र द्वारा जैसे पहले विधान कहा है वैसे उदयावली के निषेकों में चय घटते क्रम से निक्षेपण करना।** यह थोड़े-थोड़े हीनरूप से उदयावली में देना। **अपकर्षण किये हुये द्रव्य में से अवशेष बहुभाग रहा, उसका नाम अपकृष्टावशिष्ट द्रव्य है।** यानी अपकर्षण किये हुये द्रव्य में से बचा हुआ द्रव्य। **उसमें से अंतरायाम के निषेकों का अभाव था, उनका सद्भाव करने के लिये वहां कितना ही द्रव्य देना। वहां कितना देना ? उसको जानने के लिये विधान कहते हैं।**

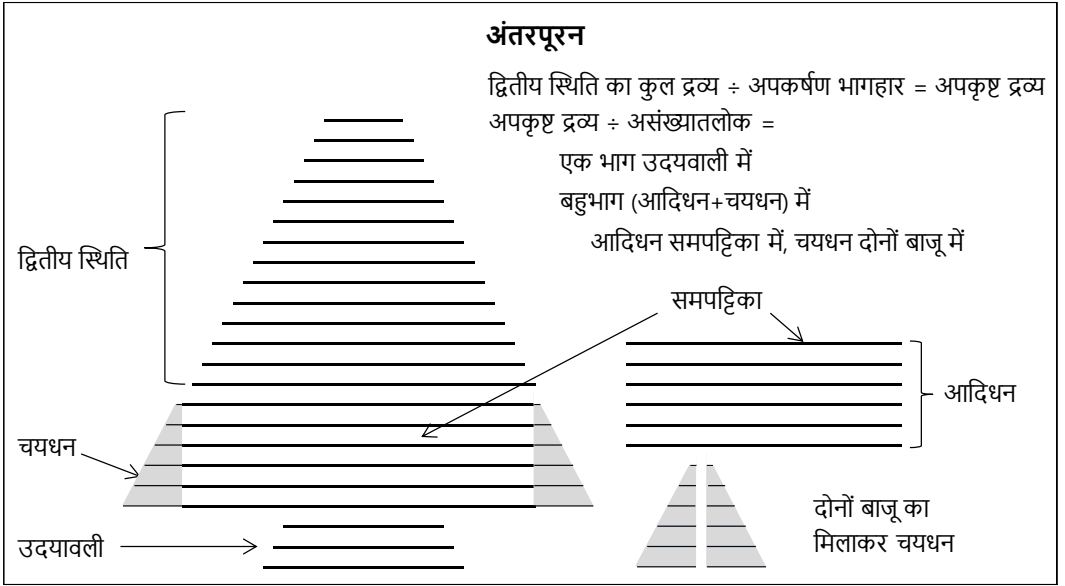
मैं अभी आपको अपनी भाषा में समझाती हूं, अभी हम देखते हैं यहां पर। हमेशा जो निषेक रचना होती है जिसको हम गोपुच्छा कहते हैं, हीन क्रमरूप से होती रहती है। हमने पहले देखा था न, इस निषेक रचना को गोपुच्छा कहते हैं। अभी तीन प्रकृतियां हैं, तीनों का ही अपना-अपना द्रव्य इसरूप से है। अभी हम केवल सम्यक् प्रकृति को यहां दिखा रहे हैं। यह सम्यक् प्रकृति है और यहां तक उदयावली है, नीचे का उदय का समय है। उदयावली में अभी उसकी निषेक रचना होगी। उदयावली में किसरूप से दिया है ? चयहीन क्रम से दिया है। यहां उदयावली यानी आवली प्रमाण निषेक तक हीन क्रमरूप से दिया।

अब ऊपर तो रेग्युलर निषेक रचना होनेवाली है। यह जो गोपुच्छा है वह ऐसी कंटिन्युएशन में आ जाये ऐसी वहां रचना होनेवाली है। देखो यह नीचे जो दिखायी है यह उदयावली है यहां चय घटते क्रम से यहां निषेक बने, उदयावली के ऊपर जो निषेक बनेंगे, वे इन कंटिन्युएशन गोपुच्छारूप से होनेवाले हैं। अभी कौनसे निषेकों में कहां कितना द्रव्य दिया ? यहां पहले क्या था ? गॉप थी और यह गॉप पूरी करके यहां निषेक बननेवाले हैं। यहां निषेक रचना नहीं थी। इतनी बात समझ में आती है ? यहां द्वितीय स्थिति में नीचे से ऊपर तक चयहीन क्रम से हैं और नीचे जो निषेक बनेंगे तो इसकी अपेक्षा ऊपर से नीचे तक चय बढ़ते हुये ऐसे बनेंगे। इसतरह से बनेंगे। तो उसको समझाने के लिये दो पद्धति से समझेंगे।

यह जो द्वितीय स्थिति का नीचे का निषेक है उसी प्रमाण में नीचे अनेक निषेक बनेंगे इतना द्रव्य दिया जायेगा, इतने निषेक बनेंगे तो उसको कहेंगे समपट्टिका बनायी। गोपुच्छाकार बनाने के लिये बाजू में ऑडिशनल द्रव्य दिया जायेगा ऊपर से नीचे तक बढ़ते हुये चय बनाने के लिये इतना दिया जायेगा उसको कहेंगे चयधन। तो ये दोनों मिलकर फायनल रिझल्ट कैसा दिखेगा ? गोपुच्छा जैसा। इतनी बात ख्याल में आती है ? यहां पूरा द्रव्य कितना दिया जायेगा ? उसका हिसाब करने के लिये बताते हैं कि मान लेते हैं द्वितीय स्थिति के नीचे १०० निषेक नये बने। द्वितीय स्थिति के नीचे के निषेक का जो प्रमाण है उसको १०० गुणा करेंगे तो उतना द्रव्य समपट्टिका में दिया उसको आदिधन कहेंगे और बाजू में एक-एक चय बढ़ते हुये दिया, इन चयों की टोटल करेंगे तो जो प्रमाण होगा उतना द्रव्य यानी चयधन यहां दिया। यानी यहां जो फायनल रिझल्ट दिख रहा है उतना द्रव्य दिया। एकभाग तो उदयावली में दिया और बाकी भाग अंतर के निषेकों को इसको तैयार करने के लिये जितना लगा उतना दिया। शेष भाग इसके बाजू में से जितना गोपुच्छाकार बनाने के लिये चयधन के प्रमाण में दिया। फायनल रिझल्ट हमेशा ऐसा त्रिकोणाकार आयेगा गोपुच्छारूप। अभी पढ़ेंगे तो अर्थ ख्याल में आयेगा। कितना दिया उसका गणित, कहां देना ? इसको नहीं देखना है।

समपट्टिका का अर्थ क्या है हमने देख लिया। अभी इसको पढ़ेंगे तो और क्लियर होगा। देखो, कहते हैं, **उसको जानने के लिये विधान कहते हैं।** अंतरायाम के निषेकों का अभाव किया था, प्रथमोपशम सम्यक्त्व का काल पूर्ण होने पर यहां

दुबारा निषेक बनेंगे। उसके लिये कितना द्रव्य दिया ? किस रूप में दिया ? अभी जो मैंने समझाया वही हम यहां पढ़ने जा रहे हैं। अब कहते हैं, अभी सम्यक्त्वमोहनीय का द्रव्य कहां पर अक्लेबल है ? द्वितीय स्थिति में है। कितना है ? अंतःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण निषेक हैं। वे किसरूप से हैं ? नीचे से ऊपर तक ऐसे चय घटते क्रम से हैं। वहां जो द्वितीय स्थिति के निषेक थे ऑलरेडि; नीचे का निषेक बड़ा, ऊपर का थोड़ा कम-थोड़ा कम-थोड़ा कम। जहां जाकर आधा होता है तो हम कहेंगे एक गुणहानि हुयी, आधे का आधा हुआ दूसरे गुणहानि हुयी, उसका आधा हुआ तीसरी गुणहानि हुयी। जितनी नंबर ऑफ़ गुणहानियां हैं उसको कहेंगे नानागुणहानियां हैं।



यहां क्या लिखा है ? **नानागुणहानियों में स्थित ऐसा जो सम्यक्त्वमोहनीय के द्वितीय स्थिति का द्रव्य**, नानागुणहानियों को भूल भी जाओ तो द्वितीय स्थिति में जो सम्यक् प्रकृति का द्रव्य है उसकी बात चल रही है। **उसको** हम हमेशा कौनसे भागहार से भाग देते हैं ? **अपकर्षण भागहार का भाग देकर** क्योंकि उतना द्रव्य सब निषेकों में से बाहर निकालना है। **एकभाग जुदा करके अवशेष बहुभाग मात्र जो द्रव्य रहा** उसको 'दिवङ्गुणहाणिभाजिदे पढ़मा' सूत्र द्वारा साधिक डेढ़ गुणहानि प्रमाण का भाग देनेपर उस द्वितीय स्थिति का प्रथम निषेक आता है। हमने सबमें

से थोड़ा-थोड़ा द्रव्य निकाल लिया। उसको निकालने के बाद द्वितीय स्थिति का जो प्रथम निषेक रहा उसके नीचे गॅप थी; इस प्रथम निषेक का प्रमाण कितना है ? जितना शेष द्रव्य रहा है उसको डेढ़ गुणहानि नाम की जो संख्या है, उससे भाग देते हैं तो हमेशा प्रथम निषेक का डायरेक्ट प्रमाण आता है। सभी निषेकों में जितना द्रव्य है उसको डेढ़ गुणहानि से भाग देंगे तो इस प्रथम निषेक में परमाणुओं का प्रमाण आता है। अभी इसका जितना कुछ प्रमाण हो; वह डेढ़ गुणहानि और सब भूल जाओ। इसमें जितना द्रव्य है उसकी कंपॅरिज़न में अब नीचे की बात बतायेंगे।

द्वितीय स्थिति का जो प्रथम निषेक है, इसमें जो परमाणुओं का प्रमाण है उसकी बात अभी बतायेंगे। **इसके समान अंतरायाम के सर्व निषेक चय रहित स्थापित करके** चार्ट में बाजू में दिखाया है वह चय है उसको हम निकाल देंगे, बाद में मिलायेंगे। चय रहित स्थापित करके यानी इसके नीचे इतने निषेक बने। अंतरायाम में जितने निषेक बने, मान लेते हैं न १०० बने। तो इस प्रथम निषेक का जितना प्रमाण है उसको १०० से गुणा करेंगे तो यह समपट्टिका का सारा द्रव्य मिला कि नहीं मिला ? बीच में जितना है। ख्याल में आती है बात ? यहां पहले निषेक में जितना द्रव्य है उतने ही प्रमाण में हमने समपट्टिका ऐसी बनायी। यहां १०० निषेक समान बनाये हैं इसलिये हमने उस प्रमाण को १०० गुणा किया। इतना द्रव्य यहां समपट्टिका में नीचे देना है। **चय रहित स्थापित करके जोड़ने पर आदिधन होता है।** आदिधन का अर्थ है आदि यानी प्रथम निषेक और उस प्रथम निषेक को सौगुणा किया तो उसकी जो टोटल है उसको आदिधन कहेंगे।

यह कैसे आया ? द्वितीय स्थिति के नीचे के प्रथम निषेक का जो प्रमाण है उसको अंतरायाम में जितने निषेक बने उससे गुणा करेंगे तो डायरेक्ट यह टोटल आयेगी इसको हम आदिधन कहेंगे और जो बाजू में है, निषेकों को गोपुच्छाकार करने के लिये दिया है जिसे हमने डार्क किया है न, उसकी हम टोटल करेंगे तो उसको चयधन कहेंगे। *श्रोता: इसको मल्टिप्लाय करना है और उसको चय करना है।* आदिधन निकालने के लिये मल्टिप्लाय करना क्योंकि १०० निषेक बने। इस एक निषेक के परमाणु की जितनी व्हॅल्यू थी उसको १०० गुणा किया तो यह बीचवाला इतना आदिधन मिला जिससे समपट्टिका बनेगी। पहले निषेक में एक चय, दूसरे में दो चय, तीसरे में

तीन चय, इसतरह १०० निषेकों में मिलाये न हमने ? तो चय कितने हो जायेंगे ? अभी १०० की बात छोड़ो हम १० मानेंगे तो आसान हो जायेगा। देखो, आपको गिनना है। यह पहला निषेक यहां, यह ऊपर की स्थिति का था। उसके नीचे का निषेक एक चय से बड़ा है तो एक चय। ये १० निषेक बने तो दसवें में १० चय हो जायेंगे न, तो चयों की टोटल कितनी हो जायेगी ? श्रोता: एक, दो ऐसे करके दस तक। बहुत अच्छा। वन प्लस टू, प्लस थ्री, प्लस फोर, प्लस फाईव्ह, प्लस सिक्स, प्लस सेवन, प्लस एट, प्लस नाइन, प्लस टेन। एक से दस तक चय हैं इन सबकी टोटल करो; कितनी होती है ?

हमने तो दस तक ही बोले, हम हजार भी बोल सकते हैं आपको; हमारे पास फॉर्म्युला है, आपको १५ सेकंड में उत्तर मिलेगा। इसको कहेंगे संकलनधन करना। दस का संकलनधन। इसका अर्थ है एक से दस तक की सभी संख्याओं को आपस में प्लस करना - मिलाना। उसका सूत्र क्या है ? दस गुणा, दस के आगे की फिगर ११; क्या कहा ? $(१० \times ११) \div (१ \times २) = ५५$ आ जायेगा। एक से हजार तक गिनना है ? हां गिनो, कौन करेगा ? $(१००० \times १००१) \div (१ \times २) = (५०० \times १००१) = ५००५००$ ख्याल में आती है न बात ? नहीं समझे ? फिर से। यह कैसे करना ?

संकलनधन

दस का संकलनधन:

$$(१० \times ११) \div २ = ५५$$

हजार का संकलनधन:

$$(१००० \times १००१) \div २ = ५००५००$$

किसी भी संख्या का संकलनधन करने का अर्थ एक से लेकर उस संख्या तक की सभी संख्याओं की टोटल करना। १००० का संकलनधन करना है; तो १००० को उसकी आगे की संख्या १००१ से गुणा करो (१०००×१००१) और डिक्वाइडेड बाय (१×२) । अब १००० को २ से भाग देंगे तो ५०० आ जायेंगे। इससे १००१ गुणा करो, पांच लाख और पांच सौ आयेंगे- एक से लेकर हजार तक की टोटल करो तो। राजकोटवाले कौन हैं यहां पर ? सुमनभाई, आपके यहां हम आये थे। पंचकल्याणक था शायद। तो

वहां आपने एक स्कीम निकाली थी। एक थैली में २५०० चिट्ठियां थी उनमें १ रुपये से लेकर २५०० रुपये तक रकम लिखी थी। वहां लोगों को कहा गया था कि आपको थैली में से चिट्ठी निकालना है, उसमें जो भी रकम लिखी है वह आप दान में देना। एक रुपया दे दो, दो रुपये दे दो ऐसे किसीको भी २५०० के नीचे ही रकम देनी पड़ेगी परंतु कितने रुपये इक्कट्टे किये ? $(२५०० \times २५०१) \div (१ \times २)$ । अभी कॉम्प्यूटर निकालो, मोबाइल निकालो, हिसाब करो।

श्रोता: चयधन दोनों ओर है, उसमें से कौनसा ? दोनों साइड का मिलाकर ही बताया है। यह गोपुच्छाकार बताने के लिये ऐसा हम बता रहे हैं परंतु ये दोनों बाजू का मिलकर ही चय की बात बता रहे हैं। नहीं, नहीं, नहीं, ऐसा नहीं। दोनों की मिलकर ही मैं यह संख्या बता रही हूं- यहां का प्रमाण आया ५५ चय। एक चय की जितनी व्हॅल्यू होगी उसको ५५ से मल्टिप्लाय करना, इतना यहां चयधन होगा। हमारी बात क्या हो रही थी ? आदिधन यानी यह सेंटर का समपट्टिका का द्रव्य और बाजू में जो मिलाया है वह है चयधन। एक चय प्लस दो चय, प्लस तीन चय, ऐसे हमने दस चय तक मान लिये। दस चय तक सभी चयों की टोटल की तो ५५ चय हो जायेंगे। यानी ५५ मल्टिप्लाइड बाय चय की व्हॅल्यू। वह क्या होगा ? चयधन यानी ऑडिशनल द्रव्य। हमने तो १०० निषेक माने थे उसका चयधन होगा $१०० \times १०१ = ५०५०$ इतने चय। यह सब मिलकर इतना द्रव्य यहां नीचे दिया। ख्याल में आयी बात इतनी ?

देखो, संकलनधन करने की यह पद्धति है। वन प्लस टू प्लस थ्री प्लस फोर ये क्या है ? हम क्या करते हैं उसका ? उसका संकलनधन करते हैं - ऑडिशन करके टोटल निकालते हैं उसको संकलनधन कहा। आदि यानी प्रथम निषेक का प्रमाण और आदिधन यानी आदि प्लस आदि प्लस आदि, दस बार आदि ली तो यह आदियों की टोटल वह आदिधन हुआ। चयों की टोटल वह चयधन हुआ। आदिधन प्लस चयधन इज ईकल टू सर्वधन यानी टोटल द्रव्य हो गया। कितना द्रव्य नीचे आया उसका यह प्रमाण है। अब रुकते हैं यहां पर।

बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

२१. अंतरपूरन

आचार्य श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती ने इस लब्धिसार ग्रंथ की रचना की है, उसीके आधार से पं. टोडरमलजी ने सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका लब्धिसार-क्षपणासार भाषाटीका ढूंढ़ारी भाषा में लिखी है और अभी हम उसका हिंदी अनुवाद देख रहे हैं। प्रथमोपशम सम्यक्त्व संबंधी अपना विवेचन चल रहा है।

हमने यह बात देखी कि पांच लब्धिपूर्वक प्रथमोपशम सम्यक्त्व होता है। उसके पहले ही समय से मिथ्यात्व का गुणसंक्रमण शुरू हो जाता है, मिथ्यात्व के कुछ परमाणु सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृतिरूप होते जाते हैं। पहले समय में कुछ परमाणु दो प्रकृतिरूप हो जाते हैं; कितने होते हैं ? जितने सम्यक् प्रकृति के होते हैं उससे असंख्यातगुणा सम्यग्मिथ्यात्व के होते हैं। दूसरे समय में इससे असंख्यातगुणा सम्यक् प्रकृति के और उससे भी असंख्यातगुणा सम्यग्मिथ्यात्व के - ऐसा ही असंख्यातगुणा का क्रम जिसको हमने सर्प की चालवत् बताया था, अंतिम समय तक चलता है। डायरेक्ट अंतिम समय का या किसी भी समय का प्रमाण निकालने के लिये भी उन्होंने एक फॉर्म्युला बताया था, उसको भी हमने कल देख लिया है।

यह गुणसंक्रमण का काल पूर्ण होता है उसके पश्चात् संक्रमण तो चालू रहता है, परंतु अभी परमाणुओं का प्रमाण बदल जाता है, थोड़ा हीन हो जाता है - घटता है। संक्रमित होनेवाले परमाणु घट जाते हैं, उस संक्रमण को यहां विध्यातसंक्रमण कहते हैं। ऐसा विध्यातसंक्रमण अभी उपशम सम्यक्त्व का जो काल बाकी है वहां पर भी चलेगा और इसके बाद जीव वेदक सम्यग्दृष्टि यानी क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि होगा तब वेदक सम्यक्त्व में भी विध्यातसंक्रमण लगातार चलता ही रहता है। कब तक? जब दर्शनमोहनीय की क्षपणा शुरू हो जायेगी यानी क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त करने का कार्य शुरू होगा, उस काल में फिर दुबारा मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व का गुणसंक्रमण होकर उनके नाश होने का प्रोसेस होगा। वह हम दूसरे अधिकार में देखेंगे, अभी तो अपना उपशम सम्यक्त्व का प्रकरण चल रहा है।

हमने देखा था कि जब अनिवृत्तिकरण का संख्यातवां काल बाकी रहता है, तब अंतर करने का कार्य पूर्ण होता है उसके पश्चात् जो प्रथम स्थिति शेष रहती है, उतने

काल में द्वितीय स्थिति के परमाणुओं को उपशमाता है। ऐसे करते-करते अनिवृत्तिकरण के सभी निषेक समाप्त होने पर जीव अंतर के पहले समय पर आता है, तभी उसको प्रथमोपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति हो जाती है। जितना बड़ा अंतर किया है, उतना बड़ा सम्यक्त्व का काल नहीं होता। उसके संख्यातवें भाग प्रमाण ही उपशम सम्यक्त्व का काल है। भले ही निषेकों में बहुत ज्यादा अंतर किया है, उन निषेकों का अभाव कर दिया है; फिर भी कुछ ही काल तक उपशम सम्यक्त्व चलेगा। फिर वे जो परमाणु उपशमित हैं, उनका उपशम छूट जायेगा। उसका अर्थ द्वितीय स्थिति से अपकर्षण चालू हो जायेगा। उपशम सम्यक्त्व के अनंतर समय में, नेक्स्ट समय में, इमीजिएट नेक्स्ट समय में क्या होगा ? ऊपर के जो परमाणु हैं उनका अपकर्षण होकर वे जो रिमेनिंग गॉप है उस अंतर में आयेंगे। उसको कहेंगे अंतर को पूर दिया जाता है - गॉप भर दी जाती है - अंतरपूरन का कार्य होता है।

गॉप किस पद्धति से भर दी जाती है ? दर्शनमोहनीय की तीन प्रकृतियां हैं। तीनों के परमाणु गॉप में नीचे आयेंगे, परंतु जिसका उदय होगा, उसके परमाणु उदय के समय से उदयावली में क्रमहीनरूप से और ऊपर जो गोपुच्छ थी न, उसके प्रपोर्शन में नीचे आ जायेंगे। यहां दुबारा निषेक रचना हो जायेगी। पहले अंतर कर दिया था, अब यहां दुबारा निषेक रचना हो जायेगी। किस पद्धति से यह निषेक रचना होती है उसको हम देखते हैं। हमने देखा था, मिथ्यात्व में से तीन प्रकृतियां तैयार होती हैं, ये तीनों ही द्वितीय स्थिति में पड़ी रहती हैं। तीनों ही प्रकृतियों की सत्ता अंतःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण रहती है। प्रथमोपशम सम्यक्त्व का काल पूर्ण होने पर ऊपर अंतर बाकी रहता है। गॉप में आते ही पहले यहां कुछ निषेक रचना नहीं थी। अंतर के ऊपर द्वितीय स्थिति का पहला निषेक था। उसके ऊपर द्वितीय स्थिति के सभी निषेक थे। अब द्वितीय स्थिति के सभी निषेकों में से अपकर्षण होकर परमाणु नीचे आयेंगे। यहां तो थोड़े दिखाये हैं, वैसे यथार्थ में अंतःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण होते हैं।

सभी निषेकों में से अपकर्षण होकर परमाणु नीचे आयेंगे और उदयावली में क्रमहीनरूप से दिये जायेंगे। यहां निषेक नहीं थे, नये निषेक तैयार होंगे। उदय के समय से निषेक तैयार होंगे, परंतु किसमें ? मात्र उदयरूप प्रकृति में। बाकी दो प्रकृतियों में क्या होगा ? उदयावली छोड़कर उसके ऊपर अंतर में नये निषेक बनेंगे।

जो नये निषेक बनेंगे उनमें कितना द्रव्य दिया जायेगा, उसका हम कल हिसाब देख रहे थे। द्वितीय स्थिति का जो प्रथम निषेक है, उतने प्रमाण में नीचे तक निषेक बनेंगे। यदि हम यहां दस नये निषेक मानेंगे तो उस प्रथम निषेक की जितनी व्हॅल्यू होगी उसको दस गुणा करेंगे, तो वहां दिये जानेवाले द्रव्य का प्रमाण आ जायेगा। क्योंकि हमने उसे समरूप से नीचे तक देखा, इसीको समपट्टिका कहा है। इस प्रथम निषेक की जितनी व्हॅल्यू है, व्हॅल्यू यानी उसमें जितने परमाणु हैं, उतने ही परमाणुओं के निषेक हमने नीचे तक देखे। उनकी गोपुच्छाकार रचना होने के लिये यह बाजू में ऐसी त्रिकोणाकार रचना होती रहती है, क्योंकि प्रति निषेक में एक-एक चयप्रमाण ज्यादा द्रव्य दिया जाता है। यह जो अधिक द्रव्य है उसको चय कहते हैं। दोनों ओर की मिलकर यह बात है। ऐसा नहीं है कि एक बाजू में दिया और फिर दूसरी बाजू में दिया और दोनों को मिलाना - ऐसा कुछ नहीं। यहां कितना ज्यादा दिया है, उसको कहेंगे चय। द्वितीय स्थिति के नीचे यहां गॅप में नये दस निषेक बनेंगे तो ऊपर से नीचे तक पहले निषेक में एक चय, दूसरे में दो चय, तीसरे में तीन चय इसतरह से दिये जायेंगे।

एक चय बढ़ा, उससे भी और एक बढ़ा, उससे भी और एक बढ़ा और उससे भी एक और बढ़ा। नीचे जितने निषेक तैयार हुये हैं, उतनी बार एक-एक चय से बढ़ते हुये द्रव्य को देते हैं। अभी हमने यहां देखा है - एक चय प्लस दो चय प्लस तीन चय प्लस चार चय, ऐसे दस चय तक - इनकी टोटल कितनी होगी ? कितने चय होंगे ? हां ! कैसे देखा ? १० को ११ से गुणा करना और उसको २ से भाग देना तो हमें डायरेक्ट उसका रिझल्ट मिलता है - ५५ चय हो गये। चय की जितनी व्हॅल्यू है, उसे हम ५५ से गुणा करेंगे तो इसको हम कहेंगे चयधन। जो हमने दोनों ओर से इस समपट्टिका में जोड़ दिया है, तो समपट्टिका का हिसाब कैसे लाना ?

द्वितीय स्थिति के प्रथम निषेक का जितना द्रव्य है, उसको नीचे के निषेकों के प्रमाण से, इसको गच्छ भी कहते हैं, जितने यहां निषेक बने हैं उसको गच्छ कहेंगे; इस गच्छ से गुणा करेंगे तो आदिधन मिलेगा। आदि यानी प्रथम निषेक, उसके बराबर जितने निषेक बनेंगे उससे हम गुणा करेंगे तो यह आदियों की टोटल - आदिधन हुआ और यहां जो चय मिलाये हैं, उन चयों की टोटल, उसको कहेंगे चयधन। यह बीचवाला जो स्केअर है वह है समपट्टिका, उसमें जितना द्रव्य दिया वह है आदिधन और बाजू में

जो मिलाया वह है चयधन। दोनों को मिलाकर सर्वधन यानी टोटल द्रव्य मिलेगा, जिसके द्वारा यह नयी निषेक रचना हुयी है। ऐसी निषेक रचना दर्शनमोहनीय की तीनों प्रकृतियों में हुयी है। मिथ्यात्व में भी हुयी है और अन्य दोनों में भी हुयी है। मिथ्यात्व प्रकृति में क्या हुआ ? मिथ्यात्व प्रकृति उदयरूप होनी थी, इसलिये उदय के समय से लेकर इसके आवली प्रमाण निषेक और बने। वह कैसे बने ? चय घटते क्रम से, क्रमहीनरूप से बने।

श्रोता: १० से ११ को गुणा करके दो का भाग दो तो ५५ आयेंगे तो एक से दस तक की टोटल करेंगे तब भी ५५ आयेंगे। वही तो। एक से दस तक जोड़ देने का हिसाब तो बहुत आसान है, यथार्थ में वहां असंख्यात निषेक हैं, हम उनका जोड़ कैसे देंगे ? उसके लिये हमारे पास यह फॉर्म्युला है, सूत्र है। दस तक तो गिन सकते हैं, हजार तक गिनेंगे ? नहीं गिन सकते और यहां कितने हैं ? अंतर्मुहूर्त प्रमाण हैं, असंख्यात निषेक हैं। उसके लिये फॉर्म्युला काम आता हैं। चय को $(\text{असंख्यात} \times (\text{असंख्यात} + १)) \div २$ से गुणा करेंगे तो चयधन मिलेगा। समपट्टिका में जितने असंख्यात निषेक हैं, उतनी बार प्रथम निषेक को गुणा करेंगे, तो हमें डायरेक्ट आदिधन मिल जायेगा। समझाने के लिये हमने छोटी-छोटी संख्या लेकर समझाया है, परंतु यथार्थ में उसका गणित करने के लिये ऐसे फॉर्म्युले ही काम आनेवाले हैं।

श्रोता: आदिधन यानी क्या ? आदि यानी प्रथम निषेक का जो प्रमाण है उसको आदि कहा। आदि यानी पहला; धन यानी टोटल। जितना पहले निषेक का प्रमाण है, उसी प्रमाण में उतने ही निषेक हमने नीचे तक देखे। अभी मैंने दस का हिसाब बताया है और यथार्थ में होते हैं असंख्यात। जो आदि का प्रमाण है, उसको उस असंख्यात से गुणा करेंगे, क्योंकि जितने निषेक गॅप में बने हैं, उससे हम गुणा करेंगे, तो हमें आदिधन मिलेगा यानी उतने के उतने प्रमाण में हमने एक पट्टी निकाली अलग से और फिर निषेक नीचे बढ़ते गये थे न, उसका प्रमाण निकालने के लिये उसमें चयधन मिलाया था। उसका हिसाब लगाने के लिये आसान हो, इसलिये इस पद्धति से समझाया है।

श्रोता: जितने समय हैं, उतने निषेक तैयार हो जायेंगे ? हां, जितने समय हैं उतने निषेक तैयार होंगे और एक-एक निषेक उसी प्रमाण में मानेंगे तो समपट्टिका

होगी। इस प्रथम निषेक का प्रमाण कैसे निकालना, बतायेंगे। उस विशिष्ट प्रकृति का सत्ता में जितना द्रव्य है, उसको डेढ़ गुणहानि से भाग देंगे तो प्रथम निषेक के द्रव्य का प्रमाण आता है और प्रथम निषेक के द्रव्य को दो गुणहानि से भाग देंगे तो चय का प्रमाण आता है। क्यों ? क्योंकि हमें दोनों का प्रमाण निकालना है। सत्ता के द्रव्य को डेढ़ गुणहानि से भाग देंगे तो प्रथम निषेक का प्रमाण निकलेगा और प्रथम निषेक को दो गुणहानि से भाग देंगे तो चय मिलेगा। फिर से, यहां सत्ता में जितना द्रव्य है उसको डेढ़ गुणहानि नामक संख्या से भाग देंगे तो प्रथम निषेक में परमाणुओं का प्रमाण आता है और जो परमाणुओं का प्रमाण आया उसको दो गुणहानि से भाग देंगे तो चय मिलेगा - जो एक चय की व्हॅल्यू है उसका प्रमाण मिलेगा। यह तो अधिक डिटेल अभ्यास करनेवालों के लिये काम आयेगा। बाकी हम इतना ही समझेंगे न, कैसे उसका हिसाब है ? एक समपट्टिका और उसकी गोपुच्छ तैयार होने के लिये जितना आवश्यक था उतना मिलाया इतना समझ लो।

श्रोता: सभी लोग डिटेल में अभ्यास करनेवाले हैं। सभी अभ्यास करनेवाले हैं ! आपके हाथ में पुस्तकें हैं, अगर आप करना चाहते हैं, तो आपकी ही जिम्मेदारी बनती है कि इसका डिटेल अभ्यास करें। देखो, अभी आप सीखकर जा रहे हैं, आपको दुबारा पढ़ना है। बहुत डिफिकल्टि हुयी तो इसकी सी.डी. भी बनी है। हमारे घर में रोज आद्योपांत स्वाध्याय चल रहा है। हम एक दिन में चार-पांच लाइन ही सीखते हैं। अपना स्वाध्याय बहुत विस्तार से चलता है। यहां तो हम मोटी-मोटी बातों को देख रहे हैं। अभ्यास करनेवालों को सभी साधन उपलब्ध हैं। हमारे बहुत सारे भाई आये हैं - यशवंतजी जैन हैं बेंगलोर के, चंद्रपुर के सिंगतकरजी हैं, होशंगाबादवाली सुमन और सुषमाजी हैं और भी हैं वे घर में अभी धवला वगैरह भी सुन रहे हैं। और भी बहुत से लोग हैं ! जिसको स्वाध्याय करना है, उनके लिये सभी साधन उपलब्ध हैं। हमारी विमलाबेन यहां नहीं है, मगर वह रोज चार-पांच घंटे मेरे धवला के प्रवचन सुनती हैं। यशपाल अण्णाजी अभी लब्धिसार के लेक्चर्स सुन रहे हैं। डायरेक्ट टेलिफोन पर बात नहीं हो सकती है भाई, उसमें बहुत तकलीफें होती हैं। टेलिकास्ट ? अरे कौन करेगा ? जो पढ़ना चाहता है उसे कोई मुश्किलें रोक नहीं सकती। पढ़ते-पढ़ते हमें भी मुश्किलें तो आयी थी। जैसे पत्थर पर सिर मारते हैं, वैसे हमें शुरू में लगता था। सिर मारते

रहने से उसका अर्थ समझ में आ जायेगा। क्यों नहीं आयेगा ? अरे, यहीं से - अपने से ही समझ में आनेवाली बात है।

अभी हम यहां गाथा १०३ की टीका पढ़ेंगे। **उपशम सम्यक्त्व के उपरांत** यानी अभी उपशम सम्यक्त्व का काल पूरा हुआ है। **उसके अंत समय के अनंतर**, नेक्स्ट समय में, **दर्शनमोहनीय की अंतरायाम के ऊपर जो द्वितीय स्थिति** यानी अंतर छोड़कर ऊपर जो द्वितीय स्थिति है, **उसके निषेकों के द्रव्य को अपकर्षण करके अंतर को पूरता है** यानी जो गॅप तैयार की थी उसको भर देता है। यह बात ख्याल में आयी ? भावार्थ- **उपशम सम्यक्त्व के काल से संख्यातगुणा जो अंतरायाम** यानी जितना अंतर किया था, उसके संख्यातवें भाग में ही उपशम सम्यक्त्व का काल पूरा हुआ। उससे संख्यात गुणा अंतर अभी ऊपर बाकी है। उसके ऊपर द्वितीय स्थिति है। **उसमें से उपशम सम्यक्त्व के काल प्रमाण निषेक तो अभावरूप रहे** क्योंकि उसी काल में उपशम सम्यक्त्व चल रहा था, **वे उपशम सम्यक्त्व के काल में व्यतीत हुये।**

अवशेष अंतरायाम के निषेक रहे वे अभावरूप थे की बात है। अब तक अभावरूप थे, परंतु अभी वहां नये निषेक बनेंगे। **उनमें द्वितीय स्थिति का द्रव्य निक्षेपण करके** यानी ऊपर से द्रव्य नीचे आयेगा और वहां निषेक रचना हो जायेगी। **उनका पुनःश्च सद्भाव करता है। उस अपकर्षण किये हुये द्रव्य को, जिस प्रकृति का उदय है उसका उदयावली के प्रथम निषेक से लेकर और उदयहीन प्रकृतियों का** यानी दो प्रकृतियां उदयहीन हैं, कोई एक प्रकृति उदयरूप है। हमने यहां बोर्ड पर मिथ्यात्व को उदयरूप बताया है। हो सकता है कोई तीसरे गुणस्थान में जानेवाला है, तो उसके क्या होगा ? देखो, पहले गुणस्थान में जो जानेवाला है, उसके मिथ्यात्व प्रकृति के उदयावली से निषेक बनेंगे। यदि वह तीसरे गुणस्थान में जानेवाला है तो सम्यग्मिथ्यात्व में उदयावली बनेगी, बाकी दो में नहीं बनेगी। इसका उदय शुरू होगा तो जीव तीसरे गुणस्थान में जायेगा। मान लेते हैं, जीव का सम्यक्त्व बना रहेगा तो सम्यक् प्रकृति का द्रव्य यहां उदयावली से दिया जायेगा, बाकी दो का ऊपर रहेगा। तो जिसका उदय होना है उसका द्रव्य नीचे वर्तमान समय तक आता है। किसी कर्म का द्रव्य बाय चान्स नीचे आया ऐसा नहीं होता।

जीव के परिणामों के अनुसार उस प्रकृति का द्रव्य नीचे आयेगा। नहीं तो जीव

को पराधीन मानना पड़ेगा। कर्म के आधीन सब कुछ है, क्या करें ? सम्यक्त्व तो प्राप्त हुआ, परंतु अभी कर्म नीचे आये इसलिये गिरना पड़ा ऐसा बिलकुल नहीं है। हमें ऐसा ही लगता है। जब-जब निमित्त की बात आती है तो लोगों को लगता है कि कर्म का उदय आया न, इसलिये जीव गिरा, इसलिये ऐसा हुआ - ऐसा नहीं है। जीव के वैसे परिणाम हैं और उसी समय कर्म की ऐसी अवस्था होती है। दोनों का समय एक है और दोनों अपने-अपने से होते हैं। कोई किसीके कारण नहीं होता। निमित्त-उपादान की बातें जो दृढ़ता से द्रव्यानुयोग में पड़ी हैं वे यहां बहुत कार्यकारी हैं। नहीं तो इतना सब कर्मकाण्ड पढ़कर, लब्धिसार पढ़कर भी सोचेगा कि क्या करें अभी ? यहां कर्म जगह नहीं देता है, इसलिये सम्यक्त्व नहीं होता है, उसमें गॅप नहीं होती है। हमें पं. टोडरमलजी ने क्या बताया ? यह सब पढ़कर उसके अनुसार पुरुषार्थ नहीं होता है। उसमें हम कुछ नहीं कर सकते, कर ही नहीं सकते। बस इतना ज्ञान में ले लिया तो यह बात कितनी दृढ़तापूर्वक ख्याल में आती है कि यह अवस्था ऐसी बनेगी ही, जरूर बनेगी। कोई कर्म उसमें आड़े आनेवाला है ही नहीं और कभी आया ही नहीं। हमने ही मान लिया कि उसके कारण हम दुखी हैं, क्या करें ? हम गरीब बिचारे, ऐसे संयोग आते हैं, वैसे आते हैं। जीवों की देहबुद्धि चल रही है, मिथ्यात्व चल रहा है तो संयोगों का लक्ष कर-करके ऐसे भाव - ऐसी कल्पनायें चलती रहती हैं और वे स्वयं दुःखी होते रहते हैं।

यहां क्या देख रहे हैं हम ? जिसका उदय है यानी जीव के जैसे परिणाम होंगे, वैसी इनमें से एक प्रकृति की उदय के समय से निषेक रचना होगी। बाकी दो की निषेक रचना उदयावली के ऊपर होगी। अंतरायाम के ऊपर द्वितीय स्थिति थी सबकी। जिस प्रकृति का उदय है उसकी उदय के समय से लेकर निषेक रचना हुयी। परंतु बाकी दोनों का भी उदयावली के ऊपर अंतर भर दिया। यानी जो अंतर बनाया था, गॅप बनायी थी उसको तीनों प्रकृतियों के द्वारा पूर दिया गया है, भर दिया गया है। परंतु उदयावली में उसी प्रकृति के निषेक बनते हैं जिसका उदय होना है। यहां लिखा है न, **उस अपकर्षण किये हुये द्रव्य को, जिस प्रकृति का उदय है, उसका उदयावली के प्रथम निषेक से लेकर और उदयहीन प्रकृतियों का, उदयावली के बाह्य निषेक से लेकर अंतरायाम में और द्वितीय स्थिति में निक्षेपण करता है।**

अब यहां जो द्रव्य आया है अंतर में देने के लिये, वह कहां से आया ? द्वितीय स्थिति में अंतःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण निषेक थे। वे किसरूप से पड़े थे ? नाना गुणहानिरूप से वहां द्रव्य पड़ा था। उस पूरे द्रव्य को अपकर्षण भागहार का भाग दिया और एकभाग प्रमाण द्रव्य नीचे आया, अपकर्षित हुआ। वह अपकर्षित द्रव्य कहां दिया जायेगा ? सर्वत्र दिया जायेगा। यह निकला कहां से ? पूरे द्वितीय स्थिति में से द्रव्य निकला और कहां-कहां दिया जायेगा ? उदयावली में, उसके ऊपर शेष अंतर में और फिर ऊपर द्वितीय स्थिति में लास्ट में अतिस्थापनावली छोड़कर सर्वत्र दिया जायेगा। कितना निकला ? अपकर्षण भागहार से भाग देकर जितना है उतना निकला। उसमें से कुछ यहां आदिधनरूप से दिया, कुछ यहां चयधनरूप से दिया, उनसे ये नये निषेक बने और बाकी ऊपर द्वितीय स्थिति में चय घटतेरूप से थोड़ा-थोड़ा दिया, ऊपर सर्वत्र दे दिया। इसतरह से तीन में इसका विभाजन हो गया।

यही बात गाथा १०४ की टीका में पढ़ेंगे- **वहां उदयवान सम्यक्त्वमोहनीय हो तो यहां सम्यक्त्वमोहनीय की बात है यानी सम्यक्त्व बना रहेगा, अभी यह वेदक सम्यग्दृष्टि होगा। उसके द्रव्य को अपकर्षण भागहार का भाग देकर बहुभाग तो जैसे थे वैसे रहे।** यानी द्वितीय स्थिति के निषेक तो अपनी जगह में रहे। थोड़ासा द्रव्य निकाला, एकभाग निकाला। **एकभाग को असंख्यात लोक का भाग देकर एकभाग उदयावली में देना।** उसका पहले विधान बता दिया था, इसतरह से चय घटते क्रम से वहां दे देना। यहां लिखा है न ! **‘उदयावलिस्स दव्वं’ इत्यादि सूत्र द्वारा जैसे पहले विधान कहा है, वैसे उदयावली के निषेकों में, ये निषेक भी नये तैयार होंगे, वहां नहीं थे। चय घटते क्रम से निक्षेपण करता है, एक बात हुयी। अपकर्षण किये हुये द्रव्य में से अवशेष बहुभाग रहा, उसका नाम अपकृष्टावशिष्ट द्रव्य है।** यानी अपकर्षित द्रव्य में से बचा हुआ द्रव्य। **उसमें से अंतरायाम के निषेकों का अभाव था, उनका सद्भाव करने के लिये वहां कितना ही द्रव्य देना।** वहां निषेक ही नहीं थे, पूरे निषेक बनने के लिये अधिक द्रव्य देना चाहिये। तो वहां पर भी दिया।

वहां कितना दिया ? अभी हमने देखा है, पहले आदिधनरूप द्रव्य जिसको हम समपट्टिका कहते हैं, उसमें दिया। उन्हीं निषेकों की गोपुच्छ जैसी रचना होने के लिये बाजू में ऑडिशनल द्रव्य दिया जायेगा, जिसको हमने चयधन कहा था उतना दिया

जायेगा। अंतर पूरने के लिये, उदयावली के ऊपर दिया जायेगा। **वहां कितना देना ? उसको जानने के लिये विधान कहते हैं।** यह विधान हमने कल पढ़ा था। अभी मैंने बोर्ड पर यही बात बतायी थी। अभी हम पढ़ेंगे- **नानागुणहानियों में स्थित** यानी द्वितीय स्थिति में जितने निषेक हैं, वहां अनेक गुणहानियों में द्रव्य पड़ा हुआ है। **ऐसा जो सम्यक्त्वमोहनीय के द्वितीय स्थिति का द्रव्य उसको अपकर्षण भागहार का भाग देकर एकभाग जुदा करके अवशेष बहुभाग मात्र जो द्रव्य रहा, एकभाग अपकर्षित हुआ, बाकी अपनी-अपनी जगह में रहा; निषेक बने रहे, उसीकी बात है। उसको साधिक डेढ़ गुणहानि का भाग देने पर द्वितीय स्थिति का प्रथम निषेक आता है।** क्या कहना चाहते हैं ? यहां से द्वितीय स्थिति थी, अभी यहां छोटी दिखायी है, आपको अंतःकोड़ाकोड़ी सागर की इमॅजिन करनी है। उसमें से द्रव्य निकाला, जो बचा है वह अभी यहां पर पड़ा है। उस द्रव्य को साधिक डेढ़ गुणहानि से भाग देंगे, तो पहले निषेक का द्रव्य आयेगा - इसका प्रमाण मिलेगा यह बात बताना चाहते हैं।

इसके समान अंतरायाम के सर्व निषेक चय रहित स्थापित करके जोड़ने पर द्वितीय स्थिति के नीचे प्रथम निषेक के समान अंतरायाम के सर्व निषेक, चय से रहित स्थापित करने पर जो यहां बताया है, ऐसे जो चौकोर बताया है न। तो हमने क्या किया ? प्रथम निषेक के प्रमाण में इन सबको ले लिया। जोड़ने पर **आदिधन होता है।** उसको आदिधन कहा। **‘पदहतमुखमादिधन’ इस सूत्र द्वारा अंतरायाम प्रमाण गच्छ से अंतरायाम प्रमाण गच्छ** यानी नये निषेकों की संख्या। **उस प्रथम निषेक को गुणा करने पर अंतरायाम के निषेकों का आदिधन हुआ।** इनकी टोटल हुयी, बात ख्याल में आयी ? द्वितीय स्थिति के प्रथम निषेक को, अंतरायाम में जितने निषेक बनने हैं, उस संख्या के द्वारा गुणा करने पर हमें आदिधन मिला। **द्वितीय स्थिति के नीचे अंतरायाम के निषेक हैं, इसलिये द्वितीय स्थिति के आदि निषेक से चय बढ़ते क्रमरूप अंतरायाम के निषेक होने चाहिये।** निषेक रचना हमेशा ऐसी गोपुच्छाकार बन जाती है। हमने तो समपट्टिकारूप यहां तक बतायी, परंतु अंतरायाम में नीचे के निषेक चय बढ़ते हुये होने चाहिये। तभी ऐसी गोपुच्छाकार रचना होगी। हमेशा ही निषेक इसरूप से सत्ता में पड़े रहेंगे। **इसलिये चय का प्रमाण लाते हैं।**

अभी हम यहां की भाषा नहीं पढ़ेंगे क्योंकि बहुत कन्फ्यूजन होगा। हमने प्रथम

निषेक का प्रमाण निकाला है, उसको दो गुणहानि से भाग देना। एक गुणहानि का जो प्रमाण है उसको डबल करके उससे प्रथम निषेक के द्रव्य को भाग देंगे तो यहां का चय मिल जायेगा। इसतरह अंतरायाम संबंधी चय का प्रमाण आता है। *श्रोता: यहां मूल में जो चय का प्रमाण है वह असंख्यात होगा या कम होगा ?* दो गुणहानि का जो प्रमाण है न वह असंख्यात है और उससे हमने अनंत को भाग दिया है तो उसका प्रमाण अनंत ही होगा। *श्रोता: उदयावली में नीचे ज्यादा दिया, ऊपर थोड़ा कम करते गये, तीन लाइन ?* यहां आवली के लिये तीन निषेक बताये हैं; इसको बहुत बड़े प्रमाण में एकदम कम करके बताया है। पर वह भी थोड़ा-थोड़ा कम है ऐसा समझना। उदयावली के ऊपर का निषेक बड़ा होगा। फिर थोड़ा-थोड़ा कम करके द्वितीय स्थिति तक निषेक बनेंगे और इसके प्रमाण में आयेगे, तिरछी लाइन में। अभी दूसरे समय में और द्रव्य नीचे आयेगा, वह उनमें और मिल जायेगा। यह तो पहले समय में क्या होता है, उसकी बात बतायी है। ऊपर से अपकर्षण चलता रहेगा।

चय की व्हॅल्यू कैसे निकालनी इतनी बात है। यहां का जो प्रथम निषेक है, उसको दो गुणहानि नामक जो संख्या है, उससे भाग देंगे तो चय मिलेगा। चय मिलता है तो चयधन निकालने का भी डायरेक्ट सूत्र है। हमने क्या किया ? हमने समपट्टिका के निषेक गिने, उस संख्या का संकलनधन निकाला और उसको चय से गुणा किया, वह एक मेथड है। यहां दूसरा एक सूत्र बताया। देखो, पहले तीन लाइन में बताया चय का प्रमाण क्या आता है। हमने डायरेक्ट बता दिया कि दो गुणहानि से भाग देना। यहां नीचे सूत्र बताया है, उसको भी मैं अपनी भाषा में बताती हूं। गच्छ किसको कहना ? अंतर में जितने निषेक बनेंगे उसको कहेंगे गच्छ। गच्छ मल्टिप्लाइड बाय एक अधिक गच्छ, उसका आधा करके मल्टिप्लाइड बाय चय। क्या कहा ? गच्छ यानी अंतरायाम के निषेक, मल्टिप्लाइड बाय एक अधिक गच्छ, डिक्वायडेड बाय टू और मल्टिप्लाइड बाय चय, तो हमें चयधन डायरेक्ट मिलेगा। अपनी भाषा में देखो-हमने दस निषेक माने थे। तो हमने क्या देखा ? एक चय प्लस दो चय प्लस तीन चय प्लस चार चय ऐसे दस चय तक को जोड़ा। हमने क्या किया ? दस का संकलनधन किया और उससे चय को गुणा किया। बात वही हुयी न ! गच्छ १०, एक अधिक गच्छ ११, यानी १० गुणा ११ और उसका आधा करके, उसको यानी ५५ को चय से गुणा करके चयधन मिलेगा।

देखो, यहां हम पढ़ेंगे। **गच्छ अंतरायाम मात्र, एक अधिक गच्छ से गच्छ के आधे को गुणा करके** गच्छ का आधा मल्टिप्लाईड बाय गच्छ प्लस एक, मल्टिप्लाईड बाय चय। हमने वही किया न ? १० गुणा ११ को आधा किया इतने चय होंगे। ५५ चय लिये थे हमने। **फिर चय से गुणा करने पर उत्तरधन (चयधन) मिलता है।** यानी आदिधन और उत्तरधन यहां उत्तरधन शब्द आया है, उसका अर्थ ही चयधन है। चय के लिये चार अलग-अलग शब्द आते हैं- चय कहते हैं, प्रचय कहते हैं, उत्तर कहते हैं या विशेष कहते हैं। चारों का अर्थ वही होता है। हम हमेशा चय ऐसा कहेंगे, क्योंकि अलग-अलग शब्द वापरेंगे तो आपका कन्फ्यूजन होगा। पर यहां अभी यहां उत्तरधन कहा है, उसीका अर्थ है चयधन, चयों की टोटल।

अभी इस पॅरेग्राफ में हमने क्या देखा ? कि समपट्टिकारूप से भी दिया और चयधनरूप से भी दिया। इतने तो वहां निषेक तैयार हुये। अब नीचे का पॅरेग्राफ देखेंगे- **आदिधन और उत्तरधन को मिलाने पर जो प्रमाण हुआ उतना द्रव्य इस अपकृष्टावशिष्ट द्रव्य में से ग्रहण कर अंतरायाम में देना।** अपकृष्टावशिष्ट कब कहा था ? उदयावली में देने के बाद। उसमें से और इतने निषेकों में दे दिया। अब जो बचा, इसमें से कुछ कम हुआ क्योंकि थोड़े ही निषेकों में दिया न। जितने अभाव किये थे निषेक उनमें उतना द्रव्य दे दिया। उदयावली में देने के पश्चात् अवशेष द्रव्य को अंतरायाम और द्वितीय स्थिति में देना। वहां अंतरायाम में तो पहले जैसे आदिधन और उत्तरधन मिलाकर, द्रव्य प्रमाण लाने का विधान कहा था, वैसे प्रमाण लाकर उतने द्रव्य को अंतरायाम के निषेकों में देना और देने के पश्चात् जो द्रव्य बाकी रहा-अवशेष रहा उसको यहां जो सूत्र है, उसके अनुसार द्वितीय स्थिति के जो निषेक हैं, उनमें देना।

मैं अपनी भाषा में बताऊंगी। यह जितना द्वितीय स्थिति का द्रव्य है, उसको अपकर्षण भागहार से भाग देकर एकभाग प्रमाण द्रव्य नीचे आया। उसमें से उदयावली में कुछ दिया, बहुत थोड़ा दिया। बाकी जो रहा उसको कहते हैं, अपकृष्टावशिष्ट द्रव्य। उसमें से अंतरायाम के निषेक तैयार होने के लिये कुछ द्रव्य दिया। उसके बाद और भी बचा, वह कैसा देंगे ऊपर ? यहां पर भी चयहीन क्रम से ऊपर तक देना। कहां तक ? ऊपर की अतिस्थापनावली छोड़कर बाकी अंतःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण सर्व निषेकों में। अभी यहां पहले निषेक में कितना देना

उसका गणित छोड़ दो। थोड़ा-थोड़ा कम; घटते-घटते हम ऊपर तक देंगे। इसतरह से अंतर में भी दिया और ऊपर भी घटते क्रम से दिया। उपशम सम्यक्त्व के अनंतर समय में - प्रथम समय में यह कार्य हुआ। मैंने जो यह बताया वह मिथ्यात्व में जानेवाले की बात है। सम्यक् प्रकृति की उदयावली सहित रचना होगी तो वेदक सम्यक्त्व शुरू होगा। वह जीव जिस गुणस्थान में है उसका वह गुणस्थान कायम रहेगा।

अभी यहां उन्होंने सम्यक् प्रकृति पर घटाया है। उसकी तो उदयावली भी बनी, अंतरायाम के निषेक भी हुये और ऊपर भी द्रव्य दिया। अन्य दो प्रकृतियों में क्या होता है उसकी बात पृष्ठ ९५ पर पढ़ेंगे- **पुनःश्च उदय के अयोग्य मिश्रमोहनीय और मिथ्यात्व प्रकृतियों के द्रव्य को** क्योंकि उदयावली किसमें बनी ? सम्यक् प्रकृति में। बाकी दो प्रकृतियों के द्रव्य को **अपकर्षण भागहार का भाग देकर वहां एकभाग उदयावली से बाह्य जो अंतरायाम**, यहां उदयावली नहीं बननी है, उसके ऊपर का अंतरायाम यानी गॅप जितनी है **उसमें और द्वितीय स्थिति में कैसे ? पूर्ववत् निक्षेपण करना।** अभी जो हमने प्रोसेस देखा उसी पद्धति से निक्षेपण करना। **उदयावली में निक्षेपण न करना। इसीतरह यदि मिश्रमोहनीय अथवा मिथ्यात्वमोहनीय उदययोग्य होकर अवशेष दो उदययोग्य न हो तो, वहां यथासंभव विधान जानना।** यानी जो प्रकृति उदयरूप है, उसकी रचना उदयावली से और बाकी की उदयावली के ऊपर से करना। **सर्वत्र जैसे गाय की पूंछ चौड़ाई में क्रम से हीन होती है वैसे चय घटता क्रम पाया जाता है, वहां एक गोपुच्छाकार कहते हैं।** यह रचना हुयी, नीचे अंतर पूर दिया गया। फिर भी गोपुच्छाकार जो रचना है - ऐसी त्रिकोण जैसी रचना बनी रहती है। अब आगे हम गाथा १०५ और १०६ पढ़ेंगे, देखो-

सम्मुदये चलमलिणमगाढं सहहृदि तच्चयं अत्थं।

सहहृदि असम्भावं अजाणमाणो गुरुणियोगा ॥१०५॥

सुत्तादो तं सम्मं दरसिज्जंतं जदा ण सहहृदि।

सो चेव हवदि मिच्छाइट्ठी जीवो तदो पडुदी ॥१०६॥

ये गाथायें कर्मकाण्ड में भी हैं, जीवकाण्ड में भी हैं। देखो, हम इसका अर्थ देखेंगे। उपशम सम्यक्त्व का काल पूर्ण होने के पश्चात् नियम से, दर्शनमोहनीय की

तीन प्रकृतियों में से एक प्रकृति का उदय होता है जो अभी हमने देखा है। उपशम सम्यक्त्व होने के पश्चात् की बात है। उपशम सम्यक्त्व का काल पूर्ण होने के पहले अनंतानुबंधी का उदय हो सकता है। तो वहां पर क्या होता है ? हां, यदि अनंतानुबंधी का उदय हो जाता है तो जीव सासादन में - दूसरे गुणस्थान में चला जाता है और वहां से मिथ्यात्व में। पर अभी उपशम सम्यक्त्व का काल पूरा हुआ है तो अभी क्या होगा ? तीन में से किसी एक का उदय हो जायेगा। वहां सम्यक्त्वमोहनीय का उदय होने पर जीव वेदक सम्यग्दृष्टि होता है। वेदन यानी अनुभवन करना, किसका ? सम्यक् प्रकृति का उदय है इसलिये उसको वेदक कहा। देखो, इसी सम्यक्त्व को क्षयोपशम सम्यक्त्व भी कहते हैं। अब यहां क्षयोपशम की परिभाषा घटित कर सकते हैं।

क्षयोपशम की परिभाषा कौन बताना चाहते हैं ? अश्विनभाई, आप बतायेंगे ? हमारी जयश्रीबहन- *श्रोता: सर्वघाति स्पर्धकों का उदयाभावी क्षय, भविष्यकालीन उन्हीं स्पर्धकों का सदवस्थारूप उपशम...* देखो क्या है ? अभी हमारे पास तीन प्रकृतियां हैं। पहले हम स्पर्धकों पर घटित करते थे। क्षयोपशम की परिभाषा क्या है ? वर्तमानकालीन सर्वघाति स्पर्धकों का उदयाभावी क्षय। उदय का नहीं होना परंतु क्षय होना यानी खिर रहे हैं, उदयाभावी क्षय। भविष्यकालीन उन्हीं स्पर्धकों का सदवस्थारूप उपशम यानी उदय में नहीं आ रहे, पड़े रहे और उदय किसका है ? देशघाति स्पर्धकों का उदय। इसको क्षयोपशम अवस्था कहते हैं।

अब यहां हम क्षयोपशम सम्यक्त्व पर घटित करते हैं। यहां हमारे पास तीन प्रकृतियां हैं- मिथ्यात्वप्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति। इसमें मिथ्यात्व सर्वघाति है, इसके सभी स्पर्धक सर्वघाति हैं। सम्यग्मिथ्यात्व भी सर्वघाति है, उसके भी सभी स्पर्धक सर्वघाति हैं। हमेशा क्या होता था, देशघाति प्रकृति में दोनों प्रकार के स्पर्धक होते थे। अभी यहां विशेषता है। सम्यक् प्रकृति जो अभी तैयार हुयी है, उसमें मात्र देशघाति स्पर्धक ही हैं। क्षयोपशम सम्यक्त्व का अर्थ क्या है ? वर्तमानकालीन इन दो प्रकृतियों का उदयाभावी क्षय; उदय में नहीं आना वही क्षय और भविष्य में वे पड़ी हैं, हमने देखा न इतने सारे निषेक पड़े हैं; तो उनका सदवस्थारूप उपशम और उदय किसका है ? सम्यक् प्रकृति जो देशघाति है, उसका उदय, इसको कहेंगे क्षयोपशम सम्यक्त्व। यहां क्षयोपशम की परिभाषा घटित होती है इसलिये इसको क्षयोपशम

सम्यक्त्व कहा क्योंकि यहां सर्वघाति प्रकृतियों के उदय का अभाव है और इसी सम्यक्त्व को वेदक सम्यक्त्व कहा क्योंकि सम्यक् प्रकृति का उदय है। पं. टोडरमलजी साहब ने मोक्षमार्गप्रकाशक में ३३७ पेज पर ये सभी बातें बतायी हैं। जो वेदक सम्यक्त्व है उसीको क्षयोपशम सम्यक्त्व क्यों कहते हैं यह बात वहां बतायी है।

श्रोता: अभी तक आपने निषेक शब्द का बार-बार इस्तेमाल किया है, एकदम से यह स्पर्धक कैसे ? जब निषेक कहते हैं तो स्थिति बतायी जाती है। हमने देखा कि परमाणु नीचे आकर यहां अंतर में नयी निषेक रचना तैयार हुयी। अभी हमने क्षयोपशम की परिभाषा देखी, वहां हमने स्पर्धकों का नाम लिया क्योंकि उसका अनुभाग कैसा है उसको बताना था। जब सर्वघाति, देशघाति स्पर्धक कहते हैं, तब ये नाम अपने लिये नये हैं तो एकदम से सोचना पड़ता है कि यह स्पर्धक यानी क्या ? वे अनुभाग को बतानेवाले हैं। हमने देखे थे- वर्ग, कर्म परमाणु को हमने वर्ग कहा। समान अविभागवाले वर्गों के समूह को वर्गणा कहा और एक वर्गणा से दूसरी वर्गणा में एक-एक अविभागप्रतिच्छेद ज्यादा है, तो उनके समूह को स्पर्धक कहा। यह सारी जो रचना है, वह अनुभाग को बतानेवाली है। वह सर्वघाति क्या है और देशघाति क्या है उसकी अपनी चर्चा पहले हुयी थी।

अभी हम यहां गाथा १०५, १०६ की टीका पढ़ेंगे, देखो- यहां क्या बता रहे हैं ? उपशम सम्यक्त्व का काल पूर्ण होने के पश्चात् सम्यक्त्वमोहनीय का यानी सम्यक् प्रकृति का उदय होता है तो जीव का सम्यक्त्व बना रहता है। परंतु वह है तो दर्शनमोहनीय की प्रकृति। देशघाति है परंतु है तो वह मिथ्यात्व में से निकली हुयी ! सम्यक् प्रकृति सम्यक्त्व का घात नहीं करती फिर भी वह प्रशस्त नहीं बनी है। उसका अपना कुछ न कुछ फल होगा कि नहीं, निमित्तरूप से ? कहते हैं, **वह चल, मलिन, अगाढ़रूप तत्त्वार्थ का श्रद्धान करता है।** कैसा ? ये जो दोष हैं वे भी बहुत सूक्ष्म हैं, केवलीगम्य हम कहेंगे। पर वे कैसे हैं ? चलपना, मलिनपना और अगाढ़पना। सम्यक् प्रकृति का उदय होते हुये वहां थोड़ा दोष लगता है, परंतु सम्यक्त्व छूटता नहीं, सम्यक्त्व बना रहता है परंतु वहां चल-मल-अगाढ़ दोष लगता है। **चल-मलिन-अगाढ़रूप तत्त्वार्थ का श्रद्धान करता है। सम्यक्त्वमोहनीय के उदय से श्रद्धान में चलपना होता है,** चलपना यानी हम कहते हैं न थोड़ा ऐसा कमजोर है। जैसे वृद्ध होने

पर लकड़ी लेकर चलते तो हैं, पर थोड़ा ऐसा-ऐसा हिलते हैं; अचल नहीं है, चल है। **मल लगता है** जैसे औपशमिक और क्षायिक दोनों सम्यक्त्व निर्मल हैं, ऐसी निर्मलता इसमें नहीं है, यहां थोड़ा मल लगता है और **शिथिलभाव होता है**। उपशम सम्यक्त्व में दर्शनमोहनीय का उदय ही नहीं था न ! यहां थोड़ा शिथिलभाव रहता है।

वह जीव स्वयं विशेष नहीं जानता, अज्ञात गुरु के निमित्त से असत् श्रद्धान भी करता है, भी करता है यानी करता है ऐसा नहीं, हो सकता है। किसीके द्वारा उसने यह मार्ग सुना है और उसमें कुछ गलत प्ररूपणा भी आयी है। ऐसा नहीं कि सात तत्त्वों के बारे में कुछ गलत भ्रांतियां चल रही हैं; नहीं तो उसको सम्यक्त्व होगा ही नहीं। परंतु यह भगवान की आज्ञा है मानकर ऐसी कुछ चीजें होती है कि उसकी ऐसी प्ररूपणा चलती है या वह मान रहा है। **परंतु सर्वज्ञ की आज्ञा ऐसी ही है ऐसा जानकर श्रद्धान करता है इसलिये सम्यग्दृष्टि है। परंतु यदि कोई ज्ञात गुरु सूत्र से** यानी आगम के द्वारा, आगम का आधार बताकर **सम्यक् स्वरूप दिखाये** कि बाबा तू जो प्ररूपणा कर रहा है वह बराबर नहीं है, यह आगम में ऐसा लिखा है। ऐसा होता है न ? हमने किसीसे सुना और हम ऐसे ही प्ररूपणा करने लगे। हम उसको सच मानकर प्ररूपणा कर रहे हैं, पर हो सकता है वह आगम से विरुद्ध है और कोई आकर हमें आगम दिखाकर बतायें कि भाई आप जो बता रहे हैं, वह बराबर नहीं है आगम में ऐसा है। **और हठ आदि से श्रद्धान न करे तो।** क्योंकि अभी हम बड़े पोस्ट पर हैं, हमने एक बार कह दिया या कुछ कर दिया, अभी हम अपने को ही हम गलत थे, कैसे कहेंगे ? तो कहते हैं **उस काल से लेकर वह मिथ्यादृष्टि होता है।**

ये गाथायें कर्मकाण्ड में भी हैं। ये दो गाथायें सब जगह आती हैं। हो सकता है उसने किसी निमित्त से कुछ ऐसा गलत मान लिया है और कोई उसको आगम का आधार देकर भी बता दें और वह न माने। *श्रोता: तो वह हठाग्रही ?* हठाग्रही नहीं, वह तो मिथ्यादृष्टि हो जावे, भले पहले उसको सम्यक्त्व भी था तो भी वह गिर जायेगा। *श्रोता: वेदक से मिथ्यात्व में ?* मिथ्यात्व में चला जायेगा, बिलकुल। *श्रोता: पहले से मिथ्यात्वी हो तो ?* पहले से गिरा हुआ ही है उसको गिरने का सवाल ही नहीं है। परंतु उसके हठ के कारण यदि अन्य लोगों का नुकसान होता है तो वह बहुत बड़ा पाप है। कोई अपने से कुछ गलत मान लेता है तो उसका पाप तो उसका स्वयं का चलता है।

परंतु समझो उसके निमित्त से वह धारा चलती रहती है - कुछ अन्य उपदेश किया, पुस्तकें लिखी जायेगी उनमें भी कुछ गलत बातें आयेगी तो भविष्य में भी लोग वह सब सच मानेंगे और उसीको फॉलो करेंगे तो उसमें अधिक पाप लगेगा। इसमें वक्ता और लेखक की बहुत बड़ी जिम्मेदारी होती है।

देखो, इस पुस्तक में भी मैंने बहुत सारे चेंजेस किये हैं जो पहले अशुद्धियां थी, आप पुस्तक निकालकर देखना। प्रस्तावना में पच्चीस पेजेस में तो मैंने क्या-क्या चेंजेस किये हैं वह सारे लिखे हैं। मेरी बात जो लिखी है यहां ११ पेज से शुरू होती है। कुछ स्थानों पर मूल प्रति में जो फेरफार किये हैं न, गाथा के नंबर सहित - यह पूरी लिस्ट बतायी है। क्यों ऐसा लिखा है, उसके लिये क्या आधार है, उसके लिये संस्कृत टीकायें, उसके लिये संदृष्टि अधिकार, उसके लिये कुछ अन्य पुस्तकें देखकर और कभी-कभी तो स्पेलिंग मिस्टेक होती है या कुछ लिखने में गलती होती है वह सब लिखा है। पं. टोडरमलजी साहब स्वयं कहते हैं यदि किसीकी कोई अशुद्धि नज़र में आये तो वह ठीक कर देना। यह ठीक करने का अपना कर्तव्य भी है। गलत नहीं लिखने का भी अपना ही कर्तव्य है और कोई गलती पहले से नज़र आये तो सुधारना भी अपना ही कर्तव्य है। वहां ये सारी लिस्ट बता दी कि कहां-कहां क्या-क्या चेंजेस कर दिये हैं। क्योंकि यह बहुत बड़ी जिम्मेदारी होती है न ! इसमें भी प्रिन्टिंग मिस्टेक्स होती हैं - कभी असंख्यात के बदले संख्यात लिखा जाता है, उसके लिये भी बहुत जिसको कहते हैं न आंखों में तेल डालकर इसका प्रूफ रीडिंग करते हैं, फिर भी कुछ अशुद्धियां निकलती रहती हैं। हमारे रोज़ के स्वाध्याय करते समय पुस्तक में जो भूलें निकलती हैं, उनको हम अलग से लिखकर रखते हैं। उसकी ऑडिओ रिकॉर्डिंग होती है उसमें हम बताते भी हैं - यहां यह सुधार करो। तो बाद में सुननेवालों को भी उसका पता चलता है। क्योंकि ये बातें तो बनती रहती हैं, होती रहती हैं।

श्रोता: क्षयोपशम चारित्र के ऊपर कैसे घटाते हैं ? किसमें ? चारित्र के ऊपर ?
आपका प्रश्न है, क्षयोपशम चारित्र भी तो है ? क्षयोपशम के कितने भाव हैं ? *श्रोता: अठारह।* अठारह, बोलो कौनसे हैं ? *श्रोता: चार ज्ञान।* सम्यग्ज्ञान के चार ज्ञान। *श्रोता: तीन अज्ञान।* तीन अज्ञान, अज्ञान यानी मिथ्याज्ञान - सात हुये। ज्ञानावरण पर हमने घटित किया था, याद है न ? सर्वघाति स्पर्धक - देशघाति स्पर्धक वगैरह आगे। *श्रोता:*

तीन दर्शन। तीन दर्शन पर वही है, देशघाति-सर्वघाति। पांच लब्धि में भी वही है। हां अभी ? श्रोता: छह लेश्या। आप औदयिक भाव में चले गये। क्षयोपशमिक सम्यक्त्व जो अभी देखा, संयमासंयम और क्षयोपशम चारित्र जो आपको देखना है। क्षयोपशम चारित्र में क्या होता है ? वहां उदय किसका है ? चारित्रमोहनीय का है न ! कौनसे ? अभी कौनसा बाकी है ? अरे संज्वलन। क्षयोपशम चारित्र कब होता है ? छठे-सातवें में होता है, उसको क्षयोपशम चारित्र कहा है। चौथेवाले को नहीं कहा।

श्रोता: चौथेवाले को क्या होता है, उसके लिये तो पूछा ? देखो, एक अनंतानुबंधी सर्वघाति सम्यक्त्व का घात करनेवाली उसका उदय नहीं है, परंतु अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण सर्वघाति है, उनका उदय चल ही रहा है तो उसको क्षयोपशम चारित्र नहीं कहेंगे हम। श्रोता: क्षयोपशम में कैसे घटित करेंगे ? उसको नहीं करेंगे। चौथे गुणस्थानवाले को मोहनीय का क्षयोपशम केवल एक सम्यक्त्व में ही है; उसे क्षयोपशम सम्यक्त्व है, क्षयोपशम चारित्र नहीं। क्षयोपशम चारित्र छठे-सातवें गुणस्थान में कहेंगे। श्रोता: पांचवें में आंशिक चारित्र कहा है। हां आंशिक है न, क्योंकि अप्रत्याख्यानावरण का उदय नहीं है, प्रत्याख्यानावरण का उदय चल रहा है और संज्वलन का भी सर्वघाति स्पर्धकों का उदय है; कुछ संयम है - त्रस हिंसा का त्यागी है और कुछ असंयम है - इन्द्रियसंयम नहीं है, पांच स्थावरकाय संबंधी हिंसा का त्यागी नहीं है, इस अपेक्षा से वहां क्षयोपशम घटित करते हैं। इसलिये संयमासंयम क्षयोपशमिक भाव है। परंतु हम क्षयोपशम चारित्र कहां पर कहते हैं ? तो छठे-सातवेंवाले को। वहां संज्वलन का उदय है और संज्वलन प्रकृति में सर्वघाति स्पर्धक भी होते हैं, देशघाति स्पर्धक भी होते हैं। हमने पहले देखा था- संज्वलन कैसी प्रकृति है ? देशघाति, परंतु उसमें सर्वघाति स्पर्धक भी हैं, देशघाति स्पर्धक भी हैं। तो सर्वघाति स्पर्धक उदय में नहीं आ रहे हैं, देशघाति आ रहे हैं इसलिये वहां क्षयोपशम चारित्र घटित होता है।

श्रोता: तो चौथे और पांचवें में जो चारित्र है वह क्षयोपशमरूप है ही नहीं ? नहीं। पांचवें में संयमासंयम ही है क्योंकि कुछ संयम है, कुछ असंयम है इसलिये क्षयोपशम भाव घटित होता है। क्षयोपशम चारित्र उसको नहीं कहते, उसको अलग से नाम देते हैं। श्रोता: चौथे में ? चौथे में बस सम्यक् चारित्र है, पर उसको क्षयोपशम चारित्र नहीं कहते। श्रोता: चौथे में औपशमिक ? चौथे में औपशमिक सम्यक्त्व होता है।

औपशमिक चारित्र उपशमश्रेणी में होता है। श्रोता: वेदक सम्यक्त्व मतलब वह श्रद्धा की मुख्यता से है, चारित्र की मुख्यता से नहीं? सम्यक्त्व नाम ही श्रद्धा की मुख्यता से है। चौथे में जो वेदक सम्यक्त्व कहते हैं, वहां वेदक सम्यक्त्व यानी सम्यक् प्रकृति का उदय है इसलिये वेदक सम्यक्त्व कहते हैं बस। ऐसा वेदक सम्यक्त्व चौथेवाले को भी है, पांचवेंवाले को भी है, छठेवाले को भी है, सातवेंवाले को भी है यानी चौथे, पांचवें, छठे, सातवें गुणस्थान में किसीके औपशमिक सम्यक्त्व है, किसीके क्षायोपशमिक यानी वेदक सम्यक्त्व है और जो क्षायिक प्राप्त करता है उसको क्षायिक सम्यक्त्व है, तीनों प्रकार के हो सकते हैं। परंतु बाद में श्रेणी में क्या होता है वह आगे देखेंगे हम।

जिसने औपशमिक सम्यक्त्व प्राप्त किया है, वह डायरेक्ट वेदक सम्यग्दृष्टि हो जाता है। हो सकता है, पहले गुणस्थान से भी कोई वेदक सम्यक्त्व प्राप्त कर सकता है। पहले गुणस्थान से कौन प्राप्त करेगा? जिसके पास इन तीनों की सत्ता है। देखो, किसी सम्यग्दृष्टि को तीनों की सत्ता है और मिथ्यात्व के उदय से वह मिथ्यात्व में गया। अब जाते ही तो दूसरे समय में सम्यग्दृष्टि नहीं हो सकता। उसको अर्लिंएस्ट सम्यग्दर्शन प्राप्त होता है तो अंतर्मुहूर्त तो चला जायेगा। उसके बाद क्या होगा? अब सम्यक् प्रकृति का उदय होना है, तो मिथ्यात्व का उदय मिटेगा और उसका उदयरूप जो निषेक है, वह सम्यक् प्रकृतिरूप होकर उदय में आने लगेगा। सम्यक् प्रकृति का उदय चालू हो जायेगा। मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व दोनों सत्ता में पड़े रहेंगे और सम्यक् प्रकृति का उदय होता रहेगा। जिसका उदय है न, अन्य दो प्रकृतियां उसरूप हो-होकर उदय में आती रहती हैं। तीनों की सत्ता बनी रहेगी, किसी गुणस्थान में एक प्रकृति उदयरूप रहेगी, बाकी दो प्रकृतियों का एक-एक निषेक उसरूप होकर उदय में आयेगा।

श्रोता: श्रद्धा में क्षयोपशम हुआ तो कोई नियम नहीं है, चारित्र में भी क्षयोपशम होना है? नहीं-नहीं। चौथे गुणस्थान में श्रद्धा में ही क्षयोपशम भाव है, चारित्र में बिलकुल नहीं है। श्रोता: इसका मतलब मैंने गलत सुना था। वहां पर भी सम्यक्त्व है यानी चारित्र सम्यक् है; हम सम्यक् चारित्र कहेंगे क्योंकि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र एकसाथ शुरू होंगे। अनंतानुबंधी का उदय सम्यक्त्व नहीं होने देता, अभी वह नहीं है; परंतु अप्रत्याख्यानावरण है तो वह कुछ संयम नहीं होने देता और

उसीको असंयम कहा है। चारित्र के दो भेद किये हैं - देशचारित्र और सकलचारित्र। वैसा चारित्र यहां नहीं है, चारित्रलब्धिवाला चारित्र नहीं है यहां पर। चारित्र नहीं है इसका अर्थ मिथ्याचारित्र है ऐसा नहीं। क्योंकि हम फिर झगड़ने लगते हैं न कि चारित्र नहीं कहते ? देशचारित्र और सकलचारित्र को चारित्र नाम दिया जाता है। चारित्रलब्धि और दर्शनलब्धि की जो बात हो रही है, उसमें से चारित्र किसको कहेंगे ? देशचारित्र यानी पांचवें गुणस्थानवाला और सकलचारित्र यानी छठे-सातवें और ऊपर आठवें, नौवें गुणस्थानवाले, वहां सकलचारित्र होगा। वह यहां नहीं है इतनी बात है। इसका अर्थ यहां सम्यक् चारित्र ही नहीं है ऐसा नहीं है। सम्यक् चारित्र तो बिलकुल हो गया है। चारित्रमोहनीय में से अनंतानुबंधी के उदय का अभाव हो चुका है यहां पर।

अब पृष्ठ ९६ पर १०७ की टीका- **मिश्र जो सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति, उसका उदय होने पर जीव मिश्र गुणस्थानवर्ती होता है।** उसको हम तीसरा गुणस्थान कहते हैं। डायरेक्ट औपशमिक सम्यक्त्व के पश्चात् मिश्र में आ सकता है, कोई वेदक सम्यग्दृष्टि होकर बाद में तीसरे में आ सकता है। यह जरूरी नहीं कि औपशमिक समाप्त होते ही तीसरे में आवें। औपशमिक के बाद कुछ काल तक वेदक सम्यक्त्व बना रहा। हो सकता है कभी वह तीसरे में आ गया। **वह एक समय में तत्त्व और इतर अतत्त्व, इनका मिश्ररूप श्रद्धान करता है।** यानी उसका सम्यक्त्व तो छूट गया है, अब कोई मिला-जुला ऐसा अन्य ही जाति का परिणाम होता है। अन्य जाति का नहीं समझे ? जैसे दूध की खीर-बासुंदी खायी बहुत पेट भरकर। वह तो मीठी थी, इतनी खायी कि थोड़ी देर में क्या हुआ ? डकार आया खट्टा दूध गले में आया, बिगड़ा हुआ। ऐसे ही इसका श्रद्धान तो हुआ था, मगर अभी मिला-जुला ऐसा कुछ बिगड़ा हुआ श्रद्धान हो गया। तो उसको कहते हैं यह तीसरे गुणस्थान का, मिश्र श्रद्धान हुआ। तो तत्त्व और अतत्त्व का ऐसा मिला-जुला कोई अन्य ही जाति का श्रद्धान हो गया।

यहां लिखा है, **जैसे मिलाये हुआ दही और गुड़ अन्य ही रसांतर को प्राप्त होते हैं,** रसांतर यानी अन्य रस को प्राप्त होते हैं ? ना वह मीठा है, ना खट्टा ऐसा मिलाजुला कोई अलग रस होता है। **वैसे यहां सत्य और असत्य श्रद्धान मिला हुआ जानना।** तो सत्य और असत्य मिलाकर सत्य रहा कि नहीं रहा ? नहीं रहा। **यहां मरण होने के अंतर्मुहूर्त के पहले ही नियम से मिथ्यादृष्टि या असंयत होता है।** यह

विशेषता है कि **मिश्र गुणस्थान में मरण नहीं है**। इस गुणस्थान में आयु का बंध नहीं होता। यदि मरण समय नजदीक आया है तो, या तो तीसरे से पहले में जायेगा या तीसरे से चौथे में जायेगा। दो ही रास्ते हैं उसके लिये। *श्रोता: केवलज्ञानगम्य है ?* उसका सम्यग्दर्शन जो तत्त्वश्रद्धान हुआ वह छूट गया। केवलज्ञानगम्य क्यों कह रहे हो ? ऐसी कुछ बात नहीं। मिश्र गुणस्थान में मरण नहीं है और यहां मारणांतिक समुद्घात भी नहीं होता। यह बात हमने देखी, अब आगे १०८ नंबर की गाथा पढ़ेंगे।

मिच्छन्तं वेदंतो जीवो विवरीयदंसणं होदि।

ण य धम्मं रोचेदि हु महुरं खु रसं जहा जुरिदो ॥ १०८ ॥

मिथ्यात्व प्रकृति के उदय को अनुभवनेवाला जीव यानी जिसका मिथ्यात्व का उदय चल रहा है ऐसा जीव **मिथ्यादृष्टि होता है**। यानी उसके स्वयं के परिणाम मिथ्यात्व के हो जाते हैं। **वह विपरीत श्रद्धानी होता है**। यह कौनसा जीव लिया ? जिसने पहले उपशम सम्यक्त्व प्राप्त किया था, अब वह विपरीत श्रद्धानी हो गया। इतना पुरुषार्थ हुआ था, लौटकर फिर मिथ्यात्व में चला गया। **जैसे ज्वरवाले को ज्वर** यानी बुखारवाले को **मीठा रुचता नहीं**, ऐसा लगता है न, खाने में कोई टेस्ट नहीं है। कुछ मीठी चीज़ है तो भी कड़वी लगती है उसको। **वैसे उसको धर्म जो अनेकांत वस्तु का स्वभाव या रत्नत्रयरूप मोक्षमार्ग रुचता नहीं है**। यह मिथ्यादृष्टि का लक्षण बता रहे हैं, **ऐसे जानना। आगे -**

मिच्छाइट्ठी जीवो उवइट्ठं पवयणं ण सहहदि।

सहहदि असम्भावं उवइट्ठं वा अणुवइट्ठं ॥ १०९ ॥

मिथ्यादृष्टि जीव जिनेश्वर द्वारा उपदेशित वचन की श्रद्धा नहीं करता। पुनश्च अन्य द्वारा उपदेशित वा नहीं उपदेशित असत् भाव जो अतत्त्व उसका श्रद्धान करता है। अपनी कल्पना से या कोई दूसरे के उपदेश के द्वारा, जो नहीं है ऐसे छोटे तत्त्व का श्रद्धान करने लगता है। ऐसे यहां मिथ्यादृष्टि का भी स्वरूप बताया है। **इति प्रथमोपशमसम्यक्त्वप्ररूपणम् समाप्तम्।**

बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

२२. सम्यक्त्व के भेद - प्रश्नोत्तर

आचार्य श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती ने इस लब्धिसार ग्रंथ की रचना की है। उसीके आधार से पं. टोडरमलजी ने सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका लब्धिसार-क्षपणासार भाषाटीका ढूंढारी भाषा में लिखी है और हम अभी उसका हिंदी अनुवाद देख रहे हैं। यहां अपना पहिला अधिकार प्रथमोपशम सम्यक्त्व पूरा हुआ, उस संबंध में कुछ प्रश्न हैं। वेदक सम्यक्त्व की भी बात उसीमें बतायी थी। पहले में पहले वेदक सम्यक्त्व और क्षयोपशम सम्यक्त्व ऐसे जो दो शब्द आते हैं तो उसके बारे में बहुतों के प्रश्न हैं।

प्रश्न: वेदक सम्यग्दृष्टि और क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि को आपने एक भी कहा था तथा उसमें कुछ अंतर भी बतलाया था तो क्या अपेक्षा है ? पहले में पहले ये दो नाम भिन्न-भिन्न हैं, बात एक ही है। एक ही सम्यक्त्व के लिये दो अलग-अलग नाम हैं और उसकी अपेक्षा अलग-अलग है। मोक्षमार्गप्रकाशक में भी ३३७ पृष्ठ पर लिखा है कि क्षयोपशम सम्यक्त्व ही का नाम वेदक सम्यक्त्व है। क्यों ऐसे दो नाम ? अलग-अलग अपेक्षाओं से दो नाम हैं। जहां मिथ्यात्व और मिश्र मोहनीय की मुख्यता से कहा जाये वहां क्षयोपशम नाम पाया जाता है। क्योंकि क्षयोपशम किसका होता है ? सर्वघाति मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व का उदयाभावी क्षय है और भविष्यकालीन वे ही सर्वघाति प्रकृतियां उदय में नहीं आती उसको हम उनका सदवस्थारूप उपशम कहते हैं और वहां देशघातिरूप जो सम्यक् प्रकृति है उसका उदय चल रहा है - इसको क्षयोपशम अवस्था कहते हैं।

सर्वघाति प्रकृतियों का उदयाभावी क्षय और सदवस्थारूप उपशम है इसलिये इस सम्यक्त्व का नाम क्षयोपशम सम्यक्त्व है और यहां सम्यक् प्रकृति का उदय है; जिसका उदय है उसका वेदक कहा जाता है। जैसे जहां क्रोध का उदय है उस जीव को क्रोधवेदक कहेंगे, मान का उदय है उसको मानवेदक कहा जाता है। सम्यक् प्रकृति का उदय है इसलिये इसको वेदक सम्यक्त्व नाम पाया जाता है। बात एक ही है। यहां तीनों ही प्रकृतियों की कौनसी अवस्था चल रही है ? मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व दो सर्वघाति प्रकृतियां हैं, वे सत्ता में तो हैं परंतु जब उदय में आती हैं तो अन्यरूप यानी सम्यक् प्रकृतिरूप होकर उदय में आती हैं।

पहले औपशमिक सम्यग्दृष्टि था और अब क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि हुआ। हमने देखा था कि शुरू में सम्यक् प्रकृति के निषेक उदयावली में भी थे और ऊपर भी अंतर को पूर दिया गया था, बाकी दो प्रकृतियों के निषेक उदयावली के ऊपर थे। जैसे-जैसे एक-एक समय बीत जायेगा वैसे वह अंतर कम होते-होते उनके निषेक वर्तमान समय से एक समय ऊपर तक आ जायेंगे। एक आवली तक तो सम्यक् प्रकृति के उदयावली प्रमाण निषेक अधिक थे, परंतु जैसे समय बीत जायेंगे तब जाकर क्या पोझिशन हो जायेगी ? यह सम्यक् प्रकृति का उदय है उसका नीचे का वर्तमान निषेक उदयरूप है और बाकी की दो प्रकृतियां हैं उनके निषेक उदय समय से एक समय ऊपर हैं। समझ में आती है बात ? ये तीनों प्रकृतियां हैं, सम्यक् प्रकृति का निषेक नीचे एक एक्स्ट्रा बताया है और बाकी दो प्रकृतियों के निषेक वर्तमान समय से एक समय ऊपर बताये हैं। जब उदय में आने लगेंगे तो ये दोनों ही निषेक सम्यक् प्रकृतिरूप होकर उदय में आयेंगे। जब तक क्षयोपशम सम्यक्त्व चल रहा है, तब तक यही प्रोसेस चलेगा कि मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व के निषेक सम्यक् प्रकृतिरूप होकर उदय में आयेंगे और ऊपर सर्वधातिरूप से पड़े रहेंगे।

उन दो प्रकृतियों का द्रव्य एक समय ऊपर सर्वधातिरूप से पड़ा है। जब उदय का समय आयेगा तब इनका एक ही निषेक सम्यक् प्रकृतिरूप होकर उदय में आयेगा इसीको कहेंगे उदयाभावी क्षय। इनके परमाणु खिरने जा रहे हैं परंतु वे अपनेरूप से नहीं खिरेंगे, सम्यक् प्रकृतिरूप होकर खिरेंगे। सत्ता में सभी तीनों प्रकृतियां भिन्न-भिन्न पड़ी हैं। यह बात ख्याल में आयी न ? वर्तमान में तो इन दो प्रकृतियों का उदय नहीं है, सर्वधाति प्रकृतियों के उदय का अभाव है - यहां वे नहीं हैं यही उनका क्षय है। परंतु उदय के समय तक आये उसका क्या होगा ? वे सम्यक् प्रकृतिरूप होकर उदय में आयेंगी। भविष्यकालीन उन्हीं सर्वधाति प्रकृतियों का कहो या स्पर्धकों का कहो सदवस्थारूप उपशम है; यहां तो प्रकृतियां भिन्न-भिन्न हैं इसलिये मैं प्रकृति कह रही हूं। सामान्य से क्षयोपशम कहेंगे तो हम स्पर्धकों का नाम लेते हैं। ये प्रकृतियां सत्ता में पड़ी हैं, उदय में नहीं आ रही हैं वही उनका उपशम है। तो इन दो प्रकृतियों की अपेक्षा सम्यक्त्व का क्या नाम है ? क्षयोपशम सम्यक्त्व।

सम्यक् प्रकृति का उदय है इसलिये क्या नाम है उसका ? वेदक सम्यक्त्व।

बात एक ही है क्योंकि ये तीनों ही अवस्थाएँ बनेगी। मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन दोनों का उदयाभावी क्षय, भविष्य में इनका पड़े रहना वही सदवस्थारूप उपशम और जो देशघाति सम्यक् प्रकृति है उसका उदय - इन तीनों को मिलकर यहां वेदक सम्यक्त्व या क्षयोपशम सम्यक्त्व कहा है, बात एक ही है। अभी हम क्षायिक सम्यक्त्व देखने जा रहे हैं। यहां क्या बात होगी, कैसे होगी वह अभी देखेंगे। मिथ्यात्व के सारे परमाणु सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक् प्रकृतिरूप टर्न होकर नष्ट हो जायेंगे यानी ये दो प्रकृति सत्ता में रहेगी। फिर सम्यग्मिथ्यात्व के सारे परमाणु सम्यक् प्रकृतिरूप हो जायेंगे। तो अकेली सम्यक् प्रकृति रहेगी, उसका उदय और एक अंतर्मुहूर्त तक चलेगा। वहां हम उसको क्षयोपशम नहीं कह सकते, उस समय उसको केवल वेदक सम्यक्त्व या बाद में कृतकृत्यवेदक कहेंगे। वह कब कहेंगे, उसका विशेष वर्णन देखेंगे। इसतरह इसको क्षयोपशम सम्यक्त्व भी कहते हैं और वेदक सम्यक्त्व भी कहते हैं।

यह एक प्रश्न हुआ। यहां मोक्षमार्गप्रकाशक में ३३७ पृष्ठ पर लिखा है - सो कथन मात्र दो नाम हैं, स्वरूप में भेद नहीं है। यह हमने बहुत बार पढ़ा भी है। अब यह प्रश्न इसीके बारे में है कि *क्षयोपशम सम्यक्त्व और वेदक सम्यक्त्व इसकी परिभाषा हमें लिखनी है कृपा करके बताइये।* जहां मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन सर्वघाति प्रकृतियों का उदयाभावी क्षय; लिखना था न किसीको ! मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन दो सर्वघाति प्रकृतियों का उदयाभावी क्षय, क्योंकि दर्शनमोहनीय की तीन में से दो सर्वघाति हैं, तथा भविष्यकालीन उन्हीं प्रकृतियों का; अब हम यहां प्रकृति कहेंगे; उन्हीं प्रकृतियों का सदवस्थारूप उपशम और देशघाति जो सम्यक् प्रकृति उसका उदय ये तीन बातें हो गयीं, इसको कहेंगे क्षयोपशम सम्यक्त्व। हमें क्षयोपशम क्या है उसको समझना है। मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व की अपेक्षा इसको क्षयोपशम नाम दिया गया और सम्यक् प्रकृति की अपेक्षा इसीको वेदक सम्यक्त्व कह दिया।

प्रश्न: *यहां अनंतानुबंधी का आपने नाम ही नहीं लिया ?* अनंतानुबंधी में भी क्या होता है ? अभी चौथा गुणस्थान होगा तो अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण और संज्वलन का उदय चल रहा है। अनंतानुबंधी के परमाणु वर्तमान निषेक के ऊपर तक पड़े हैं, जब उदय में आयेंगे तो अप्रत्याख्यानावरणादिरूप होकर उदय में आयेंगे। उसको अनंतानुबंधी का कैसा उपशम कहेंगे ? सदवस्थारूप उपशम। सदवस्थारूप

उपशम का अर्थ होता है सत्ता में पड़े रहना, अपनेरूप से उदय में नहीं आना। हां, वह पररूप से होकर - किसी न किसी प्रकृतिरूप से उदय तो चलेगा ही चलेगा। *श्रोता: उदयाभावी क्षय और सदवस्थारूप उपशम ?* एक ही बात है। यहां अनंतानुबंधी के परमाणु अपनेरूप से उदय में नहीं आयेंगे। उदय से एक समय ऊपर अनंतानुबंधीरूप से पड़े हैं। जब उनका उदय होगा तब वे ही परमाणु अप्रत्याख्यानावरणादिरूप से उदय में आयेंगे। *श्रोता: आदि यानी ?* आदि यानी अभी चौथेवाला है तो अनंतानुबंधी के परमाणु अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण और संज्वलनरूप; पांचवेंवाला है तो अनंतानुबंधी और अप्रत्याख्यानावरण के परमाणु प्रत्याख्यानावरण और संज्वलनरूप; छठे-सातवेंवाला है तो उसके बाकी सभी संज्वलनरूप होकर उदय में आते हैं।

हम हमेशा कहते हैं मुनिराज के तीन कषाय चौकड़ी का अभाव है। मान लेते हैं क्रोध का उदय चल रहा है, तो ४ क्रोध में से ३ क्रोध का उदय नहीं हो रहा है अकेले संज्वलन क्रोध का उदय है; तो अन्य तीन क्रोध का क्या हुआ ? वे तो उदय से एक समय ऊपर पड़े हैं, उदय में आते-आते संज्वलनरूप होकर उदय में आयेंगे यानी सभी कर्म वहां ही पड़े हैं। अब यहां कोई मुनिराज है उनका संज्वलन का उदय चल रहा है और उनके अनंतानुबंधी आदि तीन चौकड़ी तो सत्ता में पड़ी हैं, कहां पड़ी हैं ? एक समय ऊपर पड़ी हैं और वर्तमान में संज्वलनरूप से उदय में आ रही हैं। अब परिणाम बदलने में कितना टाइम लगता है ? हो सकता है प्रत्याख्यानावरण का उदय आ जाये तो पांचवें में चला जाये, हो सकता है अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण का उदय आ जाये तो चौथे में चला जाये। *श्रोता: केवल एक समय का ही फर्क है ?* बिलकुल ! एक ही समय ऊपर पड़े हैं सारे और जीव के परिणाम चेंज हुये, तो उनका उदय हाजिर है न वहां, अपनेरूप से उदय में आ जायेंगे। *श्रोता: संज्वलनरूप जब उदय में आयेगा तो इधर के तीनों ?* वर्तमान एक समय के लिये तीनों ही संज्वलनरूप से होकर उदय में आयेंगे। *श्रोता: डायरेक्ट ?* डायरेक्ट, डायरेक्ट ! *श्रोता: मतलब सत्ता में सभी के सभी हैं ?* सत्ता में सभी पड़े हैं। हम तो कहते हैं तीन चौकड़ी का अभाव हुआ, यह तो द्रव्यानुरूप की भाषा है। करणानुरूप में कहेंगे उनका अनुदय है।

श्रोता: प्रथमोपशम सम्यक्त्व और वेदक सम्यक्त्व में क्या अंतर है ? प्रथमोपशम

औपशमिक सम्यक्त्व है, वहां कर्मों की उपशम अवस्था पायी जाती है; मिथ्यात्वादि तीनों ही प्रकृतियां उपशमित होकर पड़ी रहती हैं, किसीका उदय नहीं है। श्रोता: सम्यक् प्रकृति देशघाति है न ? सारे ही सत्ता में पड़े हैं, उदय किसीका नहीं है। प्रथमोपशम में उदय किसीका भी नहीं है। द्वितीयोपशम में भी नहीं है। प्रथमोपशम में तो किसीका उदय है ही नहीं और वेदक में सम्यक् प्रकृति का उदय चल रहा है। श्रोता: वह देशघाति है ? हां, बिलकुल ! तभी तो सम्यक्त्व चल रहा है, इसीलिये उसको क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि कहा। वेदक सम्यक्त्व नाम क्यों दिया ? सम्यक् प्रकृति के उदय में उसका सम्यक्त्व बना रहता है, परंतु वहां सूक्ष्म चल, मल, अगाढ़ दोष लगता है।

आपका कुछ प्रश्न है ? श्रोता: अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरणीय और जो उदयावली के बाहर है तो इनके अनुभाग का क्या होगा ? वहां तो सब अपने रूप से पड़े रहते हैं, उदय के समय में अनंतानुबंधी के परमाणु अप्रत्याख्यानावरणादिरूप से हो जाते हैं। हर एक के अपने-अपने अनुभाग अलग ही हैं, अप्रत्याख्यानावरण का जैसा अनुभाग है, उस जाति का अनुभाग होकर अनंतानुबंधी उदय में आता है। श्रोता: एक समय पहले उनका अनुभाग वैसा ही अनंतानुबंधी जैसा ? वह अनंतानुबंधीरूप ही था। एक ही समय में प्रकृति ही चेंज होकर अप्रत्याख्यानावरणादिरूप होकर उदय में आती है। एक ही प्रकृति के अनेक अनुभाग होते हैं। अभी अनंतानुबंधी की ही बात करेंगे या कोई भी, कोई भी कर्म हो - जो वर्तमान निषेक अभी उदयरूप है हम कहेंगे उसका मंद अनुभाग है या तीव्र अनुभाग है। एक समय ऊपर था तभी उसमें उत्कृष्ट से लेकर जघन्य तक सभी अनुभाग थे। फिर भी वर्तमान में विशिष्ट अनुभाग से उदय जब कहलाता है तब वहां जीव के जैसे परिणाम है उस अनुभागरूप से वे सारे टर्न होकर उदय में आते हैं। यानी जब हम कर्मों की अपेक्षा कथन करते हैं कि उसका मंद अनुभाग उदय में आया इसलिये जीव ने मंद परिणाम किया, तीव्र अनुभाग उदय में आया इसलिये जीव ने तीव्र परिणाम किया तब समझना यह कथन पद्धति है। कर्म की अवस्था और जीव के परिणाम दोनों एक ही समय में होनेवाली बातें हैं। किसीने किसीको टर्न नहीं किया है, जीव के अपने परिणाम अपने से हो रहे हैं, वे मंदता की ओर जाते हैं तो वहां कर्म भी मंद अनुभागरूप से उदय में आते हैं। यानी अत्यंत तीव्र हैं और अत्यंत मंद हैं वे मध्यमरूप से होकर उदय में आ सकते हैं। उसमें तो बहुत

सारे व्हेरिएशन्स हो जाते हैं। ऐसा नहीं है कि क्या करें ! अभी तीव्र अनुभाग चल रहा है इसलिये हम तीव्र क्रोध करते हैं, नहीं तो वैसे हम बहुत शांत हैं हां ! ऐसा नहीं है।

श्रोता: उपशम सम्यक्त्व को ही द्वितीयोपशम सम्यक्त्व कहते हैं ? नहीं, अभी उसकी भी बात करेंगे। हम अब तक जो देख रहे थे वह कौनसा है ? प्रथमोपशम सम्यक्त्व। देखो इसे विस्तार से जानना जरूरी है क्योंकि गुणस्थानों में भी इसका बारंबार नाम आता है। अभी हमने जिस प्रथमोपशम सम्यक्त्व की चर्चा की। अभी इनका प्रश्न अधूरा है, मैं इसको आगे बताऊंगी। अभी तक हमने प्रथमोपशम सम्यक्त्व की चर्चा की। प्रथमोपशम के लिये कंडिशन क्या थी ? मिथ्यात्व में से अनंतानुबंधी और दर्शनमोहनीय का उपशम करके जीव सम्यग्दृष्टि हुआ। कौनसे गुणस्थान में गया डायरेक्ट ? या तो पहले से चौथे में या पहले से पांचवें में या पहले से सातवें में। पहले से चौथे में जानेवाला चौथे में ही रहेगा जब तक उपशम सम्यक्त्व का काल है। पहले से पांचवें में जानेवाला पांचवें में ही रहेगा, पहले से सातवें में जानेवाला उसका सातवां-छठा हजारों बार चलता रहता है। उसी एक अंतर्मुहूर्त में हजारों बार छठा-सातवां होता है। यह तो हुआ प्रथमोपशम सम्यक्त्व।

द्वितीयोपशम कब होता है ? जो मुनिराज वेदक सम्यग्दृष्टि हैं और अभी अंतरंग में फिर से करण परिणाम मांडते हैं, हम हमारी भाषा में कहते हैं श्रेणी चढ़ते हैं। श्रेणी का अर्थ है ८वां, ९वां, १०वां, ११वां गुणस्थान प्राप्त होना। यह उपशमश्रेणी चढ़ेगा तो वेदक सम्यक्त्व में जो सम्यक् प्रकृति का उदय है वहां चल, मल, अगाढ़ दोष हैं; ऐसे दोष सहित श्रेणी चढ़ने का कार्य नहीं होगा। क्योंकि वहां विशुद्धि बहुत है न ? तो उसका उदय नहीं रहेगा। तो क्या होगा वहां पर ? उसकी सत्ता में दर्शनमोहनीय की तीनों प्रकृतियां हैं, अब तीनों में अंतर करके तीनों का उपशम किया जायेगा। पहले हमने देखा था न यह वेदक सम्यग्दृष्टि है, उसकी सत्ता में मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति तीनों हैं। सम्यक् प्रकृति का उदय हो रहा था, अब यहां विशुद्धि इतनी बढ़ेगी कि इन तीनों में ही अंतर किया जायेगा। यहां भी अधःकरण होगा, अपूर्वकरण होगा, अनिवृत्तिकरण होगा। कौनसे गुणस्थान में ? सातवें में। द्वितीयोपशम करने का कार्य सातवें में होगा। यहां बीच के कितने ही निषेकों का अभाव किया जायेगा और द्वितीय स्थिति में तीनों प्रकृतियों का उपशम होगा।

श्रोता: प्रथमोपशम में भी अंतर किया था न ? हां तो जैसे प्रथमोपशम में किया, वैसे यहां परमाणु ऊपर और नीचे दोनों जगह जायेंगे कि नहीं जायेंगे ? श्रोता: हां, जायेंगे। ऊपर कैसे जायेंगे ? श्रोता: उत्कर्षण होकर। क्यों जायेंगे उत्कर्षण होकर ? श्रोता: नया बंध। किसका बंध होगा ? श्रोता: सम्यक् प्रकृति का। सम्यक् प्रकृति का तो बंध होता नहीं है। बोलो सिंगतकरजी ! श्रोता: बंध ही नहीं है। बोलो कविताजी ? द्वितीयोपशम सम्यक्त्व में परमाणु मात्र नीचे ही आयेंगे, ऊपर नहीं जा सकते। प्रथमोपशम सम्यक्त्व में मिथ्यात्व का बंध था इसलिये परमाणु ऊपर गये थे। अब यहां दर्शनमोहनीय का बंध नहीं है, परमाणु ऊपर नहीं जा सकते, बस नीचे आयेंगे और गॅप तैयार होगी। यह द्वितीयोपशम-प्रथमोपशम में अंतर है। श्रोता: कर्मों को खाली करना है। खाली करना है पर प्रथमोपशम में ऊपर भी गये थे, नीचे भी आये थे। यहां मात्र नीचे ही आयेंगे, ऊपर नहीं जायेंगे। नीचे आकर वहां गॅप तैयार हो जायेगी। अब बहुत बड़ी गॅप हो जाती है पश्चात् द्वितीय स्थिति उपशमित होती है यह द्वितीयोपशम हुआ। यहां दर्शनमोहनीय का उपशम करके द्वितीयोपशम सम्यक्त्व हुआ है। द्वितीयोपशम के पहले वह अनंतानुबंधी की विसंयोजना करता है। बाद में उसने दर्शनमोहनीय की उपशमना की है।

अब उपशमश्रेणी में क्या कार्य होनेवाला है ? चारित्रमोहनीय की उपशमना होनेवाली है। यहां जो चारित्रमोहनीय कर्म है उसमें भी ऐसी गॅप वगैरह तैयार हो जायेगी। द्वितीयोपशम में तो दर्शनमोहनीय में अंतर हुआ है, चारित्रमोहनीय की जो २१ प्रकृतियां हैं उनमें भी ऐसा अंतर होगा फिर उपशम होगा। वह कार्य हम उपशमश्रेणी में देखेंगे। द्वितीयोपशम किसको कहना उसकी बात है। प्रथमोपशम किया वहां अनंतानुबंधी की पोझिशन क्या थी ? जब तक अनिवृत्तिकरण का अंत समय था, तब तक तो उसका उदय चल रहा था। प्रथमोपशम सम्यक्त्व के पहले समय से उसका अप्रशस्त उपशम होता है। द्वितीयोपशम के लिये क्या आवश्यक है ? पहले अनंतानुबंधी की विसंयोजना करेगा, बाद में द्वितीयोपशम करेगा। यह दोनों में अंतर है। प्रथमोपशम करनेवाला तो... फिर से, लिखना है ?

प्रथमोपशम सम्यक्त्व और द्वितीयोपशम सम्यक्त्व में क्या अंतर है ? प्रथमोपशम सम्यक्त्व करनेवाला तो चारों गति का मिथ्यादृष्टि है। द्वितीयोपशम

करनेवाले सातवें गुणस्थानवाले वेदक सम्यग्दृष्टि मुनिराज हैं। वे ही तो करेंगे न ! अब प्रथमोपशम सम्यक्त्व में जब अंतर किया जाता है तो अंतर के परमाणु नीचे और ऊपर जाते हैं क्योंकि यहां मिथ्यात्व का बंध है। नये बंध के साथ ही उत्कर्षण होता है, ऐसे ही किसी प्रकृति का उत्कर्षण नहीं होता। द्वितीयोपशम सम्यक्त्व में जब अंतर करेगा तो अंतर में जो निषेक हैं उनके परमाणु मात्र नीचे ही आयेंगे, ऊपर नहीं जायेंगे। तीसरी बात क्या है ? प्रथमोपशम करनेवाले के अनंतानुबंधी का अनिवृत्तिकरण के अंत समय तक उदय होता रहता है और द्वितीयोपशम करनेवाला सम्यग्दृष्टि है उसके अनंतानुबंधी की सत्ता ही नहीं है, वह तो पहले अनंतानुबंधी की विसंयोजना करता है। यह विसंयोजना क्या है उसको हम विस्तार से देखने जा रहे हैं। पहले अनंतानुबंधी की विसंयोजना करने के बाद द्वितीयोपशम सम्यक्त्व करता है, ऐसा प्रथमोपशम में वहां नहीं था। ख्याल में आयी बात ? विसंयोजना के कारण अनंतानुबंधी का सत्ता में से नाश हो जाता है। वह तो रिहर्सिबल प्रोसेस है, फिर भी अभी के लिये तो सत्ता में नहीं है और प्रथमोपशम करनेवाले के सत्ता में है। करणलब्धि में उसका उदय भी चल रहा है और जब सम्यक्त्व प्राप्त होगा तब उसका एक समय के लिये अन्य कषायरूप होकर उदय में आना चालू हो जायेगा। उसको हम क्या कहेंगे ? अप्रशस्त उपशम। प्रथमोपशम और द्वितीयोपशम में और भी डिफरन्स है परंतु ये कुछ मुख्य बातें हैं।

श्रोता: अनंतानुबंधी में अंतर नहीं होता है ? नहीं होता। मोहनीय कर्मों में ही अंतर होता है, इसके लिये अपवाद क्या है ? अनंतानुबंधी। अनंतानुबंधी में कभी भी अंतर पड़कर फिर उपशम वगैरह कार्य नहीं होता। जब वह श्रेणी चढ़ता है तब चारित्रमोहनीय की अन्य २१ प्रकृतियों में अंतर किया जायेगा। द्वितीयोपशम में भी दर्शनमोहनीय में अंतर किया जाता है। प्रथमोपशम कहो या द्वितीयोपशम कहो - अंतर किसमें किया जाता है ? दर्शनमोहनीय में किया जाता है। चारित्रमोहनीय में अंतर कब होता है ? जब श्रेणी में चारित्रमोहनीय की उपशमना की जाती है या क्षय किया जाता है तो उसमें गॉप तैयार की जाती है और फिर उसमें जो कुछ यथायोग्य कार्य होता है। वहां के कार्यों की चर्चा अभी नहीं करेंगे, वहां के सारे प्रोसेसेस् स्पेशल हैं। प्रथमोपशम किसे कहना और द्वितीयोपशम किसे कहना आपका यह बात ख्याल में आयी ? और क्या प्रश्न था ?

श्रोता: उपशम सम्यक्त्व को ही द्वितीयोपशम सम्यक्त्व कहते हैं ? उपशम सम्यक्त्व के दो भेद हैं, प्रथमोपशम सम्यक्त्व भिन्न है और द्वितीयोपशम सम्यक्त्व भिन्न है। हमने उसकी चर्चा की है, अभी और एक डिफरन्स लिख लो। प्रथमोपशम सम्यक्त्व में मरण नहीं होता, द्वितीयोपशम सम्यक्त्व में मरण हो सकता है। हमने देखा है द्वितीयोपशम सम्यक्त्व किया, उपशमश्रेणी में मरण हो गया तो मरकर कहां जायेंगे ? बोलो ! *श्रोता: देव में।* देव में ही जायेंगे। क्यों देव में ही जायेंगे ? क्योंकि द्वितीयोपशम का कार्य किसने किया है ? *श्रोता: मुनिराज ने।* मुनिराज ने। जिसने सम्यक्त्व होने के पहले तिर्यचायु, मनुष्यायु या नरकायु बांधी हो ऐसे जीव को पांचवां गुणस्थान भी प्राप्त नहीं होता, 'भी' कहा मैंने। क्या कहा ? उसके सम्यक्त्व तो हो सकता है, क्षायिक सम्यक्त्व भी हो सकता है। क्या कहा ? जिसने पहले आयु का बंध किया है, कौनसे ? देव छोड़कर अन्य तीनों में से किसी आयु का; मनुष्यायु बांधी हो, तिर्यचायु बांधी हो या नरकायु का भी बंध किया हो तो बाद में सम्यक्त्व होने का तो वह अधिकारी है। उसको सम्यक्त्व हो सकता है, उसमें कोई बाधा नहीं है। क्षायिक सम्यक्त्व भी हो सकता है परंतु उसको पांचवां गुणस्थान भी प्राप्त नहीं होगा।

आपके पास कोई प्रूफ है ? *श्रोता: श्रेणिक राजा।* श्रेणिक राजा जब तीर्थकर होंगे तब तो हमारा उपकार करेंगे ही करेंगे, अभी करणानुयोग में हम उनको बहुत बार याद करते हैं। *श्रोता: ऐसा पढ़ने में आता है कि ग्यारहवें गुणस्थान से गिरकर पहले मिथ्यात्व में आता है।* ग्यारहवें से कोई सीधा मिथ्यात्व में नहीं आता। ग्यारहवें से क्रम से छठे तक आयेगा बाद में मिथ्यात्व में आ सकता है। आने दो ना उसमें क्या है ! उसकी कहां और किसने ना पाड़ी है ? *श्रोता: आप कह रहे थे कि स्वर्ग में ही जायेगा।* वहां उपशमश्रेणी में मरनेवाले की बात चल रही है। वह नीचे नहीं आता उसकी बात कहां चल रही है ? आगामी आयु के बंध बिना वह कैसे मरेगा ? ऊपर के गुणस्थान में मरता है उसका अर्थ उसने पहले देवायु बांधी थी। आप बराबर सुनना। *श्रोता: आयु के निषेक पूरे होते हैं तब भी आ सकता है ?* आप बराबर सुन लो, नियम से पांचवां गुणस्थान कौन प्राप्त करेगा ? जिसने देवायु का बंध किया है उसको ५वां क्या ११वें तक का गुणस्थान प्राप्त होगा। जिसने मनुष्यायु, तिर्यचायु, नरकायु बांधी है उसके ५वां गुणस्थान भी नहीं होगा तो ऊपर की बात ही नहीं है। जो ग्यारहवें गुणस्थान से गिरकर

मिथ्यात्व में जाता है उसका अर्थ वह अबद्धायु है या उस जीव ने इन तीन आयु में से किसीका बंध नहीं किया है।

जैसे श्रेणिक राजा को श्रावकोत्तम कहा है, उनका गुणस्थान कौनसा था ? श्रोता: चौथा। क्यों ? श्रोता: नरकायु का बंध। नरकायु का बंध हुआ था। हम यहां बैठे-बैठे ही कह सकते हैं उनका चौथा ही गुणस्थान था, उनका पांचवां नहीं था। ख्याल में आयी न बात ? क्योंकि ये ऐसे नियम हैं। वे तो नरक में हैं यह बात मालूम है, तो नरकायु का बंध किया था। सम्यग्दर्शन के बाद तो नरकायु का बंध होता नहीं है। कब किया था ? मिथ्यात्व अवस्था में किया था। बाद में सम्यग्दर्शन होने में कोई बाधा नहीं आयी। बाद में क्षायिक सम्यक्त्व होने के लिये भी कोई बाधा नहीं आयी। बाद में तीर्थंकर प्रकृति बांधने के लिये भी कोई बाधा नहीं आयी। परंतु पांचवां गुणस्थान नहीं था। उनके अणुव्रत के परिणाम भी नहीं थे, होंगे ही नहीं। जिस आयुकर्म का बंध हुआ है, वैसे ही सहजरूप से उनके परिणाम होंगे। यह सहज ऐसे निमित्त-नैमित्तिक संबंध होते हैं। उन निमित्तों को देखकर हम कार्य का अनुमान लगा सकते हैं। यह पराधीनता नहीं हुयी वहां पर। कर्मों की अवस्था देखकर वहां कौनसा कार्य हो सकता है या नहीं हो सकता, हो रहा है या हुआ था इसका हम अनुमान लगा सकते हैं।

ये नियम भी क्यों हैं ? निमित्त से तो होता नहीं है। हम कहते हैं न कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र से सम्यग्दर्शन नहीं होगा; उनके उपदेश से या उनके फॉलोअर्स को नहीं होगा। क्यों नहीं होगा ? ऐसी पार्शालिटि क्यों ? जिनके ऐसे भाव चल रहे हैं, इन निमित्तों को देखकर हम कार्य का अनुमान लगा सकते हैं कि यहां अभी मिथ्यादर्शन चल रहा है; यहां सम्यक्त्व है ही नहीं और जब तक यह मान्यता चलेगी, जब तक कुदेवादि में आदर बुद्धि चलेगी तब तक सम्यक्त्व होने का चान्स नहीं है। श्रोता: परिणाम की बात है। हां, कर्म की अवस्थाएँ जीव के परिणामों को दिखानेवाले हैं न।

श्रोता: यदि कोई चतुर्थ गुणस्थानवर्ती जीव है और उसको प्रथमोपशम सम्यक्त्व हुआ है। यदि उसके बाद में पांचवां गुणस्थान होता है तो वहां कौनसा सम्यक्त्व होगा ? वेदक होगा या उपशम ही होगा ? पहले से पांचवें में गया है न वह ? श्रोता: पहले से चौथे में गया है और प्रथमोपशम सम्यक्त्व हुआ है उसको। उसके बाद में यदि उसको पांचवां गुणस्थान होता है तो ? उसको प्रथमोपशम के काल में चौथे से पांचवां गुणस्थान

नहीं होगा। प्रथमोपशम के काल में अगर पहले से चौथे में गया है तो एक अंतर्मुहूर्त तक चौथा ही रहेगा। बाद में नियम से वेदक सम्यग्दृष्टि होगा और वेदक सम्यग्दर्शन प्राप्त करने के अंतर्मुहूर्त पश्चात् उसको पांचवां गुणस्थान प्राप्त हो सकता है। या कोई ऐसा है कि पहले से डायरेक्ट पांचवें में भी जायेगा। परंतु उपशम सम्यक्त्व चल रहा है और अभी चौथे में आया, अभी पांचवें में आया, अभी सातवें में ऐसा नहीं होता है।

श्रोता: एक बार सम्यग्दर्शन प्राप्त करने के बाद विकल्प की भूमिका में आया। उसके बाद निर्विकल्प हुआ और विशुद्धि बढ़कर ज्यादा होगी तो पांचवां गुणस्थान ? प्रथमोपशम के काल में ऐसा नहीं होता, ऐसा ही सहज नियम है। भले ही उसके निर्विकल्प से सविकल्प आप कहते हो वैसे हो जाये फिर भी वहां गुणस्थान उसका चौथा है। शुरू में विशुद्धि बढ़ रही है वह गुणसंक्रमण का काल है, उसके बाद विध्यातसंक्रमण होगा और उसके बाद वहीं से वह पांचवां पाता है ऐसा बिलकुल नहीं है। इसमें कोई दो राय नहीं है, हां, ऐसा ही वस्तु का स्वरूप है। *श्रोता: क्षयोपशम सम्यक्त्व में हो सकता है कि चौथे से पांचवें में आये। ऐसा यहां नहीं होता ?* किसको ? प्रथमोपशम के काल में जो गुणस्थान प्राप्त हुआ है, अंतर्मुहूर्त तक वही रहेगा। वहां गुणस्थानों का परिवर्तन नहीं होता है। यदि होना होता तो पहले से ही होता है, पहले से ही वह प्रोसेस अलग होता है। प्रथमोपशम सम्यक्त्व में रहते हुये चौथे से पांचवें में गया ऐसा बिलकुल नहीं होता है। हां, द्वितीयोपशम के काल में उपशमश्रेणी चढ़कर उतरने के बाद छठे से पांचवें, चौथे में जाकर वापस पांचवें या सातवें में जा सकता है।

अभी यहां पर एक प्रश्न अधूरा ही रह गया। वेदक सम्यक्त्व की परिभाषा वही थी कि वहां सम्यक् प्रकृति का उदय चल रहा है इसलिये इस सम्यग्दृष्टि को वेदक सम्यक्त्व कहते हैं। वेदन करना यानी उसका उदय होना। यहां लिखा है ये दोनों सम्यक्त्व, ये दो तो हैं ही नहीं, नाम दो हैं। क्षयोपशम सम्यक्त्व का ही नाम वेदक सम्यक्त्व है। तत्त्वार्थसूत्र के दूसरे अध्याय में जीव के पांच असाधारण भाव बताये हैं। कितने भाव बताये हैं ? *श्रोता: पांच।* पांच, कौनसे ? *श्रोता: औपशमिक।* औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिक। तो इनमें से क्षयोपशम सम्यक्त्व यह कौनसा भाव है ? हां ! क्षयोपशम भाव है, बस ! क्षयोपशम भाव है। अब आगे बढ़े हम ? हमने द्वितीयोपशम के बारे में भी देखा कि द्वितीयोपशम के काल में मरण हो सकता है।

प्रथमोपशम के काल में मरण नहीं होता और द्वितीयोपशम में मरनेवाला जीव नियम से देव होगा यानी देवों की जो निर्वृत्ति अपर्याप्त अवस्था है वहां वह द्वितीयोपशम से वेदक सम्यक्त्व प्राप्त करेगा। वहां की शरीरपर्याप्ति पूर्ण होने के पहले वह क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि हो जाता है। *श्रोता: किस समय होगा ?* समय ? कहीं पर भी हो सकता है। द्वितीयोपशम का कितना काल बाकी है ? कब मरा है उस पर वह निश्चित होगा। विग्रहगति में भी हो सकता है। परंतु देवों का निर्वृत्ति अपर्याप्त काल है उसके पूर्ण होने के पहले-पहले वेदक सम्यग्दृष्टि हो जाता है। आपका प्रश्न है ? बोलो।

श्रोता: पहले औपशमिक सम्यक्त्व हुआ बाद में द्वितीयोपशम हुआ दोनों में काल का कितना अंतर है ? काल का अंतर ? पहले औपशमिक सम्यग्दृष्टि हुआ उसके बाद वह नियम से क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि होगा। क्षयोपशम सम्यक्त्व में कम से कम अंतर्मुहूर्त तो रहेगा ही रहेगा और द्वितीयोपशम सम्यक्त्व प्राप्त करने के लिये उनको सातवें गुणस्थान में होना आवश्यक है। वेदक सम्यग्दृष्टि का छठे-सातवें में हजारों बार आना-जाना होगा। फिर अंतर्मुहूर्त में ही तीन करण परिणामों के द्वारा अनंतानुबंधी की विसंयोजना करेगा। अंतर्मुहूर्त के बाद में पुनः तीन करण परिणामों के द्वारा द्वितीयोपशम सम्यक्त्व होगा यानी बीच में अंतर्मुहूर्त तो कम से कम जायेगा ही जायेगा। *श्रोता: पहले पल्य का असंख्यातवां भाग अंतर कहा ?* एक प्रथमोपशम से छूटकर दूसरा प्रथमोपशम होने तक बीच का जो कम से कम अंतर है, उसको पल्य का असंख्यातवां भाग काल कहा। उसको हमने देखा था न ? प्रथमोपशम के लिये दो प्रकृतियों की लंबी सत्ता होते हुये तीनों को एक साथ उपशमित नहीं कर सकता। इसलिये वहां कंडिशन डाली है कि मिथ्यात्व गुणस्थान में उद्वेलना होते-होते उनकी स्थिति घट जाती है तब जाकर तीनों को एक साथ उपशमा सकते हैं। यह और एक डिफरन्स है दोनों में - दो प्रथमोपशम सम्यक्त्व के बीच में जघन्य अंतर पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण है परंतु दो बार द्वितीयोपशम होगा उनके बीच में जघन्य अंतर अंतर्मुहूर्त होगा।

अब आगे बढ़ेंगे, कोई प्रश्न है ? प्रथमोपशम, द्वितीयोपशम, वेदक के बारे में ? *श्रोता: द्वितीयोपशम में स्थिति उतनी ही है तो उपशम कैसे किया जाता है ? श्रोता: उनका कहना है कि द्वितीयोपशम में भी अंतर किया जाता है तो वहां भी तीनों की*

स्थिति अंतःकोड़ाकोड़ी सागर ही है, तो उनमें अंतर कैसे होता है ? हां ! द्वितीयोपशम में इसलिये हो रहा है कि वहां सातवें गुणस्थान में करण परिणामों में विशुद्धि बहुत ज्यादा है। यहां मिथ्यात्व में से प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त करनेवाला है तो इन तीन प्रकृतियों को एक साथ उपशमा नहीं सकता जब तक सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति की स्थिति करीबन एक सागर जितनी नहीं होती। श्रोता: प्रथमोपशम सम्यक्त्व के लिये पल्य के असंख्यातवां भाग टाइम है, लेकिन क्षयोपशम सम्यक्त्व के लिये कोई लिमिटेशन नहीं है ? हां। श्रोता: वह महीनों, सागरों या बरसों में कोई डिफरन्स नहीं है ? आपका प्रश्न ऐसा है कि प्रथमोपशम सम्यक्त्व दुबारा होने के लिये इसमें पल्य का असंख्यातवां भाग जितना बड़ा अंतर बीच में जाना चाहिये। परंतु वेदक सम्यक्त्व के लिये ऐसा कोई रूल नहीं है ? कम से कम अंतर्मुहूर्त तक मिथ्यात्व में रहेगा वह अर्लिऐस्ट सम्यक्त्व प्राप्त कर सकता है; परंतु कोई महीनों, वर्षों तक भी। श्रोता: एक भव, तीन भव ? सागरों नहीं कहेंगे क्योंकि पल्य के असंख्यातवें भाग की प्रथमोपशम की लिमिट है न। वेदकयोग्य काल पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण है, उसके बाद उपशमयोग्य काल शुरू होगा। श्रोता: नहीं, सागरों नहीं एक-दो भव ? हां, भव-भव चले जायेंगे न ! वेदकयोग्य काल में २-४-५-१० भव चले जायेंगे तो कोई बात नहीं है।

हमने देखा था स्वयंभूरमण में असंख्यात महामत्स्य पंचम गुणस्थान में हैं। सम्मूर्च्छन पंचेन्द्रिय तो प्रथमोपशम प्राप्त नहीं कर सकते हैं। वहां तो जो जन्म से सादि मिथ्यादृष्टि हैं; जिनकी सत्ता में तीन प्रकृतियां मौजूद हैं, उनमें से सम्यक् प्रकृति का उदय शुरू हो जाता है और उनको वेदक सम्यक्त्व हो जाता है। ऐसा होने में कहीं कोई बाधा नहीं है। प्रथमोपशम होने के लिये कंडिशन थी और जितने काल का दो प्रथमोपशम के बीच में अंतर है न, उतने काल तक दुबारा प्रथमोपशम नहीं हो सकता परंतु उस काल में वेदक सम्यक्त्व होता है उसको कहेंगे वेदकयोग्य काल। सादि मिथ्यादृष्टि है उसका वह वेदकयोग्य काल चलता है उतने काल तक प्रथमोपशम नहीं होगा, होगा तो वेदक सम्यक्त्व हो सकता है उसमें कोई बाधा नहीं है।

श्रोता: अलग से जो अभी देशनालब्धि वगैरह का जब क्षयोपशम सम्यक्त्व दुबारा होगा तो उसके लिये भी..। कंडिशन नहीं है। देशना आदि की कंडिशन नहीं है, परंतु अंतर्मुख परिणाम, तत्त्वों का चिंतन, तत्त्वश्रद्धान वह सब उसमें आ ही जायेगा।

वेदक सम्यक्त्व एक अंतर्मुहूर्त में दुबारा हो सकता है, इसलिये उन पांचों ही लब्धियों की वहां चर्चा नहीं है। परंतु बहुत लंबे काल तक सम्यक्त्व नहीं हुआ है उसको भी डायरेक्ट वेदक सम्यक्त्व होगा। तिर्यचों को नारकियों को भी; वहां तो हो रहा है उनमें तो प्रथमोपशम भी हो सकता है। परंतु जिसे भी सम्यक्त्व होता है उसे तत्त्व का चिंतन कहो, उसका भावभासन कहो, अंतर्मुख परिणाम कहो वे तो होंगे ही होंगे। ऐसे ही बैठे हैं टीव्ही देख रहे हैं मजे में और यहां सम्यक्त्व हो जाये, कोई नींद में सो रहा है और सपने में सम्यक्त्व हो जाये - ऐसा कभी भी नहीं होता।

श्रोता: प्रथमोपशम सम्यक्त्व के बाद क्षायिक सम्यक्त्व पाने के लिये कुछ अंतर जरूरी है ? प्रथमोपशम सम्यक्त्व के बाद डायरेक्ट वेदक सम्यक्त्व होता है। वेदक सम्यक्त्व में अंतर्मुहूर्त रहकर वह क्षायिक हो सकता है यानी एक अंतर्मुहूर्त के अंतर से क्षायिक भी हो सकता है और लंबे से लंबे वेदक सम्यक्त्व में रहने का कितना काल है बेन ? *श्रोता: ६६ सागर/ ६६ सागर ? श्रोता: दो ६६ सागर/ दो ६६ सागर* कहते हैं क्योंकि एक बार तीसरे गुणस्थान में आकर फिर ६६ सागर तक तो वेदक सम्यक्त्व में रह सकता है इसलिये दो ६६ सागर कह रहे हैं परंतु वह मिथ्यात्व का अंतर है, वेदक सम्यक्त्व का काल नहीं है। उसके बाद क्षायिक हो सकता है यानी पूरे ६६ सागर तक यदि वेदक रहा तो नियम से क्षायिक हो जायेगा। क्षायिक यानी उसके कर्म उदय में आकर खिर जायेंगे इसलिये नहीं, वह क्षायिक का पूरा प्रोसेस करके क्षायिक होगा, हां। नहीं तो ऐसा लगता है ६६ सागर में सब कर्म खिर गये - खलास हुये इसलिये क्षायिक हुआ - ऐसा नहीं है, हां।

श्रोता: एक योग वाले को भी सम्यक्त्व हो सकता है, उसमें क्या अपेक्षा है ? कौनसा एक योग ? *श्रोता: तीन योग में से एक योग ?* तीन योग में से यानी किसीको मनोयोग में होता है, किसीके वचनयोग में होता है और किसीको काययोग में होता है - किसी भी एक योग में। केवल एक योगवाला एकेन्द्रिय ही होता है, उसका एक ही योग कायम रहता है। दो इन्द्रिय आदि जीव हैं उनके दो योग हैं- काययोग और वचनयोग; योग अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्त में पलटता है। संज्ञी पंचेन्द्रिय तीन योगवाले हैं- दो योगवाले हो या तीन योगवाले हो उनका छोटे अंतर्मुहूर्त में योग का पलटना चलता ही रहता है। मनोयोग, वचनयोग और काययोग पलटते रहते हैं। कुछ लोग योग का अर्थ उसके

द्वारा होनेवाली शरीर की, वचन की प्रवृत्ति ऐसा करते हैं, वह गलत अर्थ है। वचनयोग का अर्थ बड़बड़ाते हुये सम्यक्त्व होता है ऐसा नहीं है और मनोयोग यानी मन से कुछ न कुछ कल्पना कर रहा है और सम्यक्त्व हो जाये ऐसा नहीं है। योग का अर्थ है आत्मप्रदेशों का कंपन और वहां कौनसी वर्गणाओं का अवलंबन ले रहा है, किसका ग्रहण कर रहा है उसकी अपेक्षा योगों का कथन होता है। अब यहां हम क्षायिक सम्यक्त्व का प्ररूपण देखने जा रहे हैं। क्षायिक सम्यक्त्व प्ररूपण नामक दूसरे अधिकार का मंगलाचरण है-

जयंत्यर्हद्विधूतांगसूर्यपाध्यायसाधवः।

लोके ऽस्मिन् भव्यलोकानां शरणोत्तममंगलम्॥ १ ॥

अब क्षायिक सम्यक्त्व प्ररूपण लिखते हैं। ११० नंबर की गाथा पढ़ेंगे।

दंसणमोहक्खवणापट्टवगो कम्मभूमिजो मणुसो।

तित्थयरपायमूले केवलिसुदकेवलीमूले॥ ११० ॥

प्रथम में प्रथम यह क्षायिक सम्यक्त्व कौनसा जीव प्राप्त कर सकता है, उसकी बात है। मेरा प्रश्न है क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव कौन -कौनसी गतियों में पाये जाते हैं ? *श्रोता: चारों ही गतियों में।* मैंने क्या पूछा ? पाये जाते हैं। तो चारों ही गतियों में पाये जाते हैं। यहां क्या पूछ रहे हैं, क्या बता रहे हैं ? उसका प्रारंभक यानी शुरू करनेवाला, क्षायिक का प्रारंभ कौनसा जीव करता है ? क्षायिक सम्यक्त्व होने की जो शुरुआत है, वह कौन करता है ? कहां करता है ? उसे निमित्तरूप से कौनसी क्या-क्या बातें होती हैं उसकी बात यहां हम बता रहे हैं।

कर्मभूमि में उत्पन्न मनुष्य यानी कर्मभूमि का मनुष्य होना चाहिये। भोगभूमि के मनुष्य को क्षायिक सम्यक्त्व की शुरुआत नहीं होगी। क्षायिक नहीं होता है - ऐसा नहीं कहा मैंने। क्षायिक पाया जायेगा, क्षायिक के साथ यहां से मरकर जायेगा तो। क्षायिक की शुरुआत मनुष्य ही को होती है और वह भी कर्मभूमि के मनुष्य को - एक बात। दूसरी कंडिशन क्या है ? **तीर्थकर, अन्य केवली या श्रुतकेवली के पादमूल में ही** यानी उनके प्रेझेन्स में ही उनके उपदेश के अनुसार ही **दर्शनमोह की क्षपणा का प्रस्थापक अर्थात् प्रारंभक होता है।** यह पादमूल की आवश्यकता है वह तो

निमित्तरूप से है क्योंकि इसके यहां जो श्रद्धा की निर्मलता होनी है उसमें केवली-श्रुतकेवली का निमित्त है ही न ! उनके सान्निध्य की यहां कंडिशन लिखी है। **क्योंकि क्या लिखा है ? अन्यत्र ऐसा विशुद्ध ज्ञान नहीं होता।** यहां ज्ञान की अत्यंत विशुद्धता है, निर्मलता है, स्पष्टता है, तत्त्वों का भावभासन स्पष्ट रीति से है।

कहते हैं- **अधःकरण के प्रथम समय से लेकर** यानी यहां पर भी तीन करण होने जा रहे हैं। अधःकरण के प्रथम समय से लेकर **जब तक मिथ्यात्व और मिश्र मोहनीय का द्रव्य सम्यक्त्वप्रकृतिरूप होकर संक्रमण करता है तब तक अंतर्मुहूर्त काल तक दर्शनमोहनीय की क्षपणा का प्रारंभक कहते हैं।** प्रारंभक यानी कौन ? शुरू करनेवाला। कब से कब तक ? यहां जो तीन करण परिणाम होते हैं- पहला है अधःकरण, फिर अपूर्वकरण, फिर अनिवृत्तिकरण। यहां अनिवृत्तिकरण में मिथ्यात्व का द्रव्य है वह सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक् प्रकृतिरूप होता है और फिर सम्यग्मिथ्यात्व का सभी द्रव्य सम्यक् प्रकृतिरूप हो जाता है यानी अकेली सम्यक् प्रकृति रह जाती है। उसमें भी हम कहेंगे ८ वर्ष प्रमाण स्थिति शेष रहेगी वगैरह आगे की बातें हैं, तो ये सारे कैसे हैं ? प्रारंभक हैं। जब तक कृतकृत्यवेदक नहीं रह जाता तब तक प्रारंभक कहेंगे। यह क्या है वह सब हम देखेंगे, एक-एक स्टेज कौन-कौनसी इसमें आनेवाली हैं, उनकी बातें बहुत विस्तार से चलेगी।

क्षायिक सम्यक्त्व प्रारंभ करनेवाला कौन जीव है ? कर्मभूमि का मनुष्य। दूसरी कंडिशन- तीर्थकर, केवली या श्रुतकेवली के पादमूल में ही यह होता है। *श्रोता: तीर्थकर अपनेआप होते हैं ?* क्या ? *श्रोता: तीर्थकरों को क्षायिक सम्यक्त्व ?* हां, तीर्थकरों को मत कहना। तीर्थकर होनेवाले जीव, जो कैसे हैं ? अब देखो, जो तीर्थकर प्रकृति बांधनेवाले जीव दूसरे और तीसरे नरक में हैं वे यहां से तो सम्यक्त्व के साथ नहीं गये हैं, तीर्थकर प्रकृति बांध रहे हैं। नरकायु बांधने के बाद जो वेदक सम्यग्दृष्टि होकर तीर्थकर प्रकृति बांध रहे थे, वे मरण के पूर्व मिथ्यात्व में गये और दूसरे या तीसरे नरक में जन्म लिया। जाते ही शरीरपर्याप्ति पूर्ण होते ही वेदक सम्यक्त्व प्राप्त किया और वहां पर भी हर समय तीर्थकर प्रकृति बांध रहे हैं। उन्होंने अभी क्षायिक का कार्य नहीं किया है, क्षायिक होते तो पहले नरक में चले जाते। अब वहां से वे मां के गर्भ में आयेंगे, उनका भी गर्भकल्याणक आदि सब होगा। उनके तो अभी क्षायिक सम्यक्त्व नहीं हुआ है;

उनको यह कंडिशन नहीं है कि किसी तीर्थकर, केवली या श्रुतकेवली के पादमूल में जाये। वह तीर्थकर प्रकृति की सत्तावाला जीव है, वह स्वयं ही क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त करता है।

श्रोता: श्रुतकेवली किसे कहते हैं ? श्रुतकेवली उन मुनिराजों को कहते हैं जिनको श्रुत केवलज्ञान है। उसका अर्थ क्या है ? पूरे द्वादशांग का ज्ञान है ऐसे मुनिराजों को श्रुतकेवली कहेंगे। समयसार में जिस अपेक्षा से श्रुतकेवली कहा है - जो आत्म को जानता है वह श्रुतकेवली - वह अपेक्षा यहां नहीं लगाना। ख्याल में आया न ? ये भावलिंगी संत ही होंगे और बारह अंग के ज्ञाता होंगे तभी हम उनको श्रुतकेवली कहेंगे और उन्हीं के उपदेश के अनुसार उनके पादमूल में क्षायिक सम्यक्त्व की प्राप्ति हो सकती है। समयसार में श्रुतकेवली कहा वह अपेक्षावश बात है क्योंकि उन्होंने सब जान लिया है, आत्मा का अनुभव किया है। इसलिये अपेक्षासहित बात है परंतु उनको सर्वथा श्रुतकेवली मत कहना, हां। अब प्रारंभक किसको कहना और निष्ठापक यानी पूर्ण करनेवाला किसको कहना यह आगे की गाथा १११ में देखेंगे।

णिट्टवगो तट्टाणे विमाणभोगावणीसु घम्मे य।

किदकरणिज्जो च्दुसुवि गदीसु उप्पज्जदे जम्हा ॥ १११ ॥

अभी निष्ठापक यानी पूर्णता करनेवाला कौन है उसकी बात है। जिसने क्षायिक का प्रारंभ किया है ऐसा मनुष्य; जिसने प्रारंभ किया है वहीं पर रहते हुये - मनुष्य रहते हुये पूर्णता भी कर सकता है, करेगा भी और करेगा ही। परंतु जिसकी आयु पूर्ण हुयी है, कब ? कृतकृत्यवेदक काल में; कृतकृत्यवेदक क्या है उसको देखेंगे हम; वह चारों गति में जहां की आयु बंधी है वहां जाकर उत्पन्न हो सकता है और वहां जाकर उसका आगे का जो कार्य है - मात्र सम्यक् प्रकृति रही है और उसका एक-एक निषेक उदय में आकर नष्ट होनेवाला है और वह क्षायिक होनेवाला है, यह जो पूर्णता का कार्य है वह जहां उत्पन्न होगा उस गति में जाकर एक छोटे अंतर्मुहूर्त में पूर्ण करेगा।

अभी यहां से पढ़ेंगे- उस प्रारंभक काल के अनंतर समयवर्ती समय से लेकर क्षायिक सम्यक्त्व ग्रहण करने के पूर्व समय तक निष्ठापक होता है। जहां, जहां यानी मनुष्य में प्रारंभ किया था वहां ही यानी एक पौंसिबिलिटि क्या है ? अभी

उसकी आयु चल रही है तो यहीं पर उसने क्षायिक का कार्य पूरा किया। जैसे हमारे श्रेणिक राजा ने यहीं पर क्षायिक का कार्य पूरा किया था। क्षायिक लेकर वे पहले नरक में गये हैं। **वा सौधर्मादि कल्प** - सौधर्मादि यानी कहां तक? सौधर्म-ईशान से लेकर कहां तक ? हां, हां, बोलो ? *श्रोता: सोलहवें स्वर्ग तक।* सोलहवें स्वर्ग तक क्योंकि कल्प कहे हैं। **या कल्पातीत** ऊपर सर्वार्थसिद्धि तक सब जगह **वा भोगभूमिया मनुष्य** यानी क्षायिक किया, परंतु सम्यग्दर्शन प्राप्त करने के पहले मनुष्यायु बांधी थी, बाद में सम्यक्त्व प्राप्त किया और बाद में क्षायिक सम्यक्त्व किया तो ही सम्यक्त्व के साथ भोगभूमि में जायेगा।

देखो यह कंडिशन सुन लो- जो क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि मनुष्य या तिर्यच है वह सम्यक्त्व के साथ मरकर ना नरक में जायेगा, ना तिर्यच में जायेगा, ना मनुष्य में जायेगा। वेदक सम्यक्त्व यानी क्षयोपशम सम्यक्त्व के साथ देव में जा सकता है - मनुष्य की बात कर रहे हैं। परंतु सम्यक्त्व लेकर यदि नरक में जायेगा तो क्षायिक की कंडिशन आवश्यक है। अगर मनुष्य सम्यक्त्व के साथ मनुष्य में उत्पन्न होता है तो भोगभूमि में ही उत्पन्न होगा और वह भी क्षायिक ही होना चाहिये तभी जाकर सम्यक्त्व के साथ वहां उत्पन्न हो सकता है। अभी इस पंचमकाल का कोई मनुष्य सम्यक्त्व के साथ भोगभूमि में उत्पन्न नहीं होगा क्योंकि उसके क्षायिक नहीं हो सकता। भोगभूमि का तिर्यच क्षायिक सम्यग्दृष्टि होता है वह भी यहीं से क्षायिक लेकर जाता है। यानी कोई वेदक सम्यक्त्व के साथ भोगभूमि का या कर्मभूमि का तिर्यच होकर उत्पन्न हो जाये ऐसी बात नहीं हो सकती है।

ये तीनों ही गतियों में जानेवाले के लिये पहले मिथ्यात्व में उस आयु का बंध किया था, बाद में सम्यग्दर्शन हुआ है - वेदक सम्यक्त्व हुआ तो वहां जाने से पहले नियम से सम्यक्त्व छूट जायेगा। यहां का कोई सम्यग्दृष्टि है और आप मानते हो कि विदेहक्षेत्र में जाकर मोक्ष में जानेवाला है तो उसको यहां का सम्यक्त्व छोड़कर जाना पड़ेगा। वहां फिर प्राप्त करेगा कोई बात नहीं है। *श्रोता: वहां फिर प्राप्त करना पड़ेगा ?* हां, मोक्ष जानेवाला है तो बिलकुल करना पड़ेगा नियम है। अंतर्मुहूर्त के लिये छूट जाता है, वहां जाकर यथायोग्य काल में प्राप्त करेगा उसमें कोई नवाई नहीं है। परंतु ऐसा अगर हम सोचते हैं कि यहां सम्यग्दृष्टि है और यहां से सम्यक्त्व के साथ डायरेक्ट

विदेह में जाकर अभी मोक्ष जायेगा तो यह बात संभव नहीं है। श्रोता: इसका अर्थ यह भी हुआ कि मनुष्यपर्याय में अभी यहां भरतक्षेत्र में कोई सम्यक्त्व के साथ जन्म नहीं लेगा। बिलकुल नहीं लेगा। यहां कोई भी जन्म से सम्यग्दृष्टि नहीं है- ना पुरुष है, ना स्त्री है। हम मानते हैं कि अमुक-अमुक का अवतार चल रहा है, वह सम्यग्दृष्टि था और अभी यहां पर जन्म लिया है। ऐसी भ्रमणायेँ चलती हैं और समाज में ऐसी बातें चलती रहती हैं उसमें कोई क्या करेगा ? हां, करणानुयोग के नियम पता हो तो उन भ्रमणाओं से बच सकते हो।

श्रोता: भोगभूमि में नहीं जाता ? यहां से जीव मिथ्यादर्शन के साथ भोगभूमि में जा सकता है, जायेगा। वेदक सम्यक्त्व लेकर नहीं जा सकता है। आयु बांध ली है, सम्यक्त्व प्राप्त करने में कोई बाधा नहीं है। जिसने मनुष्यायु का बंध किया है, उसने बाद में सम्यक्त्व प्राप्त कर लिया। अब आयु बंधी है तो उसी पर्याय में जाना पड़ेगा, मनुष्य में ही जन्म लेना पड़ेगा - या कर्मभूमि का या भोगभूमि का - जो जैसी आयु बंधी है। कहते हैं भोगभूमि में सम्यक्त्व के साथ जाने के लिये क्षायिक की कंडिशन है, क्षायिक तो इस पंचमकाल में होता नहीं है और अभी यहां से कर्मभूमि में जाना है तो मिथ्यात्व में ही जाना पड़ेगा। अभी इस काल में क्षायिक सम्यग्दर्शन नहीं होता है; जिसने पहले मनुष्यायु, तिर्यचायु और नरकायु का बंध किया है और अभी जो वेदक सम्यग्दृष्टि है मरण के पहले वह उसका सम्यक्त्व छूटकर वहां चला जायेगा। जिसने आयु का बंध नहीं किया है और सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लिया है - अब जो आयु का बंध करेगा तो देव का ही करेगा और वह सम्यक्त्व के साथ देव में चला जायेगा।

श्रोता: भोगभूमि में जाने की कोई व्यवस्था नहीं है ? भोगभूमि में जाने की व्यवस्था मिथ्यात्व में है। श्रोता: सम्यक्त्व के साथ ? सम्यक्त्व के साथ नहीं जा सकता इतनी बात है, मिथ्यात्व के साथ जा सकता है। श्रोता: नरक में ले जा सकता है ? नरक में भी नहीं ले जा सकता है। नरक लिये भी क्षायिक या कृतकृत्यवेदक होने की आवश्यकता है। वही बात हुयी न ! कृतकृत्यवेदक यानी अभी क्षायिक होने जा रहा है। श्रोता: मिथ्यात्ववाला कुभोगभूमि में जा सकता है ? मिथ्यात्ववाला भोगभूमि में भी जा सकता है, कुभोगभूमि में भी जा सकता है, उसके लिये ना नहीं है। वह सम्यक्त्व के साथ नहीं जा सकता है यह बात चल रही है अपनी। श्रोता: देव में ? हां, देव में जाता है।

श्रोता: भोगभूमि में सम्यक्त्व प्राप्त नहीं कर सकता है न ? भोगभूमि में सम्यक्त्व प्राप्त कर सकता है। हां, चारों ही गतियों में सम्यक्त्व प्राप्ति में कोई बाधा नहीं है। एक भव से दूसरे भव में जाते समय उसका सम्यक्त्व साथ रहेगा कि नहीं रहेगा उसकी चर्चा चल रही है।

यहां से देव में जानेवाले का वेदक सम्यक्त्व रहेगा। जो वेदक सम्यग्दृष्टि देव हैं वे सम्यक्त्व के साथ मनुष्य में आयेंगे जहां चौथा काल चलता है। छठे नरक तक के नारकी सम्यक्त्व के साथ मनुष्य में आयेंगे। सम्यग्दृष्टि तिर्यच - असंख्यात सम्यग्दृष्टि तिर्यच हैं और वे पांचवें गुणस्थानवाले होंगे तो सोलहवें स्वर्ग तक के देवों में जायेंगे - सम्यक्त्व लेकर चले जायेंगे। परंतु यह क्षायिक की बात चल रही है न। मनुष्य में से मनुष्य होना है - पंचमकाल के लिये अभी कोई मनुष्य में से मनुष्य होता है यहां तो क्षायिक नहीं है और उसको सम्यक्त्व लेकर जाना है तो वह पॉसिबल नहीं है। यानी यहां का मनुष्य, मनुष्य में जन्म लेना चाहता है क्योंकि बहुत सारे लोग महाविदेह में जाना चाहते हैं तो वे मिथ्यादृष्टि ही रहना चाहते हैं, हां। क्योंकि जो कार्य यहां हो सकता है वह तो नहीं करना चाहते हैं। क्योंकि वादे बनाने हैं न ! वादा करना है तो क्या करेंगे ? नहीं-नहीं हम महाविदेह में चले जायेंगे। वहां क्या होगा ? वहां तीर्थकर का उपदेश सुनेंगे और फिर सम्यक्त्व प्राप्त करेंगे।

श्रोता: सम्यक्त्व छोड़ता है, मिथ्यात्व ग्रहण करता है तो वह अपने आप से ? अपने आप होता है क्योंकि वह नियम से छूट ही जायेगा। हमने निमित्त नक्की किया; कौनसा निमित्त चाहते हैं ? महाविदेह के तीर्थकर का, वह भी सीमंधर भगवान का। यानी निमित्त से कार्य होता है यह हमारी मान्यता अभी इतनी बलवान है-टढ़ है। श्रोता: नरक की अपेक्षा ? यह कारणविपरीतता चलती है - निमित्त से कार्य होता है यह विपरीत मान्यता चल रही है और यह कारणविपरीतता कायम रहे और सम्यग्दर्शन हो जाये ? श्रोता: वीर्यांतराय ? वीर्यांतराय कहां से लाये बीच में ? यह विपरीत मान्यता संबंधी विपरीतता चल रही है न ? ज्ञान में भी स्वरूपविपरीतता, कारणविपरीतता, भेदाभेदविपरीतता - ये सब विपरीतता चल रही हैं। यानी ज्ञान में वस्तुस्वरूप संबंधी क्लॉरिटी नहीं है, स्पष्टता नहीं है, कुछ नहीं है और हो जाये सम्यग्दर्शन ? नहीं हो सकता है। यह मिथ्याज्ञान सहित सम्यग्दर्शन चाहता है। ज्ञान में जब तक स्पष्टता नहीं है,

क्लॉरिटी नहीं है और बिलकुल सही स्वरूप जब तक उसके ख्याल में नहीं है, तब तक उसको सम्यक्त्व नहीं होगा। ज्ञान तो सत्य होना ही चाहिये न ? क्या छोटे ज्ञान के साथ सम्यग्दर्शन हो जायेगा ?

यह नरक-स्वर्ग कुछ होते ही नहीं है, इन लोगों ने ऐसे ही सिर्फ लोगों को डराने के लिये ऐसा कहा है ऐसा माननेवालों को सम्यग्दर्शन हो जायेगा ? उसका सर्वज्ञ की वाणी पर कितना भरोसा है ? जो कहता है न किसने देखे आलु में जीव ? दिखाओ हमको किसने देखे ? आपने देखे ? स्वर्ग है किसने जाना ? कोई लेटर-वेटर आया क्या आपको ? ऐसे कहनेवाले को आस्तिक्य भाव नहीं है। आस्तिक्य तो एक लक्षण है सम्यग्दर्शन का। सर्वज्ञ की वाणी पर इसको जरा भी भरोसा नहीं है और बारंबार उसमें प्रश्न चिन्ह लगाता है। हमारे वैज्ञानिकों ने इतना प्रूव किया है, आपके सर्वज्ञ क्या कहते हैं ऐसा हमको पूछते हैं। आपके सर्वज्ञ ? कौन पूछते हैं ? जैनी भाई ही पूछते हैं कि आपका धर्म क्या कहता है ? आपके सर्वज्ञ क्या कहते हैं ? इतना तो अविनय है सर्वज्ञ के प्रति और सर्वज्ञ के बारे में उसका सही निर्णय है ही नहीं। जब तक उनके स्वरूप का भावभासन नहीं होता है, बिलकुल स्पष्टरूप से सर्वज्ञ के स्वरूप की सिद्धि नहीं होती है तब तक उसको सम्यक्त्व नहीं होगा। जैसा सर्वज्ञ का स्वरूप है; वैसा हमारा अपना स्वभाव है। हम स्वभाव का निर्णय करें या सर्वज्ञ का निर्णय करें एक ही बात है और वह नहीं करता है तब तक उसको आगे का रास्ता प्राप्त नहीं होगा।

ज्ञान संबंधी इतनी क्लॉरिटी होनी चाहिये, स्वाध्याय की मुख्यता इसलिये तो बतायी है। *श्रोता: जे स्वरूप समझ्या विना..*। हां, 'जे स्वरूप समझ्या विना' क्या किया ? 'पाम्यों दुःख अनंत' वह तो अनंत दुःख और भी आगे चलेगा। क्या करें ! ये इतने बहुत सारे नियम हैं। हम नहीं कहते कि आप नियम याद करो, परंतु इनके द्वारा अपने अभिप्राय की भूल ख्याल में आती है। हम कुछ न कुछ चाहते हैं, कहीं न कहीं जन्म लेना चाहते हैं, कुछ न कुछ करना चाहते हैं। परंतु यह सब इतना सरल सहज है, ऑटोमैटिक प्रोसेस है - करने से, चाहने से कुछ नहीं होता है। अरे ! अपनी चाह मिटने का यह मार्ग है और हम कहीं न कहीं, कुछ न कुछ मानते हैं - अपने अभिप्राय में कहीं अंदर ही पड़ा है कि ऐसा करने से सम्यक्त्व होगा, वैसा करने से होगा। ज्ञान की निर्मलता में ही यह सम्यक्त्व का कार्य होनेवाला है और किसीमें नहीं होनेवाला है।

अब देखो आगे गाथा नंबर १११ - अभी हमने पढ़ी थी न। **उस प्रारंभक काल के अनंतर समयवर्ती समय से लेकर क्षायिक सम्यक्त्व ग्रहण करने के पूर्व समय तक** यानी जब तक सम्यक् प्रकृति का एक निषेक बाकी है तब तक, **निष्ठापक होता है** यानी उसकी पूर्ण करनेवाला होता है। **जहां प्रारंभ किया था वहां ही** यानी **मनुष्य में ही** किया था वहीं पर निष्ठापक हो सकता है। **या सौधर्मादि कल्प** में यानी पहले से लेकर सोलहवें स्वर्ग तक **या कल्पातीत** में। कल्पातीत में यानी कहां पर ? वह सारे त्रैवेयक आदि से लेकर सर्वार्थसिद्धि तक। **वा भोगभूमिया मनुष्य** क्षायिक के साथ भोगभूमि में मनुष्य होकर जन्मेगा यानी वह कृतकृत्यवेदक के साथ मरकर वहां जाकर क्षायिक की पूर्णता करेगा **या तिर्यच** यानी भोगभूमि का तिर्यच। **वा घर्मा नामक नरक पृथ्वी में** यानी पहले नरक में **निष्ठापक होता है क्योंकि बद्धायु कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि** बद्धायु यानी जिसने ऑलरेडि आयु का बंध किया है ऐसा, इसका नाम क्या है ? इसको कृतकृत्यवेदक कहा।

कृतकृत्यवेदक क्यों ? क्योंकि उसने मिथ्यात्व की क्षपणा कर दी है, उसके पहले अनंतानुबंधी को हटाया है। मिथ्यात्व चला गया - नाश हो गया। सम्यग्मिथ्यात्व का भी पूर्ण नाश हुआ है और अभी सम्यक् प्रकृति एक अंतर्मुहूर्त जितनी बाकी है। उसका एक-एक निषेक गलकर अभी वह क्षायिक होने जा रहा है इसको कहेंगे कृतकृत्यवेदक । हम भी कृतकृत्य हो जाते हैं जब लड़की की शादी हो जाती है तभी। या लड़के को उसके मनचाहा कोई जॉब मिल जाये तब। यह कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि **मरकर चारों गतियों में उत्पन्न होता है** यानी जहां की आयु बांधी है वहां उत्पन्न होता है। **वहां निष्ठापन करता है**, यदि उस काल में मरेगा तो की बात है। हो सकता है यहां क्षायिक पूर्ण होकर फिर वहां चला जाये। **उसका कथन आगे होगा।** हम भी बाकी का कथन आगे देखेंगे।

बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

२३. अनंतानुबंधी की विसंयोजना

आचार्य श्री नेमिचन्द्र सिद्धांतचक्रवर्ती ने लब्धिसार ग्रंथ की रचना की है। उसीके आधार से पं. टोडरमलजी ने सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका लब्धिसार-क्षपणासार भाषाटीका द्वंद्वारी भाषा में लिखी है और इसका हिंदी अनुवाद अभी आपके हाथ में है। दूसरा अधिकार जो क्षायिक सम्यक्त्व की प्ररूपणा है उसकी अपनी चर्चा प्रारंभ हो चुकी है।

क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त करनेवाला जीव कौनसा है हमने देखा था। नीताबहन याद है ? श्रोता: कर्मभूमि का मनुष्य। कर्मभूमि का मनुष्य, हां और दूसरी कंडिशन ? तीर्थकर, केवली या श्रुतकेवली के पादमूल में क्षायिक सम्यक्त्व की प्राप्ति करता है। क्षायिक सम्यक्त्व प्रारंभ करनेवाले जीव की ये कंडिशनस बता रहे हैं। निष्ठापक यानी कृतकृत्यवेदक अवस्था में यदि उसका मरण हो जाये तो ? जहां की उसने आयु बांधी है वहां जाने के पश्चात् यानी वहां जाते हुये या जाने पर उसका जो एक अंतर्मुहूर्त का कार्य चल रहा है वह वहां पर भी चलता रहता है, वह क्षायिक सम्यक्त्व पूर्ण करता है। उसको कहेंगे निष्ठापक। मरण ना हो तो ? कर्मभूमि के मनुष्य ने प्रारंभ किया था, वहीं रहते हुये उसी भव में वह क्षायिक की पूर्णता करता है यह बात है। किसी भी आयु का बंध क्यों न किया हो, सम्यक्त्व होने में और क्षायिक सम्यक्त्व होने में कोई बाधा नहीं आती यह भी हमने देखा। अभी यह कौनसा जीव है, उसकी पात्रता क्या है केवल ये बातें बतायीं। अब क्षपणा करता है तो उसमें क्या-क्या बातें होती हैं उसकी अपनी चर्चा चलेगी। पृष्ठ ९८, गाथा नंबर ११२-

पुष्पं तियरणविहिणा अणं खु अणियट्टिकरण चरिमम्हि।

उदयावलिबाहिरगं ठिदिं विसंजो जदे णियमा ॥ ११२ ॥

पहले पढ़ेंगे, फिर एक-एक का अर्थ देखेंगे। दर्शनमोह की क्षपणा के पहले यानी क्षपणा प्रारंभ करने के पूर्व में तीन करण विधान द्वारा अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ के उदयावली के बाह्य जो सर्व निषेक उनका विसंयोजन करते हुये अनिवृत्तिकरण के अंत समय में नियम से विसंयोजन करता है, बारह कषाय, पांच नोकषायरूप परिणमाता है। वही कहते हैं। इसका अर्थ देखते हैं- अभी जो दर्शनमोहनीय की क्षपणा करने जा रहा है उसके पूर्व में आवश्यक कंडिशन क्या है ?

देखो जो क्षायिक सम्यग्दृष्टि होता है न, उसके अनंतानुबंधी चार और दर्शनमोहनीय की तीन ऐसे सात कर्मों का क्षय हो जाता है, सत्ता में से नाश हो जाता है। दर्शनमोहनीय की तीन की क्षपणा करने के पूर्व में अनंतानुबंधी का नाश किया जाता है। अनंतानुबंधी का नाश करने का जो प्रोसेस है उसका नाम है विसंयोजना। अनंतानुबंधी की विसंयोजना होती है, ऐसा प्रोसेस अन्य कर्मों में नहीं होता।

विसंयोजना सामान्य से कोई भी सम्यग्दृष्टि कर सकता है, चारों गति का जीव; सातवें नरक का नारकी भी, विसंयोजना कर सकता है। क्षपणा का कार्य आगे चलकर कर्मभूमि का मनुष्य ही करेगा। यानी विसंयोजना हुयी इसलिये क्षायिक का कार्य होगा ही ऐसा नहीं है। सम्यग्दृष्टि चतुर्थ गुणस्थानवाला जीव भी जो वेदक सम्यग्दृष्टि है वह विसंयोजना का कार्य कर सकता है। क्यों ? कैसे करेगा ? विशुद्धि हुयी, तीन करण परिणाम हुये। उस काल में अनंतानुबंधी जो सत्ता में है, वह सभी का सभी अन्य कषायरूप परिणमित हो जाता है, संक्रमित होता है, नष्ट हो जाता है - सत्ता में से निकल जाता है। यदि वह जीव सम्यक्त्वी ही रहा तो फिर दुबारा अनंतानुबंधी की सत्ता होने का कोई चान्स नहीं है। यदि ऐसा जीव मिथ्यात्व में चला जाता है तो दुबारा अनंतानुबंधी का बंध शुरू हो जाता है और फिर उसकी सत्ता बनी रहती है।

श्रोता: क्या यह कार्य केवल क्षयोपशम सम्यक्त्व में होता है ? आपका प्रश्न है कि क्या यह कार्य केवल क्षयोपशम सम्यक्त्व में होता है ? उसमें भी दो मत हैं। औपशमिक सम्यक्त्व के काल में भी विसंयोजना माननेवाला एक मत है। दोनों ही आचार्यों के मत हैं तो हमें दोनों ही मतों का स्वीकार करना है क्योंकि उनमें से सही मत कौनसा है उसका निर्णय हम नहीं कर सकते। आचार्यों की परम्परा से जो उपदेश चले आये हैं, उनमें से एक मत ऐसा है कि वेदक सम्यग्दृष्टि ही विसंयोजना करेगा। एक मत ऐसा है कि औपशमिक सम्यग्दृष्टि भी करेगा यानी वेदक तो करता ही करता है उपशम सम्यग्दृष्टि भी कर सकता है ऐसे दो मत हैं। *श्रोता: द्वितीयोपशमवाला भी करेगा ?* द्वितीयोपशम सम्यक्त्व के पहले अनंतानुबंधी की विसंयोजना करके पश्चात् ही द्वितीयोपशम करता है। पहले विसंयोजना करके ही द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि हुआ है तो वहां तो कोई सवाल नहीं है। विसंयोजना होती है यानी क्या होता है ? कि अनंतानुबंधी का सत्ता में से नाश होता है।

श्रोता: प्रथमोपशम सम्यक्त्व के काल में भी कोई कर सकता है क्या ? प्रथमोपशम सम्यक्त्व के काल में कोई कर सकता है ऐसा एक मत है। दर्शनमोह की क्षपणा के पहले यानी पूर्व में तीन करण विधान द्वारा; ये तीन करण मालूम हैं न अभी ? कौनसे हैं ? अधःकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण। ये तीन करण विसंयोजना के लिये कार्यभूत है अभी। इसके कारण यहां अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ की विसंयोजना हो जायेगी। अभी सत्ता में कितने सारे निषेक पड़े हैं ? अंतःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण। उदयावली में जो निषेक हैं वे ऐसे ही रहेंगे और उदयावली के ऊपर के सभी निषेक नष्ट हो जायेंगे - संक्रमित हो जायेंगे। जो निषेक उदयावली में प्रवेश करता है उसका संक्रमण नहीं होता। वर्तमान का एक-एक निषेक अन्यरूप से उदय में आकर वे नष्ट होनेवाले हैं। परंतु उसके ऊपर के जितने निषेक हैं, उनका गुणसंक्रमण आदि जो कुछ विधान अभी बतायेंगे - वैसे वे अन्य कषायरूप परिणमित होकर, संक्रमित होकर नष्ट हो जायेंगे।

उदयावली के बाह्य जो सर्व निषेक उनका विसंयोजन करते हुये विसंयोजन का अर्थ हमने देखा- अन्य कर्मरूप परिणमित हो जाते हैं। **अनिवृत्तिकरण के अंत समय में** - यहां का अनिवृत्तिकरण - तीन करण मांड रहे हैं न; अनंतानुबंधी की विसंयोजना होने के लिये जो तीन करण मांडे हैं उनमें से जो अनिवृत्तिकरण है, यहां पर भी अपूर्वकरण में स्थितिकांडकघात, अनुभागकांडकघात, गुणसंक्रमण वगैरह सब यहां लगा लेना, वह बतायेंगे अभी। **अनिवृत्तिकरण के अंत समय में नियम से विसंयोजना करता है।** यानी वहां तक उसकी विसंयोजना पूर्ण हो जाती है। **बारह कषाय, पांच नोकषायरूप परिणमाता है।** यह बात चौथे गुणस्थान की अपेक्षा बतायी है। **वही कहते हैं-** क्योंकि यहां किसमें संक्रमित होगा ? बंधनेवाले में संक्रमित होगा। चौथे गुणस्थान में बारह कषायों का, पांच नोकषायों का बंध है तो उनरूप से संक्रमित होकर नष्ट हो जायेंगे।

असंयत, देशसंयत, प्रमत्त या अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती वेदक सम्यग्दृष्टि जीव यहां वेदक सम्यग्दृष्टि कहा है। जिस ग्रंथ में जो कथन होगा वहां उसीका कथन होगा, उसकी अपेक्षा चलेगी। **पहले अधःकरण करता है, उसका विधान प्रथमोपशम सम्यक्त्व के ग्रहण में कहा वैसा जानना।** क्या-क्या देखा था अधःकरण में, क्या होता

है ? प्रति समय अनंतगुणी विशुद्धता बढ़ती चली जाती है। यहां लिखा है देखो- **वहां प्रति समय अनंतगुणी विशुद्धता से बढ़ता है**, यानी विशुद्धि प्रति समय अनंतगुणा-अनंतगुणा-अनंतगुणा होती चली जाती है। **उसको समाप्त करके अपूर्वकरण को प्राप्त होकर** अब ये विसंयोजनावाला अपूर्वकरण है। हर अपूर्वकरण में चार बातें होती हैं। कौनसी ? **गुणश्रेणी, गुणसंक्रमण, स्थितिकांडकघात और अनुभागकांडकघात ये चार कार्य यहां शुरू होते हैं। वहां प्रथमोपशम सम्यक्त्व की उत्पत्ति संबंधी गुणश्रेणी के द्रव्य से** हमने देखा था प्रथमोपशम सम्यक्त्व में जब गुणश्रेणी हुयी थी तो कितनी बड़ी हुयी थी ? अपूर्वकरण का काल प्लस अनिवृत्तिकरण का काल प्लस और थोड़ा काल। उसमें कितना द्रव्य दिया गया था ? वहां हमने देखा था, अपकर्षित होकर कुछ द्रव्य गुणश्रेणी में दिया गया था। वहां जितना द्रव्य दिया था उससे **देशसंयत का**, जितना देशसंयत में देते हैं **उससे सकलसंयत का और** जितना सकलसंयम में देते हैं **उससे इस अनंतानुबंधी विसंयोजन का गुणश्रेणी के लिये अपकर्षण किया द्रव्य क्रम से असंख्यातगुणा है।**

हमने तत्त्वार्थसूत्र के आधार से देखा था गुणश्रेणी निर्जरा के असंख्यातगुणावाले जो स्थान हैं - वहां देखा था न हमने ? हां, सम्यग्दृष्टि, फिर श्रावक, फिर संयत और फिर विसंयोजक लिया। *श्रोता: पंचम गुणस्थान को नहीं लिया ?* श्रावक को लिया न पंचम में, पंचम गुणस्थानवर्ती के लिये श्रावक शब्द है। पहला जो सम्यग्दृष्टि बताया है वह प्रथमोपशम सम्यक्त्व के लिये लिया है। प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टि, पांचवां गुणस्थान, फिर संयमी और फिर अनंतानुबंधी की विसंयोजना यानी वहां गुणश्रेणी और ज्यादा प्रमाण में होती है। **गुणश्रेणी के लिये अपकर्षण किया द्रव्य क्रम से असंख्यातगुणा है** उनमें अधिक-अधिक द्रव्य का अपकर्षण होकर गुणश्रेणी में दिया जायेगा। **तथा उनके गुणश्रेणी आयाम का प्रमाण क्रम से संख्यातगुणा हीन है**, हमने चार जीव देखे- प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त करनेवाला, पांचवें गुणस्थानवाला, छठे-सातवें गुणस्थानवाला और अभी विसंयोजक - क्रम से उनके गुणश्रेणी का आयाम यानी लंबाई छोटी-छोटी हैं। इसका अर्थ है यहां के अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण का काल भी छोटा है। वहां जितना अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण का काल मिलकर और थोड़ा अधिक गुणश्रेणी का आयाम था, यहां भी गुणश्रेणी का आयाम उतना ही होगा परंतु वह

छोटा है। उसका अर्थ है यहां के करण परिणाम का काल भी छोटा है, छोटे अंतर्मुहूर्त प्रमाण है।

वह वह यानी गुणश्रेणी का आयाम अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण के काल से अधिक और गलितावशेषरूप जानना। वहां पर भी हमने ऐसे ही देखा था। अपूर्वकरण का काल प्लस अनिवृत्तिकरण का काल प्लस थोड़ा अधिक - इतनी लंबी गुणश्रेणी बनी थी। फिर भी वहां की गुणश्रेणी से यहां की गुणश्रेणी संख्यातवें भाग प्रमाण है। इसका अर्थ क्या हुआ ? यहां का अपूर्वकरण का काल और अनिवृत्तिकरण का काल उसके संख्यातवें भाग प्रमाण है। यही नक्की होता है न उससे ? गुणश्रेणी का आयाम छोटा है और अपकर्षण का द्रव्य असंख्यातगुणा है यानी कितना द्रव्य अधिक खिरेगा इसका ! अब यह गुणश्रेणी कैसी है ? गलितावशेष यानी नीचे से एक-एक समय बीत जायेगा तो गुणश्रेणी का एक-एक निषेक नीचे से खिर जायेगा।

यहां अनुभागकांडक आयाम पूर्व से अनंतगुणा है। अनुभागकांडक आयाम का अर्थ होता है कितना अनुभाग एक कांडक में नष्ट होता है। वहां हमने प्रथमोपशम सम्यक्त्व में देखा था तो कहते हैं उससे अनंतगुणा। **स्थितिकांडक आयाम पूर्व से संख्यातगुणा है।** यानी स्थिति के कांडक होते हैं तो ये बड़े-बड़े कांडक होते हैं। **गुणसंक्रमण द्रव्य पूर्व से असंख्यातगुणा है।** हमने जितना द्रव्य मिथ्यात्व से सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक् प्रकृतिरूप होते देखा था, जो गुणसंक्रमण भागहार से भाग देकर आया था। उससे भी यहां का गुणसंक्रमण होनेवाला द्रव्य असंख्यातगुणा है। पहले ही समय में असंख्यातगुणा है, दूसरे समय में उससे असंख्यातगुणा, तीसरे में उससे असंख्यातगुणा। **यहां गुणसंक्रमण मात्र अनंतानुबंधी का ही है,** यहां अन्य किसी प्रकृति में ऐसा गुणसंक्रमण नहीं होता। देखो, तीन करण हो रहे हैं। वहां भी तीन करण परिणाम हुये थे। परंतु विशिष्ट यानी पर्टिक्युलर प्रकृति पर ही उसका असर था। है न ? केवल मिथ्यात्व का गुणसंक्रमण देखा। अब यहां मात्र अनंतानुबंधी में ही गुणसंक्रमण होगा। मात्र अनंतानुबंधी प्रकृति ही यहां नष्ट होने जा रही है। **औरों का नहीं है ऐसा जानना।** अन्य प्रकृतियों का यहां गुणसंक्रमण नहीं हो रहा है।

ऐसे संख्यात हजार स्थितिखंड यानी स्थितिकांडकघात, स्थितिबंध और अनुभागखंडों को करके अपूर्वकरण को समाप्त कर अनिवृत्तिकरण को प्राप्त

होता है। ये सारे प्रोसेस हमने वहां देखे थे। गुणश्रेणी क्या होती है, कितनी लंबी होती है हमने देख लिया। यहां गुणसंक्रमण हो रहा है इसलिये अपूर्वकरण में उसको याद किया था; गुणश्रेणी, गुणसंक्रमण, स्थितिकांडकघात और अनुभागकांडकघात। यहां गुणसंक्रमण भी होता रहता है। गुणश्रेणीरूप रचना चल ही रही है। एक कांडकघात होने के बाद दूसरा कांडकघात भी होता ही रहता है। सभी प्रोसेसेस् अट अ टाइम चल रहे हैं और उसके द्वारा अनंतानुबंधी प्रकृति नष्ट होनेवाली है। अब देखेंगे गाथा ११३ -

अणियट्टीअद्धाए अणस्स चत्तारि होंति पव्वाणि।

सायरलक्खपुधत्तं पल्लं दूरावकिट्ठि उच्छिद्धं ॥ ११३ ॥

अब अनिवृत्तिकारण काल में अनंतानुबंधी का स्थितिसत्त्व घटते जाता है उसके हम चार पर्व देखेंगे। पहले पृष्ठ ९९ पर हम टीका पढ़ेंगे- **अनिवृत्तिकरण के काल में अनंतानुबंधी के स्थितिसत्त्व के चार पर्व होते हैं।** स्थितिसत्त्व यानी सत्ता में जितनी स्थिति थी उसकी बात है। अब अपूर्वकरण काल से ही स्थितिकांडकघात होते-होते स्थिति घटती चली आयी है। अभी स्थिति घटती ही चली जायेगी क्योंकि यह पूर्णरूप से नष्ट होनेवाली है। अनंतानुबंधी की स्थिति शुरू में कितनी थी ? अंतःकोड़ाकोड़ी सागर। अपूर्वकरण में अनेक स्थितिकांडकघात हुये हैं, अब यह स्थिति घटती चली जायेगी।

अब यहां देखते हैं स्थितिसत्त्व घटते-घटते जायेगा बीच-बीच में एक-एक स्टेप बतायेंगे। पहले पर्व तक आया, फिर स्थिति घटते-घटते दूसरे पर्व तक आया, फिर स्थिति घटते-घटते तीसरे पर्व तक आया, फिर अंत में स्थिति आवली प्रमाण रह गयी। क्यों ऐसे अलग-अलग पर्व बता रहे हैं ? यहां जो स्थितिकांडकघात होते हैं उनका प्रमाण अलग-अलग होता है इसलिये यहां स्थिति के चार पर्व बतायें हैं। चार अलग-अलग प्रमाणवाली विशिष्ट स्थिति बतायी है। पहले पर्व से दूसरे पर्व प्रमाण स्थिति होने तक बीच में पल्य के संख्यातवें भाग प्रमाण कांडक होंगे। दूसरे पर्व से लेकर तीसरे पर्व तक पल्य के संख्यात बहुभाग प्रमाण कांडक होंगे। तीसरे पर्व से लेकर चौथे पर्व तक कांडक का प्रमाण पल्य का असंख्यात बहुभाग होगा। उसकी चर्चा, उनके नाम हम देखने जा रहे हैं। देखो, **अनिवृत्तिकरण के काल में अनंतानुबंधी के स्थितिसत्त्व के** - सत्ता में जो स्थिति पड़ी है उसकी बात है - उसके **चार पर्व होते हैं। स्थिति घटने की मर्यादा से चार विभाग होते हैं।** स्थिति घटते-घटते हम विशिष्ट पॉइंट पर आ गये

तो उसका नाम बतायेंगे- आपको उसका प्रमाण बतायेंगे। फिर घटते-घटते कहां तक स्थिति आयेगी उसका प्रमाण बतायेंगे। **वहां पहले समय में**, कौनसे ? अनिवृत्तिकरण के पहले समय की बात है। अपूर्वकरण में तो स्थिति हीनाधिक भी थी, परंतु उसको अभी अनेक स्थितिकांडकघात करने के बाद घटाते-घटाते अनिवृत्तिकरण के प्रथम समय में **पृथक्त्व लक्ष सागर प्रमाण स्थितिसत्त्व होता है**, पृथक्त्व यानी पहले हमने कुछ सात या आठ देखा था और लाख और आगे सागर। पहले तो हम कोड़ाकोड़ी सागरों की बात करते थे। अब कुछ लाख सागर स्थिति बाकी है यहां पर।

अनिवृत्तिकरण परिणाम होते हैं तो वहां सब जीवों की अपेक्षा उनकी स्थिति समान होगी। इसलिये स्टार्टिंग में एक स्थिति कितनी रहती है ? पृथक्त्व लक्ष सागर। **क्योंकि अंतःकोड़ाकोड़ी स्थितिसत्त्व था उसे अपूर्वकरण में स्थितिखंडों द्वारा घटाने पर इतना अवशेष रहता है।** अनंतानुबंधी की विसंयोजना करने के लिये अधःकरण से शुरू किया था, फिर अपूर्वकरण में आया था तभी से स्थितिकांडकघात होने लगे थे। हजारों स्थितिकांडकघात होने के कारण अंतःकोड़ाकोड़ी सागर की स्थिति घटकर पृथक्त्व लक्ष सागर प्रमाण हो गयी। अब आगे- **अनंतानुबंधी बिना अन्य कर्मों का स्थितिसत्त्व यहां अंतःकोड़ाकोड़ी सागर ही जानना। यह प्रथम पर्व हुआ।** स्टार्टिंग में इतना स्थितिसत्त्व है, उसके पश्चात् भी स्थितिकांडकघात होने का कार्य चल ही रहा है। **उसके पश्चात् संख्यात हजार स्थितिखंड होने पर क्रम से** यानी अभी स्थिति घटती चली जायेगी। पृथक्त्व लाख सागर है यानी कुछ लाख सागर है फिर लाख सागर हो जायेगी। उसमें भी घटते चली जायेगी। तो कहते हैं **असंज्ञी पंचेन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, एकेन्द्रिय के बंध समान हजार सागर, सौ सागर, पचास सागर, पच्चीस सागर और एक सागर स्थितिसत्त्व होता है।** किसका ? अनंतानुबंधी का स्थितिसत्त्व कितना है उसकी बात चल रही है।

अनंतानुबंधी का स्थितिबंध कितना होगा यहां पर ? यहां से तो उत्तर मिल गया। आप क्या कहते हैं कितना होगा ? मेरा प्रश्न है यहां अनंतानुबंधी का बंध कितना होगा ? अरे ! यह सम्यग्दृष्टि है, अनंतानुबंधी के बंध का सवाल नहीं है। अनंतानुबंधी का स्थितिसत्त्व घट रहा है। उसका बंध तो मिथ्यादृष्टि को हो रहा था। अब यह सम्यग्दृष्टि है और सत्ता में जो अनंतानुबंधी है उसका घात हो रहा है। अनंतानुबंधी के स्थितिसत्त्व की

तुलना किसके साथ हो रही है ? स्थितिसत्त्व के साथ हो रही है कि स्थितिबंध के साथ हो रही है ? श्रोता: सत्त्व के साथ। नहीं, अनंतानुबंधी का स्थितिसत्त्व है वह घटते-घटते किसके समान हो रहा है ? असंज्ञी के, असंज्ञी के स्थितिसत्त्व के समान कि स्थितिबंध के समान ? श्रोता: बंध समान। स्थितिबंध के समान, देखो-देखो, मैं बताती हूं। एकेन्द्रिय जीवों में स्थितिसत्त्व कितना हो सकता है मॅक्झिमम ? श्रोता: एक सागर। नहीं, ७० कोड़ाकोड़ी सागर में एक समय कम। मैंने स्थितिसत्त्व पूछा, स्थितिबंध नहीं।

कोई देव ७० कोड़ाकोड़ी सागर का मिथ्यात्व का बंध करके दूसरे ही समय में मरकर एकेन्द्रिय में जा सकता है। देव क्यों कहा ? तिर्यच और मनुष्य इतना बंध करके दूसरे समय में एकेन्द्रिय में नहीं जा सकते, अंतर्मुहूर्त बीच में जाना पड़ता है। जो देव इतना बंध करके नेक्स्ट समय में एकेन्द्रिय में जायेगा उसका सत्त्व कितना है ? एक ही समय घटा न सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर में से ? भले एकेन्द्रिय नया बंध एक सागर का करेगा, सत्त्व की बात है। फिर पढ़ेंगे- अनंतानुबंधी का सत्त्व घटाते-घटाते असंज्ञी के बंध के समान कहा, सत्त्व के समान नहीं कहा क्योंकि जिस पर्याय में से आया है उतना स्थितिसत्त्व लेकर वहां चला जाता है। जो संज्ञी पंचेन्द्रिय में से एकेन्द्रिय में जाता है वह पंचेन्द्रिय का स्थितिसत्त्व लेकर गया है। वहां जाते ही सत्त्व घटता नहीं है, बंध एकेन्द्रिय के समान होगा। सत्त्व तो पूर्व का जो ले गया है वह कुछ काल तक तो एक-एक समय से घटेगा फिर उसमें कटौती हो जायेगी। देखो, फिर से पढ़ेंगे इस वाक्य को-

संख्यात हजार स्थितिखंड होने पर क्रम से अभी हम स्थितिसत्त्व की तुलना कर रहे हैं, किसके साथ ? उनको इतना ही बताना था कि पृथक्त्व लक्ष सागर था, घटते-घटते हजार सागर हुआ, फिर सौ सागर हुआ, पचास सागर हुआ। उसको बताने के लिये **असंज्ञी पंचेन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, एकेन्द्रिय के;** आगे क्या है ? **बंध समान**। उनके अनंतानुबंधी के बंध समान नहीं कहा क्योंकि उनका अनंतानुबंधी का उत्कृष्ट स्थिति बंध चार बटे सात सागर हो जायेगा। सामान्य से बंध के समान इतनी बात थी। कितना है ? हजार सागर क्योंकि इसका स्थितिसत्त्व क्रम से घट रहा है तो उस पॉइंट पर तो आयेगा न ? हजार सागर हुआ, घटते-घटते-घटते सौ सागर हुआ, घटते-घटते पचास सागर हुआ, पच्चीस सागर हुआ, एक सागर हुआ। इतना बताने के लिये असंज्ञी आदि सबको याद किया - हां, तुलना की, उनके बंध के

समान कहा। उनके सत्त्व के समान नहीं कहा क्योंकि जो जिस पर्याय में है और जहां से मरकर आया है उसके अनुसार सत्त्व तो हीनाधिक होगा। तो **एक सागर स्थितिसत्त्व होता है।**

पुनश्च स्थितिसत्त्व एक सागर हुआ तो भी स्थितिकांडकघात चलते ही रहेंगे। **संख्यात हजार स्थितिखंड होने पर पल्य मात्र स्थितिसत्त्व होता है।** पृथक्त्व लक्ष सागर से शुरू हुआ था और एक-एक बार में कितना घटा ? पल्य का संख्यातवां भाग ही घटा। जैसे एक कांडक हुआ, दूसरा कांडक हुआ, तीसरा कांडक हुआ। घटते-घटते-घटते एक सागर हुआ। उससे भी घटते-घटते एक पल्य तक आ गया। स्थितिसत्त्व अभी एक पल्य प्रमाण बाकी है। **यहां इन स्थितिखंडों का आयाम** यानी एक-एक स्थितिखंड-स्थितिकांडक कितना बड़ा है ? **अर्थात् एक-एक स्थितिखंड में स्थितिसत्त्व घटने का प्रमाण, वह पल्य के संख्यातवें भाग मात्र जानना। यह दूसरा पर्व हुआ।** पल्य मात्र स्थिति तक पहुंचा यह दूसरा पर्व है। आगे देखेंगे-

पुनश्च पल्य को संख्यात का भाग देकर वहां एकभाग बिना बहुभाग मात्र आयाम से युक्त अपनी भाषा में- मान लेते हैं हमने पल्य के पांच भाग किये। तो एकभाग बिना बहुभाग यानी कितने भाग ? *श्रोता: चार भाग।* चार भाग; यानी पांच से भाग दे दो और चार से गुणा करो। ख्याल में आया न ? हम संख्यात का प्रमाण पांच मान लेते हैं; तो पांच से भाग दे दो, चार से गुणा करो तो एक-एक कांडक का आयाम; इसको क्या कहेंगे ? संख्यात बहुभाग कहेंगे। पल्य का संख्यातवां भाग जो है, **संख्यात का भाग देकर एकभाग बिना बहुभाग मात्र आयाम से युक्त ऐसे हजारों स्थितिखंड होनेपर दूरापकृष्टि है नाम जिसका ऐसा पल्य का संख्यातवां भाग मात्र स्थितिसत्त्व होता है। यह तीसरा पर्व है।** मान लेते हैं पहली बार पल्य तक पहुंचा। फिर उसके पांच भाग करके चार भाग यानी बहुभाग प्रमाण कांडक द्वारा नष्ट किया तो कितना शेष रहा ? पल्य का पांचवां भाग। पांचवें भाग के भी पांच भाग में से चार भाग का घात करेंगे। पांचवें भाग का भी वन फिप्थ यानी पच्चीसवां भाग रह जायेगा न ? पल्य का वन फिप्थ, वन फिप्थ का वन फिप्थ बाकी रह जायेगा। उसका भी वन फिप्थ रह जायेगा यानी १२५वां भाग रहेगा, उसका फिर और पांचवां भाग - इसतरह से चले जाओ यानी स्थितिसत्त्व कितना घटते चले जायेगा। ऐसा करते-करते

पल्य का संख्यातवां भाग जिसको हम कहेंगे उत्कृष्ट संख्यात; संख्यात में से जो मॅक्झिमम संख्यात है उसको उत्कृष्ट संख्यात कहते हैं उसका भाग पल्य को देंगे, उतना सत्त्व रहेगा। उसके बाद असंख्यात का नंबर आता है। स्थितिसत्त्व पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण रहेगा।

तो उत्कृष्ट संख्यातवें भाग तक पहुंचेगा। अभी इसके आगे उसका संख्यातवां भाग नहीं कहेंगे हम। उसकी स्थिति पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण हो जायेगी। पल्य के संख्यातवें भाग प्रमाण स्थितिसत्त्व का यह अंतिम स्थान है इसका नाम है दूरापकृष्टि। यानी स्थितिसत्त्व घटते-घटते-घटते यह पल्य के संख्यातवें भाग प्रमाण का अंतिम स्थान है। इसके बाद वह पल्य का असंख्यातवां भाग होगा। इसलिये इसका नाम है दूरापकृष्टि। देखो, **दूरापकृष्टि नाम है जिसका ऐसा पल्य का संख्यातवां भाग मात्र स्थितिसत्त्व होता है। यह तीसरा पर्व है।** यहां तक अभी स्थितिसत्त्व घट गया है। इसके बाद अभी कांडक का प्रमाण और भी बढ़ेगा, स्थिति घटती जायेगी।

पुनश्च पल्य को असंख्यात का भाग देकर वहां एकभाग बिना बहुभाग मात्र आयाम के धारक ऐसे हजारों स्थितिखंड होनेपर उच्छिष्टावली है नाम जिसका ऐसा आवली मात्र स्थितिसत्त्व अवशेष रहता है। यह चौथा पर्व है। जब उसका सत्त्व दूरापकृष्टि नाम का हुआ उसके बाद एक कांडक कितना बड़ा होगा ? पल्य को असंख्यात से भाग देना, एकभाग बिना बहुभाग प्रमाण निषेकों का कांडकरूप से घात करना। जैसे हमने पांच भाग किये थे, चार भाग तो कांडक में गये और एकभाग अवशेष रहा था। अब यहां पांच भाग नहीं, असंख्यात भाग करना। असंख्यात में से एकभाग शेष रखना और बाकी बहुभाग प्रमाण ऊपर का बहुत बड़ा कांडकरूप से नाश करना। उसको क्या कहेंगे ? असंख्यात बहुभाग का कांडकरूप से ग्रहण करके नाश करेंगे और असंख्यातवां भाग शेष रहेगा। पहले पल्य के संख्यात बहुभाग प्रमाण कांडक लिया था, यहां असंख्यात बहुभाग प्रमाण कांडक का आयाम ले रहे हैं। वहां पांच का भाग देकर चार से गुणा किया था, याद है न ? तो यहां असंख्यात से भाग देकर किससे गुणा करेंगे ? असंख्यात मायनस वन से।

पांच का भाग देकर बहुभाग के लिये क्या किया ? पांच का भाग देकर चार से गुणा किया। यहां असंख्यात से भाग देंगे तो किससे गुणा करेंगे ? असंख्यात मायनस

वन से गुणा करेंगे। इतना तो एक कांडकरूप से नाश करेगा और उसका असंख्यातवां भाग शेष रहेगा। जो एकभाग शेष रहेगा उसका फिर असंख्यात बहुभाग नाश हो जायेगा और उसका एकभाग शेष रहेगा। फिर और एक स्थितिकांडकघात ऐसे होते-होते एक आवली प्रमाण निषेक बाकी रहेंगे। किसके ? अनंतानुबंधी के। चार पर्व हमने देखे- शुरू में स्थितिसत्त्व पृथक्त्व लक्ष सागर था। घटते-घटते-घटते-घटते पल्य तक पहुंच गया। पल्य के बाद घटते-घटते-घटते-घटते पल्य का अंतिम संख्यातवां भाग जिसको हम दूरापकृष्टि कहते हैं उतना स्थितिसत्त्व हुआ। घटते-घटते-घटते एक आवली बाकी रहा। इसमें क्या है ? पहले दो पर्वों के बीच में कांडक का प्रमाण अलग है। दूसरे और तीसरे पर्व के बीच में कांडक का प्रमाण अलग है और तीसरे-चौथे पर्व के बीच में कांडक का प्रमाण अलग है।

स्थितिसत्त्व के चार पर्व	
पर्व	कांडक का प्रमाण
१) पृथक्त्व लक्ष सागर	पल्य का संख्यातवां भाग
२) पल्य	पल्य का संख्यात बहुभाग
३) दूरापकृष्टि	पल्य का असंख्यात बहुभाग
४) उच्छिष्टावली	

अब हम बोर्ड देखेंगे। ऊपर क्या लिखा है ? स्थितिसत्त्व के चार पर्व। वहां पर पहले में पहले क्या लिखा है ? पृथक्त्व लक्ष सागर। यहां स्थिति का प्रमाण बताया है। पृथक्त्व लक्ष सागर यह पहला पर्व कहलायेगा। दूसरा पर्व पल्य। इनके बीच में हमने क्या देखा था ? स्थितिसत्त्व घटते-घटते-घटते हजार सागर हुआ, सौ सागर हुआ, पचास सागर हुआ, पच्चीस सागर हुआ, एक सागर हुआ और पल्य तक पहुंचा। अनंतानुबंधी

की स्थिति इतनी कैसे घटी ? स्थितिकांडकघातों के द्वारा। एक-एक स्थितिकांडकघात कितना बड़ा था ? पल्य का संख्यातवां भाग इतना था। स्थितिसत्त्व पल्य प्रमाण होने के पश्चात् पल्य का संख्यात बहुभाग जितना एक-एक स्थितिकांडक लिया और स्थिति घटाते-घटाते-घटाते-घटाते जिसको दूरापकृष्टि कहते हैं ऐसे पल्य का अंतिम संख्यातवां भाग यानी उत्कृष्ट संख्यात से भाग देने पर जो आयेगा उतना स्थितिसत्त्व रह गया। तब तक एक-एक कांडक का आयाम पल्य का संख्यात बहुभाग प्रमाण था।

इतना घटाते-घटाते फिर और आगे कहां तक घटाया ? एक आवली अवशेष रहने तक; उसके लिये अनेक स्थितिकांडकघात हुये। हर एक बार कितना घटाया ? पल्य का असंख्यात बहुभाग यानी असंख्यात का भाग देकर असंख्यातवां भाग शेष रखा और बहुभाग प्रमाण कांडक घात किया। कितनी बार उन्होंने कांडकघात किया होगा ? फिर भी हर एक का काल अंतर्मुहूर्त है। यह सारा कार्य अनिवृत्तिकरण के एक छोटे अंतर्मुहूर्त में हो रहा है और यहां के अनिवृत्तिकरण का काल प्रथमोपशम के अनिवृत्तिकरण से भी छोटा है। अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्त कहते हैं, तो कितने छोटे-छोटे अंतर्मुहूर्त हैं ! ऐसी कहने की पद्धति है कि अड़तालीस मिनट आत्मा में स्थिर हो जाये तो क्या हो जायेगा ? *श्रोता: केवलज्ञान*। केवलज्ञान होने के लिये इतना लंबा काल नहीं लगता। ऊपर के अनिवृत्तिकरण और छोटे-छोटे होंगे। श्रेणी चढ़ने के लिये इतना काल लगता ही नहीं है। सम्यग्दर्शन होने के लिये भी इतना लंबा काल नहीं लगता है। *श्रोता: यह तीसरा पर्व कितना है ?* कौनसा, दूरापकृष्टि ? पल्य को उत्कृष्ट संख्यात से भाग देना। उत्कृष्ट संख्यात के बाद कौनसी संख्या आती है ? जघन्य परितासंख्यात। उत्कृष्ट संख्यात से भाग देने पर जो कुछ वहां प्रमाण आयेगा उसको दूरापकृष्टि कहते हैं।

हमने ये चार पर्व देखे, स्थितिसत्त्व के चार अलग-अलग प्रमाण देखे। यह मात्र अनंतानुबंधी के स्थितिसत्त्व की बात है। उसकी स्थिति उच्छिष्टावली प्रमाण रह जाती है। देखो, यहां के परिणामों के द्वारा मात्र अनंतानुबंधी की सत्ता में यह परिवर्तन हो रहा है। अनंतानुबंधी प्रकृति पर ये सब असर हो रहा है, अन्य प्रकृति में ऐसा कुछ नहीं होता। हां, उनमें स्थितिबंध थोड़ा घटेगा। कुछ अन्य बातें बदलेंगी, परंतु ये सारी बातें किसमें हो रही हैं ? अनंतानुबंधी में हो रही हैं क्योंकि यही एक प्रकृति यहां पूर्णरूप से नष्ट हो जायेगी। हमने देखा अपूर्वकरण से ही गुणश्रेणी बनी जो गलितावशेष है।

गुणसंक्रमण शुरू हुआ। अभी ये कांडकघात होते हैं तो क्या होता है ? कांडकघात होकर स्थिति घटती है, निषेकों का अभाव होता है। अँट अ टाइम स्थितिकांडकघात तो होते ही होते हैं, अनंतानुबंधी का पररूप संक्रमण भी गुणसंक्रमण के द्वारा चलता रहता है। जितना कांडक कट हो जायेगा उतने निषेक नीचे आयेंगे तथा गुणसंक्रमण द्वारा पररूप होकर नष्ट होते जायेंगे। अन्यरूप परिणमने का - संक्रमण का कार्य यहीं पर चल रहा है।

अँट अ टाइम ये सभी कार्य हो रहे हैं। उसीके साथ अनुभागकांडकघात भी हो रहे हैं। अनंतानुबंधी अपनेरूप से उदय में आनेवाला ही नहीं है फिर भी उसका सत्ता का अनुभाग इतना मंद-मंद-मंद हो रहा है। अनुभागकांडकघात भी हो रहे हैं। तो ये कार्य करते-करते अपूर्वकरण बीत गया। फिर अनिवृत्तिकरण आया और वहां सत्ता में ये चार पर्व बताये। अंत में कितना स्थितिसत्त्व शेष रहा ? एक आवली प्रमाण शेष रहा जिसको कहते हैं उच्छिष्टावली - लास्ट में बची हुयी एक आवली। उदय तो है ही नहीं, सत्ता में पड़े हुये अनंतानुबंधी में ये सारा परिवर्तन हो गया है। उदय तो अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण, संज्वलन का चल रहा है। हम अभी इसको चौथे गुणस्थानवाला मान लेते हैं तो उसमें तो यथायोग्य तीन चौकड़ी का उदय है। ये चार पर्व हुये। एक पर्व से दूसरे पर्व तक स्थितिखंड का आयाम कितना है ? उसका यहां गाथा नंबर ११४ में वर्णन किया है।

पल्लस्स संखभागो संखा भागा असंखगा भागा।

ठिदिखंडा होंति कमे अणस्स पव्वादु पव्वोत्ति ॥ ११४ ॥

देखो, अनंतानुबंधी के स्थितिसत्त्व पहले पर्व से दूसरे पर्व तक पहले पर्व से दूसरे पर्व तक का अर्थ क्या है ? पृथक्त्व लक्ष सागर से लेकर जब तक पल्य प्रमाण स्थिति होती है तब तक; और दूसरे से तीसरे तक और तीसरे से चौथे तक जो स्थितिकांडक होते हैं, उनका आयाम क्रम से पल्य का संख्यातवां भाग, किसके लिये ? पहले से दूसरे तक पल्य का संख्यातवां भाग। फिर पल्य का संख्यात बहुभाग कहां से कहां तक ? दूसरे से तीसरे तक हां, और पल्य का असंख्यात बहुभाग मात्र है, तीसरे से चौथे तक यानी जब तक आवली शेष रहेगी तब तक असंख्यात बहुभाग का कांडकरूप से घात हो जायेगा उसका कथन किया ही है। किया था यहां दुबारा

उन्होंने रिपीट कर दिया। हमने अनंतानुबंधी की विसंयोजना में ये चार पर्व के नाम देखे। किसके ? स्थितिसत्त्व के। सत्ता में जो स्थिति पड़ी है उसके हमने ये चार पर्व और उनका प्रमाण देख लिया है। *श्रोता: संख्यात का भाग देना या असंख्यात का ?* उत्कृष्ट संख्यात कहा मैंने, उत्कृष्ट असंख्यात नहीं। उत्कृष्ट संख्यात ये कौनसी संख्या है ? जघन्य परितासंख्यात से एक कम है, है न ? उत्कृष्ट संख्यात में एक मिला दो तो जघन्य परितासंख्यात संख्या आती है - मिनिममवाला असंख्यात। यहां पर उसकी बात है।

श्रोता: यह जो कांडक शब्द है यह टाइम इंटरवल को बता रहा है न ? यह टाइम इंटरवल को नहीं बता रहा है। कितने निषेकों को उसने कांडकरूप से ग्रहण किया। एक कांडक का घात होने के लिये एक छोटा अंतर्मुहूर्त लगता है और एक अंतर्मुहूर्त में उसने कितनी स्थिति घटायी ? शुरू में अँट अ टाइम पल्य का संख्यातवां भाग, फिर दूसरा कांडक अंतर्मुहूर्त में पार हो गया। कांडक का घात एक अंतर्मुहूर्त में हुआ और स्थिति पल्य के संख्यातवें भाग प्रमाण घट गयी। फिर अंतर्मुहूर्त में और पल्य के संख्यातवें भाग प्रमाण घट गयी। ऐसे कितने ही सागर घटते-घटते स्थितिसत्त्व सागर तक आया। फिर पल्य तक आया। कितनी स्थिति शेष रही उसका यह प्रमाण है। परंतु अँट अ टाइम कांडक की लंबाई कितनी है ? आयाम कितना है ? कितने निषेक नष्ट होते हैं ? उसको कांडक कहा। *श्रोता: यहां कर्म नहीं खिरा ?* परमाणु खिर रहे हैं परंतु उदय तो परमुख से ही होता है; जो सम्यग्दृष्टि है उसके तो अनंतानुबंधी का उदय है ही नहीं। ये सारे परमाणु अभी खिर नहीं जायेंगे। सत्ता में अन्य कर्मरूप से पड़े रहेंगे और कितने ही खिरकर नष्ट हो जायेंगे - दोनों काम चालू हैं। परंतु इतना सारा जो द्रव्य है उसमें से अभी थोड़ा ही खिरनेवाला है। बाकी जो द्रव्य है वह अन्य तीन कषाय चौकड़ी और नोकषाय हैं उनरूप होकर स्थित हो जाता है। अभी हम गाथा नंबर ११५ देखेंगे।

अणियट्टीसंखेजाभागेसु गदेसु अणगठिदिसत्तो।

उदधिसहस्सं तत्तो वियले य समं तु पल्लादी ॥ ११५ ॥

जो हमने पहले चार पर्व में बात समझायी थी वही बात यहां बता रहे हैं। अनिवृत्तिकरण के काल को संख्यात का भाग देकर, वहां बहुभाग काल व्यतीत होकर एकभाग अवशेष रहने पर अनंतानुबंधी का स्थितिसत्त्व कहीं हजार सागर मात्र, पश्चात् विकलेन्द्रिय के बंध के समान, पश्चात् पल्य और आदि शब्द से

दूरापकृष्टि और आवली मात्र होता है। यह तो हमने देख लिया। पहले उन्होंने विस्तार से बताया था, फिर भी यही बात उन्होंने दुबारा बतायी है। गाथा नंबर ११६-

उवहिसहस्सं तु सयं पण्णं पणवीसमेक्कयं चेव।

वियलचउक्के एगे मिच्छुक्कस्सट्ठिदी होदि॥ ११६॥

विकलचतुष्क कहने से विकलेन्द्रिय कहते हैं तो द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय और जब विकलचतुष्क कहते हैं तो असंज्ञी पंचेन्द्रिय को भी लेना। उसका नाम पहले इसलिये है क्योंकि स्थिति घटते-घटते-घटते पहले असंज्ञी पंचेन्द्रिय के बंध के समान हो जायेगी। फिर चतुरिन्द्रिय के बंध के समान। त्रीन्द्रिय के बंध के समान। **विकलचतुष्क कहने से असंज्ञी पंचेन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, द्वीन्द्रिय (ये चार) चतुष्क कहा न। और एकेन्द्रिय के मिथ्यात्व का उत्कृष्ट स्थितिबंध** यानी किसके साथ तुलना की ? विकलचतुष्क के मिथ्यात्व के उत्कृष्ट स्थितिबंध जैसा अनंतानुबंधी का स्थितिसत्त्व हो रहा है। इनको नहीं भी कहते और डायरेक्ट कह देते हजार सागर हुआ, सौ सागर हुआ, पचास सागर हुआ तो भी चल जाता। परंतु कम्पेअर करने के लिये इनके मिथ्यात्व के उत्कृष्ट स्थितिबंध के समान कहा। मिथ्यात्व शब्द क्यों डाला ? क्योंकि एकेन्द्रिय के ज्ञानावरण का उत्कृष्ट स्थितिबंध तीन बटे सात सागर होगा। एकेन्द्रिय का अनंतानुबंधी का उत्कृष्ट स्थितिबंध यानी चारित्रमोहनीय का चार बटे सात सागर होता है। यह कैसा निकाला ?

जहां संज्ञी पंचेन्द्रिय को मिथ्यात्व का उत्कृष्ट स्थितिबंध ७० कोड़ाकोड़ी सागर होता है; वहां एकेन्द्रिय को मिथ्यात्व का उत्कृष्ट स्थितिबंध एक सागर होता है। फिर से, पंचेन्द्रिय को जहां ७० कोड़ाकोड़ी सागर है वहां एकेन्द्रिय को एक सागर है। अब त्रैराशिक करना। जहां पंचेन्द्रियों को ३० कोड़ाकोड़ी सागर है वहां एकेन्द्रिय के कितना होगा ? *श्रोता: तीन सप्तमांश।* तीन सप्तमांश सागर हो गया न ? तीन सप्तमांश समझते हैं सब लोग ? तीन बटे सात। नहीं समझे ? ७० कोड़ाकोड़ी के सामने यहां एक सागर तो जहां ३० कोड़ाकोड़ी होगी वहां ? ३० को ७० से डिक्वाइड किया हमने, झिरो-झिरो चला गया तो तीन बटे सात सागर। एकेन्द्रिय को ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अंतराय और वेदनीय का इतना उत्कृष्ट स्थितिबंध होता है। और चारित्रमोहनीय का ? *श्रोता: चार बटे सात।* चार बटे सात सागर। संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों को चारित्रमोहनीय का उत्कृष्ट

स्थितिबंध ४० कोड़ाकोड़ी सागर का होता है। तो एकेन्द्रिय कितना करेगा ? चार बटे सात सागर। संज्ञी पंचेन्द्रिय नाम, गोत्र का अधिक से अधिक बंध २० कोड़ाकोड़ी सागर का करता है तो एकेन्द्रिय दो बटे सात सागर करेगा। यह बात समझ में आयी ?

मराठी में उसको चार सप्तमांश, तीन सप्तमांश, दो सप्तमांश कहते हैं। हिंदी, गुजराती में भी ऐसा ही कहते होंगे न ? *श्रोता: दो बटे सात।* दो बटे सात, अच्छा दो बटे सात। गुजराती में ऐसा ही कहते हैं ? कोई बात नहीं, इतनी बात समझ में आयी ? कुछ भी कहो समझना मुख्य बात है। *श्रोता: गुजराती में बे सप्तमांश।* अच्छा, बे सप्तमांश; दो सप्तमांश नहीं बे सप्तमांश। *श्रोता: इंग्लिश में टू अपॉन सेवन।* हां-हां। अभी कन्नड़ में मत बताओ हम प्रोनाउन्स नहीं कर सकेंगे। हमने क्रम से उत्कृष्ट कितना देखा ? **क्रम से हजार**, एक हजार यानी एक हजार सागर। सागर शब्द लास्ट में बतायेंगे। **सौ सागर, पचास सागर, पच्चीस सागर और एक सागर प्रमाण होता है।** विकलचतुष्क को क्यों याद किया ? उनके मिथ्यात्व का उत्कृष्ट स्थितिबंध इतना होता है **इसके समान स्थितिसत्त्व अनंतानुबंधी का ही होता है।** उनके लिये स्थितिबंध शब्द डाला, अनंतानुबंधी के लिये स्थितिसत्त्व शब्द डाला। विकलचतुष्क का स्थितिसत्त्व नहीं लेना क्योंकि हो सकता है कि संज्ञी पंचेन्द्रिय में से मरकर वहां गया है तो वहां स्थितिसत्त्व संज्ञी पंचेन्द्रिय जैसा है इसलिये स्थितिबंध की बात बतायी।

आगे- **अनंतानुबंधी के द्रव्य को गुणश्रेणी द्वारा, गुणश्रेणी द्वारा क्या कहेंगे ?** क्योंकि हमने देखा यहां गुणश्रेणी रचना होती है, **नीचे के निषेकों में प्राप्त किया, स्थितिकांडक द्वारा घटायी हुयी स्थिति के निषेक अवशेष स्थिति के निषेकों में प्राप्त किये।** कांडक के द्वारा क्या होता है ? नीचे के निषेकों में आ मिलते हैं। **पुनश्च गुणसंक्रमण द्वारा उस द्रव्य को गुणसंक्रमण भागहार का भाग देने पर जो प्रमाण हो, उस प्रमाण मात्र द्रव्य के समूहरूप प्रथम फालि है और उससे प्रतिसमय असंख्यातगुणा द्रव्यरूप द्वितीयादि फालि है** यानी दूसरी, उससे असंख्यातगुणा तीसरी फालि है, उससे असंख्यातगुणा चौथी फालि **उनका विसंयोजन करता है।** इसका अर्थ देखेंगे- अंट अ टाइम ये सभी बातें चल रही हैं। क्या-क्या होता है ? उनमें अपकर्षण भी हो रहा है। स्थितिकांडकघात भी हो रहे हैं। उसके द्वारा ऊपर की स्थिति के सारे परमाणु नीचे की स्थिति में दिये जा रहे हैं। ये तो बातें हो ही रही हैं।

वहां गुणश्रेणी भी बनी है, और भी क्या हो रहा है ? गुणसंक्रमण भी हो रहा है। सत्ता में भले वे निषेक के परमाणु नीचे आ रहे हैं परंतु प्रति समय असंख्यातगुणा क्रम से अन्य कर्मरूप परिणमित भी किये जा रहे हैं। ऐसे परिणमन के द्वारा, संक्रमण के द्वारा ही वे नष्ट होनेवाले हैं। अंतिम एक आवली प्रमाण निषेक छोड़कर बाकी ऊपर के सभी निषेक नष्ट होकर अन्य कषायरूप यानी अन्य कर्मरूप परिणमित हो जायेंगे। इसको कहेंगे अनंतानुबंधी की विसंयोजना होना। **उनका विसंयोजन करता है।** नीचे से तीसरी लाइन- **इसतरह अनिवृत्तिकरण के अंत समय में** यह कार्य कहां तक हुआ ? अंत समय तक। जब अनिवृत्तिकरण के अंत समय में पहुंचा तो एक आवली मात्र निषेक बाकी रहे, बाकी सब नष्ट हो जायेंगे क्योंकि वहां तक स्थितिकांडक, गुणसंक्रमण सब चलता रहा। **उच्छिष्टावली मात्र निषेक रहित** यानी उनको छोड़कर **अंत कांडक की अंत फालि के द्रव्य का विसंयोजन करता है।** विसंयोजन करता है यानी अन्य कषायरूप परिणमाता है। यहां कषाय कहने से कर्म समझना, यहां जीव के परिणामों की बात नहीं है - अन्य कर्मरूप परिणमाता है।

पुनश्च उच्छिष्टावली मात्र निषेकों के द्रव्य को एक-एक समय में एक-एक निषेक का विसंयोजन करता है। उसका अर्थ क्या है ? एक समय पास हुआ, उदय तो अप्रत्याख्यानावरणादि का चल रहा है तो उदय में आते-आते अन्यरूप होकर उदय में आ जायेगा। एक निषेक कम हुआ, फिर दूसरा नीचे आ गया। वह भी अन्यरूप होकर उदय में आकर नष्ट होगा। ऐसा उच्छिष्टावली में एक-एक निषेक अन्यरूप उदय में आकर यानी परमुख से उदय में आकर नष्ट हो जायेगा। पहले क्या हुआ था ? गुणित प्रमाण में संक्रमित होकर एक छोटे अंतर्मुहूर्त में अनंतानुबंधी का नाश होकर वे सारे अप्रत्याख्यानावरणादिरूप हो गये थे। एक आवली प्रमाण जितने बाकी रहे हैं, उस आवली काल में एक-एक समय में एक-एक निषेक पररूप से उदय में आकर निकल जायेगा। **इनके परमाणुओं को बारह कषाय और पांच नोकषायरूप परिणमाकर अभाव करने का नाम विसंयोजन है।** इसतरह अनंतानुबंधी के विसंयोजन का विधान कहा।

यह जो अनंतानुबंधी का विसंयोजन होता है, अभी हम दर्शनमोहनीय की क्षपणा के पूर्व में होता है इसलिये यहां पर उसका विचार कर रहे हैं। परंतु हमने देखा

था ऐसी विसंयोजना चारों ही गतियों में हो सकती है। जो चौथे गुणस्थानवाला सम्यग्दृष्टि है इसके भी। जो ऑलरेडि सम्यग्दृष्टि है उसकी जब विशिष्ट विशुद्धि होती है, अंतर्मुख परिणाम होते हैं; करणानुयोग की भाषा में तीन करण परिणाम होते हैं तब उस काल में उसके अनंतानुबंधी की विसंयोजना हो जाती है। यदि उसका सम्यक्त्व बना रहे, हमने देखा न, ६६ सागर तक वेदक सम्यग्दृष्टि रहता है। अनंतानुबंधी की विसंयोजना एक अंतर्मुहूर्त में कर ली और बिना अनंतानुबंधी की सत्ता के क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि बना रहा ऐसी बात हो सकती है। यदि वह मिथ्यात्व में चला जाता है तो अनंतानुबंधी का दुबारा बंध भी होता है और बंध होगा तो अप्रत्याख्यानावरणादि का उलटा संक्रमण भी होगा।

श्रोता: पूरा प्रोसेस फिर से ? पूरा प्रोसेस यानी बंध हुआ तो नयी सत्ता तैयार हो जायेगी। नया बंध तो है ही वहां पर। विसंयोजना करनेवाला जीव भी मिथ्यात्व में जा सकता है इतनी बात है। यानी विसंयोजना की इसलिये वह आगे चलकर क्षय करेगा ही यह बात नहीं है। परंतु दर्शनमोहनीय का क्षय करने के पूर्व में विसंयोजना होनी ही चाहिये, करनी ही चाहिये। उसके बिना आगे चलकर दर्शनमोहनीय की क्षपणा का कार्य नहीं होगा। *श्रोता: विसंयोजना के साथ कितने काल तक रहेगा ?* हां, क्योंकि विसंयोजनावाला जीव तीसरे गुणस्थान में भी आ सकता है। तो दो ६६ सागर तक; वह पहला अंतर्मुहूर्त मायनस करना उसमें से। जितना काल उसको विसंयोजना करने के लिये लगा उसको हम ६६ सागर में से मायनस करेंगे। तो पहला ६६ सागर पूरा नहीं लेना, उसमें से अंतिम अंतर्मुहूर्त में तीसरे गुणस्थान में आया और फिर दुबारा ६६ सागर तक वेदक सम्यक्त्व में रहा। हां, उसके अंत में क्षायिक किया तो ही उसमें पूरा ६६ सागर गिना सकते हो। ख्याल में आयी बात ? क्योंकि अगर क्षायिक नहीं होता तो नियम से वह ६६ सागर के एक अंतर्मुहूर्त पहले मिथ्यात्व में आयेगा ही आयेगा। पूरे ६६ सागर रहने का अर्थ उसका क्षायिक हो ही जायेगा वहां पर। वही जीव ६६ सागर पूरे वहां रहता है ,अन्यथा नहीं। ऐसे नियम हैं कुछ।

श्रोता: विसंयोजना के बाद क्षायिक सम्यक्त्व होने में इतना लंबा गॅप जरूरी है क्या ? आपका प्रश्न है विसंयोजना के बाद इतना लंबा गॅप जरूरी है क्या ? बिलकुल नहीं, विसंयोजना करने के बाद अंतर्मुहूर्त तक तो ऐसा ही रहेगा - उसको कहेंगे विश्राम किया। विश्राम किया यानी अन्य कुछ कार्य शुरू नहीं हुआ। विसंयोजना के

बाद शीघ्र में शीघ्र एक अंतर्मुहूर्त के पश्चात् दुबारा तीन करण परिणाम करता है और उसके द्वारा दर्शनमोहनीय की क्षपणा होती है। वहां क्षपणा का कार्य चालू हो जाता है।

श्रोता: यह दूरापकृष्टि नामक जो सत्त्व है वह पल्य का असंख्यातवां बहुभाग है या संख्यातवां भाग है ? नहीं, पल्य का अंतिम संख्यातवां भाग है। *श्रोता: लेकिन कांडक का प्रमाण उससे ज्यादा है ?* कैसा होगा ? *श्रोता: पल्य का असंख्यात बहुभाग ?* अभी पल्य का संख्यातवां भाग शेष रहा। *श्रोता: सत्त्व तो कम है, कांडक ज्यादा है। कांडक कैसे ज्यादा होगा ?* जितना शेष रहा उसको हमने असंख्यात का भाग दिया। *श्रोता: संख्यातवां भाग शेष रहा या पल्य का असंख्यातवां भाग ?* नहीं, जितना शेष रहा, शेष का बहुभाग। पल्य का नहीं, जितना शेष रहा उसका असंख्यात बहुभाग प्रमाण कांडक होगा तो कितना शेष रहा है ? *श्रोता: असंख्यातवां भाग ?* हां, पल्य का असंख्यातवां भाग ही शेष रहा है। देखिये, पल्य का संख्यातवां भाग स्थितिसत्त्व होने पर अभी कांडकघात होने पर स्थिति का असंख्यातवां भाग शेष रहता है, वह पल्य का भी असंख्यातवां भाग ही है। *श्रोता: पल्य का संख्यातवां भाग शेष रहा है लेकिन उसीका असंख्यातवां बहुभाग ?* उसीका असंख्यात बहुभाग लेना। यहां लिखने में पल्य का संख्यात बहुभाग और पल्य का असंख्यात बहुभाग लिखा है, परंतु उसकी व्हॅल्यू असंख्यात बहुभाग आ जायेगी यानी संख्यातवें भाग का असंख्यात बहुभाग ऐसा हो जायेगा। जितना सत्त्व वहां शेष है उसका असंख्यात बहुभाग लेना।

श्रोता: यह कार्य कहां होता है ? विसंयोजना का कार्य कहां होता है ? चौथे में, पांचवें में, छठे में या सातवें में ? किसी भी गुणस्थान में विसंयोजना का कार्य हो सकता है। दर्शनमोहनीय की क्षपणा कौनसे गुणस्थान में होती है ? क्षायिक सम्यक्त्व की प्राप्ति कौनसे गुणस्थानवाला जीव कर सकता है ? *श्रोता: चौथे, पांचवें, सातवें गुणस्थानवाला।* हमारी ऐसी ही मान्यता है कि छठे से नहीं होता, हमने शुभोपयोगवाला मान लिया न उसको। छठे गुणस्थान में भी क्षपणा होती है, वहां भी तीन करण परिणामों का कार्य होगा। छठे में शुरुआत भी होती है। हम कहते हैं चौथे में होता है, पांचवें में होता है और सातवें में होता है, परंतु ऐसा नहीं है। हमने देखा था चौथे, पांचवें, छठे, सातवें में यह क्षपणा का कार्य होता है। यह बात यहां हुयी थी न कि नहीं हुयी अभी तक ? अभी आगे बतायेंगे। चारों ही गुणस्थानों में कहीं भी हो जाता है। अनंतानुबंधी की विसंयोजना

जब पूर्ण होती है इसके बाद अंतर्मुहूर्त रुककर फिर दर्शनमोहनीय की क्षपणा प्रारंभ कर सकता है। जो पहले अनंतानुबंधी की विसंयोजना कर चुका है- हो सकता है न, कोई किसी स्वर्ग में सम्यग्दृष्टि देव था, वहां अनंतानुबंधी की विसंयोजना कर चुका है, सम्यक्त्व के साथ मनुष्य में आया है। ऐसा जीव डायरेक्ट क्षपणा करेगा।

श्रोता: वह जीव केवली के पादमूल में जायेगा क्षपणा शुरू करने के लिये ? हां, बिलकुल, उनके पादमूल में क्षपणा का कार्य शुरू कर देगा। नहीं समझे ? पूर्व भव में अनंतानुबंधी की विसंयोजना की है और अभी कर्मभूमि का मनुष्य होकर जन्मा है। जो केवली, श्रुतकेवली या तीर्थंकर के पादमूल में क्षायिक होना है तो वहां करेगा। *श्रोता: उसको भी आयु की कंडिशन होगी ?* कौनसी ? *श्रोता: मनुष्य के लिये आठ वर्ष की ?* आठ वर्ष की कंडिशन होगी वहां पर भी, उसके पहले तो यह कार्य नहीं होगा। आठ वर्ष के पश्चात् ही होगा। नया सम्यक्त्व धारण करना हो, क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त करना हो या पांचवां गुणस्थान प्राप्त करना हो, संयम धारण करना हो, केवलज्ञान के लिये भी यह आठ वर्ष की कंडिशन है।

श्रोता: किसी जीव ने चौथे गुणस्थान में अनंतानुबंधी का विसंयोजन किया, बाद में क्षायिक किया ऐसा हो सकता है ? हां, बिलकुल होगा। मुनि अवस्था धारण करके बाद में क्षायिक किया ऐसा भी हो सकता है। *श्रोता: कुंदकुंद आचार्य के क्षायिक सम्यक्त्व हुआ था ?* ऐसा कथन नहीं आया है। वैसे वे भी तीर्थंकर के पादमूल में गये थे। उनके क्षायिक था कि नहीं हम नहीं कह सकते। कहीं पर उनका ऐसा भी उल्लेख है - क्षायिक सम्यग्दृष्टि ऐसा। *श्रोता: क्या पूछा ?* उनका प्रश्न ऐसा है, कुंदकुंद आचार्य विदेहक्षेत्र में साक्षात् केवली के सामने गये थे तो उनके क्षायिक सम्यक्त्व हुआ था कि नहीं हुआ था ? इसका ऐसा कोई ठोस उल्लेख नहीं मिलता। *श्रोता: वे कर्मभूमि के ही हैं न ?* कुंदकुंद आचार्य कर्मभूमि के हैं न ? हो सकता है क्षायिक हुआ हो - हम उसका निषेध नहीं कर सकते और ऐसा हुआ है यह भी नहीं कह सकते हैं। अभी पता नहीं है, हां, केवली जानेंगे। हम यहीं रुकेंगे।

बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

२४. दर्शनमोहनीय की क्षपणा

आचार्य श्री नेमिचन्द्र सिद्धांतचक्रवर्ती ने इस लब्धिसार ग्रंथ की रचना की है। उसीके आधार से पं. टोडरमलजी ने सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका लब्धिसार-क्षपणासार भाषाटीका ढूंढ़ारी भाषा में लिखी है और अभी हम उसका हिंदी अनुवाद देख रहे हैं। दूसरा अधिकार है क्षायिक सम्यक्त्व की प्ररूपणा, उसमें हमने देखा था कि क्षायिक सम्यक्त्व कौनसे जीव को हो सकता है।

कर्मभूमि में जन्मा हुआ मनुष्य तीर्थकर, केवली या श्रुतकेवली के पादमूल में क्षायिक सम्यक्त्व का प्रारंभ करता है, दर्शनमोहनीय की क्षपणा प्रारंभ करता है। कृतकृत्यवेदक नाम का क्षायिक करने का जो अंतिम पार्ट है उस अवस्था में मरकर अन्य गति में चला जाये तो वहां पूर्णता कर सकता है- उसको कहेंगे निष्ठापक। ये प्रारंभक-प्रस्थापक और निष्ठापक की बात हो गयी है। सबसे पहले अनंतानुबंधी की विसंयोजना की जाती है। उसके लिये भी तीन करण परिणाम होते हैं- अधःकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण। जैसे हमने पहले प्रथमोपशम में देखे थे वैसे यहां विशुद्धि अनंतगुणी बढ़ती चली जाती है और अपूर्वकरण परिणाम शुरू होते हैं तभी उसमें क्या-क्या होता है ? गुणश्रेणी, गुणसंक्रमण, स्थितिकांडकघात और अनुभागकांडकघात। यहां यह विशेषता है कि यहां अनंतानुबंधी प्रकृतियों पर ही उसका विशेष असर हो रहा है यानी उसीमें यह प्रभाव है। यहां अनंतानुबंधी सत्ता में से पूरी नष्ट होकर अन्य कषायरूप होनेवाली है।

स्थितिकांडकघात वगैरह होते-होते जब अनिवृत्तिकरण शुरू हो जाता है तब पृथक्त्व लक्ष सागर प्रमाण स्थिति शेष रहती है। पृथक्त्व लक्ष सागर से घटते-घटते-घटते आगे चलकर स्थितिसत्त्व कितना होता है ? हजार सागर, सौ सागर, पचास सागर, पच्चीस सागर, एक सागर फिर पल्य तक स्थिति घटती चली जाती है। यह कहने का कारण क्या है ? तब तक यहां जो स्थितिकांडक का आयाम है, उसका प्रमाण पल्य के संख्यातवें भाग है। ऐसे करते-करते स्थितिसत्त्व का प्रमाण पल्य का अंतिम संख्यातवां भाग हो जायेगा। परंतु पल्य के पश्चात् कांडक का आयाम अभी संख्यात बहुभाग इतना हो जाता है और संख्यातवां भाग शेष रहता चला जाता है। ऐसे करते-करते दूरापकृष्टि जिसका नाम है ऐसी स्थिति तक पहुंच जाता है। वह पल्य का संख्यातवां भाग ही है,

परंतु वह अंतिम संख्यातवां भाग है। वहां तक स्थितिसत्त्व होता है उसके बाद कांडक का प्रमाण क्या होता है ? अब स्थितिसत्त्व जहां तक पहुंचा है न, पल्य के उत्कृष्ट संख्यातवें भाग तक - उसको अभी असंख्यात का भाग देकर जो एकभाग का प्रमाण आता है उसको पल्य का भी असंख्यातवां भाग कह सकते हैं - वह छोड़कर बहुभाग का यहां घात हो जाता है। यहां असंख्यात बहुभाग - असंख्यात बहुभाग इतने बड़े-बड़े कांडक होते चले जाते हैं और फिर जाकर उच्छिष्टावली जितनी स्थिति शेष रह जाती है। उसके बाद एक-एक निषेक अन्य कषायरूप होकर नष्ट हो जाता है। यहां तक हमने अनंतानुबंधी की बात देखी है। अब अनंतानुबंधी की विसंयोजना के पश्चात् क्या होता है ? उसे हम पढ़ेंगे गाथा ११७ में -

अंतोमुहुत्तकालं विस्समिय पुणोवि तिकरणं किरिय।

अणयट्ठीए मिच्छं मिस्सं सम्मं कमेण णासेइ ॥ ११७ ॥

अनंतानुबंधी का विसंयोजन करने के पश्चात् अंतर्मुहूर्त काल विश्राम करके यानी शीघ्र में शीघ्र क्षपणा करनेवाला जीव एक अंतर्मुहूर्त में ही इसकी शुरुआत करेगा। तो कहते हैं कि विश्राम करके यानी यहां क्षपणा संबंधी अन्य कुछ कार्य नहीं हो रहे हैं इसलिये कहेंगे विश्राम करके। नहीं तो विश्राम करके यानी यहां पंखा वगैरह लगायेगा, एसी ऑन करेगा ऐसी बात नहीं है। **अर्थात् अन्य क्रिया न करके उसके पश्चात् पुनः तीन करणों द्वारा** यानी अभी ये जो तीन करण किये जायेंगे वे मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व की क्षपणा के लिये किये जायेंगे। **अनिवृत्तिकरण के काल में मिथ्यात्व, मिश्र और सम्यक्त्वमोहनीय को क्रम से नष्ट करता है, वही कहते हैं।** यानी किसतरह से नष्ट किया जाता है इसका सारा ही प्रोसेस बता दिया जायेगा।

दर्शनमोह की क्षपणा के सन्मुख होता हुआ जीव प्रति समय अनंतगुणी विशुद्धता से युक्त होता है। अधःकरण शुरू किया है तो प्रति समय अनंतगुणी विशुद्धता तो बढ़ेगी ही बढ़ेगी। **दर्शनमोह के उपशमन में जैसा विधान कहा, विधान** यानी जो प्रोसेस बताया, जो कुछ विशेष प्रक्रिया बतायी थी, **वैसा अधःप्रवृत्तकरण करने के पश्चात् अपूर्वकरण को प्राप्त हुआ।** इसलिये वहीं पर पहले बहुत विस्तार से अधःकरण की प्रक्रिया बतायी थी। अब जहां-जहां अधःकरण की बात आयेगी तो कहेंगे उसी पद्धति से अधःकरण की प्रक्रिया पार करके- इसका अर्थ है उसी पद्धति से

प्रति समय अनंतगुणा-अनंतगुणा विशुद्ध होता हुआ। अपूर्वकरण का प्रथम समय प्राप्त हो जायेगा। **वहां प्रथम समय में ही गुणश्रेणी का प्रारंभ हुआ।** यहां जो गुणश्रेणी है वह मिथ्यात्व की क्षपणा संबंधी गुणश्रेणी होगी। अनंतानुबंधी की विसंयोजना में उसकी गुणश्रेणी अलग थी। अब यहां मिथ्यात्व की क्षपणा में यहां की गुणश्रेणी अलग है।

इसके लिये यानी गुणश्रेणी बनाने के लिये **अपकर्षण किया हुआ द्रव्य अनंतानुबंधी का विसंयोजन करनेवाले के गुणश्रेणी द्रव्य से असंख्यातगुणा है।** वहां भी अनंतगुणा विशुद्धि की थी, यहां भी; परंतु वहां से यहां की विशुद्धि अनंतगुणा अधिक है। यहां की गुणश्रेणी में जो द्रव्य दिया जाता है वह भी वहां की गुणश्रेणी के द्रव्य से असंख्यातगुणा है। **और यहां का गुणश्रेणी आयाम वहां के गुणश्रेणी आयाम से संख्यातगुणा हीन है।** हमने पहले भी तत्त्वार्थसूत्र के आधार से गुणश्रेणी निर्जरा के दस स्थान देखे थे। वहां आगे-आगे गुणश्रेणी असंख्यातगुणा-असंख्यातगुणा है, परंतु उसका आयाम संख्यातवें भाग-संख्यातवें भाग होता है उसको कहेंगे संख्यातगुणा हीन होता है। संख्यातगुणा हीन का अर्थ है संख्यातवें भाग प्रमाण होना।

अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण काल से साधिक जानना। पहले भी हमने ऐसा ही देखा था। गुणश्रेणी का आयाम कितना होता है ? तो अपूर्वकरण का काल प्लस अनिवृत्तिकरण का काल प्लस थोड़ा अधिक काल। प्रथमोपशम सम्यक्त्व के पहले भी हमने ऐसे ही देखा था। यहां पर भी जो गुणश्रेणी बनेगी; कब बनती है ? अपूर्वकरण के प्रथम समय में। कितने निषेकों में गुणित प्रमाण में दिया जाता है ? तो जो यहां का अपूर्वकरण का काल, अनिवृत्तिकरण का काल और थोड़ा अधिक काल उनके जितने समय हैं उतने निषेक। ये काल भी पूर्व काल से छोटे हैं क्योंकि गुणश्रेणी संख्यातवें भाग प्रमाण है उसका अर्थ क्या है ? वहां के अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण से यहां का अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण का काल संख्यातगुणा हीन है। तभी तो गुणश्रेणी छोटी हुयी न इसकी भी। अपने-अपने अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण काल से और थोड़ा अधिक इतना गुणश्रेणी का आयाम पाया जाता है।

श्रोता: दोनों एक साथ होते हैं या अलग-अलग होते हैं ? वह तो पहले बीत चुका। अनंतानुबंधी की विसंयोजना हो चुकी। उसके पश्चात् अभी एक अंतर्मुहूर्त बीत गया है। अब जाकर यहां मिथ्यात्व की क्षपणा संबंधी ये अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण हो

रहे हैं। श्रोता: मतलब दो बार करण की बात है ? वहां तीन करण अलग; श्रोता: दो बार करण ? दो बार, वह करण अनंतानुबंधी की विसंयोजना के लिये किये थे। अब जो तीन करण हो रहे हैं वे दर्शनमोहनीय की क्षपणा के लिये हैं। वे अलग-अलग हैं, सेपरेट हैं। इसके लिये कहते हैं **क्योंकि सम्यक्त्वोत्पत्ति में जो तीन करण होते हैं, यानी प्रथमोपशम सम्यक्त्व के समय में जो तीन करण होते हैं उनसे उत्तरोत्तर होनेवाले तीन करणों का काल संख्यातगुणा हीन होता है।** उत्तरोत्तर यानी यहां आगे जो-जो हैं; यानी चौथे में जानेवाले से हमने देखा था। पांचवें में जानेवाला है, सातवें में जानेवाला है या यहां विसंयोजना करनेवाला है या क्षपणा करनेवाला है- ये उत्तरोत्तर हीन होते हैं।

वहां पूर्व स्थितिखंडादि से घटता अन्य पूर्व चाहिये वहां पर, पुस्तक में पर्व हुआ न, वहां पूर्व लिखना। पूर्व स्थितिखंड यानी इससे पहले जितने स्थितिखंड के आयाम थे उससे। **वहां पूर्व स्थितिखंडादि से घटता** यानी कम **अन्य ही स्थितिखंड और अनुभागखंड का प्रारंभ होता है और अन्य ही स्थितिबंध पल्य के संख्यातवें भाग घटता प्रारंभ होता है।** अब यह किसका स्थितिबंध होगा ? दर्शनमोह का नहीं हो सकता, यहां तो अभी उसकी क्षपणा करनेवाले हैं। अन्य जो कर्म यहां बंध रहे हैं उनके बारे में स्थितिबंध घटता है, ज्ञानावरणादि कर्मों में यहां ले लेना। क्योंकि यहां दर्शनमोहनीय का कोई बंध नहीं है। अनंतानुबंधी तो नष्ट हो चुका है। ख्याल में आती है बात ? फिर से पढ़ेंगे- **पूर्व स्थितिखंडादि से घटता अन्य ही स्थितिखंड** होता है। ये स्थितिखंड यानी स्थितिकांडकघात तो दर्शनमोहनीय में भी हो रहा है, अन्य कर्मों में भी हो रहा है। अनुभागखंड भी अप्रशस्त सब कर्मों में हो रहा है और अन्य भी स्थितिबंध जो कहा- यहां दर्शनमोहनीय का तो कोई स्थितिबंध ही नहीं है, ना ही अनंतानुबंधी का; वह भी नष्ट हो चुका है। अब जिन प्रकृतियों का यहां स्थितिबंध हो रहा है वह घटकर हो रहा है यह बात है। क्यों ? विशुद्धि बढ़ रही है तो यहां पर स्थितिबंध घटेगा।

श्रोता: यह चारित्रमोहनीय भी ले लें ? चारित्रमोहनीय, नामकर्म आदि सभी कर्म ले लेना - प्रशस्त, अप्रशस्त। जहां विशुद्धि अधिक वहां स्थितिबंध कम। अनुभाग में तो हमें सोचना पड़ता है यह प्रशस्त है कि अप्रशस्त है। स्थितिबंध के बारे में जहां कहीं भी मैक्सिमम विशुद्धि होती है वहां मिनिमम स्थितिबंध होता है। कोई भी प्रकृति ले लो आप। तीर्थकर प्रकृति का भी बंध क्यों न होता हो ! तीर्थकर प्रकृति अधिक स्थितिवाली

बंधेगी कि छोटी स्थितिवाली बंधेगी ? जहां विशुद्धि ज्यादा है वहां स्थिति कम बंधेगी। तीर्थंकर प्रकृति बांधनेवाले के कभी संक्लेश ज्यादा होंगे तो स्थिति का बंध अधिक होगा। हमने देखा था स्थितिबंध कषाय के अनुसार होता है। जहां कषाय तीव्र वहां स्थितिबंध अधिक, जहां कषाय मंद वहां स्थितिबंध कम। देखा था न हमने ? केवल तीन शुभ आयु को छोड़कर यह नियम लागू होता है। यहां स्थितिखंड, अनुभागखंड और स्थितिबंध का प्रमाण अन्य ही होता है यानी घटकर यहां नया शुरू होता है।

पुनश्च अब गुणसंक्रमण यहां होगा कि नहीं होगा ? तो कहते हैं मिथ्यात्व और मिश्रमोहनीय के द्रव्य का गुणसंक्रमण करता है। अपूर्वकरण परिणाम शुरू होते ही गुणश्रेणी, गुणसंक्रमण, स्थितिकांडकघात और अनुभागकांडकघात होने लगता है। अब यहां गुणसंक्रमण किसका होगा ? इस पॉइंट पर आकर मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व के परमाणुओं का गुणसंक्रमण होगा। दोनों प्रकृतियों का अभी तक कौनसा संक्रमण चल रहा था ? विध्यातसंक्रमण चल रहा था क्योंकि उपशम सम्यक्त्व के शुरू में मिथ्यात्व का गुणसंक्रमण हुआ था। उसके बाद विध्यातसंक्रमण हुआ था। जब तक वेदक सम्यग्दृष्टि रहा तो विध्यातसंक्रमण ही चल रहा था। अब यहां आकर तीन करण में से अधःकरण बीत चुका, वहां पर भी विध्यातसंक्रमण था। अपूर्वकरण शुरू हुआ तो यहां से गुणसंक्रमण शुरू हो जायेगा। कौनसी प्रकृति में ? मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व में। **मिथ्यात्व और मिश्रमोहनीय के द्रव्य का गुणसंक्रमण करता है।** यानी किसमें संक्रमित होगी ? सम्यक् प्रकृति में। **सम्यक्त्वमोहनीयरूप परिणामाता है।** हां आगे-

अपूर्वकरण के पहले समय में पहले से संख्यातगुणा हीन ऐसा अंतःकोड़ाकोड़ी प्रमाण जघन्य स्थितिसत्त्व है। क्या बताना चाहते हैं ? अपूर्वकरण है तब तक स्थिति में व्हेरिएशन है; किसीकी स्थिति कम है, किसीकी अधिक है। जब अनिवृत्तिकरण में पहुंचता है - परिणामों की समानता हो जाती है तब जाकर सबका स्थितिसत्त्व भी समान हो जाता है। इस पॉइंट पर क्या है ? यहां शुरू में जितनी स्थिति है किसीकी अधिक है, किसीकी कम है। उसका कारण भी हम देख लेते हैं। पहले पढ़ लेते हैं- कि किसीका **अंतःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण जघन्य स्थितिसत्त्व है** पहले से थोड़ा कम हुआ है, संख्यातगुणा हीन हुआ है क्योंकि स्थितिबंध भी घटता चला गया है। **इससे उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व संख्यातगुणा है।** वह भी अंतःकोड़ाकोड़ी सागर है परंतु

संख्यातगुणा है। यानी किसीके जघन्य स्थितिसत्त्व है और किसीके उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व है - संख्यातगुणा का डिफरन्स है। अब यह क्यों है उसको अभी हम देखेंगे।

देखो, अभी यह कौनसा जीव है ? क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त करने जा रहा है। अभी चौथे, पांचवें, छठे, सातवेंवाला कोई जीव डायरेक्ट क्षायिक करने जा रहा है। या ऐसा भी जीव हो सकता है कि कोई वेदक सम्यग्दृष्टि है, उसने द्वितीयोपशम कर दिया है और उपशमश्रेणी चढ़कर उतरा है। उपशमश्रेणी चढ़कर उतरने में वहां भी अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण आदि परिणाम हुये थे। वहां चढ़ने में भी स्थिति बहुत सारी घटायी है यानी वहां पर भी गुणश्रेणी निर्जरा आदि बहुत कार्य हो चुका है और स्थिति बहुत घटायी है। अब उपशमश्रेणी चढ़कर उतरा है और अभी उसने दर्शनमोहनीय की क्षपणा करने को प्रारंभ किया है। जिसने श्रेणी में ऑलरेडि स्थिति घटायी है वह जब क्षपणा शुरू करता है तो उसकी स्थिति कम है और जिसने उपशमश्रेणी नहीं चढ़ी है, डायरेक्ट ही कोई क्षपणा कर रहा है। किसकी ? दर्शनमोहनीय की। उपशमश्रेणी में चारित्रमोहनीय को उपशमा कर वह नीचे आया है और अभी क्या कर रहा है ? दर्शनमोह की क्षपणा कर रहा है। दोनों में डिफरन्स पता चला ?

फिर से दुबारा- कोई ऐसा जीव है जो चौथे में, पांचवें में, छठे या सातवें में है और वह क्षपणा कर रहा है, तो उसकी स्थिति अधिक है। कोई ऐसा जीव है जो उपशमश्रेणी चढ़कर उतरा है तो वहां उसने स्थिति बहुत घटायी है क्योंकि वहां भी स्थितिकांडकघात आदि सब कार्य हुये हैं। सभी कर्मों में होते हैं तो उसने सभी कर्मों की स्थिति बहुत घटायी है। उपशमश्रेणी चढ़कर उतरने के बाद यदि वह दर्शनमोह की क्षपणा प्रारंभ करता है तो उसके जघन्य स्थितिसत्त्व पाया जाता है इतनी बात है। स्थिति किसीकी जघन्य और किसीकी उत्कृष्ट क्यों होती है यह बात ख्याल में आयी ? यहां लिखा है न, **क्योंकि कोई जीव उपशमश्रेणी चढ़कर वहां बहुत स्थितिखंडन करके वहां से उतरकर पश्चात् शीघ्र ही दर्शनमोह की क्षपणा का प्रारंभ करता है, उसके जघन्य स्थितिसत्त्व होता है।** क्योंकि उसने स्थितिसत्त्व बहुत घटाया है। *श्रोता: क्षपणा का कार्य छठे में, सातवें में, आठवें में किसीमें भी कर सकता है ?* आठवें में नहीं। चौथे से लेकर सातवें तक कहीं पर भी क्षपणा का कार्य हो सकता है। *श्रोता: उसे शीघ्र बोलेंगे ?* हां, एक अंतर्मुहूर्त के अंदर क्षपणा शुरू करेगा उसको शीघ्र कहेंगे।

अन्य कोई जीव श्रेणी न चढ़ा हो उसके उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व है। यह बात ख्याल में आयी स्थितिसत्त्व क्यों घटाया है ? श्रेणी चढ़कर उतरा है इसलिये स्थितिसत्त्व घट गया है। वहां जघन्य स्थितिसत्त्व का स्थितिकांडक आयाम पत्य के संख्यातवें भाग मात्र है, उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व का पृथक्त्व सागर प्रमाण है, क्योंकि स्थिति के अनुसार स्थितिकांडक होता है। जिसकी स्थिति लंबी है, स्थिति अधिक है उसका कांडक भी बड़ा है और जिसने ऑलरेडि उपशमश्रेणी में स्थिति घटायी है; स्थिति छोटी है तो उसका कांडक भी छोटा होगा क्योंकि बाद में स्थिति समान होनेवाली है; अनिवृत्तिकरण में पहुंचेगा तब सबकी स्थिति समान हो जायेगी। ऐसे संख्यात हजार स्थितिकांडकघात यानी एक स्थितिकांडकघात हुआ, फिर दूसरा हुआ, फिर तीसरा हुआ, फिर चौथा हुआ। कितने हो जायेंगे ? संख्यात हजार स्थितिकांडकघात, उनसे संख्यातगुणा अनुभागकांडकघात ऐसा क्यों कहा ? एक स्थितिकांडकघात होता है उतने काल में संख्यात हजार बार अनुभागकांडकघात होते हैं। यानी उसका अंतर्मुहूर्त कितना छोटा होगा ! अंतर्मुहूर्त के इतने छोटे-छोटे भेद हैं। हम संख्यात हजार कहते हैं; जयधवला के स्वाध्याय में आया था संख्यात हजार का प्रमाण है संख्यात कोड़ाकोड़ी बार ! इतनी बार इतने छोटे-छोटे अंतर्मुहूर्त में कांडकघात होते रहते हैं।

कहते हैं संख्यात हजार स्थितिकांडकघात उनसे संख्यातगुणा अनुभागकांडकघात, संख्यातगुणा का अर्थ तो उससे संख्यातगुणा बार। हम कहते हैं न उससे सौ गुणा अधिक ऐसा। प्रति समय असंख्यातगुणा द्रव्य की गुणश्रेणी निर्जरा यानी क्या-क्या बातें हो रही हैं ? स्थितिकांडकघात हो रहे हैं, अनुभागकांडकघात हो रहे हैं और प्रति समय असंख्यातगुणा निर्जरा भी हो रही है। गुणश्रेणी निर्जरा करके और गुणसंक्रमण विधान करके। ये सभी प्रोसेसेस् अंट अ टाइम चल रहे हैं। हम समझने के लिये एक के बाद एक समझ रहे हैं। एक बाजू स्थितिकांडकघात भी हो रहा है, गुणसंक्रमण भी हो रहा है, गुणश्रेणीरूप से वहां निर्जरा भी हो रही है, अनुभागकांडकघात भी हो रहा है। ये सभी चीजें- सभी प्रोसेसेस् अंट अ टाइम हो रहे हैं। अपूर्वकरण के अंत समय को प्राप्त हुआ। अभी अपूर्वकरण में क्या-क्या होता है यह बात बतायी। ये बातें गुणश्रेणी, गुणसंक्रमण, स्थितिकांडकघात और अनुभागकांडकघात अनिवृत्तिकरण में भी चालू रहेगी। अब

आगे क्या होता है देखेंगे। **वहां कर्मों का स्थितिसत्त्व प्रथम समय के उस स्थितिसत्त्व से संख्यातगुणा हीन होता है।** अपूर्वकरण के प्रथम समय में जितना स्थितिसत्त्व था, उससे अपूर्वकरण के अंत समय में संख्यातगुणा हीन स्थितिसत्त्व रह जाता है। **और भी दर्शनमोह के उपशम विधान में जो प्ररूपण किया है, वह यहां भी यथासंभव जानना।** यानी जो कांडक के आयाम की बात है, स्थितिबंध घटता चला गया आदि-आदि, वे सभी बातें यहां पर भी घटित होंगी।

श्रोता: जो चार बार उपशमश्रेणी चढ़कर उतरा है उसका क्या होगा ? आपका ऐसा प्रश्न है जो चार बार उपशमश्रेणी चढ़कर उतरा है उसको लेना कि नहीं लेना ? एक भव में चार बार उपशमश्रेणी नहीं चढ़ेगा, एक भव में तो दो ही बार उपशमश्रेणी चढ़ सकता है। *श्रोता:* पहले भी स्थिति घटायी थी न ? शुरू में भी किया है, परंतु फिर बीच में मिथ्यात्व में जाकर बंध ज्यादा किया है न। हां, हो सकता है कि यह बीच में सम्यग्दृष्टि रहा है तो उसकी स्थिति एक-एक समय से कम हुयी है परंतु उसकी मुख्यता यहां नहीं है। श्रेणी चढ़कर उतरकर शीघ्र शब्द डाला इसमें। जो शीघ्र दर्शनमोह की क्षपणा करने के लिये प्रारंभ करता है उसकी मुख्यता से यहां बात है। अभी ऐसे व्हेरिएशन्स तो बहुत होंगे, स्थिति के उत्कृष्ट और जघन्य के बीच में बहुत सारे व्हेरिएशन्स होंगे। उसने क्षपणा का प्रारंभ कब किया है ? उसके अनुसार उसकी स्थिति हीनाधिक हो सकती है और जितनी हीनाधिक होगी उतना कांडक भी उसका हीनाधिक हो जायेगा। *श्रोता:* एक बात पूछनी थी वहां कर्मों की स्थिति समान हो जाती है ? वहां यानी कहां ? अपूर्वकरण के अंत समय में। अब किसके साथ तुलना कर रहे हैं ? अपूर्वकरण के पहले समय से। जितनी पहले समय में उसकी स्थिति थी उसके संख्यातवें भाग अभी बच जाती है। अब आगे बढ़ते हैं हम। गाथा नंबर ११८ देखेंगे।

अणियट्टिकरणपढमे दंसणमोहस्स सेसगाण ठिदी।

सायरलक्खपुधत्तं कोडीलक्खगपुधत्तं च॥ ११८॥

अनिवृत्तिकरण के प्रथम समय में दर्शनमोह का तो स्थितिसत्त्व सत्त्व की बात है, यहां बंध का तो कोई सवाल ही नहीं है। पृथक्त्व लक्ष सागर प्रमाण है। जैसे हमने अनंतानुबंधी की विसंयोजना में अनिवृत्तिकरण के स्टार्टिंग में देखा था। पृथक्त्व लक्ष सागर याद है न ? स्थिति के चार पर्व हमने देखे थे। **यहां पृथक्त्व नाम बहुत का**

है, सो कोटि के नीचे ऐसा अंतःकोड़ी प्रमाण जानना। पृथक्त्व लक्ष को कितना बताया ? अंतःकोड़ी। पहले कितना था ? अंतःकोड़ाकोड़ी सागर। अब हो जायेगा अंतःकोड़ी सागर। क्या कहा ? कितने लाख ? करोड़ के नीचे इतने लाख यानी कोड़ाकोड़ी के बदले अभी लाख-लाख कहेंगे। देखो, पृथक्त्व का अर्थ अलग-अलग जगह उसकी व्हॅल्यू अलग-अलग होती है। यहां बता रहे हैं कि कितनी होती है ? अंतःकोड़ी का अर्थ है करोड़ से कम। पृथक्त्व किसलिये लगाया ? पृथक्त्व लक्ष। यानी करोड़ से कम इतने लाख। **अवशेष कर्मों का स्थितिसत्त्व पृथक्त्व लक्ष कोटि सागर प्रमाण है, सो कोड़ाकोड़ी के नीचे ऐसा अंतःकोड़ाकोड़ी जानना।** अन्य कर्मों का कितना है ? अंतःकोड़ाकोड़ी सागर। और दर्शनमोहनीय का ? अंतःकोड़ी सागर, यहां अनिवृत्तिकरण के प्रथम समय में आकर इतना घट गया है।

अपूर्वकरण में संख्यात हजार स्थितिकांडकघात करने के पश्चात् इतना अवशेष स्थितिसत्त्व रहता है। यहां यहां का अर्थ अनिवृत्तिकरण में क्योंकि अनिवृत्ति नाम ही इसलिये है कि सभी जीवों के समान परिणाम पाये जाते हैं। एक-एक समय में परिणाम समान हैं। **यहां सर्व जीवों के परिणाम समान हैं, इसलिये स्थितिसत्त्व में जघन्य उत्कृष्ट भेद नहीं हैं।** अपूर्वकरण के शुरू में जघन्य उत्कृष्ट भेद था और वहां कांडक भी जघन्य स्थितिसत्त्व का छोटा और उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व का बड़ा था। अब उसके द्वारा ये कांडकघात करते-करते जब अनिवृत्तिकरण तक पहुंचा तब सबका स्थितिसत्त्व समान हुआ है। **इसके पश्चात् दर्शनमोह की स्थिति पल्यप्रमाण रहे वहां तक स्थितिकांडक आयाम का प्रमाण पल्य के संख्यातवें भागमात्र जानना।** जैसे हमने पहले और दूसरे पर्व के बीच में देखा था पृथक्त्व लक्ष सागर से लेकर पल्य तक जब तक स्थिति घटती चली जाती है तब तक कांडक का प्रमाण पल्य के संख्यातवें भाग प्रमाण है। अब ११९ को पढ़ेंगे हम।

अमर्णांठिसत्तादो पुधत्तमेत्ते पुधत्तमेत्ते य।

ठिदिखंडेय हवंति हु चउ ति वि एयक्ख पल्लिदी ॥ ११९ ॥

दर्शनमोह की पृथक्त्व लक्ष सागर प्रमाण स्थिति प्रथम समय में पायी जाती है। सबकी समान है बतायी थी और यह पृथक्त्व लक्ष सागर हो गयी। उससे संख्यात हजार कांडक होने पर असंज्ञी पंचेन्द्रिय के; क्या कहा है ? बंध समान

हजार सागर स्थितिसत्त्व रहता है। असंज्ञी पंचेन्द्रियों को मिथ्यात्व का उत्कृष्ट स्थितिबंध एक हजार सागर है। अब ये पृथक्त्व लाख सागर से घटते-घटते-घटते-घटते एक हजार सागर तक आ गया। **उसके पश्चात् बहुत-बहुत स्थितिकांडक होनेपर क्रम से** यानी स्थिति घटने का यही प्रोसेस है कि स्थितिकांडकघात होते रहते हैं। अभी मात्र दर्शनमोहनीय पर ही यह बात घटित हो रही है, अन्य कर्मों में नहीं। जहां जिस कर्म की क्षपणा होती है वहीं पर स्थितिसत्त्व इतना घटता है। पहले हमने अनंतानुबंधी की विसंयोजना देखी थी। वह सत्ता में से नाश होनेवाला था तो उसकी स्थिति इतनी घटती गयी थी। अब यहां पर मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति का नाश होने जा रहा है। इन्हीं की स्थिति इतनी घट रही है। बाकी कर्मों की घटेगी परंतु थोड़ी घटेगी, इतनी नहीं।

जब क्षपकश्रेणी चढ़ेगा तो जिन-जिन प्रकृतियों का वह क्षय करेगा उनकी स्थिति ऐसे ही घटती चली जायेगी। उसकी बात हम वहां करेंगे। तो **बहुत-बहुत स्थितिकांडक होनेपर क्रम से चतुरिन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, एकेन्द्रिय के स्थितिबंध के समान सौ सागर, पचास सागर, पच्चीस सागर, एक सागर स्थितिसत्त्व होता है।** यानी पृथक्त्व लक्ष सागर से लेकर इतना घटते-घटते-घटते एक सागर तक पहुंचा। **पश्चात् बहुत स्थितिखंड होने पर पल्यप्रमाण स्थितिसत्त्व होता है। ऐसा यह दूसरा पर्व हुआ।** इसी नाम के हमने चार पर्व देखे थे न ? अनंतानुबंधी की विसंयोजना में देखे थे। ये ही चार नाम यहां पर भी होंगे। उसका जो प्रमाण है वह भी ऐसा ही रहेगा। अब गाथा नंबर १२०-

पल्लट्टिदिदो उवरि संखेजसहस्समेत्तठिदिखंडे।

दूरावकिट्टिसण्णद ठिदिसत्तं होदि णियमेण ॥ १२० ॥

उसके पश्चात् पल्य को संख्यात का भाग देकर वहां बहुभाग मात्र आयामवाले हमने देखा था, पांच का भाग दे दो और चार भाग प्रमाण आयामवाले इसको क्या कहेंगे ? संख्यात बहुभाग। **ऐसे संख्यात हजार स्थितिखंड होने पर दूरापकृष्टि नामक स्थितिसत्त्व नियम से होता है।** पहले भी हमने देखा था। यह कौनसा है ? है तो पल्य का संख्यातवां भाग ही, परंतु अब इसके पश्चात् पल्य का असंख्यातवां भाग होनेवाला है यानी पल्य के संख्यातवें भागवाला यह अंतिम स्थान है।

इसके बाद उसका प्रमाण बदलेगा। पल्य को उत्कृष्ट संख्यात का भाग देकर जो प्रमाण आये, उससे एक घटते क्रम से पल्य को जघन्य परितासंख्यात का भाग देकर जो प्रमाण आये वहां तक दूरापकृष्टि के सर्व भेद जानना। उनमें से यहां कोई यथायोग्य भेद जानना। देखो, पहले तो दूरापकृष्टि इतना ही कहकर छोड़ा था, अभी उसकी और विशेषता बताते हैं। जो उत्कृष्ट संख्यात है उसमें एक मिलायेंगे तो जघन्य परितासंख्यात हो जायेगा। उत्कृष्ट संख्यात से भाग देने पर कोई संख्या आयेगी। परंतु असंख्यातवां भाग कब कहेंगे ? अट लिस्ट मिनिमम असंख्यात से भाग देना चाहिये। तो क्या इन दोनों में बीच में कोई संख्या रह जायेगी ? हम बहुत छोटी संख्या लेकर यहां देख रहे हैं। देखो, यहां विशेषार्थ पढ़ना-

यहां दृष्टांत द्वारा समझेंगे। मान लो पल्य के लिये हमने ११०० मान लिया। **उत्कृष्ट संख्यात १०** माना तो **जघन्य परितासंख्यात** कितना होगा ? १ अधिक यानी ११ हो जायेगा। अगर ११०० को १० से भाग देते हैं तो ११० आते हैं यानी यह संख्यातवां भाग हुआ। और ११ से भाग देंगे तो असंख्यातवां भाग हो जायेगा। ११०० को ११ से भाग देते हैं तो १०० आ जाते हैं। कितना डिफरन्स हुआ बीच में ? श्रोताः १० का। उत्कृष्ट संख्यात से भाग दिया तो ११० आये, जघन्य असंख्यात से भाग दिया तो १०० आये। **इसलिये ११० से १०१ तक** यानी ११०, १०९, १०८, ... १०१ तक **एक-एक से घटते हुये सारे दूरापकृष्टि के भेद हैं।** समझने के लिये हमने यह बहुत छोटी संख्या ली। यथार्थ में उत्कृष्ट संख्यात से भाग देंगे और उसके बाद जघन्य असंख्यात से भाग देंगे तो बीच में असंख्यात संख्यायें आयेंगी। इसमें से कोई एक जो केवली ने जाना है ऐसा भेद है उसको दूरापकृष्टि कहेंगे यह कहना है। जब तक असंख्यातवां भाग नहीं होता तब तक उसको संख्यातवां भाग कहकर; दूरापकृष्टि यानी यहां अंतिम संख्यातवां भाग है इससे आगे वह नहीं रहेगा इतनी बात बताना चाहते हैं। अब गाथा नंबर १२१, वे ही नाम आनेवाले हैं। पहले हमने क्या देखा था ? पृथक्त्व लक्ष सागर। उसके बाद कहां तक आये ? पल्य तक। अब कहां तक आये ? दूरापकृष्टि तक। अब स्थिति घटकर कहां तक चली जायेगी ? श्रोताः उच्छिष्टावली तक। उच्छिष्टावली तक। गाथा पढ़ेंगे-

पल्लस्स संखभाणं तस्स पमाणं तदो असंखेज्जं।

भागपमाणे खंडे संखेज्जसहस्सगेसु तीदेसु ॥ १२१ ॥

सम्मस्स असंखाणं समयपबद्धाणुदीरणा होदि।

तत्तो उवरि तु पुणो बहुखंडे मिच्छउच्छिट्ठं ॥ १२२ ॥

उस दूरापकृष्टि नामक स्थितिसत्त्व का प्रमाण पल्य के संख्यातवें भाग मात्र जानना। उसको संख्यातवां भाग कहेंगे, असंख्यातवां नहीं कहेंगे। उसके पश्चात् पल्य को असंख्यात का भाग देकर वहां बहुभाग मात्र आयाम के धारक ऐसे संख्यात हजार स्थितिकांडक होने पर सम्यक्त्वमोहनीय के द्रव्य का अपकर्षण किया। क्या कहना चाहते हैं ? यह स्थितिकांडकघात होने की बात चल ही रही है। अब इस पोझिशन पर अपकर्षण हुआ द्रव्य भी बढ़ता-बढ़ता जा रहा है। यहां जो अपकर्षित द्रव्य होता है; पहले क्या होता था ? कि असंख्यातलोक का भाग देकर उदयावली आदि में दिया जाता था। अब यहां पर भागहार बदलेगा और असंख्यात समयप्रबद्ध की उदीरणा होगी यानी उतना द्रव्य उदयावली में दिया जायेगा। इतनी मात्रा में अभी द्रव्य निर्जरा होकर खिर जानेवाला है। देखो यहां कहते हैं- **उसमें से** यानी जितना अपकर्षित द्रव्य हुआ है उसमें से **असंख्यात समयप्रबद्ध मात्र उदीरणाद्रव्य को उदयावली में देता है।** पहले बहुत छोटा भाग उदयावली में देते थे, ऊपर गुणश्रेणी में बहुत अधिक दिया जाता था और फिर उपरितन स्थिति में भी दिया जाता था। अब यहां दूरापकृष्टि के बाद थोड़ा आगे चलकर इस पोझिशन पर आया है, अभी असंख्यात समयप्रबद्धों की उदीरणा होकर इतना द्रव्य डायरेक्ट उदयावली में दिया जायेगा और उसकी निर्जरा हो जायेगी। अभी इसको बतायेंगे।

सम्यक्त्वमोहनीय के द्रव्य को अपकर्षण भागहार का भाग देकर, वहां बहुभाग तो जैसे थे वैसे ही रहे, निषेक की रचना जैसी है वैसी रहेगी। उसमें से कुछ द्रव्य अपकर्षणरूप से निकाला। **अवशेष एकभाग को** यानी जितना अपकर्षित द्रव्य है वह पूरा एकभाग है उसको **पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर वहां बहुभाग उपरितन स्थिति में देना।** पहले भी ऐसा ही देते थे। अब **अवशेष एकभाग को पुनः पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर** इसके पहले हम किसका भाग देते थे ? असंख्यातलोक का - वह बहुत बड़ा भागहार था। अब किसका भाग देते हैं ? छोटा, पल्य के असंख्यातवें भाग का। **वहां बहुभाग गुणश्रेणी आयाम में देना और एकभाग उदयावली में देना।** यह भागहार छोटा होने से उदयावली में दिया जानेवाला

द्रव्य बहुत ज्यादा है। यहां उदयावली में दिये द्रव्य को उदीरणाद्रव्य जानना। पहले तो उदयावली में द्रव्य देने के लिये असंख्यातलोक का भाग देने से द्रव्य का प्रमाण अल्प आता था।

जहां भागहार बड़ा वहां द्रव्य कम। ख्याल में आती है बात ? १००० को १०० से भाग दिया। कितना आया ? श्रोता: १०/ हां, १० आया और १००० को १० से भाग दिया। श्रोता: १००/ १०० आया। छोटी संख्या से भाग दिया तो अधिक प्रमाण आया। तो ऐसा ही यहां भागहार का प्रमाण चेंज हो जायेगा; विशुद्धि के कारण सहज ऐसी अवस्था होती है कि कर्मों की असंख्यातगुणा निर्जरा होती रहती है। सर्वत्र ऐसा ही है। हमने पहले भी देखा था कि अज्ञानी करोड़ों भवों तक तप तपे तो भी प्रति समय एक ही समयप्रबद्ध खिरेगा और ज्ञानी के एक समय में असंख्यात समयप्रबद्धों की निर्जरा होगी। अज्ञानी ऐसा मानता है न कि मैं इतना तप कर रहा हूं, कुछ तो आगे बढ़ूंगा। कुछ नहीं क्योंकि पुण्य बंध रहा है, वह कुछ काल के लिये बंधेगा फिर पाप बंधेगा। ऐसा तो अनादि से हम बहुत बार पुण्य-पाप, पुण्य-पाप करते-करते यहां तक आये हैं। ऐसा ही चालू रखना है तो छूट है क्योंकि मोक्षमार्ग प्रकट करने में बहुत कम लोगों का नंबर लगनेवाला है, मेजॉरिटी तो ऐसे ही रहनेवाले हैं।

भागहार घटता होने से द्रव्य का प्रमाण एकभाग में भी असंख्यात समयप्रबद्ध प्रमाण आता है, ऐसा जानना। यह ऑटोमैटिक होता है। उसके लिये कुछ नहीं बस जीव की अपनी विशुद्धि बढ़ रही है, उसके आत्मसन्मुख परिणाम हैं, उसके करण परिणाम चल रहे हैं। कर्मों में यह सब हो रहा है कि नहीं हो रहा है, यह उसके ज्ञान का विषय नहीं है उसने भले आगम से जाना होगा। उसका ज्ञान तो अपने शुद्धात्मा में लगा है। **पश्चात् मिथ्यात्व प्रकृति के, पत्य को असंख्यात का भाग देकर बहुभाग मात्र आयाम के धारक, बहुत स्थितिखंड होने पर।** क्या कहना चाहते हैं ? मिथ्यात्व प्रकृति के अनेक स्थितिकांडकघात होने पर, कितने आयामवाले ? असंख्यात बहुभागवाले। **मिथ्यात्व प्रकृति के अंत कांडक की अंत फालि के पतन के समय।** हमने देखा था दूरापकृष्टि से लेकर स्थितिकांडकघात होते-होते-होते-होते कहां तक पहुंचेगा ? उच्छिष्टावली बाकी रह जायेगी। उसके पहले क्या होगा ? मिथ्यात्व के अंतिम कांडक की अंतिम फालि यानी लास्ट लॉट नीचे आयेगा और उच्छिष्टावली शेष

रहेगी। नीचे आयेगा यानी वह सम्यग्मिथ्यात्वरूप हो रहा है, गुणसंक्रमण चल रहा है न उसका। उच्छिष्टावली छोड़कर मिथ्यात्व का सारा द्रव्य सम्यग्मिथ्यात्वरूप से टर्न हो जायेगा यानी अभी इस पोज़िशन पर आकर सम्यग्मिथ्यात्व में मैक्सिमम परमाणु आ गये। तो **मिथ्यात्व के उच्छिष्टावली मात्र निषेक अवशेष रहते हैं।**

अन्य सर्व मिथ्यात्व प्रकृति का द्रव्य मिश्रमोहनीय और सम्यक्त्वमोहनीयरूप परिणमता है। उन दोनोंरूप परिणमता है, हर समय दोनोंरूप परिणमन चल रहा है। किस प्रकृति का ? कैसा ? किस प्रमाण में ? गुणित प्रमाण में, गुणसंक्रमणरूप से अन्य दोरूप होकर मिथ्यात्व का पूरा नाश हो जाता है। कितना बाकी है ? उच्छिष्टावली। उसका क्या होगा ? एक-एक समय में टर्न होकर वह सम्यक् प्रकृतिरूप से होकर उदय में आयेगा। **जो आवली मात्र निषेक रहे हैं, वे प्रतिसमय एक-एक निषेकरूप होकर जब तक दो समय अवशेष रहते हैं तब तक क्रम से निर्जरित होते हैं यानी खिरते हैं।** श्रोता: कितने निषेक ? एक ही, देखो नीचे का एक निषेक। उदय किसका चल रहा है ? सम्यक् प्रकृति का, तो मिथ्यात्व का निषेक उसरूप होकर खिर जायेगा। फिर दूसरा, फिर तीसरा, फिर अंतिम निषेक रहा। अंतिम निषेक उदय समय से दूसरे समय पर है क्योंकि उदय का समय सम्यक् प्रकृति का है। मिथ्यात्व अपनेरूप से तो उदय में नहीं आ रहा है तो मिथ्यात्व का जब अंतिम निषेक रहा तो उसकी स्थिति कितनी है ? दो समयवाली। यह बात समझ में आती है ? जो उदयरूप निषेक है उसको हम कहेंगे यह एक समय स्थितिवाला पहला निषेक है और जो उदय के समय के ऊपर का निषेक है उसको कहेंगे उसकी स्थिति कितनी है ? दो समय। मिथ्यात्व का जब एक निषेक शेष रहेगा उसकी स्थिति कितनी रहेगी ? श्रोता: दो समय। दो समय, ख्याल में आती है यह बात ?

देखो, यह विशेषार्थ में आगे कहीं लिखा था। श्रोता: नहीं समझे। हां, उसको समझाएंगे। जब हम मिथ्यात्व की उच्छिष्टावली कहते हैं तो उदय का समय छोड़कर ही हमको देखना है। इसके निषेक घटते-घटते देखो, ये मिथ्यात्व के उच्छिष्टावली के निषेक हैं और ये सम्यक् प्रकृति के निषेक यहां उदय के समय से ऊपर तक पड़े हैं। अभी समझने के लिये हमने बीच में सम्यग्मिथ्यात्व को नहीं बताया है। सम्यग्मिथ्यात्व के परमाणु यहां तो उदय में आनेवाले नहीं हैं। मिथ्यात्व का भी उदय नहीं है। तो ये

दोनों सम्यक् प्रकृतिरूप होकर उदय में आयेंगे। मिथ्यात्व के परमाणु अन्य दोरूप होते हैं परंतु सम्यक् प्रकृतिरूप से उदय चलेगा। इनके नीचे के निषेक की स्थिति कितनी है ? सम्यक् प्रकृति के निषेक का प्रथम समय और मिथ्यात्व के निषेक का दूसरा समय है। उसकी स्थिति दो समय है। मिथ्यात्व का अंतिम निषेक बाकी रहा क्योंकि बाकी के निषेक स्थिति घटते-घटते नीचे आ गये न, नीचे आकर, नीचे से खिर गये हैं। नीचे आते-आते यह मिथ्यात्व का अंतिम निषेक है। इसकी स्थिति कितनी है ? यह दो समयवाला एक निषेक है। क्यों ? क्योंकि यह उदय के समय से ऊपर है और वह उदय में आते-आते सम्यक् प्रकृतिरूप होकर उदय में आनेवाला है, इतनी सी बात है। इसलिये उसकी स्थिति कितनी है ? दो समयवाली। यही बात यहां लिखी है। जब तक दो समय अवशेष रहते हैं तब तक क्रम से निर्जरित होते हैं। आगे की गाथा पढ़ेंगे।

जत्थ असंखेज्जाणं समयपबद्धाणुदीरणा तत्तो।

पल्लासंखेज्जदिमो हारो णासंखलोगमिदो ॥ १२३ ॥

ये पहलीवाली बातें फिर से दुबारा बता रहे हैं। क्या कहते हैं ? कि जिस अवसर में असंख्यात समयप्रबद्धों की उदीरणा होकर हमने देखा था दूरापकृष्टि के बाद कितने ही स्थितिखंड होने के बाद अब जो अपकर्षण होगा उसमें से उदीरणा होकर उदयावली में कितना द्रव्य दिया जायेगा ? असंख्यात समयप्रबद्ध। अब असंख्यात समयप्रबद्धों की उदीरणा होगी ऊपर के निषेकों का द्रव्य उदयावली में प्राप्त होता है। उस समय से लेकर उत्तरकाल में यानी पश्चात् के काल में उदयावली में द्रव्य देने के लिये भागहार पत्य के असंख्यातवां भाग मात्र ही जानना, पूर्ववत् असंख्यातलोक मात्र नहीं जानना। इसकी हमने चर्चा की थी। उसीकी बात उन्होंने फिर दोहरायी है। बताया था न, अपकर्षण भागहार से भाग देकर जितना द्रव्य नीचे आता है उसमें से पहले उदयावली में थोड़ा दिया जाता था, अब बहुत ज्यादा दिया जाता है। क्यों ? भागहार चेंज हुआ। कितना हुआ ? क्या हुआ ? हमने पढ़ लिया और भूल गये। जाने दो उसको कुछ रटना नहीं है हमको, पढ़ने के बाद उसका अर्थ ख्याल में आता है कि नहीं बस इसकी मुख्यता है और कुछ नहीं है। कोई भी सेन्टेन्स, कोई भी प्रोसेस आपको कुछ रटना नहीं है, बराबर समझना है।

जैसे आप कोई टीव्ही सीरियल, पिक्चर देखते हैं न, कोई स्टार ट्रेक वगैरह ?

सारा अद्भुत-अद्भुत देखते हैं, तो क्या याद करने की कोशिश करते हैं ? क्या करते हैं ? कुतूहल, मजा लेते हैं, हां, मजा ले लो न, क्योंकि मजा ही लेते आये हैं तभी तो इतने सारे कर्मों को इकट्ठा किया है हमने ! तो उनसे छूटने का तरीका तो सोचो। जो जीव क्षपणा कर रहा है, उसकी अंदर से इतनी अनुमोदना तो आनी चाहिये कि अरे वाह ! यह जीव कैसे-कैसे श्रेणी चढ़ रहा है, जब क्षपणा होगी तब उसके कर्म कैसे खिरते हैं। सिद्धक्षेत्र में वंदना करते-करते सोचो कि इन जीवों ने कर्मों की कैसी-कैसी क्षपणा की ! यह भी एक विषय है न। इससे भी हमें कुछ मिलता है। क्या मिलता है ? प्रेरणा मिलती है कि कैसे इन जीवों ने अपने अंतरंग में पुरुषार्थ किया और कैसे-कैसे कर्म खिर गये। हम तो कहते हैं सभी कर्मों का अभाव कर दिया। 'भेत्तारं कर्मभूभृताम्।' कैसे-कैसे भेत्तारं किया वह सब जानने का विषय है। भूभृत समझते हैं न कि नहीं समझते ? पर्वत। कर्मरूपी पर्वतों को कैसे-कैसे छेदा ? देखो, इतना सब छेद रहे हैं न; इतनी असंख्यातगुणा निर्जरा-निर्जरा-निर्जरा करते-करते जब जाकर चौदहवें गुणस्थान के अंत समय में पहुंचेंगे; तब कितना कर्म अवशेष रहेगा ? तो कहेंगे अभी तक जितना गया न, वह नहीं के बराबर था ! वह असंख्यातवें भाग प्रमाण गया। अब एक समय में बाकी सब जा रहा है ऐसा कहेंगे लास्ट में जाकर। इतना सब खिर गया है, फिर भी कहेंगे अभी तक कुछ नहीं खिरा, असंख्यातवें भाग प्रमाण ही खिरा है। अंतिम समय में जाकर इतना सारा खिरेगा। तो हम कितना कलेक्ट करते होंगे और कितना-कितना सब इकट्ठा करते होंगे !

मजा लेते हैं ! क्योंकि परिणाम करते हैं न, तब तो कुछ ख्याल में नहीं आता है कि कैसे-कैसे परिणाम कर रहे हैं। हर एक-एक परिणाम का फल यहां कर्मरूप से मिलता ही है। वहां कोई इन्फ्लूअन्स - वशीला नहीं चलता है, वहां कोई रिश्वत वगैरह कुछ नहीं चलती है। परिणाम शुभ हो या अशुभ वहां पर बंध होता ही होता है। यहां तो देखो, हमारे परिणाम में रात-दिन जो राग-द्वेष चलते रहते हैं उसके कारण हर समय कर्मों का बंध होता ही है। कब जाकर वे छूटेंगे ? क्योंकि एक-एक समय में बंधे हुये कर्म परमाणु अलग-अलग समयों में उदय में आते हैं और अलग-अलग समयों में बंधे हुये कर्मों का सबका इकट्ठा फल कहां कब, कैसे आयेगा कोई कह नहीं सकता। फिर ऐसा कोई प्रतिकूल संयोग आ जाये तो रोने लगता है क्या करे, क्या करे, क्या करे ?

अभी कैसा छूटूं ? कर्म मुझे बहुत तकलीफ दे रहे हैं। कहां से आया कर्म ? हमने ही तो इकट्ठा किया है। यह ऐसा ही है। यह सब पढ़ते हैं तो ख्याल में आता है कि कैसी-कैसी अवस्था है और इतना करके अभी क्षायिक सम्यक्त्व होगा तो सम्यक्त्व नहीं छूटेगा। अल्प काल में मोक्ष जायेगा ही। कब मोक्ष जायेगा ?

किसीको क्षायिक सम्यक्त्व होने के बाद कितने भव बाकी रहते हैं ? कोई बोलेगा ? कोई बोलता है दो, कोई बोलता है तीन। देखो या तो उसी भव में मोक्ष जा सकता है। कर्मभूमि के मनुष्य ने क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त किया है वह या तो उसी भव में मोक्ष जा सकता है। यदि उसने पहले देवायु का बंध किया हो तो देव में जायेगा और वापस मनुष्य होकर मोक्ष जायेगा ही। यदि सम्यक्त्व के पहले नरकायु बांधी हो तो पहले नरक में जायेगा, वहां से आकर मनुष्य होकर मोक्ष जायेगा ही। यदि पहले तिर्यचायु या मनुष्यायु का बंध किया हो और बाद में सम्यक्त्व प्राप्त करके क्षायिक हुआ है तो भोगभूमि का क्षायिक सम्यग्दृष्टि होकर वहां से सौधर्म-ईशान में ही जायेगा, ऊपर भी नहीं जायेगा और फिर वापस मनुष्य होकर मोक्ष चला जायेगा। अब उसके इतने ही भव हैं। क्षायिक होने के बाद उसके अधिक भव नहीं हैं, इतने ही भव होते हैं। क्षायिक सम्यग्दृष्टि हुआ है तो अन्य कर्मों से छूटेगा ही और यदि आयु बांधी है वहां तो जायेगा ही जायेगा। क्षायिक होने के बाद आयु बांधेगा तो देव की आयु बांधेगा, फिर आकर मोक्ष चला जायेगा। यह क्षायिक सम्यग्दृष्टि की बात है। वर्तमान भव पकड़ो तो एक मनुष्य का, फिर भोगभूमि का, फिर देव का, फिर मनुष्य का फिर सीधे सिद्धालय में चला जायेगा। देखो हम पढ़ रहे थे अभी मिथ्यात्व की उच्छिष्टावली रह गयी, उसकी बात अभी बतायेंगे गाथा नंबर १२४,

मिच्छुच्छिद्धादुवरि पल्लासंखेजभागिगे खंडे।

संखेजे समतीदे मिस्सुच्छिद्धं हवे णियमा ॥ १२४ ॥

मिथ्यात्व की उच्छिष्टावली मात्र स्थिति अवशेष रहने के समय से लेकर मिश्रमोहनीय की स्थिति में पल्य को असंख्यात का भाग देकर वहां बहुभाग मात्र आयाम के धारक संख्यात हजार स्थितिकांडक होते हैं, क्या कहना चाहते हैं ? मिथ्यात्व की उच्छिष्टावली स्थिति शेष रही अब क्या होगा ? एक-एक निषेक टर्न होकर नष्ट होगा। ये निषेक तो आवली काल के अंदर नष्ट हो जायेंगे। उसके पश्चात् या उसीके

साथ-साथ अभी सम्यग्मिथ्यात्व में क्या हो रहा है ? वहां सम्यग्मिथ्यात्व में स्थितिकांडकघात चल रहे हैं क्योंकि उसकी भी लंबी स्थिति बाकी है। वे कितने आयामवाले हैं ? पल्य को असंख्यात का भाग देकर बहुभाग मात्र प्रमाणवाले - इतने बड़े-बड़े आयामवाले कांडकघात वहां चलेंगे। **वहां अंत कांडक की अंत फालि के पतन में मिश्रमोहनीय के निषेक उच्छिष्टावली मात्र अवशेष रहते हैं।** यही प्रोसेस है- पहले मिथ्यात्व के कांडकघात होते गये, उच्छिष्टावली बाकी रही। तब तक सम्यग्मिथ्यात्व के भी कांडकघात होते थे परंतु उसका पूरा घात नहीं हुआ। फिर सम्यग्मिथ्यात्व में कांडकघात होते-होते उसकी उच्छिष्टावली बाकी रही। अब उसका क्या होता है ? आगे बतायेंगे गाथा नंबर १२५-

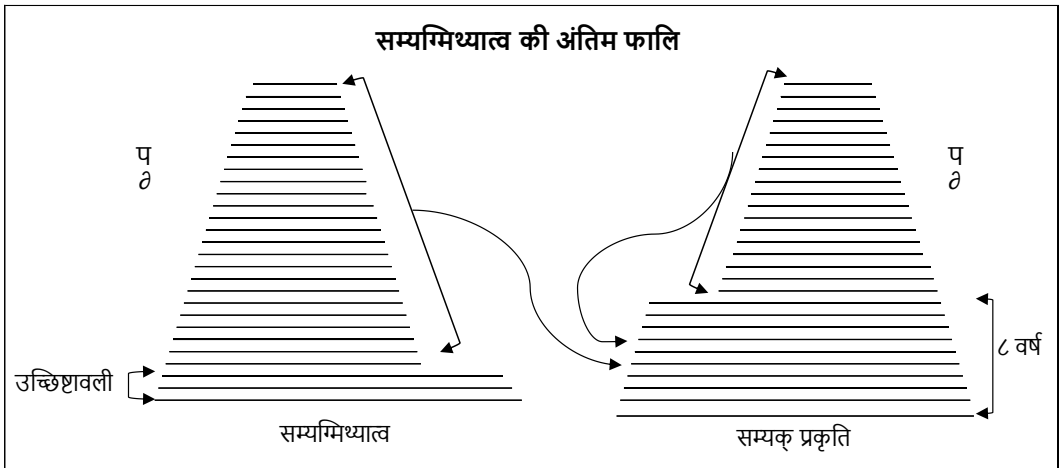
मिस्सुच्छिष्टे समये पल्लासंखेज्जभागिगे खंडे।

चरिमे पडिदे चेद्वदि सम्मस्सडवस्सठिदिसत्तो ॥ १२५ ॥

जिस समय मिश्रमोहनीय की उच्छिष्टावली मात्र स्थिति रहती है, उसी समय में, सम्यक्त्वमोहनीय की स्थिति में से पल्य को असंख्यात का भाग देकर वहां बहुभाग मात्र आयाम के धारक ऐसे संख्यात हजार स्थितिखंड व्यतीत होने से यानी ऑलरेडि व्यतीत हो चुके हैं। अभी क्या होनेवाला है ? सम्यग्मिथ्यात्व की अंतिम फालि पतन होनेवाली है और वहां सम्यक् प्रकृति में भी बड़े-बड़े स्थितिकांडक होते थे उसकी भी अंतिम फालि खिरनेवाली है। *श्रोता: और उच्छिष्टावली में मिथ्यात्व बाकी है ?* मिथ्यात्व की उच्छिष्टावली तो कबकी नष्ट हो चुकी है। अभी सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति बाकी है। सम्यग्मिथ्यात्व में भी स्थितिकांडकघात हो रहे हैं और सम्यक् प्रकृति में भी हो रहे हैं। फिर भी सम्यग्मिथ्यात्व में कांडक के आयाम बड़े होकर उसकी स्थिति जल्दी नष्ट हो जायेगी और उसकी उच्छिष्टावली बाकी रहेगी। यह उच्छिष्टावली कब होगी ? जब उसके अंतिम कांडक की अंतिम फालि सम्यक् प्रकृतिरूप हो जायेगी, संक्रमित हो जायेगी तब। हां अभी वह बतायेंगे, तो उस समय क्या हो जायेगा ? **सम्यक्त्वमोहनीय का अष्ट वर्ष प्रमाण स्थितिसत्त्व अवशेष रहता है।** इसीका अर्थ यह है कि मिश्रमोहनीय की उच्छिष्टावली मात्र स्थिति शेष रहने का और सम्यक्त्वमोहनीय की आठ वर्ष मात्र स्थिति रहने का काल एक ही है।

अभी बोर्ड पर चार्ट लगा है इसको देखते हैं। निषेक रचना हमेशा गोपुच्छाकार होती है यह तो आपको पता है, फिर भी यहां इतना कम दिखाया है। क्यों ? क्योंकि

सम्यग्मिथ्यात्व की बहुत सारी फालि गिरी हैं यानी सम्यक् प्रकृतिरूप संक्रमित हुयी हैं। उसका अभी गुणसंक्रमण चल रहा है। सम्यक् प्रकृति का कांडकघात होकर उसकी फालि अपकर्षण होकर नीचे के निषेकों में आ मिलती है। तो एक फालि गयी, दूसरी फालि गयी अब अंतिम फालि में इतना सारा द्रव्य बाकी है और यह कांडक की अंतिम फालि है। उसकी लंबाई कितनी है ? पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण। अभी तक बहुभाग-बहुभाग प्रमाण कांडक करते आये थे। अभी यहां पर सम्यग्मिथ्यात्व के अंतिम कांडक की यह जो अंतिम फालि - अंतिम लॉट है वह अभी संक्रमित होनेवाला है। उसके बाद क्या रहेगा ? उसकी उच्छिष्टावली बाकी रहेगी।



उसी समय सम्यक् प्रकृति में भी ये ऊपर से लेकर पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण आयामवाले जो स्थितिकांडकघात होते आये थे; उतने आयामवाला यह अंतिम कांडक है उसकी भी एक फालि गिरी, दूसरी फालि, तीसरी फालि इसलिये यहां निषेक इतने कम-कम हो गये। अब इन दोनों प्रकृतियों के पूरे ही अंतिम लॉट एक समय में अँट अ टाइम नीचे आयेंगे। सम्यक् प्रकृति का द्रव्य नीचे आकर आठ वर्ष प्रमाण स्थिति में समा जायेगा और सम्यग्मिथ्यात्व का भी इतना सारा लॉट संक्रमित होकर और नीचे आकर आठ वर्ष प्रमाण सम्यक् प्रकृति में आ जायेगा। इसको कहेंगे दो फालियां मिलकर सम्यक् प्रकृतिरूप होनेवाली हैं। दुबारा- सम्यग्मिथ्यात्व में स्थितिकांडकघात होते-होते-होते यह अंतिम कांडक की अंतिम फालि है; फालि समझते हैं न ? एक लॉट गया, दूसरा लॉट गया, यह अंतिम लॉट है। अब वह संक्रमित

हो जाने के बाद मात्र उच्छिष्टावली बाकी रहेगी। उच्छिष्टावली जितने निषेक बाकी रहेंगे। यह सारा लॉट कहां चला जायेगा ? आठ वर्ष प्रमाण सम्यक् प्रकृति की स्थिति में। सम्यक् प्रकृति के आठ वर्ष प्रमाण निषेक बाकी रहेंगे उसमें ये समा जायेगा। उसी समय सम्यक् प्रकृति की भी स्थिति यहां कितनी बाकी है ? पल्प के असंख्यातवें भाग प्रमाण। उसका भी इतने आयामवाला अंतिम कांडक नीचे आकर कहां चला जायेगा ? उसीके आठ वर्ष प्रमाण निषेकों में। अभी इस पोझिशन पर जब सम्यग्मिथ्यात्व की उच्छिष्टावली बाकी रहेगी तब दोनों की अंतिम फालियां नीचे सम्यक् प्रकृति में आकर वह आठ वर्ष प्रमाण रह जायेगी। यहां तक बात ख्याल में आती है ?

श्रोता: उच्छिष्टावली तो बाकी रही ? वह तो आवली के अंदर ही नष्ट होनेवाली है। उसका तो एक-एक निषेक टर्न होकर सम्यक् प्रकृतिरूप से उदय में आयेगा।
श्रोता: सम्यक् प्रकृति में उच्छिष्टावली नहीं है ? सम्यक् प्रकृति के आठ वर्ष प्रमाण निषेक शेष रहेंगे। यह बात ख्याल में आती है ? पहले क्या हुआ था ? मिथ्यात्व के स्थितिकांडक होते गये - मिथ्यात्व का द्रव्य पहले नष्ट हो चुका, उसकी उच्छिष्टावली बाकी रही। वह तो एक आवली काल में टर्न होकर नष्ट हो जाती है। उसके पश्चात् उन दोनों के ही स्थितिकांडकघात होते रहे। परंतु सम्यग्मिथ्यात्व के स्थितिकांडकघात होते हुये वह जल्दी नष्ट हो जायेगा, उसकी उच्छिष्टावली बाकी रहेगी और सारा द्रव्य सम्यक् प्रकृतिरूप हो जायेगा। सम्यक् प्रकृति की पल्प के असंख्यातवें भाग प्रमाण स्थिति थी वह भी कट होकर आठ वर्ष प्रमाण रह जायेगी। यानी जितना कुछ मिथ्यात्व का, सम्यग्मिथ्यात्व का और सम्यक् प्रकृति का द्रव्य इतने सारे निषेकों में था, वह सभी आठ वर्ष प्रमाण निषेकों में समा गया। जो कुछ थोड़ा बहुत खिर गया वह खिर गया क्योंकि गुणश्रेणी चल रही है, निर्जरा चल रही है। थोड़ा ही चला गया है, परंतु मॅक्झिमम द्रव्य अभी आठ वर्ष प्रमाण निषेकों में बाकी है। इतनी बात होने पर यहां बहुत कुछ विशेष बातें होती हैं। जब आठ वर्ष प्रमाण सम्यक् प्रकृति की स्थिति बाकी है, अभी भी उसको कृतकृत्यवेदक नहीं कहेंगे। हां, विशेष बातें यहां होनेवाली हैं। अब क्या-क्या बातें होनेवाली हैं उसको हम देखेंगे थोड़ी ही देर में।

बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

२५. गुणित कर्मांशिक, क्षपित कर्मांशिक, कृतकृत्यवेदक

आचार्य श्री नेमिचन्द्र सिद्धांतचक्रवर्ती ने इस लब्धिसार ग्रंथ की रचना की है। उसीके आधार से पं. टोडरमलजी ने सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका लब्धिसार-क्षपणासार भाषाटीका ढूंढ़ारी भाषा में लिखी है और उसका अभी हम हिंदी अनुवाद देख रहे हैं। अपना क्षायिक सम्यक्त्व की प्ररूपणा संबंधी प्रकरण चल रहा है।

कर्मभूमि का मनुष्य तीर्थकर, केवली या श्रुतकेवली के पादमूल में क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त करता है, उसका प्रारंभ करता है। उसमें क्या होता है ? सबसे पहले अनंतानुबंधी की विसंयोजना की जाती है। उसके लिये तीन करण परिणाम होते हैं और सत्ता में पड़ा हुआ अनंतानुबंधी का पूरा द्रव्य अन्य कषाय- नोकषायरूप होकर नष्ट हो जाता है। यह बात हमने देखी। उसके बाद अंतर्मुहूर्त तक बीच में दूसरा कुछ कार्य नहीं होता और उसके पश्चात् दर्शनमोह की क्षपणा का प्रारंभ हो जाता है। यानी क्या होता है ? मिथ्यात्व का द्रव्य सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृतिरूप परिणमता है। सम्यग्मिथ्यात्व का द्रव्य सम्यक् प्रकृतिरूप हो जाता है। इसके लिये फिर यहां तीन करण परिणाम शुरू होते हैं- अधःकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण।

अधःकरण में अनंतगुणी विशुद्धि बढ़ती चली जाती है। अपूर्वकरण से गुणश्रेणी होती है, गुणसंक्रमण होता है, स्थितिकांडकघात और अनुभागकांडकघात होते हैं। यहां गुणसंक्रमण मात्र मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व का होता है, अन्य का नहीं होता यह मुख्य बात यहां बतानी है। गुणश्रेणी अन्य सर्व कर्मों में भी हो रही है परंतु यहां जो मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति का द्रव्य अभी नष्ट होनेवाला है, उन तीनों में ही बड़े-बड़े कांडक होते हैं। यहां शीघ्रता से सत्त्व घट रहा है वह मात्र दर्शनमोहनीय में हो रहा है। अन्य कर्मों में भी स्थितिकांडकघात होंगे परंतु उनकी स्थिति यथायोग्य घटेगी बस इतना ही। उनमें भी ये कांडक आदि होंगे परंतु सत्त्व इतना नहीं घटेगा। जिन प्रकृतियों का क्षय होना होता है उसीमें सत्त्व का घटना इतना जल्दी-जल्दी होता है क्योंकि बड़े-बड़े कांडक होकर उनके सत्त्व का नाश होता चला जाता है।

सत्त्व के नाश के हमने चार स्टेजेस-पर्व देखे। पृथक्त्व लक्ष सागर प्रमाण स्थिति से लेकर घटते-घटते-घटते सागर आदि होते-होते पल्य तक आता है; फिर पल्य से

लेकर दूरापकृष्टि तक और उससे लेकर उच्छिष्टावली तक। दर्शनमोहनीय में भी ऐसा ही होता है। तीनों के ही स्थितिकांडकघात होते रहते हैं, फिर भी मिथ्यात्व की स्थिति जल्दी नष्ट हो जाती है और उच्छिष्टावली रह जाती है। उच्छिष्टावली के निषेक तो एक आवली काल तक एक-एक निषेक सम्यक् प्रकृतिरूप से उदय में आकर नष्ट होनेवाले हैं। उसके साथ-साथ सम्यग्मिथ्यात्व के स्थितिकांडकघात चालू रहते हैं। सम्यक् प्रकृति में भी होते रहते हैं, फिर भी सम्यग्मिथ्यात्व का द्रव्य जल्दी नष्ट होता है। उसका जो अंतिम कांडक है उसके सभी निषेकों का द्रव्य सम्यक् प्रकृतिरूप हो जाता है, उसकी आठ वर्ष प्रमाण स्थिति में चला जाता है। उसी समय सम्यक् प्रकृति के द्रव्य की स्थिति भी पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण बाकी थी। उसकी भी कांडक की अंतिम फालि खिरकर नीचे आठ वर्ष प्रमाण स्थिति में सब द्रव्य आ जाता है। इसके पश्चात् अभी कितनी स्थिति शेष रही ? सम्यक् प्रकृति की आठ वर्ष प्रमाण शेष रही। इसके पहले कांडक कितने बड़े होते थे ? तो पल्य का जो पर्टिक्युलर असंख्यातवां भाग जिसको हम असंख्यात बहुभाग कहते थे उतना यहां कांडक आयाम होता था।

आठ वर्ष की स्थिति शेष रही, अब इसके पश्चात् विशेष बातें होनेवाली हैं। यहां तक अनुभागकांडकघात होते थे। अब क्या होगा ? अनुभागकांडकघात होने के लिये एक-एक अंतर्मुहूर्त लगता था, अब अनुभाग का घटना प्रति समय होगा। इतनी विशुद्धि बढ़ रही है कि एक-एक समय में अप्रशस्त कर्मों का अनुभाग अनंतवें भाग-अनंतवें भाग प्रमाण होता चला जायेगा। सत्ता का अनुभाग भी। पहले अनुभाग का घटना किसरूप होता था ? अनुभागकांडकघात रूप से। उसके लिये एक फालि, दो फालि, तीन फालि होती थी। अब एक ही समय में एक ही झटके में अनुभाग घटते चला जायेगा, एक बात। दूसरी बात, स्थितिकांडकघात में कांडक का आयाम अभी तक पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण होता था। अभी जब आठ वर्ष की स्थिति हो जायेगी इसके पश्चात् एक-एक कांडक का आयाम अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्तवाला होगा और आठ वर्ष की स्थिति घटती चली जायेगी। अभी बहुत बड़े कांडक नहीं होंगे। अंतर्मुहूर्त प्रमाण कांडक यहां से होना चालू हो जायेंगे। इसतरह से अंतिम कांडक तक चलेगा। जो यहां का अंतिम कांडक होगा - जिसके बाद कृतकृत्यवेदक काल शुरू होनेवाला है, उस अंतिम कांडक की भी कुछ विशेषता बताने जा रहे हैं। हम क्रम से देखेंगे।

आठ वर्ष की स्थिति होती है, उससे पहले और उसके बाद में क्या-क्या होता है इसका विस्तार से वर्णन चलनेवाला है। अनुभागकांडकघात अभी नहीं होंगे। प्रति समय अनुभाग का घटना होगा उसको कहेंगे अनुसमयापवर्तन। अपवर्तन यानी घटना, अनुसमय यानी प्रति समय। अनुभाग प्रति समय घटता चला जायेगा। किसमें ? बस मात्र सम्यक् प्रकृति में ही। *श्रोता: ये आठ वर्ष क्यों आया है ?* आठ वर्ष इसलिये कि अभी उतनी ही स्थिति बाकी रही है। यह सहज होता है। आठ वर्ष प्रमाण स्थिति शेष रह जाती है, ऊपर का पूरा कांडकघात होकर आठ वर्ष में समा जाता है। इसके बाद अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्त घटते चला जायेगा। घटते-घटते छोटा अंतर्मुहूर्त शेष रह जायेगा। बीच का एक माइल स्टोन बता रहे हैं कि आठ वर्ष प्रमाण स्थिति शेष रखकर बाकी पूरा कांडकघात होकर ऊपर के सभी जो परमाणु हैं, वे नीचे आते हैं और आठ वर्ष के जितने समय हैं उतने निषेक अभी यहां अवशेष रह जाते हैं। ऐसा ही यह प्रोसेस है।

पहले हमने यह देखा था कि मिश्रमोहनीय की उच्छिष्टावली शेष रहती है। उस समय में क्या होता है ? सम्यग्मिथ्यात्व की अंतिम फालि और सम्यक् प्रकृति की अंतिम फालि दोनों ही खिरकर, पतन होकर सम्यक् प्रकृति के आठ वर्ष प्रमाण स्थिति में आ जाते हैं। बोर्ड पर भी हमने देखा था कि सम्यग्मिथ्यात्व की अंतिम फालि और सम्यक् प्रकृति की अंतिम फालि दोनों ही फालियां एक ही समय में पतन होकर आठ वर्ष प्रमाण निषेकों में आ मिलते हैं। उस समय सम्यग्मिथ्यात्व की केवल उच्छिष्टावली बाकी रहेगी और सम्यक् प्रकृति के आठ वर्ष बाकी रहेंगे। हां, सम्यग्मिथ्यात्व एक आवली प्रमाण रहेगी, आवली में तो वह नष्ट हो जायेगी और सम्यक् प्रकृति आठ वर्ष प्रमाण रहेगी। अब उसके छोटे-छोटे कांडक होते रहेंगे।

श्रोता: आठ वर्ष की उच्छिष्टावली नहीं बनेगी क्या ? उसकी उच्छिष्टावली नहीं बनेगी। उच्छिष्टावली उसीको कहते हैं कि जब एक आवली प्रमाण निषेक शेष रहते हैं। वह एक-एक निषेक सम्यक् प्रकृतिरूप होकर उदय में आनेवाला है क्योंकि इसका अपनेरूप से उदय नहीं आयेगा। सम्यग्मिथ्यात्व सम्यक्त्व को घातनेवाली है। परंतु सम्यक् प्रकृति कैसी है ? उसका उदय होते हुये भी सम्यक्त्व बना रहता है। उसका एक-एक निषेक अपनेरूप से उदय में आयेगा। पहले मिथ्यात्व की उच्छिष्टावली थी उसका एक-एक निषेक सम्यक् प्रकृतिरूप से टर्न होकर उदय में आ

रहा था, परमुख से उदय हो रहा था इसलिये उसको उच्छिष्टावली कहा। अब सम्यग्मिथ्यात्व की भी उच्छिष्टावली बनी। ऐसी सम्यक् प्रकृति की उच्छिष्टावली कहेंगे तो उसका एक-एक निषेक अपने ही रूप से उदय में आनेवाला है। श्रोता: मिथ्यात्व की उच्छिष्टावली अब सम्यक् प्रकृतिरूप होकर उदय में आयेगी ? वह पहले ही नष्ट हो गयी है। श्रोता: सम्यग्मिथ्यात्व के भी निषेक सम्यक् प्रकृतिरूप होंगे ? बिलकुल, अभी वे सम्यक् प्रकृतिरूप होकर उदय में आकर नष्ट होनेवाले हैं। अब इन तीन प्रकृतियों का द्रव्य उत्कृष्ट कब पाया जाता है उसकी बात हम गाथा १२६ में देखेंगे।

मिच्छस्स चरमफालिं मिस्से मिस्सस्स चरिमफालिं तु।

संखुहदि हु सम्मत्ते ताहे तेसिं च वरदब्बं ॥ १२६ ॥

मिथ्यात्व प्रकृति के अंत कांडक की अंत फालि है यह पहलेवाली बात फिर बता रहे हैं। जब मिथ्यात्व की अंतिम फालि सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक् प्रकृतिरूप हुयी थी उसकी बात है। **उसका जिस समय मिश्रमोहनीय में संक्रमण होता है उस समय में मिश्रमोहनीय का द्रव्य उत्कृष्ट होता है।** यानी उसके परमाणुओं की संख्या मैक्झिमम होती है। अभी तक क्या होता था ? मिथ्यात्व के असंख्यातवें भाग प्रमाण सम्यग्मिथ्यात्व का द्रव्य और उसके असंख्यातवें भाग प्रमाण सम्यक् प्रकृति का द्रव्य था। अब क्या हुआ है ? मिथ्यात्व का सारा का सारा द्रव्य सम्यग्मिथ्यात्व में ट्रांसफर हो गया है। इस पॉइंट पर आकर सम्यग्मिथ्यात्व का द्रव्य उत्कृष्ट यानी मैक्झिमम होता है। **और मिश्रमोहनीय के अंत कांडक की अंत फालि के द्रव्य का जिस समय सम्यक्त्वमोहनीय में संक्रमण होता है, उस समय सम्यक्त्वमोहनीय का द्रव्य उत्कृष्ट होता है।** यानी सम्यक् प्रकृति के प्रदेशों की संख्या मैक्झिमम कब होगी ? जब सम्यग्मिथ्यात्व की अंतिम फालि सम्यक् प्रकृतिरूप से परिणमित होगी। सम्यक् प्रकृति का द्रव्य तो उसीरूप से था, केवल द्रव्य नीचे आया है। वह तो सम्यक् प्रकृति का ही था, सम्यक् प्रकृतिरूप ही रहा है। परंतु इस पॉइंट पर सम्यग्मिथ्यात्व का द्रव्य सम्यक् प्रकृतिरूप हुआ। तब सम्यक् प्रकृति के प्रदेश यानी परमाणु हैं वे मैक्झिमम नंबर में पाये जाते हैं। इन दो प्रकृतियों के प्रदेशों की संख्या कब उत्कृष्ट होती है इतना ही यहां का विषय है। अब आगे गाथा नंबर १२७-

जदि होदि गुणितकम्मो दव्वमणुक्कस्समण्णहा तेसिं।

अवरठिदी मिच्छदुगे उच्छिद्धे समयदुगसेसे ॥ १२७ ॥

यह दर्शनमोह का क्षय करनेवाला जीव देखो, अभी दो शब्द आनेवाले हैं। यदि गुणितकर्मांश अर्थात् उत्कृष्ट कर्मसंचय युक्त हो तो। यह कौन होता है उसकी बात देखते हैं। क्या कहा ? यदि क्षपणा करनेवाला जीव गुणितकर्मांश हो तो, गुणितकर्मांश कहेंगे या गुणित कर्मांशिक कहेंगे अर्थात् उत्कृष्ट कर्मसंचय युक्त हो तो **उसके उन दोनों प्रकृतियों का द्रव्य उस समय उत्कृष्ट होता है।** यानी मैक्झिमम पॉसिबल होगा। किसके लिये ? यदि वह गुणित कर्मांशिक है तो; यह गुणित कर्मांशिक का अर्थ देखेंगे, अभी तक नहीं देखा है हमने। **और यदि वह जीव उत्कृष्ट कर्मसंचय युक्त न हो, तो उसके उनका द्रव्य वहां अनुत्कृष्ट होता है।** जो उत्कृष्ट नहीं है उसको अनुत्कृष्ट कहेंगे। अब इसका अर्थ देखते हैं। यह गुणित कर्मांशिक क्या होता है ? गुणित कर्मांशिक यानी जिसने अभी तक बहुत बार जो-जो कर्म परमाणु जब-जब ग्रहण किये हैं तब अधिक से अधिक ग्रहण किये हैं।

हमने देखा था प्रदेशबंध अधिक क्यों होता है ? *श्रोता: योग से।* योग से, जहां योग ज्यादा वहां कर्म का ग्रहण अधिक। परंतु यहां जो गुणित कर्मांशिक कह रहे हैं वह ऐसा जीव लेना है कि उसने बहुत बार उत्कृष्ट योग धारण किया हुआ है। अनेक बार वह पर्याप्त जीव हुआ है क्योंकि अपर्याप्त को योग कम होता है, पर्याप्तों में ज्यादा होता है। अधिक बार संक्लेश परिणाम युक्त हुआ। क्यों ? क्योंकि विशुद्धि में क्या होता है ? अपकर्षण होकर परमाणु नीचे आते हैं, नीचे के निषेक बड़े होते हैं और ऊपर के छोटे होते हैं। जब-जब संक्लेश होता है तो उलटा होता है क्योंकि नये बंधनेवाले के साथ नीचे के परमाणु अधिक से अधिक ऊपर चले जाते हैं और संचित होते हैं। खिरते कम हैं और अधिक से अधिक सत्ता में पड़े रहते हैं। गुणितकर्मांशिक के ऐसे छह अलग-अलग कारण बताये हैं कि कौन-कौनसे भव किये ? पर्याप्तों के अधिक किये, त्रसों में ज्यादा से ज्यादा रहा, इसतरह से जब-जब उसके पॉसिबल है उसने अधिक से अधिक परमाणु ग्रहण किये। जब-जब आयु का बंध था तब जघन्य योग में था। क्यों ? क्योंकि तब तो आठों में विभाजित होना था और उत्कृष्ट योग में था जब सात में विभाजित होना था। इसतरह से उसने मैक्झिमम पॉसिबल कर्म ग्रहण किये।

ऐसा जीव सातवें नरक में गया। वहां संक्लेश भी बहुत हैं और वहां से निकलते समय पूरे सातवें नरक का काल बिताकर जब अंतिम समय में आया है तब उसने मॅक्झिमम संक्लेश किये हैं। वहां पर भी उसने अधिक से अधिक द्रव्य ग्रहण किया। यानी अधिक से अधिक कर्म ग्रहण करने की जितनी पॉसिबल बातें हैं उन सबको करते-करते-करते यह सातवें नरक से निकला। सातवें नरक से तो डायरेक्ट मनुष्य नहीं हो सकता; तिर्यच हुआ, संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यच हुआ, हिंस्र श्वापद हुआ। उसके पश्चात् वह मनुष्य में आ गया। *श्रोता: दुबारा जा सकता है ?* नरक में जाने की कंडिशन नहीं है, दो बार ज्यादा से ज्यादा जा सकता है। परंतु जो सिंह आदि हिंस्र श्वापद हुआ वह डायरेक्ट सातवें नरक में नहीं जा सकता, उसके लिये मत्स्य या मनुष्य होना पड़ेगा। सातवें नरक में दुबारा कौन जाता है उसके लिये वह बात है। यह जरूरी नहीं कि सातवें नरक से निकला हुआ पंचेन्द्रिय तिर्यच होकर दुबारा सातवें नरक में जाये। अरे सिंह की पर्याय में जो सम्यग्दर्शन प्राप्त किया था वह वहां से निकला हुआ जीव नहीं था। अन्य भी जीव सिंह की पर्याय में जन्म लेते हैं कि नहीं लेते ?

यहां तो सातवें नरक से निकले हुये की बात है। एक पंचेन्द्रिय तिर्यच का भव किया, मनुष्य हुआ और आठवें साल में दर्शनमोहनीय की क्षपणा प्रारंभ की ऐसा जीव लेना है। प्रथमोपशम सम्यक्त्व किया, वेदक हुआ और शीघ्र क्षपणा प्रारंभ की। उसकी सत्ता में अभी मॅक्झिमम द्रव्य पड़ा है। ऐसे जीव की यहां बात है। वह जब मिथ्यात्व का द्रव्य सम्यग्मिथ्यात्वरूप करेगा तो सम्यग्मिथ्यात्व में उत्कृष्ट संचय है और जब सम्यग्मिथ्यात्व का द्रव्य सम्यक् प्रकृतिरूप होगा तो सम्यक् प्रकृति का द्रव्य मॅक्झिमम होगा इतनी बात है। क्षपित कर्मांशिक और गुणित कर्मांशिक ऐसे दो शब्द आते हैं।

क्षपित कर्मांशिक किसे कहना ? आपने पढ़ा है न ? सुना है कि नहीं सुना है अभी तक ? *श्रोता: जिसने उपशमश्रेणी चढ़ी है।* हां, जिसने पल्य के असंख्यातवें भाग बार प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त किया यानी उतनी बार गिरा तभी तो प्राप्त किया और दो बार हुआ उसके बीच में पल्य का असंख्यातवां भाग गया। पल्य के असंख्यातवें भाग बार यानी असंख्यात बार प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त किया है। असंख्यात बार यानी पल्य के असंख्यातवें भाग बार अनंतानुबंधी की विसंयोजना की है। पल्य के असंख्यातवें भाग बार यानी अनेक बार गिरकर फिर संयमासंयम प्राप्त किया है।

अनेक बार मुनि अवस्था धारण की है। अनेक बार क्यों कहा ? अधिक से अधिक ३२ बार संयम ग्रहण कर सकता है। चार बार उपशमश्रेणी चढ़कर उतरा है। ऐसा जीव भी; क्योंकि उसने कितनी बार सम्यक्त्व प्राप्त किया न ! और कितनी बार श्रेणी चढ़ा आदि-आदि ! उसने उसमें बहुत कर्म खिपाया है। ऐसा जीव फिर एकेन्द्रिय में गया। एकेन्द्रिय में जाता है, लंबे काल रहता है तो वहां भी स्थितिकांडकघात के द्वारा स्थिति घटाता है। वहां भी दर्शनमोहनीय की स्थिति एक सागर जितनी करते-करते; क्योंकि वहां एकेन्द्रियों में भी स्थितिकांडकघात होते हैं। फिर वहां से निकला है। मनुष्य में आकर सम्यक्त्व आदि प्राप्त करके अभी वह क्षपणा के सन्मुख है। बहुत कर्म खिपाकर वह हल्का-हल्का हुआ है उसको क्षपित कर्मांशिक कहते हैं।

देखो, इतनी बार सम्यक्त्व भी प्राप्त किया है। इतनी बार मुनि अवस्था भी धारण की, क्या-क्या किया - ऐसे भी जीव निगोद में पड़े हैं। असंख्यात जीव हैं ऐसे कि जो क्षपित कर्मांशिक हैं और उनमें से कुछ वहां से निकलकर मनुष्य होकर मोक्ष जायेंगे - ऐसे भी जीव हैं ! हम तो उन्हें बेचारे ऐसा कहते हैं, परंतु जीवों की कैसी-कैसी परिणति होती है। एकाध ने सम्यक्त्व प्राप्त किया तो जैसे सींग ऊग गये कि अभी हमारे जैसा कोई नहीं ! ऐसा सोचेगा तो सम्यक्त्व छूट जायेगा उसके लिये तो करणानुयोग की ये बातें पढ़ना योग्य है। जो अभी रोता रहता है उसको कहते हैं तू गिरने की बात मत कर, तू पुरुषार्थ कर और जिसने सम्यक्त्व प्राप्त किया है उसको कहेंगे परिणामों की कुछ गॅरंटी नहीं है, संभाल अपने परिणामों को !

श्रोता: क्षपित कर्मांशिक का अर्थ ? क्षपित कर्मांशिक यानी असंख्यात बार प्रथमोपशम सम्यक्त्व ग्रहण किया है, असंख्यात बार अनंतानुबंधी की विसंयोजना की है। असंख्यात बार कहने का मतलब इतनी बार सम्यक्त्व छूट गया है। मिथ्यात्व में गया है, फिर अनंतानुबंधी का बंध किया है और फिर जाकर कभी उसने विसंयोजना की है। ऐसा भी कितनी बार हुआ है ? असंख्यात बार हुआ है। असंख्यात बार तो संयमासंयम यानी पांचवां गुणस्थान प्राप्त किया है। अनेकों बार मुनि अवस्था धारण की है - भावलिंगी मुनि, यहां द्रव्यलिंगी की बात नहीं है। *श्रोता: आपने पहले ३२ बार कहा था ॥ ३२ बार इसीलिये कहा न अनेकों बार, असंख्यात बार नहीं कहा। ३२ बार नहीं हुआ है परंतु अनेक बार हुआ है। श्रोता: ३२ से कम लेना है ? ३२ से कम लेना। चार*

बार उपशमश्रेणी चढ़कर उतरा है। एक भव में दो ही बार उपशमश्रेणी चढ़ी जाती है। ऐसे दो भवों में कभी न कभी उसने उपशमश्रेणी भी चढ़कर उतरी है। फिर भी ऐसा जीव एकेन्द्रिय में गया है और एकेन्द्रिय के योग्य बंध करके फिर वापस निकला है।

धवला आदि ग्रंथ में गुणित कर्मांशिक और क्षपित कर्मांशिक बहुत विस्तार से बतलाया है। दोनों प्रकार के बीच में इन बिट्टीनवाले जीव होते हैं न, उनको गुणित घोलमाल और क्षपित घोलमाल ऐसा कहते हैं। गोलमाल नहीं, घोलमाल। क्षपित कर्मांशिक यानी जिन्होंने बहुत सारा कर्म खिपाया है ऐसे जीव और गुणित कर्मांशिक यानी जिनके पास कर्मों का बहुत संचय है ऐसे जीव। ऐसे गुणित कर्मांशिक जीव यदि क्षपणा प्रारंभ करते हैं तो उनमें कर्मों का सत्त्व यानी उनका द्रव्य मैक्सिमम पाया जाता है इतनी बात यहां बता रहे हैं। **मिथ्यात्व और मिश्रमोहनीय की स्थिति उच्छिष्टावली मात्र रही, वह क्रम से एक-एक समय में एक-एक निषेक गलाकर वहां दो समय अवशेष रहने पर जघन्य स्थिति होती है।** दो समय अवशेष रहने पर जघन्य स्थिति होती है, उसका अर्थ है दो समय बाकी हैं तो एक ही निषेक बाकी रहता है।

एक निषेक रहा उसकी स्थिति कितनी है ? दो समय है। तो दो समयवाला एक निषेक बाकी है। भावार्थ- **वहां उदयावली के अंत निषेक मात्र स्थितिसत्त्व होता है।** इसीको विशेषार्थ में बताया है कि **सम्यक्त्वमोहनीय का उदय है। उस वर्तमान निषेक के ऊपर के निषेक की स्थिति दो समय है। इसलिये मिथ्यात्व का भी जघन्य स्थितिसत्त्व दो समय कहा है।** इसका अर्थ ख्याल में आया ? जब मिथ्यात्व का एक ही निषेक बाकी रहता है, तब वह निषेक वर्तमान समय से कितने समय ऊपर है ? एक समय ऊपर है। उसकी स्थिति कितनी है ? दो समय है। उस निषेक की स्थिति कितनी है ? दो समय। क्योंकि नेक्स्ट समय में सम्यक् प्रकृतिरूप होकर उदय में आकर वह नष्ट होनेवाला है। उसको कहेंगे वह उसकी जघन्य स्थिति है। एक निषेक है और उसकी स्थिति दो समयवाली है। अभी पढ़ेंगे हम गाथा नंबर १२८-

मिस्सदुगचरिमफालि किंचूणदिवङ्गसमयपबद्धपमा।

गुणसेटि करिय तदो असंखभागेण पुब्बं व॥ १२८॥

मिश्रमोहनीय और सम्यक्त्वमोहनीय की जो अंत की दो फालि उनका

द्रव्य किंचित् कम डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण है। ये कौनसे अंत की फालि की बात चल रही है ? जो हमने अभी बोर्ड पर लगाया है। सम्यग्मिथ्यात्व की अंतिम फालि और सम्यक्त्वमोहनीय की अंतिम फालि। हमेशा मोहनीय का सत्ता में कितना द्रव्य रहता है ? किंचित कम डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध। अभी क्या हुआ है ? मिथ्यात्व का संपूर्ण द्रव्य पहले ही सम्यग्मिथ्यात्व में ट्रान्सफर हुआ था। अभी दर्शनमोहनीय का पूरा द्रव्य सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृतिरूप से पड़ा है। सम्यग्मिथ्यात्व की अंतिम फालि अभी सम्यक् प्रकृतिरूप होनेवाली है। अब इन दो फालियों में मैक्झिमम द्रव्य पड़ा है, वह कितना है ? अब तक जितना खिरा है उसको किंचित कम करने पर भी डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध - हमेशा सत्ता में जो द्रव्य पाया जाता है उतना द्रव्य यहां इन दो प्रकृतियों के अंतिम फालिरूप से पड़ा है। ये दोनों फालि नीचे आठ वर्ष प्रमाण स्थिति में आनेवाली हैं। तब कहेंगे दर्शनमोहनीय का पूरा द्रव्य उस आठ वर्ष प्रमाण निषेकों में पड़ा है। अभी किसरूप पड़ा है ? इन अंतिम दो फालिरूप से पड़ा है। अभी वर्तमान में इसमें मैक्झिमम द्रव्य है, इसको बता रहे हैं-

मिश्रमोहनीय के द्रव्य में मिथ्यात्व के उच्छिष्टावली बिना अन्य सर्व द्रव्य को संख्यात हजार स्थितिकांडक और गुणसंक्रमण विधान से निक्षेपण किया। पहले में पहले क्या हुआ ? मिथ्यात्व का जितना द्रव्य था; उसमें स्थितिकांडकघात भी होते रहे और गुणसंक्रमण भी होता रहा; तो सारा का सारा द्रव्य सम्यग्मिथ्यात्वरूप हो गया। **वहां जो मिश्रमोहनीय का द्रव्य हुआ वहां भी संख्यात हजार स्थितिकांडक और गुणसंक्रमण विधान से जो अंत कांडक की अंत फालि का द्रव्य हुआ, वह तो जुदा रखा और इसके अन्य कांडकों का द्रव्य, सर्वद्रव्य के असंख्यातवें भाग मात्र है, उसका सम्यक्त्वमोहनीय में निक्षेपण किया।** यानी अभी तक जितना सम्यक्त्वमोहनीयरूप हुआ है वह असंख्यातवें भाग मात्र था और अभी मैक्झिमम द्रव्य सम्यग्मिथ्यात्व की अंतिम फालि में मौजूद है। **और सम्यक्त्वमोहनीय का आठ वर्ष की स्थिति के ऊपरवर्ती अंत कांडक की अंत फालि के द्रव्य को छोड़कर अन्य सर्व कांडकों के द्रव्य को भी संक्रमण काल के द्विचरम समय तक वहां आठ वर्ष मात्र अवशेष स्थिति में निक्षेपण करके, उस संक्रमण काल के अंत समय में मिश्रमोहनीय की और सम्यक्त्वमोहनीय की अंत की जो दो फालि उनका द्रव्य**

मिलाने पर किंचित कम डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण द्रव्य होता है।

यही कहते हैं- गुणसंक्रमण द्वारा मिथ्यात्व का द्रव्य सम्यग्मिथ्यात्वरूप और सम्यग्मिथ्यात्व का द्रव्य सम्यक् प्रकृतिरूप होता रहा। पहले सब द्रव्य सम्यग्मिथ्यात्व में आ चुका है। अब यह सम्यग्मिथ्यात्व की अंतिम फालि है। इसमें मॅक्झिमम द्रव्य पड़ा है और बाकी जो सम्यक् प्रकृतिरूप हुआ है वह उसमें पड़ा है। उदय में आकर जो थोड़ा गया वह उसके सामने निलिजिबल है। बाकी सब जो मॅक्झिमम द्रव्य है वह इन दो फालियों में है; वह कितना द्रव्य है ? तो किंचित कम डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध जो हमेशा ही सत्ता में पाया जाता है। इतना द्रव्य इन दो फालिरूप से है। अभी इसी का भावार्थ पं. टोडरमलजी बताते हैं। **मिश्रमोहनीय को गुणसंक्रमण द्वारा जब तक सम्यक्त्वमोहनीयरूप परिणमाता है तब तक गुणसंक्रमण काल कहते हैं।** गुणसंक्रमण कब से शुरू हुआ था ? हमने देखा था अपूर्वकरण से शुरू हुआ था। मिथ्यात्व का द्रव्य सम्यग्मिथ्यात्व में आ रहा था और सम्यग्मिथ्यात्व का द्रव्य सम्यक् प्रकृतिरूप हो रहा था। पहले-पहले मिथ्यात्व का गुणसंक्रमण होता है। उसके पश्चात् सम्यग्मिथ्यात्व का गुणसंक्रमण होता है। *श्रोता: एक साथ होगा ?* पहले मिथ्यात्व का होगा फिर सम्यग्मिथ्यात्व का होगा।

उसके अंत समय में मिश्रमोहनीय का उच्छिष्टावली मात्र और सम्यक्त्वमोहनीय का अष्ट वर्ष मात्र निषेक बिना अन्य सर्व द्रव्य उनकी अंत दो फालि का जानना। ख्याल में आयी बात ? ये आठ वर्ष में जितने निषेक हैं उसको छोड़ो। अभी नीचे नहीं आये हैं तब की बात है। नीचे आने पर सब आठ वर्ष में समा जायेंगे। उसके पहले क्या पोझिशन है ? सम्यग्मिथ्यात्व का मॅक्झिमम द्रव्य उसकी अंतिम फालि में है और सम्यक् प्रकृति का मॅक्झिमम द्रव्य ऊपर उसकी अंतिम फालि में पड़ा है। वह सारा ही मॅक्झिमम द्रव्य मिलकर यहां सम्यक् प्रकृति के नीचे के आठ वर्ष प्रमाण निषेकों में आकर मिलनेवाला है। वह कितना है ? सत्ता में जितना मोहनीय का - दर्शनमोहनीय का द्रव्य है वह करीबन उन अंत की दो फालियों में पड़ा है। लास्ट लाइन- **अष्ट वर्ष स्थिति अवशेष करण के समय में** यानी जब आठ वर्ष की स्थिति अवशेष की जायेगी वे दोनों फालियां उन आठ वर्ष में आकर मिलेंगी। **इन दो फालियों का पतन करने के लिये** अभी उसका द्रव्य कहां-कहां दिया जाता है ?

उसको पढ़ लेते हैं चलो। उनके द्रव्य को पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर वहां एकभाग को उदयादि अवस्थित गुणश्रेणी आयाम में देना अर्थात् उदयावली के प्रथम समय से लेकर पहले जो गलितावशेष गुणश्रेणी आयाम का प्रारंभ किया था उसमें से व्यतीत होने के पश्चात् जो अवशेष गुणश्रेणी आयाम रहा, उसके अंत तक और एक समय उपरितन स्थिति का - उनमें देना।

देखो, क्या कहना चाहते हैं ? यह जो द्रव्य दिया जाता है कहां दिया जायेगा ? यहां नीचे जो अंतर्मुहूर्त प्रमाण उदयादि गुणश्रेणी है - उदय के समय से लेकर गुणश्रेणी है - उसमें गुणित प्रमाण में दिया जायेगा इतनी ही बात है। उन दो फालियों का द्रव्य किसमें दिया जायेगा ? नीचे आठ वर्ष प्रमाण निषेक रहेंगे उनमें दिया जायेगा। यह आठ वर्ष की पूरी की पूरी गुणश्रेणी नहीं है। यहां की जितनी अंतर्मुहूर्त प्रमाण गुणश्रेणी है; वह कब बनायी थी ? अपूर्वकरण के पहले समय में ही। कितनी बड़ी थी ? अपूर्वकरण का काल, अनिवृत्तिकरण का काल प्लस और थोड़ा काल इतनी। है न ? वह गुणश्रेणी उदयावली के ऊपर थी और गलितावशेष थी। थोड़ी तो गल गयी है, अभी जो शेष रही है उसमें भी दिया जायेगा और ऊपर आठ वर्ष प्रमाण निषेक हैं उनमें भी दिया जायेगा। देने का तरीका यही है। उदय के समय से लेकर ही यहां की गुणश्रेणी है इसलिये उसको उदयादि गुणश्रेणी कहा और वह अब अवस्थित गुणश्रेणी होगी।

श्रोता: उदय से लेकर ही गलितावशेष है ? देखो, यहां लिखा है न, सेकंड लाइन पढ़ो- एकभाग को उदयादि अवस्थित गुणश्रेणी आयाम में देना अर्थात् उदयावली के प्रथम समय से लेकर पहले जो गलितावशेष गुणश्रेणी आयाम का आरंभ किया था उसमें जो व्यतीत होने के पश्चात् अवशेष गुणश्रेणी आयाम रहा, उसके अंत तक देना। देखो, इसका भावार्थ पढ़ेंगे तो और ख्याल में आयेगा। यहां से पहले तो उदयावली से बाह्य गुणश्रेणी आयाम था। उदयावली अलग थी, उसके ऊपर गुणश्रेणी का आयाम था। अब यहां से लेकर उदयरूप वर्तमान समय से लेकर ही गुणश्रेणी आयाम हुआ, इसलिये इसको उदयादि कहते हैं। उदय से लेकर गुणश्रेणीरूप से द्रव्य दिया जायेगा। इसका नाम है उदयादि।

पहले तो समय व्यतीत होनेपर गुणश्रेणी आयाम घटता जाता था। क्यों ? उसका नाम क्या था ? गलितावशेष। नीचे से एक-एक निषेक गल जाता था और

गुणश्रेणी आयाम घटता जाता था। अब इस समय क्या हुआ ? गुणश्रेणी अवस्थित हुयी। उदय से लेकर हुयी और अवस्थित हुयी। अवस्थित का अर्थ क्या है ? नीचे से एक-एक निषेक उदयरूप होकर गल तो जायेगा, परंतु उपरितन स्थिति का एक-एक निषेक इसमें आकर मिलेगा और गुणश्रेणी का आयाम उतना का उतना रहेगा इसलिये इसको अवस्थित कहते हैं। इसलिये इसका नाम उदयादि अवस्थित गुणश्रेणी आयाम है। उदय के समय से लेकर गुणश्रेणीरूप से यहां दिया जायेगा। गुणश्रेणी का अर्थ क्या है ? असंख्यातगुणा-असंख्यातगुणा क्रम से दिया जायेगा। मैं आगे की बात पढ़ती हूं क्योंकि अभी इसका गणित पढ़ेंगे तो सब लोग... ! यहां क्या विशेषता होती है उसीकी बात देखेंगे। अष्ट वर्ष प्रमाण स्थिति करने के पहले और बाद में क्या-क्या होता है ये बातें बतानेवाले हैं। उसके अनुभाग की विशेषता हम देख लेते हैं। गाथा १३० की टीका-

सम्यक्त्वमोहनीय की अष्ट वर्ष प्रमाण स्थिति करने के समय से लेकर यानी आठ वर्ष की स्थिति बन गयी। यहां से आगे क्या होगा ? **ऊपर के सर्व समयों में उदयादि अवस्थित गुणश्रेणी आयाम है।** अभी हमने देखा था उदय के समय से लेकर गुणश्रेणी होती है। **सम्यक्त्वमोहनीय की स्थिति में स्थितिखंड अंतर्मुहूर्त मात्र आयामवाले हैं।** अब यहां से आगे एक अंतर्मुहूर्त इतना ही एक-एक स्थितिकांडक का आयाम होगा। स्थितिकांडक का आयाम एक अंतर्मुहूर्त, उसके लिये काल भी बहुत छोटा अंतर्मुहूर्त लगेगा। एक स्थितिकांडकघात द्वारा कितनी स्थिति कट हो जायेगी ? एक अंतर्मुहूर्त प्रमाण, अंत अ टाइम अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्त घटेगी। *श्रोता: एक ही समय में घटेगी ?* एक ही समय में नहीं। स्थितिकांडकघात को एक अंतर्मुहूर्त लगेगा ही, हां। यहां से अब एक-एक स्थितिकांडकघात द्वारा अंतर्मुहूर्त स्थिति घटाता है। पहले हमने देखा था न पल्य का असंख्यातवां भाग घटाता था। अब कितना घटायेगा ? एक अंतर्मुहूर्त क्योंकि स्थिति आठ वर्ष प्रमाण रह गयी है।

देखो, नीचे टीका का दूसरा पॅरेग्राफ- **सम्यक्त्वमोहनीय के अंत कांडक की द्विचरम फालि के पतन समय तक** यानी अष्ट वर्ष प्रमाण स्थिति शेष रहने के पूर्व जो स्थितिकांडकघात हो रहा है, उस अंतिम कांडक की कुछ विशेषता है। वहां तक क्या होगा ? एक फालि, दो फालि, तीन फालि इसतरह से हर एक फालि का द्रव्य नीचे आयेगा। वह कहां दिया जायेगा ? उदयावली में, गुणश्रेणी में और बाकी ऊपर जो आठ

वर्ष की स्थिति रही है उसमें। इसतरह उसका डिस्ट्रिब्यूशन होता चला जायेगा। अब अनुभाग में कुछ विशेषता होती है। देखो, **सम्यक्त्वमोहनीय के अंत कांडक की द्विचरम फालि के पतन समय तक (मात्र सम्यक्त्वमोहनीय के अष्ट वर्ष मात्र निषेक बिना अन्य सर्वद्रव्य उनकी अंत दो फालियों का जानना, जो किंचित कम डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण है)** यह हमने पहले पढ़ा था- यह सारा ही द्रव्य उन दो फालियों में पड़ा है। अर्थात् अष्ट वर्ष स्थिति करने के पूर्व समय तक जो लता, दारुरूप द्विस्थानगत अनुभाग है, वह अनुभागकांडकघात से अनंतगुणा हीन हुआ। अभी तक क्या होता आया ? हर एक-एक अंतर्मुहूर्त में एक-एक अनुभागकांडकघात होता आया। उसके कारण क्या हुआ था ? इन कर्मों का अनुभाग अनंतगुणा हीन-अनंतगुणा हीन-अनंतगुणा हीन होते-होते यहां तक आया है।

यहां से लेकर यहां से लेकर कुछ विशेषता होती है। जो पहले अंतर्मुहूर्त काल द्वारा अनुभागकांडक का घात होता था वह अभी नहीं होगा उसका अभाव हुआ। तो क्या होगा ? उसका अभाव होगा और प्रतिसमय यह यहां की विशेषता है। अनंतगुणा हीन क्रम से अनुभाग का अपवर्तन यानी घटना होने लगा। अभी भी अंतर्मुहूर्त के स्थितिकांडकघात चल रहे हैं, परंतु अनुभाग का घात कांडक द्वारा नहीं होकर प्रतिसमय में होने लगेगा। वहां अनंतरवर्ती अष्ट वर्ष करने के समय से पूर्व समय में निषेकों का जो अनुभागसत्त्व था, उससे अनंतगुणा हीन अष्ट वर्ष स्थिति करने के समय में उदयावली के ऊपरवर्ती जो उपरितनावली उसके प्रथम निषेक का अनुभागसत्त्व अवशेष रहता है। अभी हम इसको थोड़ा गौण करेंगे कि यहां अनुभागसत्त्व घट रहा है और वह घटकर ही नीचे-नीचे होकर उदय में आ रहा है। प्रति समय उसका अनुभाग अनंतगुणा हीन - अनंतगुणा हीन - अनंतगुणा हीन; यह कब से शुरू हुआ ? जब आठ वर्ष की स्थिति बाकी रही तब से शुरू हुआ। इसीको क्या कहते हैं ? देखो, लास्ट लाइन में लिखा है- **इसे अनुसमयापवर्तन कहते हैं।** प्रति समय हीन-हीन होकर उदय में आ रहा है। अनुभाग के प्रति समय घटने को ही अनुसमयापवर्तन कहेंगे। ये बीचवाली थोड़ी बातें गौण करके हम आगे की जो बात है न, कृतकृत्यवेदक की उसको लेते हैं। देखो, पेज नंबर है १२१।

जब आठ वर्ष की स्थिति शेष रही तब स्थितिकांडकघात एक-एक

अंतर्मुहूर्तवाला होता रहा। ऐसे होते-होते-होते-होते अंतिम कांडक की अंतिम फालि खिर गयी। अभी कितने निषेक शेष रहेंगे ? अंतर्मुहूर्त प्रमाण। अब इसके आगे स्थितिकांडकघात भी नहीं होगा। अब इस जीव को कहेंगे कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि। वेदक क्योंकि उसका सम्यक्त्वमोहनीय का उदय चल रहा है, कृतकृत्य क्योंकि उसने मिथ्यात्व का और सम्यग्मिथ्यात्व का क्षय कर दिया है - इस जीव को कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि कहते हैं। अभी तक वह प्रस्थापक था, अब इसको निष्ठापक कहेंगे। इससे पूर्व में उसका मरण नहीं होता था। अब यहां मरण हो सकता है। आयु पूरी हो और यहां उसका मरण हो जाये तो यहां की बात हम पढ़ेंगे गाथा नंबर १४५ और १४६-

चरिमे फालिं दिण्णे कदकरणिज्जे त्ति वेदगो होदि।

सो वा मरणं पावइ चउगइगमणं च तट्ठणे ॥ १४५ ॥

देवेसु देवमणुए सुरणरतिरिए चउग्गईसुं पि।

कदकरणिज्जोप्पत्ती कमेण अंतोमुहुत्तेणं ॥ १४६ ॥

इसतरह अनिवृत्तिकरण के अंत समय में सम्यक्त्वमोहनीय के अंत कांडक की अंत फालि के द्रव्य को नीचे के निषेकों में निक्षेपण करने के पश्चात्। अभी आठ वर्ष स्थिति से लेकर एक-एक कांडकघात होते-होते अंतिम कांडक तक पहुंच गया। अंतिम कांडक का अंतिम लॉट भी नीचे आया। अभी बस अंतर्मुहूर्त प्रमाण नीचे के निषेक बाकी हैं। अभी यहां पर स्थितिकांडकघात होना रुक गया है। पश्चात् अनंतर समय से लेकर अनिवृत्तिकरण काल के संख्यातवें भाग मात्र जो पुरातन गलितावशेष गुणश्रेणी आयाम का शीर्ष, उसको संख्यात का भाग देकर वहां बहुभाग मात्र अंतर्मुहूर्त काल तक कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि होता है। यह कौनसी गुणश्रेणी थी, कहां तक थी उसको अभी भूल जाओ। इतना ही समझो कि जब अंतिम कांडक की अंतिम फालि नीचे गिरी तो नीचे अंतर्मुहूर्त प्रमाण निषेक अवशेष रहे। इस जीव को कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि कहेंगे। यहां स्थितिकांडकघात होना रुक गया है।

अब यहां से आगे मरण हो सकता है और जहां की आयु बांधी है उस गति में जायेगा। कौनसे भाग में मरकर जीव कहां चला जाता है उसकी बात यहां हम देखेंगे। चूंकि दर्शनमोह की क्षपणा योग्य स्थितिकांडकादि कार्य अनिवृत्तिकरण के अंत

समय में ही समाप्त हुये, यानी यहां तक ही अनिवृत्तिकरण का काल था। अनिवृत्तिकरण के अंत समय में अंतिम फालि नीचे आ गयी। अब अनिवृत्तिकरण काल समाप्त हुआ है। अभी मात्र अंतर्मुहूर्त प्रमाण निषेक शेष रहे हैं। अब स्थितिकांडकघात नहीं होगा, अनुभागकांडकघात तो पहले ही रुक गया था, ये जो कार्य हो रहे थे अब यहां से आगे नहीं होंगे। **इसलिये किया है करने योग्य कार्य जिसने ऐसा कृतकृत्य नाम पाता है, वह जीव**। देखो, कृतकृत्य शब्द से मुझे याद आया। हम कृतकृत्य कब कहते हैं ? *श्रोता: करने योग्य कर लिया।* करने योग्य कर लिया।

देखो, पं. टोडरमलजी साहब ने भी बताया, मैं मुझे अभी कृतकृत्य अनुभव कर रहा हूं। देखो जरा, आपको पहले बताया था क्या ? *श्रोता: हां बताया था।* अच्छा बताया था, ठीक, ठीक। कृतकृत्य मानकर यह हमने देखा था। पृष्ठ ६५६ पर बताया था- ये मुझे अभी याद आया। सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका जीवकाण्ड, उसकी अर्थसंदष्टि, कर्मकाण्ड, उसकी अर्थसंदष्टि, लब्धिसार-क्षपणासार, उसकी अर्थसंदष्टि ये सब ग्रंथ जब पूर्ण हुये तब वहां लिखा है। देखो, ६५६ पृष्ठ पर- **इति क्षपणासार अर्थ गर्भित लब्धिसार के अर्थों की संदष्टियों का वर्णन संपूर्ण हुआ, इसके संपूर्ण होने पर यह ग्रंथ समाप्त हुआ।** यह ग्रंथ यानी सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका जिसके ये सभी छह भाग थे न- तीन मूलग्रंथ, उन तीनों की अपनी-अपनी अर्थसंदष्टि। **ग्रंथ समाप्त होने पर प्रारंभ किये हुये कार्य की सिद्धि होने से हम स्वयं को कृतकृत्य मानकर इस कार्य करने की आकुलता रहित होकर सुखी हुये।** इसकी भी आकुलता होगी न ! पढ़नेवालों को भी और पढ़ानेवालों को भी। तो यह कृतकृत्य नाम पाया जाता है।

वह जीव अब मुख्य बात क्या बता रहे हैं- यहां किसीके आयु का नाश होकर जहां की आयु बांधी वहां उत्पन्न हो सकता है। **वह जीव भुज्यमान आयु के नाश से मरण को प्राप्त होता है तो सम्यक्त्व ग्रहण के पहले जो आयु बंधी थी** क्योंकि सम्यक्त्व के बाद बंधेगी तो देवायु ही बंधेगी। सम्यक्त्व से पहले वह मनुष्यायु भी बांध सकता है, नरकायु भी, तिर्यचायु भी, देवायु भी। **जो आयु बंधी थी उसके वश से चारों गतियों में उत्पन्न होता है।** यानी जहां कहीं की आयु बंधी है वहां उसकी उत्पत्ति होती है। **वहां कृतकृत्यवेदक काल के एक-एक अंतर्मुहूर्त मात्र चार भाग करते हैं।** कौनसा जीव कब, कहां उत्पन्न होता है उसके लिये इसके चार भाग करके उसको

समझायेंगे। **वहां प्रथम भाग में मरे तो देव ही में**, यानी वह देव ही होगा। मरकर देव में उत्पन्न होगा। **दूसरे भाग में मरे तो देव वा मनुष्य में**, तीसरे भाग में मरे तो देव, मनुष्य, तिर्यच में और चौथे भाग में मरे तो चारों गतियों में उपजते हैं।

देखो आपके पास कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि का चार्ट है, उसको आप देख सकते हैं। यहां बोर्ड पर भी वह चार्ट लगाया है। पहले भाग में मरकर क्या होता है ? *श्रोता: देव में उत्पन्न होता है।* देव ही होता है। दूसरे भाग में मरकर क्या होता है ? *श्रोता: देव या मनुष्य होता है।* देव या मनुष्य होता है। अब यह कहां का मनुष्य होता है ? देखो, यहां पर पहले भाग में मरकर; यह किसकी बात चल रही है ? कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि की। अब तक जो क्षपणा का कार्य चल रहा था उतने काल में जीव का मरण नहीं हो सकता, अब जाकर इसका मरण हो सकता है। पहले भाग में यदि मरता है तो देव ही होता है; ही लगाया। दूसरे भाग में मरे; हमने अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्त के चार भाग किये। दूसरे भाग में मरकर देव हो सकता है या मनुष्यायु बांधी हो तो भोगभूमि का मनुष्य होगा। कृतकृत्यवेदक के साथ वहां जन्म लेगा और वहां जाकर क्षायिक हो जायेगा। तीसरे भाग में मरकर देव होगा या मनुष्यायु बांधी होगी तो भोगभूमि का मनुष्य होगा या तिर्यचायु बांधी होगी तो भोगभूमि का तिर्यच होगा।

कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि

पहले भाग में मरकर देव ही होता है।

दूसरे भाग में मरकर देव या भोगभूमि का मनुष्य होता है।

तीसरे भाग में मरकर देव, भोगभूमि का मनुष्य या भोगभूमि का तिर्यच होता है।

चौथे भाग में मरकर देव, भोगभूमि का मनुष्य, भोगभूमि का तिर्यच या प्रथम नरक का नारकी होता है।

चौथे भाग में मरकर देव हो सकता है, देवायु बांधी है तो; भोगभूमि का मनुष्य होगा यदि मनुष्यायु बांधी है तो; तिर्यचायु बांधी होगी तो भोगभूमि का तिर्यच होगा या क्या कहा है ? नरकायु बांधी होगी तो प्रथम नरक का नारकी होता है क्योंकि कृतकृत्यवेदक या क्षायिक सम्यक्त्व के साथ मरकर मात्र प्रथम नरक में ही जा सकता है। जो सम्यक्त्व के साथ नरक में जाता है उसके लिये आवश्यक कंडिशन है या तो वह कृतकृत्यवेदक होगा या क्षायिक होगा; क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि जीव सम्यक्त्व के साथ नरक में जन्म नहीं ले सकता, उसका सम्यक्त्व छूट जायेगा। कोई मिथ्यादृष्टि जीव

नरकायु बांधने के बाद सम्यग्दर्शन तो प्राप्त कर सकता है। परंतु यदि उसने क्षायिक नहीं किया है तो उसका सम्यक्त्व छूट जायेगा। हमने भोगभूमि के बारे में यही नियम देखा था। इसका अर्थ क्या है ? अभी इस पंचम काल के किसी मनुष्य ने मनुष्यायु बांधी हो, तिर्यचायु बांधी हो या नरकायु बांधी हो तो वह सम्यक्त्व प्राप्त कर सकता है। वेदक सम्यग्दृष्टि तो हो जायेगा। परंतु वहां उस भव में जाने के पहले उसका सम्यक्त्व छूट जायेगा क्योंकि इस काल में क्षायिक होने का कोई सवाल ही नहीं है।

श्रोता: वहां जाकर क्षायिक हो जायेगा ? क्षायिक होगा ही क्योंकि यह कृतकृत्यवेदक है, अभी अंतर्मुहूर्त प्रमाण निषेक रह गये हैं। एक-एक निषेक गलकर एक अंतर्मुहूर्त में नियम से क्षायिक सम्यग्दृष्टि होगा ही। अभी उसका अनिवृत्तिकरण तो समाप्त हुआ है। अभी कोई कांडकघात वगैरह तो है नहीं। परंतु अभी विशुद्धि इतनी हुयी है कि उसका अनुभाग घटते ही जायेगा और एक-एक निषेक गलते ही जायेगा। हम यहां पढ़ेंगे- प्रथम भाग में मरे तो देव ही में, दूसरे भाग में मरे तो देव वा मनुष्य में, तीसरे भाग में मरे तो देव, मनुष्य, तिर्यच में और चौथे भाग में मरे तो चारों गतियों में उपजते हैं। जहां की आयु बंधी है वहां उपजते हैं। क्योंकि वहां उन्हीं में उपजने योग्य परिणाम होते हैं। इस क्रम से कृतकृत्यवेदक की उत्पत्ति जानना। यहां जो मरते हैं उनमें लेश्या संबंधी कुछ नियम आगे की गाथा में बताते हैं।

करणपढमादु जावय किदुकिच्चुवरि मुहुत्तअंतोत्ति।

ण सुहाण परवत्ती सा धि कओदावरं तु वरि ॥ १४७ ॥

देखो, अधःकरण के प्रथम समय में दर्शनमोहक्षपणा के प्रारंभक जीव के पीत, पद्म या शुक्ल जो लेश्या होती है, क्या कहते हैं ? यह कार्य कौनसी लेश्या में होगा ? शुभ लेश्या में। कौनसी ? पीत होगी, पद्म होगी या शुक्ल होगी। हमने देखा था अधःकरण से ही अनंतगुणी विशुद्धि - अनंतगुणी विशुद्धि - अनंतगुणी विशुद्धि चल रही है। वह प्रति समय अनंतगुणी विशुद्धता के क्रम से अनिवृत्तिकरण के अंत समय में उस लेश्या का उत्कृष्ट अंश संपूर्ण होता है। पीतवाला है, पद्मवाला है या शुक्लवाला है - जो कोई अपने-अपने उत्कृष्ट अंश तक पहुंच जाता है। यह बात ख्याल में आयी ? उसके अनंतर कृतकृत्यवेदक काल के प्रथम भाग में मरे तो लेश्या पलटती ही नहीं, क्यों नहीं ? क्योंकि अभी यह जीव कौनसे स्वर्ग में उत्पन्न होगा ?

श्रोता: स्वर्ग में उत्पन्न होगा। कहां से कहां तक ? कृतकृत्यवेदक जीव है यानी अभी जो क्षायिक होने जा रहा है; कौनसे स्वर्ग से कौनसे स्वर्ग तक उत्पन्न होगा यह मेरा प्रश्न है। श्रोता: ऊपर लिखा है ? कहां लिखा है ऊपर ? बोलो ? पहले से लेकर सर्वार्थसिद्धि तक कहीं भी जा सकता है न ! कहीं पर भी जायेगा। देखो, जो पीत लेश्या में हैं वे सौधर्म-ईशान में जायेंगे। भवनत्रिक में तो कोई जानेवाले नहीं हैं। पद्म लेश्यावाले ? पद्म लेश्या कहां से कहां तक है ? सनत्कुमार से लेकर सहस्रार तक है और ऊपर सारे शुक्ल लेश्यावाले हैं। जिस स्वर्ग में जो लेश्या होती है उस लेश्या में मरकर वहां चले जायेंगे।

श्रोता: कृतकृत्यवेदक वाले भी वहां जायेंगे ? कृतकृत्यवेदक की ही बात चल रही है। श्रोता: लेकिन वहां तो केवल क्षायिक ही जाते हैं। कृतकृत्यवेदक भी जाते हैं, सर्वत्र जायेंगे। वहां जाते ही उनका क्षायिक सम्यक्त्व पूरा होनेवाला है। जिस लेश्या के अंश में, जितने अंश में मरेंगे वहां उस स्वर्ग में उत्पन्न होंगे। जहां उत्पन्न होते हैं, वहां की जो लेश्या है, लेश्या के उसी अंश में उनका मरण होता है। देव में जानेवालों की लेश्या शुभ ही रहेगी, उसी शुभ लेश्या में मरेंगे। सम्यग्दृष्टि तो हैं ही। **यदि दूसरे, तीसरे, चौथे भाग में मरे तो** और यदि देव हुये तो भी उनकी लेश्या नहीं पलटेगी। परंतु यदि वे मनुष्य होनेवाले हैं। तीसरे भाग में मरकर मनुष्य, तिर्यच होनेवाले हैं या चौथे भाग में मरकर मनुष्य, तिर्यच और नारकी होनेवाले हैं तो यहां लिखा न- **दूसरे, तीसरे, चौथे भाग में मरे तो शुभ लेश्या की क्रम से हानि होकर** क्योंकि अनिवृत्तिकरण के अंत समय में उत्कृष्ट तक पहुंचे थे। अभी उत्कृष्ट से वापस थोड़ी कम भी हो सकती है न, विशुद्धि अभी थोड़ी कम हो जायेगी।

कहते हैं अगर अन्य गति में जाना हो तो, **मरण समय कपोत लेश्या का जघन्य अंश होता है, क्योंकि द्वितीय भाग में मरकर भोगभूमिया मनुष्य भी होता है; तीसरे भाग में मरकर भोगभूमिया मनुष्य या तिर्यच भी होता है और चौथे भाग में मरकर जिसके नरकायु बंधी हो वह जीव प्रथम नारक पृथ्वी में भी उपजता है।** वह कपोत लेश्या के साथ वहां उत्पन्न होगा। हमने देखा है प्रथम नरक का नारकी वहां पर कपोत लेश्या में उत्पन्न होता है। **यदि देवगति में ही उपजना हो तो उसके चारों ही भागों में लेश्या का पलटना नहीं होता।** शुभ लेश्या में ही मरण होगा क्योंकि देवों की तो शुभ लेश्या होती है और वहीं उसका उत्पन्न होना होगा।

इसप्रकार कृतकृत्यवेदक काल में मरण होने की अपेक्षा कथन किया।

पुनश्च यदि वहां मरण न हो उसकी आयु चल रही है अभी **और पहले चारों गतियों में से किसी गति संबंधी आयु बंधी हो** जैसे हमारे श्रेणिक राजा ने नरकायु बांधी थी, वे यहीं पर क्षायिक हुये। **उसके क्षायिक सम्यक्त्व होने के पश्चात् मरण के समय गति के अनुसार लेश्याओं का पलटना जानना।** नरक में जाना निश्चित था। पहले नरक की कपोत लेश्या है। यहां पर क्षायिक सम्यग्दृष्टि थे, तब भी मरण के समय में कपोत लेश्या हुयी। कहते हैं न आपघात करके या कुछ ऐसे संक्लेश परिणाम में मरकर कपोत लेश्या में वहां चले गये। देव में जानेवाले का शांत परिणाम में शुभ लेश्या में मरण होता है।

अभी कृतकृत्यवेदक काल बाकी है। अब क्या होगा ? यहां भी असंख्यात निषेक हैं, ऊपर के निषेकों में से परमाणु नीचे आकर उदयावली में गुणित प्रमाण में दिये जायेंगे। वहां पर उदीरणा का कार्य होगा। फिर बाद में एक-एक निषेक गलते-गलते जब आवली रह जायेगी तो उदीरणा भी रुक जायेगी क्योंकि आवली के ऊपर निषेक ही नहीं हैं तो नीचे कहां से आयेंगे ? जब एक आवली प्रमाण रह जायेंगे तो अभी क्या होगा ? एक-एक निषेक ही गल जायेगा। जब अंतिम निषेक रह जायेगा तो क्या है ? कृतकृत्यवेदक का अंतिम समय। वह भी जब खिर जायेगा तब जीव क्षायिक सम्यग्दृष्टि हो जायेगा। क्षायिक सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है। यहां यही बात बताते हैं कि विशुद्धता के बल से असंख्यात समयप्रबद्धों की उदीरणा आदि कार्य कृतकृत्यवेदक के काल में भी चलता रहेगा। उसमें भी अपकर्षण आदि कार्य चल ही रहा है और वह भी सारा उदयावली में जायेगा। उसके भी वहां असंख्यातगुणा निर्जरा चलेगी।

श्रोता: गुणश्रेणी कब बदली ? सम्यक् प्रकृति की आठ वर्ष प्रमाण स्थिति शेष रहने पर उदय के समय से लेकर गुणश्रेणी बनी जो अब अवस्थित रहेगी। उसको उदयादि अवस्थित गुणश्रेणी कहते हैं। अब किसीके कोई प्रश्न नहीं हैं न ! क्षायिक सम्यक्त्व हो गया न, इसलिये निराकुलता हो गयी है। अब यहीं रुकेंगे हम।

बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

२६. दर्शनमोहनीय की क्षपणा - पुनरावलोकन

आचार्य श्री नेमिचन्द्र सिद्धांतचक्रवर्ती ने इस लब्धिसार ग्रंथ की रचना की है। उसीके आधार से पं. टोडरमलजी ने सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका लब्धिसार-क्षपणासार भाषाटीका ढूंढ़ारी भाषा में लिखी है और अभी हम उसका हिंदी अनुवाद देख रहे हैं। क्षायिक सम्यक्त्व की प्ररूपणा चल रही है।

क्षायिक सम्यक्त्व कौन प्राप्त कर सकता है ? हमने देखा था कर्मभूमि का मनुष्य तीर्थंकर, केवली या श्रुतकेवली के पादमूल में इसकी प्राप्ति करता है। क्षायिक होने के पश्चात् वह मरकर चारों ही गति में जा सकता है, पहले जो आयु बंधी हो वहां चला जाता है। अब इसके लिये प्राथमिक क्या आवश्यकता है ? यहां तो सात प्रकृतियों का क्षय होने जा रहा है- अनंतानुबंधी की चार और दर्शनमोहनीय की तीन। अनंतानुबंधी का क्षय नहीं कहते, उसको विसंयोजना कहते हैं। इसलिये कहते हैं कि कोई जीव विसंयोजना करने के पश्चात् भी मिथ्यात्व में जा सकता है। तब अनंतानुबंधी का फिर से दुबारा बंध भी होता है। इसलिये जो दर्शनमोह की क्षपणा करनेवाला है वह पहले अनंतानुबंधी की विसंयोजना करता ही है। उसके पश्चात् एक अंतर्मुहूर्त में क्षपणा प्रारंभ कर सकता है। कोई जीव कालान्तर में - बाद में भी करेगा, यदि उसका सम्यक्त्व बना रहा तो। उसकी अनंतानुबंधी की विसंयोजना हो चुकी है अब जाकर वह दर्शनमोहनीय की क्षपणा करेगा।

अनंतानुबंधी की विसंयोजना करने के लिये तीन करण परिणाम हुये थे- अधःकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण। हमेशा अधःकरण में विशुद्धि प्रतिसमय अनंतगुणा बढ़ती है। अपूर्वकरण से गुणश्रेणी, गुणसंक्रमण, स्थितिकांडकघात, अनुभागकांडकघात होते हैं। जब अनंतानुबंधी की विसंयोजना होती है तब अन्य कर्मों में कुछ मात्रा में ये बातें तो चलती ही हैं, परंतु यहां गुणसंक्रमण अन्य कर्मों में नहीं होगा मात्र अनंतानुबंधी में ही होगा। अनंतानुबंधी के ही स्थितिकांडकघात इतने बड़े-बड़े होंगे कि उसकी स्थिति बहुत शीघ्रता से नष्ट होने लगेगी। शुरू में अंतःकोड़ाकोड़ी सागर थी, अपूर्वकरण में घटकर पृथक्त्व लक्ष सागर हुयी। अनिवृत्तिकरण में घटते-घटते हजार सागर, सौ सागर, पचास सागर, पच्चीस सागर, सागर, पल्य तक आती है। फिर पल्य के संख्यातवें भाग जिसको हम दूरापकृष्टि कह रहे थे, उसके बाद घटते-

घटते उच्छिष्टावली प्रमाण रह जाती है।

इसतरह उसके स्थितिसत्त्व का नाश होते जाता है। अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण में उसी समय स्थितिकांडकघात तो होते ही रहते हैं, गुणसंक्रमण द्वारा अन्य प्रकृतिरूप परिणमाने का कार्य भी चलता है। आखिर में एक उच्छिष्टावली मात्र निषेक बाकी रहते हैं, तब एक-एक निषेक उदयरूप अन्य कषाय में संक्रमित होकर नष्ट हो जाता है। तब अनंतानुबंधी की सत्ता का नाश होता है। उसके बाद एक अंतर्मुहूर्त तक अन्य कोई कार्य नहीं होता उसको कहेंगे विश्राम लेकर। उसके पश्चात् फिर दुबारा तीन करण परिणाम होते हैं। अब ये तीन करण परिणाम किस संबंधी हैं ? दर्शनमोहनीय की क्षपणा संबंधी हैं।

यहां पर भी अधःकरण में क्या होता है ? विशुद्धि अनंतगुणा बढ़ती चली जाती है। अपूर्वकरण से मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक् प्रकृतियों में स्थितिकांडकघात आदि होते रहते हैं। परंतु स्थितिबंध का घटना तो अन्य कर्मों में ही होता है क्योंकि यहां दर्शनमोहनीय का कोई बंध नहीं है। जिनका बंध है उनका बंध भी घटते जा रहा है। यहां अन्य कर्मों में भी गुणश्रेणी आदि रचना होती है परंतु यहां गुणसंक्रमण किसमें होगा ? मात्र मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व में होगा। पहले में पहले मिथ्यात्व के परमाणु सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृतिरूप परिणमते रहते हैं। किस प्रमाण में ? तो कहते हैं गुणित प्रमाण में। असंख्यातगुणा-असंख्यातगुणा-असंख्यातगुणा प्रमाण में, उसीको गुणसंक्रमण कहते हैं। इतने परमाणु जो सत्ता में थे वे सारे ही संक्रमित होकर नष्ट हो गये। क्षपणा का कार्य जब-जब होता है तो संक्रमण से ही बहुतांशतः सब होता है।

आगे चलकर क्षपकश्रेणी में भी यही बातें आनेवाली हैं कि कौनसी प्रकृति किस प्रकृति में संक्रमित होकर नष्ट होती है। अब यहां हम क्या देख रहे थे ? मिथ्यात्व में स्थितिकांडकघात भी हो रहे हैं, यहां बड़े-बड़े होंगे। उसी समय सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक् प्रकृति में भी हो रहे हैं, उसकी अपेक्षा मिथ्यात्व के कांडक बड़े होंगे क्योंकि मिथ्यात्व का द्रव्य पहले क्षय हो जायेगा। यानी वह पहले संक्रमित होकर नष्ट हो जायेगा। जैसे अनंतानुबंधी में हमने स्थिति के चार पर्व देखे वैसे यहां पर भी मिथ्यात्व कर्म की स्थिति घटते-घटते पृथक्त्व लक्ष सागर; फिर और घटते-घटते-घटते हजार सागर, सौ सागर, पचास सागर, पच्चीस सागर, एक सागर, पत्य प्रमाण, फिर

दूरापकृष्टि तक और फिर लास्ट में जाकर उच्छिष्टावली प्रमाण रह जाती है। यह कार्य कैसे होगा ? स्थितिकांडकों द्वारा और गुणसंक्रमण द्वारा होगा। मिथ्यात्व का सभी द्रव्य सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृतिरूप परिणमित होकर नष्ट हो जाता है। एक आवली प्रमाण निषेक बाकी रहेंगे तो एक-एक निषेक संक्रमित होकर यानी नीचे से एक-एक निषेक उदयरूप सम्यक् प्रकृति में संक्रमित होकर नष्ट हो जायेगा। अभी इस जीव की सत्ता में दो प्रकृति रही- सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति।

अब यहां पर भी वह कार्य चल ही रहा है क्योंकि अभी उसका अनिवृत्तिकरण का काल चल रहा है। जब उसने दर्शनमोह की क्षपणा के लिये तीन करण परिणाम मांडे थे - अधःकरण तो हो चुका, जब अपूर्वकरण शुरू हुआ था तब उसने एक गुणश्रेणी बनायी थी। वह कैसी थी ? गलितावशेष गुणश्रेणी थी जो उदयावली के ऊपर थी। कितनी लंबी थी ? अपूर्वकरण का काल प्लस अनिवृत्तिकरण का काल प्लस थोड़ा अधिक काल। अपूर्वकरण का काल बीत गया तो अपूर्वकरण काल के जितने निषेक थे वे तो गल गये। जब अनिवृत्तिकरण चालू हो गया तो अभी गुणश्रेणी की लंबाई कितनी रही ? अनिवृत्तिकरण का काल प्लस थोड़ी अधिक इतनी रह गयी। अभी अनिवृत्तिकरण का काल भी कुछ निकल गया है क्योंकि मिथ्यात्व की क्षपणा अनिवृत्तिकरण में ही हुयी। अब गुणश्रेणी उतनी गल गयी और थोड़ी बाकी है।

अब सम्यग्मिथ्यात्व के भी स्थितिकांडकघात हो रहे हैं, उसका भी गुणसंक्रमण शुरू है। यानी जो गुणश्रेणी बनायी थी वह गल रही है और यह कब तक चलेगा ? स्थितिकांडकघात इन दोनों ही प्रकृतियों के होते हैं। गुणसंक्रमण तो केवल सम्यग्मिथ्यात्व में होगा। सम्यग्मिथ्यात्व के परमाणु सम्यक् प्रकृतिरूप होते रहते हैं। ऐसे होते-होते अभी सम्यग्मिथ्यात्व का अंतिम कांडक होने का समय आया। अंतिम कांडक इतना बड़ा लिया कि उसके नीचे मात्र उच्छिष्टावली प्रमाण निषेक रह जायेंगे। ऊपर का सब कांडकरूप से ग्रहण किया। उस कांडक की एक फालि सम्यक् प्रकृतिरूप हुयी, दूसरी हुयी, तीसरी हुयी। इसतरह से जब अंतिम फालि सम्यक् प्रकृतिरूप होकर नष्ट होगी तो नीचे उच्छिष्टावली मात्र निषेक रह जायेंगे। अंतिम फालि या अंतिम कांडक कितना बड़ा था ? सम्यग्मिथ्यात्व के अंतिम कांडक की लंबाई का प्रमाण कितना था ? पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण - इतने निषेक

गुणसंक्रमण होकर सम्यक् प्रकृतिरूप हो ही गये। परंतु उनकी स्थिति घटकर आठ वर्ष प्रमाण हो गयी। सम्यक् प्रकृति के आठ वर्ष प्रमाण निषेकों में वे आ जायेंगे।

आठ वर्ष प्रमाण का अर्थ होता है आठ वर्ष के जितने समय हैं उतने जो निषेक हैं, पहले से ही हैं, उनमें वह द्रव्य सारा आकर मिलेगा। उसी समय जब सम्यग्मिथ्यात्व की अंतिम फालि सम्यक् प्रकृतिरूप हो जाती है तब सम्यक् प्रकृति में भी स्थितिकांडकघात हो रहे थे। उसका भी अंतिम स्थितिकांडकघात होगा जो पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाणवाला अंतिम है; आठ वर्ष होने के पश्चात् उसके स्थितिकांडकघात होंगे परंतु उनका प्रमाण अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्त होगा। यहां पर सम्यग्मिथ्यात्व का कांडक बड़ा हुआ क्योंकि उसके आवली प्रमाण निषेक शेष रहे और सम्यक् प्रकृति का जो कांडक है वह भी पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण है परंतु उसके नीचे आठ वर्ष प्रमाण स्थिति अवशेष रही। इन दोनों कांडकों का द्रव्य सम्यक् प्रकृति के आठ वर्ष प्रमाण नीचे के जो निषेक हैं उनमें दिया जायेगा। यह हमने कल भी देखा था। ये आठ वर्ष प्रमाण निषेकों में क्या-क्या हुआ नीचे से ? उदय के समय से ही लेकर गुणश्रेणी बनी थी उसमें गुणित प्रमाण में दिया और ऊपर शेष आठ वर्ष प्रमाण जो उपरितन स्थिति थी उसमें भी दिया। कहां-कहां दिया ? गुणश्रेणी में भी दिया और उपरितन स्थिति में भी दिया। वह सब मिलकर आठ वर्ष प्रमाण स्थिति हुयी है। इसको हम फिर पढ़ेंगे फिर आगे क्या होता है उसको देखेंगे। हमने स्थितिसत्त्व कैसे घटता है उसकी बात देखी थी। मिथ्यात्व का क्षय हो जाता है उसकी भी बात देखी थी।

देखो, पृष्ठ १०६ पर भावार्थ में लिखते हैं- **मिश्रमोहनीय की उच्छिष्टावली मात्र स्थिति रहने का और सम्यक्त्वमोहनीय की आठ वर्ष मात्र स्थिति रहने का एक ही काल है।** क्या देखा हमने ? सम्यग्मिथ्यात्व की अंतिम फालि संक्रमित हो गयी उस समय सम्यग्मिथ्यात्व में उच्छिष्टावली शेष रही और सम्यक् प्रकृति की अंतिम फालि नीचे आयी तो उसमें आठ वर्ष शेष रहे। यहां इतनी ही बात बता रहे हैं कि जब मिथ्यात्व की उच्छिष्टावली बाकी थी और उसका जो अंतिम कांडक है वह सम्यग्मिथ्यात्वरूप परिणमित हुआ था तो सम्यग्मिथ्यात्व में जो परमाणुओं की संख्या थी वह उत्कृष्ट में उत्कृष्ट थी। एक जीव की अपेक्षा उस समय मॅक्झिमम थी। सभी जीवों में मॅक्झिमम किसकी होगी ? उसके लिये हमने देखा था जो कोई गुणित

कर्मांशिक जीव है - जिसके कर्मों का संचय पहले ही बहुत अधिक हुआ है, ऐसे जीव के वहां सम्यग्मिथ्यात्व के परमाणुओं की संख्या अधिक से अधिक हो सकती है। यह अनेक जीवों की तुलना में बता दिया। परंतु सभी जीव गुणित कर्मांशिक तो नहीं होते।

पहले ही सत्ता में जो कर्म हैं वे परमाणुओं की अपेक्षा किसीके अधिक हैं किसीके कम हैं। अभी सबकी स्थिति समान हुयी है, परंतु परमाणुओं में हीनाधिकता है। स्थिति सबकी समान हुयी, अनुभाग सबका समान हुआ क्योंकि अनिवृत्तिकरण परिणाम हैं। निषेकों की संख्या समान है परंतु उसमें प्रदेश यानी परमाणुओं की संख्या हीनाधिक हो सकती है। पूर्व अवस्था में अधिक कर्म बांधकर आया है या बहुत सारा खिपाकर आया है उसके अनुसार उनकी संख्या हीनाधिक हो सकती है। प्रदेशों की यानी परमाणुओं की संख्या की बात इतनी ही है। अब आगे बढ़ेंगे- अब मिश्रमोहनीय की अंतिम फालि और सम्यक्त्वमोहनीय की अंतिम फालि; अंतिम फालि का अर्थ है दोनों ही कांडकघात होकर अभी आठ वर्ष में आनेवाले हैं उसको अंतिम फालि कही। मोहनीय का पूरा ही द्रव्य इन दो फालियोंरूप मॅक्झिमम है क्योंकि मिथ्यात्व का द्रव्य इन दोरूप हुआ है। अब जो नीचे आठ वर्ष प्रमाण है या अभी तक जितना खिर गया है वह तो इसके सामने कुछ नहीं है। थोड़ा भाग - असंख्यातवां भाग खिर गया है परंतु दोनों ही प्रकृतियों का मॅक्झिमम द्रव्य यहां पड़ा है।

यही बात हमने कल गाथा १२८ में भी पढ़ी थी। उसका भावार्थ देखते हैं १०७ पृष्ठ पर नीचे- **मिश्रमोहनीय को गुणसंक्रमण द्वारा जब तक सम्यक्त्वमोहनीयरूप परिणमाता है तब तक गुणसंक्रमण काल कहते हैं।** पहले भी मिथ्यात्व को गुणसंक्रमण के द्वारा सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक् प्रकृतिरूप परिणमाया था। मिथ्यात्व तो नष्ट हो गया, अभी सम्यग्मिथ्यात्व को भी गुणसंक्रमण के द्वारा सम्यक् प्रकृतिरूप परिणमायेगा। यह उसका गुणसंक्रमण काल चल रहा है। **उसके अंत समय में मिश्रमोहनीय का उच्छिष्टावली मात्र और सम्यक्त्वमोहनीय का अष्ट वर्ष मात्र निषेक बिना अन्य सर्व द्रव्य उनकी अंत दो फालि का जानना।** इसका अर्थ ख्याल में आता है ? यह अंत दो फालि का द्रव्य है, जो सम्यग्मिथ्यात्व का उच्छिष्टावली छोड़कर और सम्यक् प्रकृति का आठ वर्ष छोड़कर बाकी सभी द्रव्य इन दो फालियों में मौजूद है। वह कितना है ? शेष द्रव्य कम करेंगे तो **वह किंचित कम डेढ़ गुणहानि**

गुणित समयप्रबद्ध है। यानी लगभग पूरा ही मोहनीय का द्रव्य है, कौनसा ? दर्शनमोहनीय का द्रव्य अभी इनरूप से है।

अष्ट वर्ष स्थिति अवशेष करण के समय में इन दो फालियों का पतन करने के लिये यानी जब ये दोनों फालियां खिरकर आठ वर्ष में आ जायेंगी। वह द्रव्य कहां-कहां दिया जायेगा ? इन दो फालियों का पतन होकर अभी कितना शेष रहनेवाला है ? आठ वर्ष प्रमाण। वहां आठ वर्ष के जो निषेक हैं उनमें कौन-कौनसी रचना अभी विद्यमान है ? तो कहते हैं कि **उनके द्रव्य को** जितना दोनों ही फालि में द्रव्य है। कितना है ? लगभग पूरा दर्शनमोहनीय का द्रव्य है। **उनके द्रव्य को पत्य के असंख्यातवें भाग से भाग देकर वहां एकभाग को उदयादि अवस्थित गुणश्रेणी आयाम में देना।** अब तक क्या थी ? गलितावशेष गुणश्रेणी थी। आठ वर्ष करने के समय में नयी गुणश्रेणी बनी। वह कैसी है ? अवस्थित। पहली कौनसी थी ? गलितावशेष थी और अभी नयी जो बनेगी वह अवस्थित है। आठ वर्ष होने के समय में यह एक विशेष कार्य हुआ। पहले हमने देखा था, जबसे अपूर्वकरण शुरू हुआ था तो अपूर्वकरण का काल, अनिवृत्तिकरण का काल और थोड़ा अधिक इतनी गलितावशेष गुणश्रेणी बनी थी। अभी अनिवृत्तिकरण का काल चल रहा है तो कितनी ही गल गयी है। अभी कितनी शेष है ? जितना अनिवृत्तिकरण का काल बाकी है और थोड़ा ऊपर इतनी शेष है। ऐसे होते हुये भी जब दोनों फालि खिरकर आठ वर्ष में आ मिलेंगी तो यहां एक नयी गुणश्रेणी तैयार होगी। पूर्व की गलितावशेष थी, जो उदयावली के ऊपर थी अभी कौनसी है ? अवस्थित गुणश्रेणी नयी बनेगी जो उदय के समय से बनेगी।

कहते हैं- **उदयादि अवस्थित गुणश्रेणी आयाम में देना अर्थात् उदयावली के प्रथम समय से लेकर पहले जो गलितावशेष गुणश्रेणी आयाम का प्रारंभ किया था उसमें से व्यतीत होने के पश्चात् जो अवशेष गुणश्रेणी आयाम रहा, उसके अंत तक और एक समय उपरितन स्थिति का, उनमें देना।** पहले गलितावशेष गुणश्रेणी आयाम था, अभी यहां कौनसी बनेगी ? अवस्थित बनेगी। अवस्थित गुणश्रेणी आयाम और उपरितन स्थिति का एक समय - इनमें असंख्यातगुणा क्रम से देंगे। इसीका भावार्थ देखेंगे तो बात और समझ में आयेगी। **यहां से पहले तो उदयावली से बाह्य गुणश्रेणी आयाम था,** वह भी कैसा था ? गलितावशेष था। देखा था न, अपूर्वकरण के

शुरुआत में उसको शुरू किया था। अब यहां से लेकर उदयरूप वर्तमान समय से लेकर ही गुणश्रेणी आयाम हुआ, इसलिये इसको उदयादि, यानी उदय के समय से लेकर कहते हैं।

पहले तो समय व्यतीत होने पर गुणश्रेणी आयाम घटता जाता था, अब एक समय व्यतीत होते ही उपरितन स्थिति का एक समय मिलाकर गुणश्रेणी का आयाम का प्रमाण समय व्यतीत होने पर भी जितना का उतना रहता है, इसलिये इसे अवस्थित कहते हैं। नीचे से उदयरूप होकर एक समय गल गया और उपरितन स्थिति का एक निषेक गुणश्रेणीरूप से आ गया। उसमें भी असंख्यातगुणा द्रव्य दिया जायेगा और ये बातें बनती रहेंगी। नीचे गल गया, ऊपर से आया। तो गुणश्रेणी जैसी दिख रही थी जितना उसका आयाम था वह तो उतना का उतना दिखेगा। इसलिये इसको क्या कहेंगे ? उदयादि अवस्थित गुणश्रेणी आयाम। पहले कौनसा था ? गलितावशेष था। अब यहां पर अवस्थित हो गया। इसलिये इसका नाम उदयादि अवस्थित गुणश्रेणी आयाम है, उसके निषेकों में वह द्रव्य असंख्यातगुणा क्रम से दिया जाता है। इसतरह उन दोनों फालियों के द्रव्य को पल्प के असंख्यातवें भाग का भाग देकर एकभाग तो गुणश्रेणी में दिया।

सम्यग्मिथ्यात्व की एक और सम्यक् प्रकृति की एक ऐसी अंतिम दो फालि का द्रव्य कहां दिया जाता है उसकी यहां चर्चा है। आठ वर्ष में नीचे जो अब तक चली आयी थी वह गुणश्रेणी तो गलितावशेष थी और वह उदयावली के ऊपर थी। अब यहां क्या होगा ? अब उदय के समय से ही लेकर अवस्थित गुणश्रेणी आयाम हो जायेगा और उसमें असंख्यातगुणा क्रम से दिया जायेगा। एकभाग तो गुणश्रेणी में दिया और बाकी बहुभाग ऊपर जो शेष आठ वर्ष प्रमाण की स्थिति है उसमें चय घटते क्रम से देंगे। अतिस्थापनावली वगैरह छोड़कर सब प्रोसेस वैसा ही है। क्या हुआ ? आठ वर्ष में अभी देना है, हम पहले कैसे देते थे ? उदयावली में, फिर गुणश्रेणी में और फिर ऊपर। अब आठ वर्ष में कैसे देंगे ? उदय के समय से ही गुणश्रेणी है तो उदयावली अलग नहीं रही, उसीमें ही गर्भित हो गयी है। उदय के समय से लेकर अवस्थित गुणश्रेणी में और बाकी उपरितन स्थिति में - दो में डिक्लाइड होगा।

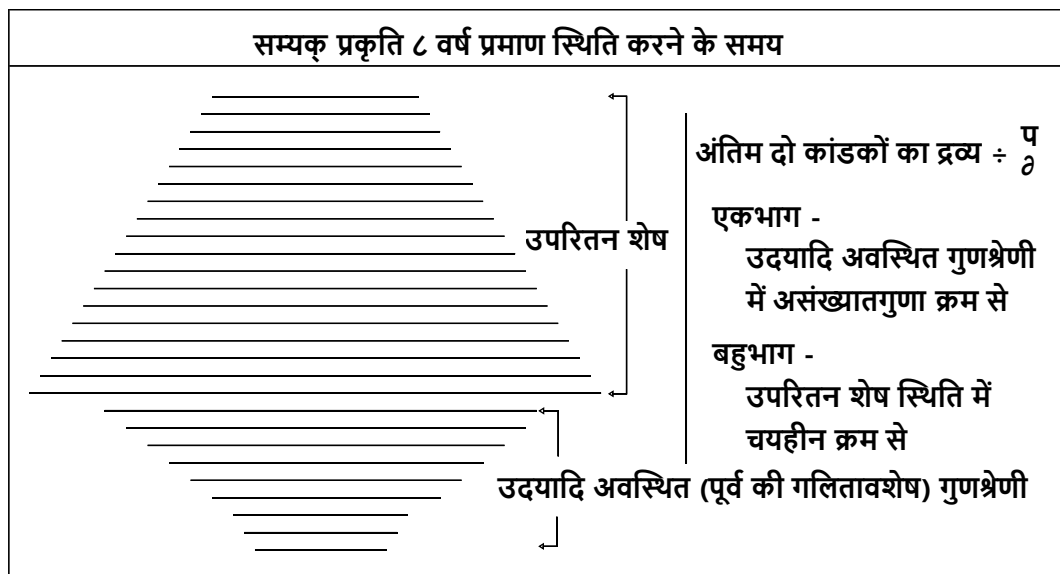
अब हम गाथा १२९ की टीका पढ़ेंगे- अवशेष बहुभाग के द्रव्य को गुणश्रेणी

आयाम मात्र अंतर्मुहूर्त से कम अष्ट वर्ष प्रमाण जो उपरितन स्थिति, उसके निषेकों में 'अद्धाणेण सव्वधणे खंडिदे' इत्यादि विधान से प्रथम निषेक में द्रव्य निक्षेपण करता है और उससे द्वितीयादि निषेकों में समान प्रमाणरूप चय से घटते हुये क्रम से निक्षेपण करता है। हमने देखा था सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति दोनों की फालियों का द्रव्य आठ वर्ष प्रमाण में आ गया। वह नीचे तो गुणश्रेणी में दिया जाता है और बाकी बचा हुआ द्रव्य आठ वर्ष के शेष निषेकों में दिया जाता है अर्थात् अंतर्मुहूर्त प्रमाण गुणश्रेणी को आठ वर्ष में से मायनस करना; ऊपर जितने निषेक हैं उनमें क्रम से घटते हुये दिया जायेगा। यह 'अद्धाणेण' वगैरह लिखा है उसके प्रथम निषेक में कितना दिया ? उसका प्रमाण निकालने के लिये सूत्र है। अभी हम समझेंगे न ? जितना प्रथम निषेक में दिया, दूसरे में थोड़ा कम, फिर थोड़ा कम, फिर थोड़ा कम ऐसे आठ वर्ष प्रमाण जो शेष निषेक हैं उनमें सर्वत्र दिया। यानी गुणश्रेणी में और उपरितन स्थिति में ऐसे दो जगह डिक्वाइड हुआ। आगे पढ़ेंगे-

ऐसे ही गुणश्रेणी के अंत निषेक में दिये हुये द्रव्य से उपरितन स्थिति के प्रथम निषेक का द्रव्य असंख्यातगुणा होता है। यहां एक विशेषता बतायी। गुणश्रेणी में तो असंख्यातगुणा-असंख्यातगुणा दिया, परंतु जो अंतर्मुहूर्त प्रमाण गुणश्रेणी है उसमें तो एकभाग प्रमाण द्रव्य दिया था और जो बहुभाग है वह शेष आठ वर्ष में दिया था। तो बहुभाग का द्रव्य बहुत कम निषेकों में दिया न ? आठ ही वर्ष में डिक्वाइड हुआ। इसलिये वहां एक-एक निषेक में मिलनेवाला द्रव्य बहुत ज्यादा है। इसलिये यहां गुणश्रेणी में एकभाग में से दिया, और उपरितन निषेकों में बहुभाग में से मिला तो वहां बहुत ज्यादा मिला। इसलिये गुणश्रेणी के अंतिम निषेक में जितना द्रव्य दिया उससे भी असंख्यातगुणा द्रव्य उपरितन के पहले निषेक में दिया और उसके ऊपर वह चय घटते क्रम से दिया। नीचे गुणश्रेणीरूप रचना है, उसके ऊपर उपरितन स्थिति के नीचे के एक निषेक में असंख्यातगुणा दिया जायेगा और ऊपर इसतरह से चय घटते हुये क्रम से दिया जायेगा। उसका कारण क्या है ? क्योंकि जो शेष आठ वर्ष हैं उसमें बहुभाग का निक्षेपण हुआ है और गुणश्रेणी में एकभाग का। दोनों फालियों का जितना द्रव्य नीचे आया है उसको पल्य के असंख्यातवें भाग से भाग दिया था एकभाग गुणश्रेणी में दिया था और बहुभाग ऊपर चला गया था। इसलिये ऊपर के निषेकों में

बहुत अधिक द्रव्य दिया गया इतनी ही बात है। अब गाथा १०९ पर आते हैं।

श्रोता: १७ नंबर का चार्ट वह नहीं है न ? १७ नंबर का चार्ट है, परंतु कहां कितना दिया वह उसमें नहीं है। अभी मैंने दूसरा चार्ट बनाया है। देखो, ये सम्यक् प्रकृति के ८ वर्ष प्रमाण निषेक हैं। उनमें पहले सबसे नीचे उदयावली थी, उसके ऊपर गलितावशेष गुणश्रेणी थी, गल रही थी। अभी यहां से यह गुणश्रेणी कैसी हो जायेगी ? अवस्थित हो जायेगी। आठ वर्ष प्रमाण निषेकों में जो द्रव्य दिया जायेगा, उसमें से एकभाग नीचे उदयावली, गलितावशेष गुणश्रेणी और ऊपर का एक निषेक इनमें असंख्यातगुणा क्रम से दिया जायेगा। अब वह अवस्थित गुणश्रेणी होगी। बहुभाग ऊपर शेष आठ वर्ष प्रमाण निषेकों में दिया जायेगा। परंतु चय घटते क्रम से दिया जायेगा।



एकभाग नीचे गुणश्रेणी में असंख्यातगुणा क्रम से दिया और ऊपर जो दिया वह शेष निषेकों में चय घटते क्रम से दिया। परंतु ऊपर जो दिया है वह बहुभाग प्रमाण है और बस आठ वर्ष में कुछ कम इतने ही निषेकों में दिया है इसलिये एक-एक निषेक में बहुत ज्यादा द्रव्य दिया जाता है। इसलिये गुणश्रेणी के अंत में जितना द्रव्य दिया उससे उसके ऊपर के प्रथम निषेक में असंख्यातगुणा द्रव्य आ गया। फिर उसके आगे थोड़ा कम, थोड़ा कम इसतरह से ऊपर घटते क्रम से दिया जायेगा। यह गुणश्रेणीवाला

निषेक नहीं होते हुये भी उसमें असंख्यातगुणा जो द्रव्य मिला है वह बहुभाग में से आया है, वह उपरितन का निषेक है और नीचे गुणश्रेणी में दिया है वह एकभाग में से आया है। इतनी बात यहां ख्याल में आती है ? एकभाग गुणश्रेणी में दिया और उसके ऊपर के प्रथम निषेक में आपको गुणश्रेणी से ज्यादा दिख रहा है - वह ऊपर से आया हुआ माल है। परंतु ऊपर बहुभाग दिया और वह आठ वर्ष में थोड़े कम इतने निषेकों में डिस्ट्रिब्यूट हुआ। इसलिये वहां एक-एक निषेक में बहुत अधिक द्रव्य दिया गया है। इसलिये गुणश्रेणी के अंतिम निषेक में दिये हुये द्रव्य से उपरितन स्थिति के पहले निषेक में दिया हुआ द्रव्य असंख्यातगुणा दिख रहा है। *श्रोता: दो भागों में वह आठ वर्षवाला भाग ?* उसमें वह दे दिया गया, ऊपर में दिये हुये में से उसको मिल गया है।

अब आगे बढ़ेंगे गाथा १३० की टीका- **सम्यक्त्वमोहनीय की अष्ट वर्ष प्रमाण स्थिति करने के समय से लेकर** यानी अभी आठ वर्ष प्रमाण स्थिति की। करने के समय में तो गुणश्रेणी में दिया और उपरितन स्थिति में दिया। अंतिम दो फालि उसमें आकर मिल गयी। यहां तक हमने पढ़ लिया। उस समय से लेकर **ऊपर के सर्व समयों में** यानी इसके पश्चात् **उदयादि अवस्थित गुणश्रेणी आयाम है।** अभी जो अवस्थित गुणश्रेणी आयाम बनाया है यही अवस्थित गुणश्रेणी आयाम कंटिन्युअस रहेगा। अवस्थित क्यों ? क्योंकि अभी नीचे का एक निषेक उदयरूप होकर खिर जायेगा। यह खिर गया तो क्या होगा ? गुणश्रेणी इतनी थी। अब गुणश्रेणी का नीचे का निषेक खिर जायेगा और उपरितन एक निषेक ऊपर से उसमें आ मिलेगा। वह भी उससे असंख्यातगुणा हो जायेगा क्योंकि ऊपर से द्रव्य आ रहा है। गुणश्रेणी में तो एकभाग प्रमाण दिया जायेगा। एक निषेक गल गया जो यहां उपरितन स्थिति का निषेक है वह अभी गुणश्रेणीरूप हो जायेगा और उपरितन में ऊपर से और द्रव्य दिया जायेगा। हर समय यह कार्य चलता रहेगा। एक-एक निषेक गल जायेगा, ऊपर का एक-एक निषेक गुणश्रेणीरूप हो जायेगा इसको कहेंगे अवस्थित गुणश्रेणी आयाम। कब से लेकर ? आठ वर्ष की स्थिति हुयी है तब से लेकर यह ऐसा ही चलेगा इसमें।

श्रोता: यानी वह निषेक लंबा ? लंबा तो होते ही जा रहा है। उससे भी ऊपर का एक निषेक अधिक लंबा है क्योंकि उससे असंख्यातगुणा माल उसको ऊपर से आ रहा है। आठ वर्ष में ही अभी स्थितिकांडकघात होंगे। पहले तो ये दो फालियों का द्रव्य

नीचे आया। अब आठ वर्ष प्रमाण जो स्थिति बाकी रही है उसीके ऊपर के अंतर्मुहूर्त प्रमाण निषेकों में से स्थितिकांडकघात होकर द्रव्य नीचे आता रहेगा और वह भी इसी पद्धति से गुणश्रेणी में और उपरितन स्थिति में दिया जायेगा। इससे आगे प्रोसेस यही चलेगा। कहां तक ? अभी बतायेंगे, अंतिम कांडक तक नहीं कहेंगे। उसके लिये कुछ अलग विशेषता है। **सम्यक्त्वमोहनीय की स्थिति में स्थितिखंड अंतर्मुहूर्त मात्र आयामवाले हैं।** यानी अभी कांडक का जो प्रमाण है वह अंतर्मुहूर्त का होगा। पहले पत्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण बड़ा कांडक होता था। अब आठ वर्ष की स्थिति हुयी, अब यहां से लेकर कांडक का प्रमाण अंतर्मुहूर्त हो गया। **यहां से अब एक-एक स्थितिकांडक द्वारा अंतर्मुहूर्त स्थिति घटाता है।** घटाने के लिये भी अंतर्मुहूर्त लगेगा, परंतु अट अ टाइम बड़ा अंतर्मुहूर्त प्रमाण स्थिति घटायेगा।

अब गाथा १३१ की टीका- जिस समय सम्यक्त्वमोहनीय की अष्ट वर्ष प्रमाण स्थिति अवशेष रखी और मिश्रमोहनीय, सम्यक्त्वमोहनीय के अंत कांडक की दो फालि का पतन हुआ, उसी समय में सम्यक्त्वमोहनीय का अनुभाग पूर्व समय के अनुभाग से अनंतगुणा हीन अवशेष रहता है। क्योंकि जब ये अंतिम दो फालि खिरी यानी वहां के अंतिम स्थितिकांडकघात हुये। कब ? जब आठ वर्ष की स्थिति अवशेष रही, तब जो दो बड़े अंतिम कांडक थे उनकी अंतिम फालियां नीचे आयीं। उसी समय वहां होनेवाला अनुभागकांडकघात भी हुआ। यानी वहां होनेवाला अनुभागकांडकघात और स्थितिकांडकघात एक समय में पूरा हुआ। अभी स्थिति तो घटी ही, अनुभाग भी घटते-घटते यहां विशिष्ट पोझिशन पर आ गया है। अब इसके आगे विशेष क्या होगा ? अभी कांडकरूप से अनुभाग का घात नहीं होगा। सत्ता में जो अनुभाग है वह प्रति समय अनंतगुणा हीन होता चला जायेगा। जब सत्ता का अनुभाग कहते हैं तब सभी निषेकों में जितना उत्कृष्ट अनुभाग है वह सभी अनुभाग घटेगा।

जब हम स्थितिकांडकघात कहते हैं तो ऊपर की स्थिति घटकर निषेक नीचे आते हैं और अनुभाग तो सभी निषेकों में सभी प्रकार के अनुभाग पड़े हैं। एक-एक निषेक में उत्कृष्ट से जघन्य तक अनुभाग हैं। तो हर निषेक का उत्कृष्ट अनुभाग कम होगा। किसी परमाणु में तो ऐसा भी है न, स्थिति भी घट रही है और अनुभाग भी घट रहा है। अट अ टाइम दोनों ही बातें हो रही हैं। परंतु समझाने के लिये हम

अनुभागकांडकघात अलग बताते हैं और स्थितिकांडकघात अलग बताते हैं। ऐसा भी हो सकता है न, कोई उत्कृष्ट अनुभागवाले परमाणु ऊपर के निषेक में रहे और उसी निषेक के कुछ उत्कृष्ट अनुभागवाले परमाणु नीचे के निषेक में आ गये। स्थिति घटी परंतु अनुभाग दोनों का घटा। वह अपने निषेक में स्थित है या नीचे आया है, जहां जो उत्कृष्ट अनुभाग है वह वहां घटेगा। अभी इसके आगे क्या होगा ? प्रत्येक समय में अनुभाग का घटना चालू होगा। इसीको यहां अनुसमयापवर्तन कहा है।

देखो, हम इसको फिर पढ़ेंगे- **सम्यक्त्वमोहनीय के अंत कांडक की द्विचरम फालि के पतन समय तक अर्थात्** अभी आगे डायरेक्ट ब्रैकेट के आगे पढ़ रहे हैं। **अष्ट वर्ष की स्थिति करने के पूर्व समय तक जो लता, दारुरूप द्विस्थानगत अनुभाग है, वह अनुभागकांडकघात से अनंतगुणा हीन हुआ।** द्विस्थान के रहते हुये ही वह अनंतगुणा हीन हो गया है। यहां से लेकर, जो पहले अंतर्मुहूर्त काल द्वारा **अनुभागकांडक का घात होता था, उसका अभाव हुआ।** उसका अभाव हुआ यानी अभी कांडकरूप से घात नहीं होगा। अब एक-एक समय में होगा क्योंकि विशुद्धि भी इतनी बढ़ी है, कांडक का कार्य जो एक अंतर्मुहूर्त में होता था वह अभी एक समय में होने लगा। और प्रति समय अनंतगुणा हीन क्रम से अनुभाग का अपवर्तन होने लगा। वहां अनंतरवर्ती अष्ट वर्ष करने के समय से पूर्व समय में निषेकों का जो अनुभागसत्त्व था, उससे अनंतगुणा हीन अष्ट वर्ष स्थिति करने के समय में उदयावली के उपरवर्ती जो उपरितनावली यानी आवली के ऊपर की दूसरी आवली उसके प्रथम निषेक का अनुभागसत्त्व अवशेष रहता है। अवशेष अनंत बहुभागरूप अनुभाग का विशुद्धता से अपवर्तन हुआ यानी नाश हुआ।

उसी समय में उदयावली के अंत निषेक का अनुभागसत्त्व उस अपने ऊपरवर्ती उपरितनावली के प्रथम निषेक के अनुभागसत्त्व से अनंतगुणा हीन रहता है, अवशेष का नाश होता है। यानी जो उदयावली में प्रवेश कर चुका है, उस निषेक की अपेक्षा उसके ऊपर के निषेक में अभी अनुभाग ज्यादा है और इस उदयावली के निषेक में कम हो गया - अनंतगुणा हीन हो गया है। अष्ट वर्ष करने के समय से लेकर अनंतरवर्ती आगामी समय में अनंतगुणा हीन अनुभागसत्त्व होता है। यही कहना चाहते हैं- हर समय में यह अनुभाग का घटने का कार्य चल रहा है और

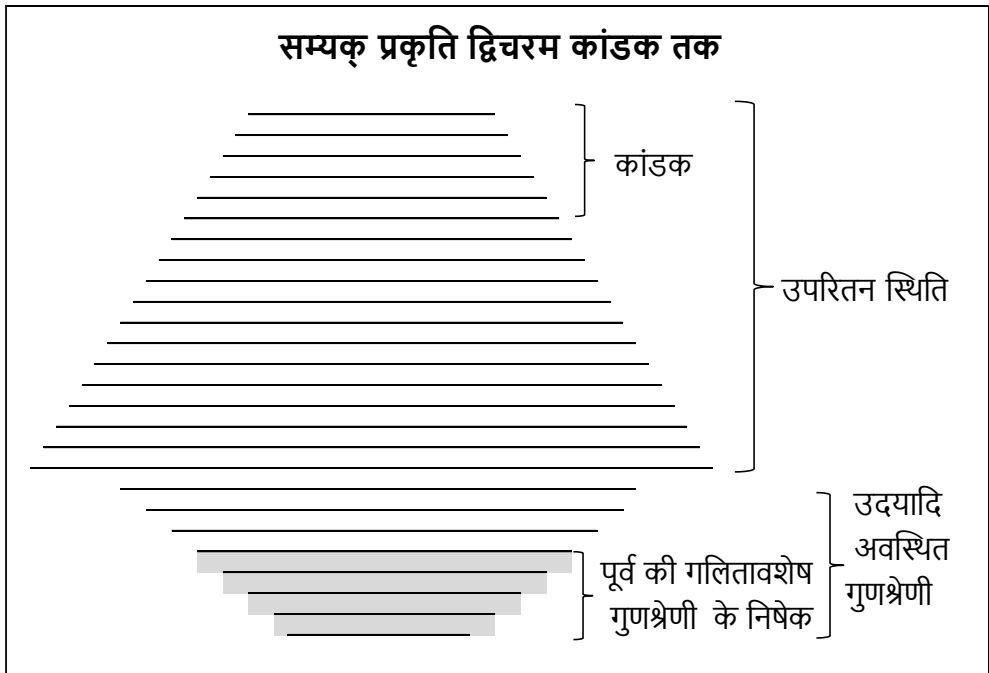
वह अनंतगुणा हीन-अनंतगुणा हीन-अनंतगुणा हीन हो रहा है। गाथा १३२ की टीका-

जैसे अष्ट वर्ष की स्थिति करने के समय में मिश्रमोहनीय और सम्यक्त्वमोहनीय की अंत दो फालियों के द्रव्य को उदयादि अवस्थित गुणश्रेणी आयाम में और उसके ऊपरवर्ती उपरितन स्थिति में देने का विधान पहले कहा, अभी-अभी हमने देखा था- जब अंतिम दो फालि नीचे आयी और आठ वर्ष की स्थिति की, यहां पर भी आठ वर्ष की स्थिति करने के समय में ही उनका द्रव्य कहां दिया ? नीचे अवस्थित गुणश्रेणी और बाकी उपरितन स्थिति - इनमें दिया। तो कहते हैं **वैसे ही उस अष्ट वर्ष की स्थिति करने के समय के पश्चात् भी जो समय हैं उनमें अंतर्मुहूर्त आयामवाले कांडक प्रारंभ हुये।** वहां भी अंतर्मुहूर्त प्रमाण जो कांडक हैं उनका द्रव्य कहां दिया जायेगा ? अवस्थित गुणश्रेणी आयाम में और शेष बची उपरितन स्थिति में।

उनमें प्रथम कांडक की प्रथम फालि के पतनरूप जो प्रथम समय, उससे लेकर द्विचरम कांडक की अंत फालि के पतन समय तक गुणश्रेणी आदि के लिये अपकर्षण किये द्रव्य का और स्थिति घटाने के लिये ग्रहण किये हुये **स्थितिकांडक की फालि के द्रव्य का।** अभी ये जो आठ वर्ष की स्थिति की उसी समय में दो कांडकों का द्रव्य नीचे गुणश्रेणी में और ऊपर ८ वर्ष के शेष निषेकों में दिया। अब आठ वर्ष की स्थिति हुयी। अब अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्तवाले स्थितिकांडकघात चालू हो गये। उसकी पहली फालि कहां दी ? गुणश्रेणी में क्योंकि वह अवस्थित है और शेष बहुभाग में जो ऊपर बचा है। दूसरी फालि, तीसरी फालि ऐसा ही दिया - यह एक कांडक हुआ। फिर इसी पद्धति से दूसरा कांडक - गुणश्रेणी में और ऊपर। फिर तीसरा कांडक, चौथा कांडक, पांचवां कांडक। कहते हैं ऐसा लास्टवाले कांडक की बात मत करो, उसके पहले कांडक तक तो ऐसा ही होगा। इसको कहते हैं द्विचरम कांडक तक यही बात होगी।

अंतिम कांडक की विशेषता है, अंतिम कांडक कितना बड़ा ग्रहण करना ? उसकी बात अभी समझायेंगे। द्विचरम कांडक तक तो कोई बात नहीं थी क्योंकि वहां तक गुणश्रेणी नीचे ही थी और उसके ऊपर कांडक के नीचे कुछ स्थिति शेष थी यानी द्विचरम कांडक होने तक तो कोई आपत्ति नहीं आयी। अंतिम कांडक के समय पूरी गुणश्रेणी शेष नहीं रख सकते। अब गुणश्रेणी का ऊपर का कितना ही भाग

कांडकरूप से ग्रहण करना पड़ेगा। इसलिये अंतिम कांडक की बात अलग से बता रहे हैं। अभी तक गुणश्रेणी कितनी थी ? बहुत लंबी थी और अवस्थित थी। उस अवस्थित गुणश्रेणी को कायम रखते हुये उसमें ऊपर से जो कांडक होते थे उनका द्रव्य दिया जाता था। आठ वर्ष की स्थिति होने के पहले समय से लेकर यही बात हो रही थी। चार्ट में देखो, नीचे यह अवस्थित गुणश्रेणी आयाम इतना है, जो आठ वर्ष की स्थिति होने के समय में किया था। यह अवस्थित गुणश्रेणी हुयी थी उसके पहले वह गलितावशेष गुणश्रेणी थी न।



जब आठ वर्ष की स्थिति बनायी थी तब तो दोनों समान थे। जो पहले गलितावशेष थी उसीमें उदय के समय से लेकर उन्होंने उसको अवस्थित बनायी थी। परंतु उस गलितावशेष के जो निषेक पूर्व में थे उसके बाद कुछ काल बीत गया। अवस्थित की अवस्थित रही और वह पहलेवाली अगर हम उसको थोड़ा ख्याल करेंगे तो वह कहां तक रह गयी ? नीचे से गलते-गलते उसके निषेक नीचे चले गये। जो गलितावशेष थी न, उसके निषेकों को हमने चार्ट में डार्क बताया है। यह पहलेवाली गुणश्रेणी की बात है, उसके ये निषेक थे। उसके बाद क्या होता गया ? अवस्थित होने

के कारण वह जितनी थी उतनी बनी रही। परंतु पहलेवाले निषेक तो नीचे-नीचे गये और ऊपर-ऊपर के निषेक गुणश्रेणी में आये। जब आठ वर्ष शेष रहे थे तब जो गलितावशेष बाकी रही थी उसीको उदयावली के साथ अवस्थित बनायी थी। ओरिजिनल जो गलितावशेष थी वह तो नीचे-नीचे आ गयी और ऊपर के नये निषेक अवस्थित गुणश्रेणी में आकर वह उतनी की उतनी रही। यह समझ में आयी बात ?

पहले अवस्थित और गलितावशेष सेम थी। अब इतने समय बीत गये तो यहां ऊपर-ऊपर से एक-एक निषेक उसमें आता गया। परंतु अगर हम ओरिजिनल का ख्याल करेंगे तो जो निषेक गलितावशेष में थे वे तो नीचे से गलने के कारण नीचे तक आ गये। अवस्थितवाली गुणश्रेणी थी उतनी कायम है और गलितावशेष नीचे तक पहुंच गयी है। चार्ट में जो डार्क बताये हैं वे गलितावशेष के निषेक हैं और उनके सहित ऊपर तक अवस्थित गुणश्रेणी है। अभी तक क्या हो रहा था ? द्विचरम कांडक तक कांडक का द्रव्य अवस्थित गुणश्रेणी में और कांडक के नीचे उपरितन स्थिति में देते थे। अभी अंतिम कांडक कितना बड़ा होगा उसकी बात यहां कर रहे हैं।

श्रोता: आठ वर्ष की स्थिति बनी और अभी जो अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्त कांडक हो रहे हैं क्या वे सारे समान हैं ? नहीं, छोटे होते चले जायेंगे। द्विचरम तक छोटे होंगे परंतु अंतिम कांडक बहुत बड़ा होगा। इनका प्रश्न ऐसा है कि आठ वर्ष की स्थिति बनी और अभी जो अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्त कांडक हो रहे हैं क्या वे सारे समान हैं ? तो कहते हैं पहले से दूसरा छोटा, दूसरे से तीसरा छोटा, तीसरे से चौथा छोटा - द्विचरम तक ऐसा होगा परंतु अंतिम कांडक बड़ा होगा। द्विचरम कांडक से वह संख्यातगुणा हो जायेगा। कौनसा छोटा है, कौनसा बड़ा है इसके सब अल्पबहुत्व अलग से बतायें हैं। ये अंतिम कांडक कितना बड़ा और कैसे ग्रहण करना उसकी बात पृष्ठ ११० पर बता रहे हैं।

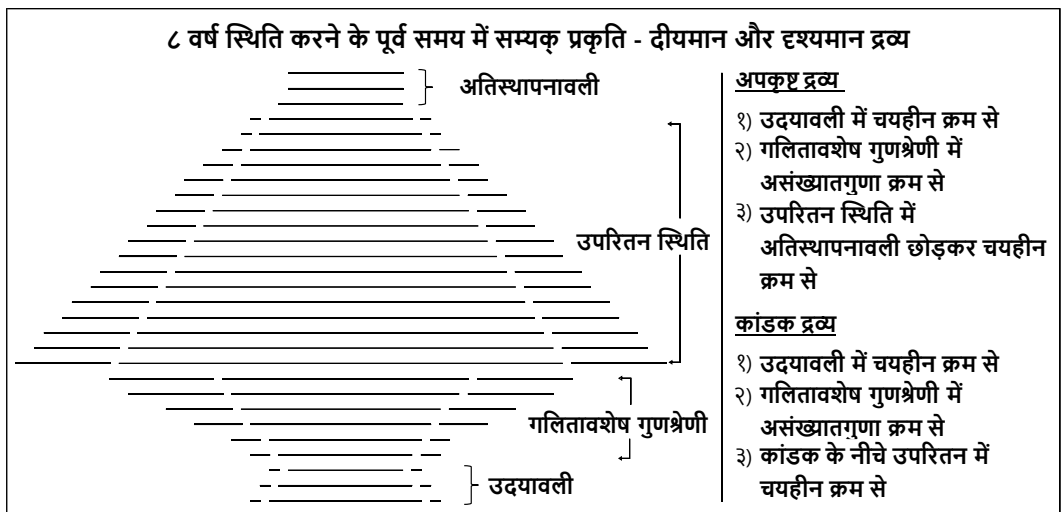
प्रथम कांडक की प्रथम फालि के पतनरूप जो प्रथम समय, उससे लेकर द्विचरम कांडक की अंत फालि के पतन समय तक गुणश्रेणी आदि के लिये यानी गुणश्रेणी और उपरितन स्थिति में, अपकर्षण किये द्रव्य का और स्थिति घटाने के लिये ग्रहण किये हुये स्थितिकांडक की फालि के द्रव्य का उदयादि अवस्थित गुणश्रेणी आयाम में असंख्यातगुणा क्रम युक्त और अंतर्मुहूर्त कम अष्ट वर्ष प्रमाण उपरितन स्थिति में चय घटते क्रम से निक्षेपण होता है। अपकृष्ट द्रव्य और कांडक

का द्रव्य इसी पद्धति से दिया जायेगा - अवस्थित गुणश्रेणी में और शेष बची हुयी उपरितन स्थिति में। गुणश्रेणी में गुणित प्रमाण से और उपरितन में चय घटते क्रम से। कहते हैं अब यहां स्पष्ट अर्थ जानने के लिये अष्ट वर्ष करने के समय से पूर्व समय में और अष्ट वर्ष करने के समय में और आगामी समयों में होनेवाला विधान कहते हैं। पहले क्या हो रहा था, अब उस समय क्या होगा और बाद में क्या होगा ? यह फिर दुबारा रिपीट करेंगे। आप कहेंगे दो फालि का पतन हो चुका है, फिर दुबारा क्यों कह रहे हैं। इसे और स्पष्ट करने के लिये दुबारा बतायेंगे।

देखो १११ पृष्ठ पर गाथा १३३ की टीका- **अष्ट वर्ष स्थिति करने के समय से अनंतरपूर्व समय में** अनंतरपूर्व यानी इमीजिएट प्रायर समय, अनंतर शब्द पश्चात् के लिये भी आता है और पूर्व के लिये भी आता है। यहां उन्होंने अनंतरपूर्व कह दिया। **मिश्रमोहनीय और सम्यक्त्वमोहनीय की द्विचरम फालि का पतन होता है।** उस समय में गुणसंक्रमण काल के प्रथम समय से लेकर असंख्यातगुणा क्रम से गुणसंक्रमण द्रव्य होने पर सम्यक्त्वमोहनीय का जो सत्त्वद्रव्य पाया जाता है, अब वह सूत्र के विधान से हम सूत्र को छोड़ देंगे। **वहां स्थिति में पाये जानेवाली नानागुणहानियों के निषेकों में पाया जाता है।** आठ वर्ष की स्थिति होने की पूर्व की अवस्था को बता रहे हैं। तब क्या हो रहा था ? मिश्रमोहनीय के और सम्यक्त्वमोहनीय के स्थितिकांडकघात हो रहे थे। उनमें कितना द्रव्य था और कितने निषेक थे ? उनमें हमेशा जो निषेक रचना होती है और डेढ़ गुणहानि से गुणित समयप्रबद्ध वगैरह-वगैरह इतना द्रव्य वहां होता है। वहां नानागुणहानियों में वह द्रव्य पाया जाता है, चय घटते हुये गोपुच्छाकार के रूप में वहां उसका सारा द्रव्य विद्यमान है।

उस समय में उस द्रव्य को अपकर्षण भागहार का भाग देकर एकभाग मात्र द्रव्य अपकर्षण किया, उसको पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर बहुभाग तो उपरितन स्थिति में निक्षेपण करता है। वहां जिसका द्रव्य अपकर्षण किया उस निषेक के द्रव्य को उस निषेक के नीचे अतिस्थापनावली छोड़कर बाकी निषेकों में चय घटते क्रम से देना है इस विधान से दे देना। अवशेष एकभाग को पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर वहां बहुभाग गुणश्रेणी आयाम में देना और एकभाग उदयावली में देना। यह हमने देखा था- उदयावली में, गुणश्रेणी

में और शेष उपरितन स्थिति में। यहां अपकर्षणादि होने के पश्चात् विवक्षित जिन निषेकों में देना हो उन सत्तारूप पूर्व निषेकों में जो द्रव्य पाया जाता है, उसे सत्त्वद्रव्य कहते हैं। वहां के अपने-अपने जो ओरिजिनल निषेक हैं उसको कहेंगे सत्त्वद्रव्य तथा अपकर्षणादि किया हुआ जो नवीन द्रव्य वहां मिलाया, उसे दीयमानद्रव्य कहते हैं यानी दिया हुआ द्रव्य। एक अपना ओरिजिनल द्रव्य और उसमें ऑडिशनल जो एक्स्ट्रा दिया वह दिया हुआ द्रव्य उसे कहेंगे दीयमानद्रव्य। इन दोनों को मिलाकर जो देखने में आये द्रव्य का प्रमाण उसे दृश्यमानद्रव्य कहते हैं। हम देखते हैं यहां ओरिजिनल द्रव्य जो कोई अपना-अपना निषेक है और उसमें जो हम आपको दोनों बाजू में ऑडिशनल दिखा रहे वह दीयमानद्रव्य और जो फायनल रिझल्ट दिखेगा वह दृश्यमानद्रव्य। ऐसे तीन शब्द आते हैं इसमें।



यहां उदयावली में तो दीयमानद्रव्य पूर्व सत्त्वद्रव्य के असंख्यातवें भागमात्र है। जितना निषेक था न उदयावली का, उसका असंख्यातवां भाग मात्र उसमें एक्स्ट्रा दे दिया क्योंकि निषेक ही इतने बड़े-बड़े हैं कि अपकर्षण किया हुआ इतना द्रव्य देने पर भी ओरिजिनल निषेक का असंख्यातवां भाग है। उससे साधिक सत्त्वद्रव्य मात्र दृश्यमानद्रव्य वहां जानना। बस इतनी ही बात है। परंतु गुणश्रेणी आयाम में दीयमानद्रव्य पूर्व सत्त्वद्रव्य से असंख्यातगुणा है। देखो, उदयावली के निषेक हैं, गुणश्रेणी के निषेक तो उससे भी बड़े हैं। जितना उदयावली में दिया। कितना

दिया ? ओरिजिनल निषेक का असंख्यातवां भाग और गुणश्रेणी में कितना दिया ? वहां के निषेक बड़े हैं, फिर भी ओरिजिनल निषेक से असंख्यातगुणा। यानी गुणश्रेणी जहां-जहां होती है वहां बहुत अधिक द्रव्य दिया जाता है और जब वे निषेक नीचे आते हैं, उदयरूप होकर खिर जाते हैं तो उसको हम कहेंगे गुणश्रेणी निर्जरा होती रहती है। अधिक मात्रा में द्रव्य खिर जाता है। अब इसको थोड़ा गौण करके आगे बढ़ेंगे।

देखो, ११२ पृष्ठ पर दूसरा पैरेग्राफ- **उसके अनंतरवर्ती अष्ट वर्ष प्रमाण स्थिति करने के समय में** ये स्थिति करने के पूर्व समय में क्या हुआ वह बता चुके। जब आठ वर्ष की स्थिति होती है, हमने देखा दोनों ही प्रकृतियों की अंतिम दो फालियां आठ वर्ष में आकर मिलती हैं। उस समय में **मिश्रमोहनीय और सम्यक्त्वमोहनीय की अंत दो फालियों का द्रव्य, अष्ट वर्ष के जितने समय उतने सम्यक्त्वमोहनीय के निषेकों के द्रव्य से हीन ऐसे किंचित कम डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध मात्र है।** इसको भी पहले हमने देखा था कि दर्शनमोहनीय का मॅक्झिमम द्रव्य इन दो फालिरूप से पड़ा हुआ है। अभी उन दो फालियों का द्रव्य किसमें दिया जायेगा ? अवस्थित गुणश्रेणी आयाम में और उपरितन स्थिति में यानी आठ वर्ष में आकर मिलनेवाला है। ये हमने पढ़ी हुयी बात दुबारा रिपीट कर रहे हैं। अभी आगे-

पुनश्च उसके अनंतरवर्ती जो अष्ट वर्ष स्थिति करने का द्वितीय समय, इसका अर्थ है आठ वर्ष की स्थिति जब बनायी तब अंतिम दो फालियों का द्रव्य उसमें आ मिला। अब आठ वर्ष हो गये। अब नेक्स्ट समय में क्या होगा ? अब यहां पर अंतर्मुहूर्त प्रमाण आयामवाले स्थितिकांडकघात चालू हो जायेंगे। **उसमें सर्व सम्यक्त्वमोहनीय के द्रव्य को अपकर्षण भागहार का भाग देकर वहां एकभाग ग्रहण कर, उसको पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर वहां एकभाग तो उदयरूप प्रथम समय से लेकर अष्ट वर्ष करने के समय जो गुणश्रेणी आयाम था उसके शीर्ष तक** क्या कहा ? आठ वर्ष की जब स्थिति बनायी थी तब अवस्थित गुणश्रेणी बनायी थी उसमें उसको दे दिया जायेगा। उदय के समय से लेकर यहां तक क्योंकि यह गुणश्रेणी कौनसी थी ? पहलेवाली ही थी जो गलितावशेषरूप से चली आ रही थी, उसीको अभी अवस्थित बनायी है। वहां तो उदयावली भिन्न थी। अब उदय के समय से लेकर वह जो गलितावशेष गुणश्रेणी थी, उसके टॉप तक जिसको

गुणश्रेणीशीर्ष कहेंगे वहां तक गुणश्रेणीरूप से दिया। यह बात ख्याल में आयी न ?

आठ वर्ष हो गये तभी पूर्ववाली जो गलितावशेष गुणश्रेणी थी उसीको अभी अवस्थितरूप से किया। यह अवस्थितवाली अवस्थित रहेगी, उसका एक-एक निषेक ऊपर से आयेगा और पूर्ववाले निषेक नीचे-नीचे चले जायेंगे, जो हमने यहां चार्ट में नीचे डार्क बताये हैं। कहते हैं कि एकभाग तो अवस्थित गुणश्रेणी आयाम के शीर्ष तक और पश्चात् अभी एक समय व्यतीत हुआ, इसलिये उपरितन स्थिति का एक निषेक उस गुणश्रेणी में आयेगा, उसमें भी असंख्यातगुणा क्रम से दे दिया और बहुभाग बाकी जो शेष है उसमें चय घटते क्रम से दिया। इस पॅरेग्राफ में यही बात बतायी। अब नीचे के पॅरेग्राफ में- **इसी समय में अंतर्मुहूर्त मात्र स्थितिकांडक आयाम के निषेकों के द्रव्य को पीठबंध में बताये हुये प्रमाणवाला जो अधःप्रवृत्त भागहार, उसका भाग देकर** पहले जो ऊपर के पॅरेग्राफ में बताया था वह तो अपकर्षण के द्रव्य का प्रमाण बताया। वह तो सर्व निषेकों में से अपकर्षण होता है और अतिस्थापनावली छोड़कर सर्वत्र दिया जायेगा और कांडकघात ? ऊपर के अंतर्मुहूर्त प्रमाण निषेकों का कांडक बनेगा और उसके द्रव्य को उस भागहार का भाग देकर एकभाग प्रमाण प्रथम फालि, दूसरी फालि, तीसरी फालि वह भी इसी पद्धति से असंख्यात गुणा प्रमाण में नीचे आयेगा। वह भी गुणश्रेणी में और उपरितन में दिया जायेगा। वह कांडक के नीचे सर्वत्र दिया जायेगा। पहले जो अपकर्षण द्रव्य दिया था उसीके साथ फालि द्रव्य भी वहां मिलेगा - गुणश्रेणी में और उपरितन शेष आठ वर्ष में।

अब पृष्ठ ११३ पर दूसरा पॅरेग्राफ- **इसीतरह सम्यक्त्वमोहनीय के अष्ट वर्ष स्थिति करने के तीसरे समय से लेकर प्रथम कांडक की द्विचरम फालि के पतन समय तक प्रति समय असंख्यातगुणा क्रम से अपकृष्टद्रव्य और फालिद्रव्य** क्योंकि दोनों ही चीजें अँट अ टाइम चल रही हैं- अपकर्षण भी हो रहा है और स्थितिकांडकघात भी हो रहा है। स्थितिकांडकघात होता है तो उसके एक-एक फालि का द्रव्य कहेंगे और अपकर्षण होने के लिये अपकृष्ट द्रव्य कहेंगे। वह कहां चला जाता है ? गुणश्रेणी में और उपरितन स्थिति में। अंतिम फालि को क्यों छोड़ा ? क्योंकि अब तक जितना था उससे भी बहुत अधिक द्रव्य एक-एक कांडक के अंतिम फालि में होगा। इसलिये यहां उसका प्रमाण अलग से बता रहे हैं। इसी पॅरेग्राफ में नीचे से

दूसरी लाइन- कांडककाल के अंत समय में अंत फालि का पतन होता है। उसके द्रव्य का प्रमाण लाते हैं।

अब इसमें क्या प्रमाण लानेवाले हैं ? आठ वर्ष की स्थिति है और उसमें हम अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्त प्रमाणवाला एक-एक कांडक बनायेंगे। तो एक कांडक में कितना द्रव्य आयेगा ? आठ वर्ष में अभी मॅक्झिमम द्रव्य है, पूरा ही सत्त्वद्रव्य आठ वर्ष में है और एक अंतर्मुहूर्त आठ वर्ष के संख्यातवें भाग प्रमाण है। एक-एक फालि खिर गयी। इतनी सारी फालि खिरी फिर भी असंख्यातवें भाग प्रमाण द्रव्य चला गया। जितना एक कांडक में द्रव्य है उसका मॅक्झिमम द्रव्य अंतिम फालि में है। यहां इतना ही प्रूव करेंगे कि पूरा सत्त्वद्रव्य आठ वर्ष प्रमाण निषेकों में है। तो किसी भी कांडक के अंतिम फालि में उसके संख्यातवें भाग प्रमाण द्रव्य है। इतनी बात यहां बतायेंगे इस पूरे पॅरेग्राफ में। क्या कहनेवाले हैं यहां पर ? पूरा द्रव्य आठ वर्ष प्रमाण स्थिति में है, तो अंतर्मुहूर्त उसका कितना भाग है ? संख्यातवां भाग है। तो एक कांडक में संख्यातवें भागप्रमाण द्रव्य है। उसकी इतनी फालि खिर गयी फिर भी असंख्यातवें भाग प्रमाण द्रव्य चला गया और मॅक्झिमम द्रव्य अंतिम फालि में है। इसलिये जितना सत्त्वद्रव्य है उसका संख्यातवां भाग द्रव्य अंतिम फालि में है। वह अधिक मात्रा में दिया जायेगा।

जब अंतिम फालि खिरेगी तब बहुत अधिक द्रव्य दिया जायेगा बस इतनी बात इस पॅरेग्राफ में बतायी है। अब आगे पृष्ठ ११४ पर गाथा के ऊपर की लास्ट दो लाइनें- **अंत फालि का द्रव्य संख्यातवें भाग मात्र है** लिखा न, **क्योंकि सर्वद्रव्य को कांडक प्रमाण मात्र संख्यात का भाग देकर किंचित कम करने पर अंत फालि का द्रव्य होता है।** यही बात बतायी है कि आठ वर्ष की स्थिति होने के बाद एक-एक अंतर्मुहूर्त प्रमाण कांडकों की जब-जब अंतिम फालि खिरेगी तब-तब उसका द्रव्य कितना है ? पूरे द्रव्य का संख्यातवां भाग है। इतनी बात यहां आ गयी।

अब आगे गाथा १३४ की टीका- **सम्यक्त्वमोहनीय के अष्ट वर्ष प्रमाण स्थिति के अंतर्मुहूर्त मात्र आयामवाले स्थितिकांडक का अष्ट वर्ष करने के दूसरे समय में प्रारंभ किये हुये स्थितिकांडकोत्करण का काल यथासंभव अंतर्मुहूर्त मात्र है।** अंतर्मुहूर्त में ही वह कार्य पूरा होता है। कांडकायाम का प्रमाण भी अंतर्मुहूर्त प्रमाण निषेक हैं और वह कांडकघात होने के लिये भी अंतर्मुहूर्त प्रमाण काल लगता है। अभी

वह छोटा बड़ा प्रमाण समझ लेना। अब पृष्ठ ११५ पर- **गुणश्रेणी आयाम के अंत निषेक को यहां गुणश्रेणीशीर्ष कहते हैं।** हमने देखा था, प्रथमोपशम के लिये जब गुणश्रेणी बनी थी वहां अनेक निषेकों को गुणश्रेणीशीर्ष कहा था। यहां एक निषेक को गुणश्रेणीशीर्ष कह रहे हैं। **क्योंकि गुण जो असंख्यात का गुणकार, उसकी श्रेणी अर्थात् पंक्ति, उसका शीर्ष अर्थात् अग्रभाग-** टॉप मोस्ट ऊपर का उसे गुणश्रेणीशीर्ष कहते हैं। वहां अष्ट वर्ष करने के समय में वहां गुणश्रेणी का शीर्ष अर्थात् अवस्थित गुणश्रेणी आयाम में उपरितन स्थिति का एक निषेक मिलाया था, वह जानना।

आठ वर्ष किये उस समय जो गुणश्रेणी थी वह पहलेवाली गुणश्रेणी एक समय नीचे आयी। इसका एक समय गल गया है, अभी उपरितन का एक निषेक गुणश्रेणी में आया। यानी इसका शीर्ष बदलते चला जायेगा। पहलेवाली जो गलितावशेष का शीर्ष है वह नीचे-नीचे आता चला जायेगा और यह नवीन गुणश्रेणी जो अवस्थित बनी है उसमें ऊपर-ऊपर का एक निषेक शीर्ष रूप से वहां आयेगा, उपरितन का एक-एक निषेक शीर्ष बनेगा। यानी अवस्थित गुणश्रेणी का शीर्ष हर समय नया-नया होता है क्योंकि ऊपर का एक-एक निषेक उसमें आ मिलता है। पूर्व की गलितावशेष गुणश्रेणी के निषेक नीचे-नीचे जायेंगे जो हमने चार्ट में डार्क बताये हैं।

देखो इसको पढ़ेंगे- **उसके** यानी ऊपर का एक निषेक जो अभी नीचे आकर गुणश्रेणी का शीर्ष बना है उसमें **पूर्व सत्त्वद्रव्य और निक्षेपण किये हुये द्रव्य को मिलानेपर दृश्यमानद्रव्य का जो प्रमाण है, वह इसके अनंतरपूर्व समय संबंधी गुणश्रेणीशीर्ष के दृश्यमानद्रव्य से असंख्यातगुणा है।** जो नया-नया गुणश्रेणीशीर्ष बनेगा उसमें पूर्व समय के शीर्ष से दृश्यमानद्रव्य असंख्यातगुणा होगा। उस गुणश्रेणीशीर्ष से भी उपरितन का एक निषेक बड़ा दिखेगा। जब वह शीर्ष में आयेगा तब उसका ऊपर का निषेक भी वैसा ही दिखेगा। इसतरह से कितना द्रव्य दिया जाता है बस इतनी ही चर्चा है। अब जो अंतिम कांडक होनेवाला है और उसमें क्या ग्रहण किया जायेगा उसकी चर्चा थोड़ी देर के बाद करेंगे। अभी यहीं रुकते हैं।

बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

२७. सम्यक् प्रकृति का अंतिम कांडकघात

आचार्य श्री नेमिचन्द्र सिद्धांतचक्रवर्ती ने इस लब्धिसार ग्रंथ की रचना की है। उसीके आधार से पं. टोडरमलजी ने सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका लब्धिसार-क्षपणासार भाषाटीका ढूंढ़ारी भाषा में लिखी है। अब हम उसका हिंदी अनुवाद यहां देख रहे हैं। अपनी क्षायिक सम्यक्त्व की प्ररूपणा चल रही है।

हमने देखा पहले में पहले तीन करणों के द्वारा अनंतानुबंधी की विसंयोजना होती है। फिर एक अंतर्मुहूर्त में फिर दुबारा तीन करण होते हैं - मिथ्यात्व का द्रव्य सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक् प्रकृतिरूप होता रहता है। अधःकरण में तो विशुद्धि बढ़ती है। अपूर्वकरण से गुणश्रेणी, गुणसंक्रमण, स्थितिकांडकघात, अनुभागकांडकघात होते रहते हैं। पहले में पहले दर्शनमोहनीय के मिथ्यात्व प्रकृति की सत्ता घटती जाती है। पहले मिथ्यात्व प्रकृति नष्ट हो जाती है। उसके सत्ता के हमने चार पर्व देखे थे। अपूर्वकरण में स्थितिसत्त्व घटकर अनिवृत्तिकरण के शुरुआत में स्थिति पृथक्त्व लक्ष सागर होती है। घटते-घटते-घटते-घटते पल्य तक पहुंचती है। फिर घटते-घटते दूरापकृष्टि और फिर बाद में उच्छिष्टावली। मिथ्यात्व नष्ट होने के बाद सम्यग्मिथ्यात्व का गुणसंक्रमण होकर वह सम्यक् प्रकृतिरूप होती है। उन दोनों ही में स्थितिकांडकघात होते रहते हैं। सम्यग्मिथ्यात्व की स्थिति जल्दी घट जाती है और सम्यग्मिथ्यात्व की अंतिम फालि और सम्यक् प्रकृति की पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण अंतिम फालि ये दोनों ही गिरकर सम्यक् प्रकृति के आठ वर्ष प्रमाण स्थिति में आ मिलती हैं। सम्यक् प्रकृति में बाद में भी कांडकघात होंगे परंतु वे छोटे होंगे।

अपूर्वकरण के प्रथम समय में जो गुणश्रेणी का आयाम बनाया था वह अब तक गलितावशेष था। वह गलते-गलते-गलते जितना अवशेष रहा है अब यहां उसीको अवस्थित गुणश्रेणी आयाम बनाया जायेगा। यह गलितावशेष गुणश्रेणी जो ओरिजिनल थी वह नीचे-नीचे जायेगी परंतु यहां जो अवस्थित बनी है उसमें ऊपर से एक-एक निषेक आता रहेगा। यहां दो प्रकार से द्रव्य नीचे आयेगा - एक अपकृष्ट द्रव्य और दूसरा फालिद्रव्य। अपकृष्ट द्रव्य और फालिद्रव्य दोनों ही कहां दिया जायेगा ? कांडक का द्रव्य तो उदय के समय से अभी बनी हुयी अवस्थित गुणश्रेणी में और ऊपर कांडक के नीचे बची हुयी शेष स्थिति में दिया जायेगा। अपकृष्ट द्रव्य अवस्थित गुणश्रेणी में और

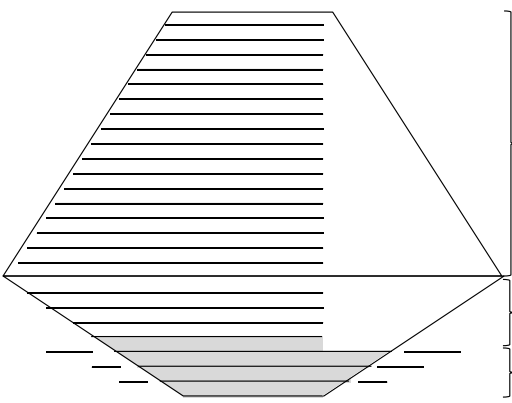
उपरितन स्थिति में अतिस्थापनावली बिना सर्वत्र दिया जायेगा। यहां अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्त आयामवाले कांडक होते चले जायेंगे और उनमें हर कांडक का द्रव्य इसीतरह से नीचे दिया जायेगा। द्विचरम कांडक तक तो ऐसा ही होगा। अंतिम कांडक की कुछ विशेषता है जो यहां बताने जा रहे हैं। अंतिम कांडकघात के बाद जो काल बचेगा उसको हम कृतकृत्यवेदक काल कहेंगे। हमने क्या देखा था ? द्विचरम कांडक के अंत समय तक वही प्रोसेस होता रहा। नीचे जो गुणश्रेणी बनी वह उतनी की उतनी रही उसको अवस्थित गुणश्रेणी आयाम कहेंगे। द्विचरम कांडक के अंत समय तक यानी अभी अंतिम कांडक को छोड़ो उसके पूर्व तक यही बात होती रही। अब अंतिम कांडक कितना ग्रहण करेंगे उसकी बात है। अभी तक क्या हो रहा था ?

अभी तक नीचे अवस्थित गुणश्रेणी आयाम और उसके ऊपर उपरितन स्थिति जिसमें अंतर्मुहूर्त प्रमाण निषेक छोड़कर ऊपर कांडकायाम होता था, अब अंतिम कांडक कितना बड़ा ग्रहण करेंगे ? उसकी बात चल रही है। अभी तक हमने देखा नीचे अवस्थित गुणश्रेणी आयाम है और उसके ऊपर आठ वर्ष में से जितनी स्थिति शेष बची उतनी है। द्विचरम कांडक का द्रव्य कहां-कहां दिया गया ? गुणश्रेणी में दिया और कांडक के नीचे उपरितन स्थिति में दिया। इसतरह से द्विचरम कांडक की भी अंतिम फालि खिर गयी। अब अंतिम कांडक ग्रहण करने का समय आ गया है। अंतिम कांडक कितना बड़ा होगा ? उसका यह वर्णन हम पढ़ेंगे। फिर मैं दुबारा यहां बोर्ड पर समझाऊंगी। *श्रोता: पीठबंध यह जो शब्द आया है उसका अर्थ क्या है ?* पीठबंध यानी लब्धिसार की भूमिका। पहले हमने सामान्य से जो वर्णन देखा था उसकी बात है।

यहां क्या विशेषता होती है उसको अंतिम कांडक के विधान में बता रहे हैं, पृष्ठ संख्या ११७, १३९ नंबर की गाथा की टीका- **अष्ट वर्ष स्थिति करने के प्रथम समय से लेकर यहां द्विचरम कांडक के अंत समय तक जो अवस्थित गुणश्रेणी आयाम है उसको संख्यात का भाग देकर वहां बहुभाग का जो प्रमाण एक बात और अपूर्वकरण के प्रथम समय से लेकर आठ वर्ष की स्थिति करने के समय से पूर्व समय तक जो गलितावशेष गुणश्रेणी आयाम था उसमें जो अनिवृत्तिकरण काल का संख्यातवां भाग मात्र गुणश्रेणीशीर्ष कहा उसको संख्यात का भाग देकर एकभाग का जो प्रमाण दूसरी बात और अवस्थित गुणश्रेणी के अंत निषेकरूप**

जो शीर्ष उसके उपरवर्ती निषेकरूप उपरितन स्थिति में से द्विचरम कांडक में जिन निषेकों का अभाव किया उनके नीचे जो निषेक अवस्थित गुणश्रेणी आयाम के बहुभाग से संख्यातगुणा अवशेष रहे। यह तीसरी बात। इसतरह अवस्थित गुणश्रेणी आयाम का संख्यात बहुभाग और गलितावशेष गुणश्रेणी का संख्यातवां भाग और उपरितन स्थिति के अवशेष निषेक इन तीनों का जोड़ देने पर जो प्रमाण हो, वही अंत कांडकायाम का प्रमाण है। देखो, कुछ नहीं समझे न ? हां !

द्विचरम कांडक समाप्त हुआ तो कितना शेष है ? पूरी अवस्थित गुणश्रेणी और उपरितन निषेक इतना शेष रह गया है। अब अंतिम कांडक कितना ग्रहण करना ? कहां तक अंतिम कांडक बनाना ? उसके नीचे जो शेष रह जायेगा उसमें कांडक का द्रव्य दिया जायेगा। पहले क्या बताया ? अवस्थित गुणश्रेणी आयाम है उसका संख्यात बहुभाग चार्ट देखना, नीचे से लेकर यहां तक यानी पर्व नं १ और २ अवस्थित गुणश्रेणी आयाम है। उसमें से नीचे का पर्व नं १ छोड़ो, तो यहां से यहां तक यानी पर्व नं २ क्या होगा ? उसमें से डार्क भाग छोड़ो तो ऊपर अवस्थित गुणश्रेणी आयाम का संख्यात बहुभाग है। संख्यातवां भाग नीचे छोड़ा, ऊपर का संख्यात बहुभाग। एक बात हुयी।

सम्यक् प्रकृति का अंतिम कांडक आयाम, तीन पर्व	
	(१) अंतिम कांडकघात के समय नयी बनी हुयी उदयादि गलितावशेष गुणश्रेणी।
	(१+२) अभी तक की अवस्थित गुणश्रेणी। उसमें से डार्क निषेक → पूर्व की गलितावशेष गुणश्रेणी के शेष निषेक जो अवस्थित गुणश्रेणीरूप हुये हैं।
	(२+३) अंतिम कांडक का आयाम। अंतिम कांडक के फालियों का द्रव्य मात्र पर्व १ में जायेगा। उदयावली के ऊपर का अपकृष्ट द्रव्य उदय समय से लेकर ऊपर अतिस्थापनावली छोड़कर सर्वत्र पर्व १, २ और ३ में जायेगा।

अब दूसरी बात देखेंगे। पहले गलितावशेष गुणश्रेणी बनायी थी, अब इतनी बची है उसको डार्क किया है। उसमें से ऊपर के ये निषेक पर्व नं १ के ऊपर डार्क बतायें हैं वे कांडक में चले जायेंगे, नीचे के ये निषेक पर्व नं १ में रहेंगे। गलितावशेष की अपेक्षा

बात करेंगे तो उसका संख्यातवां भाग - यह हुयी दूसरी बात। गुणश्रेणी में से क्या लिया उसको बताया। अब तीसरी बात- इसके ऊपर इससे भी संख्यातगुणा उपरितन स्थिति बाकी थी वह सब यानी ये तीनों बातें मिलकर अंतिम कांडकरूप से ग्रहण किया। जो पूर्व की बची हुयी गलितावशेष गुणश्रेणी यहां डार्क बतायी है, उसका संख्यातवां भाग लिया। गलितावशेष का नाम नहीं लेते तो भी इतने ही निषेक थे। परंतु पूर्व में बनी थी वह नीचे गलते-गलते इतनी बाकी है। उसकी अपेक्षा बात करेंगे तो उसका संख्यातवां भाग ले लिया। किसमें ? कांडक में। उसको दूसरी बात कहा था। अंतिम कांडकघात होने के बाद में जो नीचे निषेक रहेंगे उसको हम कृतकृत्यवेदक काल कहेंगे।

अभी इस पोज़िशन पर क्या बात होगी ? यहां से लेकर ऊपर का यानी पर्व नं २ और ऊपर जितना बाकी है वह सब यानी पर्व नं ३ मिलकर अंतिम कांडक है। उसकी पहली फालि नीचे आयेगी, दूसरी आयेगी, तीसरी आयेगी तो यहां तक का ऊपर के कांडकप्रमाण निषेकों का अभाव हो जायेगा। कांडकघात हो जायेगा और नीचे इतने ही निषेक शेष रहेंगे। इसको कांडकरूप से ग्रहण किया है तब इसमें से अपकर्षण भी हो रहा है। अब जो द्रव्य कांडकरूप से नष्ट होनेवाला है वह दुबारा कांडक प्रमाण निषेकों में नहीं दिया जायेगा। यहां कांडक का द्रव्य कहां दिया जायेगा ? कांडक के नीचे उदय के समय से असंख्यात गुणित प्रमाण में देकर नयी गुणश्रेणी रचना होगी। अभी कांडक का द्रव्य और अपकर्षण किया हुआ अपकृष्ट द्रव्य कहां दिया जायेगा ? कांडक के नीचे छोटे अंतर्मुहूर्त प्रमाण निषेक बाकी हैं उतने निषेकों में उदय के समय से लेकर गुणित प्रमाण में दिया जायेगा। नयी उदयादि गलितावशेष गुणश्रेणी बनेगी।

अपकृष्ट द्रव्य तो कांडक प्रमाण निषेकों में भी दिया जायेगा। उदय के समय से लेकर अतिस्थापनावली छोड़कर ऊपर तक दिया जायेगा। कांडक के नीचे यहां तक नयी गुणश्रेणी बनी - पर्व १। यह गलितावशेष होगी और पूर्व की जो अवस्थित गुणश्रेणी (पर्व १ + २) बनी थी उसमें से नीचे के इतने निषेक (पर्व १) छोड़कर पूर्व की अवस्थित गुणश्रेणी (पर्व २) और उपरितन के जितने निषेक बाकी रहे हैं वे (पर्व ३) सभी मिलकर अंतिम कांडक का प्रमाण (पर्व २+३) है। इसलिये अंतिम कांडक को अलग से बताया है। इसकी फिर एक फालि नीचे आयेगी। दूसरी आयेगी, तीसरी आयेगी। अपकृष्ट द्रव्य अलग बात है और कांडक का द्रव्य अलग बात है। अपकृष्ट यानी प्रत्येक निषेक में से

द्रव्य नीचे आ रहा है और कांडक का जो द्रव्य है इसकी इतनी-इतनी फालि होगी। एक फालि आयी, दूसरी आयी, तीसरी आयी इसतरह से दिया जायेगा। अब यह कौनसा द्रव्य ? अपकर्षण का और कांडक का द्रव्य कहां दिया जाता है उसके लिये अभी वर्णन होगा। अंतिम कांडक कितना बड़ा होता है उसकी बात हमने पढ़ी और चार्ट के आधार से उसको देखा। अब आगे ११८ पृष्ठ पर भावार्थ देखेंगे।

गलितावशेष गुणश्रेणी आयाम के संख्यातवें भाग से लेकर उपरितन स्थिति के निषेक अवशेष रहे उनके अंत तक कांडकायाम का प्रमाण है। चार्ट में देखो, जो हमने डार्क करके बताया है यह है पूर्व की गलितावशेष गुणश्रेणी। उसके संख्यातवें भाग से - पर्व २ की शुरुआत से लेकर उपरितन स्थिति के अंत निषेक तक यानी पर्व ३ के अंत तक यह पूरा ही अंतिम कांडकरूप से ग्रहण किया। चार्ट में पर्व २ और पर्व ३ मिलकर अंतिम कांडक का आयाम है। **यह द्विचरम कांडकायाम प्रमाण से तो संख्यातगुणा है,** द्विचरम कांडक जो बना था वह छोटा था, यह अंतिम कांडक बड़ा है। पहले आपने पूछा था न, ये कांडक छोटे-छोटे होते हैं कि क्या होता है ? आठ वर्ष की स्थिति होने के पश्चात् अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्त प्रमाण कांडक छोटे होते गये थे। परंतु यहां का अंतिम कांडक बड़ा है। द्विचरम से भी संख्यातगुणा बड़ा है। **तथापि यथायोग्य अंतर्मुहूर्त मात्र ही है।** उस अंत कांडक द्वारा घात करने के पश्चात् जो नीचे अवशेष स्थिति रहती है, पर्व १ उसका प्रमाण अवस्थित गुणश्रेणी आयाम के संख्यातवें भाग मात्र है, सो पहले जो गलितावशेष गुणश्रेणी आयाम में अनिवृत्तिकरण काल के संख्यातवें भाग मात्र जो गुणश्रेणीशीर्ष कहा था, उसको संख्यात का भाग देकर बहुभाग मात्र तो कृतकृत्यवेदक काल और व्यतीत होने के पश्चात् अवशेष रहा जो अनिवृत्तिकरण का काल, उस प्रमाण अंत कांडकोत्करण काल अभी यहां क्या कहना चाहते हैं वह मैं अपने शब्दों में बताती हूं।

यहां नीचे और कुछ समय थे ऐसा इमॅजिन करो। तब क्या पोझिशन थी ? पर्व २ और ३ को कांडकरूप से ग्रहण किया, उसका फालिरूप से घात होता रहेगा इतना ही अनिवृत्तिकरण का काल अवशेष है। अनिवृत्तिकरण समाप्त होते-होते कांडकघात पूर्ण होगा। तब क्या बाकी रहेगा ? कृतकृत्यवेदक काल जितने निषेक बाकी रहेंगे, बाकी ऊपर का सब कांडकघात होकर नीचे आनेवाला है। जो शेष बचेगा उसको हम

कहेंगे कृतकृत्यवेदक काल। अभी वहां तक नहीं पहुंचे हैं। अभी कितना काल बाकी है ? कृतकृत्यवेदक काल प्लस यह कांडकघात होने के लिये जितने समय लगेंगे उतना काल। यह कांडकघात तो फालियों में होता है। यानी अभी कृतकृत्यवेदक होने के लिये कितना काल बचा है ? तो कहते हैं कि जितना काल अंतिम कांडकघात के लिये लगेगा उतना काल बचा है। यह काल कौनसा है ? अनिवृत्तिकरण का चल रहा है। इस कांडक की अंतिम फालि खिरेगी तो अनिवृत्तिकरण का अंतिम समय आयेगा। कांडकघात का कार्य अनिवृत्तिकरण के काल में होता है।

जब अनिवृत्तिकरण का अंत समय आयेगा तो ऊपर जो कांडकरूप से ग्रहण किया है उसकी अंतिम फालि नीचे कृतकृत्यवेदक के उन निषेकों में आकर मिलेगी। जब तक यह कार्य नहीं हुआ था तो अभी कितना काल शेष बचा है ? अनिवृत्तिकरण का जितना काल शेष बचा है उतने काल में एक-एक समय में एक-एक फालि नीचे आयेगी। जब अनिवृत्तिकरण का अंत समय आयेगा तो पूरी की पूरी जो अंतिम फालि है वह नीचे इन निषेकों में आ मिलेगी। कांडक द्रव्य कहां दिया जायेगा ? कांडक के नीचे उदयादि गुणश्रेणी में गुणित प्रमाण में दिया जायेगा और जब तक अंतिम फालि नहीं खिरी है तब तक अपकर्षण किया हुआ अपकृष्ट द्रव्य ऊपर कांडक प्रमाण निषेकों में भी दिया जायेगा। अब यहां देने का विधान बतायेंगे। *श्रोता: ऊपरवाले निषेकों में जो बताया वैसे नीचेवालों में भी देंगे ?* देखो हम पढ़ेंगे तो ख्याल में आयेगा।

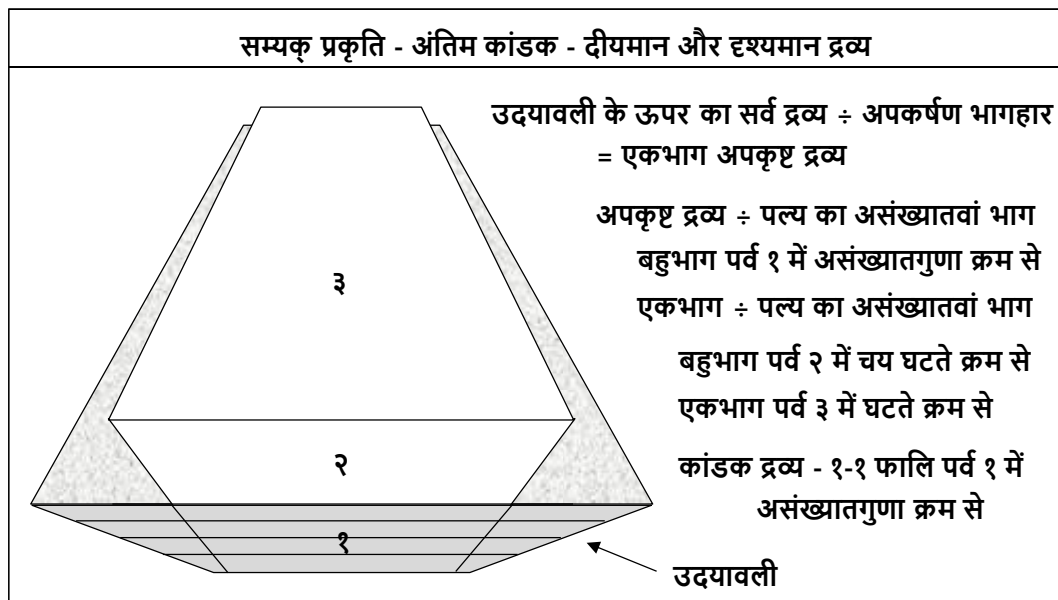
अब गाथा १४० की टीका देखेंगे- **सम्यक्त्वमोहनीय के अंत कांडक की प्रथम फालि के पतन समय से लेकर द्विचरम फालि के पतन समय तक द्रव्य निक्षेपण करने में तीन पर्व जानना।** पर्व यानी विभाग। तीन जगह द्रव्य दिया जायेगा, उसको बतायेंगे। **विभाग द्वारा तीन जगह द्रव्य देना। वहां अंत कांडकोत्करण काल के प्रथम समय में जिसका आरंभ हुआ ऐसा जो उदयरूप प्रथम समय से लेकर अवशेष स्थिति के अंत निषेक तक यहां जिसका प्रारंभ हुआ ऐसा जो गुणश्रेणी आयाम, उसके शीर्ष तक तो एक पर्व जानना।** इसका अर्थ देखते हैं। यहां नीचे और समय थे ऐसा हम इमोजिन करते हैं। अब पहला पर्व कौनसा ? ऊपर का तो कांडकरूप से ग्रहण किया जानेवाला है, जो कांडकरूप से नष्ट होनेवाला है। उसका द्रव्य गुणश्रेणीरूप से यहां दिया गया। यहां उदय के समय से नयी गुणश्रेणी तैयार हुयी

है और यह गलित होनेवाली है। यह है पहला पर्व। अंतिम कांडक ग्रहण करने के लिये कांडक के नीचे जितने निषेक बाकी हैं उन निषेकों में अभी यहाँवाली नयी गुणश्रेणी बनेगी। उसको कहा पहला पर्व। ऊपर के शेष निषेकों को कांडकरूप से लेनेवाले हैं।

अब दूसरे पर्व की बात करते हैं। **उसके ऊपर पहले जो अवस्थित गुणश्रेणी आयाम था उसके शीर्ष तक दूसरा पर्व जानना।** अवस्थित गुणश्रेणी आयाम था वहाँ तक दूसरा पर्व जानना। इसको हम नाम देंगे - दूसरा पर्व। कांडक के नीचे गुणश्रेणी बचेगी वह पहला पर्व। उसके ऊपर पहली अवस्थित गुणश्रेणी थी वहाँ तक दूसरा पर्व और उपरितन स्थिति जो ऊपर बाकी है वह तीसरा पर्व। **उसके ऊपर जो उपरितन स्थिति उसके प्रथम समय से लेकर अंत समय तक तीसरा पर्व जानना। वहाँ कांडकद्रव्य में से ग्रहण किया हुआ जो फालिद्रव्य,** अभी फालिद्रव्य कहां जायेगा ? फालि दूसरे पर्व के शुरू से तीसरे पर्व के अंत तक ही है, इन सब में से द्रव्य निकलेगा। कांडक का द्रव्य कांडक में नहीं दिया जायेगा, वह नीचे आयेगा। फालि का द्रव्य मात्र पहले विभाग में दिया जायेगा। एक-एक फालि खिरेगी वैसे नीचे का एक-एक निषेक भी गल जायेगा। कांडक का द्रव्य जो फालिरूप से नीचे आता है वह मात्र पहले पर्व में यानी पहले भाग में दिया जायेगा- जो नयी गुणश्रेणी बनी है मात्र उसमें दिया जायेगा। सर्वद्रव्य में से अपकर्षण होता है वह उपकृष्ट द्रव्य गुणश्रेणी में भी दिया जायेगा और कांडक प्रमाण निषेकों में भी। हर समय में सभी निषेकों में से अपकर्षण हो रहा है। फालिद्रव्य कांडक में से एक-एक फालिरूप से नीचे आता है।

यह अपकृष्ट द्रव्य कहां-कहां दिया जायेगा ? पहले पर्व में, दूसरे पर्व में और तीसरे पर्व में भी दिया जायेगा। कांडक का द्रव्य मात्र पहले पर्व में और अपकृष्ट द्रव्य तीनों पर्वों में दिया जायेगा। ऐसा ही अपकृष्ट द्रव्य किसतरह से दिया जायेगा ? हमने देखा था कितना द्रव्य अपकर्षित होता है ? सर्व द्रव्य को अपकर्षण भागहार से भाग देकर एकभाग अपकर्षित होता है। अपकृष्ट द्रव्य को पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर बहुभाग पहले पर्व में गुणश्रेणीरूप से देना और एकभाग को फिर पल्य के असंख्यातवें भाग से भाग देकर बहुभाग चय घटते क्रम से दूसरे पर्व में और बाकी बचा हुआ एकभाग चय घटते क्रम से तीसरे पर्व में अतिस्थापनावली छोड़कर देना। एक कांडकघात पूरा होने के बाद जो नीचे बचेगा, जो गुणश्रेणीरूप से अभी बनाया है

उसीको बाद में हम कृतकृत्यवेदक के निषेक कहेंगे। उतना काल बचेगा। बाकी ऊपर के सभी निषेकों का घात होकर अभाव होनेवाला है।



यह किस पद्धति से दिया है ? अभी हमने देखा था पहले पर्व में असंख्यातगुणा क्रम से दिया। दूसरे पर्व में कैसे देंगे ? घटते हुये क्रम से और फिर तीसरे पर्व में भी घटते हुये क्रम से देंगे। इसीतरह से दिया जायेगा। यह जो नयी गुणश्रेणी बनी है उसके ऊपर गोपुच्छ जैसी रचना होगी। फायनल रिझल्ट तो ऐसा ही दिखेगा, हां, गोपुच्छाकार दिखेगा। केवल गुणश्रेणी में गुणित प्रमाण में दिखेगा और ऊपर ऐसे घटते क्रम से दिखेगा। श्रोता: अवस्थित गुणश्रेणी बीचवाले पीरिअड में अवस्थित थी और यह गलितावशेष ? पहले भी गलितावशेष थी और अभी भी गलितावशेष बनी। यह गुणश्रेणियों की बहुत विशेषता है। अलग-अलग जगह अलग-अलग गुणश्रेणियां बनती रहती हैं। अभी तो यह विषय नहीं है, परंतु आगे जब क्षपकश्रेणी की बात आयेगी, वहां एक बार क्रोध की गुणश्रेणी बनेगी, वह गलते-गलते नष्ट हो जायेगी। फिर मान की गुणश्रेणी बनेगी। उसके बाद माया के परमाणु नीचे आकर उनकी गुणश्रेणी बनेगी। यह इतना सायंटिफिक और इतना सूक्ष्म विषय है। सहजरूप से ऐसी बातें होती हैं और कर्म खिरते रहते हैं। श्रोता: अनंतानुबंधी भी ऐसे क्रम से जायेंगे ? नहीं, वहां नहीं।

संज्वलन क्रोध, मान, माया की बात बतायी मैंने। अनंतानुबंधी की विसंयोजना में सब एक साथ नष्ट हो गये थे। कहां कितना द्रव्य देना यह बात चल रही थी।

अंतिम कांडक की पहली फालि, दूसरी फालि, तीसरी फालि... द्विचरम फालि तक इसतरह से ही होगा। वहां कांडकघात के साथ अपकर्षण भी होता है। अब अंतिम फालि का पूरा का पूरा द्रव्य नीचे आयेगा। अब १२० पृष्ठ पर गाथा १४३ की टीका- **सम्यक्त्वमोहनीय के अंत कांडक की प्रथम फालि के पतन समय से लेकर द्विचरम फालि के पतन समय तक उदयादि गलितावशेष गुणश्रेणी आयाम जानना।** यह जो नीचे नयी गुणश्रेणी हुयी है उसकी बात है। पहली फालि, दूसरी फालि, तीसरी फालि, द्विचरम फालि के पतन समय तक नीचे उदय के समय से लेकर यानी उदयादि गलितावशेष गुणश्रेणी है क्योंकि वह गल रही है। नीचे का एक-एक निषेक गल रहा है। तो उसको कहेंगे **उदयादि गलितावशेष गुणश्रेणी आयाम जानना।** यह अभी इतना छोटा है, पहले तो अवस्थित गुणश्रेणी का आयाम बहुत बड़ा था। अभी वह सारा अंतिम कांडकरूप से ग्रहण किया है। पहलेवाली गुणश्रेणी जो थी न ? वह भी यहां कांडकरूप से नष्ट होते-होते अभी इतने निषेक बचे हैं। अभी केवल यह अंतिम फालि बचेगी और नीचे गलितावशेष गुणश्रेणी बचेगी। जब अंतिम फालि नीचे आयेगी तो बस इतना ही रहेगा जिसे हम कृतकृत्यवेदक काल कहेंगे।

यहां कहते हैं- **उदयादि गलितावशेष गुणश्रेणी आयाम जानना।** उदयरूप वर्तमान समय से लेकर यहां गुणश्रेणी आयाम पाया जाता है इसलिये उदयादि कहा और एक-एक समय व्यतीत होने पर एक-एक समय गुणश्रेणी आयाम में से घटता जाता है, इसलिये गलितावशेष कहा है। इसतरह उदयादि गलितावशेष गुणश्रेणी आयाम जानना। पुनश्च पूर्वोक्त विधान से अंत कांडक की द्विचरम फालि का पतन होने पर कांडकोत्करण काल का अनिवृत्तिकरण काल में एक समय अवशेष रहता है। यानी अभी इसके नीचे एक निषेक है, अनिवृत्तिकरण का एक समय बाकी है और यहां अंतिम फालि विद्यमान है। अब क्या होगा ? यह एक निषेक इसी समय गल जायेगा। उसी समय पूरे कांडक का घात होकर यह सब द्रव्य नीचे आयेगा। यह अनिवृत्तिकरण का अंतिम समय है। उस समय इन पूरे ही निषेकों का घात होकर, कांडक की यह अंतिम फालि है उसका द्रव्य पर्व १ के इन निषेकों में

आ मिलेगा और उसी समय नीचे का एक निषेक उदयरूप होकर गल जायेगा। अभी इतना ही द्रव्य बाकी है, इतने ही समय बाकी हैं, वे अंतर्मुहूर्त प्रमाण हैं।

श्रोता: उसका क्या प्रमाण है ? अंतर्मुहूर्त के यथायोग्य असंख्यात समय हैं जो कृतकृत्यवेदक काल है। अभी इतना ही शेष बचेगा। अब अनिवृत्तिकरण काल का यह अंतिम समय है। अभी इसके बाद कांडकघात वगैरह कुछ नहीं होगा। अनिवृत्तिकरण की ही यह विशेषता है कि वहां तक ही कांडकघात होते हैं। **अवशेष रहे अनिवृत्तिकरण के अंत समय में अंत कांडक की अंतिम फालि का पतन होता है।** यहां अनिवृत्तिकरण समाप्त हुआ। अंतिम फालि नीचे आ गयी। अब कितना काल बचा ? कृतकृत्यवेदक का जितना है उतना ही बचा। अब गाथा १४४ की टीका- **यहां अनिवृत्तिकरण के अंत समय में, व्यतीत होने के पश्चात् अवशेष रहा ऐसा गलितावशेष गुणश्रेणी आयाम वह कृतकृत्यवेदक काल का प्रमाण है।** यहां पहले जो गलितावशेष गुणश्रेणी आयाम बताया था, उसमें से एक-एक निषेक गलता गया। अभी गलितावशेष गुणश्रेणी का जितना आयाम शेष रहा है वही कृतकृत्यवेदक का काल है। इसके आगे क्या होगा ? एक-एक निषेक गल जायेगा और जब सभी निषेक गलेंगे तो जीव क्षायिक सम्यग्दृष्टि होगा। अब अनिवृत्तिकरण समाप्त हो गया है।

उसके द्विचरम समय तक तो फिर भी अभी अंतर्मुहूर्त प्रमाण निषेक बाकी हैं, कृतकृत्यवेदक के अंतर्मुहूर्त प्रमाण निषेक बाकी हैं। अभी स्थितिकांडकघात वगैरह कुछ नहीं होगा। कहते हैं **उसके द्विचरम समय तक तो प्रथम पर्व और उसका अंत समय वह द्वितीय पर्व जानना।** यहां अपकर्षण या उदीरण जो कुछ है वह बतायेंगे क्या-क्या होता है। **वहां सम्यक्त्वमोहनीय के सर्वद्रव्य में से व्यतीत हुये निषेक और अवशेष रहे कृतकृत्यवेदक काल मात्र निषेक, इनका द्रव्य घटाने पर अवशेष किंचित कम डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण अंत कांडक की अंत फालि का द्रव्य है।** अभी जो अंतिम फालि नीचे आयी उसमें मॅक्झिमम द्रव्य पड़ा है। बाकी थोड़ा द्रव्य नीचे के कृतकृत्यवेदक काल में है। बाकी कुछ तो निकल गया है - खिर गया है। अब अंतिम फालि का द्रव्य कहां दिया जायेगा ? नीचे अभी गलितावशेष गुणश्रेणी बची है, जो हम कृतकृत्यवेदक का काल कहेंगे उसमें असंख्यातगुणा क्रम से दिया जायेगा। यही बात यहां बतायी है।

अब इसकी क्या विशेषता है ? हमने देखा था न, यहां जो अंतिम फालि बची थी वह नीचे दी। उसका द्रव्य कैसे दिया ? गुणित प्रमाण में दिया। पर यहां की एक विशेषता है। पहले कैसे देते थे ? पहले निषेक में दिया, उससे दूसरे निषेक में चारगुणा दिया, उससे तीसरे निषेक में चारगुणा दिया, उससे चौथे निषेक में चारगुणा दिया यानी असंख्यातगुणा के लिये चारगुणा मानकर कहा है। परंतु यहां यह गुणकार का प्रमाण भी असंख्यातगुणा होता है। नहीं समझे ? पहले हम प्रत्येक निषेक में चार-चारगुणा कहते थे। अब दूसरे निषेक में सोलहगुणा हो जायेंगे। तीसरे निषेक में चौंसठगुणा हो जायेंगे। चौथे निषेक में उससे भी चारगुणा हो जायेंगे। यानी गुणकार भी असंख्यातगुणा हो जायेगा यह यहां की विशेषता है। अभी निषेक थोड़े ही हैं और करीबन पूरा का पूरा द्रव्य अंतिम फालि में है। इतने बचे हुये निषेकों में इतने अधिक प्रमाण में दिया जायेगा बस इतनी ही बात है। *श्रोता: निषेकों में गुणित प्रमाण में ?* गुणकार का प्रमाण भी गुणित प्रमाण में होगा। *श्रोता: जिऑमेट्रिक प्रोग्रेशन में ?* जिऑमेट्रिक प्रोग्रेशन अलग बात है। यहां गुणकार का प्रमाण भी गुणकाररूप में है। जिऑमेट्रिक प्रोपोर्शन अलग है।

अब आगे गाथा १४६ की टीका पढ़ेंगे- इसतरह अनिवृत्तिकरण के अंत समय में सम्यक्त्वमोहनीय के अंत कांडक की अंत फालि के द्रव्य को नीचे के निषेकों में निक्षेपण करने के पश्चात् अनंतर समय से लेकर अनिवृत्तिकरण काल के संख्यातवें भाग मात्र जो पुरातन गलितावशेष गुणश्रेणी आयाम का शीर्ष, उसको संख्यात का भाग देकर वहां बहुभाग मात्र अंतर्मुहूर्त काल तक कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि होता है। अब पहले की गुणश्रेणी जो बची हुयी थी न, हमने देखा था, गलितावशेष में से ऊपर की कुछ अंतिम कांडकरूप से निकल गयी थी और उसका संख्यात बहुभाग बाकी था इसलिये उसको याद किया। उसको नहीं भी कहते तो अंतिम फालि गिरने के बाद जितने निषेक नीचे हैं उतना यहां कृतकृत्यवेदक का काल अवशेष रहा है। इतनी बात इस वाक्य के द्वारा हमने समझी।

चूंकि दर्शनमोह की क्षपणा योग्य स्थितिकांडकादि कार्य अनिवृत्तिकरण के अंत समय में ही समाप्त हुये, इसलिये किया है करने योग्य कार्य जिसने ऐसा कृतकृत्य नाम पाता है, वह जीव अभी तक कांडकघात वगैरह कार्य हो चुके। अभी जो अवशेष निषेक हैं वे नियम से खिर जानेवाले हैं। अभी अनिवृत्तिकरण आदि करण

परिणाम नहीं रहे। अभी यहां जीव का मरण भी हो सकता है। देखो, **वह जीव भुज्यमान आयु के नाश से मरण को प्राप्त होता है तो सम्यक्त्वग्रहण के पहले जो आयु बांधी थी उसके वश से चारों गतियों में उत्पन्न होता है।** यदि वर्तमान आयु समाप्त होती है तो जिसने जो आयु बांधी है वह मरकर वहां चला जायेगा। *श्रोता: किसीने आयु नहीं बांधी है तो देव में चला जायेगा ?* बिना आयु बांधे कैसे जायेगा ? यदि किसीने आयु नहीं बांधी है तो चलेगा। क्या आयु बांधना जरूरी है ? जो चरमशरीरी है वह आयु नहीं बांधता है। जो उसी भव में मोक्ष जानेवाला जीव है वह आयु का बंध नहीं करता। जिसने आयु का बंध किया है उसका आगामी भव निश्चित है। हम पूछते हैं न, उपशमश्रेणी क्यों मांडी ? उनको इतना समझता नहीं था क्या ? आयु का बंध हुआ है तो क्या होगा ? उपशमश्रेणी मांड लेंगे। उतना पुरुषार्थ तो करेंगे। अगर आयु बंध किया है तो उनको देव में जाना ही है। फिर भी उपशमश्रेणी का पुरुषार्थ होगा वहां पर।

यहां कहते हैं कि जिसने जो आयु बांधी है और इसलिये सम्यक्त्व होने के पहले आयु बांधी है ऐसी कंडिशन डाली। नरकायु, तिर्यचायु, मनुष्यायु का बंध सम्यक्त्व होने के पूर्व में ही हुआ था। बाद में सम्यक्त्व होने में बाधा नहीं थी। अब क्षायिक सम्यग्दृष्टि होने जा रहा है, अभी कृतकृत्यवेदक में आया है। यदि यहां पर आयु समाप्त होती है तो मरकर, उसने जो आयु बांधी है वहां चला जायेगा। कल हमने देखा था, फिर दुबारा पढ़ रहे हैं- **प्रथम भाग में मरे तो देव ही में,** अभी-अभी शुभ लेश्या का उत्कृष्ट अंश प्रकट किया है और अभी-अभी मरेगा तो उसके शुभ लेश्या में मरण होगा तो देव में ही चला जायेगा। **दूसरे भाग में मरे तो** दूसरे अंतर्मुहूर्त में बाय दैट टाइम देव में जानेवाला है तो उसकी लेश्या शुभ ही रहेगी। परंतु यदि मरण करके मनुष्य में जानेवाला है तो उसकी लेश्या पलटेगी। **देव वा मनुष्य में, तीसरे भाग में मरे तो देव, मनुष्य, तिर्यच में और चौथे भाग में मरे तो चारों ही गतियों में उपजते हैं।** वहां उन्हीं में उपजने योग्य परिणाम होते हैं। देव में जन्मनेवाला शुभ लेश्या में मरेगा और कृतकृत्यवेदक के साथ अन्य तीन गतियों में जन्मनेवाला कपोत लेश्या के जघन्य अंश में मरेगा। **इस क्रम से कृतकृत्यवेदक की उत्पत्ति जानना।** यानी यह जीव कृतकृत्यवेदक हो गया है।

गाथा १४७ की टीका- **अधःकरण के प्रथम समय में दर्शनमोहक्षपणा के प्रारंभक जीव के पीत, पद्म या शुक्ल जो लेश्या होती है, वह प्रतिसमय अनंतगुणी**

विशुद्धता के क्रम से अनिवृत्तिकरण के अंत समय में उस लेश्या का उत्कृष्ट अंश संपूर्ण होता है। हमने देखा अनंतगुणी-अनंतगुणी विशुद्धता बढ़ती गयी थी। उसके अनंतर कृतकृत्यवेदक काल के प्रथम भाग में मरे तो लेश्या पलटती ही नहीं, क्योंकि यहां मरकर देव में ही उपजना है। देवों में तो शुभ लेश्या में मरकर ही उपजना होता है। यदि दूसरे, तीसरे, चौथे भाग में मरे तो शुभ लेश्या की क्रम से हानि होकर मरण समय कपोत लेश्या का जघन्य अंश होता है, यानी पीत लेश्या में से कपोत लेश्या में प्रवेश करेगा तो पहले कपोत का जघन्य अंश होगा। क्योंकि द्वितीय भाग में मरकर भोगभूमिया मनुष्य भी होता है; भी लिखा यानी देव में भी जा सकता है, उसके लिये लेश्या नहीं पलटेगी। तीसरे भाग में मरकर भोगभूमिया मनुष्य या तिर्यच भी होता है; और चौथे भाग में मरकर जिसके नरकायु बंधी हो वह जीव प्रथम नारक पृथ्वी में भी उपजता है। क्योंकि सम्यक्त्व के साथ मात्र पहले नरक में जा सकता है। अब यह कृतकृत्यवेदक हुआ है और ऐसा कृतकृत्यवेदक हो तो ही या क्षायिक होगा तो ही सम्यक्त्व के साथ जा सकता है, ऑर्डिनरि वेदक सम्यग्दृष्टि जीव सम्यक्त्व लेकर नरक में नहीं जा सकता।

ऐसे ही अभी पंचम काल का मनुष्य है, वेदक सम्यग्दृष्टि है। पंचम काल का भी नहीं, चौथे काल में भी यही बात होगी कि यदि वह क्षायिक नहीं हो तो कर्मभूमि का मनुष्य मरकर दुबारा वह सम्यक्त्व के साथ मनुष्य में जन्म नहीं लेगा। ना भोगभूमि में, ना कर्मभूमि में। फिर से, मनुष्य मरकर मनुष्य कौन होता है ? या तो क्षायिक सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि - दो बातें हैं। वह भी कौनसा मनुष्य होगा ? क्षायिक के साथ मनुष्य में जन्मनेवाला भोगभूमि का मनुष्य होगा। श्रोता: विदेह का नहीं ? नहीं, कर्मभूमि का कोई क्षायिक सम्यग्दृष्टि मनुष्य मरकर कर्मभूमि का ही क्षायिक होकर जन्मे यह बात नहीं हो सकती। भोगभूमि में जा सकता है। ख्याल में आयी बात ? देवगति में ही उपजना हो तो उसके चारों ही भागों में लेश्या का पलटना नहीं होता।

इस प्रकार कृतकृत्यवेदक काल में मरण होने की अपेक्षा कथन किया। पुनश्च यदि वहां मरण न हो और पहले चारों गतियों में से किसी गति संबंधी आयु बंधी हो, गति के बंधने की बात नहीं, आयु की बात चल रही है - विशिष्ट गति संबंधी आयु ऐसा कथन है। उसके क्षायिक सम्यक्त्व होने के पश्चात् मरण के समय गति

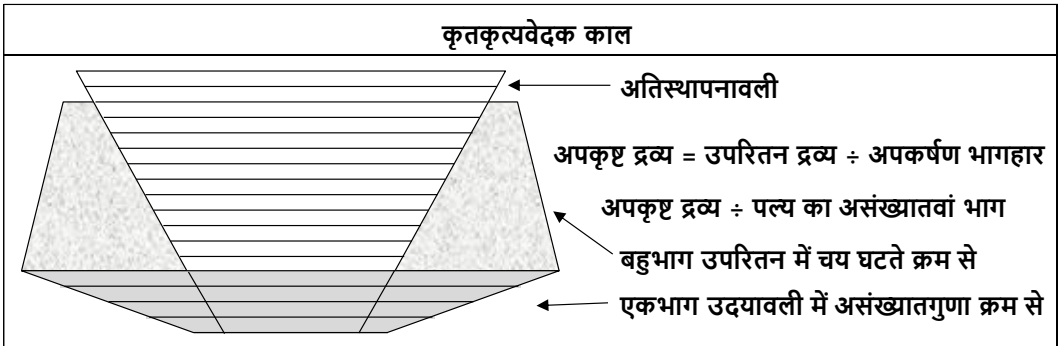
के अनुसार लेश्याओं का पलटना जानना। जहां जिस गति में उत्पन्न होना है, मरण समय स्वयमेव वैसी ही लेश्या हो जाती है। अब आगे गाथा १४८ की टीका- **अनिवृत्तिकरण काल का संख्यातवां भाग अवशेष रहने पर जैसे दर्शनमोह के अनुभागकांडकघात को समाप्त कर** यह कब किया था ? जब सम्यक् प्रकृति की आठ वर्ष स्थिति बाकी रही थी तब दर्शनमोहनीय का अनुभागकांडकघात होना रुक गया था। **प्रति समय अनंतगुणा घटते क्रम से अनुभाग का अपवर्तन कहा था,** वहां बताया था प्रति समय अनंतगुणा अनुभाग का घटना होता है। **वही इस कृतकृत्यवेदक काल के अंत समय तक पाया जाता है,** अभी यहां अनिवृत्तिकरण नहीं रहा, फिर भी अनुभाग का घटना भी चलेगा यह बात बताना चाहते हैं। **क्योंकि करण परिणामों की विशुद्धता के संस्कार का अवशेष यहां पाया जाता है।** यहां पर भी उतनी विशुद्धि पायी जाती है और प्रति समय अनुभाग का घटना यहां पर भी पाया जायेगा।

इस कृतकृत्यवेदक के काल में जब तक एक समय अधिक उच्छिष्टावली अवशेष रहे तब तक प्रतिसमय असंख्यातगुणा क्रम से असंख्यात समयप्रबद्धों की उदीरणा पायी जाती है। जब कृतकृत्यवेदक इतना ही काल अवशेष रहा, तब कितने निषेक शेष हैं ? यथायोग्य अंतर्मुहूर्त प्रमाण। अभी कांडकघात नहीं हो रहा है। तो क्या होगा ? उदयावली के ऊपर के निषेकों में से अपकर्षण होकर उदयावली में द्रव्य आता रहेगा। इतने सारे बड़े-बड़े-बड़े-बड़े निषेक हुये हैं, कृतकृत्यवेदक अवस्था में उनकी उदीरणा होगी। अपकर्षण करके उनका कुछ द्रव्य उदयावली में दिया जायेगा तो असंख्यात समयप्रबद्धों की उदीरणा होगी और उनका उदय होगा यह बात यहां बताना चाहते हैं। कांडकघात रुक गये हैं। अभी यहां कृतकृत्यवेदक के इतने ही निषेक बाकी हैं जो गुणश्रेणीरूप से बनाये थे। उसमें क्या होगा ? उदीरणा चलेगी। कब तक चलेगी ? जब तक उदयावली प्लस एक समय इतनी स्थिति बाकी रहती है तब तक चलेगी। उदयावली के ऊपर के निषेकों में से उदयावली में मिलना उसीको उदीरणा कहेंगे तो अब उदीरणावाला कार्य यहां चल रहा है। अब उसको देखते हैं।

पृष्ठ १२४ पर टीका पढ़ेंगे- **कृतकृत्यवेदक काल मात्र सम्यक्त्वमोहनीय के निषेक रहने पर उनका द्रव्य।** कितना कहा ? **किंचित कम डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण है।** अब तक इतना सारा खिर गया न ! तो कहेंगे असंख्यातवां

भाग ही खिर गया। अभी जो पहले मिथ्यात्व का टोटल द्रव्य था, सम्यग्मिथ्यात्व का था वह अब सम्यक् प्रकृतिरूप हुआ है; अब भी ऊपर के ही निषेकों में पड़ा है। इतना सारा असंख्यातगुणा-असंख्यातगुणा खिर गया फिर भी मॅक्झिमम द्रव्य तो अभी भी यहां पड़ा है। उसको अपकर्षण भागहार का भाग देकर वहां एकभाग प्रमाण द्रव्य को उदयावली से बाह्य उपरवर्ती निषेकों में से ग्रहण कर उसको पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर वहां एकभाग तो उदयावली में। कैसे ? 'प्रक्षेपयोगोद्धत' इत्यादि विधान से प्रथम समय से लेकर अंत निषेक तक असंख्यातगुणा क्रम से देता है। कहां पर दिया ? उदयावली में और बहुभाग मात्र द्रव्य उस उदयावली के उपरवर्ती जो अवशेष अंतर्मुहूर्त मात्र उपरितन स्थिति उसमें से अंत में समय अधिक अतिस्थापनावली छोड़कर सर्व निषेकों में विशेषहीन क्रम से निक्षेपण करता है। इसतरह उपरितन स्थिति का द्रव्य जो उदयावली में दिया जाता है उसका नाम उदीरणा है।

अपनी भाषा में समझेंगे। अभी कृतकृत्यवेदक काल यानी अंतर्मुहूर्त प्रमाण निषेक शेष हैं। उसमें से उदयावली के ऊपर के निषेकों में से जो हमेशा अपवर्तन होता था वह यहां पर भी होगा, वह कहां दिया जायेगा ? उदयावली में भी और ऊपर में भी। कहां तक ? अतिस्थापनावली छोड़कर वहां तक। यह बात ख्याल में आयी न ? ऊपरवर्ती निषेकों का द्रव्य उदयावली में भी जायेगा और ऊपर भी जितने निषेक हैं उनमें से ऊपर अतिस्थापनावली को छोड़कर सर्वत्र दिया जायेगा।



यद्यपि कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि लेश्या के पलटने से संक्लेश युक्त वा विशुद्धता युक्त होता है तथापि यानी हमने देखा जो तिर्यच वगैरह में जानेवाला है

उसके तो कपोत लेश्या भी हो जाती है। लेश्या तो शुभ से अशुभ हुयी फिर भी, **पहले जो करणरूप परिणाम हुये थे उनकी विशुद्धता के संस्कार के वश से प्रतिसमय असंख्यातगुणा द्रव्य को अपकर्षण करके उदीरणा करता है।** एक समय में जितना अपकर्षण होता था दूसरे समय में उससे असंख्यातगुणा; तीसरे समय में उससे असंख्यातगुणा उदयावली में आकर मिलेगा तो उसको हम कहेंगे इतनी उदीरणा हो रही है। **गुणश्रेणी आयाम बिना किंचित द्रव्य को उदयावली में देकर अवशेष को उपरितन स्थिति में दिया, इसलिये यहां गुणश्रेणी नहीं है।** पूर्व में बनी थी, गुणश्रेणीरूप से निषेक पड़े थे। परंतु यहां अभी गुणश्रेणीरूप से दिया नहीं जायेगा। उदयावली में दिया जायेगा और उपरितन स्थिति में दिया जायेगा।

यद्यपि असंख्यात समयप्रबद्धों की उदीरणा पूर्व-पूर्व समय संबंधी उदीरणाद्रव्य से असंख्यातगुणा क्रम युक्त है तथापि अंत कांडक की अंत फालि के द्रव्य को गुणश्रेणी आयाम में दिया था, उस गुणश्रेणीरूप जो उदय में आया निषेक, उसके द्रव्य से यह उदीरणाद्रव्य असंख्यातवें भाग मात्र ही है। क्या कहना चाहते हैं ? यहां अंतर्मुहूर्त मात्र निषेक बाकी हैं। इसमें से नीचे उदयावली छोड़कर ऊपर का उदीरणाद्रव्य यहां दिया जायेगा। तो कितना होगा ? कहते हैं असंख्यात समयप्रबद्ध जितना है। फिर भी यहां जो ओरिजिनल निषेक हैं वे गुणश्रेणी में से ही नीचे आये हुये निषेक हैं। ओरिजिनल निषेक इतना बड़ा है कि उसके सामने वह असंख्यात समयप्रबद्ध भी छोटे हो जाते हैं, असंख्यातवें भाग होते हैं। क्योंकि इसमें इतना सारा द्रव्य अभी तक दिया हुआ है कि वे निषेक इतने बड़े हो गये हैं कि ऊपर से असंख्यात समयप्रबद्ध प्रमाण उसमें द्रव्य दिया फिर भी वह दिया हुआ द्रव्य ओरिजिनल निषेक के असंख्यातवें भाग मात्र है।

श्रोता: ये सब कार्य नीचे की तीन लाइनों में ही हो रहा है ? ये तीन लाइन हमने चार्ट में बतायी परंतु वह अंतर्मुहूर्त है। अभी उतना ही बचा है कृतकृत्यवेदक। *श्रोता: यह निषेक बहुत बड़ा लंबा है ?* हां, कितना लंबा हो गया अभी क्योंकि हर बार हर समय में उसमें गुणश्रेणीरूप से, द्रव्य दिया गया है। सारा मोहनीय का द्रव्य पलटते-पलटते इसरूप हुआ है और वह भी स्थिति घटते-घटते अब शेष निषेकों में बचा है। *श्रोता: निषेक कम और द्रव्य ज्यादा है ?* बिलकुल, अभी निषेक कितने रहे ? वह तो

अभी क्षायिक होने जा रहा है। इसलिये कहते हैं वे निषेक बहुत अल्प हैं।

पृष्ठ १२५ पर तीसरी लाइन- **पुनश्च कृतकृत्यवेदक काल में एक समय अधिक आवली अवशेष रहने पर** यह उदीरणा कब तक होगी ? जब तक उदयावली के ऊपर निषेक हैं तब तक उसकी उदीरणा होगी। अब उसके ऊपर कुछ रहा ही नहीं तो उदीरणा कहां से होगी ? कहते हैं **एक समय अधिक आवली अवशेष रहने पर पहले अपकर्षण किये हुये द्रव्य से असंख्यातगुणा द्रव्य को स्थिति का अंत जो उदयावली के ऊपरवर्ती एक निषेक, उसमें से अपकर्षण करके** अभी उदयावली के ऊपर एक ही निषेक बचा है। फिर भी वह इतना बड़ा है कि पहले सभी में से मिलकर जितना अपकर्षित होता था उससे भी असंख्यातगुणा द्रव्य इस एक निषेक में से अपकर्षित हो रहा है और वह अभी नीचे उदयावली में आकर मिलेगा। हमने देखा था न, आवली यानी हम १६ समय समझेंगे। ये १७वें निषेक के जो परमाणु नीचे आयेंगे; कुछ आयेंगे सभी तो नहीं आयेंगे; कहां दिये जायेंगे ? नीचे के ६ में दिये जायेंगे, ऊपर के १० में नहीं दिये जायेंगे। हमने पहले इसका प्रमाण देखा था। तो यहां कहते हैं **उसमें से अपकर्षण करके नीचे एक समय कम आवली के १६ समय की आवली मानी तो एक समय कम आवली यानी १५ हुये। उसके दो तृतीयांश यानी दो बटे तीन भाग प्रमाण यानी १० निषेकों को अतिस्थापनरूप रखकर** उसमें नहीं देना उसको कहेंगे अतिस्थापन **उसके नीचे एक समय अधिक आवली के त्रिभाग मात्र निषेकों में देता है।** यानी $५+१ = ६$ निषेकों में देता है।

वहां उस अपकर्षण किये हुये द्रव्य को पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर वहां एकभाग मात्र द्रव्य को उदय समय से लेकर यथायोग्य असंख्यात समय संबंधी निषेकों में असंख्यातगुणा क्रम से देता है। अभी आवली के त्रिभाग में भी असंख्यात समयों में तो असंख्यातगुणा क्रम से देते हैं और अवशेष बहुभाग मात्र द्रव्य को अतिस्थापना के नीचे का समय छोड़कर उसके नीचे अवशेष आवली के त्रिभाग मात्र निषेकों में चय घटते क्रम से निक्षेपण करता है। हमने तो यहां क्या देखा ? १० को छोड़ा और ६ में दिया। अब ६ में जो दिया है वह आवली का त्रिभाग है। उसमें भी यथायोग्य निषेकों में असंख्यातगुणा क्रम से और ऊपर चय घटते क्रम से देते हैं। हम ६ निषेकों में कहेंगे तो हम मान लेते हैं नीचे के दो निषेकों में असंख्यातगुणा

क्रम से और ऊपर तो चय घटते क्रम से देते हैं। यह ही उत्कृष्ट उदीरणा है। यानी उदीरणा होनेवाला द्रव्य यहां मॅक्झिमम है। इससे अधिक उदीरणा का द्रव्य नहीं है। क्योंकि उस एक निषेक में बहुत सारा - मॅक्झिमम द्रव्य पड़ा था। उसीमें से उदीरणा हुयी है इसलिये परमाणु की संख्या यहां मॅक्झिमम है।

इसतरह अनुभाग का तो अनुसमयापवर्तन करके प्रति समय अनुभाग का घटना हो रहा है। अनिवृत्तिकरण समाप्त हुआ फिर भी कृतकृत्यवेदक के काल में यह बात हो रही है। और कर्म परमाणुओं की उदीरणा करके कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि की शेष रही सम्यक्त्वमोहनीय की अंतर्मुहूर्त स्थिति में से उच्छिष्टावली बिना जो सर्व स्थिति है, उच्छिष्टावली क्यों कहा ? क्योंकि अभी उसकी वहां पर उदीरणा आदि कुछ नहीं होनेवाला है। बस एक-एक निषेक गलनेवाला है। अपने ही रूप से उदय में आकर खिरनेवाला है। कहते हैं बाकी जितनी स्थिति थी वह प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशों के सर्वथा नाश सहित जो एक-एक निषेक का एक-एक समय में उदयरूप होकर खिरना (निर्जरना) खिर जाना यानी वह नष्ट हो जायेंगे। उसके द्वारा नष्ट होती है। अभी इतने बड़े निषेक हैं और आवली प्रमाण बाकी हैं। अब एक-एक निषेक एक-एक समय में उदय में आकर खिर जायेगा - नष्ट होगा।

उसके अनंतर समय में उच्छिष्टावली मात्र स्थिति अवशेष रहने पर उदीरणा का भी अभाव हुआ, पहले उदयावली के ऊपर निषेक थे, उसमें से परमाणु नीचे आते थे। अब केवल उदयावली ही रही तो उदीरणा का भी अभाव हुआ। केवल अनुभाग का अपवर्तन है। अनुभाग घटकर उदय में आना अभी भी चल रहा है। वह पहले कहे हुये अनुभाग के अपवर्तन से इसका अन्य लक्षण है। उदयरूप प्रथम समय से लेकर प्रतिसमय अनंतगुणा क्रम से वर्तता है। उदयरूप होकर अनंतगुणा हीन होकर उदय में आ रहा है। यानी पहले अनुभाग सभी निषेकों में से घटता था, अब उदय के समय में जितना है उसके ऊपर ज्यादा है, उसके ऊपर ज्यादा है, उसके ऊपर ज्यादा है। अभी पड़ा हुआ है। उसके द्वारा प्रकृति, स्थिति, अनुभाग, प्रदेशों के सर्वथा नाशपूर्वक प्रतिसमय उच्छिष्टावली के एक-एक निषेक को गलाकर निर्जरारूप करके-करके अनंतर समय में जीव क्षायिक सम्यग्दृष्टि होता है।

हाश हो गया सबको ! ऐसे लगता है हम ही क्षायिक सम्यग्दृष्टि हो गये। इतनी

मेहनत की उसका इतना फल मिला ! हम केवल पढ़ते हैं तो इतना हाश होता है ! जो जीव सम्यग्दृष्टि हैं, जो इतना पुरुषार्थ कर रहे हैं - श्रेणी मांड रहे हैं, मुनिराज हैं, ऐसे आत्मस्थिरता करनेवाले जीवों को देखकर कितना प्रमोद आना चाहिये कि वहां क्या-क्या बातें हो रही हैं ! मोक्षमार्ग पर आरूढ़ जीव है तो हमारे भी उसके प्रति सहजरूप से प्रेम कहो, वात्सल्य भाव कहो होते ही हैं। जिसको इस विषय में रुचि है उसको कोई जीव आगे बढ़ता है और पुरुषार्थ करता है उसको देखकर प्रमोद होता है, ईर्ष्या नहीं होती जैसे लौकिक में होती है। लौकिक में दूसरा कोई पैसे कमायेगा तो लोगों को ईर्ष्या होती है। किसीका नाम, यश हो जायेगा तो इनके पेट में दर्द होना चालू हो जाता है। लौकिक में ऐसा ही है; मोक्षमार्ग ऐसा है कि जिसको इसकी लगन लगती है, जो स्वयं ज्ञानी है उसको दूसरों के प्रति और प्रमोद आता है ! उसको ऐसा नहीं लगता अरे यह मेरे बाद पढ़ा और अभी मेरे से आगे ? ऐसा मोक्षमार्ग में आगे पीछे कुछ नहीं होता है।

हमने देखा न, कोई मुनिराज हैं और कोई अभी निगोद में पड़ा है। हो सकता है वह निगोदवाला जीव पहले मोक्ष पहुंच जाये ! हर एक का पर्यायों का क्रम अलग-अलग है। हम उसीको द्रव्य कहते हैं जिसमें अनादि अनंत पर्यायों का क्रम सुनिश्चित है। भले जीव अभी निगोद में पड़ा हो, हो सकता है वह पहले कभी उपशमश्रेणी चढ़कर उतरा हो। हो सकता है अभी वहां से आकर मनुष्य होकर मोक्ष जानेवाला हो। हो सकता है। इसलिये अन्य जीवों को - इन कीड़े मकोड़ों को भी देखकर हमें ऐसे विचार आते हैं न, अरे ! अभी ये यहां पड़े हैं, इनकी पूर्व पर्यायों में कैसी-कैसी बातें बीत चुकी होंगी। हम सावधानीपूर्वक चलें और इन जीवों को बचायें ऐसा भी भाव सहज आता है। साधर्म्य यानी केवल वह नामवाले मुमुक्षु की बात नहीं है। जिसके-जिसके मोक्षमार्ग के प्रति रुचि है, इस तत्त्व के प्रति रुचि है उसके प्रति हमारा भी सहज प्रेमभाव होता है, जबरदस्ती नहीं करनी पड़ती।

हम ऐसा सब स्वरूप देखते हैं न, तो पता चलता है कि यह जीव का कैसा कितना पुरुषार्थ होता होगा ! उसका पुरुषार्थ अपने में ही होता है, कर्मों में कुछ नहीं। कर्मों में सारी बातें अपने आप ही होती हैं। जीव कितनी लगनपूर्वक अंतरंग में स्थिर होता है तो ये सभी बातें होती हैं। कर्म के द्वारा उसके परिणामों को समझाया जाता है। जीव में क्या हो रहा है ? अनंतगुणी विशुद्धि बढ़ रही है। बस इतना ही हो रहा है ? तो

कहते हैं कर्म में इतनी बातें हुयी हैं। श्रोता: भरत चक्रवर्ती के १२३ पुत्र निगोद से आये थे न ? बीच में उनकी एक पर्याय हो चुकी थी द्वीन्द्रिय की। यह जरूरी नहीं सबको होनी चाहिये। कोई जीव बादर निगोद से निकलकर मनुष्य में आकर मोक्ष जा सकता है। वह वैसे-वैसे कर्म बांधकर आया होगा - वज्रवृषभनाराचसंहनन वगैरह बांधकर आता है वहां से। तभी तो उस भव में मोक्ष का भी पुरुषार्थ करता है।

श्रोता: कृतकृत्यवेदक में क्या होगा ? हां, कृतकृत्यवेदक हम चार्ट नंबर १९ के आधार से हम देखते हैं। देखो, अनिवृत्तिकरण के अनंतर समय में; अनिवृत्तिकरण कब था ? जब अंतिम स्थितिकांडकघात हो रहा था, उसकी अंतिम फालि खिर रही थी तब तक अनिवृत्तिकरण था। अनिवृत्तिकरण के अनंतर समय में कृतकृत्यवेदक होकर स्थितिकांडकघात और अनुभागकांडकघात नहीं होते। अनुभागकांडकघात पहले ही रुका था, इसको याद दिलाने के लिये फिर लिखा। जब आठ वर्ष की स्थिति शेष रही थी तब से अनुभागकांडकघात होना रुक गया था। और क्या हो रहा है ? प्रतिसमय असंख्यात समयप्रबद्धों की उदीरणा होती है। यह भी पहले से शुरू हुआ था परंतु अभी यह बहुत अधिक प्रमाण में चालू ही रहेगा। असंख्यात समयप्रबद्धों की उदीरणा। अनुभाग का अनुसमयापवर्तन - प्रति समय अनुभाग का अनंतगुणा घटना इसको कहेंगे अनुसमयापवर्तन। उच्छिष्टावली रहने पर क्या होगा ? अभी तक तो उदीरणा हो रही थी। अब एक ही आवली बाकी रही। अब उदीरणा होने के लिये ऊपर कुछ नहीं बचा तो जब उच्छिष्टावली बाकी रहती है तो उदीरणा का अभाव हो जाता है, फिर भी अनुभाग का प्रति समय अनंतगुणा अपवर्तन होना चालू ही रहता है। अंतिम समय तक चलता रहेगा। सभी निषेक गलने पर क्षायिक सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है।

हमने पुस्तक के आधार से देखा ही था, इसीको यहां रिपीट कर दिया है। यहां अपना क्षायिक सम्यक्त्व संबंधी विषय समाप्त होता है। यहां दर्शनलब्धि प्राप्त की है, इसको दर्शनलब्धि कहेंगे, क्षायिक सम्यक्त्व हुआ है इसके लिये क्षायिकलब्धि भी कहेंगे। यह जघन्य क्षायिकलब्धि है। जब केवलज्ञान होता है अन्य भी क्षायिकभाव प्रकट होते हैं तो वहां उत्कृष्ट क्षायिकलब्धि कहने में आयेगी। अब हम विराम लेते हैं।

बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

२८. क्षायिक सम्यक्त्व-अल्पबहुत्व; चारित्रलब्धि

आचार्य श्री नेमिचन्द्र सिद्धांतचक्रवर्ती ने इस लब्धिसार ग्रंथ की रचना की है, उसीके आधार से पं. टोडरमलजी ने सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका लब्धिसार-क्षपणासार, भाषाटीका ढूंढारी भाषा में लिखी हुयी है और उसका हिंदी अनुवाद अभी हम देख रहे हैं। अपनी यहां क्षायिक सम्यक्त्व की प्ररूपणा लगभग पूर्ण हो ही गयी है, उसमें हम अल्पबहुत्व क्या होता है, उसको देखकर आगे बढ़ेंगे। वैसे प्रथमोपशम के संबंध में भी अल्पबहुत्व का प्रकरण है, वह हमने छोड़ दिया था। किसतरह से उसका अर्थ लगाना है, क्या है, क्यों बताया जाता है इस बात को देखेंगे। क्षायिक सम्यक्त्व के जो अल्पबहुत्व के स्थान हैं, उनको देखकर हम आगे बढ़ेंगे।

देखो, पृष्ठ १२६, गाथा १५२ की टीका- **अपूर्वकरण के प्रथम समय से लेकर कृतकृत्यवेदक के प्रथम समय तक अनुभागकांडकोत्करण काल आदि के अल्पबहुत्व के तैंतीस स्थान कहूंगा।** पहले औपशमिक के बारे में भी ऐसे स्थान बताये थे। परंतु हमने उसको छोड़ दिया था। अभी हम देख लेते हैं - यहां क्या कहना चाहते हैं यह बात अपने ख्याल में आयेगी। अब यह बात पृष्ठ १२८ से समझायी है। मूल प्रतियों में टीका में सभी स्थान एक के आगे एक लिखे हैं, परंतु हमें समझ में आवे इसलिये मैंने यहां नंबर डाले हैं कि पहले नंबर पर कौनसा है, उससे अधिक कौनसा, उससे अधिक। एक, दो, तीन, चार ऐसे ३३ तक इसमें नंबर दिये हुये हैं जिससे हमें समझने में आसान हो जाये। यहां बता रहे हैं कि कौनसा काल छोटा है, कौनसा बड़ा है। सबसे छोटे में छोटा काल किसका है और उससे बड़ा जो है वह उससे विशेष अधिक है कि संख्यातगुणा है कि असंख्यातगुणा है इतनी बात यहां बतायेंगे।

यहां सबसे छोटे में छोटा काल है वह अनुभागकांडकोत्करण का काल है। शुरुआत में अनुभागकांडकोत्करण के लिये भी अधिक काल लगता था। जैसे आगे बढ़ा वैसे काल कम लगा। जो अंतिम अनुभागकांडकघात हुआ, उसके लिये जितना काल लगा, वह सबसे छोटा है वह पहले नंबर पर होगा। अपूर्वकरण के पहले समय से जो अनुभागकांडकोत्करण का काल शुरू हुआ था - एक अंतर्मुहूर्त - वह उससे बड़ा होगा। अनुभागकांडकघात कब तक हुआ ? सम्यक् प्रकृति की आठ वर्ष की स्थिति होने तक। आठ वर्ष की स्थिति हुयी उसके बाद अनुभागकांडकघात होना बंद हुआ तो

वहां उसका अंतिम अनुभागकांडकोत्करण काल पाया गया। यहां देखते हैं हम-सम्यक्त्वमोहनीय का तो अष्ट वर्ष स्थिति करने के समय से पहले समयों में पाये जानेवाला और आयु बिना अन्य कर्मों का अनिवृत्तिकरण काल के अंत भाग में पाया जानेवाला ऐसा अनुभागकांडकोत्करण काल असंख्यात आवली जो सबसे अल्प है। क्योंकि अन्य कर्मों में भी स्थितिकांडकघात, अनुभागकांडकघात होते हैं। उनका अनुभागकांडकघात तो और आगे चला। कब तक ? अनिवृत्तिकरण के अंत समय तक। सम्यक् प्रकृति का अनुभागकांडकघात कब रुका था ? जब उसकी आठ वर्ष स्थिति बाकी रही तब। बाद में प्रत्येक समय में अनुभाग का अपवर्तन हुआ था। इसलिये आठ वर्ष की स्थिति होने के पूर्ववाले अनुभागकांडकघात का काल, यहां काल की बात है; उसके लिये जितना काल लगता है वह अन्य कर्मों का छोटे में छोटा अनुभागकांडकोत्करण काल कब होता है ? अनिवृत्तिकरण के अंत समय में पाये जानेवाला उसका काल सबसे छोटा है। ये समान हैं और एक नंबर पर हैं। अन्य से यह छोटा है इसलिये इसको पहले रखकर अल्प से बहुत्व की ओर बात करेंगे अभी।

अब दूसरे नंबर पर इससे थोड़ा अधिक। थोड़ा अधिक तो कितना अधिक ? संख्यातवें भाग अधिक। क्या है कि अपूर्वकरण के शुरू में पहले ही समय से जो अनुभागकांडकोत्करण शुरू हुआ था, उसके लिये जितना काल लगा वह अंतिम अनुभागकांडकोत्करण काल से थोड़ा अधिक है। क्योंकि आगे-आगेवाले अनुभागकांडकघात होते रहे उसके लिये काल कम लगा क्योंकि वे छोटे-छोटे होते गये। तीसरे नंबर पर- अभी स्थितिकांडकोत्करण काल कहेंगे। हमने देखा था, संख्यात हजार अनुभागकांडकोत्करण होते हैं उतने काल में एक स्थितिकांडकोत्करण होता है। इसलिये उसको संख्यातगुणा काल कहा वह तीसरे नंबर पर है। वह कहां का स्थितिकांडकोत्करण है ? अनिवृत्तिकरण के अंत में जो स्थितिकांडकोत्करण हुआ था उसके लिये जो काल लगा था वह तीसरे नंबर पर है और अपूर्वकरण के शुरू में जो स्थितिकांडकोत्करण हुआ था उसका काल चौथे नंबर पर है।

अभी पांचवां नंबर देखेंगे- **उससे संख्यातगुणा कृतकृत्यवेदक का काल है।** हमने देखा था जब अनिवृत्तिकरण समाप्त हो जाता है तो एक अंतर्मुहूर्त प्रमाण कृतकृत्यवेदक का काल बाकी है। उसमें एक-एक समय में एक-एक निषेक खिरकर

उदय में आयेगा। यह अंतर्मुहूर्त उससे बड़ा है - पांचवें नंबर पर है। छठे नंबर पर **उससे संख्यातगुणा अष्ट वर्ष करने के समय से लेकर कृतकृत्यवेदक के अंत समय तक सम्यक्त्वमोहनीय की क्षपणा का काल है।** जब आठ वर्ष प्रमाण स्थिति रही, अब यहां से पूरी की पूरी क्षपणा होने के लिये कितना काल लगेगा ? वह जो अंतर्मुहूर्त है वह छठे नंबर पर आया। अब सातवें नंबर पर- **उससे संख्यातगुणा अनिवृत्तिकरण का काल है।** अनिवृत्तिकरण के प्रोसेस में ही आठ वर्ष की स्थिति की थी और आगेवाला प्रोसेस उसीमें ही हुआ था। अनिवृत्तिकरण का पूरा काल उससे भी संख्यातगुणा है।

संख्यातगुणा है, संख्यातगुणा अधिक नहीं कहना। चार से सोलह कितने गुणा है ? चारगुणा। चारगुणा अधिक कहेंगे तो चार प्लस सोलह कहना पड़ेगा, बीस हो जायेगा। अधिक शब्द नहीं डालना। गुणा वह बड़ा है, कितने गुणा है ? जहां अधिक होता है तो कितना अधिक उसमें मिलाना पड़ता है। चारगुणा अधिक नहीं कहेंगे, चारगुणा अधिक हो जाये तो चारगुणा करके मूल संख्या में मिलाना पड़ेगा। बस संख्यातगुणा इतना ही कह दिया। आठवें नंबर पर **उससे संख्यातगुणा अपूर्वकरण का काल है।** नौवें नंबर पर उससे संख्यातगुणा, नहीं, विशेष अधिक हो जायेगा। **उससे अनिवृत्तिकरण काल और उससे संख्यातवें भाग मात्र विशेष से अधिक अपूर्वकरण के प्रथम में जिसका प्रारंभ हुआ ऐसे गुणश्रेणी का आयाम है।** हमने देखा था, अपूर्वकरण के शुरू में जो गुणश्रेणी बनी थी, गलितावशेष बनी थी न ? कितनी बड़ी थी ? अपूर्वकरण का काल, प्लस अनिवृत्तिकरण का काल, प्लस उसका संख्यातवां भाग। इसके पहले हमने कौनसा देखा था ? अपूर्वकरण का काल देखा था। उससे यह काल बड़ा है।

अब दसवें नंबर पर- **उससे संख्यातगुणा सम्यक्त्वमोहनीय के द्विचरम स्थितिकांडक का आयाम है।** यह द्विचरम कहा, चरम नहीं कहा। क्योंकि हमने एक विशेषता देखी थी, आठ वर्ष की स्थिति होने पर स्थितिकांडक का आयाम अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्त है और वह द्विचरम तक घटते चला जायेगा। परंतु अंतिम कांडक बड़ा है इसलिये यहां द्विचरम को पहले लिया यानी दसवें नंबर पर। ये सारे अंतर्मुहूर्त ही हैं। एक से दूसरा कितना बड़ा है वह बता रहे हैं। ग्यारहवें नंबर पर- **उससे संख्यातगुणा**

सम्यक्त्वमोहनीय के अंत स्थितिकांडक का आयाम है। द्विचरम था उससे संख्यातगुणा अंतिम स्थितिकांडक का आयाम है। हमने देखा था न, उदयावली के ऊपर के गुणश्रेणी के शेष निषेक, वे सब उस कांडक में चले जायेंगे। बाहरवें नंबर पर- **उससे संख्यातगुणा सम्यक्त्वमोहनीय की अष्ट वर्ष स्थिति का प्रथम कांडक आयाम है।** वह छोटा-छोटा होता गया था और फिर अंतिम कांडक बड़ा हुआ था। परंतु जो अंतिम स्थितिकांडक है उससे भी आठ वर्ष की स्थिति होने के पश्चात् जो पहला स्थितिकांडक आयाम था वह भी अंतर्मुहूर्त का था, वह संख्यातगुणा है।

अब तेरहवें नंबर पर- **उससे संख्यातगुणा कृतकृत्यवेदक के प्रथम समय में पाये जानेवाले ज्ञानावरणादि कर्मों के स्थितिबंध का जघन्य आबाधाकाल है।** अपूर्वकरण से कृतकृत्यवेदक के प्रथम समय तक के काल में यह अल्पबहुत्व बता रहे हैं। यह कंपॅरेइज़न किसमें हो रही है ? अन्य-अन्य कालों में। अपूर्वकरण के शुरू में ज्ञानावरणादि का जितना बंध होगा, अब विशुद्धि बढ़ते-बढ़ते-बढ़ते कृतकृत्यवेदक के प्रथम समय में पहुंच गया। वहां पर भी ज्ञानावरण का स्थितिबंध हो रहा है तो कौनसा कम होगा ? शुरू में या लास्ट में ? लास्ट में क्योंकि विशुद्धि इतनी बढ़ी है तो उसका स्थितिबंध घटेगा। यहां जघन्य जब कहा है वह कम्पॅरेटिव्ह टर्मिनालॉजि है यानी इन दो के बीच में तुलनात्मक उसको यहां जघन्य कहा है। सर्वथा जघन्य वह दसवें गुणस्थान में हो जायेगा। उसकी बात नहीं है यहां पर, ख्याल में आयी बात ? हम बस अपूर्वकरण के शुरू से कृतकृत्यवेदक के शुरुआत तक इतने ही काल में अल्पबहुत्व देख रहे हैं।

अपूर्वकरण के शुरू में ज्ञानावरणादि का जो स्थितिबंध हो रहा था वह घटते-घटते-घटते-घटते कृतकृत्यवेदक के प्रथम समय में और घट गया है उसकी बात है। वह स्थितिबंध नहीं, उसकी आबाधा बता रहे हैं वह भी अंतर्मुहूर्त है क्योंकि ये सारे अंतर्मुहूर्त के प्रमाण चल रहे हैं। ज्ञानावरण का स्थितिबंध तो यहां पर भी अंतःकोड़ाकोड़ी सागर होगा। उसकी आबाधा का प्रमाण चल रहा है। फिर से पढ़ेंगे तेरह नंबर को- **उससे संख्यातगुणा कृतकृत्यवेदक के प्रथम समय में पाये जानेवाले ज्ञानावरणादि कर्मों के स्थितिबंध का जघन्य आबाधाकाल है।** और चौदहवें नंबर पर **उससे संख्यातगुणा अपूर्वकरण के प्रथम समय में पाये जानेवाले स्थितिबंध का कौनसे ? वही ज्ञानावरणादि के स्थितिबंध का उत्कृष्ट आबाधाकाल है।**

यहां तक प्रत्येक काल यथासंभव अंतर्मुहूर्त मात्र ही जानना। अभी तक तो ये सारे भेद अंतर्मुहूर्त के ही थे। एक से दूसरा कितना बड़ा वह बता दिया।

अब पंद्रहवें नंबर पर- **उससे संख्यातगुणी सम्यक्त्वमोहनीय की अवशेष अष्ट वर्ष प्रमाण स्थिति है।** अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्त देख रहे थे तो आठ वर्ष का प्रमाण अंतर्मुहूर्त से संख्यातगुणा है। यह बात ख्याल में आयी थी न ? अंतर्मुहूर्त को संख्यातगुणा करो तो आठ वर्ष की स्थिति मिल जायेगी। अब सोलहवें नंबर पर- **उससे असंख्यातगुणा सम्यक्त्वमोहनीय की आठ वर्ष मात्र स्थिति करने के लिये किया हुआ पल्य के असंख्यातवें भाग मात्र अंत का स्थितिकांडक आयाम है।** सम्यक् प्रकृति का जो अंतिम स्थितिकांडक आयाम है, जो फालि खिरकर नीचे आठ वर्ष में समा जानेवाली है उसकी लंबाई पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण है। इसलिये आठ वर्ष की तुलना में उसको असंख्यातगुणा कहा। सत्रह नंबर पर- **उससे उच्छिष्टावली से हीन अष्ट वर्ष मात्र विशेष से अधिक मिश्रमोहनीय का अंत का स्थितिकांडक आयाम है।**

देखो, क्या कहना चाहते हैं ? जब अंतिम दो फालि खिरी, किसकी ? एक मिश्रमोहनीय की और एक सम्यक् प्रकृति की। तब दोनों की स्थिति समान थी। परंतु मिश्रमोहनीय का कांडक कितना बड़ा हुआ ? नीचे केवल आवली छोड़ी और ऊपर का सर्व लिया और सम्यक् प्रकृति का कांडक कितना ? नीचे आठ वर्ष छोड़े और ऊपर का सर्व लिया - तो सम्यक्त्वमोहनीय के कांडक से मिश्रमोहनीय का कांडक कितना बड़ा है ? करीबन आठ वर्ष से इतना बड़ा है। है न, क्योंकि सम्यक् प्रकृति का कांडक छोटा हुआ, नीचे आठ वर्ष छोड़े और मिश्रमोहनीय के नीचे एक आवली छोड़ी। इतना दोनों में डिफरन्स है। ये सत्रह तक स्थान हो गये।

अठारहवें पर- **उससे असंख्यातगुणा अंत स्थितिकांडक की अंत फालि के द्रव्य को मिश्रमोहनीय में संक्रमण करके मिथ्यात्व का क्षय करने के समय के अनंतरवर्ती समय में पाया जानेवाला मिश्रमोहनीय और सम्यक्त्वमोहनीय का प्रथम स्थितिकांडक आयाम है।** जब यहां मिथ्यात्व की अंतिम कांडक की अंतिम फालि गिरनेवाली है, उस समय अन्य दो कर्मों की जो फालि है या उसका जो कांडक है, वह छोटा था। मिथ्यात्व का अंतिम कांडक है वह बड़ा है। यह बात अभी बतानी है

यानी इसका अर्थ क्या है ? जो प्रकृति क्षय होनेवाली है उसका कांडक बड़ा-बड़ा होता है और आगेवाली का एक बाकी है इसलिये उसका छोटा हो गया। उन्नीसवें में वह बताया- **उससे असंख्यातगुणा जिस काल में मिथ्यात्व का सत्त्वद्रव्य अंत कांडक प्रमाण अवशेष रहता है, उस काल में पाये जानेवाला मिश्रमोहनीय और सम्यक्त्वमोहनीय के अंत कांडक का आयाम है।** यहां यही बात बता रहे हैं सम्यक्त्वमोहनीय का और मिश्रमोहनीय का कौनसा कांडक ? कि जिस समय मिथ्यात्व का अंतिम कांडक है उस समय का उन दोनों का कांडक लिया।

उसके बाद बीस नंबर पर बताते हैं मिथ्यात्व का अंतिम कांडक- उन दो प्रकृतियों का कांडक होने के बाद नीचे की कितनी स्थिति अवशेष रही ? पल्य के असंख्यातवें भाग। उसको दो प्रकृतियों के कांडक में अधिक करने पर मिथ्यात्व के अंतिम कांडक का प्रमाण होता है। अब उसके डिटेल् में मैं इसलिये नहीं जा रही हूं कि एक-एक का प्रमाण बराबर ख्याल में आये बिना केवल पढ़ने से कुछ नहीं होगा। यह अल्पबहुत्व किसतरह से है उसका थोड़ा अंदाजा आवे इसलिये हम यह देख रहे हैं। पहले तो हमने अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्त में देखे, फिर आठ वर्ष को देखा, फिर पल्य के असंख्यातवें भाग को देखा। अभी वे पल्य के असंख्यातवें भाग के ही भेद हैं। एक से दूसरा कितना बड़ा है, उसकी बात यहां हो रही है।

आगे देखिये इक्कीसवें में- **उससे असंख्यातगुणा दर्शनमोहनीयत्रिक की दूरापकृष्टि नामक स्थिति में प्राप्त हुआ ऐसा पल्य के असंख्यात बहुभाग मात्र स्थितिकांडक आयाम है।** यहां दूरापकृष्टि के पश्चात् जो पहला स्थितिकांडक आयाम हुआ था, उसका प्रमाण मिथ्यात्व के अंतिम कांडक से भी असंख्यातगुणा है। बाईसवें में- **उससे संख्यातगुणा दूरापकृष्टि को कारण ऐसा पल्य के संख्यात बहुभाग मात्र स्थितिकांडक आयाम है।** यानी जिसके द्वारा दूरापकृष्टि हुयी थी, वह अंतिम कांडक का प्रमाण पल्य का संख्यात बहुभाग था उसकी बात यहां बता रहे हैं। तेईस पर- **उससे संख्यातगुणा पल्य मात्र अवशेष स्थिति होने पर पाया जानेवाला द्वितीय स्थितिकांडक का आयाम है।** प्रथम नहीं कहा, द्वितीय कहा। चौबीस पर- **उससे संख्यातगुणा पल्य मात्र स्थिति के कारणभूत ऐसा पल्य के संख्यातवें भाग मात्र स्थितिकांडक आयाम है।** हमने देखा था कि पहले से पल्य के संख्यातवें भाग -

संख्यातवें भाग घटते-घटते-घटते यह सब स्थिति घटी थी। तो जिसके कारण वह पल्य तक पहुंचा है, उस कांडक की बात कर रहे हैं।

पच्चीस पर- **उससे संख्यातगुणा अपूर्वकरण के प्रथम समय में प्रारंभ हुये ऐसे जघन्य स्थितिकांडक का आयाम है।** पहले हमने देखा था, स्थितिकांडकघात होने के लिये जितना समय लगता है उसको अंतर्मुहूर्त में बताया था। अभी स्थितिकांडक आयाम कितना है और उसको भी क्या नाम दिया ? जघन्य स्थितिकांडक आयाम। जिसकी स्थिति कम है उसका कांडक का आयाम भी छोटा है और जिसकी स्थिति ज्यादा है उसका कांडक का आयाम भी बड़ा है। छब्बीस पर- **उससे संख्यातगुणा पल्यमात्र अवशेष स्थिति में प्राप्त, ऐसा पल्य के संख्यात बहुभाग मात्र प्रथम कांडक का आयाम है।** यानी पल्य प्रमाण स्थिति होने के पश्चात् पहला स्थितिकांडक आयाम है, उसकी बात यहां बता रहे हैं। सत्ताईस पर- **उससे पल्य के संख्यातवें भाग मात्र विशेष से अधिक पल्य मात्र स्थितिसत्त्व है।** सत्ताईस नंबर पर हम पल्य तक पहुंच गये।

अभी तक के सारे भेद पल्य के असंख्यातवें भाग और संख्यातवें भाग के थे। अट्ठाईस पर- **उससे संख्यातगुणा अपूर्वकरण के प्रथम समय में जघन्य और उत्कृष्ट कांडकों के बीच के विशेष का प्रमाण यानी डिफरन्स का प्रमाण पल्य के संख्यातवें भाग से हीन पृथक्त्व सागर प्रमाण है।** यानी उसका डिफरन्स पृथक्त्व सागर है। हमने देखा था कि जिसकी स्थिति जघन्य है उसका कांडक छोटा है, जिसकी स्थिति उत्कृष्ट है उसका कांडक भी उत्कृष्ट है। तो जघन्यकांडक और उत्कृष्टकांडक के बीच में डिफरन्स कितना है ? तो कहते हैं बड़े कांडक का प्रमाण पृथक्त्व सागर है और छोटे कांडक का प्रमाण पल्य का संख्यातवां भाग है। उसमें से वह मायनस करेंगे तो इतना वहां डिफरन्स है।

उनतीस- **उससे संख्यातगुणा अनिवृत्तिकरण के प्रथम समय में पाया जानेवाला दर्शनमोह का स्थितिसत्त्व है।** हमने देखा था वह पृथक्त्व लक्ष सागर था है और बाद में घटते-घटते-घटते हजार सागर, सौ सागर वगैरह होता गया था। यह पृथक्त्व लक्ष सागर है, तीस- **उससे संख्यातगुणा कृतकृत्यवेदक के प्रथम समय में पाये जानेवाला दर्शनमोह बिना अन्य कर्मों का जघन्य स्थितिबंध है।** अन्य कर्मों

के बंध की बात है यहां पर। इकतीस- उससे संख्यातगुणा अपूर्वकरण के प्रथम समय में पाया जानेवाला उन्हीं कर्मों का उत्कृष्ट स्थितिबंध है। पहले हमने उनका आबाधाकाल देखा था, अभी उनका स्थितिबंध देख रहे हैं। बत्तीस- उससे संख्यातगुणा अनिवृत्तिकरण के अंत समय में पाया जानेवाला उन्हीं कर्मों का जघन्य स्थितिसत्त्व है। पहले बंध देखा अभी सत्त्व को देख रहे हैं। तैंतीस नंबर पर- उससे संख्यातगुणा अपूर्वकरण के प्रथम समय में पाया जानेवाला उन्हीं कर्मों का उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व है।

ऐसे ये जो अल्पबहुत्व हैं उनको बताया। अंतर्मुहूर्त आदि अल्पबहुत्व देखते हैं तो हमें अंदाजा आता है कि कौनसा काल छोटा है, कौनसा बड़ा है, कौनसा काल कहां पाया जाता है आदि उसकी विशेषतायें ख्याल में आ जाती है। अब अपना यह विषय यहां समाप्त होता है। पृष्ठ १३१ पर जो गाथायें हैं न, उनको पढ़कर फिर हम आगे बढ़ेंगे। हम संस्कृत में से पढ़ेंगे, आपको उसका अर्थ ठीक से भासित होगा।

**सप्तानां प्रकृतीनां क्षयात् क्षायिकं तु भवति सम्यक्त्वम्।
मेरुरिव निष्प्रकंपं सुनिर्मलमक्षयमनंतम्॥१६४॥**

एक-एक का अर्थ देखते हैं। 'सप्तानां प्रकृतीनां क्षयात्' यानी सात प्रकृतियों के क्षय से। 'सम्यक्त्वम् क्षायिकं तु भवति' यानी सम्यक्त्व जो है वह क्षायिक होता है। देखो, नीचे अर्थ लिखा है- अनंतानुबंधी चतुष्क और दर्शनमोहत्रिक इन सात प्रकृतियों के क्षय से क्षायिक सम्यक्त्व होता है। 'मेरुरिव निष्प्रकंपं' यानी मेरु के समान निष्कंप है अर्थात् निश्चल है। 'सुनिर्मलमक्षयमनंतम्' सुनिर्मलम् अर्थात् शंकादि मल से रहित है। वेदक सम्यक्त्व में हमने मल सहित देखा था- चल, मल, अगाढ़ दोष देखा था। इसलिये यहां चल नहीं, निश्चल है कहा। मल रहित है, इसलिये सुनिर्मल कहा। अक्षय अर्थात् शिथिलता के अभाव से गाढ़ा है। यानी अभी वह चलायमान नहीं होगा, जिसको कहेंगे कमजोर नहीं है, गाढ़ है, दृढ़ है। अब उसका कभी नाश नहीं होनेवाला, इसलिये अक्षय कहा। यानी जो वेदक सम्यक्त्व में चल, मल, अगाढ़ दोष थे; यहां चल के बदले निश्चल, निष्कंप कहा, मल से रहित सुनिर्मल कहा और वह अगाढ़ था, यह गाढ़ा है यानी उसके लिये अक्षय कह दिया। अनंत अर्थात् अंतरहित है। क्षायिक सम्यक्त्व कितने काल तक रहेगा ? श्रोता: अनंतकाल। अनंतकाल। चौदहवें

गुणस्थान तक तो है ही है। सिद्ध भगवान में भी यह क्षायिक सम्यक्त्व अनंत-अनंत-अनंतकाल रहनेवाला है। इसलिये उसको अंत रहित अनंत कह दिया। अब गाथा १६५ पढ़ेंगे।

दर्शनमोहे क्षपिते सिद्ध्यति तत्रैव तृतीयतुर्यभवे।

नातिक्रामति तुर्यभवं न विनश्यति शेषसम्यगिव ॥ १६५ ॥

यह तुर्य क्या होता है ? चतुर्थ-चतुर्थ। देखो- 'दर्शनमोहे क्षपिते' यानी दर्शनमोह का क्षय होने पर। 'सिद्ध्यति' यानी उसको मोक्ष प्राप्त हो जाता है, उसको सिद्ध पद प्राप्त होता है। कब ? 'तत्रैव' यानी उसी भव में या 'तृतीयभवे' तीसरे भवमें या 'तुर्यभवे' तुर्य यानी चतुर्थ भव में। हमने सुबह बात की थी न, या तो उसको उसी भव में मोक्ष होगा; तीसरे भव में कैसे हो सकता है ? देव में जाकर वापस आयेगा या नरक में जाकर वापस आयेगा तो यह तीसरे भव में हुआ। जो भोगभूमि का मनुष्य या तिर्यच होगा, उसके चतुर्थ भव में। जिस भव में सम्यक्त्व प्राप्त किया वह पहला भव, भोगभूमि का दूसरा, सौधर्म-ईशान स्वर्ग में तीसरा भव और चौथा भव फिर मनुष्य में तो उसका मोक्ष होगा ही। अभी उसके अधिक भव नहीं रहेंगे। यहां लिखा न, 'नातिक्रामति तुर्यभवं' यानी चौथा भव अतिक्रम नहीं करता। 'न विनश्यति' विनाश नहीं होता। किसके समान ? 'शेषसम्यगिव' शेष यानी जो औपशमिक और क्षायोपशमिक सम्यक्त्व हैं उनके समान इसका नाश नहीं होता। अब यहां नीचे अर्थ देखते हैं-

श्रोता: चौथा भव उल्लंघन नहीं करता यानी चौथे भव में ही... ? मोक्ष जायेगा ही। उसका उल्लंघन नहीं हो सकता। दर्शनमोह का क्षय होने पर उसी भव में या तीसरे भव में या मनुष्य, तिर्यच की पहले आयु बंधी हो तो भोगभूमि की अपेक्षा चौथे भव में सिद्ध पद प्राप्त करता है। चौथे भव को नहीं उल्लंघता। तथा औपशमिक और क्षायोपशमिक सम्यक्त्ववत् यह नाश को प्राप्त नहीं होता। औपशमिक सम्यक्त्व अंतर्मुहूर्त के लिये ही होता है। इसलिये उसका अंतर्मुहूर्त समाप्त हुआ तो वेदक हो जायेगा या वह दूसरे, पहले या तीसरे गुणस्थान में चला जायेगा। वेदक सम्यक्त्व की भी लिमिट है, अधिक से अधिक ६६ सागर तक रह सकता है। उसके बाद या तो क्षायिक हो जायेगा या तो अंतर्मुहूर्त पहले ही मिथ्यात्व या सम्यग्मिथ्यात्व में चला जायेगा। अब १६६ नंबर की गाथा-

सप्तानां प्रकृतीनां क्षयादवरा तु क्षायिकलब्धिस्तु।

उत्कृष्टक्षायिकलब्धिर्घातिचतुष्कक्षयेण भवेत् ॥ १६६ ॥

सात प्रकृतियों के क्षय से असंयत सम्यग्दृष्टि के यानी जो चौथे गुणस्थानवाला है उसके क्षायिक सम्यक्त्वरूप जघन्य क्षायिकलब्धि होती है। एक क्षायिक भाव उसका प्रगट हुआ है और चौथे गुणस्थानवाला है तो एक क्षायिक भाव में उसकी जघन्य क्षायिकलब्धि कहलायेगी। ऊपर के गुणस्थान में, उत्कृष्ट कब कहेंगे ? अरिहंत भगवान को। नौ क्षायिक भाव प्रगट होते हैं, तो उसको कहेंगे उत्कृष्ट क्षायिकलब्धि प्रगट हुयी। आगे लिखा है। चार घातिया कर्मों के क्षय से परमात्मा के केवलज्ञानादिरूप उत्कृष्ट क्षायिकलब्धि होती है। अभी जो हुयी है वह कैसी है ? जघन्य क्षायिकलब्धि। अब १६७ नंबर की गाथा।

उपनयतु मंगलं वो भविकजनान् जिनवरस्य क्रमकमलयुगं।

झषकुलिशकलशशक्थिकशशांकशंखांकुशादिलक्षणभरितम् ॥ १६७ ॥

देखो, इसका अर्थ मूल पुस्तक में नहीं था, परंतु बाय चान्स ऐसी बात हुयी कि हमारे जयधवला के अभ्यास में यही गाथा आयी थी। यह मूल कषाय प्राभृत की गाथा है। इसलिये वहां से यह अर्थ मैंने यहां लिख दिया है। देखो, नीचे लिखा है- **१६७ क्रमांक की गाथा भाषाटीका में नहीं है। उसका अर्थ यह है कि** दूसरी लाइन में ये सारे लक्षण बताये हैं। इन लक्षणों से सुशोभित ऐसा जो जिनवर का चरणकमल युगल है, वह 'भविकजनान्' यानी भव्यजनों को 'उपनयतु मंगलं' यानी मंगल प्रदान करें। ये कौनसे लक्षण बताये हैं ? मत्स्य, वज्र, कलश, शक्थिक यानी स्वस्तिक, शशांक यानी चंद्र, शंख और अंकुश। यहां तो दो-तीन ही लिखे हैं- **मत्स्य, वज्र, कलश, शंख आदि** परंतु आप गाथा में देखेंगे तो झष यानी मत्स्य, कुलिश यानी वज्र, कलश यानी कलश, फिर शक्थिक यानी स्वस्तिक, शशांक यानी चंद्र, फिर शंख और अंकुश। अष्ट मंगल अलग होते हैं, ये अष्ट मंगल द्रव्य नहीं हैं। ये जिनेन्द्र के चरणकमल पर शुभ चिह्न-लक्षण पाये जाते हैं उसका वर्णन है। **आदि नाना शुभ लक्षणों से सुशोभित जिनेन्द्र भगवान के चरणकमल भव्यजनों को मंगल प्रदान करें।** इसतरह से यहां पर क्षायिक सम्यक्त्व का प्ररूपण समाप्त होता है। यहां तक हमने दर्शनलब्धि संबंधी चर्चा

की। अब लब्धिसार में चारित्रलब्धि की बात शुरू होती है। उसमें भी दो भेद करेंगे- देशचारित्र और सकलचारित्र। १३२ पृष्ठ पर गाथा १६८ पढ़ेंगे।

दुविहा चरित्तलब्धी देसे सयले य देसचारित्तं।

मिच्छो अयदो सयलं तेवि व देसो य लब्भेई॥ १६८॥

चारित्र की लब्धि अर्थात् प्राप्ति वह चारित्रलब्धि है। वह देशचारित्र और सकलचारित्र के भेद से दो प्रकार की है। वहां देशचारित्र को मिथ्यादृष्टि या असंयत सम्यग्दृष्टि प्राप्त होता है। देशचारित्र कौनसे गुणस्थान में होता है ? श्रोता: पांचवें/ पांचवें तो पांचवें गुणस्थान में जानेवाला कौनसा है जीव ? श्रोता: पहले से पांचवें में जायेगा? पहले से पांचवें में जायेगा या चौथे से पांचवें में जायेगा। यहां इसलिये दो ही लिये कि देशचारित्र को मिथ्यादृष्टि या असंयत सम्यग्दृष्टि प्राप्त होता है। तथा सकलचारित्र को वे दोनों और देशसंयत प्राप्त होता है। यानी सातवें गुणस्थान में जानेवाला कौन है ? पहलेवाला है, चौथेवाला है या पांचवेंवाला है। इसका अर्थ तो सरल है। अब गाथा १६९-

अंतोमुहुत्तकाले देसवदी होहिदि त्ति मिच्छो हु।

सोसरणो सुज्झंतो करणं पि करेदि सगजोग्गं॥ १६९॥

अंतर्मुहूर्त काल पश्चात् जो देशव्रती होगा होगा की बात है यानी देशव्रती होने के अंतर्मुहूर्त पहले ऐसा मिथ्यादृष्टि जीव प्रतिसमय अनंतगुणी विशुद्धता से वर्धमान होता हुआ आयु बिना सात कर्मों का बंध और सत्त्व अंतःकोड़ाकोड़ी सागर मात्र अवशेष करने के द्वारा तो स्थितिबंधापसरण को करते हुये यानी जो अभी देशसंयम को प्राप्त करनेवाला है, एक अंतर्मुहूर्त पहले ही उसकी विशुद्धि बढ़ती चली जायेगी। वहां भी स्थितिबंधापसरण होगा। अंतःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण उसका स्थितिबंध होने लगेगा। उन्होंने सत्त्व को भी बताया - बंध भी और सत्त्व भी अंतःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण होता है। और अशुभ कर्मों का अनुभाग अनंतवें भाग मात्र करने के द्वारा अनुभागबंधापसरण को करते हुये यानी यह बंध की बात है। यहां होनेवाला अनुभागबंध कैसा होगा ? अनंतवें भाग हीन होगा क्योंकि अभी उसकी विशुद्धि इतनी बढ़ रही है कि वह अभी डायरेक्ट पांचवें गुणस्थान में जानेवाला है।

अपने करण योग्य परिणाम को करता है। एक अंतर्मुहूर्त तक विशुद्धि ऐसी बढ़ती चली जायेगी और फिर उसके योग्य जो करण परिणाम है उसको वहां प्राप्त होगा।
श्रोता: तीन करण करेगा ? तीन करण नहीं करेगा। वह बात बतायेंगे। औपशमिक सम्यक्त्व सहित जो पांचवें गुणस्थान को प्राप्त होता है, वह तीन करण करेगा। जो वेदक सम्यक्त्व सहित पांचवें गुणस्थान को प्राप्त होता है वह दो करण करेगा। यह बात अभी हम पढ़ेंगे यहां पर।

श्रोता: यहां जो मिथ्यादृष्टि लिखा... कौनसा ? **श्रोता:** फर्स्ट लाइन- अंतर्मुहूर्त काल पश्चात्...। हां देखो, अंतर्मुहूर्त काल पश्चात् जो देशव्रती होगा ऐसा मिथ्यादृष्टि जीव इसका अर्थ चाहिये ? जो कोई मिथ्यादृष्टि जीव है, वह क्या करता है ? वह थोड़े टाइम के बाद पांचवें गुणस्थान में जानेवाला है। उसके अंतर्मुहूर्त पहले क्या होगा ? उसकी विशुद्धि अनंतगुणी बढ़ती चली जायेगी। ऐसे ही कोई मिथ्यात्व में है, संक्लेश परिणाम कर रहा है और डायरेक्ट पांचवें में जायेगा ऐसा नहीं हो सकता। उसके पांचवें में जाने के पहले - करण परिणाम के पहले उसकी विशुद्धि बढ़ेगी इतनी बात है। विशुद्धि बढ़ते-बढ़ते फिर करण परिणाम होंगे और पश्चात् वह पांचवें गुणस्थान में जायेगा।
श्रोता: यहां पर तीनों करण होंगे, है न ? अभी सुनो, अभी यहां बतायेंगे। कोई औपशमिक के साथ पांचवें में जायेगा और कोई वेदक के साथ जायेगा। उनमें दो अलग-अलग बातें होगी वह अभी बतानेवाले हैं। देखो, हम यहां गाथा १७० पढ़ेंगे।

मिच्छो देसचरित्तं उवसमसम्मेण गिण्हमाणो हु।

सम्मत्तुप्पत्तिं वा तिकरणचरिमम्हि गेण्हदि हु॥ १७० ॥

अनादि या सादि मिथ्यादृष्टि जीव उपशम सम्यक्त्व सहित देशचारित्र को ग्रहण करता है, वहां दर्शनमोह के उपशमविधान का जैसे पहले वर्णन किया है, वैसे ही विधान द्वारा तीन करणों के अंत समय में देशचारित्र को ग्रहण करता है। यानी यह कौनसा जीव लिया ? औपशमिक सम्यक्त्व प्राप्त करनेवाला है। केवल औपशमिक सम्यक्त्व के साथ चौथे में नहीं गया, औपशमिक सम्यक्त्व भी प्राप्त किया और देशचारित्र भी। दोनों युगपत् किये उसने। ऐसा जीव औपशमिकवाला है न तो उसमें वे तीनों ही करण होंगे। अभी हमने प्रथमोपशम सम्यक्त्व के लिये जो तीनों करण देखे थे, वहां जो-जो बातें होती हैं वे सभी यहां पर भी होगी। **प्रकृतिबंधापसरण**

हमने देखे थे, प्रायोग्यलब्धि में ही हुये थे। **स्थितिबंधापसरण** वह तो बाद में भी चल रहे थे। **आदि जो कार्य विशेष वहां कहे हैं, वे सर्व होते हैं, विशेष कुछ नहीं है।** जैसे वहां प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त हुआ और चौथा गुणस्थान प्राप्त हुआ था, वैसे यहां प्रथमोपशम सम्यक्त्व सहित पांचवां गुणस्थान प्राप्त हुआ है। सारे प्रोसेसेस् जो वहां बताये थे वे यहां पर भी प्राप्त होंगे। अब आगे गाथा १७१ और १७२। *श्रोता: पांचों लब्धि पूर्वक ?* हां, प्रथमोपशम सम्यक्त्ववाला होगा तो पांचों लब्धि होगी, उनका वर्णन वैसे ही होगा, तीन करणलब्धि का वर्णन भी वैसा का वैसा होगा।

मिच्छो देसचरित्तं वेदगसम्मेण गेणहमाणो हु।

दुकरणचरिमे गेणहदि गुणसेढी णत्थि तक्करणे ॥ १७१ ॥

सम्मत्तुप्पत्तिं वा थोवबहुत्तं च होदि करणाणं।

ठिदिखंडसहस्सगदे अपुव्वकरणं समप्पदि हु ॥ १७२ ॥

देखो, गाथा १७० में क्या लिखा था ? तिकरणचरिमहि और गाथा १७१ में लिखा है दुकरणचरिमे, यहां दो ही करण होंगे। यह कौनसा जीव है ? वेदक सम्यक्त्व सहित पांचवें में जानेवाला है। अब इसकी टीका पढ़ेंगे। *श्रोता: वेदक सम्यक्त्व के लिये जीव को दो करण मांडना होगा ?* जीव को दो ही करण के द्वारा वेदक सम्यक्त्व की प्राप्ति होगी यानी जो मिथ्यात्व में से वेदक सम्यक्त्व प्राप्त करेगा या चौथे में से पांचवें में जायेगा वह दो करण से जायेगा। देखो, **सादि मिथ्यादृष्टि जीव** यह सादि की कंडिशन है क्योंकि डायरेक्ट वेदक कैसे होगा ? जिसकी सत्ता में केवल एक मिथ्यात्व प्रकृति ही है, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति नहीं है, उसको वेदक कैसे होगा ? डायरेक्ट नहीं हो सकता। तीन प्रकृति हैं तो सम्यक् प्रकृति का उदय होगा और बाकी दो पड़ी रहेंगी तभी हम उसको क्षयोपशम सम्यक्त्व या वेदक सम्यक्त्व कहेंगे। **सादि मिथ्यादृष्टि जीव, वेदक सम्यक्त्व सहित देशचारित्र को ग्रहण करता है उसके अधःकरण, अपूर्वकरण ये दो ही करण होते हैं, उनमें गुणश्रेणी निर्जरा नहीं होती।** हमने वहां देखा था, गुणश्रेणी निर्जरा, गुणसंक्रमण आदि जो कार्य बताये थे, वे यहां नहीं होंगे। प्रथमोपशम सम्यक्त्व के पहले अपूर्वकरण से ही गुणश्रेणी बनी थी, यहां नहीं बनेगी।

यहां अधःकरण और अपूर्वकरण दो करण हैं, फिर भी यहां अपूर्वकरण में

गुणश्रेणी की रचना नहीं होगी। वेदक सम्यक्त्व जब प्राप्त करता है तब यहां पर गुणश्रेणी की रचना नहीं होगी। **अन्य स्थितिखंडादि सर्व कार्य होते हैं, वह अपूर्वकरण के अंत समय में युगपत् वेदक सम्यक्त्व और देशचारित्र को ग्रहण करता है।** यानी यहां अनिवृत्तिकरण परिणाम नहीं होते, अपूर्वकरण के अंत में ही डायरेक्ट वेदक सम्यक्त्व की भी प्राप्ति होगी और देशसंयम की भी प्राप्ति हो जायेगी। **क्योंकि अनिवृत्तिकरण बिना ही इनकी प्राप्ति होती है।** वहां प्रथमोपशम सम्यक्त्व की उत्पत्तिवत् करणों का अल्पबहुत्व है, करणों का अल्पबहुत्व है यानी अधःप्रवृत्तकरण का काल बड़ा है, अपूर्वकरण का छोटा है। **इसलिये यहां अधःकरण काल से अपूर्वकरण का काल संख्यातवें भाग प्रमाण है। अपूर्वकरण के काल में संख्यात हजार स्थितिखंड होने पर अपूर्वकरण का काल समाप्त होता है।** यानी स्थितिकांडकघात होने का कार्य यहां चलेगा और उसके द्वारा बहुत सारी स्थिति घटायी जायेगी।

यह मिथ्यात्व में से देशसंयम प्राप्त करनेवाले की बात है और वह भी वेदक सम्यक्त्व सहित; सादि मिथ्यादृष्टि वेदक सम्यक्त्व सहित देशसंयम को प्राप्त होता है तो उसके लिये ये बातें बतायी कि दो ही करणों के द्वारा होगा। दो करण होने के पहले उसकी विशुद्धि बढ़ना वगैरह कार्य अंतर्मुहूर्त तक हो जायेगा। *श्रोता: दो करण सहित पांच लब्धि होगी ?* पांच लब्धि यहां नहीं होती। केवल विशुद्धि का बढ़ना होता है। यह सादि मिथ्यादृष्टि है और पांचों लब्धिवाली बात है वह मात्र प्रथमोपशम सम्यक्त्व में लगती है। *श्रोता: चौथे के अंत में फिर विशुद्धि बढ़कर दो करण होंगे ?* चौथे के अंत में ? *श्रोता: जैसे-जैसे विशुद्धि बढ़ेगी बाद में वह वेदक सम्यग्दृष्टि होगा ?* अभी वह वेदक सम्यग्दृष्टि नहीं है, अभी हमने मिथ्यादृष्टि लिया। अभी जिसकी बात की वह सादि मिथ्यादृष्टि था और वह सादि मिथ्यादृष्टि डायरेक्ट संयमासंयम प्राप्त करनेवाला है। मिथ्यात्व से वेदक सम्यक्त्व भी प्राप्त किया और देशसंयम भी प्राप्त किया ऐसा वह जीव लिया।

श्रोता: अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ... ? उनका देशसंयम में क्या होता है ? दो कषाय चौकड़ी के उदय का अभाव है। वहां उदय का अभाव हो जायेगा जिसको हम अप्रशस्त उपशम कहते हैं। वेदक सम्यक्त्व में अनंतानुबंधी की क्या

पोझिशन थी ? उदय में नहीं आ रहा था। औपशमिक सम्यक्त्व के काल में भी उदय में नहीं आ रहा था, एक समय ऊपर पड़ा था। अभी हम द्रव्यानुयोग में दो कषाय चौकड़ी का अभाव कहते हैं, यहां उसका उदय नहीं होगा, वह अभी सत्ता में तो है; उसका ऐसा ही अप्रशस्त उपशम होगा, उदय में नहीं आयेगा। उदय प्रत्याख्यानवरण और संज्वलन का चलेगा। *श्रोता: सम्यक्त्व के पहले अणुव्रत लेगा ?* हां, यह तो नियम है। देखो, जो पहले से पांचवें में जाता है उसने बुद्धिपूर्वक अणुव्रत ग्रहण किये हैं और बाद में उसका ऐसा पुरुषार्थ होगा। केवल अणुव्रत लिये हैं इसलिये वह पांचवें में जायेगा ऐसी बात नहीं है। परंतु उसके ऐसा पुरुषार्थ है कि उसके दो कषाय चौकड़ी के उदय का अभाव हुआ है, इतनी वीतरागता हुयी है तो उसके देशसंयम की प्राप्ति हुयी है। ऐसा नहीं कि पहले देशसंयम प्राप्त होगा और बाद में जाकर अणुव्रत ग्रहण करें - ऐसा नहीं है।

सकलसंयम के बारे में भी यही कंडिशन है कि पहले जीव मुनिदीक्षा अंगीकार करता है, भले मिथ्यादृष्टि हो और फिर उसे युगपत् सम्यक्त्व भी होता है और संयम भी होता है। संयम कब कहलायेगा ? पहले तो महाव्रत अंगीकार किये थे, संयम कब धारण हुआ ? जब सम्यक्त्व प्राप्त हुआ और उसके सम्यक्त्व सहित सातवां गुणस्थान हुआ तब हम कहेंगे अभी यह संयमी है। तब तक बाह्य में तो जो संयमियों के व्रत होते हैं वे उन्होंने अंगीकार किये हैं, फिर भी अभी उनको संयमी नाम कब दिया जायेगा ? जब उनके सातवां गुणस्थान प्रकट होगा तब। अभी यहां तो हम पांचवें की बात करते हैं। पांचवें गुणस्थान के योग्य जिसने अणुव्रतादि ग्रहण किये हैं, परंतु अभी जिसको सम्यग्दर्शन नहीं हुआ तो उसको देशचारित्र हुआ ऐसा कहेंगे कि नहीं कहेंगे ? नहीं कह सकते। अभी वह अविरत है, असंयमी है, पहले गुणस्थानवाला है - मिथ्यादृष्टि की बात है, असंयमी है। जब उसके सम्यक्त्व प्राप्त होगा और सम्यक्त्व सहित देशसंयम भी प्राप्त होगा तब हम कहेंगे यह देशसंयमी है। *श्रोता: दो करण के परिणाम से होगा न ?* हां, परंतु बाह्य में पहले व्रतों का अंगीकार होना ही चाहिये। अभी भी बाह्य में क्या देख रहे हैं हम ? व्रत कर रहा है। हम तो बाह्य की क्रिया देख-देखकर किसीका निर्णय करना चाहते हैं, परंतु उसके अंतरंग में क्या दशा है उसको यहां देखना है। हम आगम के द्वारा उसका स्वरूप निश्चित कर रहे हैं।

श्रोता: प्रतिमा लेने के बाद फिर चारित्र होता है क्या ? हां, प्रतिमा यानी कितनी प्रतिमा ? अभी पहली प्रतिमा है न दर्शनप्रतिमा, उसका अर्थ क्या है ? भगवान का दर्शन करना ? नहीं। श्रोता: सम्यग्दर्शन करना। सम्यग्दर्शन है और पांच स्थूल पापों का त्याग है वह दर्शनप्रतिमा है। किसीने बाहर में बहुत सारी प्रतिमायें अंगीकार की-दर्शनप्रतिमा ली, दूसरी ली, सातवीं ली जो कुछ यथायोग्य अंगीकार की, परंतु अगर अंतरंग में सम्यग्दर्शन नहीं है तो उसका गुणस्थान पहला है। इतनी बात ख्याल में आयी ? व्रत लेने का निषेध नहीं है। भले प्रतिमा अंगीकार करें, यह तो शुभभावरूप है। मिथ्यादृष्टि के भी व्रतों का अंगीकार करने का परिणाम होता है। यह शुभभाव है और यदि वह तत्त्व का जानकार है, तो वह जानता है कि मुझे अभी सम्यक्त्व नहीं हुआ है, परंतु उसके भाव हैं तो वह ग्रहण करता है। उसका निषेध नहीं है, वह तो करना ही चाहिये। मोक्षमार्गप्रकाशक में भी लिखा है। श्रोता: वह भी जिनागम में कहा है वैसे होना चाहिये ? हां, जिनागम में जैसा बताया है ऐसा ही होना चाहिये, बिलकुल।

जैसे श्रावक के व्रत बताये हैं वैसे ही होने चाहिये। वह जानता है कि अभी मैं सम्यग्दृष्टि नहीं हूं, व्रत अंगीकार करें उसका तो निषेध नहीं है। मोक्षमार्गप्रकाशक में बताया है कि श्रद्धान तो ऐसा ही रखना कि इससे उसका गुणस्थान नहीं बढ़नेवाला। परंतु जब तक ऐसा श्रद्धान नहीं होता है, कैसा श्रद्धान ? कि व्रत या शुभभाव करने से मोक्षमार्ग प्रकट नहीं होनेवाला है। फिर भी उसके व्रतों के परिणाम आते हैं और ऐसे काल में यदि वह तत्त्वविचार में लग जाये तो उसको सम्यक्त्व हो जायेगा। हो सकता है वह पहले से पांचवें में जाये, पहले मुनिव्रतादि अंगीकार हुये हैं तो हो सकता है पहले से सातवें में चला जाये। हो सकता है क्यों कहा ? मुनिव्रत लिया है इसलिये वह पहले से सातवें में ही जायेगा ऐसा नहीं है। नहीं तो वह बाह्य व्रत ही उसके कारण बन जायेंगे। ख्याल में आती है बात ? जैसा जिसका स्थिरता का पुरुषार्थ है वैसा उसको गुणस्थान प्रकट होगा। परंतु ऐसा नहीं कि घर में बैठे-बैठे ही सातवां गुणस्थान प्रकट हो जायेगा और बाद में जाकर मुनिदीक्षा लेगा - ऐसा नहीं है। घर में बैठे-बैठे ही होता है तो बाद में मुनिदीक्षा लेने की क्या आवश्यकता है ? घर में बैठे-बैठे केवलज्ञान भी हो जायेगा। जैसे अन्यमतवाले कोई मानते हैं गृहस्थ को केवलज्ञान होता है - वह बात सत्य नहीं है।

यहां तो हमें सभी गुणस्थानों का निर्णय करना है। अभी चौथे, पांचवें से लेकर

सिद्ध तक के सभी का स्वरूप कैसा है उसका हमें निर्णय करना है। वह ऐसा ही है, अन्यथा नहीं है - तत्त्वविचार में, तत्त्वनिर्णय में यह सब आ जायेगा। अपने को क्या करना है ऐसा नहीं चलेगा। हम दूसरे को नापने नहीं जा रहे हैं, परंतु अपनी मान्यता में उनका स्वरूप निश्चित है कि नहीं है ? ऐसा ही होता है, अन्यथा नहीं; देव का स्वरूप ऐसा ही होता है, अन्यथा नहीं यह अगर निश्चित किया है तो कुदेवादि की सेवा, भक्ति, पूजन करेगा कि नहीं करेगा ? जैसे सच्चे गुरु ऐसे ही होते हैं, अन्यथा नहीं यह निश्चित किया है, तो जो सच्चा गुरु नहीं हैं उसके पीछे लगेगा कि नहीं लगेगा ? यदि पक्का निर्णय हुआ है तो तीन काल में नहीं लगेगा। नहीं तो क्या करें ? हमारे घर के लोग जाते हैं तो हमें जाना पड़ता है, हमारे समाज के लोग जाते हैं तो हमें जाना पड़ता है, बाहर दिखाना पड़ता है - यह बात नहीं चलेगी। *श्रोता: नहीं चलेगी किसलिये ?* नहीं चलेगी मोक्षमार्ग के लिये। हां, चल ही रही है न, बाहर तो देखादेखी चल ही रही है। क्या करें ? समाज में रहना है, लोग क्या कहेंगे ? ऐसे डर से ये बातें चलती रहती हैं। यहां डर से क्या लेना देना है ? यह तो निःशंक होनेवाला है, उसके भय कैसा ?

श्रोता: जैसे पहले से चौथे में जाने की सहज व्यवस्था है वैसे पांचवें और सातवें में जाने की सहज व्यवस्था त्रिकालवर्ती जीवों की अपेक्षा से ? देखिये, आप भाईसाहब ऐसा कहते हैं औपशमिक सम्यक्त्व को सांतर मार्गणा कहते हैं। सांतर मार्गणा समझते हैं ? नहीं समझते। देखो-देखो, सांतर और निरंतर ऐसे दो शब्द आते हैं। जैसे हम गुणस्थानों की अपेक्षा देखते हैं, यह नानाजीवों की अपेक्षा बात है। नानाजीव यानी अनेक जीवों की अपेक्षा। ऐसे कौनसे गुणस्थान है जो त्रिकालवर्ती हमेशा ही पाये जायेंगे ? यानी अलग-अलग जीवों की अपेक्षा उस गुणस्थान में हमेशा जीव होंगे ही होंगे, ऐसे गुणस्थान कौनसे हैं बोलो ? पहला, चौथा, पांचवां, छठा, सातवां और तेरहवां। ये कैसे हैं ? निरंतर हैं। अब सांतर- दूसरे गुणस्थान में चारों गति की अपेक्षा कभी ऐसा भी अवसर आता है कि एक भी जीव दूसरे गुणस्थान में न हो। हो सकता है कम से कम एक समय तक, अधिक से अधिक पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण काल तक न हो। ऐसे ही तीसरे गुणस्थान में एक भी जीव न हो यह बात बन सकती है। ऐसे ही श्रेणी में कुछ काल तक कोई न हो ऐसे हो सकता है। ऐसे ही चौदहवें गुणस्थान में कुछ काल के लिये कोई न हो ऐसे हो सकता है। परंतु पहले गुणस्थान में हमेशा ही जीव

होंगे, चौथे में भी होंगे, पांचवें, छठे, सातवें में भी होंगे, तेरहवें में भी होंगे।

आपका प्रश्न है- औपशमिक सम्यक्त्व कैसी मार्गणा है ? सांतर मार्गणा है। कोई औपशमिक सम्यक्त्व प्राप्त करेगा तो अंतर्मुहूर्त तक ही रहेगा। ऐसा हो सकता है कोई अंतर्मुहूर्त में वेदक हो जायेगा, कोई गिरेगा - नीचे के गुणस्थानों में आयेगा। जिसके औपशमिक सम्यक्त्व है, ऐसे जीव क्या हमेशा ही होंगे ? तो कहते हैं नहीं, उसमें गॅप हो सकती है। अनेक जीवों की अपेक्षा कितना अंतर हो सकता है ? जघन्य अंतर एक समय और उत्कृष्ट अंतर सात दिन का है, किसके ? चौथे गुणस्थान की अपेक्षा अधिक से अधिक सात दिन में कोई न कोई जीव औपशमिक सम्यक्त्व प्राप्त करेगा ही करेगा। अधिक से अधिक चौदह दिन-रात में यानी जिसको हम चौदह दिन कहते हैं, कोई न कोई जीव औपशमिक सम्यक्त्व के साथ पांचवां गुणस्थान प्राप्त करेगा ही करेगा। फिर मुनि अवस्था- पंद्रह दिन रात कहीं वह चौबीस दिन का लिखा है, अधिक से अधिक पंद्रह दिनों में कोई न कोई जीव औपशमिक सम्यक्त्व के साथ मुनि अवस्था प्राप्त करेगा ही करेगा। बीच में अधिक से अधिक इतना लंबा अंतर हो सकता है यह बात है। अलग-अलग जीवों की अपेक्षा औपशमिक सम्यक्त्व का इतना लंबा अंतर हो सकता है। किसी एक जीव ने औपशमिक सम्यक्त्व प्राप्त किया है, उसका काल पूर्ण होने पर जब तक किसी अन्य जीव ने प्राप्त नहीं किया है उसे अंतर कहेंगे। अभी हम गुणस्थान को छोड़ेंगे - किसीके भी औपशमिक सम्यक्त्व नहीं हुआ ऐसा कितना लंबा काल हो सकता है ? सात दिन। सात दिन में चारों गति में से कोई न कोई जीव औपशमिक सम्यक्त्व प्राप्त करेगा ही करेगा।

वेदक सम्यग्दृष्टि जीव हमेशा ही रहेंगे। वेदक सम्यग्दृष्टि तिर्यच असंख्यात हैं, देव असंख्यात हैं, नारकी असंख्यात और मनुष्य संख्यात हैं। क्षायिक सम्यग्दृष्टि ? मनुष्य में पर्याप्त मनुष्य संख्यात होते हैं, तो संख्यात क्षायिक सम्यग्दृष्टि हैं। देवों में असंख्यात जीव क्षायिक सम्यग्दृष्टि हैं। पहले नरक में असंख्यात क्षायिक सम्यग्दृष्टि हैं क्योंकि कर्मभूमि से क्षायिक के साथ मरकर गये हैं। हर छह महीने और आठ समय में ६०८ जीव क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त करते हैं। जैसे मोक्ष जानेवाले के लिये नियम है, वैसे दर्शनमोह की क्षपणा के लिये भी यही नियम है कि हर छह महीने और आठ समय में ६०८ जीव दर्शनमोहनीय की क्षपणा करते हैं। इन ६०८ में से कुछ जीव तो उसी भव में

मोक्ष जायेंगे, कोई भोगभूमि में चले जायेंगे, कोई देव में जायेंगे, कोई नरक में। मान लेते हैं हर छह महीने में थोड़े-थोड़े जीव नरकों में, स्वर्गों में वगैरह जा रहे हैं। पहले नरक में जाते हैं तो वह अधिक से अधिक एक सागर जितना लंबा काल है ! इतने काल में वहां जो इकट्ठे हो जायेंगे, तो टोटल कितने हो जायेंगे ? वहां पहले नरक में असंख्यात नारकी क्षायिक सम्यग्दृष्टि हैं। सर्वार्थसिद्धि में तो संख्यात जीव होते हैं, परंतु प्रत्येक स्वर्ग में असंख्यात क्षायिक सम्यग्दृष्टि हैं।

भोगभूमि में तिर्यच कितने हैं ? वहां उत्कृष्ट आयु तीन पल्य की है। कर्मभूमि से क्षायिक लेकर मरकर जायेंगे, हर छह महीने में थोड़े-थोड़े जायेंगे; पांच छह भी जायेंगे तो फिर इतने लंबे काल में संचय होगा तो वे भी असंख्यात हो जाते हैं। मनुष्य कितने होंगे भोगभूमि के ? संख्यात होंगे की असंख्यात ? मनुष्य संख्यात ही होते हैं। उसमें क्षायिक सम्यग्दृष्टि भी संख्यात ही होंगे। ख्याल में आती है बात ? अब मनुष्यों में क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीवों का गुणस्थान कौनसा है कोई बतायेगा ? श्रोता: चौथा। चौथा, हां। श्रोता: पांचवां, छठा, सातवां। पांचवां, सातवां, बस ! ऊपर का भी। तो चार से अभी गुणस्थान पूछा है, चार से चौदह तक। मेरा प्रश्न है तिर्यचों में गुणस्थान कौन-कौनसे होंगे ? श्रोता: चौथा और पांचवां होगा। यह कहां जाते हैं क्षायिक लेकर ? भोगभूमि में। और भोगभूमि में गुणस्थान कौनसे होते हैं ? श्रोता: चौथा। तो तिर्यचों में क्षायिक सम्यग्दृष्टि तिर्यचों को पांचवां गुणस्थान नहीं हो सकता।

श्रोता: स्वयंभूरमण की बात आती है न ? वहां वेदक सम्यक्त्व होता है, मैं क्षायिक की बात कर रही हूं। क्षायिक लेकर मात्र भोगभूमि का तिर्यच होगा, कर्मभूमि का नहीं और वहां चौथा ही गुणस्थान होगा। तिर्यचों में क्षायिक सम्यक्त्व के साथ पांचवां गुणस्थान होगा ही नहीं। ख्याल में आती है बात ? क्षायिकवाला मनुष्य कहां का तिर्यच होता है ? भोगभूमि का। भोगभूमि में मॅक्झिमम गुणस्थान कौनसा है ? तो चौथा। अब वह क्षायिक लेकर भोगभूमि का तिर्यच हुआ है, तो तीन पल्य तक चौथे गुणस्थान में ही रहेगा। वहां से नियम से सौधर्म-ईशान स्वर्ग में ही जायेगा। वहां भी जितनी उसकी आयु है, क्षायिक सम्यग्दृष्टि चौथे गुणस्थानवाला रहा। फिर मनुष्य में आयेगा। हां, अभी आठ वर्ष के बाद जब गुणस्थान पलटना है - इस भव में तो उसको मोक्ष जाना ही है तो संयम भी धारण करेगा, श्रेणी भी चढ़ेगा और मोक्ष भी प्राप्त करेगा।

तिर्यचों में क्षायिक के साथ पांचवां गुणस्थान नहीं हो सकता यह नियम है।

श्रोता: वेदक के साथ हो सकता है ? बिलकुल होता है। वेदक क्या औपशमिक के साथ भी होता है। तिर्यचों में वेदक सम्यग्दृष्टि और औपशमिक सम्यग्दृष्टि के पांचवें गुणस्थान तक का पुरुषार्थ होता है। सम्मूर्च्छन हो उनको भी औपशमिक नहीं, वेदक के साथ पांचवां होता है। भोगभूमि में मात्र चौथा ही गुणस्थान है, भोगभूमि की यह विशेषता है। *श्रोता: गुरुदेवश्री कहते थे न ऐसा।* गुरुदेवश्री कहते थे न स्वयंभूरमण की बात ? वहां तो कर्मभूमि है और कर्मभूमि के जीवों को पांचवां गुणस्थान हो सकता है। वह तिर्यचों की कर्मभूमि है, मनुष्यों की नहीं है। मनुष्य तो ढाईद्वीप में हैं - मनुष्यलोक में हैं और वहां अंतिम स्वयंभूरमण समुद्र और उसके पहले का स्वयंभूरमण द्वीप का परभाग, आधा भाग - वहां तिर्यचों की कर्मभूमि है और वहां असंख्यात सम्यग्दृष्टि तिर्यच पांचवें गुणस्थानवर्ती भी हैं। बीचवाले असंख्यात द्वीपों में तिर्यचों की जघन्य भोगभूमि है, वहां चौथे गुणस्थानवाले हो सकते हैं। हो सकते हैं मैंने कहा, वहां जाने के बाद प्राप्त कर सकते हैं। इतनी बात ख्याल में आयी ?

श्रोता: गुणसंक्रमण ? यहां गुणसंक्रमण भी नहीं है, हां, यहां पर नहीं है। अभी तो वेदक सम्यक्त्व के साथ गुणश्रेणी भी नहीं होती। *श्रोता: विध्यातसंक्रमण चलता है ?* हां, वह बाद में चलेगा। जब सम्यक्त्व सहित प्राप्त होगा तब चलेगा। *श्रोता: जो वेदक है, वह तो कर रहा है ?* वेदक पहले नहीं कर रहा है न ! *श्रोता: नहीं, जो चौथे से पांचवें में जा रहा है ?* हां, चौथा गुणस्थानवर्ती कर रहा है पर वह चौथे के योग्य कर रहा है। पांचवें के योग्य जब पांचवां गुणस्थान प्राप्त होगा तब वह करेगा। अभी तो हमने मिथ्यात्व से पांचवें में जानेवाले की बात पढ़ी। अभी यह असंयत की बात यहां देख रहे हैं। अभी तो समय हुआ है। थोड़ी देर के बाद मिलेंगे हम।

बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

२९. देशसंयत के स्थान

आचार्य श्री नेमिचन्द्र सिद्धांतचक्रवर्ती ने इस लब्धिसार ग्रंथ की रचना की है। उसीके आधार से पं. टोडरमलजी ने सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका लब्धिसार-क्षपणासार भाषाटीका ढूंढ़ारी भाषा में लिखी है और उसका हिंदी अनुवाद हम यहां देख रहे हैं। अभी चारित्रलब्धि के प्रकरण में देशचारित्र का प्रकरण यहां चल रहा है।

हमने देखा था देशचारित्र कौनसा जीव प्राप्त करता है ? पहले गुणस्थानवाला पांचवें में जायेगा या चौथेवाला पांचवें में जायेगा। कैसे जा सकता है ? पहले से पांचवें में जानेवाला औपशमिक सम्यक्त्व के साथ जायेगा। जो ऑलरेडि सम्यग्दृष्टि है और जो चौथे से पांचवें में जानेवाला है वह तो वेदक सम्यग्दृष्टि होगा तो चौथे से पांचवें में भी जायेगा। उसके देशचारित्र की प्राप्ति होती है। पहले से पांचवें में जानेवाले औपशमिक सम्यग्दृष्टि की बात तो हमने विस्तार से देख ली है। वहां क्या-क्या बातें होती हैं उसकी भी चर्चा की है। अब वेदक सम्यक्त्व सहित जो पांचवां गुणस्थान प्राप्त करता है उसके लिये यह बात हो रही है। वह दो करण से वेदक सम्यक्त्व प्राप्त करता है और वह कौनसा मिथ्यादृष्टि है ? सादि मिथ्यादृष्टि है। सादि मिथ्यादृष्टि दो करणपूर्वक वेदक सम्यक्त्व सहित देशसंयम को प्राप्त होता है। इतनी बात हमने देखी थी। ये दो करण कौनसे ? पहलेवाले कि बादवाले ? *श्रोता: बादवाले*। नहीं, अधःकरण और अपूर्वकरण इन दो करणों के द्वारा यह कार्य होता है। दूसरी बात क्या बतायी थी ? यहां गुणश्रेणी की रचना नहीं होती। यहां पर गुणसंक्रमण होने का सवाल ही नहीं है। सम्यक्त्व प्राप्त करने की पूर्व अवस्था में यहां ये बातें नहीं होंगी। क्या-क्या होता है अभी हम देखेंगे।

पृष्ठ १३३ पर गाथा १७१, १७२ की टीका, नीचे का पॅरेग्राफ पढ़ेंगे। **इसीतरह असंयत वेदक सम्यग्दृष्टि भी जो वेदक सम्यग्दृष्टि है उसकी बात चल रही है। दो करण के अंत समय में देशचारित्र को प्राप्त होता है।** पहला तो मिथ्यादृष्टि लिया था। सादि मिथ्यादृष्टि वेदक सम्यक्त्व सहित देशचारित्र प्राप्त करता है उसको लिया था। अब यहां ऑलरेडि जो वेदक सम्यग्दृष्टि है परंतु वह चौथे गुणस्थानवाला है, वह भी दो करण करके, दो करण के अंत समय में देशचारित्र को प्राप्त करेगा। **मिथ्यादृष्टि ही के व्याख्यान से सिद्धांत के अनुसार असंयत का भी ग्रहण करना।** यानी जैसे मिथ्यादृष्टि दो करण करके वेदक सम्यक्त्व सहित देशचारित्र को अंगीकार करता है

ऐसे ही असंयत वेदक सम्यग्दृष्टि जो है वह भी दो करण करके, उसके पश्चात् देशचारित्र को अंगीकार करता है। **यहां उपशम सम्यक्त्व का तो अभाव है** क्योंकि यह वेदक सम्यग्दृष्टि है **इसलिये उस संबंधी गुणश्रेणी नहीं है।** उपशम के लिये जो गुणश्रेणी की जाती है वह यहां नहीं होगी।

और देशसंयत का अब तक ग्रहण हुआ नहीं है क्या कहना चाहते हैं ? ये दो करण कब होते हैं ? देशसंयम प्राप्त करने के पूर्व में होते हैं। यहां औपशमिक सम्यग्दृष्टि होगा तो गुणश्रेणी करता है। अब यहां तो वेदक सम्यग्दृष्टि है या सादि मिथ्यादृष्टि है। तो उनके गुणश्रेणी की रचना नहीं होगी। आपने-हमने तो सुना है कि पांचवें गुणस्थान से गुणश्रेणी की रचना निरंतर रहती ही है। हां, परंतु इसने अभी पांचवां गुणस्थान प्राप्त नहीं किया है। इसलिये देशसंयम संबंधी जो गुणश्रेणी बनेगी वह देशसंयम प्राप्त होने के उस समय से होगी, अभी नहीं होगी। देशसंयम प्राप्त करने के पहले अधःकरण और अपूर्वकरण किये, परंतु यहां वेदक सम्यक्त्व गुणश्रेणी का कारण नहीं है, औपशमिक सम्यक्त्व है। इसलिये प्रथमोपशम करने के पहले गुणश्रेणी की रचना हुयी थी, यहां वेदक सम्यक्त्व के पहले नहीं होगी।

देखो, फिर इस वाक्य को पढ़ेंगे हम- **यहां उपशम सम्यक्त्व का तो अभाव है, इसलिये उस संबंधी गुणश्रेणी नहीं है और देशसंयत का अब तक ग्रहण हुआ नहीं है।** क्योंकि अब तक दो करण चल रहे हैं, उसके बाद देशसंयम का ग्रहण होगा। अब तक ग्रहण नहीं हुआ है। **इसलिये उस संबंधी** यानी देशसंयम संबंधी **गुणश्रेणी नहीं है तथा वेदक सम्यक्त्व गुणश्रेणी का कारण नहीं है इसलिये यहां अपूर्वकरण में गुणश्रेणी का अभाव कहा है।** यहां दो करण होते हैं- अधःकरण और अपूर्वकरण। अन्यत्र जहां-जहां तीन करण की बात आती है वहां अपूर्वकरण से ही गुणश्रेणी आदि कार्य शुरू होते हैं। परंतु वेदक सम्यक्त्व में ऐसी गुणश्रेणी की रचना नहीं होती यह महत्व की बात यहां बता रहे हैं।

कर्मों के उपशम और क्षय विधान ही में अनिवृत्तिकरण होता है। देखो यह नियम बता रहे हैं। यहां कर्मों का ना उपशम हो रहा है ना क्षय हो रहा है, यहां तो क्षयोपशमरूप अवस्था चलेगी। वेदक सम्यक्त्व यानी सम्यक्त्व संबंधी तो क्षयोपशम अवस्था चल रही है। जहां-जहां कर्मों की उपशम अवस्था होती है या जहां उनका क्षय

होता है; जैसे हमने देखा था प्रथमोपशम सम्यक्त्व होता है, दर्शनमोहनीय का उपशम हो रहा है या क्षायिक सम्यक्त्व होता है तो दर्शनमोहनीय का क्षय हो रहा है, अनंतानुबंधी की विसंयोजना होती है - उसका सत्ता में से नाश हो रहा है तो वहां अनिवृत्तिकरण परिणाम होते हैं। जहां-जहां कर्मों की उपशम या क्षय अवस्था होगी उसी विधान में यानी उसी प्रोसेस में अनिवृत्तिकरण होता है। **क्षयोपशम में नहीं होता, इसलिये अनिवृत्तिकरण नहीं कहा।** यानी जब-जब वेदक सम्यक्त्व होता है वहां अनिवृत्तिकरण के परिणाम नहीं होंगे यह बात यहां नक्की हो जाती है। दो ही करण करके सादि मिथ्यादृष्टि जीव वेदक सम्यक्त्व को प्राप्त करता है। इसलिये ना ही यहां अनिवृत्तिकरण है और ना ही यहां गुणश्रेणी है। अभी हम आगे की गाथा देखते हैं-

से काले देसवदी असंखसमयप्पबद्धमाहरियं।

उदयावलिस्स बाहिं गुणसेढीमवट्ठिदं कुणदि ॥ १७३ ॥

अपूर्वकरण के अंत समय के अनंतरवर्ती समय में अपूर्वकरण समाप्त हुआ। फिर नेक्स्ट समय में वह देशव्रती - देशसंयमी होनेवाला है। तो **जीव देशव्रती होकर अपने देशव्रत के काल में।** देशव्रत कहो, देशविरत कहो, देशसंयत कहो, पांचवां गुणस्थान कहो एक ही बात है। **आयु बिना अन्य कर्मों के।** अभी यह क्या करनेवाला है ? गुणश्रेणी बनायेगा। क्यों ? क्योंकि यह पांचवें गुणस्थान का लक्षण है। यहां गुणश्रेणी हमेशा ही रहेगी। और वह कैसी रहेगी ? अवस्थित रहेगी। जब तक पांचवां गुणस्थान चलता है, तब तक गुणश्रेणी उतनी की उतनी चलेगी। वह गलितावशेष नहीं है। नीचे से एक निषेक निकल जायेगा, ऊपर से एक निषेक उसमें आ मिलेगा। जब तक पांचवां गुणस्थान है तब तक पांचवें गुणस्थान के योग्य गुणश्रेणी चलती रहेगी। देखो, यहां क्या कहते हैं ? कौनसे कर्मों में होगी ? आयु छोड़कर अन्य सभी कर्मों में होगी।

आयु बिना सर्व कर्मों के सत्त्वद्रव्य को अपकर्षण भागहार मात्र असंख्यात का भाग देकर एकभाग में असंख्यात समयप्रबद्ध प्रमाण द्रव्य को ग्रहण कर। यह टोटल अपकर्षित द्रव्य की व्हॅल्यू है, उदयावली में देनेवाले द्रव्य की नहीं। असंख्यात समयों के निषेकों में से थोड़ा-थोड़ा द्रव्य निकाला है तो उसकी टोटल कितनी है ? असंख्यात समयप्रबद्ध प्रमाण है। **उसको पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर**

बहुभाग उपरितन स्थिति में देता है, यह हमने पहले भी देखा था। अवशेष एकभाग को असंख्यातलोक का देकर एकभाग उदयावली में देता है। उदयावली में अभी भागहार बहुत बड़ा है, वह छोटा हो जाता है तो बहुत सारा द्रव्य उदयावली में आता है, अभी वह बात यहां नहीं है। **और बहुभाग असंख्यात समयप्रबद्ध मात्र है, उसे गुणश्रेणी आयाम में देता है।** जो यथायोग्य अंतर्मुहूर्त प्रमाण यहां का गुणश्रेणी आयाम है उन निषेकों में इतना सारा द्रव्य असंख्यातगुणा क्रम से दिया जायेगा, निक्षेपण किया जायेगा। **यह गुणश्रेणी आयाम अवस्थित है,** अवस्थित का अर्थ गुणश्रेणी उतनी की उतनी रहेगी। एक निषेक गल जायेगा तो ऊपर का एक निषेक इसमें गुणश्रेणीरूप से आ जायेगा। **गलितावशेष नहीं है तथा प्रथमोपशम सम्यक्त्व संबंधी गुणश्रेणी आयाम से संख्यातगुणा हीन है।**

हमने देखे थे- असंख्यातगुणा निर्जरा के जो स्थान तत्त्वार्थसूत्र में बताये हैं उसमें पहले में पहले प्रथमोपशमवाला लिया और फिर श्रावक लिया- पांचवां गुणस्थान देशव्रतीवाला। उसकी गुणश्रेणी का आयाम छोटा और गुणश्रेणी निर्जरा का प्रमाण असंख्यातगुणा होता है। **इसतरह देशव्रती होकर उदयावली से बाह्य अवस्थित गुणश्रेणी करता है।** यह बात ख्याल में आयी ? अपकर्षित द्रव्य जो है उसमें से कुछ द्रव्य उदयावली के निषेक छोड़कर उसके ऊपर गुणश्रेणी में असंख्यातगुणा क्रम से दिया जायेगा और उतना द्रव्य जब नीचे आयेगा, खिर जायेगा तो उसकी अधिक-अधिक मात्रा में द्रव्यनिर्जरा हो जायेगी। हमेशा मिथ्यादृष्टि को क्या होता था ? एक समयप्रबद्ध बंधता था, एक समयप्रबद्ध खिरता था। जब गुणश्रेणीरूप रचना होती है तो उसकी निर्जरा अधिक मात्रा में होने लगती है। अब गाथा १७४-

द्वं असंखगुणियक्कमेण एयंतवड्ढिकालो त्ति।

बहुठिदिखंडे तीदे अधापवत्तो हवे देसो ॥ १७४ ॥

देखो, जब पांचवां गुणस्थान प्राप्त होता है तब शुरू में जीव की विशुद्धि बढ़ती जाती है उसको कहेंगे एकांतवृद्धि। एकांतवृद्धि के बाद उसका पांचवां गुणस्थान चालू रहता है उसको कहेंगे स्वस्थान देशसंयत या अधाप्रवृत्त देशसंयत- उसके दो नाम हैं - उसीको अधाप्रवृत्त कहेंगे। पहले अंतर्मुहूर्त तक उसकी विशुद्धि प्रतिसमय अनंतगुणा बढ़ती जाती है उसको एकांतवृद्धि कहते हैं यानी उसकी विशुद्धि बढ़ती-बढ़ती-बढ़ती

जाती है। उसके बाद हीनाधिक होती है, केवल स्टेडी नहीं; उसमें हीनाधिक भी होगी तो उसको कहेंगे अधाप्रवृत्त या स्वस्थान देशसंयत। पहलेवाला कौनसा ? एकांतवृद्धिवाला। अब यहां पढ़ेंगे - **देशसंयत के प्रथम समय से लेकर अंतर्मुहूर्त तक प्रतिसमय अनंतगुणी विशुद्धता बढ़ती है, इसको एकांतवृद्धि कहते हैं।** पहले अधःप्रवृत्तकरण यानी अधःकरण और अपूर्वकरण करके आया है वहां तो विशुद्धि बढ़ी ही थी, परंतु अभी पांचवें गुणस्थान को यानी देशसंयम को प्राप्त होने पर भी शुरू के काल में उसकी विशुद्धि बढ़ रही है उसको कहेंगे एकांतवृद्धि। **इस काल में प्रतिसमय असंख्यातगुणा क्रम से द्रव्य को अपकर्षण करके अवस्थित गुणश्रेणी आयाम में निक्षेपण करता है।** इसका अर्थ क्या है ? कितना द्रव्य नीचे आता है ? प्रतिसमय असंख्यातगुणा। क्यों ? क्योंकि विशुद्धि अनंतगुणी-अनंतगुणी-अनंतगुणी बढ़ रही है। यह कितने काल तक चलेगा ? एक अंतर्मुहूर्त तक।

श्रोता: चाहे उपशमवाला हो चाहे वेदकवाला हो ? अभी हम वेदक की बात कर रहे हैं। प्रथमोपशम में हमने क्या देखा ? उसमें गुणसंक्रमण वगैरह सब बताना पड़ेगा। अब यहां हम केवल एकांतवृद्धि की बात कर रहे हैं। **वहां एकांतवृद्धि के काल में स्थितिकांडकादि कार्य होते हैं।** क्योंकि विशुद्धि बढ़ रही है न ? तो वे कार्य होते हैं। बहुत से स्थितिखंड होने पर एकांतवृद्धि का काल समाप्त होने के अनंतर विशुद्धता की वृद्धि से रहित होकर, अब उसको क्या कहेंगे ? **स्वस्थान देशसंयत होता है, इसको अधाप्रवृत्त देशसंयत भी कहते हैं।** अधाप्रवृत्त कहो या स्वस्थान कहो एक ही बात है। **उसका जघन्य काल अंतर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल देशोन देश उन यानी कुछ कम कोड़िपूर्व वर्ष प्रमाण है।** यह करोड़ पूर्व वर्ष में कुछ कम कैसा है ? वह यहां विशेषार्थ में समझाया है। देखो, हम पढ़ेंगे इसको। **कोई जीव देशसंयत गुणस्थान में कम से कम काल तक रहेगा तो अंतर्मुहूर्त प्रमाण रहेगा ही।** यानी किसीने देशसंयम प्राप्त किया है तो दो-चार समय में गिर जाये ये बात नहीं हो सकती। इसमें आया और तत्काल ऊपर सातवें में चला गया ऐसा भी नहीं होगा। इसमें आते ही मरण भी नहीं होगा। एक अंतर्मुहूर्त काल तक तो इसमें रहेगा ही रहेगा इसको कहेंगे जघन्य काल - देशसंयम का जघन्य काल।

उत्कृष्ट काल के बारे में देखते हैं- अभी हम उत्कृष्ट काल कैसे गिनेंगे ?

जिसने करोड़ पूर्व की आयु में जल्दी से जल्दी वेदक सम्यक्त्व सहित पांचवां गुणस्थान प्राप्त किया है और अंत तक रहा है। देशसंयत गुणस्थान कर्मभूमि के मनुष्य और तिर्यचों में ही होता है। क्योंकि भोगभूमिवालों के पांचवां गुणस्थान प्राप्त नहीं होता **जिनकी उत्कृष्ट आयु करोड़ पूर्व की हो सकती है। मनुष्यों में जन्म से आठ वर्ष के पश्चात् और सम्मूर्च्छन तिर्यचों में अंतर्मुहूर्त पश्चात्** देखो क्या कहते हैं ? क्योंकि मनुष्य कैसे हैं ? गर्भज हैं। गर्भ में पहले तो ९ महीने या ७ महीने जो कुछ यथायोग्य चले जायेंगे। फिर आठ वर्ष का हो जाये उसके पश्चात् उसको सम्यक्त्व होगा या पहले से सम्यग्दृष्टि होगा तो चौथे में से पांचवें गुणस्थान में आयेगा - उसके पहले नहीं, एक बात। परंतु सम्मूर्च्छन तिर्यचों में हमने देखा था जो सादि मिथ्यादृष्टि है, अंतर्मुहूर्त में पर्याप्ति पूर्ण होकर पर्याप्त हो जाता है और उसके पश्चात् एक अंतर्मुहूर्त में विशुद्धि बढ़कर वेदक सम्यक्त्व प्राप्त कर सकता है। एकसाथ सम्यक्त्व और पांचवां गुणस्थान हो सकता है। **सम्मूर्च्छन तिर्यचों में अंतर्मुहूर्त पश्चात् देशसंयत की प्राप्ति हो सकती है। इसलिये कुछ कम करोड़ पूर्व कहा।** उन सम्मूर्च्छन तिर्यचों में अंतर्मुहूर्त कम करोड़ पूर्व देशसंयम में रहने का उत्कृष्ट काल है। बाद में क्या होगा ? मरकर देव होंगे। वह तिर्यच मरकर देव होगा न ? तब चौथे गुणस्थान में जायेगा।

श्रोता: सम्मूर्च्छन पंचेन्द्रिय वहां एक करोड़ पूर्व रहता है तो वह वहां क्या करता है ? क्या करता है ? आप क्या करते हैं ? हम क्या करते हैं ? वह आयु कब कम्प्लीट हो जायेगी गिनता बैठता होगा ? क्या करता है ? अपनी आयु भोगता है उसमें क्या है ? हमें ऐसा लगता है क्या करता है ! सबके प्रश्न ऐसे होते हैं। देखो, आपका अभी प्रश्न था न ? किसी देव ने तिर्यच आयु बांधी है। अब वह देव क्या करेगा ? क्योंकि वहां देव को कौनसा सम्यक्त्व होगा ? औपशमिक या वेदक। पहले उसने तिर्यच आयु बांधी थी। बाद में औपशमिक के बाद या सीधे वेदक सम्यग्दृष्टि हो जाये तो अभी वह वेदक सम्यक्त्व के साथ कर्मभूमि का या भोगभूमि का तिर्यच होगा कि नहीं ? सम्यक्त्व के साथ उत्पन्न होगा कि नहीं होगा ? नहीं होगा। क्योंकि तिर्यचों में सम्यक्त्व के साथ उत्पन्न होनेवाले क्षायिक ही होने चाहिये, जो मनुष्यों में से जायेंगे। देव ने पहले तिर्यच आयु बांधी है और बाद में सम्यक्त्व प्राप्त किया है तो वह सम्यक्त्व से गिर जायेगा। तिर्यच आयु बांधी है वह तो बदल नहीं सकती, तो जायेगा तिर्यच में। किसी नारकी ने

भी अगर तिर्यच आयु बांधने के पश्चात् सम्यक्त्व प्राप्त किया उसके भी ऐसे ही होगा।

श्रोता: आयु बदल नहीं सकती ? जिस आयु का बंध किया है वह कभी चेंज नहीं होती। वहां तो जाना ही पड़ेगा। *श्रोता: सम्यक्त्व का क्या ?* सम्यक्त्व छूट जायेगा। *श्रोता: आखिर के छह महीने में ?* छह महीने में ही आयु बांधता है। देव और नारकी जीवों में आयु के बंध का पहला अवसर अंतिम छह महीने में आता है। मरण के छह महीने पहले अगर आयु का बंध नहीं हुआ तो छह महीने का त्रिभाग-त्रिभाग करते जाना। फिर दो महीने पहले, फिर ६० दिन हैं तो उसमें २० दिन पहले - इसतरह से उसका हिसाब करो। *श्रोता: भोगभूमि में ?* भोगभूमि में भी ऐसा ही होता है। अंत के ६ महीने बाकी रहते हैं तब आयु का बंध होता है और वहां देवायु का ही बंध होता है। देव और नारकी के लिये दो ही हैं न - मनुष्यायु बंधेगी या तिर्यचायु बंधेगी। मनुष्यायु का बंध हुआ हो तो वेदक सम्यक्त्व के साथ मनुष्य में आते हैं। हम कहते हैं न चौथा काल जहां चल रहा है वहां के सम्यग्दृष्टि मनुष्य होकर वे उत्पन्न होंगे। यहां पंचम काल में कोई भी मनुष्य सम्यक्त्व के साथ उत्पन्न नहीं होगा। क्या कहा ? पंचम काल में कोई सम्यक्त्व के साथ यहां उत्पन्न नहीं होगा, हां, विदेहक्षेत्र में होगा। नारकी सम्यग्दृष्टि मरकर वहां चले जायेंगे सम्यक्त्व के साथ। देव सम्यग्दृष्टि हैं वे भी वहां चले जायेंगे। उसकी बात है। अब हम पढ़ेंगे आगे-

श्रोता: यहां पर आपने जो लिखा है मनुष्य में जन्म से आठ वर्ष तो ये आठ वर्ष माता के पेट से बाहर आने के बाद के गिनने या गर्भ में आने के समय से गिनने ? जन्म से आठ वर्ष कहते हैं। कहीं तो गर्भ काल सहित आठ वर्ष कहने की भी पद्धति है, परंतु गर्भ के कम से कम ७ महीने गिने जाते हैं और उसके पश्चात् आठ वर्ष गिनते हैं। *श्रोता: हमें कौनसा समझना है ? जब से उसके ?* जन्म से लेना यहां पर, गर्भ से नहीं। गर्भ को छोड़कर। *श्रोता: यानी जब उसकी आयु चालू हो गयी पहले समय से।* कहीं-कहीं पहले समय से यानी गर्भ से गिनते हैं। परंतु यहां जन्म यानी गर्भ से निकसनेरूप जन्म को लेना है। संयम के बारे में भी कथन आता है कि गर्भ में उसने ७ महीने या ८ महीने या ९ महीने जो कुछ बिताये हैं और उसके पश्चात् आठ साल की कंडिशन आती है। कहीं-कहीं गर्भ के समय से लेकर आठ साल बताते हैं। दोनों ही प्रकार से कथन आते हैं।

श्रोता: मिथ्यात्व से पांचवें गुणस्थान के बीच में सबसे अर्लिएस्ट कर्म कहां खिरते

हैं ? सबसे हाइएस्ट एक साथ कर्म कहां पर खिरते हैं ? कर्म कहां खिरते हैं ? हां, कहां से लेकर कहां तक ? श्रोता: मिथ्यात्व से लेकर। मिथ्यात्व से लेकर ? मिथ्यात्व में तो एक समयप्रबद्ध से अधिक कर्म खिरेंगे नहीं। गुणश्रेणी वगैरह बनी है उसमें तो इतना नहीं खिरेगा। परंतु जहां कर्म खिरने की बात है तो अभी हमने क्षायिक की बात देखी थी; क्षायिक करेगा तो मिथ्यात्व कर्म सब सम्यक् प्रकृतिरूप होकर खिरनेवाला है। अभी हमने देखा था कृतकृत्यवेदक के अंतिम समय में मॅक्झिमम खिरेगा। कर्म कितना खिरता है उससे कुछ नहीं है। कितने परमाणु खिरते हैं उस पर कुछ निर्भर नहीं है। परमाणु कम खिरे या अधिक खिरे। वह तो जितने प्रपोर्शन में है उस प्रपोर्शन में तो खिरेंगे। श्रोता: अलग-अलग जीवों के अलग-अलग ? अलग-अलग जीवों में अलग-अलग प्रमाण होंगे और कौनसा प्रोसेस चल रहा है ? औपशमिक का चल रहा है कि वेदक का चल रहा है कि क्षायिक का चल रहा है उस पर भी वह निर्भर है।

श्रोता: हाइएस्ट कहां पर ? जहां क्षपणा होती है वहां खिरनेवाला द्रव्य हाइएस्ट होता है। अब यहां क्षपणा तो केवल दर्शनमोहनीय की ही हो सकती है और किसीकी नहीं। पहले हमने अनंतानुबंधी की विसंयोजना में देखा। वे अन्यरूप परिणमित होते हैं, वे तो खिरेंगे नहीं। कुछ तो खिरेंगे परंतु अन्यरूप होकर खिरेंगे। क्षपणा में दर्शनमोहनीय के हैं वे सम्यक् प्रकृतिरूप होकर खिरेंगे। हमने देखा था वह मॅक्झिमम पूरा द्रव्य एक सम्यक् प्रकृतिरूप हो जायेगा। क्षायिक होने के पूर्व में कृतकृत्यवेदक के अंतिम निषेक में मॅक्झिमम द्रव्य होगा। वह जब उदयरूप होगा तब दर्शनमोहनीय का मॅक्झिमम द्रव्य खिरेगा। अब उसमें भी वह क्षपित कर्मांशिक है या गुणित कर्मांशिक है ऐसा सोचेंगे तो गुणित कर्मांशिक का ज्यादा खिरेगा क्योंकि उसने ऑलरेडि पहले अधिक कमा कर रखा है।

देखो, गाथा १७५ की टीका - अधाप्रवृत्त देशसंयत के काल में अधाप्रवृत्त का अर्थ क्या किया था ? एकांतवृद्धि के पश्चात् जिसको हम स्वस्थान कहते हैं। स्थितिखंडन और अनुभागखंडन नहीं होता। हमने देखा था एकांतवृद्धि के काल में होता है, उसके पश्चात् नहीं होता। एकांतवृद्धि देशसंयत के अंत समय में घात करने के पश्चात् जो अवशेष स्थिति और अनुभाग रहे, वे ही वहां रहते हैं। जो जीव तीव्र संक्लेश के कारणभूत बाह्य निमित्त बिना केवल अंतरंग कर्म के उदय से उत्पन्न

संक्लेश द्वारा देशसंयत से भ्रष्ट होकर असंयत सम्यग्दृष्टि होकर क्या कहना चाहते हैं ? यह पांचवें गुणस्थानवाला चौथे में कब आयेगा ? उसके कुछ संक्लेश हो जायेंगे तो पांचवें से चौथे में आया। इसके लिये दो पद्धति के निमित्त बता रहे हैं। बाह्य निमित्त कुछ नहीं हुआ है, बस कर्मों का सहज ऐसा उदय आया, उसके कुछ संक्लेश परिणाम हुये और वह गिर गया। **वहां छोटे अंतर्मुहूर्त काल मात्र रहकर शीघ्र ही देशसंयम को ग्रहण करता है उसके भी स्थितिकांडक और अनुभागकांडक का घात नहीं होता, क्यों नहीं होता ? क्योंकि दो करण किये बिना ही यह देशसंयम को ग्रहण करता है।** कोई पांचवें गुणस्थानवाला चौथे में आया, शीघ्र में शीघ्र उसने फिर पांचवां गुणस्थान प्राप्त किया है तो वहां अधःप्रवृत्तकरण, अपूर्वकरण भी नहीं होंगे। वह डायरेक्ट चौथे से पांचवें में आ गया। वहां स्थितिकांडकघात वगैरह कार्य नहीं होंगे।

जो जीव बाह्य कारण से सम्यक्त्व व देशसंयम से भ्रष्ट होकर मिथ्यादृष्टि होकर वहां बड़ा अंतर्मुहूर्त या संख्यात या असंख्यात वर्ष तक रहकर पश्चात् वेदक सम्यक्त्व सहित देशसंयम को ग्रहण करता है। जैसे हमने देखा स्वयंभूरमण समुद्रवाला सादि मिथ्यादृष्टि मत्स्य वहां जो मिथ्यात्व सहित ही उत्पन्न हुआ है, हो सकता है बहुत बड़े लंबे काल के बाद उसने सम्यक्त्व प्राप्त किया है **उसके अधःकरण और अपूर्वकरण होते हैं। इसलिये वहां स्थिति और अनुभाग कांडकघात भी होते हैं।** हमने देखा जहां दो करण होकर देशसंयम को प्राप्त करता है वहां स्थितिकांडकघात, अनुभागकांडकघात होते हैं। वहां एकांतवृद्धि भी होगी और वहां पर भी स्थितिकांडकघात आदि कार्य होंगे। परंतु उसके बाद जब स्वस्थान देशसंयत हो जाता है तब ये स्थितिकांडकघात, अनुभागकांडकघात आदि कार्य नहीं होंगे। जिसको हम स्वस्थान कहते हैं, स्वस्थान यानी जो अधाप्रवृत्त देशसंयत है; वह है तो पांचवें गुणस्थान में, तो उसके यथायोग्य कभी विशुद्धि कभी संक्लेश होंगे कि नहीं होंगे ? उसके योग्य ? पहले तो एकांतवृद्धि हुयी थी। अब उसका रेग्युलर पांचवां गुणस्थान चल रहा है तो कभी उसके योग्य विशुद्धि और संक्लेश में उसका व्हेरिएशन होता रहेगा। हां, यही बात बता रहे हैं आगे गाथा १७६ में-

अधाप्रवृत्त देशसंयत जीव कदाचित् विशुद्ध होता है, कदाचित् संक्लेशी होता है, वहां विवक्षित कर्म का पूर्व समय में जो द्रव्य अपकर्षण किया उससे

अनंतर समय में विशुद्धता की वृद्धि के अनुसार कदाचित् असंख्यातवें भाग बढ़ता, कदाचित् संख्यातवें भाग बढ़ता, कदाचित् संख्यातगुणा, कदाचित् असंख्यातगुणा द्रव्य को अपकर्षण करके गुणश्रेणी में निक्षेपण करता है। हमने देखा था यहां की गुणश्रेणी का आयाम तो उतना का उतना ही रहता है जिसको हमने अवस्थित गुणश्रेणी कही। पांचवें गुणस्थान में थूआऊट वह गुणश्रेणी का आयाम छोटा-बड़ा नहीं होगा। परंतु अपकर्षित करके उसमें जितना द्रव्य दिया जायेगा उसमें हीनाधिकता हो सकती है। जहां विशुद्धि बढ़ेगी वहां अपकर्षित होनेवाला द्रव्य ज्यादा आयेगा, जहां संक्लेश बढ़ेंगे वहां द्रव्य कम आयेगा। कितना अधिक आ सकता है ? चार प्रकार बताये न ? असंख्यातवें भाग अधिक आ सकता है। संख्यातवें भाग अधिक आ सकता है, डायरेक्ट संख्यातगुणा द्रव्य आ सकता है या असंख्यातगुणा भी आ सकता है। विशुद्धि बहुत बढ़ी तो असंख्यातगुणा द्रव्य नीचे आया। तो यह वृद्धि हुयी।

पुनश्च विशुद्धता ही हानि के अनुसार यानी यदि संक्लेश होते जाये, तो भी अपकर्षण तो होगा, गुणश्रेणी में तो आयेगा परंतु कम्पैरेटिवली पहले से कम द्रव्य आयेगा। **कदाचित् असंख्यातवें भाग हीन, कदाचित् संख्यातवें भाग हीन, कदाचित् संख्यातगुणा हीन और कदाचित् असंख्यातगुणा हीन द्रव्य को अपकर्षण करके गुणश्रेणी में निक्षेपण करता है।** श्रोता: अनंतभाग होकर ? यहां अनंतभाग नहीं होता क्योंकि जब गुणश्रेणी में दिया जायेगा तो दो, चार, पांच परमाणु नहीं दिये जायेंगे। उसका भागहार क्या है ? अपकर्षण भागहार से भाग देते हैं। उस भागहार का प्रमाण असंख्यात है, अनंत नहीं है तो असंख्यातवां भाग नीचे आता है, फिर भी उसमें हीनाधिकता होती है। इसलिये यहां वह षट्स्थानपतित हानि-वृद्धि नहीं होगी। कितनी होगी ? चतुःस्थान होगी। यहां लिखा है न बोर्ड पर। क्या लिखा है ? देखो, यहां चतुःस्थान पतित हानि-वृद्धि होती है। यहां बोर्ड पर देखना।

देशसंयत के दो भेद बताये - एकांतवृद्धि और अधाप्रवृत्त जिसको स्वस्थान कहा। हमने देखा था एकांतवृद्धि में क्या होता है ? अभी-अभी वह दो करण करके देशसंयम को प्राप्त हुआ है तो पहले एक अंतर्मुहूर्त तक उसकी विशुद्धि एकांत से बढ़ती चली जाती है इसलिये उसको कहा एकांतवृद्धि। उस काल में प्रति समय विशुद्धि अनंतगुणा बढ़ती है। स्थितिकांडक वगैरह होते आये हैं वे यहां पर भी चलेंगे।

उसके पश्चात् उसको कहेंगे अधाप्रवृत्त देशसंयत, उसीका दूसरा नाम है स्वस्थान देशसंयत। अब यहां क्या होगा ? अपकर्षण करके जो गुणश्रेणी में द्रव्य दिया जायेगा उसमें चतुःस्थान वृद्धि-हानि होगी। चतुःस्थान वृद्धि-हानि का अर्थ क्या है ? कभी असंख्यातवें भाग बढ़कर प्रदेश आयेंगे, कभी संख्यातवें भाग बढ़कर, कभी संख्यातगुणा आयेंगे, कभी असंख्यातगुणा आयेंगे। ये वृद्धि के प्रमाण बताये। ऐसे ही चार प्रकार से हानि हो सकती है- असंख्यातवें भाग हीन, संख्यातवें भाग हीन, संख्यातगुणा हीन या असंख्यातगुणा हीन।

देशसंयत

एकांतवृद्धि प्रतिसमय विशुद्धि अनंतगुणा बढ़ती है।
 अधाप्रवृत्त (स्वस्थान) देशसंयत - चतुःस्थान वृद्धि-हानि
 स्थान १) प्रतिपातगत
 २) प्रतिपद्यमानगत
 ३) अनुभयगत

जहां भागहार का प्रमाण अनंत आता है न, वहां वृद्धि-हानि के छह स्थान आते हैं - उसमें अनंतभाग और अनंतगुणा की भी बात आती है, वह बात यहां नहीं ली है। यहां केवल चार ही प्रकार की हानि और वृद्धि होती रहती है। यहां यथायोग्य संक्लेश और विशुद्धि होगी और वहां पर यथायोग्य हानि-वृद्धि भी होगी। **इसतरह अधाप्रवृत्त देशसंयत के सर्व काल में प्रतिसमय यथासंभव चतुःस्थानपतित वृद्धि-हानि सहित गुणश्रेणी विधान पाया जाता है।** क्योंकि परिणाम एक सदृश, एक समान नहीं रहते हैं। कभी संक्लेश होते हैं कभी विशुद्धि - पांचवां गुणस्थान है तो क्या हुआ ? उस गुणस्थान के योग्य संक्लेश-विशुद्धि के परिणाम होते रहते हैं और उसके अनुसार गुणश्रेणी का आयाम उतना रहने पर भी उसमें जो प्रदेश यानी परमाणु दिये जाते हैं उनकी संख्या में हीनाधिकता होती रहती है।

अब यहां जो देशसंयम के स्थान बतायें हैं उनको देख लेते हैं। स्थान यानी यहां विशुद्धि के अलग-अलग क्वेरिएणन्स होंगे। पृष्ठ १४० निकालना। देखो, **देशसंयम के स्थान तीन प्रकार के हैं।** यहां विशुद्धि के जो अलग-अलग भेद होंगे उनकी अपेक्षा से

उनके स्थान बतायें हैं। वे हैं प्रतिपातगत, प्रतिपद्यमानगत और अनुभयगत यानी जो दोनों ही नहीं वह अनुभयगत। इसका अर्थ अभी देखेंगे, आगे बता रहे हैं- **देशसंयम से भ्रष्ट होने के अंत समय में पाये जानेवाले जो स्थान, वे प्रतिपातगत हैं।** इसका अर्थ क्या है ? कोई पांचवें गुणस्थान से भ्रष्ट होकर अभी मिथ्यात्व के सन्मुख है, कोई देशसंयम से भ्रष्ट होकर चौथे के सन्मुख है। तो अधिक संक्लेशवाला कौन होगा ? जो मिथ्यात्व में जानेवाला है। मिथ्यात्व में जानेवाले के भी बहुत ढेरिऐशन्स होंगे, कोई एक ही विशिष्ट परिणाम नहीं है। उसके भी बहुत सारी संख्या में परिणाम ऐसे हैं कि उसके बाद वह मिथ्यात्व में जानेवाला है। वहां के जो विशुद्धि के अलग-अलग स्थान हैं उनको कहेंगे प्रतिपातगत स्थान। यहां से प्रतिपात यानी गिरना होनेवाला है। अभी यह जीव गिरनेवाला है तो यहां गिरने के सन्मुख ऐसे जो विशुद्धि के स्थान हैं - इसके ढेरिऐशन्स हैं, उनको प्रतिपातगत स्थान कह दिया।

श्रोता: गिरने के सन्मुख जीव का समय कितना है ? एक समय है, हां, वहां देशसंयम से भ्रष्ट होने के अंत समय में बताया न ? अंत समय में पाये जानेवाले स्थान। अलग-अलग जीवों के अलग-अलग विशुद्धि यानी यथायोग्य संक्लेश हैं; एक ही विशिष्ट परिणाम में भ्रष्ट नहीं हो रहा है, उनकी भी कुछ अलग रेंज है उनको कहेंगे प्रतिपातगत स्थान। **पुनश्च देशसंयम के प्राप्त होने के प्रथम समय में पाये जानेवाले स्थान प्रतिपद्यमानगत हैं।** जो नीचे के गुणस्थान से ऊपर चढ़कर अभी देशसंयम को प्राप्त हुआ है, उसके पहले समय में अलग-अलग विशुद्धि के साथ जो पांचवें में आया है - उनकी जो अलग रेंज है उसको कहेंगे प्रतिपद्यमानगत स्थान। **इसके बिना अन्य समयों में पाये जानेवाले स्थान अनुभयगत हैं। वे ऊपर-ऊपर हैं।** ऊपर-ऊपर यानी उनकी विशुद्धि ऊपर-ऊपर अधिक है। विशुद्धि की अपेक्षा जहां से गिरना है वे स्थान सबसे नीचे हैं। विशुद्धि कम है यानी वे संक्लेशवाले हैं। जब पांचवें गुणस्थान में आये हैं तो पहले समय में प्रतिपद्यमानगत स्थान हैं। वे उनके ऊपर हैं। हमने देखा था एकांतवृद्धि होती है, तो दूसरे, तीसरे समय में और ऊपर-ऊपर होंगे और यहां से सातवें में जानेवाले तो टॉप में होंगे। वे सारे क्या हैं ? अनुभयगत स्थान।

जो गिरने के सन्मुख है वह प्रतिपातगत। पांचवें में आया है पहले समय में प्रतिपद्यमानगत - वहां भी ढेरिऐशन्स होंगे और उसके बाद दूसरे आदि समयों में जो

हो जायेंगे है वे हैं अनुभयगत स्थान। इसतरह से यह स्थानों की चर्चा है। *श्रोता: अनुभय का अर्थ नहीं समझा ?* अन उभय, उभय यानी दोनों; अनुभय यानी दोनों ही नहीं। जो प्रतिपातवाला भी नहीं है, जो प्रतिपद्यवाला भी नहीं। प्रतिपद्य यानी उसने अभी-अभी पांचवां गुणस्थान प्राप्त किया है। प्रतिपात यानी अभी-अभी गिरनेवाला है। गिरनेवाले के जो स्थान हैं उनको प्रतिपातगत कहा। जो अभी नीचे से चढ़कर ऊपर पांचवें में आये हैं उनके स्थानों को कहेंगे प्रतिपद्यमानगत। जो दोनों ही नहीं हैं यानी ना उनका पहला समय है और ना अंतिम समय है, बीचवाले समयों में जो कुछ यथायोग्य स्थान पाये जायेंगे वे सारे क्या कहलायेंगे ? अनुभयगत। ये अनुभय शब्द सुना है न कहीं। हां, अनुभय वचनयोग, मनोयोग। जो दोनों ही नहीं है उसको अनुभय कहते हैं।

श्रोता: जो प्रतिपद्यमानगत भी नहीं और प्रतिपातगत भी नहीं है वह ? वह अनुभयगत है। पहले समय में कौनसा था ? प्रतिपद्यमानगत। दूसरे, तीसरे समय में क्या कहेंगे ? अनुभयगत कहेंगे। जो अभी गिरा नहीं है और बीच में ही है उन सबको कहेंगे अनुभयगत। *श्रोता: और जो चढ़ा ही नहीं है अभी ?* उसको तो देशसंयम नहीं कहेंगे। देशसंयम की बात चल रही है। जो चढ़ा नहीं उसकी बात नहीं, उसको तो हम मिथ्यात्व में है कहेंगे। देखो, यहां लिखते हैं- **देशसंयम का जघन्य स्थान जो सबसे थोड़ी विशुद्धता युक्त है वह तो नीचे ही नीचे लिखा।** हम अगर इन स्थानों को एक के ऊपर एक लिखेंगे तो सबसे जघन्यवाला स्थान नीचे लिखेंगे। **उसके ऊपर उसके अनंतवें भाग मात्र अधिक विशुद्धता युक्त दूसरा स्थान लिखा।** यहां विशुद्धता के अविभागप्रतिच्छेद अनंतों में हैं इसलिये अनंतवां भाग अधिक लिया। **इसी क्रम से ऊपर-ऊपर उत्कृष्ट स्थान तक रचना हुयी। वहां जघन्य स्थान आदि कितने ही नीचे के स्थान प्रतिपातरूप जानना।** यानी इन स्थानों से नीचे गिरना हो जाता है।

उनके ऊपर जिनका कोई स्वामी नहीं है ऐसे षट्स्थानपतित वृद्धि युक्त असंख्यातलोक मात्र स्थान अंतराल में होते हैं यानी बीच में गॅप है, ऐसे परिणाम किसीके नहीं हैं। उनके ऊपर प्रतिपद्यमानस्थान पाये जाते हैं। पांचवें में आने का जो पहला समय है वहां के स्थान पाये जायेंगे। उनके ऊपर षट्स्थानपतित वृद्धि युक्त असंख्यातलोक मात्र स्थान अंतराल में होते हैं यानी ये भी किसीके नहीं हैं। तब उनके ऊपर अनुभयगतस्थान पाये जाते हैं। वहां प्रतिपातस्थान थोड़े हैं, वे

भी कितने हैं ? असंख्यातलोक मात्र हैं और उनसे असंख्यातलोकगुणा प्रतिपद्यमानस्थान हैं और उनसे असंख्यातलोकगुणा अनुभयस्थान हैं। श्रोताः तीनों साथ में हैं ? नहीं-नहीं, वे अलग-अलग हैं।

अभी ये जघन्य स्थान किसके होता है ? क्योंकि देशसंयम मनुष्यों में भी है और तिर्यचों में भी है। सबसे जघन्य स्थान किसके होगा उसकी बात बता रहे हैं, पृष्ठ १४१ पर, - देशसंयम का सबसे जघन्य प्रतिपातस्थान मनुष्य के होता है। उसके ऊपर षट्स्थानपतित वृद्धि युक्त असंख्यातलोक मात्र प्रतिपातस्थान ऐसे हैं जो मनुष्य ही के होते हैं। यानी मनुष्य जीव जघन्य विशुद्धिवाले स्थान पर हैं, तिर्यचों के ये स्थान नहीं होंगे। नीचे के कुछ स्थान छोड़कर तिर्यचों के होंगे। उसके ऊपर तिर्यच में पाया जानेवाला जघन्य प्रतिपातस्थान होता है। उसके बाद दोनों के कॉमन ऐसे स्थान होंगे। उसके ऊपर मनुष्य और तिर्यच दोनों में पाये जानेवाले असंख्यातलोक प्रमाण स्थान होते हैं। ऊपर तिर्यच का उत्कृष्ट प्रतिपातस्थान है। यानी जघन्य से लेकर उत्कृष्ट तक लिया। उसके ऊपर मनुष्य ही के होते हैं ऐसे असंख्यातलोक मात्र स्थान होते हैं, ऊपर मनुष्य का उत्कृष्ट प्रतिपातस्थान होता है।

अभी इसमें हमें इतना ही समझना है कि ये स्थान मनुष्यों के भी पाये जाते हैं और तिर्यचों के भी पाये जाते हैं। जघन्य स्थान भी मनुष्य के ही होगा वैसे उत्कृष्ट स्थान भी मनुष्य के होगा और इन बिट्टीन रेंज तिर्यचों की होगी। बस इतना ही है। प्रतिपातस्थान में भी ऐसा होगा और प्रतिपद्यमान में भी ऐसा होगा। जघन्य स्थान भी मनुष्यों के, उत्कृष्ट स्थान भी मनुष्यों के और बीचवाली जो रेंज है वह तिर्यचों की और मनुष्यों की भी है। मनुष्यों के जघन्य से उत्कृष्ट तक सभी स्थान हैं और उनमें से बीचवाले कुछ स्थान हैं वे तिर्यचों में पाये जायेंगे। हमने जो पढ़ा उसमें से यही अर्थ निकलता है। अब हम प्रतिपद्यमान की संदृष्टि देखेंगे। देखो संदृष्टि अधिकार-

पृष्ठ ५२९ पर एक चार्ट बनाया है, उसमें लिखा है प्रतिपातस्थान, उसके आगे लिखा है प्रतिपद्यमानस्थान और उसके आगे लिखा है अनुभयस्थान। प्रतिपात और प्रतिपद्यमान के बीच में अं लिखा है यानी अंतर है और उसके नीचे जो साइन है वह है असंख्यातलोक। तीन आड़ी लाइन $\equiv$ लोक के लिये लिखते हैं और उसके आगे असंख्यात लिखा है - उसका अर्थ है असंख्यातलोक $\equiv \theta$ । अब प्रतिपद्यमान और

अनुभय के बीच में भी अंतर है और वहां भी असंख्यातलोक प्रमाण स्थान हैं जो किसीके नहीं पाये जायेंगे। अब यहां प्रतिपातस्थान के नीचे देखना- ज यानी जघन्य, राइट साइड में उ लिखा है और बीच में जो बिंदी-बिंदी हैं वे सारे मध्यम स्थान हैं। वे किसके होंगे ? मनुष्यों के होंगे। यहां लिखा है न और ति - न यानी नर, मनुष्यों के होंगे और ति यानी तिर्यचों के होंगे। यानी जघन्य भी मनुष्यों के हैं, उत्कृष्ट भी मनुष्यों के हैं और तिर्यच के जो जघन्य- उत्कृष्ट हैं वह बीच में लिखा है देखो- ज के नीचे ति लिखा है वह तिर्यचों का जघन्य और उ के नीचे ति लिखा है वह तिर्यचों के लिये उत्कृष्ट।

प्रतिपातस्थान	अं	प्रतिपद्यमानस्थान	अं	अनुभयस्थान
ज००००००००००००००उ न ≡० ज०००००उ≡० न ति ≡० ति	≡०	ज००००००००००००००उ न ≡० ज०००००उ≡० न ति ≡० ति	≡०	ज००००००००००००००उ न ≡० ज०००००उ≡० न ति ≡० ति

इसका अर्थ क्या होगा ? मनुष्य के जघन्य से लेकर मनुष्य के उत्कृष्ट तक जितने स्थान हैं उनके बीच में कुछ स्थान तिर्यचों के भी होते हैं। मनुष्यों के तो होते ही हैं, तिर्यचों के भी होते हैं। तिर्यचों की रेंज इन बिंदुओं बतायी। ऐसा ही प्रतिपद्यमान में देखना है और ऐसे ही अनुभयस्थानों में देखना है। *श्रोता: वे भी असंख्यात हैं ?* वे भी असंख्यात हैं, सब जगह असंख्यातलोक ही कहेंगे। इसतरह यहां स्थानों की बात बतायी है। प्रतिपात का अर्थ होता है भ्रष्ट होना यानी जो देशसंयम से भ्रष्ट होकर अभी नीचे के गुणस्थानों में आयेंगे उसकी अपेक्षा कितनी विशुद्धि के साथ आनेवाले हैं ? नीचे गिरने के पहले विशुद्धि कितनी हो सकती है उसको यहां स्थान कह दिया है।

इसतरह से देशचारित्र की प्ररूपणा यहीं समाप्त होती है। आगे पृष्ठ १४२ और १४३ तक मनुष्यों के और तिर्यचों के कितने स्थान होते हैं इन्हीं स्थानों को समझाया है उसी बात को लेते हुये देशचारित्राभिधानप्ररूपणं समाप्तम् यहां तक देशचारित्र की प्ररूपणा समाप्त होती है। उसके बाद सकलचारित्र की प्ररूपणा है। अभी हम यहीं रुकेंगे। अपना भी समय होने को आया है।

बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

श्री कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन तीर्थसुरक्षा ट्रस्ट द्वारा आध्यात्मिक उन्नयन एवं विकास हेतु सम्मान

समय-समय पर श्री कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन तीर्थसुरक्षा ट्रस्ट समाज के गणमान्य महानुभावों के क्रम में जिनवाणी उपासकों, विशिष्ट उल्लेखनीय कार्य करने वाले एवं विशिष्ट सेवाओं हेतु साधर्मियों का सम्मान करता रहता है।

समग्र मुमुक्षु समाज के आध्यात्मिक उन्नयन एवं विकास हेतु जिन महानुभावों ने विशिष्ट कार्य एवं सेवाएँ प्रदान की हैं ऐसे महानुभावों को समाज के विशेष आयोजनों के अवसर पर सम्मानित किया गया है। इसके अतिरिक्त जिन विद्वानों ने पीएचडी की उपाधि प्राप्त की उन्हें भी समय-समय पर ट्रस्ट के द्वारा सम्मान प्रदान किया गया है।



पं. फूलचंद जी सिद्धांतशास्त्री
वनारस



वावू जुगलकिशोर जी युगल
कोटा



डॉ. हकमचंद जी भारिल्ल
जयपुर



कविवर पं. राजमल पुरेया
भोपाल



श्री अनन्तराय ए. सेठ
मुम्बई



श्री निमेशभाई शान्तिलाल शाह
मुम्बई



श्री हितैनभाई ए सेठ
मुम्बई



श्री अक्षयभाई दोषी
मुम्बई



डॉ. उज्जला वेन शाह
मुम्बई



पं. श्री दिनेशभाई शाह
मुम्बई